भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मंदिर

मोक्षशास्त्र प्रवचन

प्रथम व द्वितीय भाग

प्रवक्ता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

संपादक—
सुमेरचंद जैन
१५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

प्रकाशकः—
सुमेरचन्द जैन
प्रधानमंत्री भा० वर्णी जैनसाहित्य मंदिर
मुजफ्फरनगर

प्रथम संस्करण १०००]
सन् १९७७]

[लागत बिना जिल्द १६) ४० रु०
[जिल्दका पृथक् १)५० रु०

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिरके संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आढ़ती, सरधना
(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके सरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, सहारनपुर
(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, सोनीपत
(५) श्रीमती सुवटी देवी जैन, सरावगी गिरीडीह
(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भवरीलाल जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, मंसूरपुर
(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्रीनेमिचदजी जैन, मुजफ्फरनगर
(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, ,,
(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बड़जात्या नई मंडी, ,,

सहजानन्द–साहित्य–उद्घोष

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अत स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोंको गौण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।

सम्पादकीय

प्रिय पाठक वृन्द ! आपके कर-कमलोमे यह ग्रन्थ देते हुए बहुत हर्ष है । जैनशासनमें सर्वजनोपयोगी ग्रन्थ 'मोक्षशास्त्र' अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है । पुरुष व महिलावर्ग किसी पर्व आदि मे विशेष धर्मसाधनामे इसका पाठ पढकर सतोष अनुभव करते है । दशलक्षण पर्वपर प्रायः प्रत्येक नगरके मदिरोमे इसका वाचन होता है । इस 'मोक्षशास्त्र' ग्रंथके प्रणेता परम पूज्य श्री मदुमास्वामी है । इस मूल कृतिपर परमपूज्य सर्वश्री मद्भट्टाकलङ्कदेव श्रीमत्पूज्यपादस्वामी श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जैसे दिग्गज व आठ दस शताब्दी पूर्व हुए आचार्योंने टीका की है।

मूल सूत्र व उनकी गहन टीकायें संस्कृत भाषामें होनेसे इस ग्रन्थका पर्याप्त रूपसे अध्ययन होना बड़ा ही कठिन था । किन्तु यह समाजके परम सौभाग्यकी बात है कि अध्यात्मयोगी ज्ञानमूर्ति न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री श्री गुरुवर्य सहजानन्द जी (मनोहर जी वर्णी) महाराजने आध्यात्मिक व दार्शनिक तथ्योसे समन्वित विस्तृत प्रवचन किये हैं । मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) के प्रथम अध्यायके प्रारम्भके छह सूत्रोपर प्रवचन इस पुस्तकमें है । एक एक सूत्रपर १०-१५ दिन प्रवचन होना तो सामान्य बात है, किसी-किसी सूत्रपर तो २५-२५ दिन भी प्रवचन हुए हैं । इन प्रवचनोमे किसी भी विषयको पुनरुक्त नही किया गया है । यदि कोई स्थल पुनरुक्तसा मालूम पडे तो वहाँ यह निरखना चाहिये कि इसमे अन्य अन्य कौनसी दृष्टि व तथ्य दिये गये हैं । इन सब रत्नोका ग्रहण तो इस प्रवचन सागरमे गोता लगाकर ही किया जा सकता है जिनकी प्राप्तिसे मोक्षमार्गमे प्रगति होगी और सत्य सहज आनन्द प्राप्त होगा ।

पूज्यश्री सहजानन्द जी महाराजने समयसार प्रवचनसार नियमसार पञ्चास्तिकाय आत्मानुशासन, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, ज्ञानार्णव, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, प्रमेयकमलमार्तण्ड अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा कीर्तिकेयानुप्रेक्षा, सप्तभगतरंगिणी, पञ्चाध्यायी, पद्मनन्दिपंचविंशतिका परमात्मप्रकाश, रत्नकरण्ड, द्रव्यसंग्रह, रयणसार, दर्शनपाहुड आदि लगभग ६५ ग्रन्थराजोपर प्रवचन किये है तथा स्वरचित सहजानंदगीता, अध्यात्मसूत्र, आत्मकीर्तन, परमात्मआरती, वस्तुतथ्य, ज्ञानामृत, अध्यात्मसहस्री आदि १५ ग्रंथोपर प्रवचन किये हैं । इनके अतिरिक्त आत्मसम्बोधन, सहजानंदगीता, अध्यात्मसूत्र, समयसारभाष्यपीठिका, तत्त्वरहस्य, सहजानद-डायरियाँ, अध्यात्मसहस्री, मनोहर पद्यावलि स्तोत्रपाठपुञ्ज, समस्थानसूत्र आदि १७५ ग्रंथो का स्वतत्र निर्माण किया है । गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणसार आदि जैसे कठिन ग्रन्थोका कुञ्जीरूपमे जीवस्थानचर्चा, कर्मस्थानचर्चा, सम्यक्त्वलब्धि, कर्मक्षपण-

सार आदि पुस्तकोंकी रचना की है जो धर्मज्ञानप्रवेशार्थियोके लिये अतीव लाभदायक हैं। इतना ही नही इनसे पहिले आवश्यक अध्ययनकी पूर्तिके लिये धर्मबोध, छहढाला टीका धार्मिकस्फुटज्ञान द्रव्यसग्रह टीका आदि पुस्तकें बडी सुगम विधिसे ज्ञान करनेके लिये रची हैं।

पूज्य श्री गुरुवर्य सहजानन्द जी महाराजने ज्ञानप्रकाशदिशामे जनताका जो उपकार किया है, समाज इस उपकारसे कभी उऋण नही हो सकता और समाज हृदयसे महाराजश्री का अत्यन्त आभारी रहेगा।

जिज्ञासु व मुमुक्षु जनोसे निवेदन है कि व निष्पक्ष सयुक्तिक आर्षानुसारी इस सहजानन्द-साहित्यका अध्ययन व मनन करके अपने इस दुर्लभ नर-जीवनको सफल करें।

१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर — सुमेरचंद जैन

※ आत्म-रमण ※

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू, मैं सहजानन्दस्वरूपी हू ॥ टेक ॥

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य, हू सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।
हू सत्य सहज आनंदधाम, मैं दर्शन०, मैं सहजानंद० ॥१॥

हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नही।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं दर्शन०, मैं सहजा० ॥२॥

आऊं उतरू रम लू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं दर्शन०, मैं सहजा० ॥३॥

—०—

मोक्षशास्त्र प्रवचन १, २ भाग

(प्रथम भाग)

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" ॥१॥

तत्त्वार्थसूत्रकी जैन आम्नायमे मान्यता और पूज्यता है, इसे सब जानते है। एक यही ग्रन्थ ऐसा है, जिसे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो मानते है। क्योकि इसमे जैनागमका तत्त्वज्ञान है। सक्षेप रूपसे उसका सकलन करने वाली दूसरी इससे अच्छी रचना नही हो सकती थी, इस लिये अपने श्वेताम्बर भाइयोमे भी इसके कुछ सूत्रोमे थोडा हेर फेर होकर इसकी मान्यता है, ऐसा कई विद्वानोका मत है। इस शास्त्रमे कई तरहकी विशेषता है। प्रथमानुयोगके विपयको छोड अन्य सब अनुयोगोका वर्णन सूत्ररूपसे इसमे भरा हुआ है। वैसे तो क्षेत्र काल गति आदि सूचना रूप 'प्रथमानुयोग भी आगया है। इसके विषयके प्रतिपादानका क्रम, शैली और गाभीर्य अति उत्तम है। इनका सूक्ष्म दृष्टिसे मनन करनेवाला परम आगमका अभ्यासी हो सकता है।

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग.' इस प्रारभके सूत्रमे प्रारम्भमे सम्यक् और साध्या पद इस सूत्रजी के अन्तिम सूत्रके अतमे आया हुआ है। जिससे यह अर्थ भी निकल सकता है कि रत्नत्रय जिसका विवेचन आगे पूरे ग्रन्थमे किया गया है वह साध्य है, साधने योग्य है। सम्यक् और साध्या के मध्यमे जितना प्रवचन है वह हृदयमे धारने योग्य है। यद्यपि ग्रन्थकारका भाव यह रहा हो ऐसा निश्चय नही कर सकते, फिर भी तत्त्वज्ञानियोंके शब्दोका बडा महत्त्व है। एक ही बातमे कई गूढ अर्थ भरे रहते है। जो अर्थ उनके ध्यानमे दृष्टि उस ओर न होनेसे शायद नही भी होता हो, वह अर्थ भी उनके वचनोसे निकल जाता है। ग्रन्थमे जो १० अध्याय है, उनसे भी मतलब निकलता है कि गणना मूलमें ९ तक है, उसके बाद शून्य जोड कर १० बनते है, जो "एक गोल" ऐसा लिखा जाता है। पदार्थ भी ९ होते है, और ये व्यवहारसे है।

इन ९ भेदोसे अतीत पदार्थका स्वरूप शुद्ध निश्चयनयका विषयभूत स्वरूप है। इन ९ भेदोके उल्लंघन होनेपर वह गोल (GOLE) आता है जो आदि मध्य अंतसे रहित

व ध्येयरूप है। इस तरह उसके दशवे प्रकारका भी सकेत दशवें अध्यायसे ले सकते है। दशवें अध्यायमे शुद्ध पर्यायका वर्णन है जो स्वभावके अनुरूप है। यो तो सामान्य तौरपर सात तत्त्वोके प्ररूपणमे १० अध्याय वन गये, यह बात ठीक है। इग्लिशमे गोलको (GOLE) ध्येय कहते है जिससे यह सिद्ध होता है कि ये १० अध्याय क्या है ? गोल (ध्येय) है। दसो अध्यायोमे जीव अजीवके विस्तारका वर्णन है सो इन भेद–पर्याय–विस्तारको समझे विना इनके एक आश्रयभाव तत्त्वको समझना कठिन है। अत यह विस्तार भी एक गोलपर पहुंचानेके लिये है। सूत्रके प्रारम्भमे टीकाकार पूज्यपाद स्वामीने मगलाचरण किया।

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार, कर्मभूभृताम्। ज्ञातार विश्वतत्त्वाना वन्दे तद्गुण-लब्धये। अर्थात् मोक्षमार्गके नेता, द्रव्यकर्म वा रागद्वेपादि भावकर्मके भेदनेवाले और विश्वके तत्त्वोके ज्ञाता अथवा विश्व माने सम्पूर्ण तत्त्वोके ज्ञाताको उनके गुणोकी प्राप्तिके लिये अथवा उन गुणोकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूँ। इसमे पहिला विशेषण मोक्ष मार्गके नेताका दिया। नेता वह कहलाता जो अपने लक्ष्यकी ओर ले जाय, ले जानेवाला स्वय जाता और दूसरोको उस अभीष्ट तक ले जाता। नेताका अर्थ पहुचा देनेवाला नही होता। क्योंकि पहुचा देने वालेमें वह नेतृत्व शक्ति नही होती। नेता तो वही है जो स्वय उसको प्राप्त करे या उसपर चले और दूसरोको भी उसमे ले जाय। मोक्षमार्गपर तो स्वय न चला हो, स्वय उस भावको जिसने प्राप्त न किया हो तो दूसरोको मोक्षमार्गमे ले जानेका निमित्तत्व उसमे नही हो सकता। अरहत आप्तमे यह नेतृत्व पूर्णरूपसे पाया जाता हैं। इसके साथ ही जो पूर्णरूपसे रागद्वेषरहित वीतरागी हो और पूर्ण ज्ञानी (सर्वज्ञ) हो, वही वास्तविक मोक्षमार्गका नेता हो सकता है। मोक्षमार्गका प्रणयन; अल्पज्ञानी या रागी-द्वेषी नही कर सकता। इसी लिए ग्रन्थकार इन तीन गुणोकी प्राप्तिके लिए अथवा तीन गुणोसें विशिष्ट आप्त अरहतकी अनुभवमे प्राप्तिके लिए उन गुणोको व तद्विशिष्ट अरहतको नमस्कार करते है। क्योकि जो जिसका अर्थी होता है वह उसीकी उपासना करता है। लोकमे भी ऐसा देखा जाता है।

किसी भी कार्यमे सफलता पानी हो तो पुरुषको पुरुषार्थी, निर्दोष व ज्ञानी होना ही चाहिए। यहा मोक्षमार्गकी वात है इसके लिए मोक्षमार्गका पुरुषार्थी और निर्दोषतामे सर्वथा निर्दोष व पूर्ण ज्ञानी होना चाहिए। इस श्लोकमे ३ विशेषण दिए है, १–मोक्षमार्ग-नेता, २–कर्मभेत्ता, ३–विश्वज्ञाता। मध्यका विशेषण पूर्व और ऊपर दोनोके लिए कारण

है। जब तक जीव रागादि भावकर्म और मोहनीयादि द्रव्यकर्मका क्षय नही करता तब तक वह मोक्षमार्गका अधिकारी, नेता व सर्वज्ञ नही बन सकता। जैनसिद्धान्त गुणवादी है व्यक्तिवादी नही। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ परिणमन ही नही कर सकता, तब व्यक्तिपूजाको महत्त्वका स्थान ही कैसे हो सकता है? जैन सिद्धान्तके इस मर्मको नही जाननेवाले लोग न्यायके मार्गमे कदम रखे तो पद पदपर फिसलना पडता है। यहाँ मोक्ष-मार्गके नेताका स्मरण इसीलिये है कि उनका ही निमित्तरूपेण हम सबपर उपकार है। कर्मभेत्ताका स्मरण इसलिए किया है कि आखिर निर्विकल्पता ही तो ज्ञानीने केवल शुद्ध दशामे निर्णीत की है। विश्वज्ञाताका स्मरण इसलिए किया है कि अन्तमे शुद्ध अवस्था होनेपर सद्भावरूपेण यही सर्वज्ञता ही तो रहती। अहो, नमस्कार भी हो तो ऐसा हो कि वह नमस्कार परिणमन सफलताकी उन्नति करता रहे। मोक्षमार्गके नेता, कर्मरूपी पहाडके भेदन करनेवाले व सर्व तत्त्व (त्रिलोक व त्रिकालवर्ती) के जानने वाले चैतन्य-स्वरूप प्रभुको नमस्कार हो।

वे मोक्षमार्गके नेता जो तत्त्वज्ञान बताते है, वह सनातन है। क्योकि ज्ञानको वेद कहते है, और बहुत लोगोने वेदको अपौरुषेय, अनादिसे चला आया माना है। श्रुतज्ञान रूपी वेद, अथवा षट्खन्डागम वेद, महावीर तीर्थंकरने नया पैदा किया हो अथवा पहिलेके और दूसरे तीर्थंकरोने पैदा किया हो, ऐसी बात नही है। वह ज्ञान (वस्तुका धर्म) किसी का बनाया नही बनता, वह तो हमेशा विद्यमान है। आत्माकी आत्मीयता, आत्माकी चेतनता, आत्माकी ज्ञानात्मकता, आत्माका रत्नत्रय— ये सब उसमे अनादिसे है, जो संसारी आत्माए विकारी है, उनको दूर करनेका उपाय भी अभीसे नही है, वह भी सनातन है। सर्व सनातन है, अत तत्त्वज्ञानरूपी वेद सनातन है, तीर्थंकर उसका प्रणयन करते हैं। जगतके प्राणी उस ज्ञानसे (धर्मसे) शून्य होते है, वे अपने उस गुण और धर्मको भूले रहते है। तब तीर्थंकर उसका उद्बोध मात्र कराते है। वर्तमान कालमे २४ तीर्थंकरोके निमित्तसे यह उपकार हुआ। इसके पहिले अनत भूतकालमे, अनत तीर्थंकर होते आये और वे मोक्षमार्ग का प्रणयन करते आए। आगे अनन्त भविष्यमे भी यही क्रम चलता रहेगा। अत इस दृष्टिमे वेद (ज्ञान) अनादि है उसी सनातन ज्ञानको यहा दिखाया जाता है। "सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग." । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र—इन तीनोंकी एकता मोक्षका मार्ग है।

सत् एक अखण्ड होता है और उसकी पर्याय भी एक समयमे एक होती, उस सत् के भेद शक्तिके आधारपर होते है और पर्यायके भेद शक्तिकी व्यञ्जनापर होते है। मोक्ष-

मार्गमे भी आत्मा एक है और पर्याय भी एक समयमे एक है। वह पर्याय है निःशंकतापूर्वक ज्ञाता द्रष्टा रहना। इस एक कार्यमे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकता स्पष्ट प्रतीत हो रही हैं। उत्तरोत्तर वह अभेद दृढ होता जाता है। अंतिम मोक्षमार्ग चौदहवें गुणस्थानका अंतिम भाग है। गुणरूपसे अंतिम मोक्षमार्ग १२ वे गुणस्थानका अंतिम भाग है। मोक्षमार्गका प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थानमे पंहुचनेमे पूर्व मिथ्यात्व गुणस्थानका अंतिम भाग है। अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानको छोड कर यदि अन्य गुणस्थान लेता है तो उपशमसम्यक्त्वका गुणस्थान लेता है तो प्राय अविरतसम्यक्त्वनामक चौथा गुणस्थान पाता है। विरला कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ साथ देशव्रत या महाव्रत भी पा लेता है। सर्वत्र जो भी हो दर्शन ज्ञान चारित्रका एकत्व है। जैसे मोक्षमार्गमे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका एकत्व है। वैसे ससारमार्गमे भी देख लो भैया। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रका एकत्व ससारमार्ग है।

मोक्षशास्त्रकी रचनाका आधार और मूल प्रारम्भकर्ता व रचयिताके धर्मवात्सल्यका दिग्दर्शन—

एक कथानकके आधारपर प्रकट रूपमे जो यह पहिला सूत्र कहा गया है उसकी प्रारम्भिक रचना इस रूपमे नही हुई थी और न इस सूत्रकी रचनाका प्रारम्भ उमा स्वामी से हुआ। इसका प्रारम्भ करनेवाला एक भव्य मुमुक्षु श्रावक है। उस मुमुक्षुने एक बार इसका निश्चय करके कि मोक्षमार्गका बताने वाला कमसे कम १ सूत्र बनाकर ही मैं भोजन किया करूंगा। पहिले दिन उसने पहिला सूत्र बनाया 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्गः' कुछ समय पीछे इस श्रावकके घर मुनि आये, श्रावककी गृहिणीने पडगाहन करके आहार दिया। मुनि जब वनको जाने लगे तो उनकी दृष्टि भीतपर लिखे हुए उस सूत्रपर पडी। कुछ सोच कर उसके आदिमे 'सम्यक्' पद और जोड दिया। इस लिए कि दर्शन ज्ञान चारित्र मिथ्या भी होते है, वे मोक्षके मार्ग नही ससारके मार्ग होते है, इसलिये सदिग्ध पदको सुधार देना उचित है—ऐसा सोचकर सूत्रके पहिले सम्यक् लिख दिया। मुनि इसके बाद तपोवनमे चले गये। श्रावक जब घरपर आता है और उसकी दृष्टि उस सूत्रपर पडती है तो अवाक् रह जाता है, गृहिणीसे पूछता है—कोई आया था घरपर ? वह साधुके आने और उन्हे आहार देनेका समाचार कहती है। जिज्ञासु श्रावक निश्चय करता है कि यह उपकृति उन्ही साधुकी है। मुनिगमनकी दिशा मालूम कर शीघ्रतासे खोज करता हुआ मुनिके समीप पहुच जाता है और चरणोमे नम्रीभूत हो निवेदन करता है कि मुने! जिस रचनाको मैंने प्रारंभ किया उसके प्रथम प्रयासमे ही मुझसे भूल हो गई, तब आगे वह रचना ठीक ही होगी

यह कैसे हो सकता है, अत आप ही इसके अधिकारी है और इस ग्रन्थका निर्माण आप ही करनेकी कृपा करे। मुनिने उस भव्यका निवेदन स्वीकार किया और उसकी रचना तत्त्वार्थसूत्रके रूपमें की जो कि हमारे समक्षमे है, और हमारे कल्याणके लिये जो एक अनुपम निधि है अथवा जिन योगियोने सत्य आनन्दका अनुभव किया है उनकी प्राणियोपर दृष्टि होनेपर यह भाव हुए बिना नही रहता है कि ये स्वभावत आनन्दमय ज्ञानमूर्ति निज प्रभुके दर्शन बिना भटक रहे है, ये स्वाधीन शान्तिमार्ग पाये। इस भावनासे आगृहीत पूज्यवाद योगीश्वर ग्रन्थरचना करते हुए सर्व प्रथम एकदम स्पष्ट मोक्षमार्ग बतलाते हैं— "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग"। प्रकरणवश इतना जान लेनेपर हम इस प्रथमसूत्र पर ही विचार करे। सूत्रका शब्दार्थ प्रस्तावनामें प्रकट हो चुका है। यह सूत्र ही ऐसा अद्भुत है कि सूत्र कहना चाहोगे तो पहिले जो कहोगे वह अर्थ ही हो जावेगा।

सम्यग्दर्शनका अन्तर्बाह्य स्वरूप—अब हम सम्यग्दर्शनके बारेमे विशेष विचार करे—जिस स्वरूपसे विशिष्ट जो पदार्थ है उनका उस प्रकार श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह परिभाषा व्यवहारसे है। लेकिन निश्चयका अर्थ भी इसीसे घटित होता है। सत् असत्, नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष और एक-अनेक आदि धर्म विशिष्ट जीव अजीव तत्त्व हैं। उनकी विकारी पर्यायसे आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष मिलकर ७ भी तत्त्व है। उन सातोमे जीव साररूप है, उस जीवमे भी उसका जो निर्विकार शुद्ध चित् भाव हैं, जो आनन्दस्वरूप है वह सार है। उसका श्रद्धान होना, देखना, अनुभवन होना सम्यग्दर्शन है, सम्यक् का सम्यक् दर्शन होना सम्यग्दर्शन है।

पदार्थकी सहज सुन्दरता—प्रत्येक पदार्थ अपने एकत्वनिश्चयमे प्राप्त हो तो सुन्दर है, सम्यक् है। अपने स्वभावके विरुद्धपरके निमित्तको पाकर स्वविभावशक्तिसे जायमान विभावोकी ओर उन्मुखता हुई कि बडे विसवाद बन जाते है। वस्तु अखड एकस्वभावी है। उसकी अनतानत पर्यायोमे भी वह एक स्वभाव सदा अत प्रकाशमान रहता है। इस अशुद्ध ससार अवस्थामे भी तीव्र मिथ्यादृष्टिजीव तक अपने स्वभावके कारण पदार्थोको बहिर्मुखतया भी जाननेसे पहिले आत्मसामान्यका स्पर्श करते है। हा यह बात अवश्य है कि जिसके स्पर्शका यत्न होता है उसे स्पर्श कर भी उसकी सचेतना वहिरात्मा नही करते है। सिद्धान्तशास्त्रोमे यह बिल्कुल स्पष्ट लिखा है कि कुमतिज्ञानसे भी पहिले चक्षुदर्शन होता है। यह दर्शन क्या है ? कही आँखसे देखनेका नाम चक्षुदशन नही है, किन्तु चक्षुरिन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे पहिले जाननेका बल विकसित करनेके अर्थ उपयोग आत्माकी ओर झुकता

है तब जो सामान्य अवलोकन है उसे चक्षुर्दर्शन कहते है। इसी तरह चक्षुको छोडकर अन्य इन्द्रिय व मनके निमित्तसे जायमान ज्ञानसे पहिले जो दर्शन होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं। देखो भैया! आत्मकल्याणके लिये सुविधासामग्री सदा तैयार है, जो भव्य उसका उपयोग करले वह धन्य है। यह चैतन्यस्वभाव जो कि अखड अविनाशी स्वत सिद्ध है वही सुन्दरतम है, सम्यक् है। इस सम्यक् का सम्यक् विधिसे अर्थात् भेद विकल्पोसे निर्णय कर भेदपक्ष छोडकर अभेद दृष्टिके अवलबनके अनतर समस्त दृष्टिपक्षके विकल्पोसे हटकर अभेदानुभव करना सम्यग्दर्शन है। जीवके लिये सम्यग्दर्शनके समान और कोई उपकारी नही है। इसके विना ही वह कुज्ञानी और मिथ्याचारी बना रहता है। इसी लिये समन्तभद्र स्वामी कहते है—न सम्यक्त्वसम किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि। श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम्॥ तीन काल और तीनो लोकोमे सम्यक्त्वके समान कल्याणकारी दूसरा नही और मिथ्यात्वके समान अकल्याणकारी दूसरा नही। यह मिथ्यात्व सम्यग्दर्शनके ठीक विपरीत-रूप होता है। इस सम्यग्दर्शनकी महिमा कहनेमे कोई समर्थ नही है। सम्यक्त्वके बिना पूजा, दान, तप आदि भी वास्तविक नही होते, योग्य नही होते। उन सब अच्छे कार्योंका लक्ष्य संसारकी तरफ चला जाता, विकल्प बाहिरकी तरफ दौडते रहते।

प्राप्त सुविधाके सदुपयोगमे बुद्धिमानी—हमारी प्रारम्भिक निगोद दशा कैसी थी? हमवेचारे थे, असहाय थे। वेचारे अर्थात् जिनका चारा नही, आश्रय नही। ऐसे वेचारे तो हम निगोदमे अथवा उसके ऊपर भी असज्ञी पर्यायोमे ही थे। सज्ञा (मन) होने पर सोचने समझनेकी शक्ति आनेपर वेचारा मन कहाँ रहा? अब तो यथार्थ पुरुषार्थ करनेकी शक्ति इसमे आगई। फिर भी हम वेचारेके वेचारे बने रहे और सम्यक्त्वको जागृत न करें तो यह कितनी भारी भूल होगी? मनुष्य-जन्मकी सफलता अपने स्वरूपको समझनेमे है।

चैतन्य महाप्रभुकी परम करुणा—देखो भैया! निज चैतन्य महाप्रभुकी सत्कृपा—निगोद जैसे दुष्पदमे निकलनेमे चैतन्यभावके सद्विकासका ही तो अनुग्रह है। यह चैतन्य महा-प्रभु जैसे जैसे प्रसन्न होता गया उत्तरोत्तर समृद्धि पाता हुआ आज सैनी पञ्चेन्द्रिय मनुष्यकी दशामे आगया जिसके लिए इन्द्र भी तरसते हैं। यदि अब भी हमने चैतन्यदेवकी भक्ति नही की और विषय कषायकी वृत्तिमे प्रभुपर हमला किया तो हमारी बडी दुर्गति होगी। एक साधु जगलमे बैठे ध्यान कर रहे थे। उनके पास एक चूहा बैठा रहा करता था। अचानक बिलावने उसपर हमला करना चाहा तो झट दयावश साधुने आशीर्वाद दिया "बिडालो भव"। वह बिलाव बन गया। अब बिलावका तो डर न रहा किन्तु कुत्ताने आक्रमण करना चाहा तो आशीर्वाद मिला कि श्वा भव। कुत्ता वन गया। फिर झपटा व्याघ्र, सो कहा

"व्याघ्रो भव"। फिर सिह झपटा तो आशीर्वाद दिया "सिहो भव"। वह चूहा उत्तरोत्तर वृद्धिसे सिह बन गया। अब सिहको लगी भूख, सो साधुको ही सिहने खाना चाहा, तब आशीर्वाद मिला, "पुनर्मूषको भव"। बन्धुवो! इसी प्रकार चैतन्यदेवका आशीर्वाद पाकर यह जीव निगोदसे निकल कर मनुष्य हो गया। यदि वह मनुष्य जिस चैतन्यदेवकी प्रसन्नतासे उन्नत बना, उसी चैतन्यदेवपर आक्रमण करेगा तो झट यही आशीर्वाद मिलेगा कि "पुनर्निगोदो भव" अर्थात् फिर निगोद बन जा।

लब्धियोंका बल—इस मनुष्य-जन्ममे देखो कितनी शक्ति प्रकट हो गई है, विवेक उसके उपयोगका होना चाहिये। चाहे उपयोगको स्वभाव की ओर लगादो, चाहे विषय कषाकी ओर लगा दो। भावनासे ही सब काम होता है। इस मनुष्य—जन्ममे सम्यक्त्व प्राप्त होनेके योग्य क्षयोपशमलब्धि प्राप्त है। क्योकि भला बुरा सोचने समझनेका हममे पर्याप्त ज्ञान है। देशना लब्धि अर्थात् तत्त्वज्ञानीका उपदेश मिलना। वह भी हमारे लिये उपलब्ध है। विशुद्धिलब्धि आत्मपरिणामोकी विशेष निर्मलताको कहते है। यदि हम चाहे तो परिणामोमे कठोरता तीव्रता तामसी वृत्ति न आने दे। परिणामोमे कठोरता रखना या कोमलता रखना यह हमारे हाथकी बात है क्योकि इस लायक़ योग्यता प्रकट होगई। इन तीन लब्धियोकी प्राप्ति हो जानेपर चौथी प्रायोग्यलब्धि होती है। विशुद्धि बढनेपर जब कर्मोंकी लम्बी स्थिति पढना बद हो जाती है और अधिकसे अधिक अन्त कोटाकोटि सागर प्रमाण कर्मोंका स्थितिबध रह जाता है, तब यह विशुद्धि प्रायोग्यलब्धि कहलाती है। इस प्रायोग्यलब्धि—वाला जीव पहिले गुणस्थानसे लेकर छटवे तक बधने योग्य कितने ही कर्मोंका बन्ध नही करता। यद्यपि सम्यक्त्व होजाने पर चौथे, पाचवे और छटवे गुणस्थानमे बधने योग्य उन प्रकृतियोका बन्ध होने लगता है, लेकिन सम्यक्त्वके उन्मुख होनेपर प्रायोग्य लब्धिमें यह बंध नही होता, उतने समयके लिए वह रुक जाता है। जैसे जिस वरकी शादी होती है, उसको विवाह होनेके समय तकके लिए बादशाह मान लिया जाता है। पीछे विवाह हो चुकनेपर फिर वह बादशाहीपन नही रहता। उसी तरह कुछ प्रकृतियोके बंधविचारमे प्रायोग्यलब्धिवाले मिथ्यादृष्टिके अविरत सम्यग्दृष्टि देशविरत या प्रमत्तविरत जैसी बाद—शाहियत समझना चाहिये। इस लब्धिके प्राप्त हो जानेपर जीवके आगे आगे समयमें असख्यातगुणी असख्यातगुणी निर्जरा होने लगती है और बध इसी क्रमसे हीन—हीन।

चौतीस बन्धापसरण—कर्मोंकी स्थिति पल्यके असख्यातवे भाग कम हो होकर पृथक्त्वशतसागर कम हो जाने पर नरक आयुके बंधका होना रुक जाता है उसके बाद की हीन—हीन स्थितियोमें क्रमश. तिर्यञ्च, मनुष्य और देवायुके बंधका अभाव होता है। फिर

नरकगति नरकगत्यानु-पूर्वी इन २ प्रकृतियोका बधव्युच्छेद हो जाता है। पुन सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण इन प्रकृतियोका सम्मिलित बध रुक जाता है। इस प्रायोग्यलब्धिमे ३४ बंधापसरण होते हैं। प्रत्येक बधापसरणमे पृथक्त्वशत सागर स्थिति कम होती है। वह हीनता पल्यके असख्यातवे भाग कम हो होकर होती है। यहा तक ६ बधापसरण हुए। इसी प्रकार ये २८ बधापसरण कहना चाहिये। ७-सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येक, ८-बादर अपर्याप्त साधारण, ९-बादर अपर्याप्त प्रत्येक, १०-द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, ११-त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, १२-चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, १३-असज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, १४-सज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, १५-सूक्ष्म पर्याप्त साधारण, १६-सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक, १७-बादर पर्याप्त साधारण, १८-बादर पर्याप्त प्रत्येक एकेन्द्रिय आताप स्थावर, १९-द्वीन्द्रिय पर्याप्त, २०-त्रीन्द्रिय पर्याप्त, २१-चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त, २२-असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त, २३-तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी उद्योत, २४-नीच गोत्र, २५-अप्रशस्तविहायोगति दुर्भग दु स्वर अनादेय, २६-हुडकसस्थान असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, २७-नपु सकवेद, २८-वामनसस्थान, कीलक सहनन, २९-कुब्जकसस्थान अर्द्धनाराचसंहनन, ३०-स्त्रीवेद, ३१-स्वातिसस्थान नाराचसहन , ३२-न्यग्रोधपरिमडलसस्थान वज्रनाराचसंहनन ३३-मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिकाङ्गोपाङ्ग वज्रवृषभनाराच-संहनन, और ३४ वी बारमे आसाता अरति शोक अस्थिर अशुभ अयश कीर्ति। ये बधापसरणकी प्रकृतिया वे है जो १, २, ४, ६, ७ वें गुणस्थानमे बधसे व्युच्छिन्न होती हैं। यहा विचारिये यह प्रायोग्यलब्धिवाला जीव भी कितना बलिष्ट हो रहा है, सातवें गुणस्थान तक की अनेक प्रकृतियोके बंधको इतने समयके लिए तो हटा ही देता है।

करणलब्धिकी नियामकता—उक्त करामात प्रायोग्यलब्धिमे रहती है। फिर आगे करणलब्धिका प्रारभ होता है, करण नाम निर्मल परिणामोका है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके करणलब्धि प्रथमोपशम-सम्यक्त्वके प्रादुर्भावके लिए होती है। करण ३ होते है—१ अघ करण, २ अपूर्वकरण, ३ अनिवृत्ति करण। अव्यवस्थित परिणाम जब किसी उत्तम व्यवस्थामे आनेको होते है तो एक सदृश व्यवस्थित होनेसे पहिले २ प्रकारकी अवस्थाये होती हैं, वे हैं अध करण और अपूर्वकरण। अध.करणपरिणामवाले जीवोके परिणाम एकही समय अथवा कुछ समय पहिलेके व आगेके समयोमे सदृश अथवा विसदृश होते हैं। अपूर्वकरणपरिणामो मे एक ही समीपवर्ती आत्मावोके परिणाम चाहे सदृश होजावे परन्तु आगे-पीछे के समीपवर्ती आत्मावोके परिणाम अपूर्व ही होते है। अनिवृत्तिकरण परिणाममे एक समयवर्ती आत्मावो के परिणाम एक सदृश ही होते है। लोकमे भी व्यवस्था सम्बन्धी यत्न ऐसा ही देखा जाता है। जैसे अव्यवस्थित घूमने वाले सिपाहियोको कमाण्डर व्यवस्थासेसमीप आनेकी आज्ञा

दे तब वे सिपाही कुछ लाइनमे व कुछ बाहर, इसी प्रकार कुछ बिना पैर मिले व कुछ मिले पैर वाले होते है। दूसरे यत्नमे लाइन एक हो जाती है, परन्तु पैरोका मेल बेमेल बना रहता है। तीसरे यत्नमे सर्वथा व्यवस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार यहां सम्यक्त्वके प्रादुर्भावके लिए जो करणयत्न है उसमे त्रिविधता होती है। इन करणोमे सम्यक्त्वघातक निषेकोके उपशमका यत्न व अन्तरकरण होता है। जिन समयोमे सम्यक्त्व रहेगा उन समयोकी स्थितिका सम्यक्त्वघातक निपेक नही रहता है उस स्थिति वाले निषेकआगाल प्रत्यागालकी विधिसे कुछ पहिले कुछ पश्चात् की स्थिति वाले निषेकोमे पहुंच लेते है।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के प्रारंभमे निर्मलताकी विशेषता—उस समय जीवके भारी निर्मलता रहती है इतनी निर्मलता कि शीघ्र शुद्धि बढे तो अतर्मुहूर्तमे (जिस अतर्मुहूर्तके अवान्तर १४ अन्तर्मुहूर्त १४ तरह के कार्यो के लिए है।) मोक्ष पा सकता है। वे चौदह अन्तर्मुहूर्त चौदह कार्योके लिये इस प्रकार हैं —पहिला अन्तर्मुहूर्त अन्तर करणका, दूसरा उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेका, तीसरा अन्तर्मुहूर्त क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने का, चौथा व ५ वा अन्तर्मुहूर्त अनतानुबन्धीके विसंयोजनका व दर्शनमोहके क्षयका, ६ वां अन्तर्मुहूर्त अप्रमत्तविरत गुणस्थान होने का, ७ वा अन्तर्मुहूर्त प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानोमे अदल बदल होने का, इसमे छोटे-छोटे असंख्यात अन्तर्मुहूर्त है। ८ वाँ अन्तर्मुहूर्त अध करणका, ९ वां अन्तर्मुहूर्त अपूर्वकरणका, १० वा अन्तर्मुहूर्त अनिवृत्तिकरणका, ११ वां अंतर्मुहूर्त सूक्षम साम्परायका, १२ वाँ अंतर्मुहूर्त क्षीणमोहका, १३ वा अंतर्मुहूर्त सयोग केवली होनेका, चौदहवा अतर्मुहूर्त अयोगकेवली होकर सिद्ध होने का है। इन १४ अंतर्मुहूर्तोका काल बहुत थोडा है। सबका समय मिलकर भी अतर्मुहूर्त ही होता है। क्योकि अतर्मुहूर्तके अगणित भेद है। इस तरह सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेपर मोक्ष प्राप्त होनेमे देर नही लगती यह स्पष्ट हुआ। यदि विलम्ब भी हो तो कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालसे अधिक विलम्ब तो हो ही नही सकता।

सम्यक्त्वमे लक्ष्यभूत तत्त्वकी मीमासा—(१) आत्मश्रद्धाको सम्यग्दर्शन, (२) आत्मज्ञानको सम्यग्ज्ञान और (३) आत्मलीनताको सम्यक्चारित्र कहते हैं। व्यवहारसे सात तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन, ७ तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान सम्यग्ज्ञान और पाप-निवृत्तिको सम्यक्चारित्र कहते है। सम्यक्त्वभावको निमित्त तीन स्थितियां हैं—(१) अनतानुबधी क्रोध, मान, माया लोभ व मिथ्यात्व—इन पाच प्रकृतियोंका उपशम तथा वेदक

योग्य सादिमिथ्यादृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिलकर ७ प्रकृतियोका उपशम है (२) इन्ही ७ का क्षयोपशम व (३) व इन्ही ७ का क्षय है सो क्षय तो वेदकसम्यग्दृष्टि ही करता है। उपशम व क्षयोपशमको मिथ्यादृष्टि कर लेता है। क्षयोपशमसम्यक्त्वको उपशमसम्यग्दृष्टि भी करता है। प्रकृतियोके उपशमादिका निमित्त है अखड चैतन्य स्वभाव-का ध्यान। इस ध्यानके लिये आवश्यक है तत्त्वाभ्यास। तत्त्वाभ्यासके लिये द्रव्य, गुण, पर्यायोकी समस्या अच्छी तरहसे हल कर लेना चाहिये। द्रव्य सत्स्वरूप, स्वत सिद्ध, अनादिनिधन, स्वसहाय व अखण्ड होता है। जो कुछ दीखता है उसके खड-खड हो जाते हैं वह द्रव्य नही, उनमे अविभागी जो एकप्रदेशी सत् है वह द्रव्य है। आत्मा तो हमारा आपका सबका एक-एक अखड है वह द्रव्य है। इसी तरह एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असख्यात कालाणु एक-एक ये सब द्रव्य हैं। द्रव्य, अनतशक्त्यात्मक होता है, एक-एक शक्तिका नाम एक-एक गुण है, उन सब गुणोसे पर्यायें उत्पन्न होती हैं। यहा जीवका निमित्त पाकर अजीव कर्ममे व अजीव कर्मका बनिष्ट संयोग विपाकका या अभावका निमित्त पाकर जीवमे कई अवस्थायें होगई हैं, वे सक्षेपमे ५ हैं—आस्रव, बंध, सवर, निर्जरा व मोक्ष। आस्रव जिन प्रकृतियोका हुआ है वे पुण्यपापके भेदसे २ प्रकारके हैं, तथा जीव व अजीवकी अपेक्षा २ मूलद्रव्य है इस प्रकार सब तत्त्व ९ हुए। इन भेदो-विकल्पोका यथार्थ ज्ञान करके पर्यायो को पर्यायोके स्रोत मूलद्रव्यके उन्मुख करे, निमित्तकी दृष्टिका उपयोग न करे, तब पर्यायें विलीन होकर एक मात्र द्रव्यदृष्टि रहेगी, वहां भी निश्चयपक्ष छोडकर अत्यत निष्पक्ष होता हुआ स्वभावका अनुभव करे। सर्व भेद विकल्पोको छोडकर अभेदस्वभावमे स्थिर रहे। यहीकल्याणका अमोघ उपाय है।

सम्यक्त्वका अन्यगुणोसे भेद व अभेद—ये तीनो सम्यक्त्व ज्ञान तथा चारित्रसे निजस्वरूप और नाम आदिकी अपेक्षासे भिन्न-भिन्न है, किन्तु अमूर्त आत्माके असख्यात प्रदेशोमे एकमेक होकर रहते इसलिये अभिन्न है। आजकल का राष्ट्रध्वज भी जैन सिद्धातके अनुरूप है। राष्ट्रीय तिरगा झन्डामे रत्नत्रयकी कल्पना घटित होती है। साहित्यकार रुचिका वर्णन पीले रगसे करते है। और, जैनधर्ममे रुचिको सम्यग्दर्शन कहते है। हरा रग हरे-भरेपन का द्योतक है, यह सम्यक् चारित्रको बतलाता है, क्योकि उससे शुद्ध आत्मपर्यायकी उत्पत्ति होती है। और ज्ञानका वर्णन सफेद रगसे किया जाता है, तब सफेद रग सम्यग्ज्ञानका प्रतीक हुआ। इस तरह रत्नत्रयका प्रतीक, पीला, हरा और सफेद रग वाला तिरगा झन्डा (राष्ट्रीय झडा) है। उसमे जो चक्रका चिन्ह है उसमे २४ आरे रहते जिनका अर्थ होता है कि उस मोक्षमार्गरूप रत्नत्रयको २४ तीर्थंकरोने प्रकट किया है।

तिरगा झडा २४ तीर्थंकरो द्वारा प्ररूपित, प्रदर्शित आत्माके रत्नत्रय–धर्मको या कहिये मोक्षमार्गको स्मरण कराता है। हमको उस मोक्षमार्गमे अपना पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिये। इस भवसे नही तो अगले भवोसे हम मोक्ष पानेके अधिकारी हो जावे। मनुष्य–जीवनमे यह सबसे वडा काम है।

आत्मपौरुष करनेका स्मरण:— कोई कहे कि इस कालमे तो मोक्ष होता नही है, फिर उसके लिये प्रयत्न क्यो किया जाय ? तो उत्तर है कि भाई ! यदि तुझे मोक्षकी चाह है तो उस मार्गमे लग जाना ही एक तेरा कर्तव्य है। अब नही तो तब, मोक्ष होकर ही रहेगा। यदि तुझे आज ही कुछ दिनो या वर्षोंमे मोक्ष मिले, तभी तू उसके लिये प्रयत्न करेगा, नही तो नही, तो यह तेरी आत्मवचना है, वहाना है। तू आत्मकर्तव्यसे पीछे हटनेके लिये झूठी दलील चलाना चाहता है और फिर यह भी तो सोच कि वड़े बडे महापुरुषोको भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बाद मोक्ष पा लेनेमे कितना समय लगा है ? सभी जीवोको तो अतर्मुहूर्तने मोक्ष नही हो जाता' अरबों-खरबो वर्ष तक इसकी साधनामे बीत जाते हैं। ऋषभदेव भगवानको कुछ कम १ लाख पूर्व अर्थात् हजारो अरब वर्ष लग गया। तू तो उनसे जल्दी भी जा सकता है। यहा से मरकर विदेहमे उत्पन्न होकर तो ८–९ वर्षमे ही सिद्ध बन सकता है। हा, कमी यह है कि मरते समय हमारे सम्यक्त्व रहे तो विदेहमे नही पैदा हो सकते। उस विदेहकी भी चिन्ता हटावो। सम्यक्त्वका वियोग मत होओ तू भव को मत देख। देख भव रहित निज चैतन्य स्वभावको, आत्म सतोष और धैर्यपूर्वक मोक्षपथमे चलते रहनेके लिये ज्ञानवृत्ति रूप उद्यम कर, तू भवको मत देख। यदि स्वभावकी ओर उपयोग हो तो तुमही वतावो क्या भवका उपयोग रहता है ? स्वभाव तो शुद्ध अशुद्ध सभी पर्यायोसे विलक्षण एक केवल शुद्ध है। स्वभावमे भव कहा हैं ? देखो–देखो, स्वभावमे बडी महिमा है तभी तो इसके आश्रयसे इसका धनी महान् बन जाता है। स्वभाव अखड है तभी तो अखडके आश्रय से अन्तमे ज्ञान त्रिलोक, त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थोका अखड ज्ञाता हो जाता है। स्वभाव निर्विकल्प है तभी तो स्वभावके आश्रयसे इसका धनी निर्विकल्प हो जाता है। स्वभाव अवि-ाशी है तभी तो इसके आश्रयसे इसका धनी विषम पर्याय के अभाव रूप अविनाशी एक समान पर्यायोके अविनश्वर प्रवाह रूप अविनाशी पदको प्रकट कर लेता है। अहो ! बडे बडे योगीन्द्रोने भी मात्र एक आत्मस्वभावकी उपासना की। यह बात तो बिल्कुल पूर्ण प्रकट है, साई समे उत्तीर्ण निसदेह बात है। मित्रो ! एक इस ही ज्ञानस्वभाव का, चैतन्यस्वभावका आश्रय लो, फिर मुक्ति हस्तगत ही है। भले ही कुछ समय और लग जावे, परन्तु विचारों तो सही, अनन्तानन्त कालके सामने असख्यात भी समय क्या चीज है ?

ममता का अर्थ भगवान आत्मदेव पर अन्याय—एक सच्ची कहानी है सुनिये—एक तपस्वी पलाश वृक्षके नीचे ध्यान लगाये थे। एक श्रावक भक्त आया, मुनिका ध्यान टूटा। धर्मकथा हुई। श्रावक भगवानके समवशरणमे जा रहा था। वहा मुनिसे बिदा माग चलने लगा। मुनिने कहा, मेरे संसारके कितने भव बाकी है, मेरा मोक्ष कब होगा ? भगवानसे पूछना। श्रावक भगवानके समवशरणमे गया। तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और मुनिके संसारी भवोको भी मालूम किया। वापिस समवशरण से आया तो इसी बीच मुनिराज पलाश वृक्षके नीचेसे उठकर इमलीके वृक्षके नीचे पहुच गये। श्रावक मुनिको इमलीके वृक्षके नीचे बैठा देख खिन्न होता है। मुनि पूछते है क्या कारण है ? दुख मनानेका। श्रावक बोलता है कि महाराज! भगवानने अपनी दिव्य वाणीमे आपके प्रश्नका उत्तर दिया है कि आप जिस वृक्षके नाचे बैठे हैं उतने ही भव बाकी है। इस बातसे मुझे खुशी होगई थी क्योंकि आप उस समय पलाश वृक्षके नीचे बैठे थे, जिसमे कि इनेगिने पत्ते थे। लेकिन अब आप इमलीके नीचे बैठे हैं। जिसके पत्तोकी गणना करना कठिन है। इसी बातको विचारकर मनमे क्लेश हो रहा है कि अभी आपके इतने अधिक भव ससारके पडे हैं। मुनि खुश होते हैं और श्रावकको समझाते हैं कि इसमे अप्रसन्न होनेकी बात नही, खुशी मनानेकी बात है। अनादि से कितने भव बीते सो क्या पता ? अब यह तो निश्चय होगया कि इतने ही भव शेष है अधिक नही। और भैया देखो इतने ही भव थोडे कालमें निकल सकते है। एक अन्तर्मुहूर्त मे ६६३३६ भवोसे निपट लिया जाता है। अब मुमुक्षु को मोक्षमार्गमे प्रयत्न करनेकी सच्ची प्रेरणा हासिल करना चाहिये, घबडाहटका तो कुछ काम भी नही। मोक्ष मार्गमे भी सम्यग्दर्शन जो खास महत्त्व रखता है, इसकी प्राप्तिके लिये कमर कस लेना चाहिये। जीव और शरीरका भेद विज्ञान और फिर आत्मस्वरूपका अनुभव जिस किसी तरह करनेकी चेष्टा पूरी-पूरी करना चाहिये। तब ही पुरुषार्थी कहलाओगे।

निर्मल पर्यायका साधन—आत्माकाधर्म चैतन्य स्वभाव है जो न मलिन है, न विमल है किन्तु अपने स्वभावसे ही सदा एक स्वभाव सर्वचिद्वृत्तियो का स्रोत है। उसकी दृष्टिसे कार्यधर्म होता है। करणधर्मकी दृष्टि अथवा उपादत्ति बिना कार्यधर्म होता नही है। यह कार्यधर्म न पापवृत्तियोसे प्रकट होता है और न पुण्यवृत्तियो से। किसी भी विचारसे धर्म प्रकट नही होता। सनातन निर्मल स्वभावकी दृष्टि व उपादत्तिसे निर्मल पर्याय प्रकट होती है। निर्मल पर्याय आकुलता अनुभवसे रहित पूर्ण सुखमय होती है। अत सुख

प्राप्तिके अर्थ अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभावमय निज सहजसिद्ध भगवानके दर्शन करना चाहिये ।

मोक्षमार्गके नायक का अभिवन्दन— इस शास्त्रके मगलाचरणका अर्थ है–मोक्षमार्ग के नेताको, कर्मपहाडो के भेदने वालेको, समस्त तत्त्वोके जानने वाले को उन गुणो की शक्ति के लिए नमस्कार करता हू । इन तीन विशेषणो मे तीन बाते आयी–हितोपदेशी वीतराग और सर्वज्ञ । मोक्षमार्ग के नेता है. इसका अर्थ है कि हितोपदेश करते हैं, नेता उपदेशक ही तो होता है । जो खुद चले और दूसरों को सन्मार्गमे ले जाय उसे कहते है नेता । नेता का अर्थ है ले जाने वाला । ले जाने की बात तब ही होती है जब स्वयं पहुंच जाय, सो वे स्वय पहुच चुके और दूसरो को भी पहुंवाते है । यहाँ मोक्षमार्ग के नेता का क्यो पहिले शब्दमे स्मरण किया है । यो कि जिस ग्रन्थ का प्रारम्भ किया जा रहा है वह मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने वाला है । सो इस शास्त्र के मूल प्रणेता के प्रति कृतज्ञता हो और शास्त्र की प्रमाणिकता जाहिर हो । मोक्षमार्ग का नेता वही हो सकता जो कर्मपहाड का भेदनहार है । और जो समस्त तत्त्वो का जाननहार हो । ये तीनों विशेषण परस्पर एक दूसरे के पोषक है । इनमे परस्पर कारण कार्य भाव लगाया जा सकता है । मोक्षमार्गका नेता है, कर्मभूभृतका भेत्ता है, विश्वतत्त्व का ज्ञाता है, विश्वतत्त्वका ज्ञाता कर्म के भेदन बिना नही हो सकता । इसलिए कर्मभूभृत का भेत्ता यह विशेषण बीचमे दिया हुआ है । इसका प्रभाव पहिले विशेषण पर भी है और तृतीय विशेषण पर भी है । वन्दना करने वाला भव्य पुरुष इसमे अपना प्रयोजन दिखाता है कि उन गुणो की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हू । जो प्रभु के गुण है वे गुण मुझमे आ जाये । यहा स्वरूप दृष्टिसे बात समझिये जो प्रभुके गुण है वे मेरे मे कैसे आ सकते ? वे तो प्रभु मे ही है, लेकिन गुणत्व सामान्यकी दृष्टि से गुण गुण एक चीज है । वे गुण मुझे मिले, उनके गुण मुझे मिले, यह बात नही कही जा रही है । और यदि ऐसा भी कहा जाय तो गुणस्वरूपकी दृष्टिसे अर्थ लगाता है । यह मगलाचरण सूत्रकारका है या नही, इस विषयमे कई धाराये चल रही है चर्चा की । कुछ का मतव्य है कि यह तत्त्वार्थसूत्रकर्ता श्री उमा स्वामी के द्वारा किया गया मगला चरण नही है । कुछ का अभिप्राय है कि उनके द्वारा किया गया मगलाचरण है । कुछ भी हो लेकिन इस मगलाचरण का इतना अधिक महत्त्व है कि इस मगलाचरण का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विद्यानन्द स्वामी ने एक आप्त परीक्षा नामका स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है । वह एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमे समस्त विवेचन किया गया कि यह ही भगवान क्यो मोक्षमार्ग के नेता है, अन्य क्यो नही है ? एक दार्शनिक विधि से सब मतो

का विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया कि मोक्षमार्ग के प्रणेता ये ही जिनेन्द्र देव है। खूब युक्तियो से परीक्षा कर सिद्ध किया गया है आप्तपना, तभी तो उस ग्रन्थ का नाम ही आप्त परीक्षा है। आप्त कहते है पहुचे हुए को। जैसे व्यवहार मे कहते है कि यह तो पहुंचा हुआ पुरुष है, अर्थात यह पुरुष प्रमाणिक है, उस मे रच भी सदेह नही है।

ग्रन्थके आदिमे प्रभुस्तवनका प्रयोजन ग्रन्थकी प्रामाणिकता का व ग्रन्थकर्त्ता की कृतज्ञताका प्रकाश—आप्तका स्तवन, स्मरण पहिले इस कारण किया जाता है कि सुनने वालो के चित्त मे यह तथ्य आये कि यह ग्रन्थ प्रमाणीक हैं यह आप्तमूलक ग्रन्थ हैं यह यो ही अटपट नही रचा गया, किन्तु सर्वज्ञदेवकी परम्परा का यह वचन है। जिसका स्तवन किया जाता है उस नामसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है। किसी के चित्त मे यह शका हो सकती है कि एकदम किसी बातको सुनने से पहिले कैसे कह दिया कि यह प्रामाणिक है। अच्छा मूल से विचार चलाइये। और परखिये कि आखिर ये वचन ये वाक्य प्रमाणीक है या नही। देखिये वचन, वाक्य शब्दविन्यासपूर्वक हुआ करते है। इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि किसीके द्वारा यह रचा गया है, उसमे वाक्य हैं। वचन हैं, यह है तो उससे यह साबित होता है कि इसका कोई रचने वाला जरूर है। देखो बात बात मे अनेक बाते घटती हैं, तो कहेगे कि यह बात तो बिल्कुल सत्य है कि जहा शब्दविन्यास है उसका कोई बनाने वाला जरूर है, लेकिन एक सिद्धान्त ऐसा है कि जिनका मतव्य है कि शब्द तो बनाये ही नही जाते। शब्दोको उत्पन्न नही किया जाता। किन्तु शब्द ससारमे, आकाशमे सर्वत्र पहिले से ही भरे पडे है। वह तो आकाशका गुण है, पौद्गोलिक भाषावर्गणाका गुण नही, ऐसा वे मानते हैं। तब फिर वे शब्द कैसे निकलते हैं। इसका समाधान उन दार्शनिकोके यहा क्या दिया है ? ये ओठ, तालू आदिक के प्रयोगसे ये शब्द व्यक्त होते है, उत्पन्न नही होते। जैसे किसी कमरेमे बहुतसी चीजे रखी है और उनपर कपडा डाल दिया गया तो कपडा उघाडनेसे कही चीजे नही बनती, किन्तु बनी बनाई चीजें प्रकट हो जाती है, ऐसे सिद्धान्त के भी लोग है। तो उनसे भी प्रथय सन्तोष कराना होगा। उन्हे समझाना होगा कि देखो भाई ओठ, तालू आदिकके व्यापारका निमित्त पाकर शब्दवर्गणाये उत्पन्न होती है, पहिले से बनी हुई प्रकट नही होती। उसकी अनेक युक्तिया है जिनका दार्शनिक शास्त्रसे सम्बन्ध है, उन्हे समझाना चाहिए। भैया एक इस तरह का भाव लेकर इस शास्त्रका प्रसग सुनो कि यह शास्त्र सबका है, सबके लिए है, सबको समझाया जा रहा है, इसके सम्बन्धमे प्रत्येक व्यक्तिका अधिकार है कि वह शका कर सके, प्रश्न कर सके। चाहे किसी भी सम्प्रदाय का हो,

यह शास्त्र सबके लिए हितकारी है, तो इसपर सबका अधिकार है। कोई पुरुष यो समस्या ला सकता है कि जब यह शब्द रचना है, उस शब्दरचनाका बनाने वाला कोई पुरुष है और जो पुरुष उस शब्दरचना को बना रहा होगा वह आप्त ही है, सर्वज्ञ नही है। भगवान कही कलम दावात लेकर अक्षर नही बनाया करते अक्षरो का बनाने वाला तो कोई छद्मस्थ ही होगा कैसे हम माने कि जो कुछ इसमे कहा जा रहा है वह प्रमाणीक है। तो इस बातसे समझना चाहिये कि यद्यपि इस ग्रन्थके कर्ता सर्वज्ञ नही थे, उमा स्वामी महाराज सर्वज्ञ न थे, लेकिन उनकी जो वाणी निकली, उनकी जो लेखनी चली वह उस परम्परा के वाक्य अर्थ मे ही बताने वाली हुई, जो आप्त सर्वज्ञ देव की दिव्यध्वनि मे मूल उपदेशमे था उसीका यह अश व्यक्त किया गया तो मूल वक्ता आप्त है। युक्तियो से भी थोडा बात चित्तमे लाये कि कैसे माने जावे कि ये वचन आप्त वचन है जिनका कि सर्वज्ञदेवके उपदेश को परम्परा का व्याखयान कहा जाय। तो सुनिये–युक्ति और आगम से जिनमे विरोध न आये, समझिये कि वह सर्वज्ञ परम्पराका ही व्याख्यान है। इसका बहुत विवरण करने के लिए पहिले कुछ दार्शनिक विषय भी आना पडेगा, जो कि कुछ कठिन भी होगा और परीक्षामुखसूत्र, आप्त भी मासा मे तो इसका स्पष्ट विवेचन है। अनुभव भी बताता है कि इसमे कोई विरोध नही है। ये आप्त वचन है इसलिए प्रमाणीक है। अच्छा, यह समझा कि इन आचार्य सतोने अपने पूर्वज गुरु परम्परा से इसका व्याख्यान किया, लेकिन गणधरदेव है, श्रुतकेवली है, उन्होने भी तो कुछ रचना की है, तो उनकी जो ग्रन्थरचना है वह तो उनकी स्वयकी अपने आपकी है, उसे कैसे प्रमाणीक माना जा सकता ? वह तो अप्रमाण हो जायगी, इन आचार्यजनो ने तो परम्परा लिया तो इसका भी समाधान समझिये कि इनकी भी स्वतंत्र रचना नही, किन्तु सर्वज्ञदेवकी व्याख्यान परम्परा का ही सूचक है मतलब यह है कि जो व्याख्यान इस महाशास्त्रामे होगा वह सब प्रमाणीक है, सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनिकी परम्परासे चला आया है, इसलिए इसपर कुछ आस्था रख- कर सुननेके लिए तैयार होना चाहिए।

आप्तमूलकता होनेसे ग्रन्थमे प्रमाणिकताकी प्रसिद्धि—कोई यह नही कह सकता कि क्या जरूरत है यह कहनेकी कि यह ग्रन्थ सर्वज्ञदेवकी परम्परा से है, आप्तमूलक है। अरे यह ग्रन्थ अपौरुषेय है ऐसा कह दो, किसीने बताया ही नही है। कर्ताका नाम ही क्यों लिया जाता ? प्रमाणीकता आ जायगी। जैसे कुछ लोगोने माना कि ये शास्त्र आकाशसे उतरे, अथवा अनादि से ही चले आ रहे है, ऐसे अपौरुषय मानकर भी तो प्रमाणीकताका

काम चल सकता है। इसके समाधानमे युक्तिसे सोचो कि यदि अपौरुषेय हो आगम, इसका मूल प्रणेता कोई नही है, चला आ रहा है अनादिसे तो आप बतलावो कि आगम जो है सो है, इसके शब्द स्वय दूसरोको अर्थ वता सकते है क्या ? स्वय शब्द अर्थ नही बताया करते कि लो सुनो कि हमारा अर्थ यह है इसतरह क्या शब्द दूसरो को अर्थ बता सकेंगे ? अगर शब्द अर्थ वताते होते तो जिनको सकेत नही मालूम वे भी शब्दका अर्थ समझते। पर यह बात तो है नही कि शब्द खुद अर्थ बता दे। उन शब्दोका अर्थ बताने वाला कोई पुरुष जरूर होना चाहिए, जिसे कहेगे व्याख्याता, भाषणकर्ता। जो भाषण करने वाला है, शब्दोके अर्थको स्पष्ट करने वाला है वह पुरुष सर्वज्ञ है या असवज्ञ ? पहिले यह बात वताओ। अगर कहा जाय कि सर्वज्ञ है तो यह आगम सर्वज्ञके आधीत हो गया। वह तो सबको जानने वाला है। आगमके आधीन व्याख्याता नही रहा, और, जब सर्वज्ञ व्याख्याता माना तो आगमको अपौरुषेय मानकर प्रमाण माननेकी बात क्यो सोचता ? सर्वज्ञ है, उसका व्याख्यान है, वह स्वत. प्रमाण है, कहो कि आगमका भाषण करने वाला रागी है, छद्मस्थ है तो उसकी वातका क्या अर्थ लगाया जाय ? वह तो अनेक अर्थ लगायेगा। जब तक मूल प्रणेता वक्ता सर्वज्ञ न हो तव तक उस सतानकी परम्परामे प्रमाणता नही आ सकती। तो यह मानना होगा कि जो भी इस महाशास्त्रमे कहा जा रहा है वह सब वही कहा जा रहा है जो तीर्थकरो के समयमे व्याख्यान हुआ था और चर्चा हुई थी उस परम्परा का व्यच्छेद नही हुआ है। कैसे जानें कि वह परम्परा है ? देखो बहुत सी बातें तो यहा परम्परासे जानते ही हो। आप लोग खण्डेलवाल हैं, अग्रवाल आदि है ? या जो भी जिसका गोत्र है, कैसे समझा कि बराबर चला आ रहा है। देख रहे है। १०० वर्ष पहिले की वात तो नही जानते, लेकिन उपदेश द्वारा चला आ रहा है, समझते चले आ रहे है, जान रहे है कि यह गोत्र है। फिर कुछ लिखा हुआ भी चला आ रहा। उन्होने उन्हे बताया, उन्होने अपने पुत्रोको बताया, लो इस परम्परासे जो आप जान रहे है कि यह गोत्र चल रहा है, इसमे कोई शका भी करता है क्या ? एक मामूली लोकव्यवहारमे ही जव एक विश्वास देखा जा रहा है तो जो वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध नही है, और बडे-बडे पुराण ऋषी मतो के आदान प्रदानकी परम्परा से चले आ रहे है, उनमे कैसे शका की जा सकती है ? देखो प्रत्यक्षज्ञानी तो स्पष्ट जान जाते है, और जो विशिष्ट ज्ञानी है वे कुछ अनुमान से, कुछ उपदेश परम्परा से समझ लेते है। तो सव हमको वल दे रहे है ये प्रमाण कि यह जो सम्प्रदाय है वीतराग शासन का, यह अनवच्छिन्न धारासे ज्यो का त्यो

चला आ रहा है ।

मोक्षशास्त्रकी सूत्र रूपता—अब वर्तमान इस महाशास्त्रके विषयमे थोड़ी सी आवश्यक जानने योग्य बात देखिये इसे कहा गया है सूत्र । सूत्रका अर्थ है जिसमे युक्तियां हो, सत्य अर्थका जो प्रतिपादन करता हो और थोडे शब्दो मे कहा गया हो वह सूत्र कहलाता है । यह सूत्र है, सयुक्तिक हैं, शुद्ध अर्थका प्रतिपादक है, यह कैसे समझा जाय जिससे इसको सूत्र मान लिया जाय ? तो स्पष्ट प्रमाण यह है कि देखो यहा बाधा देने वाली कोई प्रमाणकी बात नही आती, कोई बाधक प्रमाण नही मालूम होता । विचार करनेपर जो शास्त्रमे प्रवेश करेगे या जिन्होने किया है उनको स्पष्ट है कि शास्त्रमे बहुत युक्तिपूर्ण वर्णन है । कई बातें बहुत सूक्ष्म होती है, वह तुरन्त प्रमाण मे नही आती, लेकिन कोई समय उसको प्रमाणीक प्रसिद्ध कर देता है । जैसे परमाणुका कथन जो साधारणजनो के विश्वासके लायक नही बनता है कि क्या कोई ऐसा परमाणु जो अत्यन्त सूक्ष्म है लेकिन आजके वैज्ञानिक चाहे वे परमाणु तक नही पहुचे, लेकिन इतने सूक्ष्म स्कधतक पहुचे जिसका वे ऋणु नामसे प्रयोग करते है और उसमे इस दृष्टिसे निरखते हैं कि एक एक जो इनर्जी है वह एक-एक यूनिट है । एक-एक गुणको द्रव्य माना । विशेषबात की तरह । इसकी खोज मे भी वे उतरने चले है । शब्दोको बताया जाता था कि वे पौद्गलिक है, जबकि कुछ दार्शनिको की मान्यता थी कि शब्द तो आकाशका गुण है । देखिये—दार्शनिक लोग कुछ न कुछ अपनी बुद्धि लगाकर ही बोलते है । आजके समयमे भी कुछ ऐसा लग रहा होगा कि जब रेडियो बोलता है और आकाशमे ही पकडकर बोलते है तो लगता है कि शब्द कहाँ से आये । आकाशसे ही तो आये ? लेकिन एक दृष्टि और दीजिए । शब्दोको पकड़ लेना, शब्दोको उसमे ढाके रहना और जब चाहे सूई लगाकर उसे प्रकट करना, उसे पकडना, ढाकना, छेडना, निवारण करना यह बात तब ही सम्भव हो सकती हे जब कि शब्द भूतिक हो, पौद्गलिक हो । तो ऐसी अनेक बाते जो सन्देहमे पडी थी उन्हे आजके वैज्ञानिकोने बहुत कुछ सिद्ध करके बता दिया । तो ऐसी ही जो और-और भी सूक्ष्म बाते है वे चाहे आज प्रमाणमे तो नही आये, लेकिन कभी वे स्पष्ट प्रमाणीकतामे आ जाती है । और, सबसे बडी बात एक यह है कि जो जो विषय युक्तिमे उतर सकते है-जैसे जीव, अजीव आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष पुण्य और पाप आदिक ७ तत्त्व ९ पदार्थ थे युक्तिमे उतरते है, और इनमे जब रंच भी कही विरोध नही है तो ऐसे सूक्ष्म तत्त्व का विवेचन करने वाले वीतराग ऋषी सतोके जितने भी और वचन है वे सब भी प्रमाणीक है, अपने आप यह आस्था बन जाती है । तो इस

मोक्ष शास्त्रके बारेमें यह शास्त्र है, सूत्र है, यह कैसे जाना ? तो पहिले इसका प्रथम सूत्र ही देखिये "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः":—यह जो प्रथम सूत्र है, समस्त मोक्ष-शास्त्र के सारे सूत्र एक इस सूत्रके ही पोषणके लिए बनाये गए हैं। दसों अध्यायों में जितने भी सूत्र हैं, चाहे विग्रह गतिका वर्णन करें, चाहे नरक स्वर्ग का वर्णन करें सभी सूत्रोका प्रयोजन यही है जो यह सिद्ध करता है कि जो प्रथम सूत्रमे कहा वह वास्तविक बात है। तो देखिये कैसा पुष्ट आधार है कि जो वचन आये उन ही वचनोंके पोषण के लिए समस्त अध्यायोके सूत्र हैं। तो जो समस्त शास्त्र वाक्योका एक प्रतिनिधि रूप हो ऐसे सूत्रको हम कैसे सूत्र न कहेंगे ?

जिज्ञासुता और वक्तृता का योग—अब इस शास्त्रनिर्माण विषयक एक सम्बन्धकी बात देखिये जब कभी भी व्याख्यान होता है तो उसमे दो का सम्पर्क रहता है वक्ता और जिज्ञासु। वक्ता प्रमाणीक न हो अथवा जिज्ञासु न हो तो शास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती। यह तो यहा की बात है। समवशरण मे भी जब तक गणधरदेव न उपस्थित हों तब तक भगवानकी दिव्यध्वनि नही खिरती। एक कथन आया है ना कि जब तक मुख्य गणधर नही थे तब तक महावीर स्वामी की ध्वनि नहीं खिरी, तो एक ऐसा योग है। जिज्ञासु न हो, जाननेकी इच्छा रखने वाला किसी भी प्रकार कोई न हो तो वक्ता कुछ बोलेगा तो समझना कि वह उसका अविवेक है। कोई समझना ही नही चाहता है और वक्ता जबरदस्ती बोल रहा है तो इसका क्या अर्थ है ? जिज्ञासु और वक्ता इन दोनोके मेल होने से व्याख्यानकी प्रवृत्ति चलती है। जैसे समवशरणमे तीर्थंकर और गणधर, तो इसीप्रकार यह महाशास्त्र जो रचा गया है उसमे वक्ता तो हुए उमास्वामी महाराज और जिज्ञासु हुए उनकी बुद्धिमे आये हुए थे समस्त भव्यजन, अथवा इसकी एक कथा भी है कि जिसको समझानेके लिए इस महा-शास्त्रकी रचना की गई है। तो किसीको जिज्ञासा होती है, तब तो ज्ञानपूर्वक शास्त्रकी प्रवृत्ति होती है। जिज्ञासाके बिना शास्त्रकी प्रवृत्ति नही होती। लेकिन इस जिज्ञासाके सम्बन्धमे ही अनेक दार्शनिकोमे अनेक मत है। किसीका सिद्धान्त है कि जाननेकी इच्छा प्रकृतिको होती है। देखो उपदेश तो दिया गया आत्माको और इच्छा जगी प्रकृतिको, किसीका मतव्य है कि ज्ञानके योगसे आत्मा ज्ञानी बनता है। आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप नही है, तो उसकी इच्छा भी कोई ज्ञानका सम्बन्ध होने से ही बनती है। स्वय आत्मा जिज्ञासु नही है, तो किसीका इसी विषय मे विवाद है, तो जब इस सूत्रको भली भाति समझा जायगा तो यह विवाद भी अपने आप मिट जायगा। क्या है दर्शन, क्या है ज्ञान, क्या है

चारित्र ? इसका विवेचन होने से अनेक समस्याये अपने आप दूर हो जायेगी। तो यह शास्त्र एक मोक्षमार्गका प्रकट करने वाला है और मोक्षमार्ग की व्याख्यामे जिज्ञासु तो हैं भव्य जीव और मूल वक्ता है सर्वज्ञदेव। उस परम्परासे भव्यो के कल्याणके लिए इस शास्त्रका अवतार हुआ है।

मूलसंकटहारी तत्त्वार्थशास्त्रकी अभ्यहेता—जैन सिद्धान्त के ग्रन्थोमे मोक्षशास्त्र ग्रन्थकी बडी महिमा प्रकट है, जिसे तत्त्वार्थसूत्र भी बोलते है। कई जगह तो दैनिक कार्य-क्रमोमे तात्वार्थ सूत्रका पाठ भी किया जाता है उसमे किसका वर्णन है ? संसारके जीव ससारके सकटोमे छूटे, उस उपायका वर्णन है। हम आप लोगोको सकट लगा है तो बस एक जन्म मरणका। देखिये जीवनमे किसी भी बातका सकट मत मानो ये हजारो ऊपरी बाते भिन्न है, बेकार हैं और अपनी आत्माको दुखी बनाती है। किसीका वियोग हो गया तो, धन सम्पदामे कुछ क्षति हुई तो, या अन्य कोई बात प्रतिकूल बनगई तो यह कोई सकट नही है। इसे सकट संज्ञा मत दीजिए, इसके ज्ञाता दृष्टा रहो। हो रहा है देख लो यह भी हो गया जो हो रहा है वह सब कर्मकी माया है, कर्मकी लीला है। उसके ज्ञाता दृष्टा रहो। अपना खास सकट यह समझिये कि हमे जन्म मरण करना पड रहा है। यहा के अन्य सकट कोई मकट नही। पहिले किस भवसे आये, वहा क्या साथ था और क्या हमारा अब तक है ? तो यहाँ की भी जो सतति है, समागम है वह भी क्या साथ रहेगा ? यह तो बिल्कुल भिन्न चीज है, लेकिन व्यर्थका मोह लगा है, व्यर्थका भ्रम किए है, जिसके कारण निरन्तर दुखी रहा करते है। कहा तो आत्माका एक शुद्ध सहज स्वरूप और कहा भ्रम लगा करके अपनेको दुखमे डाले रहते है। यह कितनी अविवेक की बात हैं। ससार मे कही दुख नही है। जो बाहर की बाते होती है उनसे मेरेको दुखका सम्बन्ध नही है। दुख है तो केवल जन्म मरण का। मरण की बात तो सब जानते है कि बडा दुख होता है, लेकिन मरना नही चाहते है। मरणके समय मे बडा दुख होता है। पर जितना कष्ट मरण मे होता है उसमे भी अधिक कष्ट जन्म मे होता है। जन्मके समय मे कुछ बुद्धि ग्रहण नही करती अविक इसलिए ख्याल नही है कि जन्ममे क्या दुख होता है, मगर जन्मका दुःख मरणसे भी कही अधिक है। और अनुमान भी कर सकते। जब कोई मनुष्य गर्भ मे आया तो पेटमे भला बतलाओ किस तरह से रहना पडता है। एक कमरे मे जहा हवा न आती हो वहा ही घबरा जाते है, फिर भला बतलाओ जो जीव पेटके अन्दर पडा है, औधा मुख है, शरीर भी अभी पूरा नही बना, मास पिण्ड पडा हुआ है, कितना दुःख है, और गर्भसे निकलते समय का भी घोर दुख है। तो जन्म मे भी दुख, मरण मे भी दुख

और जन्म मरण के बीच जितनी जिन्दगी है उस जिन्दगी मे भी दुःख । तो आप देखो हम आप पर दुःख ही दुःख बीत रहे है । बाहर से किसी पदार्थसे नही किन्तु हमारे मोह से, हमारी कल्पना से, हमारे विचार से हम पर दुःख ही दुःख मडरा रहे है । जब इस दुःख से छूटने का उपाय बना लो तो आपका जीवन सफल है, जैन शासन का सुयोग मिला है वह सफल हो जाएगा, सदा के लिए सकटो से छूट जायगा । ऐसे उपायकी महिमा को कौन बता सकता । तो वह उपाय बनाओ और बाहरी कोई सम्पदाका आना, घरमे रहना, लोगो मे रहना इन सब बातो को पुण्य पापके भरोसे छोड दीजिये । जैसा उदय है वैसा होगा चिन्ता से कुछ नही होता । आप तो हर स्थितिमे तैयार रहे, सकट आये तो वहा पर भी हम तैयार है । क्या सकट है ? ये सब बाहर की बाते है । आये तो आये, न आये तो न आये । तो अपने आपमे विकल्प होते, जन्ममरण होते, यह ही बडा सकट है । इस सकटसे छूटने का उपाय इस मोक्षशास्त्र मे बताया है ।

संकटोसे छूटने के उपायका संदर्शन—पहिले ही सूत्रमे कहा गया कि 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग -मोक्षमार्ग-ससारके सकटोसे छूटने का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र है । सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्माके सही स्वरूपका विश्वास होना कि यह मैं हू । जैसेकि ससारीजन, मोहीजन का इनके विपरीतखयाल बना है मैं मनुष्य हू, मैं व्यापारी हूँ, मै पिता हूँ, अन्य अन्य अनेक श्रद्धा बनाते हैं अपने बारेमे, वह बात सत्य नही है । सत्य तो यह है कि मै केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ, देखो इतनी बात कभी दृष्टिमे आ जाय तो आप अमीर हैं । आप परमात्माके लघुनन्दन हैं, आपकी पवित्रता की कौन महिमा गा सकेगा ? अगर दृष्टिमे यह बात समा जाय कि मै तो ज्ञानप्रकाश मात्र हूँ, इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन । सम्यग्दृष्टिकी महिमा चाहे वह संयम न पाल सक रहा हो फिर भी वह बडे बडे इन्द्रो द्वारा महनीय होता है । सुख शान्ति जिसमे मिले वह बात कही जा रही है । धर्म करते है रोज-रोज, पूजन बदन आदि करते है तो देखो इसका भी कितना प्रभाव पडता है कि रात दिन जो अनेक सकट सहते है, अनेक कषाये जगती है, अनेक विकल्प जगते है तो घटेभर धर्मध्यान मे चित्त लगे तो एक आराम मिलता है और एक अपनी फिर तैयारी हो जाती है । कुछ बरबाद हो गए, दुःखी हो गए, फिर धर्मकाममे लगने से अपने आत्माकी एक तैयारी हो जाती है । फिर सकटमे आ जाते हैं, तो गृहस्थीमे यह ही बात तो हो रही है कि धर्म किया कुछ ठीक हुए, फिर विकल्पोमे आ गए, इसे बताया है आचार्योने हस्तिस्नान । हाथी स्नान करता है तो उस समय तो ठीक है, मगर बाद मे पानी से बाहर निकला कि अपने ऊपर धूल कीचड डाल लेता है इसी तरह लोग धर्म करते है, बादमें फिर वही विकल्प किए जाते है,

दूकान करना, ग्राहको से बोलना, मोहियोंमे रहना, तो ऐसा होने पर भी जो रोज रोज धर्म मे समय बिताया जाता है तो वह एक रक्षा करने वाला कर्त्तव्य है। हमारा समय धर्ममे न बीते तब तो फिर पूरी बरबादी है। तो कोई धर्म ऐसा मिल जाय, कोई प्रकाश ऐसा मिल जाय कि जिसमे सम्यक्त्व पैदा हो, सकटो से सदाके लिए छूटने का उपाय बन जाय, उससे बढकर जगतमे कोई चीज नही है। बात कही जा रही है अपने अपने आत्माकी। लोग अपने अपने पर घटा लो कि किसी समय यह चैन मानता है क्या ? कोई मौजमे चैन भी माने तो वहा पर भी कष्ट ही पा रहा। चैन तो एक मानने का है। तो चैन किसी बाहिरी बात से नही है। बस आत्माका ज्ञान न रखना, इसे श्रद्धा मे न लेना इससे बेचैनी है। मे तो सिर्फ ज्ञान-मात्र हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरा वैभव है, मे ज्ञानको ही साथ लेकर जाऊँगा, ज्ञान ही यहा रक्षा करने वाला है, ज्ञान को ही मे कर सकता हूँ, ज्ञानको ही मैं भोग सकता हूँ, ज्ञान ही मेरी दुनिया है, मेरे ज्ञानस्वरूपको छोडकर दुनियामे मेरा और कुछ नही है, इस बातपर जब नही डट पाते, और बाहरमे दृष्टि करते, और यह शरीर मल सूत्र आदिक का पिण्ड सुहावना लगता, इसमे रति करते, इसमे राग बनाते, सो ये सकटो मे पडे है देखे सकट भी लग रहे है उन्हे भी भोगते जा रहे है फिर भी सकटरहित जो आत्माका स्वरूप है उसकी सुध नही बना पाते। यही कारण है कि यह सकट जीवन भर बना रहता है। इन संकटोसे मुक्ति प्राप्त करना होगा, मोक्ष प्राप्त करना होगा, उस ही मोक्षका वर्णन इस ग्रन्थ मे किया जा रहा है।

सम्यग्ज्ञानमे ही प्रकाशका अभ्युदय——अपने आत्माका विश्वास बनाओ कि मै आत्मा सबसे निराला ज्ञानज्योतिस्वरूप हूँ, आत्माको पहिचानने के लिए ऐसा ज्ञान बनावे कि मैं तो केवल इतना ही हूँ, इससे बाहर कुछ नही हूँ। जिस कुटुम्ब मे इतना मोह बना रखा वे जीव उतने ही न्यारे है जितने न्यारे दुनियाके कीडे मकोडे जीव है। घरके ये लडके, बहुवे नाती पोते, स्त्री आदिक जीव उतने ही न्यारे है जितने कीडे मकोडे के जीव न्यारे है। अब मोह की बात अलग है कि मोहमे ऐसा मान रखा कि ये सब मेरे है, और यह ही तो कारण है दुखका देखो वियोग तो नियम से होगा, उसे तो कोई रोक नही सकता। जिन-जिनका सयोग है उनका वियोग नियमसे होगा। चाहे आपका ही पहिले मरण हो जाय या किसी दूसरे का, पर वियोग नियमसे होगा। उस वियोग के समय मे यह जीव बडा कष्ट मानता है। वह कष्ट है अज्ञान का ऐसा अज्ञान बना रखा, मोह बना रखा कि वह मेरा ही था, मेरा ही है अरे कहा था आपका ? कही से आया, थोडे समय को रहा, फिर चला गया। तो जब तक सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नही होता तब तक जीवको प्रसन्नता नही आ सकती।

यह निश्चित बात है। धनमे शान्ति थोडे ही है। धन तो एक अजीव पदार्थ है, जड है, पौदगलिक पदार्थ है, उससे शान्ति नही मिलती वह तो आता है पुण्यके अनुसार। जितना आना हो आये, न आना हो न आये। वह शान्तिका धाम नही है। शान्ति तो आत्माके स्वरूपमें बसी हुई है। जब हम अपनेको ज्ञानमे लेते है तो शान्ति मिलती है, आनन्द मिलता है। जब हम किसी परमे लगाव लगाते है तो कष्ट मिलता है। तो अब कुछ अपनेको समझाना होगा। उम्र बहुत गुजर गई। इस रही सही उम्रमे अपने आत्माका प्रतिबोधन करना होगा। हे आत्मन् ! तू तो पवित्र है, भगवत्स्वरूप है, ज्ञानानन्दमय है। तेर पर कष्ट का नाम नही। तेरे को जाने बिना तेरे से अलग होकर अब तक कष्ट पाये। क्या यह कुछ तेरा रहेगा ?

आत्मवेत्ताकी निरापदता—देखिये जैसे कोई बडा अफसर हो और उसका कही तबादला हो रहा हो तो उस तबादले से उस अफसर को कोई कष्ट है क्या ? अरे उसे तो माल ले जाने के लिए रेलगाडी का एक पार्सल डिब्बा मिलेगा, अनेक नौकर चाकर सामान चढाने वाले मिलेगे। परिवारको ले जाने के लिए अलग से एक रेलगाडी का आराम देह डिब्बा मिलता है। जहा पहुचेगा वहा भी रहने के लिए मकान खाली पडा है। सेवा करने के लिए नौकर तैयार है। स्वागत करने के लिए अनेक लोग तैयार है। बताओ उस आफीसर को क्या कष्ट ? उसे तो उस रेलगाडी मे चढने और उतरने का काम करना है। कष्ट तो छोटे छोटे लोगो को होता है जैसे मास्टरो को, क्लर्को को उन्हे कही मकान खोजना पडेगा, सामान को बडी मुश्किल से ले जाना होगा। पर उस बडे आफीसर को तबादले मे क्या कष्ट ? ठीक ऐसे ही जो ज्ञानी आत्मा है, जो सम्यक्दृष्टि जीव है वह भी जब यहा मरण करता है तो उसे उस समय क्या कष्ट ? वह तो जानता है कि मेरा तो सब कुछ मेरे साथ जा रहा है, जो मेरा है वह मेरे से कभी छूट नही सकता, और जो मेरा है ही नही वह मेरे मैं कभी आ नही सकता। मेरा वैभव है ज्ञान दर्शन आनन्द स्वरूप ज्ञान ज्योति। इसी मे ही मै तृप्त रहता हूँ। यह मेरा वैभव मेरे से कभी छूट नही सकता, और तो सब बाहरी बाते है। तो जब अपने आपके आत्माका बोध हो तो इस जीव को शान्ति मिलेगी। यह ही हुआ सम्यग्ज्ञान। और अपने आत्माका ऐसा स्वरूप जानकर यहा ही तृप्त रहना, सतुष्ट रहना। मेरे को अधूरा काम कोई नही पडा है। मेरे को कोई आपत्ति नही है कही। मै ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दमय हूँ, इसही मे मै तृप्त रहता हूँ, सुखी हूँ, शान्त हूँ, स्वय महान हूँ। तो आत्मा मे तृप्ति करे, मग्न हो जाय, लीन हो जाय यह ही है सम्यक्चारित्र। ये सब ज्ञानके विकास ही तो है। ज्ञानविकास मे ही निरापदता है।

मोक्षशास्त्र की महाशास्त्रता—मोक्षशास्त्र ग्रन्थ मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका वर्णन है, इसीलिए यह महाशास्त्र कहलाता है। यहा कोई ऐसी समस्या रख सकता है कि शास्त्र तो वह ही होना चाहिए जिसमे रत्नत्रय का वर्णन हो। सम्यक्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका वर्णन हो। लेकिन कुछ शास्त्र ऐसे है कि जहां सम्यग्-दर्शन का ही वर्णन है जैसे समयसार। कुछ शास्त्र ऐसे है कि जिनमे सिर्फ ज्ञान ज्ञान का ही वर्णन है—जैसे न्यायशास्त्र। और कुछ शास्त्र ऐसे है कि जिनमे चारित्र का वर्णन है जैसे श्रावकचार, मूलाचार आदिक। तो क्या वे शास्त्र नहीं कहलाते ? शास्त्र नाम तो उनका बताया गया है कि जिनमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो का वर्णन हो। तो यहाँ समाधान यह लेना कि उनमे भी तीनो का ही वर्णन है। हां मुख्यता की बात अवश्य है। किसी मे ज्ञान की मुख्यता है, किसी मे चारित्र की मुख्यता है, किसी मे सम्यक्त्व की। तो मोक्षमार्ग तो ये तीनो हैं, जैसे इस गाँव से २० मील दूर जाना है किसी शहर मे तो जाने का मार्ग तो यही से शुरू हो गया। अब आप आधी दूर पहुंच गए तो वह आधा मार्ग हो गया। जब आप उस शहर के बीच मे पहुच गए तो वह मार्ग आप पार हो गए। तो इसी तरह मोक्षमे जाने के लिए सम्यग्दर्शन भी मार्ग है। वह पहिले का मार्ग है। सम्यग्ज्ञान भी मार्ग है और सम्यक्चारित्र भी मार्ग है। इसीलिए तो रत्नत्रयको अगर हम ७ अङ्गो मे पेश करे तो कर सकते है। देखो जो तीन चीजे होती है उनका हम ६ तरह से स्वाद ले सकते है। यही सप्त भङ्गी कहलाता है। यही स्याद्वाद है। जैसे तीन चीजे कुछ भी रख लो नमक, मिर्च, जीरा। तो देखो एक तो इन तीनो का अलग-अलग स्वाद लेने पर ३ स्वाद हो गए' नमक, मिर्च और जीरा। अब नमक मिर्च मिलाया तो यह ५ वा स्वाद हुआ। मिर्च जीरा मिलाया तो यह छटा हुआ, और नमक, मिर्च, जीरा इन तीनो को मिलाया तो यह ७ वा स्वाद हुआ। तो जहा तीन बाते होगी वहा ७ ढग बनेगे, इसीतरह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीन तत्त्व है। इनकी भी सप्त-भङ्गी बना लीजिए—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र ये तीन भङ्ग हुए, अब सम्य-ग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यह चौथा भङ्ग हुआ, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र यह ५ वा भङ्ग हुआ, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र यह छठॉ भङ्ग हुआ, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो से मिलाकर एक ७ वा भङ्ग हुआ। माने जो शास्त्र है उनमें ७ तरह की बाते मिलेगी। कोई ग्रन्थ ऐसे है कि जिनमे केवल सम्यक्त्वका वर्णन है, किसीमे दो का वर्णन है और किसीमें तीनोका वर्णन है। है वे सब सत्यशास्त्र, तो इस मोक्षशास्त्र मे आप तीनोंका वर्णन पायेगे, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। और दसो अध्याय

भी इस सूत्रका पोषण करते है, ऐसा यह मोक्षशास्त्र ग्रन्थ है, जिसकी हम आप लोग भक्ति करते है, अर्घ भी चढाते है। दशलक्षण पूर्वके दिनोमे लोग दसो अध्यायके सूत्रोमे अर्घ भी चढाते है। तो इतना तो जानेकि उनमे बात क्या लिखी है। चीज क्या है, उसकी महिमा क्या है ? इतना जान कर तो जरूर रहना चाहिए। तत्त्वार्थ सूत्र की अनेक हिन्दी टीकाये है। कोशिश करे कि हम उन सूत्रो का पूरी तरहसे अर्थ जान जाये। इस तत्त्वार्थसूत्र के अर्थके जाननेमे आप जैन शासनका बहुत सा रहस्य जान लेगे। यह मोक्षशास्त्र ग्रन्थ प्रमाणीक है, क्योकि सर्वज्ञदेवकी परम्परासे चला आया है। सर्वज्ञदेव ने तीन लोक तीनकालकी बात को जाना। देखो, हम आपको ज्ञान है ना, सो बहुत सी बाते जानते है ना, कोई बात बहुत जानते कोई कम जानते, तो हम आपके साथ कर्म है, इतने पर भी हमारा ज्ञान बना हुआ है। और, जैसे सूर्यके नीचे बादल आ जाय तो बादलके आ जाने पर भी यहा प्रकाश बना रहता है और बादल हट जाय तब तो एकदम तीव्र प्रकाश हो जायगा इसी तरह हम आपके आत्मापर कर्मके बादल छाये हुए है इतने पर भी तो हमारा ज्ञान जगता रहता है। कर्म हटे तो हम आपका ज्ञान तीन लोक तीन कालकी सर्व बातो को जानने वाला हो जायगा। इसीके मायने परमात्मा है।

कषायोको दूर कर परमात्मत्व प्राप्त करनेके लक्ष्यकी महनीयता—भैया जीवन में एक यह सकल्प बने कि मुझे तो परमात्मा होना है। जैसे चित्तमे रहता है ना कि मुझे तो लखपती बनना है, करोडपती होना है तो ये सब बेकार बाते है। अरे उदयानुसार जो हो सो होने दो, उसीमे गुजारा चलता है। जिन्दगी ही तो चलाना है। जिन्दगी हर तरह से चल सकती है, उसके लिए अधिक आकांक्षाये मत रखो। देखिये—जैन शासनका यदि सदुपयोग करना है तो यह चित्तमे दृढता लावो कि मेरे को अन्य कुछ नही बनना है, मेरे को तो परमात्मा बनना है, भगवत्स्वरूप होना है, शुद्ध ज्ञानानन्दमय बनना है, यह चित्तमे भावना बनाये, बाकी सब बाते बेकार है। क्या है ! कोई बडा धनिक हो तो अब भी कष्ट, और जब उसे छोडकर जायगा तो मरणके समय मोहका बडा कष्ट। क्या लाभ हुआ उससे ? और अपने आत्माके ज्ञानकी बात पायी, जिस समय दृष्टि दी अपने आपके स्वभाव की ओर, उसी समय आनन्द है। लोग चाहते है कि दुनियाके लोग-मुझे बडा समझे और इसीलिए कोई धन बढाने की कोशिशमे है। कोई कुछ उपकार करने की कोशिशमे है। कोई देश सेवा

करने की कोशिश मे है, कोई नेतागिरी की कोशिश मे है, बस एक इस चाह से कि दुनिया के लोग समझ जाये कि यह फलाने भी कुछ हैं। अरे यह विचार तो करो कि ये दुनिया के लोग कोई भगवान है क्या ? ये कोई मेरा सकट मेट सकने वाले है क्या अथवा ये कोई पवित्र जीव है क्या ? ये कुछ ढग के लोग है क्या ? अरे ये कर्म के प्रेरे स्वयं दुखी, जन्म मरणके सकट सहने वाले, गरीब, मिथ्यात्वके भारसे पीडित कषायो से मलिन, उनकी निगाह मे हम बडा क्यो बनना चाहते ? क्या लाभ मिलेगा ? उन्होंने अपनी गरज से अगर कुछ समम कोई प्रशसा की वात कह दी तो उसकी आत्माको कौन लाभ मिल गया ? इसे छोडे भीतर से। हम तो जिन्दा है धर्म के लिए। गुजारा करना है और अपना समय हमे धर्म मे लगाना है। आत्मज्ञान करे, आत्मध्यान करें, मद कषाय करे, दूसरो को क्षमा करदें। देखो धर्म तो हमारे सहज भावसे जब चाहे आ सकता है किसी पर क्रोध बनाने की आदत रखे तो इससे अपने को कुछ लाभ है क्या ? बल्कि कष्ट ही कष्ट है, दूसरों को क्षमा करने की आदत रखे तो अनेक कष्ट दूर होगे और दूसरो के प्रति भलाई का काम करना चाहेगे। हम घमड छोड दे, नम्रता से रहे और दूसरों का आदर करे, दूसरो का बडप्पन बताये तो इससे देखो इस वक्त भी आप आनन्द मे रहेगे और मुक्तिका मार्ग भी मिलेगा। लोग मायाचार करते है सुखी होने के लिए, लेकिन मायाचार मे कोई सुखी रह सकेगा क्या ? रात दिन कष्ट रहता है, क्योंकि मायाचारी पुरषको निरन्तर शल्य बना रहता है। और, मायाचार छोड दे, सरलचित्त हो जाये तो दूसरो के विश्वासपात्र हो जायेगे। स्वय सुखी हो जायेंगे। दूसरे भी सुखी हो जायेगे तो सरलता से रहना चाहिए। लोभ कषाय मे कितने कष्ट पड़े हुए है। दूसरो की आस्था नही बनती है। स्वयं ऐसी उधेडबुन मे रहा करते है। जीवन बेकार सा हो जाता है। लोभ कषायका त्याग करदे याने अपने कुटुम्ब के पालन पोषण मे भी उदारता बर्तें, दीन दुखियो के उपकार मे भी उदारता बर्तें, धर्म की प्रभावना मे भी उदारता बर्तें। तो धन तो एक ऐसी छाया है कि इसका सदुपयोग करें तो मिटता नही है और इसको रखे रहे तो यह रहता नही है। किसी न किसी बहाने से निकल जायगा। तो इस लोभ कषाय का अन्तरङ्गसे त्याग हो। तृष्णाका त्याग हो, तो उदार चित्त बनने मे देखो कितनी महिमा बढती है, आत्मामे प्रसन्नता होती है। तो कषायो को दूर करना, मोह को दूर करना, भगवत् स्वरूप मे भक्ति रखना, अपने आत्मा को सबसे निराला एक ज्ञानस्वरूप रखना यह बात अगर हो रही है तो समझ लो कि यह स्वभाव संस्कार साथ जायगा। अगले भव मे भी आनन्द पायगा और यदि यह ज्ञानस्वरूप निगाह

मे नही है, यहाँ का मोह ही बसता है तो यह जीवन भी बरबाद है और आगे भी कुशलता नहीं है। तो ऐसे संसारके संकटोसे छूटनेका उपाय इस मोक्षशास्त्र मे कहा गया है।

अन्तरात्मत्वकी सिद्धमे कल्याणलाभ—जगतमे जितने भी जीव हैं वे सब जीव तीन प्रकारमे से किसी न किसी प्रकारके हैं। वे तीन प्रकार क्या है ? बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। बहिरात्मा उन्हे कहते है जो आत्मासे बाहरकी चीजको आत्मा मानते हैं। नाम ही बहिरात्मा है। बहि मायने बाहरकी वस्तु, उसको आत्मा मानना। जैसे शरीरको और जीवको एक माना जाय वह बहिरात्मापन कहलाता है। अन्तरात्मा उसे कहते है कि जो अन्दरकी चीजको अपने आपके भीतरी स्वरूपको आत्मा माने उसे अन्तरात्मा कहते है। याने ज्ञानस्वरूप अपने आत्मामे यह मैं हूँ ऐसी जिनसे श्रद्धा हुई उन्हे अन्तरात्मा कहते हैं। परमात्मा किसे कहते हैं ? जो आत्मा परम हो गया है, परम याने उत्कृष्ट हो गयी है याने आत्मा के जो गुण है वे पूरे प्रकट हो गए है। ज्ञान और आनन्द जहा उत्कृष्ट हो गया है उसे परमात्मा कहते हैं। अब यह छटनी करले कि हम बहिरात्मा है कि अन्तरात्मा है कि परमात्मा है। अपनी बात सोचो कि हम क्या हैं ? अगर बाहरकी वस्तुमे आत्मास्वीकार है–देह मैं हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं पडित मैं मूर्ख हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं स्त्री हूँ आदिक रूपसे अगर श्रद्धा वन रही है अपने आपकी तो समझो कि वह बहिरात्मा है। बहिरीत्मा, मूढ, मोही, मिथ्या दृष्टि ये सब एक ही बात कहलाते है। इनसे नफा न मिलेगा, बहिरात्माकी दशामे कुछ लाभ न मिलेगा। देखो कहते है कि धर्मकी बात बडी कठिन है कठिन नही। क्रिया चारित्र भले ही कठिन हो, मगर जो बात जैसी है उसे उस तरह समझ लेवें तो यह बात क्यो कठिन लगे ? हर एक कोई सच जानना चाहता है। जो लोग झूठ जान रहे हैं वे भी सच जानकर जान रहे है। तो हम सबमे एक ऐसी आदत पडी है कि हम सच जानना पसद करते हैं, झूठ जानना नही पसद करते। झूठ भी जानते हो, झूठ मानते हो तो उसे झूठ समझकर कोई नही मानता। सच्चा समझ कर ही मानता। तो आखिर आदत तो सच्चा माननेकी पडी है, झूठ माननेकी आदत नही पडी है। तो वह भी बडी अच्छी वात है कि हम सब जीवो को सच जाननेकी इच्छा रहा करती है। तो जरा अब सच जानले। झूठको सच मानकर मत रहे, सचको ही सच मानकर रहे। क्या इसमे कोई सन्देह हैं कि हम मरेंगे अथवा नही ? अरे इसमें सन्देहकी क्या बात ? एक दिन सभी मरेंगे। मरने का अर्थ क्या है ? देह यहां पडा रहेगा। हम यहा से विदा हो जायेंगे। जानते हैं क्या ? केवल बात बात तो कर लेंगे, पर भीतर में वह दृश्य न बना पायेंगे कि आखिर आयगा वह समय जब कि इस

देहको छोडकर यो चले जायेंगे और लोग इस देहको जला देंगे । जैसे कि हमने दूसरों के देह जलाये । हम यहाँ न रहेंगे, ऐसा भीतरमे सच्चा भाव नही जगता । तो जानतेभी है और नही भी जानते । ऊपरी ऊपरी समझते है, पर भीतरमे यह श्रद्धा नही है कि हम मरेंगे, निश्चित मरेंगे । शरीर छोडकर हम आगे जायेंगे । देखो बहुत सी घटनायें ऐसी मिलती कि खूब हट्टा कट्टा जवान छोटी उम्रका, जिसके मरणका कोई आसार न था और अचानक ही ५ मिनटमे साफ हो गया । तो ऐसे ही सोचो कि क्या हम आप भी उसी तरह से कभी साफ न हो सकते थे अर्थात् मरणको प्राप्त न हो सकते थे ? कहो गर्भ मे ही मर जाते, कहो छोटी उम्रमे ही मर जाते । कभी भी मर सकते थे । लेकिन आज तक भी जीवित है तो यो समझो कि हम मुफ्तमे जीवित है । अब तो अपने जीवनका अधिक समय लगावे ज्ञानमे

ज्ञानाभ्यासका यत्न होनेपर ज्ञानानुभवकी सुगमताका परिचय—न भैया ज्ञानकी बात कठिन यो लगती कि अभी उसके अभ्यासमे आये नही उसके अभ्यासमे आना ही नही चाहते । भैया हम तो देखते कि व्यापार करना बडा कठिन काम है । कहाँसे माल लाना, कहा भेजना, कहा रखना, कैसी व्यवस्था करना, यों कितने ही झझट है, पर व्यापारियो को ये काम बडे सुगम लग रहे है । क्यो सरल मालूम होते कि उनमे कुछ अभ्यास बन गया है । तो अभ्याससे सारी चीजे सरल हो जाती है । अगर हम ज्ञानकी दिशा मे एक अध्ययन करते हुए कुछ बढे । जैसे यहां पडितजी रहते है तो बडे—बडे लोग भी अगर एक ग्रन्थ पढनेका समय रखे २०—२५ मिनट प्रतिदिन तो एक साल के अध्ययन से ही वह दिशा मिल जायगी कि कठिन से कठिन बात ठीक ठीक समझ सकते है । तो अपना ज्ञान बढानेके लिए उत्साह जगाये । अब जीवन पलट लीजिये । इन भौतिक पदार्थों की ओर ही अपना झुकाव न रहना चाहिये, होता रहता है । वह तो होता है । उसके करने वाला कौन ? कोई चक्रवर्ती होता है तो क्या वह एक-एक राजा को जीत कर होता है ? उनके पिता मडलेश्वर होते थे वे उत्पन्न हुए कि चक्री हो गए फिर उनका अपना कौतुहल है दिग्विजय को जाते है, अर्थात् जिनके सम्पदा आती है तो कहते तो है लोग ऐसा कि एक एक बूँदकरके तालाब भरता है । थोडा-थोडा धन आकर धनिक होता, पर ऐसी बात नही । पुण्यका उदय होता है तो अचानक ही कही से सम्पदा बरष जाती है । एक—एक बूँद करके भी आता और एकदम अचानक करके भी आता, तो ये बाहरी बातें है । इन बाहरी बातोके लिए ही अपना उपयोग न लगावे । ये तो उदयानुसार आते है, इनमे आत्माकी करतूत नही । एक सम्यग्ज्ञान भर करना है; इस देहके भीतर जो गुनगुनाता है समझला

है, सोचता है। चिन्तन करता है। दु खी होता है वह भीतर मे है क्या, किस रगका है। क्या मिलता है, कैसे दु खी होता है, कैसे दु ख मिटेगा ? ऐसी एक भीतरकी गुत्थी न सुलझायेंगे तो बाहरके किसी भी परिश्रमसे आत्माका भला नही होनेका। बहिरात्मापनको छोडे, अन्तर्मु खी होकर मै अपने आपमे अपने वैभवको जान सकूँ। जब अन्तरात्मा हो जाता है तो वह इस अन्तस्तत्त्वका आलम्बन करके कर्मका क्षय करता है और परमात्मा हो जाता है।

सर्वाधिक बड़प्पन—भैया सबमे यह चाह है कि मैं ऐसा बनूँ जो सबसे ऊचा कहलाऊँ और फिर कभी मिटे नही। जैसे कोई धनी होना चाहता तो उसके मनमे यह भावना रहती है कि मे फिर मिटू नही। वैसा ही धनिक बना रहूँ। कोई यह नही सोचता कि मैं कम रहूँ और जो बने सो मिट जाय। चाहे हो जाय वह बात अलग है, मगर कोई सोचेगा कि मे बडा बनूँ और बडा बनकर फिर कभी हल्का न होऊँ। तो यह ही बात आचार्य कह रहे हैं कि आप बडे बने और ऐसे बडे बने कि जैसा बडा बननेके बाद फिर कभी उससे हल्के न हो सकें। वह चीज क्या है ? परमात्मा। परमात्मा बने, जिसके बाद कभी वह छोटा हो ही नही सकता। और परमात्मापदके सिवाय बाकी जितनी स्थितिया है ससारकी उनमे विश्वास नही है। कुछ बडे बनेगे फिर मिट जायेंगे, छोटे होंगे देव भी मरकर पेड पौधे हो सकते, एकेन्द्रिय हो सकते। तो ससारमे और बडप्पन क्या है ? इसको बडप्पन मत समझो। देखो धर्मके नामपर, आत्मदयाके नामपर ये सारी बाते समझनी होगी कि यह कोई बडप्पन नही कहलाता। यह तो कीचड है। यह तो माया है। यह तो स्वप्नकी तरह है। इसका नाम बड़प्पन नही। बडप्पन है तो अपने रत्नमयमे बडप्पन है। सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो, सम्यक्चारित्र हो। अब यह बतलावो कि परमात्मा जिनेन्द्र अरहत उनकी मूर्ति बनाकर बडे-बडे लोग भी पूजने के लिए, दर्शनके लिए क्यो आते है ? देखनेको तो यह मिलता कि कुछ नही मिलता। जैसे कि जो लोग मूर्तिपूजाको नही मानते वे यही तो कहते हैं ना कि यो लोग क्यो व्यर्थ मे इस मूर्तिको पूजने आते हैं ? कुछ मिलता है क्या ? बात यह है कि वास्तविक बडप्पन परमात्मपदमे ही है। और इतना महत्त्व है, इतना बडप्पन है कि हम उस ही बडप्पनके प्रति झठझुक जाते है कि उसके नामकी मूर्ति पूजते है। जैसे किसीको अपने पिता के प्रति बडा अनुराग है तो पिताके गुजरनेपर या रहने पर भी उस पिताका फोटो बनवाता है और उस फोटो का आदर करता है, इसीतरह भगवानमे हमे इतना अनुराग है कि हम उनकी मूर्ति पूजते हैं ? तो वास्तविक बडप्पन परमात्दशामे है। ससारकी चीजो

मे बडप्पन मत माने। देखो एक मानने की ही बात कही जा रही है। कोई तपश्चरणकी बात तो नही कह रहे कि इतना कष्ट करो। एक जो यथार्थ बात है उसको मानलो, भला हो जायगा। एक वास्तविक बडप्पन है परमात्मस्वरूपमे, अन्यमे नही, यह विश्वास बनाओ और फिर जो अधिक धनी दिखे, उनसे देखकर ऐसी लालसा न करे कि मैं ऐसा हो जाऊँ। जैसा भवितव्य है सो होने दो। हमारा काम तो गुजारा करनेका है और धर्ममे विशेष चित्त लगानेका है। किसी धनिकको देखकर उसका बडप्पन न समझे। चक्रवर्ती भी हो जाते हैं फिर भी उसे वे महान नही मालूम होते है। छह खण्डका राज्य मिल जाये उसमें भी कोई महत्ता ी बात नही है। हा महान होता है परमात्मा। एक अपना ऐसा सच्चा निर्णय बनाले कि यहां से कोई भी स्थिति बडप्पनके लायक नही है। प्रधानमन्त्री हो गए, राष्ट्रपति हो गए, या सयुक्तराष्ट्रसघके मत्री हो गए, या कोई भी पद हो यहा बडा से बडा पद समझा जाता हो, वह कोई भी स्थिति बडप्पनके लायक नही है। वह तो सब कर्मलीला है। जो जितना अधिक ऊचे उठेगा वह गिरेगा तो उतनी ही अधिक चोट आयगी। जो जिसमे जितना अधिक बढ गया यहा वह उसके पीछे उतना ही अधिक कष्ट मानेगा। तो क्या है जगतकी दशा। जैसे कोई अनजान आदमी गहरे पानीमे गिरकर गोते खाता है, इसीतरह यहा संसारमे भी यह प्राणी गोते लगाता रहता है। तत्त्व कुछ नही मिलता। आत्मत्त्वकी सही श्रद्धा बनाले तो नियमसे पार हो जायेगे। आपकी वास्तविक बात मिल जायगी। आत्माकी दृष्टि बने, रागद्वेष मोहरहित अवस्था बने, ज्ञानमे ही तृप्त होनेकी स्थिति बने, ऐसा सहज आनन्द जगे वहाँ बडप्पन है। बाहरी चीजोमे बड़प्पन नही है। तो यह है मोक्ष। जो परमात्माका स्वरूप है उसी को ही मोक्ष कहते है। ऐसे मोक्षका कोई उपाय जानना है ना। जानना ही चाहिए। ससारके सकटोसे हम छुट जाये, इसका उपाय अवश्य ही जानना चाहिये। तो वही उपदेश इस मोक्षशास्त्र मे चलेगा।

आत्मार्थियोके लिये ग्रन्थकी प्रयोजकता—यह उपदेश किसको दिया जा रहा है? जिन्होने यह ग्रन्थ बनाया उन्होंने किसके लिए बनाया, किसके लिए यह प्रयास किया? जिसके यह भावना जगी कि आत्माका हित क्या है? आत्माका ससारसे छुटकारा होनेकी क्या स्थिति और उपाय है, ऐसी जिनकी इच्छा जगी हो उनको ही सुनाया जा रहा है। कही भी हो। अब वही सभामे हम जबरदस्ती आप लोगोको सुनायें और आप सुनना ही न चाहे तो वहा सुनानेसे न आपको लाभ है न हमको। आपको जिज्ञासु जानकर बोलें तो हमने भी लाभ पाया, आपने भी। यही बात शास्त्ररचनेके प्रसगमे होती है कि उस मोक्षके जाननेका, मोक्षके उपायका जिसको भाव हुआ हो, जो जानना चाहता हो वह हो सामने या ऐसा जीव

आचार्यकी दृष्टिमे हो तो उनसेयह ग्रन्थ रचना बन सकती है । तो मोक्षमार्गको जाननेकी इच्छा होती है, क्योकि आत्मा है ना । सभी भला चाहते । अपनी भलाई का उपाय समझने की सबके इच्छा जगती है, बस उसी आधारपर यह ग्रन्थ आचार्य सतोने बनाया है । क्या बताया जायगा इस ग्रन्थ मे ? मोक्षमार्ग । रोज-रोज सूत्र जी पढते है और प्राय करके कुछ महिलाये सूत्र पाठ करके ही भोजन करती है । उस सूत्रमे क्या महिमा पडी है जो इतना नियम बनाया जाता कि रोज पाठ करना आदर आदर तो वहुत है, पर आदर की चीज क्या है, इसका उनको पता नही । आस्था वहुत है । उसके विना यह समझा कि हमने धर्म नही किया, पर चीज क्या है इसका पता नही । जिसके प्रति इतनी आस्था है उसका कोई अर्थ समझ जाय तो फिर उसकी आस्थाका कहना ही क्या है ? क्या भरा है इस मोक्षशास्त्र मे ? इसमे जीवोके ससारके संकटोसे छूटनेका उपाय बताया है । कैसे छूटे ? मोक्षमार्ग बताया है । कोई सोचेगा कि इसमे मक्षोका उपाय बताया है । उससे पहिले तो मोक्ष बताना चाहिए कि मोक्ष क्या चीज है ? उपाय तो पीछे बताना चाहिए । सो देखो मोक्ष के बारे मे किसी को तो विवाद नही ।

किसी न किसी रूप मे मोक्ष को स्वीकार करते ही है । सकटो से छूटने का नाम मोक्ष है । अब इसकी और क्या बात जानना ? छूटने का उपाय है, यह समझने की चीज है, जैसे किसी एक गाव को जाना है । तो उस दिशा मे रहने वाले लोगोको तो कोई विवाद नही, किन्तु किस रास्ते से जाना है, इसमे विवाद है, इसी तरह मोक्ष के प्रति किसीको विवाद नही । मोक्ष सभी चाहते है, कर्मों से छुटकारा सभी चाहते है, पर उनके मार्ग मे विवाद है । कोई कहता है कि सिर्फ ज्ञान ज्ञान से ही मोक्ष होता, कोई कहते कि इन धार्मिक क्रिया-काण्डो को करते करते मोक्ष होता । तो इस विवाद को मेटने के लिए मोक्षमार्ग बताया जायगा कि रत्नत्रय से मुक्ति मिलती है । यह आत्मरहस्यकी बात जानना एक बहुत आनन्द की चीज है । उत्साह और उत्सुकता बढाने वाली बात है, लेकिन यह बात तब पसद आयी जब इतना समझ मे आये कि जितने समागम है बाहरी भौतिक वे सब मेरे लिए बेकार हैं, असार है । यह बात जब तक समायी न हो तब तक धर्म के लिए उत्सुकता नही जग सकती । जिनको ये विषय ही सार लग रहे हैं वे मुक्ति की बात ही क्यो करेंगे ? जिनको खाना पीना विषय सेवन, रूप देखना, राग सुनना, इज्जत देखना, प्रशसा सुनना ये बाहरी बातें पसद आ रही हो, भला वे क्यो मुक्ति की बात करेंगे ? तो यह धर्म की बात उस ही हृदय मे समायी जा सकती है जिस हृदय मे इतना निश्चय हो गया हो कि और बातें तो बेकार हैं, असार है । साथी नही हैं, शरण नही है, सब छूट जायेंगी, विनाशीक

है। यह मै तो बन्दा अकेला ही रहूगा। इसका किसमे भला है ? वह बात हमे समझना है। यह चित्तमे बात समायी हो तो धर्म मे प्रीति जगती है। तो हम सब जीवो का उद्धार कर सकने वाला एक धर्म ही है। और वह धर्म क्या है कि मै अपने स्वभाव को जानू और इसमे ही लीन रहू। जो मेरे पास है, मेरी चीज है, मेरा वैभव है। मैं शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं तो अपने ज्ञान से अपने ज्ञान स्वरूप की बात को समझलूँ, बस इसी मे ही भलाई मिल सकेगी और भ्रम मे भलाई न मिल सकेगी। भ्रम सदा दुखकारी चीज है। तब मोक्ष क्या ? अब तो अपने जीवन को ऐसा पलटिये कि कम से कम १०-१५ मिनट तो रोज अध्ययन की दृष्टि से अध्ययन कीजिये। और, स्वाध्याय करें, स्वाध्याय सुने तो इस दृष्टिसे कि मेरी भलाई किसमे है, वह चीज मुझे चाहिए, बाकी जितना फसे है वे सब मेरी बरबादी के ही कारणभूत हैं। भीतर ज्ञानप्रकाश मिलेगा, आत्मतृप्ति मिलेगी, वह आनन्द मिलेगा जो हमारे पुराण पुरुषो ने ऋषी सतजनो ने पाया है। उस ही मार्ग से हम आप भी चले, बस यही है अपने पुराण पुरुषो के मार्ग पर चलने की बात। इसके लिए अध्ययन चाहिए। तो ज्ञान मार्ग मे बढने का एक सकल्प बनावे।

मोक्षमार्ग नेतृत्व में तत्त्वदर्शन—मोक्षशास्त्र के मगलाचरणमे जो नमस्कार किया गया है उसमे तीन विशेषताये है, उस मोक्षमार्ग के नेता को कर्मपहाड के भेदने वाले को, समस्त तत्त्वो के जानने वाले को नमस्कार करता हूँ। इन तीन विशेषणो से हमको हितके लिए कौन सी बात मिलती है तो परखो, जो मोक्ष मार्ग के नेता है, जो मोक्ष मार्ग पर चले और चल कर वहा मुक्ति पाया और जिनके चरित्र से, उपदेश से, दर्शन से भव्य जीव मुक्ति का मार्ग प्राप्त करते है, उन्हे कहते है मोक्षमार्गका नेता। मोक्षमार्गके नेता प्रभु अरहंत ज्ञानस्वरूप आत्मा है। जो ज्ञानस्वभावी होगा वही तो मुक्ति का मार्ग पायेगा, मोक्ष पायेगा। देखो इस प्रसगमे थोडी एक दार्शनिक की बात बतलाया। किसी दार्शनिक ने ऐसा माना है कि आत्मा मे ज्ञान नही होता। चेतन तो जरूर है आत्मा मगर उसमें ज्ञान नही है। तो फिर ज्ञान आता किस तरह है ? तो उनका कहना है कि ज्ञान एक अलग पदार्थ है। गुण नाम का पदार्थ है। इस ज्ञानका जब आत्मा मे सम्बन्ध होता है तब ही ज्ञानी बोलते है। सुनने मे कुछ अटपट सा लग रहा होगा कि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है, कैसे उन्होने यह बात पकडी कि आत्मा मे ज्ञान नही होता। ज्ञान का सम्बन्ध होता है तब आत्मा ज्ञानी कहलाता है। तो यह बात समझने की उनकी दृष्टि यह रही कि ज्ञान गुण है आत्मा पदार्थ है। आत्मा का स्वरूप चेतन है, ज्ञान आत्मा मैं रहता है, लोग मुख से बोला भी करते है कि आत्मा मै ज्ञान है। तो इस तरह दो चीजें समझ में वहां आयी, तो अलग-अलग

मान लिया, लेकिन ऐसा है नही। आत्मा है सो ज्ञान। ज्ञान है सो आत्मा। अगर ज्ञान आत्मा मे नही है तो ज्ञानका सम्बन्ध होने मे आत्मा ज्ञानी होता, तो जब ज्ञान का सम्बन्ध न हुआ तब आत्मा क्या ज्ञानी नही है ? और जब आत्मा जुदा है, ज्ञान जुदा है तो ज्ञान आत्मा मे ही क्यो चिपकता ? आकाश मे क्यों नही चिपक जाता ? भौतिक पदार्थो मे क्यो नही लग जाता ? आत्मा मे ही क्यो लगता है ? तो आत्मा ज्ञान स्वभावी है। और ऐसा ज्ञानमय पदार्थ अनादि से कर्म के आवरण के कारण यह ससार मे रुलता, जन्म मरण करता दु ख पाता है। स्वरूप इसका वह है जो प्रभुका स्वरूप है। रागद्वेष मोह बाह्य पदार्थों मे लगाव, ये सब व्यर्थ की और बेकार चीजे है या नही ? तत्त्व दृष्टि से देखो जिनसे लगाव है ये दु ख के ही कारण है। सदा रहने वाले नही है, भिन्न पदार्थ है। लगाव करने की जरूरत क्या थी ? जो आनन्द स्वरूप धर्म है उस आत्मा की क्या आवश्यकता है कि यह पर पदार्थों से लगाव लगाये। कोई चित्त मे यह सोच सकता है कि वाह भूख है, प्यास है, भोजन करते है, गृहस्थी है, लोग है, कामधधे है, इसलिए लगाव लगाना पडता है, पर यह तो बताओ कि यदि ऐसी स्थिति हम आपको मिल जाय कि देह ही न रहे, जन्म मरण ही न करना पडे तो फिर बाह्य पदार्थों के प्रसग की जरूरत क्या है ? यह तो आनन्दका निधान है।

आत्मार्थीका शरण्य—आत्मार्थीको कहा नमना चाहिये, कहा शरण ढूढना चाहिये। इसका सक्षेपमे समाधान चाहे तो दो जगह दृष्टि होनी चाहिए—परमात्मभक्ति और स्वभाव भक्ति। ये दो ही एक शरण और नमने के लायक तत्त्व हैं। परमात्मा जिनेन्द्र अरहत, उसकी स्वरूपभक्ति, ससारके पदार्थोंका समागम क्लेशका कारण है। भिन्न है। विकार होते हैं, कोई सम्बध नही है तो उस लगावमे केवल कष्ट हैं उस कष्टसे छुटकारा पाने के लिए हमें कष्टरहित प्रभुके निकट आना चाहिए। भगवत अरहत देव समस्त कष्टोसे रहित है, १८ प्रकारके दोषो से रहित है। उनका जन्म है, न प्रतिष्ठा है, न मरण है। क्षुधा तृषा आदिक कोई दोष नही है। ऐसे निर्दोष मोक्षमार्गका नेता अरहत जिनेन्द्र तीर्थंकर देव उनकी शरण गहनेसे हम आपको मार्ग मिलता है और परमार्थत शरण है स्वभावभक्ति। अपने आपका जो एक ज्ञानस्वभाव याने परमे सम्बध बिना, परका विकल्प किये बिना अपने आप ज्ञान जिस ज्योतिकलामे रहता बस ज्ञान उस स्वभाव मे रहे, वह कहलाता है स्वभाव, उसकी भक्ति ही शरण है। फिर गुरुवोकी भक्ति तो प्रभुभक्ति से सम्बधित आशिक बात है। प्रभुतापूर्ण निर्दोष है। गुरु निर्दोष बन रहे हैं और निर्दोष बननेके मार्गमें लग रहे है तो वह विकाश भक्ति मे

ही शामिल है । दो जगह हमारी दृष्टि होनी है अर्हंदभक्ति और स्वभावभक्ति । अरहत है मोक्षमार्गके नेता । कहते हैं ना कि जो तीर्थंकर नही होते, दिव्यध्वनि नही होती तो जगतके जीव कहासे ज्ञान पाते ? कहाँ मोक्षमार्ग पाते ? तो यह सब जिनवाणी की ही तो बलिहारी है कि हम आप कुछ बोध पाये हुए हैं । संसारके जीव प्रकृत्या दोषोकी तरफ लग रहे हैं । उनको दोषोंका उपदेश देने की आवश्यकता नही है । वे तो प्रकृत्या ही दोषो की ओर झुकते है । विषय कषायोकी ओर प्रकृत्या झुकते हैं । उनको कोई सांसारिक कार्योंके उपदेशकी जरूरत नही । वे तो प्रकृतिदोषमे चलते ही चले आ रहे हैं । इनको उपदेश देनेकी जरूरत है मोक्षमार्ग की । कैसे छुटकारा मिले ? कैसे वह आत्मज्ञान मिले ? कैसे वह आत्मरमण मिले ? कैसे आत्मतृप्ति मिले ?

परलक्ष्यमे शान्तिकी असभवता—लोग चाहते है शान्ति और ऐसी शान्ति मिले जो उत्कृष्ट हो । जिसका कही विनाश न हो । तो भला बतलावो ऐसी शान्ति किसी परपदार्थके ख्यालमे मिल सकती है क्या ? नही मिल सकती । क्यो नही मिल सकती ? यो कि जो विषय साधन है जो परपदार्थ हैं उनपर इसने उपयोग दिया । तो पहिली गल्ती तो यह हुई कि अपने प्रदेशसे बाहर जाकर बाहरी घरमे ठहरे, अपना घर इसने छोड दिया तो बात यह हुई कि बाहरी जो पदार्थ है वे विनाशीक है । तो जिनपर इसने राग लगाया है वह जब नष्ट होगा तो इतना खेद खिन्न होगा ना । इसलिए परपदार्थो के लगावमे कोई चाहे कि हम शान्ति पाले तो यह कभी हो ही नही सकता । जितनी शान्ति अब भी मिलती है तो यह न समझिये कि परपदार्थ के संयोगसे मिलती है, किन्तु ज्ञान इस तरहका बनाया है कि जिससे यह अपने से कुछ कृतकृत्य सा समझने लगता । मेरे करने को अब काम नही रहा । जो करने का काम था वह कर लिया, ऐसा भाव मनमे जगता है , उसका थोडा सुख मिलता है, चीजके मिलनेका सुख नही मिलता । जैसे किसीको कोई मकान दुकान, फर्म या कोई चीज बनानी हो तो जब तक वह चीज नही बनती तब तक तो आकुलता है, बेचैनी है और उस चीजके बननेमे जो क्षणिक मौज मिलता है तो लोग कहते है कि उस चीजके बननेमें सुख मिला, लेकिन वास्तविकता यह नही है । उस चीजके बन जानेपर जो उसके मनमे यह भाव बनता कि अब मेरे करनेको काम नही रहा, इस ज्ञानका आनन्द है वहा कामका आनन्द नही । चीजका आनन्द नही । बात सब जगह एक सी घटेगी । योगीजन काममे पड़े बिना, काम किए बिना पहिलेसे ही समझ लेने है कि मेरे करने को बाहरमे कुछ काम ही नही पड़ा । मेरे को तो यह ही काम था कि मैं अपने

ज्ञानस्वरूपको अपने ज्ञानमे समाये रहूँ, ऐसा काम यदि कर पाया तो मै कृतकृत्य हूँ। तो बाहरमे करनेको कुछ काम नही, जब यह भाव बनेगा तब समझ मिलेगी । तो लोग बाहरमे कुछ काम होनेके बाद ऐसा ज्ञान कर पाते है योगीजन कामसे दूर रहकर ही यह ज्ञान बना लेते है इसलिए उनको शान्ति मिलती है ।

चिकीर्षाके अभावमे शान्तिकी सभवता—एक दृष्टान्त लो । किसी मित्रका पत्र मानो दो जगह आया, दो मित्र थे कि मैं अमुक गाडी से जा रहा हूँ और इस स्टेशन से जाऊँगा, आप स्टेशनपर मिल जाये । उसको उस स्टेशनपर उतर कर उस गाव न जाना था आगे जाना था । तो एक मित्रने तो उस पत्रको फाडकर फेंक दिया सोचा कि क्या मिलना ? और दुसरे मित्रने मिलने की इच्छा की । तो वह मानो करीब ८ वजे दिन मे प्रतिदिन सोकर उठा करता था और ८ ही वजे उस स्टेशनपर गाडी आनी थी, तो उसदिन वह मित्र दो घटे पहिले ही उठकर सारे काम वडी जल्दी-जल्दी मे निपाटता है, फिर जल्दी ही स्टेशनपर पहुचता है । वहा पहुचकर पता लगाता है कि गाडी अभी कितनी लेट है ? पता पडता है कि अभी १५ मिनट लेट है, तो कुछ खेद सा हो जाता है, जब गाडी आती है तो बडी दौड धूप करके वह अपने मित्रको पालेता है । गाडी वहा कोई ५ मिनट ही ठहरनी थी । वह अपने मित्रसे मिलकर बडा प्रसन्न हुआ । दो ही मिनट बाद झट वह खिडकीसे झाँकने लगा—कही गार्डने सीटी तो नही दे दी, कही गाडी चल तो नही पडी । जरा बताओ उस मित्रसे मिलने पर जो वह सुखी हुआ तो किस बात से सुखी हुआ ? क्या मित्रके मिलने का सुख है ? अरे तुम्हे सुख ही तो चाहिए । उस मित्रसे मिलकर खूब सुख लूटते रहो । क्यो झाँकने लगे खिडकीसे ? क्यो उतरने की सोचने लगे ? तो मालूम होता है मित्रसे मिलनेका वह सुख नही है, किन्तु मित्रसे मिलनेका अब काम नही रहा इस बातका सुख है । मेरे करनेको अब बाहरमे कोई काम नही रहा यह ज्ञान जिस प्रकार आये उस प्रकार करें तो शान्ति मिलेगी । मेरेको बाहरमे कुछ काम करनेको पडा है यह ख्याल जब तक है तब तक उसे शान्ति नही है । भगवानका एक नाम है कृतकृत्य । जिसने करने योग्य काम सब कर लिया । तो जिसे अब करनेको काम कुछ नही रहा, यह ही तो भगवान का स्वरूप है । हम उसका आशिक पालन करे, ऐसा ज्ञानबल बढाये कि यह हमारी दृष्टिमे आये कि मेरे करनेको आत्मप्रदेशसे बाहर कुछ काम नही है । देखिये—इसीलिए तत्त्वज्ञान करना होता । मैं आत्मा हू, ज्ञानस्वरूप हू । ज्ञानस्वरूप ही मेरा सर्वस्व है । मैं अपने आपके ज्ञानको ही कर पाता हू, ज्ञानको ही भोग पाता हू, मैं अपने प्रदेशोंसे बाहरमे कोई काम नही कर पाता हूँ ।

काम जितना भी बाहरमे होता है। वह निमित्त नैमित्तिक योगसे होता है, पर मैं बाहरमे किसी पदार्थका कुछ भी परिणाम सकने वाला नही हू वे परिणामते हैं अपनी क्रियासे। हम उसमे निमित्त होते है। निमित्त नैमित्तिक भाव नही मिटता। वहतो चलाता ही है अनादिसे। और चलता ही रहेगा। तभी व्यवस्था है, लेकिन प्रत्येक पदार्थ केवल अपने आपका परिणमन करता है। दूसरेसे मेरे द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका सम्बध नही है। तो यह मैं आत्मा देखो विश्वके समस्त पदार्थोंसे निराला हू। मेरेको बाहरमे कुछ करनेका काम ही नही है। कर ही नही सकते। किया ही नही गया कुछ। केवल कल्पना भर ही कर रहे कि मैंने यह किया, मै यह करूगा।

क्लेशकी कारणभूत प्रथम भूल अहंकार—जीवकी क्लेशके कारण चार प्रकारकी भूले है पहली भूल तो मै क्या हू इस सम्बन्धकी है। यह जीव जानता है कि मै मनुष्य हू। पुरुष हू, स्त्री हूँ, ज्ञानी हू, मूर्ख हु, राजा हू, रक हू, इस प्रकारके नाना विकल्प अपनी श्रद्धामे बनाये रहते हैं, एक भूल तो यह है इसकी। होता क्या है कि जो यह श्रद्धा रख रहा है कि मै इनका पिता हू तो पिताको जिस तरह करना चाहिए उस तरह की चेष्टा करेगे ही। क्या करे? पुत्रो को सुखी करे, खूब धन जोडे, करेगे चेष्टा, और जब यह जानेगे कि मैं तो केवल ज्ञान स्वरूप हू तो ज्ञानस्वरूपके नातेसे जो करना चाहिये था सो करेगे। मानो वह साक्षी रहेगा, ज्ञाता दृष्टा रहेगा, बाहरी पदार्थो मे हर्ष विषादन करेगा। क्या बडे-बडे समागमो मे रहने वाले लोग सम्यक्त्व नही पाते? भरत चक्रवर्ती छह खण्डका राज्य था लेकिन सबसे निर्लेय थे। लोग कहते हैं कि भरत घरमे बैरागी। भरत ही क्या, जितने सम्यग्दृष्टि ज्ञानी गृहस्थ होते है वे घरमे रहते हुए वैरागी रहते है। जब जान लिया कि मेरे आत्माका केवल मेरा आत्मस्वरूप ही सर्वस्व है तो उसे व्यामोह क्यो होगा? घरमे रहनेके कारण वह तो अपना कर्तव्य निभायगा। तो पहिली भूल जीवकी अपना स्वरूप समझनेके बारेमे है।

क्लेशकी कारणभूत द्वितीय भूल ममकार—दूसरी भूल है बाहरी पदार्थोंको अपना धन मानने की। यह मेरा घर है, मेरा पुत्र है, मेरा देह है। परमार्थ दृष्टिसे देखो वस्तुत मेरा है क्या? मेरा तो वह है जो मेरा कभी साथ न छोडे। जो मेरा साथ छोडे वह मेरा क्या? बहुत सीधी कुन्जी है। अपना क्या है यह समझनेकी। जो मेरा साथ छोड दे वह मेरा नही है और कहते ही है लोग कि वक्त आये पर जो साथ न निभाये, जो साथ छोड दे वह मेरा क्या? तो अब देखिये क्या मेरा साथ देह देगा? ये कुटुम्ब, धन,

सम्पदा इज्जत ये कोई लोग मेरा साथ देंगे, मेरे साथ चलेगा क्या ? मेरे साथ तो मेरा ज्ञान ही चलेगा। उस ज्ञानकी जो कलायें है वे रहेगी। कोई भी मेरा साथ न निभायेगा, इसलिए मेरा धन, मेरा सर्वस्व मेरा ज्ञान स्वरूप है, किन्तु मोहीजन ऐसा न मानकर बाहरी पदार्थोंको मानते कि ये तो मेरे हैं इसीलिए दुःखी होते। कहने की बात और कुछ माननेकी बात भले ही ऐसी रहे, मगर श्रद्धामे स्पष्ट यह रहे कि मेरा तो परमाणुमात्र भी नही है, केवल मेरा ज्ञानस्वरूप है। सेठका मुनीम भी तो सेठकी सारी जादादके प्रति मेरी-मेरी ही तो कहता है, मेरी जायदाद, मेरा फर्म। ग्राहकोंसे भी कहता कि मेरा तुमपर इतना गया, तुम्हारा हमपर इतना आया। मुझे आपसे इतना लेना है, आपको मेरेसे इतना लेना है पर बताओ क्या तो मुनीमको लेना और क्या देना ? अरे वह तो सेठकी सम्पत्ति है। कहनेको तो मुनिम भी कहता है, पर उसका अर्थ क्या ? वह तो उसका कर्तव्य (Duty) है। उसकी श्रद्धामे यह बात बसी है कि मेरा कुछ नही है, तो ऐसी बात जो स्वय सेठ है, धनी है, सम्राट है वह भी तो अपनी सम्पदाके प्रति यही भाव रख सकता है कि मेरा कुछ नही है। जो वास्तविक बात है वह ज्ञानमे क्यो न रहेगी ? एक सेठ था तो उसके यहाँ जो मुनीम था वह सेठ की प्रवृत्ति देखकर बड आश्चर्यमे रहता था कि यह कैसे निर्लेप रहते हैं कई घटनायें देखा एक बार किसी फर्म मे मानो बडा टोटा पड गया, खबर आयी तो मुनीमने कहासेठ जी इस बार तो फर्ममे १० लाखका टोटा पड गया--तो सेठ जी बोले हो गया टोटा, क्या है ? वह तो बाहरी बात हैं ? क्या परवाह है ? सेठकी बातको सुनकर मुनीम दग रह गया। बडे आश्चर्य मे पड गया, सोचाकि देखो इतना बडा टोटा पडने पर भी इसके चित्तमे जरा भी कलुषता नही आयी। कुछ समय बाद मानो तगडा मूनाफा हुआ तो मुनीमने सेठको खबर दी कि इस फर्म मे तो १० लाखका मुनाफा होगया तो सेठ बोला—हो गया होगा मुनाफा, क्या है ? वह तो बाहरी बात है ? अब तो मुनीम को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। मुनीमने सेठ से पूछा कि सेठ जी, क्या कारण है कि आप न मुनाफेमे हर्ष मानते और न टोटे मे विषाद मानते ? तो सेठने समझा दिया कि देखो भाई यहा किसका क्या है ? ये तो सब बाहरी चीजे है, लोग तो केवल उनके पीछे व्यामोह करते हैं।

ममतामे कल्पनासे विडम्बना—रत्नकरण्डश्रावकाचार मे परिग्रह पापकी कथामे बताया है कि एक स्मश्रुत नवनीत नामका पुरुष था। स्मश्रुत कहते है मूछको और नवनीत कहते हैं मक्खनको। हिन्दीमे उसका नाम मूछ मक्खन कहलो। तो उसका काम

क्या था ? उसने एक बार किसी श्रावकके यहां छाछ पिया तो छाछ पीनेके बाद मूछमे हाथ फेरा तो कुछ दही हाथ मे लग गया। उसने सोचा कि अगर १०–२० घरोमे रोज इस तरह से छाछ पी लिया करे और मूछपर हाथ फेर कर दही इट्ठा कर लिया करे तो कुछ ही दिनोंमे काफी घी इकट्ठा हो जाया करेगा। बस यह ही काम उसका रोज रहे। मानो साल भर तक उसने यही काम कर लिया तो कोई तीन सेर घी जोड लिया। एक दिन जाडेके दिनोंमे वह अपनी झोपडीमे बैठा हुआ ताप रहा था। घी ऊपर सिकहरेमे लटका हुआ था। आग नीचे जल रही थी तापते हुएमे वह उसी जगह लेट गया। लेटा हुआ कुछ विचार करने लगा कलके दिन मै इस घीको बाजारमे ले जाकर बेचूंगा, जितनेमें बिक जायगा उतनेमे एक बकरी खरीदूँगा। उससे कुछ मुनाफा होनेपर गाय खरीदूंगा। धीरे–धीरे भैंस खरीद लूँगा, उससे मुनाफा होनेपर बैल खरीद लूँगा; फिर कुछ खेती कर लूंगा, घर बनवा लूंगा,। विवाह कर लूँगा । यो वह पडा हुआ कल्पनाये कर रहा था, उसे कुछ निद्रासी आने लगी पर उसकी कल्पनाये अभी आगे ही बढती जा रही थी। फिर सोचा कि विवाह हो जानेके बाद बच्चे होंगे। कोई बच्चा मेरे पास आयगा, कहेगा कि पिता जी भोजन करने चलो, मा जी ने बुलाया है, तो मैं कह दूँगा कि अभी नही आता, फिर दुबारा आयगा तो कहूगा कि अभी नही आता, तिबारा बुलाने आयगा तो लात-फटकार कर कहता है—अबे अभी नही आता। तो लातकी फटकार से उसका घी आगमें गिर गया। घी जलने लगा, झोपडी जलने लगी। अब वह बाहर निकलकर चिल्लाता है—अरे भाइयो दौडो हमारा मकान जल गया, हमारी स्त्री जल गई, हमारे बच्चे जल गए, हमारे जानवर जल गए। पडोसके लोग उसकी बात सुनकर दग रह गए। सोचा कि अभी कल तक तो यह भीख मागता था, आज कह रहा है कि हमारा मकान जल गया, हमारे जानवर जल गए, हमारे बच्चे जल गए। जब किसी ने उससे पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया। तो एक सेठने कहा-अरे क्यो रोता, क्यो दुखी होता ? तेरा तो कुछ भी नही जला, तू कल्पनाये ही तो कर रहा था, तेरा कहा था कुछ ? तो वहा किसी समझदार ने उस सेठ से कहा सेठ जी तुम भी तो व्यर्थमे दुखी होते फिरते हो। यह मकान, यह धन, ये घरके लोग तुम्हारे है कहा ? तुम तो कल्पनायें भर करते हो। क्यो व्यर्थमे इनके पीछे रात दिन चिन्तित रहा करते हो ? अरे तुम तो एक सबसे निराले जीव हो, तुमने कल्पनासे यहा सबको अपना बना रखा है। तो मै केवल एक ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप ही मेरा सर्वस्व है। इसके अतिरिक्त अब मेरा कुछ नही है, ऐसा ज्ञान बनाओ, इसमे भूल न आये।

क्लेशकी कारणभूत तृतीय भूल कर्तृत्वबुद्धि—तीसरी भूल यह होती है कि मैं अमुक काम करता हू, अरे जीवदृष्टि देकर देखो तो सही कि मैं देहमे रहने वाला अपने प्रदेशो मे रहने वाला एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। तो मैं जो कुछ कर पाऊगा वह अपने प्रदेशो मे ही कर पाऊगा या किसी बाहरी पदार्थ मे कर सकूगा ? अपने प्रदेशो मे ही कुछ काम कर सकूगा। एक अगुली जो कुछ भी कर सकेगी वह अपनी अगुली मे ही कर सकेगी। जैसा अगुली टेढी कर लिया तो अगुली का सब कुछ अगुली मे ही हुआ, अगुली से बाहर कुछ नही हुआ। हाँ अगुली का सम्बन्ध हो तो बाह्य पदार्थ भी यहा से वहाँ उठ जाय। इस स्थिति मे भी अगुली ने तो केवल अपनी अगुली मे क्रिया की। उसके बीच मे वह चीज फस गई। यही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहलाता। तो अगुली चलाने का निमित्त पाकर यह चीज भी चली पर वस्तुत परमार्थत देखो तो अगुली ने अपने मे ही अपना सब कुछ किया। इसी तरह हम आप सब ज्ञान करते है। इच्छा करते हैं, विकल्प करते हैं, जो कुछ करते है वह उन प्रदेशो मे करते, प्रदेशो से बाहर नही करते। तो यह श्रद्धा मे आ जाय कि बाहर मे मेरे करने का कुछ काम ही नही है। मै अपने मे सब कुछ किया करता हूँ। तो एक ज्ञान प्रकाश मिलेगा। तो तीसरी भूल यह सुधारनी है मैं क्या करता हू ?

क्लेशकी कारणभूत चतुर्थभूल भोक्तृत्वबुद्धि—चौथी भूल होती है भोक्तृत्वबुद्धि-कि मै भोजन भोगता हू, स्त्री भोगता हूँ, पुत्र भोगता हूँ, धन भोगता हू, सम्पदा भोगता हूँ, राज्य भोगता हूँ, आनन्द लेता हूँ, पर वास्तव मे यह जीव तो ज्ञानका आनन्द लेता है, कल्पना का आनन्द लेता है। कल्पना के सिवाय और कुछ नही भोगता, तो यह भूल भी हमे मिटाना है और समझना है कि मैं कर्ता भोक्ता अपने आपमे अपने आपका हू, बाहर का नही हू। बाहरमे तो जो होता है वह उदयानुसार होता है। गृहस्थी मे रहने के कारण हमारा कर्तव्य है कि हम अपना कर्तव्य निभाते रहे, दुकान पर बैठे, काम धधा करे, उसी मे जो कुछ भी आय होती हो उसमे सन्तुष्ट रहना चाहिए और उसी मे अपने गुजारे की बात बनानी चाहिए, और कर्तव्य इतना ही समझे। तो मेरा ज्ञान विशुद्ध हो, मेरा आच-रण अच्छा हो। मेरे विचार शुद्ध रहे, सब जीव सुखी हो, किसी जीव को मेरे द्वारा बाधा न हो। सब भगवान हैं। सब का आदर करे किसी को कुछ न मिले, ऐसा अपने भीतर मे एक फैसला बनाये तो हमको शान्तिका मार्ग मिलेगा।

मुमुक्षुका नायक—हमारा नायक कौन है ? सकटो से छुटकारा दिलाने मे कौन मेरा मार्गदर्शक है, इसका निर्णय होना अपनी भलाई के लिए अति आवश्यक है।

मेरे नायक वीतरागसर्वज्ञ हितोपदेशी जिनेन्द्रदेव है। आज के समयमे यद्यपि जिनेन्द्रदेव नही दिखते, लेकिन उनकी परम्परा से चला आया हुआ जो उपदेश है उस उपदेश मे, उस वचन मे सब जगह जिनेन्द्र देव के दर्शन हो सकते है। ये प्रभु जो मोक्षमार्गके प्रणेता है, स्वयँ जीवनमुक्त हुए है और मुक्तिका ही जिनका सबके हितके लिए उपदेश है, वह सकलज्ञेय ज्ञायक है फिर भी अपने ही आनन्द रसमे लीन हैं। प्रभु बाहरी बाहरी किसी भी पदार्थमे कुछ करते बिगाडते नही है । आम लोगो की यह भावना बन गई कि कोई परमेश्वर हम सबको बनाता है। मिलाता है, नरक भेजता है। स्वर्ग भेजता है, क्यो यह धारणा बनी ? इसका मोटा कारण तो यह है कि जब किसी बातका तथ्य समझमे नही आता, कोई रहस्य विज्ञात नही होता तो यह प्रकृति लोगों की हो गई कि उस बातको ईश्वरपर ढाल देते है कि यह तो ईश्वरकी मर्जी है, ईश्वरकी करनी है, ऐसे कर्ता धर्ता ईश्वरकी उपासनामे इस जीवको कोई लाभ नही हो सकता । जिसके चित्तमे यह बात हैं कि ईश्वर मेरेको सुख देने वाला है, मेरी सृष्टि करने वाला है तो उसमे वास्तविक भक्ति तो न जागेगी। डरके मारे भक्ति करेगे यह मुझे नरक भेज दे, दुखी न करदे। तो डरके मारे होने वाली भक्ति कोई भक्ति नही। यहा तो डरके मारे लोग बडे-बडे अफसरोकी सेवा करते है। तो क्या यह कोई भक्ति मे सामिल है ? भक्ति तो वह है जहा गुणानुराग होता है। यह कोई परमेश्वरका गुण है क्या ? कि वह किसीसे मारे पीटे, दुखी करे, सुखी करे, स्वर्ग भेजे, नरक भेजे, प्रभुका गुण तो ज्ञानानन्दका अतुल विकास है। और युक्तियोसे भी विचार लीजिए। परमेश्वर यदि जगत का कर्ता है तो वह क्यो कर्ता है ? क्या हम सब जीवो पर दया करके कर्ता है ! या वह तो अपना मन रमाने के लिए करता है ? यदि हम सबकी दयाके लिए करता है तो दया ही करते रहना चाहिए । क्यो दुख दे, क्यो पाप करता, क्यो कष्ट देता ? जो बडा पुरुष हो वह तो समर्थ होता है। सबको सुखी करदे। वह तो अपने मनको रमाने के लिए करता है । तो इसमे तो कोई बडप्पन नही हुआ। अपना मन रमानेके लिए यदवा तदवा प्रवृत्ति करने वाला कैसे महान् कहला सकता है ? तो हम आप सबको करनेका काम ईश्वरका नही है । ईश्वरका काम तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्दका उपभोग करके रहना है, जिसके स्वरूपके स्मरणके प्रतापसे ही पाप दूर होते, ऐसा स्वरूप है प्रभुका तो प्रभु विकल्प करने वाला नही है, जगतका कर्ता हर्ता ईश्वर नही, किन्तु वह तो अतुल आनन्द और ज्ञानका निधान है। और भी देखिये परमेश्वर अगर कर रहा है किसीसे तो यह बतलावो कि जो पहिलेसे है उसीको कर रहा है या जो है ही नही बिल्कुल उसे कर रहा

है ? यदि कहो कि जो पहिलेसे है वह कर रहा है तो जो है उसके करने का क्या मतलव ? यह तो है ही' यदि कहो कि जो सर्वथा है ही नही उसे कर रहा तो इसे तो विवेकी नही मान सकता । वैज्ञानिक भी कहते है और उन के ही शास्त्र कहते है कि जो असत् है उसका कभी सद्भाव नही हो सकता । कोई युक्ति इस बात को सिद्ध नही कर सकती कि परमेश्वर' जगत को करने वाला है । अन्य श्रद्धा की बात अलग है । यो तो जब सबसे पहिले रेलगाडी निकली थी तो मानो जिस किसी भी दिन किसी लाइन से कोई गाडी निकल रही थी तो उसको देखने के लिए बहुत से लोगो की भीड लग जाया करती थी । तो आगे का जो काला–काला इजन होता था उसको देखकर लोग समझते थे कि इसके अन्दर काली देवी है और वह इस रेलगाडी को चलाती है । कोई बात जब नही समझ मे आती कि तथ्य मे क्या है, कैसा निमित्तक भाव है, वस्तु का क्या स्वरूप है, जब समझ मे न आया तो लोगो का एक ही उत्तर रहता है कि यह तो सब ईश्वर की करतूत है । ईश्वर की लीला है । पर परमेश्वर और परमईश्वर है । ईश्वर कहते ही उसे है जो अपने ऐसे ऐश्वर्य को भोगे कि जिसमे किसी की आधीनता न हो, उसे कहते है परमेश्वर । तो ऐसा यह वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी आप्त भगवान हमारे मोक्षमार्ग का नायक है ।

भैया ! अपने सिरपर अपने हृदय मे विराजमान करें अपने मोक्षमार्गके नायकको । बडे का हाथ सिर पर रहेगा, बडे की छत्र छाया मे हम रहेगे, सकट न आयेगे । बडे है मेरे को तो ये अरहत जिनेन्द्र परमात्मदेव हैं, व्यवहार मे ये ही महान है । इनमे भक्ति जगे, ऐसी धुन बने कि मेरे लिए तो एक भगवान ही सहायय है । घरमे रहना पडता है, बच्चो का पालन पोषण करना पडता है, व्यापार करना होता है । सब कुछ करना पडेगा, गृहस्थी मे कर्त्तव्य है वह, लेकिन यह श्रद्धा बनाये रहे कि बस मेरे को शरण है तो यही मेरा परमात्मतत्त्व और जिसकी स्मृति और ध्यान कराने मे मददगार है तो यह व्यक्त परमात्मस्वरूप । दर्शन जब करने आते है प्रभु के तो यहा सबसे पहिले णमोकार मन्त्र और चत्तारिदण्डक बोलना चाहिये । तो चत्तारिदण्डक मे बताया है कि चार चीजें मगल हैं । मगल उसे कहते है जो पापो को गलाये और सुख को पैदा करे । गालयति इति मगल । मं कहते है पापको और उसे जो गलादे, नष्ट करदे सो मगलतिइति मंगल मग कहते है सुखको । इसीसे तो उमग शब्द बना । तो जो मगको उत्पन्न करे उसे मंगल कहते हैं । ऐसे मगल है अरहत, सिद्ध, साधु और धर्म । व्यवहारमे तो अरहत, सिद्ध, साधु है, ये तीनो ही प्रभु है । सिद्ध प्रभुके अश है । अरहत पूर्ण प्रभु हैं । तो प्रभुताको मंगल बताया है, और निश्चयसे आत्मा मगल है । मेरा जो स्वभाव है अपने आप निरपेक्ष सहज मेरी जो कला है वह मेरे लिए मगल है ।

ग्रानन्दकी सहजसाध्यता—देखो कितना ग्रन्तर है कि कष्ट तो बनाने से बनता है ग्रौर ग्रानन्द स्वयमेव होता है। ग्रानन्द बनानेसे नही बनता। वह सहज स्वभाव है। ग्रपने ग्राप होता है। कष्ट बनाने से बना करता है। हम विचारते है, विकल्प करते हैं, सोचते है, कष्ट बनाया करते है। कष्टकी बात छोड दे, परिश्रम व्यापार छोड दे तो ग्रानन्द तो इस जीवको सहज ही होगा वह कृत्रिम नही होता। कष्ट है कृत्रिम। ग्रानन्द नैमित्तिक नही होता। कष्ट तो नैमित्तिक है। तो यह कष्ट पराधीन है। बनाने से बनता। नैमित्तिक है। यह कष्ट तो जीवोसे लग रहा है व्यामोहसे सरल ग्रौर ग्रपना ग्रानन्द लग रहा है इसको कठिन। देखिये जब भी होनहार ग्रच्छा होगा तब यह ही स्थिति ग्रायेगी कि समस्त बाह्य पदार्थो का व्यामोह छूटेगा उपेक्षा होगी ग्रौर ग्रपने ग्रात्मस्वरूपकी दृष्टि बनेगी। तो यह वात ग्रभीसे ही कर ली जाय तो नफेकी वात है या नुकसानकी ? बड़े लाभकी बात है। जीवन सफल हो जायगा। यदि एक यह प्रकृति हमारी बन जाय, दृष्टि बन जाय बस ग्रानन्द ग्रौर ज्ञान तो मेरा स्वभाव ही है। मेरेको कोई कष्ट नही। हम कृतार्थ है। मेरे पर कोई भार नही। हम तो स्वरूपत पूर्ण निस्पन्न सही है। खेद किस बातका ग्रौर, ऐसा धैर्य उत्पन्न हो कि जो परिस्थिति ग्राये सो ग्राये। किसी भी परिस्थिति से मेरे ग्रात्माका बिगाड नही है। चाहे सम्पदा मिट जाय चाहे इष्ट वियोग हो जाय, चाहे देह भी छूट जाय कुछ भी स्थिति ग्राये, किसी भी स्थितिसे मेरे ग्रात्माका बिगाड नही है। यह बात स्पष्ट झलकना चाहिए। तथ्य भी इसीमे है। वस्तुस्वरूप भी यह ही बताता है। जो पदार्थ है वह ग्रपने ही स्वरूपमे है। ग्रपने मे ही ग्रपना उत्पाद व्यय करता है। किसी ग्रन्यसे सम्बंध क्या है। जीव तो मोह मे सम्बध मानता है, पर प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र ग्रपना स्वरूप रखता है। मै रहूगा। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हू, मेरा किसीसे कोई सुधार ग्रौर विगाड नही है। मेरे लिए बाहरसे क्या है। ज्यादहसे ज्यादह कोई यह सोच सकता है कि शायद कभी किसीकी ऐसी स्थिति ग्राये कि निर्धन हो जाय, लोकमे इज्जत न रहे, कोई सन्मान न करे तो जीवन कैसे चलेगा ? तो देखो गृहस्थावस्थामे कुछ चाहिये तो जरुर कुछ क्रान्ति सम्पादन, लेकिन जिसको ग्रात्मोद्धारका ही ख्याल है उसके लिये ये सव वाते व्यर्थ जचती है। जो हो सो हो। ऐसे भी योगिराज हुए है कि जिनका उनके समयमे कोई ग्रादर करने वाला न था, उनको जानने वाला भी न था। लेकिन ग्रपनी साधनासे वे जव कर्ममुक्त हो गए तो उनके ग्रानन्दमें, उनके विकास के क्या कोई कमी हुई ? ग्रौर जिनके वारेमे प्राय सबको परिचय है ऐसे ग्रादिनाथ भगवान मे ग्रानन्दमे कोई ग्रन्तर है क्या ? वहा सब एक स्वरूप है, सव भगवान है। तो जगतकी क्या बात है।

परमें शत्रकी व्यर्थता—इस लोक मे ऐसा कोई उपाय नही है जो सबको प्रसन्न कर सके, और न ऐसे कोई मनुष्य हुए है जो सारे विश्व को प्रसन्न रख सके। तीर्थकर भी ऐसे नही हुए कि जिनके प्रति सारे लोगोकी श्रद्धा हुई हो और सब जीव जिनकी महिमा गाते है मगर विवेकियो ने उनकी महिमा गायी तो अविवेकियो ने निन्दा भी की। जगत मे कोई भी ऐसा नही हुआ जो सारे विश्व को सन्तुष्ट कर सकता हो। तो जब आधे निन्दक है, आधे प्रशसक है, आधे सन्तुष्ट है, आधे असन्तुष्ट है, तो सब सन्तुष्ट हो तो क्या, असन्तुष्ट हो तो क्या ? इसमे क्या बिगाड ? जगतका ऐसा स्वरूप जाने' वस्तुत कोई भी जीव किसी का आदर नही करता। किन्तु वह अपने भावका ही आदर करता है। कोई किसी से प्रीति नही करता, किन्तु वह अपने विचार, कषाय, भावना और जो कुछ समझ रखा है उससे प्रीति करता है। वास्तविकता यह है 'पुत्र अगर किसीकी आज्ञा मानता है तो यह पिता है इस कारण आज्ञा नही मानता, किन्तु उसने खुद अपने को समझ रखा है कि आज्ञा मानते रहने मे हमारी भलाई है। हमारी सुख सुविधाये है, हमारा इससे भवितव्य अच्छा है, इस बातमे आज्ञाकारी बनता है। इनसे बुरा मानना यो जरूरी नही है कि यह वस्तु स्वरूपकी बात कही जा रही है। ऐसा कभी हो ही नही सकता कि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तुका द्रव्य गुण ग्रहण कर सके। तो इसीतरह समझिये सबकी बात। जो आज्ञा नही मानते उन्होने समझ रखा है कि आज्ञा माननेसे हमारा कोई सुख नही, शान्ति नही। जो पुरुष जिसमे सुख शान्ति समझते है वे उसके अनुरूप कार्य करते है। मतलब यह है कि कोई किसी का भक्त नही। पिता पुत्रकी बात तो जाने दो। वस्तुत कोई भगवानका भी भक्त नही। जो भी भगवानका भक्त हो रहा है वह अपने भावका भक्त है, भगवान का भक्त नही। निश्चयदृष्टिसे देखे तो भक्तके चित्त मे यह बात है कि हम ससार से पार इस तरह होंगे। भगवानके स्वरूपका स्मरण करें, भगवानके गुणो मे अनुराग करे, अपने आपके स्वरूपमे प्रतीति आये यह बात मुझे ससार के सकटों से छुटायेगी। तो ससार के सकट छूटने के ध्येय से भगवानकी भक्तिमे आता है। कही भगवान हमारे किसी रिस्ते मे हो या महत हो, इसलिए भक्तिमे नही आते। प्रयोजन यह है कि प्रत्येक जीवकी प्रवृत्ति अपने आप के लिए हुआ करती है। दूसरो के लिए नही हुआ करती। तो यह वस्तु स्वरूपकी बात है। समझना होगा। जो वस्तुस्वरूप जानेगा-उसका मोह दूर होगा।

गृहस्थमे भी निर्मोहताकी सम्भावना—गृहस्थ निर्मोह होकर भी घरमे रह सकता है। राग न हो तब तो घरमे नही रह सकता, पर मोह न तो तब भी वह घरमे रह

सकता है। और, निर्मोह गृहस्थ सदा शान्त प्रसन्न रहता है, क्योंकि उसका दृढ श्रद्धान है कि लोककी किसी भी परिस्थितिके कारण मेरे आत्माका सुधार और बिगाड नही है, किन्तु मेरे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की परिणतिसे सुधार है और मिथ्या दर्शनज्ञान चारित्रकी परिणतिसे बिगाड है। ऐसी सत्य श्रद्धा रखने वाला गृहस्थ निर्मोह रहता हुआ घर मे प्रसन्न चित्त रहता है। राग बिना तो घर मे रहना नही बनता, पर मोह के बिना घर मे रहना बन सकता है। तो हमे अपने नायक की सच्ची खबर हो तो हम अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकेगे। हमारा नायक है वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेश। इनकी सुधमे हमे अपनी भी सुध रहेगी। हम सदा अपने ही ज्ञान मे अपना काम करते है। हम सदा अपने ही ज्ञान से अपने ज्ञान मे रहा करते है। हम खोटी कल्पनाये करके रहे तो, अच्छा विचार बनाकर रहे तो, हमारा सारा सम्बन्ध केवल हमारे अपने आत्माके प्रदेशमे ही है। मेरे प्रदेश से बाहर मेरा कोई सम्बध नही । ऐसे ही अन्दाज करलो, जिस घरमे आज आप है मानो इस घरमे न पैदा होते, कही दूसरे देशोमे, किसी और घरमे पेदा हुए तो आपको इस घरकी कोई ममता, कल्पना, ख्याल, लगाव कुछभी होता क्या ? और, ऐसा हो नही सकता क्या ? सारे घरोमे कहा पैदा है ? एक घरमे है तो बाकी घरोकी ममता लगाव है क्या ? गुजारा करने के लिए काम करना पडता है, वह करना होगा, करना चाहिए उसमे तो गृहस्थोसे अपराध नही, किन्तु यह अज्ञान बनानेमे अपराध है कि मेरा सर्वस्व तो यह ही है, इसके बिना मेरा जीवन नही, इसके बिना मेरा उद्धार नही। ऐसा ज्ञान बनाने मे, मोह बनानेमे बहुत बडा अपराध है। तो अपराधका फल बेचैनी है, पाप का बध है, तो एक यह गुण उत्पन्न ,कीजिए कि सम्यक्त्व जगा रहे और मोह न रहे। एक यह ही गुण होगा तो नियमसे मुक्ति मिलेगी।

जीवका वास्तविक ठिकना—सम्यक्त्व जिसने पा लिया उसकी मुक्ति रिजर्व है। निकट कालमे ही उसे मुक्ति प्राप्त होगी। तो सम्यग्दर्शनके लिए तन, मन, धन, वचन, प्राण सब कुछ भी न्योछावर करदें और एक सम्यक्त्वका लाभ उठाले तो आपने सर्वस्व वैभव पाया, यो समझलो। जिनका चित्त बेठिकाने है, जिनके चित्तको कोई अपना धाम मिला ही नही है कि जब चाहे उस अपने ठिकानेमे बैठकर सच्चा आराम तो करले। ऐसा अपने आपका ठिकाना ही नही मिला तो यह उपयोग भटकता ही फिरेगा और कही जमकर न रह सकेगा। और जिस जीवको अपना ठिकाना हो गया—मेरा ठिकाना मेरा यह आत्माराम है। मेरा जो ज्ञानानन्दस्वभाव है वही मेरा सच्चा धाम है। कुछभी कष्ट हो, कही भी कोई

विडम्बनाकी बात आये तो झट अपने धाममें पहुचें, अपने ठिकानेकी श्रद्धा रखें तो इसे शान्तिलाभ होगा। और जिसको अपने घरका पता नही वह परघर फिरता रहे, या दिमाग खराब हो गया और दूसरेके घरमे बैठनेकी, रहनेकी कोशिश करे तो क्या कही जम सकेगा ? न जम सकेगा ? तो इसीतरह हमारा घर है, हमारा आत्मा है, इसकी तो सुध न हो और दिमाग बिगड गया, ज्ञान बिगड गया, व्यामोह हो गया और पर पदार्थोंको अपना घर मानता, उन पर पदार्थो मे विश्राम करने चाहे तो क्या वहाँ जम सकेगे ? वहा तो चिगेंगे, हटेंगे, धोखा होगा, कष्ट पायेंगे। तो इस बातकी महिती आवश्यकता है कि हम अपने सत्य स्वरूपको जान जाये। बडा साम्राज्य मिल गया, उससे भी अधिक आवश्यक है आत्मज्ञान। या बडी समृद्धि मिले उससे भी अधिक आवश्यक है। एक आत्मज्ञान, आत्मरमण। अन्य बातें आवश्यक हैं नही। यह तो परिस्थितिवश जुदी-जुदी पद्धतिमे आवश्यक समझा जाता है एक साधारण अस्थिर प्रयोजनके लिए। अपना विश्वास एक।

आत्महितचिन्तनामे आत्मकीर्तन—आत्मकीर्तन के ४-५ पदोमे जो कुछ विवेचन है उसके ही सहारे से अपना चिन्तन रखिये। मेरी सत्ता स्वय सिद्ध है। मेरा स्वभाव चलायमान न होगा, मे चेतन ही रहूगा, मेरे स्वरूप मे विकार, कष्ट नही है। मेरा स्वरूप ज्ञाताद्दष्टा रहित है। मे वह हूँ जों भगवान है। अन्तर यही पड गया कि वे वीतराग हैं और यहाँ राग है। यह राग मिट जाय तो मुझमे और भगवानमे कोई अन्तर रहेगा क्या ? यह राग मेरा जा सकता है, क्योकि औपाधिक हैं कर्मोंदयके निमित्तसे हुआ है। मेरे स्वरूप-की चीज नही है। मेरा स्वरूप प्रभुके समान है। वही ज्ञानानन्द शक्ति सब कुछ मेरे में हैं। लेकिन परपदार्थ का व्यामोह करनेसे यह मेरी दयनीय दशा हो गई है। हम प्रभुकी उपासना इस मुद्रामे करे कि जो मुद्रा वास्तवमे प्रभुकी होती है। निर्लेप, अकिनचन केवल ज्ञानस्वरूप, तो ऐसी ही मुद्रा जिनेन्द्र देवकी बनायी गई है। निर्लेप, अकिञ्चन, नासादृष्टि, केवल ज्ञान और आनन्दमे लवलीत, जिस मुद्राको देखकर हमे प्रभुका यथार्थ स्वरूप झट सामने आ जाय वही तो दर्शनके योग्य है। तो ऐसा प्रभुवत मेरा स्वरूप है, उसकी सुध हुई है। वाहरमे जो आज हमारी स्थिति है तो दुख उत्पन्न होता है। हमे दुख देने वाला कोई दूसरा प्राणी नही है। कोई जानता है कि यह मेरा विरोधी है, मुझे सुख देता है। कोई विरोधी नही है। सब चेतन है। सब भगवानस्वरूप है। सब अपने अपने कषाये के अनुसार अपने मे प्रवृत्ति करते हैं, सो वे भी अपनी शान्तिके लिए प्रवृत्ति करते हैं। मेरे विरोधके लिए नही करते। तथ्य तो यह है। कोई मेरा विरोधी नही। कोई सुख दुख दाता

नही। मोह रागद्वेष ये ही मेरे को दू,खके कारण है। सो ये दु ख कब मिटे, जब मैं यह जानजाऊँ कि यह मै ज्ञानानन्द स्वरूप, यह मै आत्मा यह तो मैं हूं और इसके अतिरिक्त बाहरमे जो कुछ है वे सब पर हैं, ऐसा जब बोध हो तो मोह टूटेगा और दु खका कारण मिटेगा। देखो सबसे बडी बात है। अपनी सत्य छायाकी पहिचान करलो मेरा सच्चा घर क्या है। मेरा निजी घर यह मै आत्मतत्त्व हू, जिसके नाम—जिन, शिव, ईश्वर, ब्रहमा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि है। ये आत्माके ही तो स्वरूप है, आत्माके ही तो रूप है। और शब्दोसे देखा जाय तो पापोसे हरे सो हरि। कौन हरेगा ? यह मै आत्मा। तो यह ही मैं हरि हूँ। जो व्याप कर रहे सो विष्णु। कौन रहता है व्यापकर ? यही मैं आत्मा। जो ज्ञानस्वरूप हो सो बुद्ध। ऐसा कौन है ? यही मैं आत्मा। जिसमे योगीजन रमण करे वह राम। वह कौन है ? यही मे ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्व। जो ऐश्वर्य वाला है, जो सृष्टिकी रचना करे वह ब्रह्मा, ऐसा कौन है। यही मैं आत्मा। जो रागद्वेषादिकसे जीते सो जिन ? वह कौन है ? यही मैं आत्मा। ऐसा मै अपने धाममे किसी प्रकार अगर पहुंच सके तो आकुलताका फिर कोई काम नही हो सकता। अपने अन्तस्तत्त्वकी सुधले, यह ही मात्र अपना शरण है। जिसका जो परिणमन है वह उसकी परिणतिसे होता है। मै कुछ नही करता बाहरमे। मैं विकारोको दूर करूँ, और अपने आनन्दमे रहूँ। कुछ आत्मभावना चले तो यह एक अपनी स्वरक्षाका साधन है।

प्रथमसूत्रमे मुमुक्षुका आश्वासन—इस तत्त्वार्थसूत्रका प्रथम सूत्र है सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणिमोक्षमार्ग. जिसका अर्थ है सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इन तीनोका एकत्व मोक्षका मार्ग है। मोक्षमार्गकी बात सुन कर चित्त मे एक शका हो सकती है कि मोक्ष तो होगा बादमे, अभी तो बध है। बधपूर्वक मोक्ष है बध था तब मोक्ष हुआ। तब फिर पहिले बधके कारणो को क्यो नही बताया जाता ? एक ऐसी बात आ सकती है मनमे। चित्त ही बता देगा कि अगर बध की और बंधके कारणो की बात सबसे पहिले कहेगे तो यह जीव पकड़ा जायगा। बध दु खका कारण है। बधके कारण विपत्तियां हैं। उनके कारण यह जीव भय कर सकता है। उसकी एक राहत देने के लिए सबसे पहिले मोक्षकी बात कहा है। बध तो है ही अनादि से। कारण जरूर बधके बताने पडेंगे क्योंकि बधके कारण बताये बिना उन कारणोकी उपेक्षा कैसे न करेंगे ? सो बतायेगे। प्रथम तो कष्टमुक्तिकी बात कह रहे है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकत्व ही मोक्षका मार्ग है। जैसे कोई जेलखाने के बन्धन मे बधा हुआ हो और उसे बधका व्याख्यान किया

किया जाय तो वह डरता है और अगर उसे छूटनेकी बात कही जाय तो उसे कितना प्रिय लगता है। इस तरह इस बंधनबद्ध जीवको मोक्षकी बात बतायी जाय तो इसे बडा विश्वास होगा। अतएव मोक्षके कारणो की बात पहिले कही जा रही है।

तत्त्वार्थसूत्रकी उपपत्तिका हेतु—तत्त्वार्थसूत्रकी उपपत्तिकी उत्थानिका सुनो—इसमे तीन बाते हो सकती है। एक तो यह कि उस जमानेमे मोक्षमार्गका प्रतिपादन विपरीत तरीके से चल रहा था। कोई मोक्षका कारण ज्ञानको मानता था और कोई वैराग्य मानता था, कोई श्रद्धा मानता था, या कोई लोग अन्य अन्य प्रकार के भक्ति आदिक क्रियाकाण्ड मानते थे। तो अनेक बाते थी। तो उनका निराकरण करनेके लिए इस सूत्रजी की उत्पत्ति हुई है। दूसरी बात जैसे प्रसिद्ध है कि एक श्रावक के घर उमास्वामी आहार करनेके लिए गए, वहा उन्होने देखा कि भीट मे लिखा हुआ था, दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग। तो उस सूत्र के पहिले उन्होने एक सम्यक शब्द और जोड दिया। तो यह श्रावक इस महा-शास्त्रकी व्याख्या करना चाहता था, पर यह समझकर कि जब पहिले सूत्रमे ही गल्ती निकली तो फिर मै इसमे कहा समर्थ हू। सोचा कि मैं उस आचार्यके पास चलू जिन्होने उसकी रचना की। तो उनके पास गए। तीसरी बात यह हो सकती है जो प्राय करके है ही कि ससार के जीवोको दु खमे निमग्न देखकर उनका उद्धार करनेकी अभिलाषा हुई हो। जैसे भी यह जीव अज्ञान दशाको छोडकर ज्ञानकी स्थितिमे आवे और ससार के समस्त दु खोसे छुटकारा पावे, ऐसा मनमे आया, जीवोके प्रति एक विशुद्ध करुणा उत्पन्न हुई, उसके कारण इस ग्रन्थकी रचना ग्रन्थकर्ताने की। अथवा ये तीनो ही बाते समझो। इन तीनो बातो से इस महाशास्त्र की रचना हुई है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनो की एकता मोक्षका मार्ग है। सक्षेपमे बात यह है कि आत्माके सहज स्वरूपका याने यह आत्मा अपने आप ही परकी अपेक्षा बिना स्वय जैसा है उस प्रकार का श्रद्धान हो जाना कि यह मैं हू इसे कहते हे सम्यग्दर्शन और तत्वके बारे मे अपने आत्म-स्वरूप के बारेमें यथार्थ बोध हो जाना इसे कहते हें सम्यग्ज्ञान और जैसा कि बोध किया जैसा कि श्रद्धा की, जैसा कि स्वरूप समझा उस ही स्वरूप मे मग्न होना उस ही स्वरूपके अनुरूप वृत्तिया होना इसे कहते है सम्यकचारित्र। तो इन तीनो की एकता मोक्षका मार्ग है।

आत्मकरुणाका प्रथम पाद—अब जरा सम्यग्दर्शन के बारे मे थोडा विचार करें। यद्यपि इसके सम्बन्ध मे विशेष विवरण आगे के सूत्र मे आयगा फिर भी प्रसग आया है

तो सम्यग्दर्शन के विषय मे भी कुछ सोचे। सम्यग्दर्शन क्या है ? जैसा कि आगे कहा है—तत्वअर्थ का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। जैसा वस्तुका स्वरूप है उस स्वरूपसहित पदार्थ का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। यह बात बनती कैसे है ? तो इसके लिए सबसे पहिले विशुद्धोपयोग की आवश्यकता है। कुछ तो विशुद्ध अध्यवसाय हो, शुभ सकल्प हो, कुछ परिणामो मे विशुद्धता जगे, कषाय मद हो। ऐसा उपयोग बनेगा तो उस उपयोग के प्रसाद से ऐसी योग्यता प्रकट होती है कि उपदेश का ग्रहण भी हो सकता है। कोई पुरष क्रोध मे बसा हो तो उसके उपदेश कहाँ लगेगा ? कोई मान कषाय के रग से रगा हुआ हो तो उसके उपदेश कहाँ लगेगा। कोई मायाचारी, छल कपट मे लगा हो तो उसके उपदेश की बात कहा लगेगी। ऐसे ही कोई लोभ के रग से रगा हो तो उसके भी उपदेश की बात नही आ सकती। कषाये मद हो, यह अपने लिए भली चीज है। देखिये—जीवन चला जा रहा है, गुजरा जा रहा है लेकिन लोग इन कषायो की तीव्रता मे कमी नही कर रहे है। जरा जरा सी बातो मे लोग क्रोध करने लगते, अपने को महान तथा दूसरो को तुच्छ समझने लगते, मायाचारी करते तथा लोभ कषाय की तीव्रता करते इससे भाई यह सामने रखकर कि जो कुछ भी मिला है वह कभी न कभी मिटेगा। लोग सोचते है कि मैं ऐसा मकान बनाऊँगा कि जो कमसेकम ५०० वर्ष रहे, अपने आप पर कुछ भी दया नही करते। अरे अपने आप पर कुछ तो दया करो। अन्य सब बाते असार समझो। सबको दुखका कारण समझो, भ्रमजाल समझो। पर वस्तुओमे लगना यह सब विपत्ति है। जिस कालमे इस भगवान आत्मतत्त्वमे दृष्टि जाती है सम्पन्नता तो उस कालमे है। सहज ज्ञानस्वभावी अखण्ड ज्ञायकस्वभाव जो है सो है। जैसे अग्निके विषयमे कोई वर्णन करे कि अग्नि किसे कहते है। तो वह कहता है कि जो जलाये सो अग्नि, जो प्रकाश करे, सो अग्नि, जो रसोई जलाये सो अग्नि, जो ठढ मिटाये सो अग्नि, जो ताप उत्पन्न करे सो अग्नि। ये विशेषताये बतायी तो जा रही है पर वह जो है सो है। वह अपने परिणामनमे जल रही है। उस अग्निके समझानेके लिए भेद है, इसी, तरह आत्मासे समझानेके लिए भेद है। जिसमे ज्ञान है। श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है आत्मा, पर आत्मा तो स्वय अपने आप एक चैतन्य-स्वरूप पदार्थ है और उसका प्रतिसमय अपने आपके रूपमे अखण्ड परिणमन होता चला जाता है।

आत्मदर्शनके उपायमे सर्वप्रथम मंदकषायकी आवश्यकता—आत्मस्वरूपकी दृष्टि बने इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि अपने जीवनमे कषाये मद करे। खोजो—जैसे घर मे घुसे हुए चोरको लोग सब जगह भली भाति खोजकर निकालते कि नही ? उसे तो सब

तरहसे घरसे बाहर भगाने की कोशिश करते है। इसीतरह अपने आपके अन्दर चोर हैं ये विषय कषाय, ये पर वस्तुके सम्बधके लगाव। इन्हे खोज खोजकर निकालनेका यत्न करे तो यह बुद्धिमानी है। और, अगर इनमे ही आनन्द मानने लगे तो घर लुट जायगा। इन विषय कषायो को अपने आपमे खोज करे कि मेरे अन्दर लोभादिक का गहरा रग चढा है कि नही। अगर चढा है तो समझोकि वडी आपत्तिमे पड गए, वडी विडम्वनामे पड गए। इसमे कभी भलाई नही है। इसीतरह अन्य सभी कषायोकी भी अपने आपमे खोजकरें। क्या सार पानेके लिए क्रोध किया जा रहा है ? तो क्रोधभी कम करें। यद्यपि कषाये कम होना आत्मदृष्टिपर निर्भर है फिर भी आत्मदृष्टि करने की पात्रता होंना कषायोकी मंद करनेके आधारपर है। कोई तीव्र कषाय करता रहे तो वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका पात्र नही हो सकता। उससे होगा उपयोग विशुद्ध और उपयोग विशुद्ध होनेसे दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम, की योग्यता वनेगी।

सम्यक्त्वोपपत्तिता अन्तरङ्ग निमित्त—अन्तरग निमित्त दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षेयोपशम, सातो प्रकृतियोका उपशम आदिक यह है सम्यग्दर्शनका निमित्त कारण। देखिये–निमित्त नैमित्तिक भावका खण्डन बनानेके प्रयोजनसे लोग ऐसा भी बोलने लगे हैं कि देखो वहुत बार तो ऐसा समवशरणमे गए, पर सम्यग्दर्शन न हुआ। बहुत बार जिनबिम्बके दर्शनकिया पर सम्यग्दर्शन न हुआ, अनेक बार उपदेश सुना, पर सम्यग्दर्शन न हुआ। तो निमित्त कारण तो कुछ न रहा। वे यह नही समझते हैं कि समवशरणमे जाना, जिनबिम्बके दर्शन करना, उपदेश श्रवण करना, ये सम्यग्दर्शन के निमित्त कारण नही है। सम्यग्दर्शनका निमित्त कारया तो सात प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षेयोपशम है। तो कही भी कोई बताये कि सात प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होते होते सम्यक्त्व नही हुआ। तो ये बाहरी चीजे निमित्त नही कहलाती, ये आश्रयभूत कहलाती हैं, अर्थात् उपयोग इनका आश्रय लेता है और इनका आश्रय पाकर एक शुभ विकल्प बनता है। उसमे ऐसी योग्यता जगती है कि सात प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम आता है। इससे सम्यक्त्व उत्पन्न होता हैं। निमित्त कारण उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदिक अवस्थायें हैं। जीवके भाव बनानेमे बाह्यपदार्थ निमित्त नही है, मात्र आश्रयभूत हैं। जेसे किसी पुरुषको किसी नौकरपर क्रोद्ध आया तो लोग झट कह देते है कि देखो यह नौकर इस पुरुषको क्रोधी बनाने मे निमित्त कारण पडा, पर यह बात गलत है। न तो नौकर ने क्रोध कराया

और न वह नौकर उसके क्रोधका निमित्त कारण है। क्रोध कषाय का निमित्त कारण है क्रोध प्रकृतिका उदय और वह नौकर उस क्रोध कषायमें नोकर्म पड गया, आश्रयभूत होगया। आश्रयभूतका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बंध नही है। आश्रयभूत हो तो कार्य जरूर हो यह नियम नही, पर समर्थ निमित्त हो वहां कार्य हो, यह दार्शनिकशास्त्र खूब बतला रहा है और आजके अनुभवभी बतला रहे हैं। क्रोध प्रकृतिका निमित्त कारण था जीवका क्रोधकषाय और उस क्रोध कषायका निमित्त कारण है क्रोध प्रकृतिका उदय और नौकर वगैरह दिख गया यह हुआ नोकर्म। कभी देखा होगा कि किसी स्त्रीसे अगर पति लड गया और स्त्री को बडा तेज गुस्सा आ गया तो वह क्या करती है? पतिका तो कुछ कर नही सकती, पर वह अपना गुस्सा उतारती है अपने बच्चे पर। वह एक दो थप्पड बच्चेके जमा देती है। आखिर क्या करे वह? भीतर मे कषाय उठी तो उसका कुछ तो परिणाम होना ही चाहिए। तो आश्रयभूत पदार्थका सम्बध नही है कार्यके साथ। निमित्त नैमित्तिकभाव है। आश्रयके साथ नही है। अत ऐसी बात कहकर निमित्त नैमित्तिक भावकी व्यवस्था बनाना कोई बुद्धिमानी नही है। तो कुछ लोग निमित्त नैमित्तक भावको इतना महत्त्व देते है कि उसमे कर्ता कर्म भाव भी लाद देते है। क्रोध प्रकृति जीव ने क्रोध पैदा कर दी यह भी बात ठीक नही है। क्रोध प्रकृतिके उदयमे अपने आप क्रोध प्रकृतिका लाभ लिया, पर जीवने क्रोध नही किया। क्रोधप्रकृतिके विपाकका निमित्त पाकर जीवने अपनी परिणतिसे क्रोध कषाय उत्पन्न की। एक दृष्टान्तमे देखो—जैसे हम इस तखतमें बैठे है तो तखतने हमे नही बैठाया किन्तु इस तखतका निमित्त करके मैं खुद बैठ गया। इस तखतने मेरेमे कुछ बात नही की। इसका कुछ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मेरेमे नही आया। आप लोग तो यह देख ही रहे है। सर्वत्र निमित्त नैमित्तिक भावकी ऐसी ही व्यवस्था हे।

सम्यक्त्वके संदर्भमें—हम परिणाम विशुद्ध करें, कषायों को मंद करे। तत्त्व ज्ञान की ओर प्रयास करे। जो यथार्थ वस्तु का स्वरूप है उसका चिन्तन करें। तो ऐसे परिणाम का निमित्त पाकर यह संबंध है कि दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो जाय और जहा दर्शन मोहका क्षय, क्षयोपशम आदिक हो वहा इसको सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। सबसे पहिले जीवको उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है न क्षायोपशमिक न क्षायिक। इन तीनो का मतलब समझो--जैसे एक शीशी में गदा तैल भरा है। थोडी देर बाद दो चार दिन बाद उसका मैल नीचे बैठ जायगा। तब ऊपर वह तेल बिल्कुल साफ हो जायगा।

तो यह क्या कहलाया कि उस मैलका उपशम हुआ। अब वह तेल बिल्कुल निर्मल है और उस शीशी को कोई हिला दे तो उसका मैल ऊपर उठने लगेगा। इस स्थितिमे कुछ निर्मल और कुछ मलिन दीखेगा। इसे समझे क्षयोपशम। दाखिला तरीके बोल रहे है। और, जब उस शीशी का उपशम हो गया उस समय तेल को दूसरी शीशी मे निखार लिया जाय तो वहा मैल का नाम नही है। इस ढग का समझलो क्षय। तो जीवके जब सात प्रकृतियो का उपशम होता है तो सम्यग्दर्शन तो निर्मल हो जाता है मगर दबा है। तो जिस समय वह दाग उठता है तो उस समय उसका सम्यक्त्व विघट जाता है। देखो यह बात तो अन्य की है पर आपका पौरुष क्या करे ? क्या आप यह पौरुष कर सकते हैं कि मैं इन सातो प्रकृतियो को दबा दूँ। और इन प्रकृतियों को तो देख भी नही सकते, छू भी नही सकते। स्पष्ट ज्ञान मे भी नही आती। हम युक्ति से, आगम से जानते हैं। और वे हैं पर पदार्थ। उन पर आपकी कोई करतूत नही चल सकती। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का कर्त्ता नही होता। उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अर्पित नही कर सकते। तो उस कर्म को क्या करोगे ? कर्मों मे कोई परिणति नही बनती। हाँ भाव का निमित्त पाकर कर्म अपने आप मे अपनी परिणति बनाया करते हैं। तब हमारा पौरुष कहा चलेगा ? हमारा पौरुष चलेगा विशुद्ध ज्ञान बनाने मे। एक ही काम है कल्याण के लिए कि विशुद्ध तत्त्वज्ञान उत्पन्न करे। सर्व पदार्थों का जैसा स्वरूप है उस स्वरूप मे उसकी परिणति प्राप्त करे। ऐसा परिचय पाने से परिणामो मे निर्मलता आयगी और सम्यग्दर्शन होगा। तो उपयोग विशेष जब हमारा होता है, विशुद्ध अध्यवसाय सकल्प बनता है तो मन, वचन की चेष्टायें हमारी अटपट नही होती है और उस समय भीतर मे ज्ञान का ऐसा विशुद्ध व्यापार चलने लगता है कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है यहाँ सम्यग्दर्शन का एक सक्षिप्त लक्षण बताया। विशेष आगे कहा जायगा।

सम्यग्ज्ञानका दिग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान क्या चीज है ? सम्यग्ज्ञान–जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसे उस रूपसे समझना सच्चा ज्ञान है। पडी तो है रस्सी और हो जाय ऐसा भ्रम कि यह साप है या रस्सी है तो क्या यह सम्यग्ज्ञान है ? अरे सम्यग्ज्ञान (सच्चाज्ञान) वही है कि जो पदार्थ जिस प्रकार से अवस्थित है उसको उस ही प्रकार से जानना। देखो जीवतो कोई एक ज्ञानप्रकाशमय पदार्थ है और उसे ससारी जीव इस तरह से जान रहे है कि जो देह पाया उसी को मान बैठते है कि मैं तो यह हू, तो क्या यह कोई सच्चा ज्ञान है ? अरे यह देह तो मैं नही हूँ। मैं तो इस देह से भी निराला एक ज्ञान ज्योति स्वरूप पदार्थ हू। तो जो पदार्थ जिस तरह हो उस तरह जानने का काम

सम्यग्ज्ञान है। इसका उपाय है नय और प्रमाण, जिसका विशेष वर्णन इस अध्याय में आगे आयगा। मगर थोड़े शब्दो मे समझ लीजिए कि पदार्थका सर्वतोमुखी जो स्वरूप है उसका परिचय पाना प्रमाण है और प्रमाण से जान कर उस पदार्थ के बारे में एक एक विषय को जानना, एक एक धर्म का परिचय करना यह कहलाया ना ? तो नय प्रमाण पूर्वक जीवादिक पदार्थों का बोध होता है। इसका विषय आगे स्पष्ट होगा। पर यहां इतनी बात समझ ले कि जो पदार्थ जिस रूप मे अवस्थित है उस रूप से परिचय पाना सो सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्रकी भावना—सम्यक्चारित्र क्या है ? सही आचरण करना सम्यक्चारित्र है। आत्माका जो सही स्वरूप है उस स्वरूपमे ज्ञान चलना, ज्ञानमे वह स्वरूप समाना और उस स्वरूपके अनुकूल ज्ञानकी परिणति बनना अर्थात् ज्ञाताद्रष्टा रहना, राग-द्वेषका अभाव होना यह है सम्यक्चारित्र। तो सम्यक्चारित्रकी यह है एक ऊंची अवस्था, पर उसके लिए प्रयोग जो पहिले किया जाता है वह प्रयोग क्या है ? अशुभ मन, वचन कायकी चेष्टायें न होना, शुभ मन, वचन, कायकी चेष्टाये होना और फिर शुभ मन, वचन कायकी चेष्टाओंका भी परिहार होना अर्थात् अपने आपमे निर्विकल्प अभेद विधिसे मग्न होना वह कहलाता है सम्यक्चारित्र' सम्यक्चारित्र कौन धारणकरता ? जो संसारके कारणो को हटाने के लिए उद्यमी हुआ है। ससारके कारण है असंयम अश्रद्धा, अज्ञान। मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टाये, अशुभ चेष्टाये। तो ससारके कारणोंसे निवृत्त होनेके लिए जो उद्यमी हुआ है ऐसा जो उत्तम ज्ञानवान पुरुष है उसका जो बाह्य और अन्तरङ्ग कर्मोंका उपशम है उसका नाम सम्यक्चारित्र है। बाह्य कर्म क्या ? शरीरका हिलना, वचन बोलना, और, आन्तरिक क्रिया है, विचार करना, ज्ञान करना। तो मन, वचन, कायकी क्रियाओंका उपशम होना, इसका नाम सम्यक्चारित्र है। देखिये अपनी सही श्रद्धा हो, अपने आत्माका सही ज्ञान हो और इस ही स्वरूपमे रुचि बने, यहा ही मग्न होनेकी धुन बने, उसका ही स्पर्श करे, बाह्य से हट जाये तो उसका एक ऐसा अलौकिक लाभ उत्पन्न होगा कि उसके अभी भी शान्ति है। आगे भी शान्ति होगी। कर्मोसे वह छूट जायगा। उसका कल्याण ही कल्याण है। परवस्तुके मोह रागद्वेषमे किसी प्रकार का कल्याण नही।

प्रथमसूत्रमे सकलक्लेशविध्वंसके उपायका संदर्शन—संसारके दु खोसे छूटनेका उपाय क्या है इसका वर्णन इस प्रथमसूत्रमे किया जारहा है। आत्माके सहज चैतन्यस्वरूप-का आत्मारूपसे श्रद्धान होना, यह मै हूँ इस प्रकार की प्रतीति होना और उसका ज्ञान एवं उसही मे रमण (आचरण) होना, यह संसारके दु खोसे छूटनेका उपाय है। इसकी समझ

इसके विपरीत बात सोचने से जल्द हो जायगी। जब यह जीव अपने आत्माके सहजस्वरूप-का विश्वास नही रखता, ज्ञान नही करता और इसही स्वरूपमे अपनी धुन नही बनाता, आचरण नही करता, उस समय की स्थिति देख लो—केवल क्लेश ही क्लेश है। संसारके इतने सारे जीव करते ही क्या हैं ? पर दृष्टि परको आत्मारूपसे श्रद्धान और पर दृष्टि करके जो विकल्प बनाया उसी विकल्परूप आचरण रहता है। ये ही काम करते चले जा रहे हैं तो इसके फलमे कष्ट ही कष्ट मिलते चले जा रहे है। पर वस्तुका श्रद्धान, ज्ञान और आचरण यही समस्त दु खोका कारण है, दूसरा कोई दु खका कारण नही।

स्वरूपोद्बोधनसे स्वरूपश्रद्धानकी संभवता—अब अपने आपका श्रद्धान कैसे हो ? तो देखो—जगतमे जितने भी पदार्थ हैं उनकी सत्ता अपने आप है, किसी दूसरे पदार्थकी दयासे नही है। किसी भी पदार्थकी सत्ता दूसरे की दयासे नही है। स्वय अपने आप है, क्योकि वह सत् है। जो सत् नही है वह किसी भी प्रकार कितना ही मेल करनेके बाद भी सत् नही बन सकता। जो सत् है वह किसी भी अन्य द्रव्यके सत्त्वके लिए अपेक्षा नही करता फिरता। प्रत्येक पदार्थ सत् है और वह स्वत सत् है। किसी पदार्थको किसी भी प्रकार बनाया नही जा सकता। अथवा किसी के मेल होनेसे उसकी सत्ता नही बनती। प्रत्येक पदार्थकी सत्ता अपने आप है, और जैसे पदार्थ स्वय सिद्ध है उसीप्रकार पदार्थ स्वय परिणमनशील है, किसी अन्य पदार्थका निमित्त (सम्बंध) होनेसे पदार्थमे परिणमनशीलता आयी हो यह बात नही है। तो प्रत्येक पदार्थ स्वय सहज परिणमनशील है, यह पदार्थकी कला है इस सूत्रजीमे बताया है कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत्-,जो पदार्थ है वह अपने आप स्वयँ उत्पाद व्ययध्रौव्यसे युक्त है। अगर पदार्थमे उत्पाद स्वभाव न हो तो फिर कितने ही कारण कलाप हो, पर उत्पाद हो नही सकता। व्यय और ध्रौव्य स्वभाव न हो तो कितने ही उपाय किये जावे, पर व्यय और ध्रौव्य उनमे नही हो सकते। यह तो पदार्थका स्वरूप है कि प्रति समय उत्पाद करे, विपरीत पर्याय विलीन करे और वह सदा काल बना रहे। जो बात कही जाय उसको अपने आपमे घटित करनेकी बात समझना। समस्त शास्त्रो का प्रयोजन है आत्महित। आत्माहितका प्रयोजन जिसका न हो वह खूब शास्त्रज्ञान भी करे, बडी बडी बातें भी बोले फिर भी उसका ज्ञान ऐसा है जैसा कि धन वैभव। उससे कुछ वास्तविक लाभ न उठा पाया। तो देखिये मैं आत्मा हूँ, अपने आप हू, अपने आप परिणमनशील हू, मैं खुद मे खुद ही हूँ, मैं नवीन अवस्थाये बनाता हू, पुरानी अवस्थायें विलीन करता हूँ, और सदा काल ध्रुव रहा करता हूँ। यह है अपनी एक सहज कला। यह तो बतलाया एक साधारण बात, जो कि सभी द्रव्योमे पायी जाती है। अगर द्रव्यमे साधारण

गुण, असाधारण गुण न हो तो वह द्रव्य ही नही है। साधारण गुण असाधारण गुणके बलपर नाचते है और असाधारण गुण साधारण गुणके बलपर टिक रहे हैं। साधारण और असाधारण दोनो प्रकार के गुण पदार्थमे हुआ करते है।

स्वके असाधारण गुणके संदर्भमें—इसमे असाधारण गुण क्या है? चैतन्य, ज्ञान दर्शन, ये ज्ञान दर्शन जब सही रूपमे आते है तो दुःखोंने छूटने की विधि बनती है। हमारे ज्ञानदर्शन आदिक गुण जब विपरीत अवस्थामे रहते हैं तो हम संसारमे रुलते है। अब एक प्रश्न यह है कि विपरीत अवस्थामे क्यो चल उठे? तो यद्यपि पदार्थ अपने उपादानसे अपनी ही परिणतिसे परिणमते है, बुरा परिणमे तो, भला परिणमें तो, लेकिन केवल इतनी ही बात रहे कि अपनी ही शक्तिसे अपने ही कारण अपने ही मात्रसे ये विकार रूप परिणम जाते हैं तो फिर सदा विकाररूप परिणमा करे। फिर विकारसे रहित अवस्था क्यों होती है? जो निरपेक्ष, परसम्बन्ध विना जो बात होती है वह सदाकाल और समस्तरूपमे हुआ करती है। तब सिद्ध होता है कि मुझ आत्माके साथ कोई विपरीत वस्तु लगी हुई है। जिसे उपाधि कहते है उस उपाधिका सन्निधान पाकर यह मैं आत्मा विकार रूप परिणमता हूँ। यह एक विवेक रखना कि निमित्त बिना विकार होता नही, तिसपरभी निमित्त विकारकी परिणतिका कर्ता नही। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है। कोई भी दृष्टान्त आप बता नही सकते कि कोई भी विकार निमित्त के सन्निधान बिना हुआ हो। हो ही नही सकता। तो निमित्त सन्निधान बिना विकार नही हो सकता। निमित्तका सन्निधान अवश्य होता है तब विकार की बात बनती है। इतना होने पर भी प्रत्येक वस्तुमे उत्पाद व्ययध्रौव्य स्वत. है। यह आत्मा विकार रूप अपनी ही परिणति से परिणमा। निमित्तकी परिणति लेकर विकाररूप नही परिणमा। यह बहुत बड़े विवेककी बात है। जहा निमित्त नैमित्तिक योग भी यथार्थ ज्ञानमे रहे और वस्तु स्वतत्र भी ज्ञानमें रहे, ऐसी जानकारी निष्पक्ष आत्महितके अभिलाषी पुरुषके ही हो सकती है।

स्वके असाधारण गुणमें चित्सामान्य और चिद्विशेषकी प्रमुखता—यहां दर्शन ज्ञान की जरा व्याख्या सुनो—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र मोक्षका मार्ग है यह कहा गया है ना? तो वह दर्शन ज्ञान क्या है? जिस शक्तिके प्रतापसे यह जाना जाता उसका नाम है ज्ञान और जिस शक्ति के प्रतापसे यह जाने, देखें उसका नाम है दर्शन। जिस शक्ति के प्रतापसे यह जीव श्रद्धा करे उसका नाम है श्रद्धान। तो ये ज्ञान दर्शन गुण हम भेद दृष्टिमे परख पाते है। जिस शक्तिसे आत्मा जानता है उसका नाम ज्ञान है, जिस शक्तिसे आत्मा देखता है उसका नाम दर्शन है। ऐसी बात सुनकर कुछ ऐसा लगता होगा

कि तब ये ज्ञान दर्शन आत्मासे कोई जुदी चीज हैं तभी तो इनमे करण लगाया गया है। जैसे कोई बच्चा चाकू से पेन्सिल छीलता है तो वहा देखो वह बच्चा अलग चीज है और वह चाकू अलग चीज है। अथवा जैसे कोई लकडहारा कुल्हाडीके द्वारा लकडी काटता है तो देखो वहां लकडहारा अलग है और कुल्हाडी अलग है। तो क्या ऐसे ही आत्मा ज्ञानके द्वारा जानता है ऐसा कहने मे आत्मा अलग है ज्ञान अलग है ? क्या ऐसी बात है ? देखो कुछ दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अलग चीज है। आत्मा स्वय नही है। ज्ञानवान आत्मा स्वयं अपने आप नही हैं, किन्तु ज्ञानका सम्बन्ध होनेसे आत्मा ज्ञानी कहलाता है, ऐसा कोई दार्शनिक मानते है, और उनके ऐसा माननेका कारण क्या बना ? उन्होने सोचा कि जब ज्ञानका अर्थ जुदा है, आत्माका अर्थ जुदा है और ज्ञानके द्वारा आत्मा जानता है ऐसा उसमे कर्ता और करण लगाया गया है तो वह कोई जुदी चीज है, और, जब जैनी भी समझना चाहते हैं तो बोलते हैं नाकि आत्मा ज्ञान दर्शन आदिक उनके गुणोका पिण्ड है, तो इसमें भी कुछ ऐसा मालूम पडता है कि ज्ञान दर्शन आदिक अनेक चीजें हैं और उनका पिण्ड आत्मा है। तो मालूम पडा कि ज्ञान अलग है और आत्मा अलग है, लेकिन ऐसा नही है। अगर ऐसा मान लिया जाय कि ज्ञान जुदी चीज है आत्मा जुदी चीज है तो इसका अर्थ तो सही हुआ कि आत्मा ज्ञान बिना है स्वयं अपने आप और ज्ञान आत्माके बिना है। तब दो चीजें अलग-अलग मान ली गई' ज्ञान यहा पडा है आत्मा यहा पडा है तो ज्ञान बिना आत्मा हो गया और आत्मा बिना ज्ञान हो गया। जब ज्ञानका सम्बन्ध जुडा तब आत्मा ज्ञानी कहलाया। तो इसका अर्थ यही हुआ ना ? शकाकार जो कह रहा है उसका यहीं भाव हो गया। तो इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञानस्वभावी न रहा। आत्मा आत्मा है। जब ज्ञानका सम्बन्ध जुडा तो आत्मा ज्ञानी हुआ तो क्या अर्थ निकला कि आत्मा ज्ञानस्वभावी न रहा। तो जब ज्ञानस्वभावी न रहा आत्मा, ज्ञान शून्य रहा, तो क्या वजह है कि ज्ञानका सम्बन्ध आत्मासे हो रहा। ज्ञानशून्य तो पुद्गल भी है, धर्म आदिक पदार्थ भी हैं, उनमे क्यो नही ज्ञान चला गया ? आत्मा मे ही क्यो जोडा गया ? तो आत्माको अगर ज्ञानस्वभाव से रहित मानोगे तो पहिले तो हम यह न जान सकेंगे कि आत्मा है। वह तो ज्ञानशून्य होगया।

दृष्टान्तपूर्वक आत्मामे ज्ञानकी अभेदताका दर्शन—यहा एक दृष्टान्त लो। अग्नि उष्णता के द्वारा ईंधनको जलाती है, ऐसा कोई बोले तो क्या वहा आप कहेगे कि अग्नि जुदी चीज है और गर्मी जुदी चीज है ? अगर कोई ऐसा कह बैठे कि अग्नि गर्मी के द्वारा ईंधन जलाती है और इनमे अग्नि जुदी चीज है, उष्णता जुदी चीज है तो उष्णता के बिना

अग्नि हो गई और अग्निके विना उष्णता हो गई। तो हमे यह कैसे खबर पड़े कि यह अग्नि है ? इस चौकी को ही अग्नि क्यो नही कह बैठते ? जव उष्णताके विना अग्नि नाम पडा तो फिर और किसी चीज का नाम अग्नि क्यो नही रखते ? तो जव यह निश्चित ही न रहा कि अग्नि है तो फिर उष्णता का इसमे सम्वन्ध कैसे जोड़ा गया ? तो इससे सिद्ध होता है कि उष्णता अग्निसे जुदी चीज नही। वलिक सामने मानना पड़ता है कि अग्नि उष्णता मे है गर्मी मे है, वह अलग नही, ठीक इसी तरह आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञानसे अलग आत्मा नही है। और, जैसे अग्नि गर्मीके द्वारा ईंधनको जलाती है, यह वोलते है, इसीतरह यह वोला जाता कि आत्मा ज्ञानके द्वारा जानता है। तो आत्मको ज्ञानसे अलग मानने पर कुछ निश्चय न हो सकेगा। यदि आत्मा ज्ञानस्वभावी न हो आत्मा ज्ञानशून्य हुआ। तो ज्ञानशून्य आत्मा कैसे समझा जाय कि इसमें ज्ञान है ? इसका भी उत्तर दार्शनिकोने सोच रखा है कि समवाय का सम्वन्ध होने से, परका सम्वन्ध होनेसे जाना जाता है कि आत्मा ज्ञानवान है, ज्ञानका सम्वन्ध जुडा हुआ है' जैसे कपडा तो सफेद है, पर नीलका रग उसमे पुत गया तो कहते हैं कि कपडा नीला है, इसी तरह से कुछ लोग कहते है कि ज्ञानका सम्वन्ध जुटने से आत्मा ज्ञानी है। तो देखो जैसे नीले पदार्थके सम्वन्वसे कपडा नीला है यह ज्ञान करते है तो वहां वात ठीक है, क्योकि सम्वन्वसे पहिले वह नीला रग अलग था और कपडा अलग। दोनोका मेल हुआ तव कपडा अलग हुआ। वहां तो वात वन जायगी पर यहां न वनेगी। अगर यहा भी किसी तरह वनने को जिद्द करते तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान अलग रखा था और आत्मा अलग है। जव ज्ञान आत्मा में जुडा तो आत्मा ज्ञानी हुआ' अगर ऐसा मानोगे तो ज्ञानरहित आत्मा कोई वस्तु नही है। तो आत्मा कुछ न रहा। आत्माके विना ज्ञान कोई चीज नही। निराश्रय ज्ञान कहा है तो ज्ञान ही न रहा। दोनो ही न रहे तव वात किसकी करते ? तो समझ लीजिए कि आत्मज्ञानमय है। ज्ञानरूप ही आत्मा है' जैसे उष्णता स्वरूप ही अग्नि है ऐसे ही ज्ञानरूप ही आत्मा है।

ज्ञानस्वरूपकी भावनामे कल्याणका अवसर—अपने आप मे विचार करें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञान सिवाय मैं और कुछ नही। यह देह मैं नही, ये कपायें मैं नही हूं।, ये कपायें तो कर्मोदयका निमित्त पाकर इसमे हुई है। जव कर्मका उदय होता है तो कर्मरूप ही कपायें होती हैं। कर्म अचेतन है वे जान नही सकते और वे इस आत्मा मे झलकते हैं तो आत्मा इन्हे अपना लेता है कि ये ही तो मे हूं। क्रोध अनुभाग तो कर्म मे हैं यहां ये तो क्रोध झलकता है, मैं क्यो मानू कि मैं क्रोधरूप हूं। क्रोध तो एक नैमित्तिक भाव है, मैं

क्रोधरूप नही हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। देखो भाई यह ही अमृतपान है। अपने को अमर करना चाहते हो तो ऐसा अनुभव बनाओ कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानके सिवाय मैं अन्य कुछ नही हू। ज्ञान हो मेरा वैभव है वही मेरा सर्वस्व हैं। ज्ञान हो रहा है बस इतना ही मात्र मैं करने वाला हू, ज्ञान हो रहा है बस इतना ही मात्र मैं भोगने वाला हू। यह श्रद्धा रहेगी, यह दृष्टि बनेगी जितने काल उतने काल शान्ति रहेगी, मुक्तिका मार्ग मिलेगा, भला होगा, और इससे हटकर जहाँ बाहर दृष्टि लगाया कि यह मेरा घर यह मेरी दूकान यह मेरी स्त्री, ये मेरे बच्चे'' बस वहाँ रागद्वेष आयेगे, अनेक झंझट आयेंगे। आकुलता होगी। कल्याण नही हो सकता। बात भीतरमे देखना है। हम देखते हैं कि पदार्थ है, उसका परिणमन उसही पदार्थमे हो रहा है। तो मेरे आत्माका परिणमन भीतर जो हो रहा है दुखका सुखका, वह सब मेरे उपयोगकी कला से हो रहा है। सुखी शान्त होनेके लिए बाहरमे कोई सुधार बिगाड करनेसे काम न चलेगा। उससे तो अशान्ति ही मिलेगी। लोग सोचते है कि मैं इतने काम कर डालू, इतना इतना वैभव जोड डालू तो मैं शान्त हो जाऊगा, पर उनका यह सोचना गलत है। इस तरह से करके अगर कोई अब तक शान्त हुआ हो तो बताओ ? हा व्यवहारमे भले ही लोग कह देते है कि अमुक के पास बहुत अधिक धन है इससे वह बडा आदमी है बडा सुखी है' पर जरा उसकी वास्तविकता पर ध्यान दो क्या वह कभी शान्त हो पा रहा है अथवा क्या वह कभी वास्तविक आनन्द प्राप्त कर पा रहा है ? ? अरे यह धन वैभव सुख शान्ति का कारण नही। और फिर यह सोचो कि वह तो उदयके अनुसार प्राप्त होता है। धन वैभव कमानेके लिए यह मानवजीवन नही मिला। वे तो बाहरी हैं, वे उदयाधीन हैं, उनके लिए अपना जीवन न समझे। जीवन इसके लिए समझें कि मेरा मुक्तिका उपाय बने, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उपलब्धि हो जिससे कि यह दुर्लभ मानव जीवन सफल होगा। अन्य बाहरी बातो से इस मानव जीवनकी कोई सार्थकता नही है।

ज्ञानमय आत्मामे ज्ञानके संयोग सम्बन्धकी चर्चाकी अनवकाशता—यहा यह बात समझना है कि आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान है सो आत्मा। ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। आत्मामे ज्ञान हैं। ऐसा तो समझने के लिए बोलते हैं। इससे कुछ यह जाहिर होने लगता कि आत्मा अलग है, ज्ञान अलग है। जैसे कहते हैं कि घडेमे दही है। बोरेमे गेहूँ है, इस तरह आत्मामे ज्ञान नही है, किन्तु आत्मा ज्ञानस्वरूप है। कुछ दार्शनिक लोग ऐसा मानकर चले है कि आत्मा द्रव्य है, ज्ञान गुण है, और ये दोनो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, जब ज्ञानका आत्मामे समवाय सम्बन्ध होता है तब यह आत्मा ज्ञानी कहलाता है, इसी सम्बन्धमे विचार

चल रहा है। यदि ऐसा माना जाय कि आत्मा पदार्थ अलग है और ज्ञान नामक पदार्थ अलग है और उनका फिर समवाय (सम्बन्ध) होता है तब आत्माज्ञानी कहलाता है तो ऐसा माननेमे ये दोनों ही नही ठहरते। ज्ञान अलग है तो आत्माके बिना, सहारेके बिना ज्ञानका ठिकाना ही नहीं। आत्मा अलग है तो ज्ञान बिना आत्माका क्या स्वरूप है? न आत्मारहा और न ज्ञान, रहा, देखो जैसे छतरीके सम्बन्धसे छतरी वाला कहा जाता-यह आदमी छतरी वाला है तो छतरी अलग है और वह छतरी वाला होनेसे पहिले ही अलग था। सम्बन्धसे पहिले छतरी अलग थी और यह पुरुष अलग था। फिर हुआ सम्बन्ध तो बोलाजायगा छतरी वाला। सम्बंध जिसका माना जाय उसका अर्थ ही यह होता कि सम्बंधसे पहिले वे दोनों स्वयंसत् थे तब सम्बन्ध हुआ तो क्या ऐसा है? ऐसा तो नही है। यहाँ तो पुरुष के बिना छतरीकी सत्ता रह सकती है। छतरी के बिना पुरुषकी सत्ता बनी हुई है फिर सम्बन्ध हुआ है, लेकिन यहाँ आत्माके बिना ज्ञानका कोईअस्तित्त्व नही है, इसलिए सम्बन्धसे अगर आत्मा को ज्ञानी माना जाय तो न आत्मा रहेगा और न ज्ञान रहेगा।

ज्ञानमय आत्मामें ज्ञानके समवाय की चर्चाकी अनवकाशता—और भी इस विषयमे समझिये जैसे कोई कहे कि अग्नि उष्ण है, कैसे उष्ण है? उष्ण गुणका सम्बंध होनेसे अग्नि उष्ण है तो यह बतलावो कि उष्णगुणका जब सम्बध नही हुआ, अग्निके सम्बन्धसे पहिले अग्निके बारेमे यह ज्ञान हुआ था कि नही कि अग्नि उष्ण है; उष्णका जब सम्बन्ध न हुआ अग्नि मे उस समय ज्ञान हुआ कि नही कि अग्नि उष्ण है अगर कहो कि सम्बँधसे पहिले भी अग्नि उष्ण है ऐसा ज्ञान होता है तो फिर सम्बन्ध करनेकी जरूरत क्या रही? अग्नि तो उष्ण है ही, तब फिर उष्णका सम्बंध बनानेकी क्या आवश्यकता रही? यदि कहो कि उष्णका अग्निमे सम्बन्ध होने से पहिले अग्नि उष्ण है ऐसा ज्ञान नही होता है तो देखो उस अग्निमे यह उष्ण है ऐसा ज्ञान नही हो रहा। ऐसे ही इन चौकी, दरी आदिकमे भी तो यह उष्ण है यह ज्ञान नही हो रहा। तब फिर क्या वजह है कि उष्ण गुण अग्नि मे चिपका, चौकी दरी आदिकमे नही? तो उष्ण गुणका सम्बंध न हो सका अनुष्णसे और न अनुष्ण गुणका संबध हो सका उष्णसे। जैसे दरी चौकी आदिकमे उष्ण का सम्बन्ध न रहा। जब सम्बन्ध की बात मानोगे तो फिर न ज्ञान रहा न आत्मा रहा। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। आत्म हितके लिये तब ऐसा ध्यान करना है कि आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञानमय है, ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञानसिवाय मै और कुछ नही हूँ। ज्ञानमे जब केवल ज्ञानस्वभाव रह जाता है तब ज्ञानानुभूति होती है, विलक्षण आनन्द होता है, कर्म कटते है, मुक्तिका मार्ग मिलता है। तो यह मानो कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानके सम्बन्ध से आत्मा ज्ञानी

है यह बात नही है । और भी विचार करके देखो—यदि वे यह मानते हो कि उष्ण गुणके सम्बन्धसे अग्नि उष्ण है तो फिर उष्ण गुणकी ही बात बतलावें कि उष्णगुण किसके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ ? अगर वे कहे किसी दूसरे उष्ण गुणके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ तो फिर वे यह बतलावे कि वह दूसरा उष्ण गुण किसके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ ? यदि कहे कि तीसरे उष्ण गुणके सम्बन्धसे वह दूसरा उष्ण गुण हुआ तो फिर उनसे यह पूछो कि वह तीसरा उष्ण गुण किसके सम्बन्धसे हुआ ? तो वे चौथा पाचवा आदि का व्यापार थोपते चले जायेंगे । इसमे तो अनवस्था दोष आयगा। अरे उष्णमे स्वय उष्णता है, उसमे किसी दूसरे की जरूरत नही । ऐसे ही यह माने कि अग्निमे स्वय उष्णता है, उसमे किसी दूसरे की जरूरत नही । ठीक ऐसी ही बात आत्मामे है । आत्मा अगर ज्ञानगुणके सम्बन्धसे ज्ञानी कहलाये तो फिर उस ज्ञान-गुणमे किसका सम्बन्ध हुआ ? अगर वे कहे कि वह ज्ञान गुण किसी दूसरे ज्ञानगुणके सम्बन्धसे बना तब तो फिर वही उष्णता वाली बात आ जायगी । तो इससे यही मानना चाहिए कि आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है । मैं ज्ञानमात्र हूँ ।

दु खमुक्तिके उपायकी अदुर्लभताका कारण स्वयंकी सहज ज्ञानानन्दमयता— देखो ससारके दु खोसे छुटने का उपाय बहुत सरल है, ससारमे रुलनेका उपाय तो कठिन है, पराधीन है, मगर मोक्षमार्ग तो बहुत सरल है, किसीके सम्बन्धकी जरूरत नही । किसीके लगावकी जरूरत नही । स्वय स्वतन्त्र अपने आपका जैसा सहजस्वरूप है, निरपेक्षस्वरूप है उस रूपकी अपनी श्रद्धा करले तो सम्यक्त्व होगा । मुक्तिका मार्ग मिल जायेगा । भलाई तो अपने आपके आत्मस्वरूपकी श्रद्धामे है । कोई कहता है कि मैं मनुष्य हू, कोई कहता है कि कि मै व्यापारी हूँ, मैं अमुक लाल हूँ, मैं अमुक प्रसाद हू आदिक कितनी ही बातें अपने आपके बारेमे लोग बोलते हैं । लेकिन ये मैं कुछ नही हूँ । यद्यपि यह पर्याय और ये सब बातें आयी हैं, इनके बीचमे हम आप पडे हुए है फिरभी जैसे जलसे भिन्न कमल है । इसी प्रकार हम सब बातोसे-मैं आत्माभिन्न हू । ऐसी रुचि हो, ऐसी श्रद्धा हो, ऐसी धुन बने । तो भाई जगतमे कोई किसीका शरण तो है नही । ऐसा ज्ञान बनावे तो खुदके लिए खुद शरण हो जायगा । यह बात कही दूसरोको जतानेकी नही है, प्रसार करने की नही है, अर्थात् सब लोग ऐसा समझ जायें तो मेरा उद्धार हो जायगा ऐसी बात नही है, समझ सकते भी है मगर मेरा उद्धार तो मेरी समझसे ही होगा दूसरे की समझसे नही । अपनी बात अपनी दया अपने आपमे देखो । तो बात यह बनी कि आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान के समवायसे आत्मा ज्ञानस्वरूप नही है । यह दार्शनिक विषय है । बहुत लम्बा चलने पर

कुछ श्रोताओंको आकुलता भी हो सकती है। अब इस विषयमे आगे न बढकर, इतना समझ कर छोड देगे कि जैसे दीपकमे प्रकाश है तो कही प्रकाशके समवायसे दीपक प्रकाशमान नहीं है। वह तो स्वयं प्रकाशरूप है। इसी प्रकार आत्माभी ज्ञानके सम्बन्धसे ज्ञानमय नही है, किन्तु आत्मा स्वयं ज्ञानमय है। देखो विडम्वना—जो समवाय सम्बन्ध मानते है, वे दार्शनिक यह कहते है कि जब कोई यह प्रश्न करे कि आत्मामे ज्ञानका समवाय हुआ तो यह तो बतलावो कि उस समवायका सम्बन्ध फिर किस सम्बन्धसे हुआ ? तो वे कहते है कि समवाय तो स्वय प्राप्तिरूप है, उसमे अन्य सम्बन्धकी जरूरत नही, लेकिन जब संयोगकी जरूरत होती है—कपड़ेमे रंगका सयोग हुआ, पुरुषमे छतरीका संयोग हुआ, तो यह सम्बन्ध कैसे हुआ ? संयोगभी प्राप्त है फिर उसके लिए क्यो सम्बन्ध मानते ?

एक द्रव्यकी विशेषताओंको भेदकर विशेषवादकी उत्पत्ति—ये विशेषवादी पदार्थ ७ मानते है—६ सद्भावात्मक और एक अभावात्मक। द्रव्य, गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। क्यों मान लिया उन्होने ऐसा कि उनकी समझमे आया कि द्रव्यका लक्षण तो यह है, गुणका लक्षण यह है, कर्मका यह है, सामान्यका लक्षण जुदा है, विशेष का लक्षण जुदा है, सामान्य किसे कहते है ? जो सबमे व्यापक रहे। जैसे वे मनुष्य बैठे हैं, तो मनुष्य सबमे व्यापक है। तो मनुष्यमे मनुष्यत्व 'सामान्य' हुआ और 'विशेष' यह ज्ञानी है, यह व्यापारी है, यह अमुक वर्णका है, यह विशेष हुआ। तो लक्षण जब जुदा है तो ये पदार्थ जुदे है ऐसा मान लिया, लेकिन तथ्य क्या है ? पदार्थ तो एक मात्र द्रव्यको ही कहते है ? उस द्रव्यकी ये विशेषताये हैं। द्रव्यमे सदा रहने वाली शक्तिको गुण कहते है। गुण कोई अलग पदार्थ नही है। द्रव्यमे रहने वाले गुणकी परिणतिको क्रिया कहते है। क्रिया कोई अलग पदार्थ नही है। द्रव्यमे जो एक सामान्य बोध होता है—जीव जीव है, सब जीव एक जीव है। ऐसा जो सामान्य बोध होता है वह हुआ सामान्य, ये नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य देव, गतिरहित, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक जो विशेष प्रतिभास होते है उसका नाम विशेष हैं। द्रव्यसे ये कोई अलग चीज नही, द्रव्यकी ही ये विशेषताये हैं। समवायकी जरूरत नही, और अभाव कोई अलग पदार्थ नही है, किन्तु अभाव अन्यके सद्भावात्मक होता है। जैसे इस कमरेमें घडेका अभाव है, किसीसे कहा गया कि भाई इस कमरेसे घड़ा उठा लावो। वह जाकर देखता है कि वहाँ घड़ा नही है, तो वह कह देता है कि वहाँ तो घड़ेका अभाव है, तो घडेका अभाव है क्या चीज ? क्या उसे कोई पकड़कर दिखा सकता है ? घड़ेका अभाव का अर्थ है—घडारहित कमरा है तो घडारहित कमरेका नाम घड़ेका अभाव है। तो ये सारे पदार्थ एकही द्रव्यकी बात है। द्रव्यको छोड़कर अलग चीज नही। तो ऐसे हीं अपने

आत्मासे भी देखो यह आत्मा स्वयं एक अपना स्वरूप लिए हुए द्रव्य है, उसकी ही ये विशेषतायें। उसको ही समझने के लिए भेददृष्टिका यह कथन है। उसमे अनेक गुण हैं, अनेक पर्याय हैं, सामान्य हैं, विशेष है। यह एक समझाने के लिए वात है। तो क्या मानें कि मैं ज्ञानमय हू, ऐसी श्रद्धा करेंगे तो सम्यग्दर्शन होगा।

मोहान्धकारसे हटकर ज्ञानप्रकाशमे आनेकी सम्मति—यह जीव अनादि कालसे दुर्गतियोमे भटक रहा है। इसका व्यवसाय अज्ञानदशामे यही चल रहा है कि जन्मे, मरे, फिर जन्मे फिर मरे इसके सिवाय और कुछ काम इस जीवने नही किया। कीडे मकोडे हुए, मनुष्य हुए, नारकी हुए, देव हुए, बस यही चक्कर अनादि कालसे लगाता हुआ यह जीव चला आ रहा है। आज बडी दुर्लभतासे मनुष्य हुए है। थोडे जीवनके लिए मनुष्य हुए हैं। लोग तो यहा की प्राप्त चीजोको ही प्राण समझरहे, सर्वस्व समझ रहे, इन बाह्य पदार्थोंके लोभके रंगमे रग रहे हैं। ऐसी बुरी दशायें इस ससारी जीवकी चल रही है। ऐसी लोभभरी दशाओका फल क्या मिलेगा ? मरकर फिर जन्म होगा तो यहा का फिर कुछ ख्याल भी रहेगा क्या ? तो सोचो कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानसिवाय मेरा कुछ नही है। ये पुत्र, मित्र, स्त्री आदिक कुछ नही है, और, यदि इनको कुछ मानते हो तो सिवाय कष्ट के आपको कुछ लाभ न मिलेगा मुनि नही बन सकते, निर्लेप नही हो सकते, उदासीन नही हो सकते। भूख प्यासका रोग लगा है सो उस परिस्थितिके लिए गृहस्थी बसा ली है। एक स्त्री परिणीत कर लिया है। वह भोजनादिककी व्यवस्था कर लेगी, खुद कमाईका काम कर लेगे, दोनो के सहयोगसे जीवन ठीक चलेगा। बच्चे लोग भी बुढापेमे काम देगे। यो जरूरत के लिए राग लगाये है यह तो ठीक है, पर ये मेरे है इसके लिए राग न लगाये गृहस्थीमे रहना राग बिना नही हो सकता इसलिए विवशता समझकर राग करें, पर अपना समझकर उनसे राग न करें कि ये जो मेरे पास है, मेरे हैं, ये ही मेरे सर्वस्व है। ऐसा माननेमे तो अधकार है, उसमे फिर मुक्तिका मार्ग नही मिल सकता। अपनी धुन बनावें कि मैं सहज ज्ञानस्वरूप हू, आखिर चिन्तन ही तो करना है शुद्ध अन्तस्तत्त्वका। और और प्रकारका व्यवहार करना पड रहा है तो उसे करते हुए खेद तो माने। जैसे एक कहावतमे कहा गया है कि गले पडे बजाय सरे। जब कोई गले पड गया है, जब कोई बात अपने ऊपर आ गई है तो उसे यद्यपि निभावें तथापि उससे ही हमारा सुलझेरा होगा यह भ्रम न रखे। इसकी वास्तविक घटना इसप्रकार है कि होलीके अवसर पर कुछ नवयुवक लोग आपसमे मजाक के खेल खेल रहे थे। (अनेको प्रकारके मजाकके खेल होलीके अवसर पर खेले ही जाते हैं) तो मजाकके खेलसे कुछ नवयुवको ने किसी एक नवयुवके गले मे

एक ढोल (तास) डाल दिया। उन नवयुवकोंका ऐसा ख्याल था कि इसके गलेमें पड़ा हुआ ढोल देखकर लोग हंसेगे। यह र्शमिन्दा होगा पर वह नवयुवक बुद्धिमान था, उसने झट छोटी दो लकडिया उठायी और उसे बजा बजाकर नाचना शुरू कर दिया। लो उनका मजाक अब मजाक न रहा। उसका ढोल बजाना खुद मजाक का खेल बन गया। तो ऐसे ही समझिये कि जब ये गृहस्थीके व्यापारादिक अनेक कार्य गले पड गए है तो फिर इन्हे निभानेमे ही आपकी शोभा है। इन्हे निभाइये, पर यह समझते रहिये कि ये सब झन्झट है। अपने आपको निहारना, अपने सहज ज्ञानस्वरूपका मनन करके अपनेको प्रसन्न रखना, इससे बढकर और कुछ बात न थी लेकिन गले पडा तो बजाय सरे। भैया यद्यपि राग करनेसे ही घरका काम सरेगा, छोडकर नही, फिर भी यह माने कि विवशता के कारण राग करना पड रहा है, । उनसे कोई नाता नही, उनसे कोई मेरा सम्बन्ध नही, वे कोई मेरे प्राण नही। ये कोई मेरी वस्तु नही। इस तरह यदि गृहस्थीमे जीवन हो, जैसे कहते है कि जलसे भिन्न कमल है। देखो कमल उगता है तो वह जलसे कितना ऊपर है। जब जलसे वह ऊपर है तभी वह कमल भी प्रफुल्लित हो रहा है। अगर वह जलसे मिल जाय तो वह सड जायगा। तो जलसे न्यारा रहकर ही कमल प्रसन्न रह सकता है। जो कमल जलसे पैदा हुआ, जिसकी जड उस जलमे ही है वह अगर अपनी उस जडसे प्यार करने लगे तो वह सड जायगा, प्रसन्न नही रह सकता। इसीतरह जिस घरमे उत्पन्न हुए, जो घर आपके पैदा होने की जड है उससे अगर न्यारे रहेगे तो आप प्रसन्न रहेगे और अगर उसे ही आप अपना सर्वस्व समझेगे तो उससे तो जीवन बरबाद हो जायगा, दुखी रहोगे। तो जलसे भिन्न कमल है, इससे यह शिक्षा लेना है कि हम जिस स्थितिपर है उससे हमे अलग रहना है, अलग रहनेसे ही मेरे को प्रसन्नता रहेगी, उसमे मोह रखने से नही।

संतोषका स्थान—देखो भाई सुखशान्ति तो सभी चाहते है। हर काम करके ध्येय तो यही रहता कि मेरे को शान्ति मिले और शान्ति अब तक मिली नही। तो क्यों नही ऐसी धुन बनायी जाती कि मेरे को तो जीवनमे शान्ति की ही धुन बनाना है। अनन्त भव पाये, विषयोमे गमाये। जो काम करते आ रहे थे उसमे ही अनन्त काल व्यतीत हुआ पर उसमे कोई आनन्द न मिला। तो अब इसे छोडकर मेरेको कोई अच्छी बात सोचना चाहिए कि मेरेको शान्ति प्राप्त हो। तो दुखोंसे छुटकारा किस प्रकार मिलेगा वह उपाय इस प्रथम सूत्रमे कहा गया है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्ग.। देखो रत्नत्रयधर्म है, क्षमा आदिक धर्म है, ऐसा सुन रखा है। कुछ भी व्रत उपवास आदिक करते, उसका

व्याख्यान भी करते और अगर उसका अंतस्तत्त्व समझमे नही आता है तो भी धर्मके नाम-पर कुछ काम करनेसे प्राप्त सन्तोष कुछ अच्छा है ना ? संसारके सारे काम काज करनेपर भी, स्वरूप न समझने पर भी धर्मके नामपर कोई काम करने पर भी एक सन्तोष आता है। जो सन्तोष समागम मे नही है, और, यदि अन्त स्वरूपकी समझ हो जाय और फिर वास्तविक ढगसे धर्मका पालन हो तो फिर उसके सन्तोषका कहना ही क्या है ? तो ये बाह्य समागम ये तो छोडने लायक है, इनसे हटना चाहिये। न आप हटें अपनी समझ बनाकर तो समय हटा देगा। मरण हो जायगा, अपने आप हट जायगा, छूट जायगा। तेज बीमार हो जायेंगे तो अपने आप हलुवा पूडी छूट जायगी। खूब आशक्ति है इसलिए नहीं छूटते। तो भाई विवेक करके अब भी माने कि ये बाह्य पदार्थ मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं। वेदान्तकी जागदीशी टीकामे एक कथन आया है कि कोई एक भगिन-मलका टोकना लिए बाजारमे से जा रही थी तो वहा किसी सज्जनका मन घृणा से भर गया। सोचाकि इससे तो हमारे जैसे अनेको लोगोको कष्ट होगा। यह सोच कर उन्होने एक बढिया साफ सुन्दर चमकीला तौलिया भगिनको दिया, कह दिया कि इस तौलियेसे मल भरा टोकना ढाक ले। उसने ढाक लिया। जब वह भगिन उस टोकने को लिये हुए चली जा रही थी तो उसके पीछे तीन लोग लग गए। उनके मनमे आया कि इस टोकने मे बहुत बढिया चीज होगी, क्योंकि यह बहुत ही बढिया तौलिये से ढका है। उन तीनो पुरुषोको पीछे लगा देखकर वह भंगिन बोली भाई तुम लोग क्यो हमारे पीछे लगे हो ? तो उन्होने बताया कि हमलोग जानना चाहते हैं कि तुम्हारे इस टोकनेमे कौन सी चीज है। तो भगिनने बतादिया कि इस टोकनेमे तो मल भरा है। इतनी बात सुनकर उनमेसे एक व्यक्ति पीछे लौट गया। दो व्यक्ति अभी भी पीछे लगेरहे। फिर भगिनने पूछा भाई तुम लोग क्यो पीछे लगे हो ? तो उन दोनोमे से एकने कहा कि हम तो यो न मानेंगे। हमे तौलिया खोलकर दिखा दो तब हमे विश्वास होगा। भगिनने तौलिया हटाया तो उसे देख कर दूसरा व्यक्ति भी लौट गया एक व्यक्ति अभी भी पीछे लगा रहा। भँगिनने फिर पूछा-भाई तुम क्यो पीछे लगे हो ? तो उसने बताया कि हम तो अच्छी तरह से सूघ साघकर परख लेंगे तब हमे विश्वास होगा। भगिन ने तौलिया हटाया, उस व्यक्तिने भली भाति सूघ साँघ कर समझ लियाकि वास्तवमे यह मल ही है तब वह पीछे लौटा। तो जैसे तीन तरह के लोग उस मलसे लौटे ऐसे ही तीन तरह के मनुष्य पाये जाते हैं जो विषयोंसे हटते है। जरा भी समझाया जाय कि विषयोमे आनन्द नही, पराधीनता है दुःख है, पापका बध है, तो कोई मनुष्य इतना ही सुनकर विषयोंसे विरक्त हो जाते हैं। कोई लोग कहते है कि आचार्य महाराज समझा

रहे पर हम नही मानते । अच्छा कहनेसे नही मानते तो गृहस्थीमे रहकर कुछ भोग भोगते, जब उन भोगोमें कुछ अडचन आयी तो उन्हे बुरा मान गए और उनसे विरक्त हो गए, अब तीसरे लोग इस तरह कहते हैं कि मैं इस तरह से न मानूगा, मैं तो खूब भोगकर मानूगा । आखिर मरण होता है तो छोडना पडता है ।

अन्तराधनका अनुरोध—ये समागम बाह्य हैं, रुचिके लायक नही है । हमारे हितरूप नही है । हमारा हित है ज्ञानस्वरूपकी आराधनामे । मैं अपनेको ज्ञानस्वरूप देख पाऊँ, इतनाही मै हू, इससे आगे मै कुछ नही, मैं केवल ज्ञानमात्र हू, इसका ही अनुभव करे, यह बात तो सरल है । इसे छोडकर अन्य और कुछ भी काम करे तो कुछ भी सरल नही । लेकिन जब कोई दु खमे पड जाता है, जब कोई आगे वश नही चलता है तब मानते है कि कुछ शरण नही । ज्ञानपूर्वक सुखमे, विपत्ति न आनेसे पहिलेसे ही कोई मानले तो ऐसा कोई विरला ही ज्ञानी पुरुष होता है, जैसे एक दोहामे लोग कहते हैं ना —"दु खमे सब सुमिरन करें, सुखमे करे न कोय । जो सुखमे सुमिरन करे, तो दु ख काहे का होय ।" अरे अभी तो आप लोगोकी इन्द्रिया ठीक है, व्यापारादिकके कामकाज सब ठीक है, सब प्रकारके आरामके साधन है ऐसी स्थितिमे अगर ज्ञानकी आराधना बने तो भला है । अगर कोई दु ख आये, कष्ट आये तब सोचे तब भी भला है । मगर पता नही कि क्या होगा । जो सच्चा उपाय है उसको करनेमे विलम्ब न करना चाहिए ।

आत्मा और ज्ञानमे अभेद होनेपर भी प्रयोजनवश भेदोपचार—यहां यह प्रकरण चल रहा है कि आत्मा और ज्ञान भिन्न-भिन्न है अथवा एक ही तत्त्व है, इस सम्बन्धमें अभी यह उत्तर दिया गया कि आत्मा और ज्ञान अभिन्न हैं, ज्ञानमय ही आत्मा है, आत्मासे ज्ञान जुदा नही है । ज्ञान बिना आत्माका अभाव होगा, आत्मा बिना ज्ञानका अभाव होगा । इस उत्तरके देनेके बाद अब यह ख्याल आ जाता है कि जब आत्मा और ज्ञान एक ही पदार्थ है तब फिर दुनियाके लोग आत्माका ज्ञान, आत्मामे ज्ञान, इस तरह कुछ भेदभरी बात अपने मुखसे क्यो निकालते है ? तो इस विषयमे स्याद्वाद पद्धतिसे देखो—तो एक दृष्टिसे आत्माका ज्ञान अभिन्न है, एक दृष्टिसे आत्माका ज्ञान भिन्न है । भिन्नका अर्थ यहाँ यह लेना कि आत्माको छोडकर अन्य प्रदेशोमे ज्ञान रहना है, किन्तु समझनेके लिए भिन्नता है और वस्तुत ज्ञानमय ही आत्मा है । इनकी अपेक्षा बताने वाली दो दृष्टियां है—(१) द्रव्यार्थिकनय (२) पर्यायार्थिकनय । द्रव्यार्थिकनयका विषय है ध्रुव द्रव्यात्स्वभाव, पर्यायार्थिकनयका विषय है भेद । यहा पर्यायार्थिकनयके अर्थमे यह समझना कि पर्यायके मायने परिणमन नहीं,

किन्तु भेद विशेष। गुणभी पर्याय है, पर्यायभी पर्याय है, अर्थात् अखण्ड वस्तुमे भेद करके समझना, जो अंश बनाये बस उसीको पर्याय कहते है। अंशका नाम पर्याय है, पर्यायका भी पर्याय है, पर पर्यायके अनेक अर्थ होते हैं। जो अंशग्राही है वह है पर्यायार्थिकनय और जो अखण्डग्राही है वह है द्रव्यार्थिकनय। जैसे सत्का लक्षण कहते है—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्। उत्पाद व्यय और ध्रौव्यसे जो युक्त हो उसे सत् कहते है। तो सत्के इस लक्षणमे तीन अश ही तो बताये गये है उत्पाद व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद और व्यय ये दोनो तो झट समझमे आ जाते हैं। ये उत्पाद व्यय और ध्रौव्य तीनो ही अश एक ही वस्तुके पर्याय माने गये हैं। उत्पाद व्यय और ध्रौव्यमे तीनो ही सत्के अश हैं। सत् अशी है, जैसे उत्पाद व्यय के बिना सत् नही रहता, इसी तरह ध्रौव्यके विनाभी सत् नही रहता। जैसे द्रव्य केवल ध्रुव ही नही हैं, केवल ध्रौव्य ही हो उसमे ऐसा भी नही है। यह तो हो जायगा अपरिणामीवादी एकान्तपक्षका कथन। तो वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। जैसे उत्पाद वस्तुका अश है उसी प्रकार ध्रौव्यभी वस्तुका अश है। यहा पर्यायार्थिकनयका कथन किया। इसी तरह यहा भी देखिये—आत्म,ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अभिन्न स्वरूप है। कही ज्ञान अलग नही हो गया। दर्शन, चारित्र आदिक आत्मासे भिन्न नही है। लेकिन पर्यायार्थिक दृष्टिसे ज्ञान दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक अश कहे जायेंगे और यह अश समुदायात्मक एक अखण्ड आत्मा कहा जायगा। फिर द्रव्यार्थिक दृष्टिमे देखते हैं कि जो ज्ञान है वह आत्मा, जो दर्शन है वह आत्मा, जो चारित्र है वह आत्मा। पर पर्यार्यिक दृष्टिसे देखते हैं तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन सबका जुदा-जुदा लक्षण है। तो इस तरह ज्ञानादिक पर्यायें गुण अश इन सबकी एकता भी है और नानापनभी है। जब पर्यायदृष्टिको गौण करते हैं, द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानता करते हैं तो पर्यायार्थिककी विवक्षा न रहे और अनादि पारिणामिक भाव है यही दृष्टिमे रहे तो यह द्रव्यार्थिनयकी व्यवस्था है वहा सर्वत्र एकता है और जब उन गुणोको पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे देखा जाता है द्रव्यार्थिक दृष्टि गौण होती है तो चू कि द्रव्यार्थिककी विवक्षा न रही तो अपने अपने कारण विशेष हुए, उनमे भेद जाहिर होता है और देखने पर उनमे नानापन सिद्ध होता हैं, क्योकि ज्ञानपर्याय अन्य है दर्शनपर्याय अन्य है, चारित्र आनन्द आदिक पर्याये अन्य हैं। इस तरह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान चारित्र आत्मामे हे इस बात की यहां प्रसिद्ध हुई है।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी युगपत् वृत्ति होनेके परिचयमे अनेक समस्याओंका समाधान अब जरा प्रकृत प्रसग देखिये—सूत्रमे दर्शन ज्ञान चारित्र इस क्रमसे तीन शब्द रखे गए है दर्शनका अर्थ विश्वास है। ज्ञान का अर्थ है जानना और चारित्रका अर्थ है उसमे

रम जाना। इस तरह के क्रममे एक शंका होती है कि ज्ञान बिना विश्वास कैसे होता है। ज्ञान विश्वास पूर्वक होता है, अर्थात् ज्ञानको प्रथम ही कहना चाहिए। दूसरी बात–ज्ञानमे दो स्वर है–ज्ञ मे आ न मे अ और दर्शन मे तीन स्वर है-द मे अ, श मे अ और न में अ। जैसे कभी किन्ही चार बालको को बुलाना हो तो उनमे जिस बालकके नाममे बहुत कम अक्षर होते है पहिले उसका नाम बोलनेमे आता है। सिद्धान्त विधिमे नियम है कि जो अल्पस्वर होता है पहिले उसे बोलते है। तो अल्पस्वर वाला होनेसे ज्ञानको पहिले कहना चाहिये। उसमे दो बाते समझना है–एक तो पहिले यह कहा था कि श्रद्धान ज्ञानपूर्वक होता है इसलिए ज्ञानसे पहिले कथन होना चाहिए सो यह बात उचित नही है कि ज्ञानपूर्वक दर्शन होता किन्तु होता क्या है कि ज्ञान और दर्शन दोनों की एक साथ ही प्रवृत्ति होती है। जैसे सुर्यका प्रकाश और प्रताप दोनों एक साथ होते है। जब सूर्यके नीचे बादल आड़े आ जाते है और वे बादल हटते है तो आवरण के हटते ही प्रकाश एक साथ प्रकट होता है। इसीतरह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रवृत्त होने है, इस तरह दृष्टान्त लीजिए कि जब किसी पुरुषको यह इच्छा हुई कि मै श्रवणबेलगोला जाऊ, वहा जो बाहुबलस्वामीकी मूर्ति है उसके दर्शन करूँ तो वह दर्शनसे पहिले ही सब तरह की तपास करता है। कैसी मूर्ति है, फोटो भी देखता है, किसी पुस्तक मे फोटो का नाप लिखा हो तो उसे भी पढता है, उसकी वह बहुत बहुत जानकारी कर लेता है। वही पुरुष जब वहा जाकर उस मूर्तिके दर्शन करता है। तो भला बताओ कि वहा जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने के ज्ञानमे और यहा पढ सुनकर किये जाने वाले ज्ञानमे फर्क है कि नही ? है फर्क। वह अन्तर इसप्रकार का है कि जैसे एक हो अनुभवरहित ज्ञान और एक हो अनुभवसहित ज्ञान। ऐसे ही यहा परख करिये। ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन न होगा। जब कुछ जानकारी होनकी जाय तो विश्वास किसका किया जायगा। तो ज्ञान बिना विश्वास होता तो नही, लेकिन विश्वास से पहिले, अनुभवसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह एक साधारण सा ज्ञान है, दृढता रहित ज्ञान है। जैसे जीवस्वरूपके सम्बधमे ज्ञान किया तो जाना तो सही परपदार्थ से उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमे रमकर जो अनुभव किया जाता है, उस अनुभवके साथ जो ज्ञान होता है वह ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित है। वह है सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह चूंकि अनुभवरहित है। है ज्ञान जरूर उस ही तरह का करीब करीब, अथवा पर्याय के कथन मे वह पुरुष चल रहा है, लेकिन उसका ज्ञान अनुभव रहित है। इस तरह यह निर्णय करना कि सम्यग्दर्शन

सम्यग्ज्ञान की एक साथ प्रवृत्ति होती है। अब दूसरी बात कहते है कि ज्ञान अल्पस्वर वाला है तो रहो, लेकिन यह भी तो परखिये कि सम्यग्दर्शन पूज्य है ज्ञानकी अपेक्षा, चारित्रकी अपेक्षा। सम्यग्दर्शन की पुज्यता का अर्थ है सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्र की समीचीनता कहलाती है। जो ज्ञान और चारित्रकी समीचीनताका मूल बनता है। सम्यग्दर्शन मूल होने के कारण उसका पहिले नाम दिया है। अब दूसरी बात देखो—बीचमे ज्ञानका कथन है। चारित्रमे पहिले ज्ञान है, उसका भाव यह है कि ज्ञान-पूर्वक चारित्र होता है और पूर्णताकी दृष्टिसे देखा जाय तो ज्ञानपूर्ण हो जाता है १३ वे गुणस्थानमे और चारित्र पूर्ण होता है योगरहित विधिसे १४ वें गुणस्थान मे, जिसे यथाख्यातचारित्र कहते है। अब यह क्रम बना—दर्शन, ज्ञान और चारित्र

मोक्षमार्ग ध्वज—इस सम्बधमे एक और प्रसंग याद आ गया—आजका जो अपना राष्ट्रीयध्वज है उसमे तीन रग हैं—पीला (केसरिया) सफेद और हरा। इनमे केसरिया रंग तो सम्यग्दर्शन की याद दिलाता है, सफेद रग सम्यग्ज्ञान की याद दिलाता है और हरा रग सम्यक्चारित्रकी याद दिलाता है। साहित्यमे इन तीनो ही रंगोका वर्णन किया है। सबसे नीचे जो हरा रग दिया है उसका अर्थ है-भरा पूरा होना, ठोस विचार वाला होना, हरा भरा होना। आत्माकी उन्नति चारित्रसे होती है। तो इस चारित्रका सूचक हरा रग हुआ। मध्यमे है सफेद रग। तो ज्ञानका रग सफेद बताया गया है। यह सफेदी ज्ञानका पोषक है, जैसे सफेदी पर ही पीला रग चढेगा इसीप्रकार यह ज्ञान भी दर्शन और चारित्रमे व्यापक है। समयसारमे तो एक स्थल पर इतना तक स्पष्ट किया है कि जीवा-दिक श्रद्धान से ज्ञान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है, जीवादिक ज्ञान स्वभावसे ज्ञान परिणामन का नाम सम्यग्ज्ञान है, रागादिक का परिणाम होने को स्वभावसे परिणमन का नाम सम्यक्चारित्र है। तो इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र व्यापफ है।

सम्यक्त्वकी प्राथमिकता—अब इसी विषयपर जरा पुन दृष्टि कीजिए-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमाणि मोक्षमार्ग। इसमे द्वन्द्वसमास किया जाता है। द्वन्द्व वहा होता है जहा सब प्रधान होते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोकी प्रधानता है। ये तीनो न हो तो मोक्षमार्ग नही बनता है। दर्शन, ज्ञान, और चारित्र ये तीनो ही अपने अपने रूपसे, अपने अपने स्थान मे प्रधानता रखते है। सर्वप्रधान होनेसे द्वन्द्वसमास किया गया है। यहा दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग। इनमे सम्यक्शब्द देनेका कारण है मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र यह अर्थ न लिया जाय। सम्यक्त्व के

सम्बंध में कहा है कि यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की प्रधान सीढी है । इस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र समीचीनता नही प्राप्त कर सकते हैं । देखिये-जिसका यह विश्वास है कि मे देहादिक से पृथक् कषाय, वाञ्छा, विषयवासना आदिक से निराला ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूँ, उस पुरुषको सम्यक्त्वी कहा जाता है । सम्यग्दर्शन की अनुभूतिमे उसके अनुकूल ज्ञान बनानेमे जो सन्तोष होता है वह सन्तोष किसी बाह्य प्रसगमे नही हो सकता। ऐसा जानकर अपने आपपर दृष्टिपात कीजिये । अपने जीवनकी सफलता आत्महित मे है, वह सम्यक्त्वके पाने पर ही हो सकता है । इसलिए सम्यक्त्वके प्रसगमे सब कुछ न्यौछावर करने पर भी यदि सम्यक्त्व प्राप्त होता है तो उसमे अपने आपको ऐसा माने कि मैने बडी सरलता से सम्यक्त्वका लाभ लिया है

सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्रकी महिमा—सम्यग्ज्ञानकी महिमा के सम्बन्धमे कहा है कि ज्ञानके समान सुखका कारण संसारमे कुछ नही है । धन समाज आदिक सब कुछ ये नष्ट हो जायेंगे किन्तु सम्यग्ज्ञान हो तो इस जीवको शरण भी है । वस्तु स्वातन्त्र्य निमित्त नैमित्तिक भाव का ये सम्यग्ज्ञानके ही प्रकार है जो आकुलतासे छूटकर सुख शान्ति में पहुचाते हैं । व्यवहारमें देखो कि जब कभी रस्सीमे सर्पका भ्रम हो जाय तो उस समय वह कितना दुःखी होता है । और जब सम्यग्ज्ञान हो जाय कि अरे यह तो कोरी रस्सी है तो बस उसका वह सारा दुःख खतम हो जाता है । और इसी कारण अनेक दार्शनिको ने ज्ञानको ही प्रधान कहा है । ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । यद्यपि उस ज्ञानके साथ सम्यक्त्व और चारित्र गर्भित हैं फिर भी ज्ञानकी प्रधानता है ।, ज्ञानके साथ सम्यग्दर्शन सम्यक्‌चारित्र की वार्ता आती है । सम्यक्‌चारित्रका अर्थ है अपने आपके आत्मस्वरूपको जिसने समझा हो जाना हो, उस ही रूपमे ज्ञानप्रवृत्ति बनाये रहना सो सम्यक्‌चारित्र है । अर्थात् ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपमे रमण करना सम्यक्‌चारित्र है । सम्यक्‌चारित्रकी अद्भुत महिमा है । इसकी पूर्ति विनामुक्ति प्राप्त नही होती । केवल ज्ञान प्राप्त होने पर भी सम्यक्‌चारित्र की पूर्ति बिना लोकमे अरहंत भगवान जीवनमुक्त कहलाते हैं । मुक्त ही हैं क्योंकि घातिया कर्मोंका विनाश होने से गुणका घात अब नही रहा । गुणोंका पूर्ण विकास होता रहेगा । यद्यपि वे जीवन-मुक्त हैं लेकिन शरीरसे मुक्त नही हुए, घातिया कर्मोंसे मुक्त नही हुए । जहां योग भी नही रहे तब अन्तमुर्हूतमें मुक्ति हो जाती है । सम्यक्‌चारित्र की पूर्ण महिमा है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीनो की प्रधानता है । इसी लिए द्वन्द्वसमास किया गया है और उनमें बहुवचनका रूप दिया गया है ।

मुक्तिमे वास्तविक आनन्द—ससारके प्राणी संसारके दु खोसे कैसे छूटे, ऐसी करुणा करके आचार्य उमा स्वामी महाराजने इस तत्त्वार्थ सूत्रके आदि मे मोक्षमार्ग की घोषणा की है। सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनका एकत्व मोक्ष है। मोक्षमार्गका अर्थ है-समस्त कर्मो से छूट जाने की स्थिति पाना। मोक्षका अर्थ है मोक्षाणि अर्थात कर्म, विषय, कपाय, शरीर, इन सबको अलग कर देना। सर्व कर्मो से सदाके लिए छुटकारा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। कुछ लोग कहने लगते, वे अज्ञानमे कहते या कभी मजाक मे कहते, यह तो वे जाने-कि मोक्षमें क्या सुख है ? सिद्ध होनेमे क्या आनन्द है ? अकेले रहते हैं। कोई परिवारका साथी नही, मित्र नही, रोजिगार नही, खाना पीना नही, वहा कैसे दिन कटते होगे ? पर ये सब बाते तो विडम्बना है। जो सयोग लगा, शरीर लगा, रोजिगार लगा, खाना पीना लगा, उनकी स्थिति तो एक दयनीय स्थिति है। देखो विडम्बना कि ५ इन्द्रिय के विषय और छठा मनका विषय ये छहो विषय रोज रोज लोग भोगते है। स्पर्शन का विषय है स्पर्श करना, ठडा गर्म छूलिया, सुहा गया, मौज मानने लगे, रसना का विषय है खट्टा मीठा आदि स्वाद मानना, घ्राणका विषय है सुगध दुर्गन्ध मानना, चक्षुका विषय है रूप देखना, स्रोत्रका विषय है राग रागनीके शब्द सुनना, तथा मनका विषय है यश आदि की चाह करना। इनमे यह जीव रोज रोज लगा रहता है, रोज रोज भोगते हैं फिर भी नया सा मालूम होता है। अरे वह तो सब एक कय की हुई भोगी हुई चीज है। कोई मनुष्य कय की हुई चीज फिर से भोगना चाहता है क्या ? कोई नही चाहता लेकिन अज्ञानमे यह प्राणी उस जूठनको ही खाना पसद करता है। कितनी इस भगवान आत्माकी विडम्बना है। विपय कषायोमे चित्त जाना यह आत्माकी कितनी बडी विपत्ति है। यह है। यह ही तो क्लेश है। उससे छूटने का उपाय धर्म है। उस धर्मका वर्णन इस ग्रन्थमे किया जा रहा है।

धर्मकी एकरूपता—धर्म-आत्माका धर्म। देखो सम्प्रदाय या किसी जातिका या किसी कुलका धर्म वह हो तो वह धर्म नही, वह तो अधर्म है जहा जाति, कुल, सम्प्रदाय आदिक का सम्बध लगाकर किसी बात से-रिस्ता जोडा तो वह पर्याय बुद्धिकी बात है। वह धर्म नही हो सकता है। सर्व जीवो मे उस पदार्थ स्वभाव पर दृष्टि दे और वहा परख करे कि यह जीव इस निज चैतन्यस्वभावमे दृष्टि दे और इस चैतन्य स्वभावका ज्ञान करे, इस चैतन्यस्वभावमे ही मान हो तो इसका कल्याण है। ऐसी जो भावना

करता है आराधना रखता है उसको धर्मका मार्ग दीखा । धर्म है, आत्माका स्वभाव सर्व जीवोंमे पाया जाता है। कभी जीव स्वभावमें रम नही पाते । यह मन और वेमनका फर्क है लेकिन स्वभाव सबमे पाया जाता है । इस स्वभावको दृष्टिमे लेकर जो ऊपरके भेष है, नाना खटपटे है उनसे अलग हटकर दृष्टिको कोई स्वभावमे जमाये और सब आत्माओको आत्माके नाते से परखे, क्योकि आखिर रहना तो इस आत्माको आत्मामे ही है । जो आत्माको आत्माके नाते से परखे उसे धर्मका मार्ग मिलता है और जो इन बाहरी भेष, शरीर, जाति, कुल सम्प्रदाय आदिक बातोपर दृष्टि दे और इस नाते से कुछ धर्मकी बात माने तो उसे धर्म नही हुआ, वह तो अधर्म है । धर्म तो वास्तवमे आत्मस्वभाव है और आत्मस्वभावका परिचय, श्रद्धान और उसमे रमण करना यह बात जिनके परिपूर्ण बन जाती है उनको मोक्षमार्ग प्राप्त होता है । मोक्षमे यह आत्मा केवल अकेला रहता है, शरीर नही है तो खाने पीनेका प्रश्न ही नही है, जन्म मरण का प्रश्न ही नही है । जहा सर्वज्ञता है और ज्ञान अपने आपके स्वभावमे रम गया है उसको फिर मित्रकी परिवारकी अन्य बातो की आवश्यकता ही क्या है ? कोई आवश्यकता नही, फिर उसे क्लेशका जीवनमें अभाव है । जहा क्लेश रंच भी नही है उसे मोक्ष कहते है । जहा आकुलता नही उसका नाम है मोक्ष । ऐसे मोक्षका नाम है यह आत्मस्वरूपका विश्वास, आत्मस्वरूपका ज्ञान और आत्मस्वरूपमे रमण करना । इसे कहते है मार्ग । जैसे कोई निष्कटक रास्ता हो तो उस मार्ग मे बडी सुविधासे, बडी सावधानी से बड़े आराम से अपने इष्ट स्थानपर पहुंच सकते है इसी प्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक ऐसा मार्ग है कि जिसमार्ग से यह आसानीसे मोक्ष महल मे पहुंच सकता है । तो मोक्षमार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप

ज्ञानकी प्रधानताका दार्शनिकोका अभिप्राय—अब इस प्रसग मे कुछ दार्शनिक अपनी बात पेश करते है । प्रयोजन सब का एक ही है । इन दार्शनिको ने कहा है कि मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो को मत कहो । मोक्ष मार्ग तो केवल एक है । वह क्या ? ज्ञान । जब ज्ञान से उलटा चलता है तो इस जीव को बध होता है । जब इसको अपने आत्मा का परिचय होता है, ज्ञान होता है तो बध से मुक्ति हो जाते है इसलिए इस बध का कारण भी एक है, विपरीतता और मोक्ष का कारण भी एक है—क्या ? ज्ञान । और यह बात कुछ दार्शनिक अपनी अपनी दृष्टि मे पेश कर रहे हैं

यो देखिये—कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि धर्म से तो ऊर्द्धगमन होता है, अधर्म से अधोगमन होता है, ज्ञानसे मोक्ष है और विपरीतता से बंध है। सांख्यसिद्धान्त मे सांख्यकारिका में यह बात स्पष्ठ कही गई है। यहा धर्म का नाम है पुण्य, अधर्म का नाम है पाप। पुण्य से ऊर्द्ध-गमन होता है। उनकी दृष्टि मे ऊर्द्धगति है क्या? इन्द्र, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, पिशाच आदिक देवगति मे उत्पन्न होने का नाम ऊर्द्धगमन देते हैं। यह ऊर्द्ध स्थिति की प्राप्ति धर्म से होती है, और अधर्म से मनुष्य पशु पक्षी सांप, स्थावर आदिक तिर्यञ्च की प्राप्ति होती है। यह उन सांख्य सिद्धान्त वालो की दृष्टि से बात कही जा रही है। उनका कहना है कि पुण्य से तो ऊर्द्धगमन की स्थिति बनती है और पापसे अधोगमन की। तो देखिये— देवगति तक ही बात सोची इतने मे तो यही भूल पडी है कि उन्होने देव होने को ही ऊर्द्ध की स्थिति मान लिया और मनुष्य होने को अधो (नीच) की स्थिति मान लिया। फिर भी सामान्य प्रयोजन तो ठीक है। ज्ञान से होता है अपवर्ग, (मोक्ष) जहा प्रकृति और पुरुष मे भेदविज्ञान हो। यह पुरुष चैतन्यस्वरूप है। यह प्रकृति पडी है ऐसा बोध हो उस ज्ञान से होता है मोक्ष, और जब उस ज्ञान से उल्टा चलते है तो होता है बंध। तो देखो— सांख्यसिद्धान्त का भी इसमे विवाद नही है। वे भी कहते है कि ज्ञान से मोक्ष होता है। इस सिद्धान्त मे आदि क्या और अन्त क्या? इन्द्रिय द्वारा विषयो की प्राप्ति होना यह तो है इसकी आदि याने संसार इसकी प्राप्त अवस्था दुःखदायी स्थिति और गुण और पुरुष मे प्रकृति और पुरुष मे भेद विज्ञान होना यह है अन्तिम चीज। इससे संसार का अन्त (मोक्ष) होता है। देखिये मोक्ष, दुःखनिवृत्ति, आत्मकल्याण, सब दार्शनिको को इष्ट था और अपने अपने अभिप्राय माफिक वे ज्ञान और वैराग्य की दिशा मे बढे। सर्वथा असत्य हो सो नही कहा जा सकता, पर मूल द्रव्य क्या है और उस द्रव्य मे स्थितिया क्या हैं? और किस तरह से द्रव्य समस्त परलेपो से रहित होता है। उस स्वभाव का स्याद्वाद प्रयोग न करके उनका एकान्त वर्णन करने की इच्छा रखी इसलिए अन्तर आया मगर आप देखिये जो कुछ कहा जा रहा है मोटे रूप से, इसमे क्या असत्य है? इन्द्रिय के द्वारा विषयो की प्राप्ति करता यह ही विडम्बना है, वहा ही झगडा हुआ, विरोध हुआ, विवाद हुआ। इन इन्द्रिय विषयो के खातिर ही तो विवाद होता है समाज आदिक मे। तो यह सब संसार है, और जहा यह दृष्टि आयी कि ये विषय कषाय इच्छा आदिक सब बाते ये प्रकृति के गुण है, इनसे मेरा सम्बंध नही। मैं तो एक चैतन्यस्वरूप मात्र हूं तो भेद-विज्ञान हुआ, मोक्ष हो गया। ज्ञान से आगे और कुछ करने की जरूरत नही, ऐसा सांख्य-

सिद्धान्त का अभिप्राय है। ज्ञान किया, मुक्त हो गए। देखिये स्याद्वादी भी यह ही कहते हैं कि ज्ञान ही करता है कि मुक्त हो गए। मगर ज्ञान की यह विशेषता है कि ज्ञान मे स्वरूप मे, स्थिरता से रमे तो मुक्त होगे। इस स्थिरता ने सम्यक्चारित्र का स्थान ग्रहण कर लिया।

ज्ञान मे ज्ञान की स्थिरता मे ही ज्ञान का प्रताप—कोई ज्ञान ज्ञान के अनुकूल न चले और कहे कि मुक्त हो गए। तो यह सब बहाना है स्वच्छना है। गुरू जी सुनाते थे कि कोई दो तीन शिष्य एक गुरू जी से पढते थे। गुरू थे ब्रहमवादी। मै ब्रहमस्वरूप हू, ब्रहम हूँ, मै खाता नही, पीता नही, मेरे पाप नही विकार नही। मेरा कुछ नहीं होता। यह मैं पूर्ण ब्रहमस्वरूप हूँ, और उनकी चर्चा क्या थी कि वे गुरू जी एक म्लेच्छ की दुकान पर रसगुल्ले खाया करते थे, जिसमे कि मास भी पकता था। एक बार शिष्यो ने कहा कि गुरू जी आप इतनी ऊची तो व्याख्या करते, हमारे आराध्य हो, गुरू हो, हम लोग आपसे पढने है, और आप वहाँ म्लेच्छ की दुकान मे जाकर रोज रसगुल्ले खाया करते है, यह क्या बात ? तो गुरू जी ने कहा—अरे तुम लोग क्या जानो ? वह तो शरीर मे गया, प्रकृतिकी चीज है, प्रकृतिकी बात प्रकृति मे गई। कौन खाता है ? गुरू जी की इस प्रकार की बात सुन कर शिष्य हैरान हो गए कि देखो इतने बडे विद्वान होकर भी इस तरहसे कहते है। यह ढगसे नही चलते है। तो एक दिन एक शिष्य उसी दुकान पर पहुंचा जिसमे गुरू जी रसगुल्ले खा रहे थे। वहा पहुंचकर शिष्यने गुरू जी के दो तीन थप्पड मारे। गुरू ने कहा—यह क्या करते ? तो शिष्यने कहा ? करते क्या ? हमारा हाथ भी प्रकृति की चीज है और आपका सिर भी प्रकृति की चीज है, प्रकृति मे प्रकृति लगी, हमने आपका क्या किया ? तो शिष्यकी बात सुनकर गुरू जी समझ गए और बोले-बेटे तुम्हारा कहना ठीक हैं। अभी तक हम भूलमे थे। उस दिनसे गुरू जी ने उस दुकान पर जाना छोड दिया। तो ज्ञानसे मोक्ष होता है इसका अर्थ केवल इतना नहीं कि ज्ञानकर लिया, मोक्ष हो गया। अरे जिस स्वभावका ज्ञान किया उस स्वभावको ही ज्ञानमें लिए रहे, ऐसी स्थिरतासे कि अज्ञानकी बात न आ पाये। चलो ज्ञानसे मोक्ष होता है यह मानते हो तो यह भी सिद्ध होता है। सिद्ध तब हो जब ज्ञानकी स्थिरता हो। स्वरूप सम्बोधनमे अकलक देवने लिखा है कि मै ज्ञाता हू, ऐसे ज्ञानकी स्थिरताका नाम चारित्र है। निश्चय चारित्र क्या है ? वह है ज्ञानस्वभावमे ज्ञानकी स्थिरता होना।

और, व्यवहार मे स्थिरता क्या है ? व्रत, समिति, गुप्ति आदिक मुनिव्रतका जो आचरण है वह चारित्र है। कोई कहे कि हम तो निश्चय चारित्र पालेंगे, व्यवहार चरित्र को क्या जरूरत है, तो वह पार न पा सकेगा। जहा विषय कषायो मे इतने सस्कार लदे है कि ये विषय वासनाये इनपर हावी हो रही है, उनको दूर करने के लिए एकदम सीधी ज्ञानस्थिरताका होना अवश्य है। सस्कारसे सस्कार काटा जायगा। वह, व्रत, समिति, गुप्ति मुनिव्रत आदिकके जो सस्कार है उनको क्षय करने मे कारण है ? और जब ऐसी योग्यता बनती है कि इस व्यवहार चारित्र मे रहकर व्यवहारचारित्रका भी ख्याल नही रहता। व्यवहार चारित्रका ख्याल नही रहता इसीके सामने व्यवहारचारित्र सहज छूटा और वह अपने निश्चयस्वरूप मे रम गया। लो हुई ना मुक्ति ? किससे हुई ? ज्ञानसे। और, उसीमे चारित्र भी प्रविष्ट है। तो कुछ दार्शनिक कहते है कि ज्ञानसे ही मुक्ति होती है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोका कथन करना अयुक्त है। लेकिन यह ध्यानमे लायें कि जिस ज्ञानसे मुक्ति होती है उस ज्ञानमे विश्वास और चारित्र अपने आप लगा हुआ है। कोरा ज्ञान नही है।

वैशेषिक सिद्धान्तमे ज्ञानकी मोक्षमार्ग रूपता—यहा शंकाकार कह रहा है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, इसका समर्थन करने वाले अनेक दार्शनिक है। वैशेषिक सिद्धान्त है कि भाई इच्छा और द्वेषसे बन्ध होता है और इच्छा द्वेषका अभाव हो जाय तो मोक्ष होता है। वह किस तरह ? जीव मे इच्छा और द्वेष उत्पन्न हुआ। उससे यह जीव पुण्य और पापमे लगा। या तो पुण्य बनेगा या पाप। सद्इच्छा है तो पुण्य बनेगा और खोटी इच्छा है तो पाप बनेगा। तो इच्छा और द्वेष होने से पुण्य पापमे प्रवृत्ति होती है। पुण्य पापमे प्रवृत्ति होगी तो इसका जीवन बनेगा, जन्म होगा। जन्म नाम बतलाते है शरीर, मन और आत्मा, इन तीनोका सम्बन्ध होने का नाम जन्म है। जब पुण्य पाप मे प्रवृत्ति हुई तो जन्म हुआ, द्वेष हुआ, शरीर मिला, इन्द्रिया, मिली, जब शरीर मिला तो सुख दुख हुए। जब सुख दुख हुआ तो उस माफिक इच्छा द्वेष हुए। फिर पुण्य पाप मे प्रवृत्ति हुई। यह चक्र चलता हैं संसार मे, इसीसे जीवको बन्ध होता है। इच्छा द्वेष न रहे ऐसी स्थिति तब बनती है जब मोह न रहे, इसका नाम है अज्ञान न रहा। इच्छा द्वेष, धर्म अधर्म, जीवन इन

सबके अभावका नाम मोक्ष है तो उनका मूल ज्ञान रहा। ज्ञान होनेका नाम मोक्ष हुआ। तो वैशेषिक सिद्धान्त से भी यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान से मोक्ष होता है। फिर हे स्याद्वादी तुम क्यो कहते हो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह है मोक्षका मार्ग ? जब इस जीव के मोह नही रहता वह यही है। वैशेषिक सिद्धान्तमे मोहरहित पुरुषको यति कहते है और उस यति के जब छहो पदार्थोका यथार्थ बोध हो जाता है तो वह ज्ञानी कहलाता है। ६ पदार्थ होते है-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। वैशेषिक सिद्धान्तमे ये ६ पदार्थ माने गए है। अब जरा अदाज करलो कि ये छहो पदार्थ जैन सिद्धान्तमे एक नामसे एक पदार्थ मे है बस। उनके यहा ये ६ पदार्थ है। तो जैन सिद्धान्तमे एक द्रव्य है। द्रव्यकी ही गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय आदिक विशेषताये हैं। ये कोई जुदे पदार्थ नही, लेकिन विशेषवादियोका तो यह सकल्प है कि जरा भी गुंजाइस मिले तो झट अलग पदार्थ मान लिया जाय। इसकी विशेषताको वहा महत्त्व है। इसी ज्ञानमे श्रेय, माना गया है। यह उनका एक मूल सिद्धान्त है।

नयोकी सापेक्षतासे वस्तुका यथार्थ परिचय—आप लोगोंने देखा होगा एक गणेश मूर्ति वह गणेशकी मूर्ति किस तरहकी बनी हुई है कि गणेश तो है एक पुरुष लेकिन मुह है हाथी जैसा, उसके सूढ लगी है और वह बैठा है चूहे पर। गणेशका वाहन चूहा है। भला कभी ऐसा गणेश हुआ है कि आदमी हो और उसपर सूढ फिट हो और चूहे पर चढा हो ? जरा सोचो। और अलंकारिक ढंगसे देखो तो यह किसी तथ्यका प्रकाश करता है। किस तथ्यका प्रकाश करता है ? निश्चयनय और व्यवहारनय। तो द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय की यह मूर्ति है। द्रव्यार्थिकनय अभेदको सिद्ध करता है, व्यवहारनय भेदसे देखता है। तो देखिये-यह मूर्ति समझा रही है कि वस्तु अभेद है, एक है। जैसे शरीरमे सूंढ, ऐसी अभेद अखण्ड हो रही, वहां यह नहीं मालूम होता कि यह सूंढ अलग धरी है और यह आदमी अलग है। जैसे उस शरीरमे वह हाथी की सूंढ़ ऐसी अभेद है। एक भेद है कि जहां खण्ड नही है, ऐसा अखण्ड बताता है निश्चयनय। यह तो है ऊपर की चीज और नीचे की चीज है चूहा। जैसे चूहा कागज अथवा कपड़े को कुतर कुतर कर इतने बारीक खण्ड कर देता है कि जितने बारीख कैंची से भी नही किया जा सकता, अथवा जिसका दूसरा टुकडा न किया जा सके। तो यह चूहा द्रव्यार्थिकनयकी सूचना देता है कि ऐसी बात देखो कि जहां और फिर भंग न हो सके, ऐसे अशपर जाके जिन्होने सात नयोके नाम जाना हैं वे समझते हैं।

नेगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्दनय, समभिरूढ और एवभूत ये ७ नय है। अब आप देखिये कि कैसा बडेकी ओर से हट हटकर छोटे अशकी ओर आते है। नेगमनयका विषय है सत् और असत्। भला बतलावो—असत् पदार्थ कही ज्ञानका विषय होता है ? लेकिन नेगमनयमे ऐसी करामात है कि सत् असत् दोनो का विषय करता है। नैगमनयका उदार पेट है नैगमनयका कितना महान् विषय है। जैसे उत्तर देते है कि कोई आदमी चूल्हेमे लकडी जला रहा था, उससे किसी ने कहा कि भाई क्या करते हो ? तो वह कह देता कि भाई हम रोटिया बना रहे है। अरे कहा रोटिया बना रहे ? तुम तो अभी लकडिया जला रहे। देखिये रोटिया अभी असत् है मगर कह रहे कि रोटिया बना रहे। इसको विषय किया नैगमनयने। सग्रहनय तो केवल सतको विषय करता है। असत् छूट गया, सत् रह गया। जितने सत् हैं जगतमे उन सब सतोका सग्रह करता है सग्रहनय। आप देखिये सैद्धन्तिक दृष्टिसे नयोका प्रतिपादन हैं। जीव कहा, द्रव्य कहा तो उसमे सारे आ गए। सग्रहनय २ तरह के होते है (१) पर सग्रहनय (२) अपर सग्रह याने सबसे ऊँचा सग्रह जिससे और ऊँचा न बन सके उसका नाम है परसग्रह और परसग्रहका भेद करके उसके भेदमे सग्रह मे लगे उसका नाम है अपर सग्रह। जैसे जीव अपर सग्रह है। सारे जीव तो आ गए मगर कुछ पदार्थ छूट गए। देखो सग्रहनय ने सत् को विषय किया तो व्यवहारनय उस सत् को भी व्यवहृत करता है। द्रव्य कहा तो द्रव्यमे दो भेद है—जीव और अजीव। द्रव्यके ६ भेद है- (१) जीव, (२) पुद्गल, (३) धर्म, (४) अधर्म (५) आकाश और (६) काल। भेद करना व्यवहारका काम है। यहा तक तो रहा द्रव्यार्थिक नया अब पर्यायपर चले तो ऋजुसूत्रनय एक समयकी पर्यायको ग्रहण करता है। ठीक है। अच्छा रहा काम। अव्वक्त तो इस सूत्रनयका विषय ही इतना सूक्ष्म है कि इस विषयको ही अडकर रह जाय तो सब व्यवहार खतम, काम काज खतम। मुक्तिका मार्ग नही बन सकता। ऋजुसूत्रनयकी एक अडी पकडकर रह जाय, इसको पकडा है क्षणिकवादी बौद्धोने, जिसका, विषय क्या है ? एक समयमे होने वाली पर्याय। लो अगर ऋजुसूत्रनयकी अडीपर डट जाय तो अगर कपास मे आग लग जाय तो भी वे क्षणिकवादी जन यह न कह सकेगे कि देखो कपास जल रहा है। अच्छा बतलावो जो जल रहा है वह कपास है क्या ? अरे जो जल रहा वह तो आग बन गया, वह अब कपास कहा रहा ? जो कपास है वह जल नही रहा और जो जल रहा वह कपास नही रहा। तो वे क्षणिकवादी उस समय यह नही बोल सकते कि देखो कपास जल रहा। अब देखिये ऋजुसूत्रनयका विषय है तो सत्य, असत्य नही हैं पर और नयोकी अपेक्षा न रखे और एक ऋजुसूत्रनयका ही कोई हठ करे तो यह तो उसके लिए

दुर्दशाकी बात है। प्रथम तो ऋजुसूत्रनय ही इतना सूक्ष्म है। फिर चलता है शब्दनय। ऋजुसूत्रनयने जिस विषयको ग्रहण किया है उस पर्यायको कहने वाले अगर १० शब्द है तो उन दशों शब्दोंके १० अर्थ है। एक न जाने जायेगे। पहिले शब्दसे दूसरे विषयका ग्रहण न हुआ। दूसरेसे दूसरा तीसरे से तीसरा। तो शब्दनयने जिस पर्यायको ग्रहण किया उस शब्दने भी शब्दमे भेद डाल दिया। कैसे? जैसे कोई कहे—स्त्री, भार्या, दारा, ये सब महिला के ही तो नाम है। महिला है उसे चाहे भार्या कहलो, चाहे दारा कहलो, चाहे स्त्री कहलो, कलम कहलो। यह तो ऋजुसूत्रनय स्वीकार करता है। लेकिन शब्दनय कहता है कि जो स्त्री है वह दारा नही, जो भार्या है वह स्त्री नही, अरे स्त्री उसे कहते है जिसमे गर्भ ठहरे। कलमे नाम उसका है जो पति, पुत्रादिक के शरीरकी रक्षा करे। ऐसे ही जो भार्या है वह दारा नही। यह तो ऋजुसूत्रनय स्वीकार करता है कि चाहे जिस शब्द से कहो एक ही बात है, मगर शब्दनय तो इसे नही स्वीकार करता तो ऋजुसूत्रनयने जिस विषयको ग्रहण किया उस विषयमे भी भेदकर देना और अश कर देना, वह है शब्दनयका काम। इतने अश तक तो हम आ गए। अब आगे चलो—समभिरूढनय। एक शब्दके द्वारा एक अशसे पकड़ा उसमे भी एक वह शब्द दशो अर्थोसे कहता है। अभी तो ऋजुसूत्रनवमे यह था कि एक अर्थसे दशो शब्द कहते है, तो उनमे जिसे शब्दका जो अर्थ है उस शब्दसे वह अर्थ लेता शब्दनय। अब एक ही शब्द दशो अर्थो से कहता है। उनमे से जिसमे रूढि बन गई हो उसको कहना समभिरूढनयका काम है। जैसे गो शब्द गायका भी नाम है। इन्द्रियका भी नाम है। मगर गो शब्दका अर्थ गाय से लेना यह शब्दनयसे भी और सूक्ष्मता लेता है। तो दो एवभूत नय और आया और वह बोलता कि हम इससे भी हल्के सूक्ष्म है। कैसे? इस विना रूप परिणामो मे ही हम उस शब्दसे बोलेगा। गो शब्दसे गाय कहकर जब चले तब गाय है' क्योकि गो का अर्थ है जाना। तो एवंभूतने भी अड पकडी। तो ये नय उत्तरोतर कितने सूक्ष्मको विषय करते है। वेशेषिक इससे भी आगे बढे। सो वह है अभेद पदार्थने गुणादिकी भिन्नसूत मानना अज्ञान है।

ज्ञानमात्रसे मुक्ति मानने वाले विशेषवादान्दुयायियो की शंकाका समाधान—हा पदार्थ की कथनी चल रही है। आत्मा है, आत्मामे ज्ञान दर्शन, श्रद्धा, चारित्र आनन्द आदिक गुण है, तो आत्मा जुदी चीज है और ज्ञानादिक जुदी चीज हैं। कुछ समझ में आ गया। हा और देखो—उनसे क्रिया भी होती है, परिणति भी होती है। यह परिणति अलग पदार्थ है, और यह भी समझ मे आता है कि अगर दसो पदार्थ पड़े हो तो उनमे सामान्य यह भी

प्रदार्थ, यह भी पदार्थ। तो सामान्य भी पदार्थ है और विशेषता भी नजर आती है। यह दानी है, यह त्यागी है, यह ऐसा है। विशेष भी पदार्थ है। ये पदार्थ कोई अलग ठरे हैं क्या कि जिनकी सत्ता हो, जिनमे प्रदेश हो, जिनमे अविभाग प्रतिच्छेद हो, जिनके न्यारे पडे हैं, लेकिन कुछ शब्द तो आये बस उनका पदार्थ बन गया। जब ऐसे ६ पदार्थों का वास्तविक ज्ञान होता है, वैशेषिक कहते है कि जब वैराग्य उत्पन्न होता है, सुख दुःख इच्छा आदिक का अभाव होता है। जहा इच्छा न हो वहा पुण्य पाप न रहा, जहा पुण्य पाप न रहा वहा शरीर न रहेगे। जहा शरीर की उत्पत्ति न हो उसी के मायने मोक्ष है। तो देखो मोक्ष ज्ञान से हुआ। फिर क्यो कहते हो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो की एकता मोक्षमार्ग है? ए० शका है। समाधान सबका एक है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसे हैं कि उनमे से एक भी न हो तो मोक्ष नही होता। सम्यग्दर्शन नही है तो ज्ञान और चारित्र कितने ही करे पर मोक्ष नही। ज्ञान न हो तो सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र कैसे हो? अव्वल तो होगा ही नही। मानो हो गया। दूध गाय का भी होता है, भैंस का भी होता है और एक आकका पेड होता है उसमे भी दूध होता है। उस आक के दूध को अगर लगे हुए काटे पर लगा दिया जाता है तो वह काटा ऊपर आ जाता है। जब दूध सब का नाम है तो जरा आध पाव आक का दूध क्यो नहीं गर्म करके पी जाते? तो भाई केवल नाम ही नाम धरने से काम नही चलता। वस्तु वहा होनी चाहिए। नाम धर दिया यह चारित्र है मगर वह वास्तविकता से परे है। उससे मोक्ष न होगा। तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो की एकता हो तो वह मोक्ष का मार्ग है। इन तीनो मे से एक भी कम हो तो मोक्ष नही होता। लेकिन अभी यहा वर्णन चल रहा है शका विषयक और, दार्शनिको के दृष्टान्त देकर यह कह रहे है कि मात्र ज्ञान से ही मोक्ष नही होता किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो की एकता से मोक्ष होता है।

रत्नत्रयके दिग्दर्शन के बल पर सांख्य सिद्धान्त से शिक्षा की संभवता—साख्य सिद्धान्त मे तो यह बात कही गई थी कि जब तक इस जीव को प्रकृति और पुरुष का भेद विज्ञान नही होता तब तक इसका ससार मे जन्म मरण है। इस सम्बध मे उनका यह स्पष्टीकरण हैं कि आदि तो है ससार और अन्त है मोक्ष। ससार है शब्दादिक विषयो की प्रवृत्ति का नाम। तो पचेन्द्रिय के द्वारा विषयो का जो उपभोग है वह ससार है और अन्त है गुण और पुरुष मे भेद विज्ञान होने का नाम अर्थात् ये अहकार कषायें और भौतिक पदार्थ

ये सब पुरुष के नही है। मैं एक चिन्मात्र हूँ, इस प्रकार के भेद से वह है संसार का अन्त। जब तक इस जीव के ऐसा अभेद प्रत्यय रहता है स्वय और परमे कि ये जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय के व्यापार है—सुनना, देखना, सूघना आदिक जो क्रियाये है, इनमे जब तक ऐसा प्रतिभास रहता है कि मै सुनने वाला हूँ, मैं देखने वाला हूँ, मै स्वाद लेने वाला हूँ, तब तक इस जीवके ससार है, तव तक यह जीव अज्ञानी है। इसी प्रकार पचभूतसे बना हुआ जो यह शरीर है इसशरीर मे जब तक आत्मबुद्धि रहती है, ये हाथ ये पैर, ये सिर इनका समूह जो शरीर है इनमे जब तक आत्मीयताकी बुद्धि रहती है उनमे इस तरहसे अपने को प्रतीति मे लेते है कि यह शरीर मैं हूँ, तब तक उसे संसार है, तब तक यह जीव अज्ञानी है। और जब यह जान जाता है कि एक इस ब्रह्मको छोडकर बाकी सब यह माया-जाल यह प्रकृतिका धर्म है। सत्त्व रज तमो गुण वाली प्रकृतिके ही ये सब धर्म है। आत्मा तो अकर्त्ता है, अभोक्ता है, चैतन है। जो कुछ भी क्रियाये है वे सब प्रकृति के धर्म है। इस तरह जब भेद जानते है तो उसे कही मुक्ति प्राप्त होती है ? इस सिद्धान्तसे कितनी ही शिक्षाये मिलती है, पर मूलमे इस आत्माको अपरिणामी मान लिया गया अर्थात् इस आत्मामे कोई परिवर्तन ही नही होता, इससे यह सिद्धान्त अपूर्ण रह जाता है। जब आत्मा न ससारी है न मुक्त है तो किसके लिए धर्मकी विधि बताते ? जब यह संसारी है, अज्ञानी है और अपनी अज्ञान अवस्था तजसकता है, मुक्त अवस्था पा सकता है तब ही तो जीवको उपदेश दिया जायगा कि दुखसे छूटो और मोक्ष के मार्ग मे लगे। लेकिन जहाँ प्रकृतिका सघ है। प्रकृतिका ही मोक्ष है, अचेतन मे ही सब परिणतियां है इस चेतनको अपरिणामी माने तो यह सिद्धान्त फिट नही वैठता। प्रकृत वात यह कही जा रही है कि साख्यो ने भी यह माना कि ज्ञानसे मोक्ष होता है। जब तक विपरीतता रहती है तब तक संसार है और जब विपरीतता मिट जाती है ज्ञान होता है तो उसे मोक्ष होता है। शकाकार यहा यह कहता है कि ज्ञानसे ही मोक्ष है फिर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रको साथ कहने की क्या आवश्यकता है ? लेकिन यह नही समझा कि ज्ञान जब दृढ हो, विश्वास सहित हो तब ही तो ज्ञान कार्यकारी है। जब ज्ञान ज्ञानके द्वारा ज्ञानप्रकृत्तिका आचरण करने लगे तब यह ज्ञान कार्यकारी है। तो ज्ञानके साथ लगे है ये श्रद्धान और चारित्र। इन तीनोमे एक भी कम हो तो मोक्ष नही है।

रत्नत्रयके दिग्दर्शनके बलपर विशेषवादासे शिक्षाकी संभवता—वैशेषिक व नैयायिकोंने कहा है कि इच्छा द्वेषसे वन्ध है। उनका अभाव हो तो वहां मोक्ष है। मोक्षके

मायने क्या ? शरीरका सयोग न रहना शरीरकी फिर उत्पत्ति न होना । यह ही मोक्ष कहलाता है । तो यह मोक्ष मिलेगा कैसे ? पुण्य पाप यह दृष्टि दूर हो तो मोक्ष मिलेगा। पुण्य पाप कैसे दूर हो ? जब इच्छा दूर हो तो पुण्य पाप दूर हों । अब द्वेष कैसे दूर हो ? मोह न रहे । मोहका नाम अज्ञान न रहे, ज्ञान हो तो मोक्ष होता है । इस सिद्धान्तमे स्पष्टीकरण और उसकी विधि यह बतायी गई है कि देखो भविष्यमे आने वाले कर्म तो उत्पन्न न हो और जो सचित कर्म है वे रुक जायें, दूर हो जायें तब मोक्ष होता है । बात तो ठीक है पर इन सबका कारण बताया है केवल ज्ञानमात्र जानकारी हो जानता, श्रद्धान और चारित्रकी बात नही कही गई, इसीलिए स्थूलतया सम्वर निर्जरा को ही सकेत कर रहा है यह सिद्धान्त, फिर भी भूल मे भूल करनेपर यह सिद्धान्त भी मुक्ति मार्गको दिखाने मे असमर्थ है । इसने कहा है कि पापकी अनुत्पत्ति होती है पापके साधन छोड़नेसे । लो चारित्रकी बात तो कही जा रही है, पर सिद्धान्त मूलमे यह रखते कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है पुण्यकी अनुत्पत्ति होती है पुण्यके साधन न रखनेसे । पुण्यफल भोगनेके समय ससारसे उद्वेग होता है, ससारसें उद्वेग होनेसे पुण्य भी दूर हो जाता है । यो ६ पदार्थोंसे तत्त्वका निर्णय होना तो चाहिए, इससे धर्म अधर्म का नाश होता है और मोक्ष होता है । यह शकाकार नैयायिकका उदाहरण देकर कहना हो रहा है । पर इसमे भी श्रद्धान और चारित्र साथ लगा हुआ है । यह उनके विवेचनसे ही सिद्ध होता है । यह वैशेषिक का कथन था । नैयायिक तो कहते है कि दु ख जन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञान ये दूर हो तो मुक्ति होती है । इनमे मूल है मिथ्याज्ञान । मिथ्यज्ञान दूर हो गया तो दोष दूर हो गए । दोष दूर होंगे तो धर्म अधर्मकी प्रवृत्ति दूर होगी । पाप पुण्यकी प्रवृत्ति दूर हो गई तो जन्म दूर होगा । जन्म न होगा तो दु ख भी न रहेगा । इस तरह दु खका आत्यतिक अभावका नाम मोक्ष है । और वह मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होने से हुआ। अर्थात् ज्ञानसे हुआ । तो ज्ञानसे ही मुक्ति सिद्ध हुई । तत्त्वज्ञान किया तो मिथ्याज्ञान दूर हुआ । मिथ्याज्ञान दूर होनेसे उत्तरोत्तर पूर्व–पूर्वकी चीजे दूर हो जाती है । जब सुख दु खका सर्वथा अभाव हो जाय तो उसीका नाम मोक्ष है । तो ज्ञानसे ही मोक्ष हुआ ना । शकाकारका यह समर्थन चल रहा है । लेकिन यहा भी देखे तो जिस जानकारीके साथ विश्वास लगा है वही दृढ कहलाता है । जैसे जानकारी के अनुरूप कुछ भीतरमे ज्ञानकी वृत्ति चल रही है ऐसे ही ज्ञानसे तो मोक्षकी बात सिद्ध होती है । तो ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, यह हठ करना ठीक नही किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके मेलसे मुक्ति होती है ।

रत्नत्रयके दर्शनपर क्षोणिकवादसे शिक्षा ले सकनेको संभवता—एक और क्षणिकवादियोका सिद्धान्त देखो–जिसमे यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । उनका सिद्धान्त है कि मूलमे बन्धका, बधनका, विपत्तिका कारण है अविद्या । बात ठीक ही है । अज्ञान है उसके ऊपर ये सब झझटलगे है । लेकिन ज्ञानसे मोक्ष होता है ऐमा कहनेमे जो ज्ञान इतना कमजोर है कि विश्वास और आचरणसे रहित है तो उस ज्ञानसे मोक्ष नही होता । जैसे अज्ञानसे बन्ध होता है ऐमा कहनेमे केवल अज्ञानसे बन्ध नही होता । उस अज्ञानके साथ विपरीत और विपरीत आचरण हो तो उससे मोक्ष होता है, इसीप्रकार जिस ज्ञानके साथ सही विश्वास और आचरण है उस ज्ञानसे मोक्ष होता है । बौद्ध सिद्धान्नमे कहा है कि सबकी मूल अविद्या है । अविद्याका अर्थ है कि जो अनात्मा है उसमें आत्मा का अभिमान करना । यह मैं हूँ, जो अपवित्र है उसमें पवित्रताका अभिमान करना जो दुख है उसमे सुखका अभिमान करना यह तो अज्ञान है । जो अनात्मा है उसमे आत्मा की बुद्धि करना भ्रम है । सो यह कथन ऊपर तो ठीक है, किन्तु अन्तर कहा ? जैन सिद्धान्त तो यो दिखाता कि शरीर अनात्मा है । उसमे आत्माका कोई भ्रम करे कि यह मैं हूँ तो उसे बन्धन होगा, दुख होगा, लेकिन बौद्धोका यो कथन नही है, उनका कथन है कि एक आत्माको ध्रुव मानना भ्रम है । दूसरे क्षणका आत्मा अनात्मा है । सो क्षणिकवादमे यहा पर्यायार्थिकनयका एकान्त कर डाला । यह एक अलग विषय है । प्रयास उसका यह है कि अविद्या से ससार व विद्यासे मोक्ष है ।

पर्यायार्थिकनय के एकान्तमे आत्मतत्त्वके परिचय को असंभवता-क्षणिकवादियो का कहना है कि आत्मा क्षण-क्षण मे नष्ट हो जाता है । नया-नया पैदा होता है । जैसे यह एक शरीर है । इस शरीर मे आत्मा सुबह से साम तक एक नही रहता । किन्तु सुबह से साय तक अनगिनते आत्मा बन जाते है । समय–समय मे एक एक आत्मा कहलाता है, दूसरे समय में दूसरा आत्मा हुआ । पहिला आत्मा समाप्त हो गया । इस तरह से नया–नया आत्मा होता है, लेकिन यह आत्मा, यह जीव, यह सस्कार जब उनमे आत्मबुद्धि करता कि यह मै हूं, बस यह उसका भ्रम हुआ । जैसे सरसो के तेल का या मिट्टी के तेल का दीपक जल रहा हो तो वहा क्रम क्रम से नई नई बूंद ऊपर पहुचती रहती है उससे वह दीपक जलता रहता है । मानो आध घटे तक वह दीपक जलना रहा तो उसे देखकर अगर कोई कहे कि यह तो वही एक दीपक है जो आध घटे से जल रहा है तो उसका यह कहना भ्रमपूर्ण है । क्योंकि

प्रतिक्षण में नया नया दीपक जल रहा है। यही दृष्टि करते हैं क्षणिकवादी कि आत्मा तो क्षण-क्षण मे नया-नया बनता है लेकिन इसमे यह भ्रम करते कि यह वही आत्मा है जो सवेरे था। मैं वही हू, इस प्रकार का जो ज्ञान करता है वह अविद्या है। अव देखिये—जैन सिद्धान्त मे इसे कहा है पर्याय। क्षण-क्षण मे समय समय मे नया-नया होता है उस पर्याय को द्रव्य मान लिया तो यह भ्रम है लेकिन क्षणिकवादियो का सिद्धान्त है कि समय समय मे होने वाला पर्याय नही, वही पूर्ण द्रव्य है और समय-समय मे पुराना द्रव्य मिटता रहता है, नया द्रव्य उत्पन्न होता रहता है, उनमे यह बुद्धि करना कि यह आत्मा है, यह मैं हूँ, इसी के मायने अविद्या है। जब कोई वोलता कि यह मैं हूँ, तो इतनी देर मे कितने ही आत्मा पैदा हो गए। इसमे किसको लक्ष्य मे देकर वोला। यह अज्ञान है। यह क्षणिक वादियोका सिद्धान्त है। उस अविद्याके कारण जीवमे संस्कार वनता है। जव उनसे पुछा जाता है कि भाई जब नया-नया आत्मा पैदा होता है तो फिर यह ख्याल क्यो रहता है कि यह कार्य मैंने किया, मैं करूगा। तो उनका उत्तर है—सस्कार से। जैसे दीपक मे नया नया बूद ही नया नया दीपक बन रहा। लगातार वह दीपक जल रहा इस सस्कार से भी ज्ञात होता कि यह वही दीपक है, इसी तरह नया-नया आत्मा पैदा होता है पर सस्कार लगा है उपयोग का। पहिला आत्मा नये आत्मा को अपना पूरा चार्ज देकर मरता है। फिर वह आत्मा अपने वाद उत्पन्न हुएनये आत्मा को अपने ज्ञान का सारा चार्ज देकर नष्ट होता है। इस तरह संस्कार से बात चलती रहती है।

क्षणिकवाद मे अविद्या और विद्या को ही संसार व मोक्ष का हेतु सिद्ध करने का प्रयास—क्षणिकवाद का कथन है कि उस अविद्या के कारण वह संस्कार बना, और सस्कार के कारण विज्ञान चलता है। जो हमारी जानकारिया चलती है—यह जाना वह जाना—तो यह विज्ञान सस्कार की वजह से चलता है और विज्ञान के कारण नाम रूप चलता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इनमे शरीर को भी पृथ्वी (मिट्टी) कहा है। मरने के बाद लोग वोलते हैं ताकि अब तो यह शरीर मिट्टी हो गया। यद्यपि शरीर पृथ्वी नही है, मनुष्य का शरीर त्रस काय है लेकिन मिट्ट जैसी है, पृथ्वी की तरह पिण्ड है। इस समानता से लोग इसे पृथ्वी कह देते हैं। उनका यह मत है अथवा संस्कार, विज्ञान, शब्द, उपभोग आदिक नाम रूप है। विज्ञान के कारण नाम रूप हो तो नाम रूप के कारण ६ आयतन होते हैं। ५ इन्द्रिया और

छठा मन इनका जो विषयोपभोग है उसे आयतन कहते है। जब इन्द्रियके द्वारा विषयका उपभोग हुआ, जब स्पर्श हुआ–स्पर्श कहते है विषय, इन्द्रिय, ज्ञान, इन तीनोका सम्बन्ध जोड़ना। देखो अनेक बाते स्थल स्थलपर ठीक–ठीक प्रतीत होती है। जैन सिद्धान्त भी तो यही कहता है कि द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय और विषय इन तीनका प्रसग होता है विषयके उपभोगके समयमे। द्रव्येन्द्रिय द्वारा देखने का काम होता। भावेन्द्रियसे देखनेका ज्ञान बनाया और विषयका उपभोग यह तो स्पर्श हुआ। इन्द्रिय, विज्ञान और विषय, इनका सम्बन्ध जुड़ा और स्पर्शके कारण वेदना हुई, सुख दुखका अनुभव हुआ। जब ये वेदनाये पहिले होती है तो उन वेदनाओ मे, उन सुख दुखादिकके उपभोगके समयमे फिर इसे क्लेश हो जाता है। तो वेदनाके कारण तृष्णा हुई। मोटे रूपसे सब जानते है कि जब थोडा बहुत अनुभव कराया जाय तब आशक्ति होगी। किसीको बढिया रसीला भोजन कराया जाय, मानो हलुवा खिलाया जाय तब ही उसे हलुवा की आशक्ति हो सकेगी। जब अनुभव ही नही किया तो फिर आशक्ति कहा से होगी? तृष्णा बनती है वेदना के कारण। जब तृष्णा बन जाती है तो यह ढेला है यह उपादान बन जाता है। अशुद्ध अवस्था वाला बन जाता है। और, उपादान के कारण फिर पुनर्भव होना है, कर्मबन्धन होने लगता है, इसीके कारण भव है। भवके कारण जन्म होता और जन्मके कारण बुढापा मरण आदिक होता। इन सब दुखोका मूल कारण अविद्या है, अज्ञान है। अविद्या दूर हो तो ये सब विडम्बनाये दूर हो जाती है। तो यो उत्तर देकर शकाकार यह कहता है कि देखो ज्ञानसे ही मोक्ष होता। तब यह क्यो कहा जा रहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोके एकत्वसे मोक्ष मार्ग है।

ज्ञानसे मुक्ति होनेके कथनमें भी रत्नत्रयसे मुक्ति होनेके आशयकी निहितति–और, भी अन्तिम बात सुनो। जैन सिद्धान्तमे भी यही बात कहा कि मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्धके कारण है। तो देखो मिथ्यादर्शन क्या है? पदार्थका जैसा स्वरूप है उस स्वरूपसे विपरीत अभिप्राय को ही तो मिथ्यादर्शन कहते है। तो यह विपरीत अभिप्राय मिथ्याज्ञान ही तो है, विपरीत अभिप्राय मोह मे ही तो होता। जहां ज्ञान हुआ, अज्ञान दूर हुआ, वहा मोक्ष हो गया। तो जैन सिद्धान्त में भी किसी स्थलके कथनसे भी यह बात पुष्ट होती है कि ज्ञानसे मोक्ष होता है, फिर क्यो कहा जा रहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का एकत्व ही मोक्षमार्ग है। एक दृष्टान्तसे भी परखलो देखो–मानो कोई सेठ कही जा रहा था। उसके साथ उसके मित्र भी थे। एक

जगह् जगल मे देखा कि एक १०-१२ वर्षके बच्चेको हाथीने अपनी सूंढमे पकडकर पटक दिया। उस सेठका भी १०—१२ वर्षका वैसा ही वच्चा था, तो उसे यह भ्रम हो गया कि अरे इसे मेरे बच्चेको हाथीने उठाकर पटक दिया। सेठ मूर्छित होकर गिर पडा। बेहोश हो गया। उसके मित्रोने झट उस बेहोशीका कारण समझ लिया। इधर तो उसकी बेहोशी दूर करनेका उपचार करना शुरू कर दिया और उधर खबर देकर सेठके बच्चेको बुला लिया। सेठके जब नेत्र खुले, अपने बच्चेको अपने सामने पाया तो झट बेहोशी खतम हो गई और उसका सारा दुःख दूर हो गया। सो ज्ञानसे ही मोक्ष है, दर्शन और चारित्र की बात क्यो कही जा रही है ? देखो जैन सिधान्तका भी उदाहरण देकर शंकाकार यह कह रहा है कि मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है, लेकिन यह नही समझा कि इस ज्ञानके साथ दर्शन और चारित्र लगा है। मिथ्यादर्शन क्या है। मिथ्या विश्वास ही तो है। अविरत आदिक मिथ्या आचरण ही तो है। ये बधके कारण हैं। ये मिटे तो मोक्ष हो। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र हो, बस यही मोक्षका मार्ग है। तो शकाकारका जो मूल प्रश्न था कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, तीनो बाते न बोलना चाहिए उसका समाधान करीब-करीब आ गया।

मोक्षमार्गके प्रसंगमे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनोकी अविनाभाविता—अब विशेष रूपमे भी विचार करे तो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सब अविनाभावी हैं। इनमे से यदि एक भी न हो तो काम न बने। जब तीनो हो तब मोक्षमार्ग बनता है। उदाहरणके लिए लो-कोई पुरुष रोगी है, उसे औषधि दी जाती है तो उस रोगीको उस औषधिपर विश्वास रहता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि इससे रोग दूर होगा। और, औषधिका ज्ञान भी है, कि किसके साथ यह औषधि ली जायगी, कब कब ली जायगी, किस ढगसे ली जायगी। और, उस औषधिको वह खाता भी है। तो देखो इस घटना मे भी दर्शन ज्ञान और आचरण ये तीनो आ गए। इसीतरह इस समारका रोग इस प्राणीके लगा है तो पहिले विश्वास हो कि इस ससारका रोग मुझे लगा क्यो ? निदान भी तो छोडना चाहिए। जैसे उन रोगियोको समझाया जाता कि तुम्हारी यह बीमारी उर्दकी दाल खाने से हुई, कोई ठडी चीज खानेसे हुई, तो उसे फिर कहा जाता है कि भाई अब ठडी चीज मत खाओ। जो चीज अपथय है, जिससे यह रोग हुआ है पहिले उससे मुख मोडो। यो रोग मिटनेका हेतुभूत जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र है उसकी ओर उसे अभिमुख किया जाता है। यो ही यहा देखिये—सम्यग्दर्शन पाने मे मोक्षमार्गका विषयभूत जो निज आत्मा है इस निज आत्माको मोक्ष दिलाना है तो आत्माका श्रद्धान हो। यह मैं क्या हूँ ? स्वय निरपेक्ष

अपने आप अपने ही सत्त्व के कारण जो तत्त्व है उसका श्रद्धान होना चाहिए और इसमें जो ज्ञान वैभव है, आनन्द निधि है उसका परिज्ञान होना चाहिए, अपने ज्ञानको इस स्वभावके अनुरूप बनाना यह कहलाता है सम्यक्चारित्र। ये तीनो बाते हो तो जैसे रोगीका रोग विश्वास, ज्ञान, आचरण के कारण दूर हुआ इसीप्रकार ससारी रोगी प्राणीको यह जन्म जरा मरणका रोग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे दूर होगा। और, भी दृष्टान्तमे लो—जैसे जगलमे आग लगी है और वहा दो आदमी फसे हो-एक लगडा और एक अन्धा। उनमे से लगडा अपनी आखोसे देख रहा कि देखो वह आग लगी है, इधरको बढती आ रही है, सब कुछ देखता है पर वहा से भाग कर जा नही सकता, और एक अन्धा पुरुष जिसको कुछ दिखता ही नही उसमे भागने की शक्ति होने पर भी वह किधर भागे। कही बढती हुई आग मे ही घुस जाय। । अब ऐसी स्थितिमे तो वे दोनों ही उस अग्नि मे जल जायेगे। उनमे अगर सुबुद्धि जग जाय, अन्धेके कंधेपर लगडा बैठ जाय और उसे आगे बढनेके लिए दिशा बताता जाय तो इस तरह से वे दोनोंके दोनों अग्निसे अपनी रक्षा कर सकते है। इसी तरह से समझिये कि जो ज्ञान वाला है ज्ञान—ज्ञानकी ही बात रखता है क्रिया नही है, आचरण नही है, प्रवृत्ति नही है, ऐसा ज्ञान वाला भी इस ससार आगमे जलेगा। बच नही सकता। और जो क्रियामे लगा है, आचरण करता है, महाव्रतपाले, व्रत, समिति पाले, पर ज्ञान नही है, विश्वास नही है, आत्मपरिचय नही है तो ऐसा पुरुष भी तो मुक्तिका पात्र नही होता। तो आचरणहीन ज्ञान भी कार्यकारी नही, ज्ञानहीन आचरण भी कार्यकारी नही, अत श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र इन तीनोका एकत्व ही मोक्षमार्ग है।

ज्ञानसे ही मोक्ष होनेकी हठमे तीर्थप्रवृत्तिकी असंभवता—यहा प्रकरण यह चल रहा कि शकाकार का यह ख्याल बना कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है। जरा युक्तिसे विचार करो। यदि यह जाना जाय कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तो ज्ञान तो १३ वे गुण स्थानमे पूर्ण हो जाता है। १३ वा गुणस्थान सयोग-केवली है। १२ वे गुणस्थानके अन्तमे केवलज्ञान हो जाता है। ज्ञानपूर्ण हो जाता है। तो ज्ञान पूर्ण होते ही मोक्ष हो जाना चाहिए। यहा बढना न चाहिए। वहा फिर ठहर तो नही सकते। जब ठहर नही सकते तो फिर उपदेश कहासे मिलेगा? केवलज्ञान हुआ कि मुक्त हो गए। अरे केवलज्ञानी होने पर भी, हजारो लाखो वर्ष या अरहत भगवानकी अभी जितनी आयु शेष है उतने वर्ष वे विहार करते हैं, उनकी दिव्यध्वनि खिरती है, समवशरणकी रचना होती है, गणधर देव उनकी

दिव्यध्वनिको झेलते हैं, फिर आचार्यों द्वारा उसकी परम्परा चलती है । यदि माना कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तो जहा ज्ञान हुआ वहा ही मोक्ष हो जाना चाहिए । ठहर नही सकते । जब ठहर नही सकते तो फिर उपदेश कहा से होगा ? उपदेश न हो तो ये वाते कहा से आयेगी ? इस कारण ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, यह हठ करोगे तो फिर तीर्थ प्रवृत्ति नही हो सकती । कोई कहे कि ज्ञान हो तो मोक्ष हो, होने दो, यहांके जो और लोग बचे हैं वे उपदेश बना देगे । तो भाई जिमकी जड अज्ञान है, असर्वज्ञता है उस मूलसे जो उपदेश परम्परा होगी वह समीचीन नही हो सकती । जिस परम्पराका मूल निर्दोष है उसमे तो प्रमाणीकता है । तो लोग ज्ञानसे ही मोक्ष होता है ऐसा मानने पर ज्ञान होते ही मोक्ष हो जायगा । अवस्थान न हो सकेगा, फिर उपदेश का अभाव हो जायगा । अब यहा कहे शकाकार कि ज्ञान होने के वाद भी पूर्वसस्कार जब तक रहता है तब तक वह लोकमे ठहरता है और उपदेश चलता है । जब संस्कार मिट जायगा तब मोक्ष होगा । तो सुनो—भाई-ऐस कहने मे न्याय की ही तो वात कह दी, अन्यथा वतलाओ, सस्कार का विनाश भी कैसे हो ? ज्ञानसे मोक्ष होता है और कहते कि सस्कार का क्षय होनेसे हुआ तो सस्कार क्षयका कारण क्या है ? क्या ज्ञान । अगर ज्ञान है तो जिस समय ज्ञान हुआ उसी समय वह सस्कार भी मिट गया, तब तुरन्त मोक्ष हो गया । फिर न ठहरेगे, उपदेश परम्परा न चलेगी । यदि कहो कि उपदेश के क्षयका कारण और है, ज्ञान नही, तो यह बात कैसे युक्त ठहर सकेगी । कि मात्र ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । जब परम यथाख्यात चारित्र पूर्ण होता है तो इस जीवको मुक्ति प्राप्त होती है । तो यहा तक यह बात समझना चाहिए कि आत्माका मोक्ष मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व है, मात्र ज्ञान नही । आत्म विश्वास हो, आत्मज्ञान हो और आत्मस्वभावके अनुकूल ज्ञानका आचरण हो तो यह ही मोक्षकामार्ग है ।

सम्यक्चारित्रसे संस्कारक्षय होनेकी संभवतासे रत्नत्रयसे मुक्तिकी प्रसिद्धि—प्रकरण यह चल रहा है कि कोई शकाकार कह रहा कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, फिर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र साथ मे क्यो लगाये गए है ? इस प्रसगमे बहुत प्रकारसे समाधान दिया गया । अन्तमे समाधान से हटकर शकाकार यह कह बैठा कि भाई ज्ञान होने पर भी जब तक सस्कारका क्षय नही होता तब तक मुक्ति नही होती । सो यह प्रतिज्ञा तो कायम न रह सकी कि ज्ञानसे मोक्ष होता । अब तो यह बात आयी कि सस्कारके क्षयसे

मोक्ष होता है। और फिर सस्कारक्षयका कारण क्या है ? यदि कहो कि ज्ञान है तो ज्ञान होते ही सस्कारकाक्षय हो जायगा। फिर तो मोक्ष हो जाना चाहिये । अगर संस्कारक्षय ज्ञानसे नही होता, कुछ अन्य चीज है तो वही तो चारित्र कहलाता है। चारित्रसे ही वह सस्कारक्षय होता है। अब और भी आपत्तिया देखिये—यदि इतना ही माना जाय कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तब तो दीक्षा आदिक उपाय करना व्यर्थ हो जायगा। सारी क्रियाकाण्ड, सारे धार्मिक अनुषठान व्यर्थ हो जायेगे, क्योकि ज्ञानसे मोक्ष होता तो ज्ञान ही करना चाहिए। फिर दीक्षा या अनेक प्रकारके भेषोमे, क्रियावोमे क्यो प्रयत्न किया जाय ? तब तो यम नियम आदिक सबका अभाव हो बैठेगा। यदि कोई यह कहे कि ज्ञान और वैराग्य दोनो हुए। तो मोक्ष हो गया। तो ठीक है। तब तो मोक्ष तुरन्त ही हो जाना चाहिए । फिर क्यो ठहर रहे है ? फिर तो उपदेश भी कैसे होगा ? तो इस तरह यह कहा कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है और उसमे विश्वास और चारित्रकी बात बिल्कुल हटा दिया सो यह बात युक्त नही है।

नित्यैकान्त व अनित्यैकान्तमें मोक्षप्रक्रियाकी असंभवता—अब एक दार्शनिक विधिसे और भी देखिये—जो लोग यह कहते है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है उनमें कुछ लोग तो है नित्यवादी और कुछ हैं अनित्यवादी। नित्यवादी नैयायिक आदिक है । उनका कथन है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है। देखिये जो लोग मानते है कि पदार्थ सर्वथा नित्य है, अपरिणामी है, पदार्थमे किसी प्रकारकी दशा, अवस्था, परिणति, अदल बदल नही होती है, ऐसा जो नित्यपनेका एकान्त मानते है उनके यहा मोक्षका कारण ही सम्भव नही है, क्योकि अपरिणामी हे, किसका मोक्ष कराना हैं। मोक्षके कारण भी बनेगे कैसे ? कुछ भी परिणामन होता ही नही है। तब फिर नित्यपनेका एकत्व होनेपर जब वहां कोई प्रक्रिया ही नहो हो सकती तो फिर ज्ञान और वैराग्य भी नही बन सकते । अत जो नित्यावादी है उनको तो यह कहने का ही अधिकार नही कि मोक्ष होता है। ज्ञानसें मोक्ष होता है यह तो दूर रहो, पर मोक्ष होता है इतना भी कहनेके अधिकारी नही । जो नित्य एकान्तवादी वस्तु है, परिणति है, चेतन है, ब्रह्म है, पुरष है अपरिणामी है, जब यह बदलता ही नही है तो फिर ज्ञान कहा रहा ? बन्ध कहा रहा ? मोक्ष कहां रहा ? बन्ध मोक्षकी कोई व्यवस्था नही। क्योकि क्रिया दो तरह की होती है एक तो एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे जाना और एक उसी जगह रहते हुए परिणमन होना । जैसे पुद्गलमें

काला, पीला, नीला आदिक रूप परिणमन होना अथवा आत्मामे ज्ञान, शान्ति, अशान्ति आदिक परिणमन होते हैं। तो दोनो ही प्रकारके परिणमन सर्वथा नित्य माननेमे हो नही सकते। सर्वथा नित्य है, बदलते ही नही तो अपरिणामी कौन ? तो जो सर्वथा नित्यवादी है उनको तो एक कहनेका अधिकार ही नही। यहा तक तो कोई कार्य ही सम्भव नही हो सकता। किसी पदार्थका ज्ञान ही नही बन सकता। ज्ञान तब बनता है, उनके सिद्धान्तमे कि जब यह आत्मा मन, इन्द्रिय, पदार्थ इनका सम्बध हो। उनके यहा सुखका अनुभव ही नही हो सकता। सुखका अनुभव तब होता है जब आत्मा, मन और पदार्थका सम्बन्ध हो। तो जब सब चीजे अपरिणामी है तो फिर सयोगी कैसे हो सकेंगी और परिणति भी कैसे बन सकेगी ? ज्ञान भी नही हो सकता तो जो नित्य एकान्तवादी है उनको यह कहने का अधिकार नही कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है। जो क्षणिकवादी हैं, क्षण क्षणमे नया—नया द्रव्य पैदा होता है, नया—नया आत्मा बनता है, जो ऐसा कहने वाले हैं वे इसके भी अधिकारी नही कि मोक्षकी बात कह सके, क्योकि आत्मा तो क्षणिक है, नया नया होता है। एक समयमे दूसरे समय भी नही ठहरता तो फिर किसे मोक्षकी पडी ? बन्ध करे कोई दूसरा आत्मा और मोक्ष हो किसी दूसरे आत्माका तो यह अन्धेरपना क्षणिक एकान्तवाद मे हो जाता है। मोक्षकी कल्पना करना बडा व्यर्थ है, क्योंकि उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाश हुआ। ज्ञान वहाँ नही ठहर सकता। न ज्ञान होता है न मोक्ष होता है। मोक्ष किसका हो ? क्षण क्षण मे आत्मा नया—नया बनता है। तो जब ज्ञान नही ठहर सकता तो वैराग्यकी भावना कहा ठहरेगी ? आत्मा न रहा तो फिर ज्ञान वैराग्य कहा ठहरेगा ? निमित्त नैमित्तिक व्यवहारभी कैसे बनेगा ? फिर ये सब सिद्धान्त गढना कैसे बनेगा कि अविद्यासे सस्कार होता, सस्कारसे विज्ञान होता। अरे निमित्त नैमित्तिक भाव जब बने तब ठहरे। जब क्षण क्षणमे पदार्थ मिटता जाता है तो फिर निमित्त नैमित्तिक भाव कहा से बनेगा ? इससे यह मानना कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह सिद्धान्त ठीक नही है।

नित्यैकान्त व अनित्यैकान्तमे सम्यग्ज्ञानकी प्रादुर्भूतिकी भी असंभता अब जरा अज्ञानकी बात बिचारो। उनका यह भी कहना है कि अज्ञानसे बन्ध होता है, विपरीत से बध होता है, तो देखो विपरीतता उनके यहा बन नही सकती। ध्यान देकर सुननेकी बात है। जैसे पड़ी तो हो रस्सी और जान गए सांप, तो यह विपरीतज्ञान कहलाया। तो यह

विपरीत ज्ञान नया तब बना जब वह पहिले से जानता था कि रस्सी तो यह कहलाती और सांप यह कहलाता। जब रस्सी और साँपका भेद-विज्ञान था और उसने किसी ऐसी रस्सीको देखा जिसमे उसके विशेष लक्षण न पाये गए। और जो सापमे बाते हुआ करती है वे बाते इसके ज्ञानमे आयी तब विपरीत ज्ञान हुआ। विपरीत ज्ञान होनेमे दो बातें आती है-पहिली तो उन दो पदार्थो का सही ज्ञान हो, बादमे फिर उस एक ही पदार्थको देखकर उसमे उसके विशेष की उपलब्धि न हो तब विपरीत ज्ञान होता है। जैसे रस्सी और साँप इन दोनो का ज्ञान जिस पुरुषको होता है, जानता हो कि रस्सी यह चीज है और साप यह चीज है। जिसको ऐसे जुदे-जुदे दो पदार्थोंका ज्ञान हो वही पुरुष जब किसी दिन केवल रस्सीको देखकर सापका चिन्ह जब दीखा तब विपरीत ज्ञान होता है कि यह सांप है। इस तरह से यह बतला रहे है कि आत्मामे और प्रकृतिमे भेद विज्ञान न होने को विपरीत ज्ञान कहते है। उस विपरीत ज्ञानसे बन्ध बताते है तो यह विपरीत ज्ञान तब ही तो सम्भव है कि पहिले जानते हो कि आत्मा जुदा है और प्रकृति जुदी है। और, फिर प्रकृतिको निरख करके आत्माके चिन्ह न पाये तब ही विपरीत ज्ञान हो सकता है। तो भला बतलावो कि जिसे विपरीत ज्ञान हो रहा है उसे विपरीत ज्ञानसे पहिले आत्माका ज्ञान हुआ था या नही ? अगर कहो कि विपरीत ज्ञानसे पहिले आत्माका ज्ञान न था तो जैसे रस्सी और साप इन दोनों का अलग-अलग ज्ञान न हो जिस पुरुषको वह सांपका भ्रम रस्सीमे भी नही कर सकता है। इसी तरह जब आत्माका और प्रकृतिका अलग-अलग ज्ञान न था पहिले, तो यह विपरीत ज्ञान कैसे बना ? और अगर कहो कि उसको प्रकृतिका और पुरुषका पहिले द्वैत ज्ञान था, तो द्वैत ज्ञान होनेसे तो मोक्ष हो जाता, फिर विपरीत ज्ञान कैसे आयेगा ? तो विपरीत ज्ञानकी बात भी नही बन सकती। और भी देखो-यह तो बतला रहे है नित्य-एकान्तवाद की बात। अब अनित्य एकान्तकी बात देखो-उनके यहां भी विपरीत ज्ञान नही बन सकता। क्षणिकवादी मानते है कि विशेषका ज्ञान जब होता तो इस ज्ञानकी उत्पत्ति वस्तुसे हुई है। जिस पदार्थका ज्ञान होता है उस ज्ञानकी उत्पत्ति उस पदार्थसे होती है, ऐसा जैन सिद्धान्त तो नही मानता। जैन सिद्धान्त तो अपने आपके आत्मासे अपने ज्ञानकी उत्पत्ति मानता है, पदार्थ से उत्पत्ति नही होती। पदार्थ तो विपरीत होता है, मगर क्षणिकवादी मानते है कि अगर कलमसे ज्ञान हुआ तो वे मानते कि यह ज्ञान कलमसे उत्पन्न हुआ था कपड़े से ज्ञान हुआ तो वे मानते कि कपड़े से यह ज्ञान

उत्पन्न हुआ। जो पदार्थसे पैदा हुआ ज्ञानको मानते है उनके यहा तो विपरीतपना कभी आ नही सकता। जो ज्ञान जिस पदार्थ से पैदा हो वह उसीको तो जानेगा। रस्सीसे ज्ञान हुआ तो रस्सी का ही तो ज्ञान होगा, सांपका नही। तो जो पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानते है उनके यहाँ विपरीत ज्ञान तो हो ही नही सकता। इस कारण यह बात कैसे मनेगी कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है ?

मोक्षका प्राथमिक साधन भ्रमध्वंस—मोक्षका कारण क्या ? संसारके दुःखोसे छूटनेका कारण क्या ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र। जो पदार्थ जिस स्वरूपमे है उस पदार्थका उस स्वरूपसे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, अपनी अपनी सत्ता लिए हुए है। किसी का सत्त्व किसी दूसरेके दवावसे नही है। सत् है तो वह स्वतः सिद्ध सत् है ना। वह अपने आप से है, न हो और कोई दूसरा है बना दे, ऐसा कभी नही हो सकता। प्रत्येक पदार्थ स्वतः सिद्ध है, स्वतः सत् है अतः प्रत्येक पदार्थ स्वयमेव परिणमन किया करता है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका परिणमन नही कर सकता। प्रत्येक पदार्थ अपने आपका ही परिणमन कर पाते है, कोई किसी दूसरेका परिणमन नही कर पाते। तब ही तो स्वातन्त्र्य है, तब ही तो सत् रहेगे। मानो दो पदार्थ है-चौकी और पुस्तक। कल्पना करो कि पुस्तकने चौकीको परिणमा दिया, मानो चौकी पुस्तक रूप परिणम गई तो इस स्थितिमे न चौकी पुस्तक रूप रही और न पुस्तक चौकी रूप रही। जब एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का परिणमन कर दे तो फिर कोई पदार्थ नही रह सकता। देखो जो स्वभाव है, स्वरूप है, वह त्रिकाल अवस्थित है, लेकिन कल्पना करे और विपरीत कल्पना करे तो क्या विपरीत विकल्प किया जानेसे वस्तुका स्वरूपभी बदल जायगा। प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, स्वयं परिणमन-शील है, अपने आपकी परिणमन शक्तिसे परिणमता है। अनादि से अब तक और अनन्तकाल तक यही बात रहेगा। प्रत्येक पदार्थ स्वतःसिद्ध है, स्वतः परिणामी है। कुछ लोगोको भ्रम हो गया है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थको परिणमा देता है, उस भ्रमका कारण है निमित्त नैमित्तिक भाव। वे बात सही न समझ सके तब भ्रम हो गया कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थको परिणमता है। देखो कुम्हार ने घडा बनाया-लोक व्यवहारमे जैसे कहते है ना, वहा अपना व्यापार करता हुआ कुम्हार निमित्त है। ऐसे कुम्हार की कोई चीज घडे मे जाकर घडा बनाती हो, ऐसा तो नही होता।

कुम्हारका द्रव्य, क्षेत्र, प्रभाव, असर कुछ भी घडे मे पहुचा हो, ऐसा होता है क्या ? नही। वह तो अपना व्यापार करता है। उसका सन्निधान पाकर निमित्त पाकर मिट्टी अपने आपमे घटती बढती है, अपने मे अपना आकार बनाती है। हा यह अवश्य है कि निमित्त न हो तो ऐसा कार्य नही बन सकता। इतना होने पर भी निमित्त उपादान मे याने जिसमे निमित्त कार्य हो रहा है उस पदार्थ मे परिणति न करता। निमित्त नैमितिक पदार्थ भी सही है और वस्तुका स्वातत्रय भी सही है। जो वस्तु-स्वातत्रय देखता है, अपने आपकी स्वतत्रताका परिचय करता हो, मै हू, सबसे निराला हू, किसी पदार्थसे मेरा कोई सम्बध नही है इस तरह जो अपने को स्वतंत्र सत् निरखता है उस पुरुषके मोह नही ठहर सकता मोह तब ही रहता जब यह जान रहे हो कि मेरा तो इससे कुछ सम्बन्ध है। मेरा यह कुछ लगता है। मैं इसमे कुछ करता हूँ, मै इससे कुछ पाता हू, मै इसे कुछ देता हू, जब ऐसा भ्रम रहता है तब जीवको मोह उत्पन्न होता है। अरे सभी जीव अपने आपकी परिणति से परिणामते है, अपने अपने पुण्य पापके उदयका निमित्त पाकर कोई सोचे कि मे इन परिवारके लोगोको पालता पोषता हू तो उसका यह सोचना भ्रम है। ऐसा सोचने वाले व्यक्ति को पद-पद पर दुखी होने का मौका मिलता है। परिवारका कोई व्यक्ति आपकी इच्छाके अनुकूल अपनी परिणति करे यह तो सम्भव नही। कदाचित् कभी आपकी इच्छा के अनुकूल वह चल जाय यह बात अलग है। जब आपके इच्छाके अनुकूल आप उनका परिणामन न पायेगे तो आप दुखी ही होगे। इससे यह जानो कि सब जीव स्वतन्त्रतासे अपनी अपनी परि-णति से परिणमते है। सत् है, सभी स्वयके कमाये हुए पुण्य पापका निमित्त पाकर स्वय सुखी दुखी होते है। उनका सासारिक सब कुछ उनके भाग्यसे होगा। ऐसा सही ज्ञान रहे तो वहा क्लेश न होगा। तो वस्तु स्वतन्त्रताका ज्ञान हो जाना, अपने आपके सहज स्वरूपका परिचय हो जाना, बस लोक मे यह ही मात्र एक विभूति है, आपका जगतमे कही कुछ नही है। सभी दिखने वाली चीजे पौदगलिक है, उन्हे व्यर्थ ही आप अपनी मान बैठते है, जब आप उन्हे अपनी मान लेगे तो उनके विघटने पर तो आप दुखी होगे ही। इन समस्त परद्रव्यो से भिन्न अपने आपके आत्माका स्वरूप है, उसे आत्मारूपसे श्रद्धान करना इसे कहते है सम्यग्दर्शन।

अन्तस्तत्त्वके प्रकाशकी ही शरण्यता—जीवका साथी, शरण, मित्र। हितू सम्यक्त्व भाव है। सम्यक्त्वका भी तब बने जब वस्तुस्वरूपका सही-सही निर्णय हो। सम्यक्त्व हो गया तो फिर आपकी मुक्ति अवश्य होगी। सम्यक्त्व छूट जाय तो भी कभी न कभी

मुक्ति अवश्य होगी। उपशम सम्यक्त्व छूट जायगा, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व छूट जायगा। तो सम्यक्त्व ही एक मित्र है। समन्तभद्राचार्य ने एक जगह कहा है कि "न सम्यक्त्व-समकिञ्चित्त्रैकालये त्रिगत्यापि, श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमनान्यत्तनूभृताम्" अर्थात् सम्यक्त्वके बराबर श्रेयस्कर और कुछ नही है और मिथ्यात्वके बराबर लोक मे कष्ट करने वाली कोई चीज नही है। लेकिन इन मोही प्राणियो की क्या स्थिति गुजर रही कि इस मोह मोह मे ही पगे चले जा रहे है और निरन्तर दुःखी बने रहा करते है। दुःखी भी होते जाते फिर भी उस दुःख से छूटना नही चाहते। जैसे एक घटना है कि कोई एक बुड्ढा अपने घर के चबूतरे पर बैठा हुआ दुःखी हो रहा था। उसके नाती पोते उसे हैरान कर रहे थे। कोई पोता हाथ झकझोरता, कोई सिर पर चढता, कोई मूछ पाडता, उससे हैरान होकर वह बुड्ढा रो रहा था। वहा से एक सन्यासी निकला। उस सन्यासी ने बुड्ढे से पूछा—भाई क्यो रो रहे हो? तो बुड्ढे ने बताया कि महाराज ये नाती पोते मुझे बहुत हैरान करते है, मुझे बडा दुःख पहुचाते है। तो सन्यासी ने कहा—क्या मैं तुम्हारा सारा दुःख मिटा दू? तो बुड्ढा बडा खुश हुआ। सोचा कि शायद सन्यासी जी कोई ऐसा मत्र पढ देंगे कि ये नाती पोते मेरे चरणो मे लोटते फिरेंगे, मेरी हूँ हजूरी मे बने रहेगे, तो बुड्ढे ने कहा महाराज अच्छा है, हमारा दुःख मिटा दीजिए, आपकी बडी कृपा होगी। तो सन्यासी बोला—तुम घर छोडकर हमारे साथ रहो, फिर तुम्हे कोई दुःख न रहेगा। यह सुनकर बुड्ढा झुझला कर बोला—अरे क्या कहते सन्यासी जी? देखो हम इन बच्चो के बाबा ही रहेगे, ये हमारे नाती पोते ही कहलायेंगे। तुम बीच मे कौन सी दलाली की बात करने आ गए? तो देखिये जिस बात से दुःखी हो रहे उसे छोडना नही चाहते, उसी मे रम रहे। जिस मोह के कारण दुःखी हो रहे उसी मोह को अपना रहे। पर वस्तुओ को अपनाने से दुःखी हो रहे फिर भी यह कुटेव बनाये है कि ये ही सब कुछ मेरे है। ठीक है खूब मानते रहो अपना, पर एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा कि सब कुछ छोडना होगा। मरण के बाद क्या दशा होगी इस बात पर कुछ भी विचार नही किया जा रहा है।

सम्यक्त्वसाधानाका साधन—भैया सम्यक्त्वका साथ लो, सम्यक्त्वलाभके लिए ही देव, शास्त्र, गुरुकी उपासना बतायी गई है। भगवान की भक्ति बडे शुद्ध मनसे करें। कभी यह बात न विचारे कि मेरे को दूकानमे लाभ अधिक हो इसलिए मैं पूजा दर्शन करने आता हू। मेरे को कोई कुटुम्बका लाभ विशेष हो इसलिए दर्शन करता हू। मेरे को इस जीवन मैं इन्द्रिय सुख वर्तता रहे इसलिए दर्शन

करता हू यह भाव न आये, क्योकि विदेशोमे देखिये-रूस, अमेरिका, फ्रास, आदिक के लोग तो तुम्हारे महावीर स्वामीके दर्शन करने नही आते फिर भी तो वे कितने धनी है, कितने सुखी है। तो यह ख्याल गलत है कि भगवानकी पूजा करनेसे हमको कुटुम्बलाभ होगा। धन लाभ होगा। बल्कि निरपेक्ष होकर यदि प्रभुकी भक्तिमे आये तो ऐसा पाप रस घटेगा पुण्य रस बढेगा। आपके माँगने से ये चीजे कभी नही मिलती, यह बात निश्चित है। कभी कोई महावीर जी अथवा शिखरजी गया तो वहां मनौती करने से कुछ नही होता हा होना होता है तो हो जाता है। तो भगवानकी भक्ति कोई निर्पेक्ष होकर करे तो उससे पुण्य रस बढता है। बल्कि प्रभुसे मनौती करने पर आपके सासारिक सुख भी समाप्त हो जाते हैं। तो निरपेक्ष होकर प्रभुभक्तिमे लगो। संसार दु खपूर्ण है मैं इस ससारसे मुक्ति चाहता हू और कुछ नही चाहता, ऐसा निरपेक्ष होकर शुद्ध बनकर प्रभुकी आराधनामे लगो। शास्त्रस्वाध्याय करो, तत्वज्ञान करो, वहाँ ऐसी रूढि रखने से काम न चलेगा कि हमारा तो शास्त्र पढने का नियम है इसलिए शास्त्र खोला, दो चार लाइन बाचा और चल दिया। समझ लिया कि शास्त्र पढनेका हमारा नियम पूरा हो गया। तो इस रूढिसे काम न चलेगा। और शास्त्रका स्वाध्याय मनन पूर्वक हो, अपने आप पर घटित करते हुए हो। या शास्त्र की आराधना करे, ज्ञान सीखे। देखिए जो दर्शन मे, ज्ञान मे, चारित्र मे हुए पुरुष हैं, ज्ञानी है, श्रद्धानी है, तपस्वी है, त्यागी है, उनमे श्रद्धा जिनको होगी उनका वह एक चिन्ह है कि इन्हे धर्म की श्रद्धा है। धर्मात्माओ मे जिनकी भक्ति हो उसे कहा जायेगा कि इसे धर्म मे श्रद्धा है। जो धर्मात्माजनो से दूर-दूर रहता है, उनके प्रति जिसे भक्ति नही जागती है, उसे कैसे कहा जा सकता है कि इसको धर्म की श्रद्धा है। कदाचित् कोई साधु या कोई धर्मा-त्मा पुरुष बिल्कुल ही गलत रास्तेपर चलता है तो उससे दूर रहे, पर उसे देखकर यह ख्यालमे आना चाहिए कि मोक्ष मार्गमे यह दशा हुआ करती है। एक व्यक्तिसे उपेक्षा हो गई मगर धर्मसे उपेक्षा तो न हुई, तो श्रद्धान करे, दर्शन करे, गुरुसेवा करे, पद-पद पर यही बात बतलावें कि उपयोगको आत्मापर श्रद्धा है, परका त्याग किये हैं, मार्ग तो यही है दु खो से छूटने का। ऐसी भावना बनानेके लिए गुरुजनोके लिए जो आवश्यक है, आहारदान, शास्त्रदान, औषधिदान और अभयदान, उनका दान कीजिए। यह गुरु आरा-धना, देवशास्त्र गुरुकी सेवा, यह सम्यग्दर्शन मे हमारा व्यवहारिक कदम है। यह नही है तो हम आगे क्या बढेगे ?

सूत्र बिल्कुल सही है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है ।

ज्ञान और चारित्रमे अभेद व भेदकी सिद्धि—अब एक शका और हो सकती है कि दर्शन ज्ञानकी एक साथ प्रवृत्ति हुई फिरभी भेद है । ठीक है, यह तो समाधान दे दिया, लेकिन कालभेद व स्वरूपभेद दोनो ही ज्ञानचारित्रमे नही है यह बात कही जा रही है । तो ज्ञान और चारित्रमे कालभेद नही है, इसमे एकत्त्व हो जायगा । ज्ञान, दर्शन का तो समाधान दे दिया मगर ज्ञान और दर्शन जब है तब इनमे कालभेद नही है । साथ ही यह भी देखा जा रहा है कि ज्ञानकी स्थिरताका नाम चारित्र है । सो स्वरूप भेद भी नही है, ज्ञानकी स्थिरता ही चारित्र कहलाती है इसलिए उनमे एकत्त्व हो जायगा । यहाँ मुख्यतासे तो कालभेद नही है यहा शकाकारका कहना है । इसके समाधानमे जरा सोचो ज्ञान और चारित्र इनमे कालभेद है कि नही ? तो कही नही है कही है । जहा कालभेद नही है वहा भी स्वरूप जुदा है और जहा अन्तर की बात है वहाँ ज्ञान और चारित्रमे कालभेद है । जैसे तत्त्वार्थराजवर्तिकमे एक दृष्टान्त दिया है कि कोई माता व्याभिचारिणी थी और उसका पुत्र भी व्याभिचारी था । पुत्रका सम्बन्ध दूसरे से था और माताका सम्बन्ध दूसरे से था । एक रात्रिको माता और पुत्र दोनो चले । अधेरी रात्री थी, रात्रीमे दोनो एक जगह मिल गये । अब पुत्रने यह न जाना कि यह मा है और मा ने भी यह न जाना कि यह पुत्र है । पुत्रने भी वही समझा जिससे वह मिलता था और माताने भी वही समझा जिससे वह मिलती थी । दोनो ही स्पर्श करने को थे कि एकाएक बिजली चमकी । दोनो ने एक दूसरे को झट पहचान लिया और वे हट गए । अब देखिए—एक ही समयमे दोनो का वह ज्ञान हुआ और हटे सो यह चारित्र हुआ, तो देखो ये ज्ञान और चारित्र एक साथ हुए, यह शकाकारका कहना है । तो ज्ञान और चारित्र एक साथ है । तब इनमे भेद न मानना चाहिए । समाधानमे पुन. देखिए—यहा पर भी यद्यपि ऐसा लग रहा कि ज्ञान और चारित्र एक ही समयमे हुआ, जैसे उस घटनामे देखा था कि माता और पुत्रको एक साथ ज्ञान हुआ और एक साथ हटे तो वहा मोटे रूपसे लगता तो यही है कि उसमे समय भेद नही है ? देखिये पान बडे कोमल होते है । एक साथ ५० पान मानलो रखे है, उनपर जोरसे सूईका प्रहार कर दिया जाये तो वे सारे पान एक साथ छिद जायेंगे । तो भला यह बतलाओ कि क्या वे ५० पान एक ही समयमे छिदे या उनमे समयभेद है ? लगता तो यो है कि जोरसे सूई मारा और एक

साथ ही छिदे, लेकिन जब एक पानमे सूई छिदी दूसरे पानमे गई, दूसरे पानके बाद तीसरे पानमे गई, यो सभी पानोको पार करके जब सूई बाहर निकली तो उसमें समय भेद रहा ना। एक ही समयमे तो नही छिद गए। तो दिखनेकी बात जुदा है मगर वास्तविकता जुदी है। वहा ५० पान एक समयमे नही छिदे, क्रमसे छिदे, इसीप्रकार ज्ञान और चारित्र एक समयमे नही हुए। जानना और हटना एक समयमे नही होता। उसमे भी समयभेद है इसलिए कालभेदकी दृष्टिसे ज्ञान और चारित्रमे एकता नही है।

ज्ञान और चारित्रमे अर्थभेदका प्रकाशन—दूसरी बात–ज्ञान और चारित्रमे अर्थभेद भी है, इसी कारण भी एकत्व नही है। ज्ञानका अर्थ है तत्त्वका जानना। चारित्र का अर्थ है कर्मका ग्रहण करने वाली क्रियाका विराम हो जाना, जिससे कि ग्रहणमे न आये, बन्धनमे न आये, यह है चारित्रका लक्षण। तो अर्थभेदसे भी ज्ञान और चारित्रमे भेद है, इस पर भी यह बात और समझिये कि कालका भेद न भी हो तो भी वे एक नही हो जाते। कालका भेद न होनेसे दोनो एक नही हो जाया करते। मत रहो कालका भेद, जिसका जो लक्षण है वह उसका ही है, अभेद न हो जायेगा। जैसे इस समय एक ही साथ हम आपकी गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग आदिक अनेक कर्मोका उदय चल रहा है। कालभेद तो नही है, जिस समय मनुष्यगतिका उदय है उसी समयमे पञ्चेन्द्रिय जातिका उदय है, औदयिक नामकर्मका उदय है तो क्या वे एक साथ काल-भेद न होनेसे एक हो जाये, यह कोई नियमकी बात नही है। तो वहा भी जैसे ज्ञान दर्शनमे नयोकी अपेक्षासे भेद और एकत्व किया गया इसी प्रकार ज्ञान और चारित्रके सम्बन्धसे नयोकी दृष्टिसे एकत्व और भिन्नता समझ लीजिए। जब एक आत्मस्वभावको देखते है तो वह ज्ञानसे जुदा नही, चारित्रसे जुदा नही। आत्मद्रव्य एक है। द्रव्यार्थ दृष्टिसे ज्ञान और चारित्रमे भेद है। ज्ञान, चारित्र अपना-अपना लक्षण जुदे-जुदे पाते हैं। जैसे रूप, रसादि नही होते, गध, स्पर्शादि नही होते आदि। इसीतरह ज्ञान, चारित्र भी एक पृथक् लक्षण वाले है।

एकत्व और अनेकत्वका एक अधिष्ठानमें दिग्दर्शन—तीसरी बात देखिए–क्यो परस्परमे झगडा करते ? अन्य दार्शनिकभी ऐसा स्वीकार करते है कि एक ही पदार्थमे तीन गुण, तीन शक्तिया, तीन परिणतिया जुदी-जुदी होती है, और तीनो एकमे होकर भी एक साथ होकर भी तीनो एक नही बन जाया करती। इसके अनेक उदाहरण आपको सुननेको मिल सकते है। जिसे पता है कि प्रधान याने प्रकृति और पुरुषका वह समझे प्रकृतिका तो नाम प्रधान है। साख्य सिद्धान्तमे प्रकृति एक मानी गई है मगर

उसके गुण तीन है—सत्त्व, रज और तम । सत्त्व नाम उसका है जहा शान्ति हो, समता हो, कलह न हो और रज नाम है एक उन्नतिका अथवा विशेष एक विकारका और तम नाम है मिटनेका । यो तो सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण है । इन तीनो गुणोकी समतासे तो प्रधान एक है और तीन गुणोमे विषमता हो तो प्रधानमे तीनपना है । देखो भाई जो भी अन्य दार्शनिक कहते है उन सबकी दृष्टिया जैन दर्शनमे मिलेगी । कोई भी अन्य मत जैन सिद्धान्तसे अलग होकर नही बनता । जैन सिद्धान्तकी एक-एक किरणको लेकर उसका एकान्त करके अन्य दार्शनिको ने दर्शन बनाया । सत्त्व, रज, तम क्या आप नही मानते ? उसीका तो दूसरा नाम उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, सत्त्व, रज, तम है, सत्त्व है ध्रौव्य, रज है उत्पाद और तम है व्यय । अब पदार्थमे देखो—जो भी पदार्थ है वह एक है, त्रिगुणात्मक है, लेकिन जब उसके तीनो गुणोपर दृष्टि जाती है तो उसमे तीनो बाते मालूम पडती है, व्यवहारमे भी आती है, तो एक भी है, तीन भी है, इसीतरह वह आत्मस्वभाव एक भी है, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपसे तीन भी है । बौद्धजन एक रूप परमाणु मानते तो परमाणुमे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारोके लक्षण आ गये पृथ्वीका लक्षण है कर्कस होना, जलका लक्षण है द्रव्य, अग्निका लक्षण है दाह और वायुका प्रसरण । तो यह चारो जो एकत्व है वह रूप परमाणुमे है । तो होने पर भी ये चारो बाते मानी गई ना । चार महाभूत बताये है । और भी देखिये—न्याय सिद्धान्तमें प्रमाण, प्रमेय, अवगम, यद्यपि विलक्षण है लेकिन इनके समुदायका नाम विज्ञान है अनेक प्रकारके सूत रेशमी लाल पीले हरे आदिक एक ही कपडेमे लगाते हैं फिर भी कपडा एक है फिर भी वहा ततुओमे भेद है ना ? अनेक लौकिक दृष्टान्त ऐसे मिलेगे कि एक पदार्थ होने पर भी उसमे अनेक गुण अपना अपना जुदा जुदा स्वरूप रखते है । इससे यह बिल्कुल सही कहा गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्त्व मोक्षका मार्ग है ।

ससरणविडम्बनाओकी चिन्ता—ससारमे अज्ञानके कारण रुलते रुलते अनन्त काल व्यतीत हो गये, फिर भी इस मोही प्राणीमे ऐसी कुटेव लगी है कि जिस मोहको अनादि कालसे जकडे चले आये है, जिस मोहमे रहकर यह जीव अनेक कष्ट पाता रहता है, फिर भी ऐसा अज्ञान लगा है कि मोहको छोडकर अन्य कोई मार्ग इसकी दृष्टिमे नही आ रहा । तो जिस रफ्तारसे अनन्त काल व्यतीत किया वही अब भी करते रहे तो बतलावो इस मनुष्यजन्मके पानेसे लाभ क्या है ? धनी बन जाना यह मनुष्य जन्मकी

कोई लाभवाली बात है ? धन तो धनमें है, वह तो यही रह जाता, इसे अकेले जाना पड़ेगा। क्या लोकमे यश प्रतिष्ठा बढ जाना कोई कल्याणकी बात है ? यश प्रतिष्ठा नाम किसका ? कुछ मोही स्वार्थीजन कोई गुण गा दे, इसका नाम है यश। उससे लाभ क्या ? मरनेपर इसके साथ क्या है ? सब असार है। जितने समागम है वे सब विनाशीक हैं, बेकार है। मोह करके खूब दु खी होते, कर्मबन्धन करते, विपत्तिमे अपने आपको डाल रहे है। और जितना समागम मिला है, जिसे कुटुम्ब कहते है वह समागम इसके मोह बढाने मे एक कारण बन रहा, आश्रय बन रहा, तो एक तो यह स्वयं मोहवश दु खी है और बाह्य कारण ऐसा मिल रहा कि कुछ अगर यह शान्त सा भी बैठा हो तो उसको देखकर यह उनमे राग और लगाव लगाता। रागकी ज्वालामे जल रहा है। जरा अपने भीतर देखो तो सही कितनी विपत्ति है ? कितना घोर संकट है। मोहमे मान रहा है कि मेरे तो बडा मौज है। खूब खाने पीनेका, आरामका, दूकानका, समाजका, इज्जत पानेका बडा मौज है। अरे ऐसा भाव भ्रम है, मोह है। जहा मोह है वहा विडम्बना ही विडम्बना है। कहा सन्तोष करते ? तो यह मोह भाव छोडनेकी चीज है। आत्मानुशासनमे बताया है कि एक कषायी एक बकरेको मारनेके लिए ले जा रहा था। रास्तेमे एक पेडके नीचे बैठ गया। देखिये इन कुत्ते बकरोकी ऐसी आदत होती है कि जहा बठते है वहा खरोचते है। तो वह बकरा उस जगह अपने पैरोसे भूमि खरोचने लगा। कुछ ही खरोचनेपर उसमे से एक पैनी धारवाली छुरी निकल आयी। कषायीने देखा कि यह तो छुरी निकल आयी, साफ है, बस उसे क्या विलम्ब था। जहा आध घन्टे बाद उसकी हत्या करनेको था तहां उसने उसी समय वही हत्या करदी। जैसे उस बकरीने अपने पैरोसे कुरेदकर अपने प्राण जल्दी ही गवा दिये, इसीतरह ससारके जीव अपने व्यवहारसे, अपने लगावसे अपने मन वचन कायकी चेष्टासे तुरन्त फसते है, तुरन्त अपनी बरबादी करते है। तो मोहमे अब तक यह जीव परेशान होता चला आया है। उस मोहको दूर करनेका अब उपाय करे। मोहको दूर करनेके क्या उपाय है ? वही इस तत्त्वार्थ महाशास्त्रमे कहा जा रहा है।

मोच्य पदार्थमे राजी न होना मुक्तिका तन्त्र—मोक्ष कैसे मिलेगा ? मोक्षका मार्ग क्या है, मुझे क्या करना चाहिए ? ज्ञानमात्र अपनेको अनुभवना चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र, इनकी ही धुन हो। भेदविवक्षासे तीन पर्याय है। द्रव्य एक है, परिणति अनेक है। भेदविवक्षामे गुण पर्याय समझाये जाते है। वस्तु है और परिणमती है। ज्ञानमात्र अनुभव करनेमे सब चीजे आ जायेगी। कीजिए अपनेको ज्ञान-मात्र अनुभव। मैं खण्डेलवाल हूं, अग्रवाल हूं हूमड़ हू, नरसिंहपुरा हूं, अमुक जातिका हूं,

अमुक लाल हू, अमुक व्यापारी हू, ऐसी पोजीशन वाला हू, अमुकका बाप हूँ, बाबा हूं आदिक रूप आप अपनेको अनुभव न कीजिए। क्योकि जिस रूपमे आप अपनेको अनुभव करेगे उस रूप आपको व्यवहार करना पडेगा और उसके पीछे आपको दुखी होना पडेगा। अपने आपको यह बोध श्रद्धा हो जाय कि मैं ज्ञानमात्र हू तो इसको उचित व्यवहार करना होगा। केवल ज्ञाता द्रष्टाकी परिणति, जानना, यह परिणति होगी। तो एक ही काम है, मैं सबसे निराला एक ज्ञानमात्र पदार्थ हू। आकाशवत् निर्लेप हू। आकाशमे और हममे अन्तर यही है कि मै चेतन हू और वह अचेतन है। जैसा आकाश है वैसा ही मैं हूं। हम खुद अपने आप गडबडी मचाते है, उस रूप बना लेते है, पर बाह्य वस्तुकी ओरसे कोई सकल्प करे कि मैं इसे मिटा दूगा तो इसमे कौन समर्थ हो सकेगा? मैं ही राजी होऊं तो अपने को बरबाद कर डालू। जैसे—देखा होगा कि होलीके दिनोमे लोग परस्परमे रग डालते हैं। तो उनमे जब खुद राजी होगे तभी तो दूसरे लोग उसपर रंग डाल सकेंगे यह सज्जनोकी गोष्ठीकी बात कह रहे हैं, अन्धेर नगरीकी बात नही कह रहे ऐसे ही हम राजी है इसलिए शरीर सम्बन्ध, कर्मबन्धन आदि हमपर चल रहे है, अगर हम राजी न हो तो ये हटने लगेंगे।

मोक्षमार्गको घोषणा—मोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रमें मोक्षमार्गकी घोषणा की है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है। इस सम्बन्धमे बहुत कुछ विचार होनेके बाद अब अन्तमे कुछ थोडी सी और बातें आरही है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह क्रम क्यो रखा गया है। दर्शन विश्वास, ज्ञान (जानना) और चारित्र (आचरण) यह बात यह दर्शानेके लिए है कि सम्यग्दर्शन होने पर पूर्ण सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हो अथवा न हो, दोनो बाते है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होनेपर सम्यक्चारित्र हो या न हो, यहाँ मतलब पूर्णता से है। सम्यग्ज्ञानके होनेपर ज्ञानकी पूर्णता हो अथवा न हो, सम्यग्दर्शन व ज्ञानकी पूर्णता होनेपर चारित्र पूर्ण हो जाय अथवा नही, यह भजनीय है, किन्तु जिसके चारित्र पूर्ण हैं उसके सम्यग्दर्शन और ज्ञान नियमसे परिपूर्ण है। जहा सम्यग्ज्ञान परिपूर्ण है उसका सम्यग्दर्शन नियमसे परिपूर्ण है। इससे अगली बात हो या नही, पर अगली बातके होनेपर पहिली बात नियमसे है, यह क्रम इस बातको बतलाता है।

उत्तरोत्तर भजनीयताके विषयमे एक शका—अब रत्नत्रयमे उत्तरोत्तर भजनीयताकी बात सुनकर एक शका हो सकती है कि विश्वास तो सदा ज्ञानपूर्वक ही होता है, फिर यह क्यो कहा गया कि श्रद्धान पहिले, उसके बाद ज्ञानकी पूर्णता है। अरे ज्ञान हो तब ही तो विश्वास कर सकेगा, अन्यथा अज्ञानपूर्वक हुई श्रद्धामे दोष लगेगा, अज्ञानमे भी श्रद्धा बन

जायगी। यदि पहिले सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होने पर उत्तर अर्थात् ज्ञान भजनीय है, ऐसी बात कही जायगी, ज्ञानके अभावमे श्रद्धा कह बैठेगे तो अज्ञानपूर्वक श्रद्धा कहलायगी तो फिर सब जीवोके सदाकाल श्रद्धा रहो। अज्ञान तो सबके है। तो अज्ञानपूर्वक क्या विश्वास हुआ करता है ? एक ऐसी शका उत्पन्न होती है। इसी शकाके समर्थनमे और भी सुनो। जिसने आत्मतत्त्वको जाना ही नही उसको श्रद्धा कैसे बन जायगी ? जिस फलका ज्ञान ही नहीं है, जिस फलकी प्राप्ति ही नही है उस फलमे यह कैसे कहा जायगा कि उसके रसका उपयोग हो रहा है। तो अविज्ञात पदार्थमे, जिसे जाना नही है ऐसे पदार्थमे श्रद्धान तो बन नही सकता। ज्ञान पहिले माना ही नही तो श्रद्धान नही हो सकता। दोनो खतम हो गए। इसलिए यह मानना चाहिए कि पहिले ज्ञान होता है, फिर श्रद्धान होता है। यह शंकाकार कह रहा है, और लोकमे भी ऐसा ही देखा जाता है। तीसरी बात शकाके समर्थनमे और विचारे। यदि सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर ज्ञान भजनीय रहे, या नहो अथवा न हो, इस तरह अगर रहे तो ज्ञान तो पहिले था नही। पहिले क्या था ? मिथ्या ज्ञान था। मिथ्याज्ञानके बाद हुआ सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शनके बाद मान लिया सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शनसे पहिले तो मिथ्याज्ञान था। मिथ्याज्ञान हटा तब हुआ सम्यग्दर्शन। मिथ्याज्ञान हटा और सम्यग्ज्ञान न आ पाया क्योकि सम्यग्ज्ञानको शकाकारने माना कि सम्यग्दर्शन होनेके बाद होगा। इनका कथन है कि उससमय न सम्यग्दर्शन रहा, न सम्यग्ज्ञान रहा। जड़ हो गया। सम्यग्दर्शनसे पहिले सम्यज्ञान तो है नही, मिथ्याज्ञान है। मिथ्याज्ञान दूर हुआ तब हुआ सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन दूर हुआ तब हुआ सम्यग्ज्ञान। तब कुछ समय आया ना कि न सम्यग्दर्शन रहा न सम्यग्ज्ञान। इसका अर्थ हुआ कि जड़ हो गया। इससे मानना चाहिए कि सम्यग्दर्शनसे पहिले ज्ञान होता है। अगर ऐसा न मानेगे तो यह दोष आता है, और जब ज्ञान ही न रहा, जड हो गया तो मोक्षका उपदेश किसको देते ? मोक्षमार्गकी किसे परीक्षा कराते ? मोक्ष हो ही नही सकता। मार्ग बन ही नही सकता। तब यह कहना चाहिए कि सम्यग्दर्शनसे पहिले ज्ञान होता है। यह मत कहो कि सम्यग्दर्शनके बाद ज्ञान होता है। भजनीय है, हो भी, न भी हो, यह शंका हुई।

सम्यग्दर्शन होनेपर सम्यग्ज्ञानकी भजनीयताके विषयमे हुई आशंकाका समाधान— अब उत्तरोत्तर भजनीयताका समाधान सुनो जो यह बात कही गई है—सम्यग्दर्शन होनेपर ज्ञान हो या नही, चारित्र हो या नही, इसका अर्थ है कि सम्यग्दर्शन होनेपर पूर्णज्ञान हो या नही। साधारणतया सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शनके साथ ही हुआ, बल्कि जिस प्रकारका ज्ञान सम्यग्दर्शन होनेपर बन गया उस तरहका ज्ञान तो सम्यग्दर्शनसे पहिले भी होता, सिर्फ

सम्यक नही बनता। जैसे-किसीने मिश्री न खायी हों, आप उसे युक्तियोंसे बहुत-बहुत समझायें कि देखो मिश्री गन्नेके रससे बनती है। गन्ना तो चूसा होगा ना ?—हाँ हाँ। तो उस गन्नेको अग्निमे तपाकर उसे गाढा करके राब बना दिया गया तो वह रससे भी मीठा हो गया, उसे और तपाकर, जब गुड बनालिया गया तो वह उससे भी मीठा हो गया। गुडसे जब मैल निकालकर शक्कर बना ली गई तो वह और भी मीठी हो गई। उस शक्करका सारा मैल निकालकर जब मिश्री बना ली गई तो वह सबसे ज्यादह मीठी हो गई। तो समझ गए ना मिश्रीका स्वाद ? हा समझ गए। अब जरा मिश्रीकी एक डली उसके मुखमे उठाकर रख दो तो उससे जो ज्ञान बना उसमे और पहिले की जानकारी वाले ज्ञानमे अन्तर है ना ? अरे मिश्री चखनेके बाद जो ज्ञान बना वह एक अनुभवात्मक ज्ञान है इस अनुभवात्मक ज्ञानसे पहिलेका जो ज्ञान था वह अनुभवबिना ज्ञान था। इसीतरह जीवादिक पदार्थोंका आत्माका जो श्रद्धान होगा तो वहा श्रद्धानसे पहिले ज्ञान तो होता है। कुछ भी उसका बोध न हो, तत्त्वाभ्यास न हो, आत्मस्वरूपके बारेमे जानकारी न हो तो श्रद्धान कहा से हो ? लेकिन श्रद्धान होनेपर यही ज्ञान निश्चय वाला ज्ञान कहलाने लगता है। जो अनुभव सहित ज्ञान हो उसे कहते है सम्यग्ज्ञान और जो अनुभवसे पहिले ज्ञान हुआ है उसे सम्यग्ज्ञान नही कहा। तो ऐसा सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनके साथ—साथ होता है। लेकिन सम्यग्ज्ञान श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान इन दो मे समझिये तो श्रुत ज्ञानकी पूर्णता सम्यग्ज्ञान होनेके पीछे होती है और केवलज्ञानकी उपलब्धि सम्यग्ज्ञानके बाद होती है, इस कारणसे यह बात सही है कि पूर्व पूर्व होनेपर उत्तर उत्तर भजनीय है। जितनेमे ज्ञानकी पूर्णता समझी जाय उतने ज्ञानका यह जिकर है। श्रुतज्ञान पूर्ण कब होगा ? जब श्रुतकेवली होगा। श्रुतकेवली होगा तो सम्यग्दर्शनके अनन्तर होगा इसलिए यह बात ठीक बैठ जाती है।

शुद्धनयका पथ और सम्यक्त्व प्रासाद—अब सम्यग्दर्शनके बारेमे कुछ ध्यान लगाकर विशेष यह समझे कि सम्यग्दर्शनका जो विषय है वह अखण्ड एक ज्ञायकस्वरूप है। शुद्धनयका जो विषय है उसका जो आश्रय करता है ऐसा पुरुष शुद्ध नयकी कल्पनासे परे होकर सम्यक्त्व प्राप्त करता है। दो तरहके नय बताये गए—(१) शुद्धनय (२) अशुद्धनय। शुद्धनयका अर्थ है अखण्ड एक शाश्वतस्वरूप, जिसका विषय हुआ। अशुद्ध नयका विषय है कि उस अखण्ड वस्तुके भेद किए जा रहे हो। देखो इस प्रकरणमे अशुद्ध नयका अर्थ विकार न लेवे। विकार भी है, स्वभाव भी है, गुण है, सब है। अशुद्धनयका अर्थ है जहां अखण्ड तत्त्व विषयमे न हो। किसी भी प्रकारका खण्ड हो उसे अशुद्धनय कहते है। जैसे शुद्ध दूध और अशुद्ध दूध। कोई पुरुष नहा धोकर बडे कुल वाला अपने ही हाथसे

दूध दुहकर लाये और उसमे बडा शुद्ध अठपहरा गरम जल मिला दे तो बताइये वह दूध शुद्ध है कि अशुद्ध ? देखिये यह बात पूछ रहे है पदार्थकी दृष्टिसे, छुवाछूत वाले शुद्ध अशुद्धकी बात नही पूछ रहे। परखिये वह दूध अशुद्ध है। दूधमे पानी मिल जानेमे दूध अशुद्ध हो गया। शुद्ध दूधमे किसी अन्य चीजका मिश्रण नही होता। क्रीम बनाने वाले लोग जब मशीनसे उस दूधकी क्रीम निकाल लेते है तो वह दूध अशुद्ध हो जाता है, यदि दूध जैसा का तैसा रहे जैसा अपने आप है वैसा रहे तो वह शुद्ध दूध है। और उसमें कुछ जोड़े या उसमे से कुछ निकाले तो उसे अशुद्ध कहते है। छुवाछूत वाली बात नही कह रहे, यहा द्रव्य स्वयं अपने आपमे परिपूर्ण है, उसमे कुछ जोडा न जाय इसमे से कुछ न निकाला जाय तो उसे कहते है शुद्ध। इसीतरह आत्माकी बात देखो आत्मा एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानमात्र अखण्ड है। इसका अगर कोई यो वर्णन करे कि इसमे राग है, द्वेष है, कर्म इसके साथ हैं, शरीर इसके साथ लगा है तो यह कौन सा नय हुआ ? अशुद्धनय। और कोई यह कहे कि आत्मामे दर्शन, ज्ञान, चारित्र आनन्द आदि गुण है तो यह कौनसा नय है ? यह भी अशुद्ध नय है, क्यो कि अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्माका इसने भेद किया, खण्ड किया, यह भी अशुद्ध नय है। जब शुद्धनयकी बात बतावे तो शुद्धनयकी बात बताने लायक कोई शब्द नही है, फिर भी कुछ शब्द है—अखण्ड, एक, शाश्वत, पर्यायसे अतीत ऐसा जो एक द्रव्य है, स्वभाव है वह शुद्धनयका विषय है। ऐसा शुद्धनयका विषय बने तो सम्यक्त्वका लाभ हो। उसे ही सीखनेके लिए यह व्यवहार नय, पर्यायार्थिकनय, अशुद्धनय कहना होता है, और इनके कहे बिना काम भी नही चलता।

व्यवहार और निश्चय नयकी आवश्यक्ताका दिग्दर्शन—व्यवहारनय आवश्यक है। किसलिए ? निश्चय द्वारा बताये गये विषयको समझनेकी पात्रता लानेके लिए, और करने का काम है कि व्यवहारनय भी छूटे और निश्चयनय भी छूटे। दो नय है। जैसे दो आखें है। चाहे हम दाहिनी आख बन्द करके बाई आखसे देख सकते, बाई आंख बन्द करके दाहिनी से देख सकते, दोनो आखे खोलकर भी देख सकते और दोनो आखे बन्द करकें भी देख सकते। दोनो आखे बन्द करके देखनेमे आन्तरिक अन्तस्तत्त्वका सम्बन्ध है। तो चार तरह से देखना होता है, इसीतरह द्रव्यार्थिकनयको गौण करके पर्यायार्थिकनयसे भी देख सकते, पर्यायार्थिकनयको गौण करके द्रव्यार्थिक नयसे भी देख सकते। और द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनो नयोको सामने रखकर भी देख सकते। इसे कहते है प्रमाण। जो सभी नयोसे समानतासे उसके विषयका निर्णय करे उसे कहते है प्रमाण। खाली कोई वस्तुके निश्चयनयकी बात रखे उमे, सर्वस्व माने, बाकी मिथ्या मानेतो अप्रमाण है। वस्तुके सर्वांश-

का ज्ञान करनेका नाम प्रमाण है। और कोई द्रव्यार्थिकनयको न मानकर केवल पर्याय पर्यायकी बात समझाये तो वह ज्ञान अप्रमाण है, प्रमाण ज्ञान वह है जो सर्वनयोसे सर्व-अंशसे समझाये। अच्छा, तो तुम द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनो नयोको हटाकर देख सकते हो क्या? देख सकते। वह है अन्तर्दर्शन, वह है आत्मानुभव। तो आत्मानुभव व्यवहारसे तो परे है ही मगर निश्चयमे भी परे है। दोनो नयोके पक्षसे अतिक्रान्त है, पर इतना है कि निश्चयनयकी बातको समझनेके लिए व्यवहार सहायक है और अनुभव पथमे आनेके लिए निश्चयनयकी भूमिका बनाना सहायक है। तब सम्यक्त्व क्या हुआ? परद्रव्यसे भिन्न, कषाय भावसे भिन्न अपने आपके स्वरूपमे प्रतीति होना, अनुभूति होना सम्यग्दर्शन है। शुद्धनयका विषयभूत जो तत्त्व है उसका आलम्बन लें और ऐसा आलम्बन लें कि विकल्प दूर हो उस आलम्बनमे भी पक्ष न हो ऐसा स्वतंत्र हो जाय तो वहा सम्यक्त्वका लाभ है। तो जो भूतार्थनयका विषयभूत जो एक अखण्ड अन्तस्तत्त्व है उसका परिचय जरा करें तो। क्या है वह? आत्मस्वरूप, जिसरूप अपनी श्रद्धा करे, आत्म प्रतीति करे तो सम्यक्त्वका लाभ हो।

अपनी बात परखनेमे कठिनता क्यो—भाई किसकी बात कही जा रही? दूसरेकी बात तो समझना कठिन होती है और अपनी बात समझना सरल होती। दूसरेका बुखार समझना कठिन है या अपना? दूसरेका बुखार समझना कठिन है, दूसरेकी निरोगता समझना कठिन है या अपनी? दूसरेकी। धन वैभव, दूकान फर्म आदिककी बात समझना कठिन है या अपने आत्माकी? भाई सही सही उत्तर दो, चाहे कर न सको, पर उत्तर देनेमे क्या सकोच करते? अरे बाहरी चीजोकी बात समझना कठिन हैं, अपनी खुदकी बात समझना सरल है। लेकिन, अपनी बात समझना कठिन यो लग रही कि अपने आपकी ओर कुछ दृष्टि नही है, रुचि नही है। चित्तमे बसी हुई है वे धन वैभव आदिक बाहरी चीजें, सो अपने आपकी बात समझना तो कठिन है ही। जब कभी आपका ध्यान कमाईकी ओर विशेष रहता है उस समय आप झटपट भोजन भी कर जाते हैं, पर यह पता नही रहता कि हम क्या खा गए। जब चित्त कही बाहर लगा है तो जब भोजन जैसी मोटी चीजकी बात समझ न सके तो फिर आत्माकी बात कैसे समझमे आजायगी? अब इतना तो मोटा ज्ञानकर ही ले कि बाहरके जो जड पुद्गल हैं उनके मोहमे, लगावमे रुचिमे मेरी बरबादी है। यह तो मोटी बात है। क्योकि देख ही रहे है। खूब धन जोडकर रख गए, आखिर गुजर गए तो सब छूट गया। आपका आत्मा न जाने कहा जाय और वहा क्या करे? तो यह सारा समागम बेकार है मेरे लिए मेरा कोई सहायक नही है, अकेले ही कर्मफल भोगना पड़ता

है, अकेले ही बंध करना पडता और अकेले ही मरण करना पडता है, इसलिए मेरे लिए बाहरका कोई शरण नही है, यह बात चित्तमे लावे बाहरी धनवैभवकी क्या कीमत है ? अगर आपको आत्मतत्त्वका ज्ञान हो जाय, रुचि हो जाय तो तीन लोकका वैभव भी सामने पडा हो तो भी उसका क्या मूल्य ? चाहिये तो शान्ति और शान्ति मिलती है आत्मबोधसे, आत्मज्ञानसे। तो उसके लिए उद्यम न हो और जो अशान्तिके साधन है उनमे योग जुडे तो यह तो ब त बडी भूल है।

आत्मपरिचयमे आत्मदया---कुछ भी आत्माकी दया आये, आपको अपने आत्मा-की दया आये, आत्मरुचि जगे तो आत्माकी निधिकी बात समझमे आ सकती है कि क्या है आत्मा ? अनतज्ञान अनत आनन्दका निधान है आत्मा। एक और मोटी बात मानलो---जैसे किसीने कहा कि मेरा मकान, तो देखिये--इसमे दो बाते जाहिर हो गई, मेरा और मकान, ये दोनो चीजे भिन्न-भिन्न है। मकान धन वैभव शरीर ये सब इस आत्मासे भिन्न है, जुदी चीज है, जड हैं, और कुटुम्ब परिवार ये भी प्रकट भिन्न है। तो इनसे निराला है मेरा आत्मस्वरूप ? और फिर जो क्रोधादिक कषाये है, इच्छा, ईर्ष्या आदिकके जो भाव उत्पन्न होते है उन भावोसे भी भिन्न है मेरा आत्मा, क्योकि ये नैमित्तिक भाव है, ये मेरे स्वभावसे नही उत्पन्न हुए, उपाधिका निमित्त पाकर हुए। नैमित्तिक भाव मेरे स्वरूपमे नही है उन परभावोसे मैं आत्मा भिन्न हू। यहा तक कितनी बात समझमे आयी कि जड वैभवसे मै निराला हू, और विषयोमे निराला हूं। कुटुम्बसे न्यारा हू, और मेरे मे जो परभाव उत्पन्न होते, विषय कषायके परिणाम होते उनसे भी मै न्यारा हूं ? ज्ञानस्वरूप। और, कैसा हू ? इनसे निराला हू। इतनी बात सुनकर कोई बोल उठा कि हम तुम्हारी बात समझ गए। कषायोसे न्यारा है यह आत्मा। तो कैसा है ? समझ तो गए। बतलावो कैसा है ? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान जो मैं जान रहा हूँ बस मै उन रूप हू। तो उससे कहो अभी तुम नही समझे। कषायोसे निराला है यह आत्मस्वभाव। ठीक है, पर जो छुटपुट जानकारिया बन रही है, जो कुछ ज्ञान बन रहा है। यह भी मैं नहीं हूं। अरे यह मैं क्यो नही हू ? यो नही हू कि ये ज्ञान अधूरे हैं। क्या तुम अधूरे हो तो अपनेको कोई अधूरा नही स्वीकार करता, पूर्ण ही स्वीकार करता। जो ये अधूरी जान-कारियाँ चल रही है तो ये तुम हो क्या ? नही। मै तो परिपूर्ण हूं। तो फिर बोल उठा कोई सुनने वाला--अब हम समझ गए, जो पूरा हो, परिपूर्ण हो वह मैं हूं। क्या समझे ? समझ गए, केवलज्ञान हूं मै, क्योकि वह पूरा है, तो उसे भी समझाइये कि अभी तुम आत्मस्वरूप नही समझे। आत्मा तो आदि मध्य अन्तसे रहित है, केवलज्ञानकी तो आदि

है। "अच्छा तो आत्मा ज्ञान दर्शन आदि गुणरूप है।"'नही, नही, आत्मा खंडरूप नही, आत्मा तो एकरूप है। "अच्छा अब जाना आत्मस्वभाव एक है।"'नही नही, जब तक एक है इतना भी विकल्प रहेगा, तब तक आत्मस्वभावका परिचय न होगा। वास्तविक परिचय तो अनुभवमे है और अनुभव सकलविकल्पमुक्त है। सो आत्मस्वरूप विलीन-संकल्पविकल्पजाल है। ऐसे आत्माका परिचय सकल कष्टहारी है।

धर्मप्रवृत्तिका कारण अशान्तिपरिहारका प्रयोजकत्व—धर्मकी प्रवृत्ति किस कारण-से होती है? वह कारण है कि वर्तमानमे हम सब अशान्त है, इस अशान्ति को दूर करनेका हमे उपाय करना चाहिए। तो वह उपाय सिवाय धर्मपालनके और कुछ नही। धर्मपालन है स्वभाव दृष्टि। अपने आपका जो सहज निरपेक्ष स्वरूप है, जो इस तरह परखा जायगा कि मानो हमारे साथ किसी भी दूसरे पदार्थका सम्पर्क न हो, किसी भी उपाधिका सम्बध न हो, ऐसी स्थितिमे हम किस तरह रह सकते है, वह है हमारी एक स्वभाविक स्थिति। वह है स्वभावके अनुरुप स्थिति। तो वह स्थिति तो शान्तिपूर्ण है। और उस स्थितिके अतिरिक्त अन्य जो स्थितिया हैं उपयोगकी उनमे आकुलता है। इसलिए जहां आकुलता न हो ऐसा पद प्राप्त करनेके लिए एक धर्मपालन ही साधक है, याने स्वभावदृष्टि करना शान्तिका साधक है। अपने आपको भी अनुभवसे देखो तो जब जब हम किसी पर पदार्थके सम्पर्क-रागमे रहते हैं तब तब हमे कोई प्रकारकी व्याकुलता ही रहती है और जब कुछ हम बाह्य-से हटकर एक अपने आत्माकी ओर होते है, बाह्यका सम्पर्क हमारे उपयोगमे नही होता है उससमय हमको शान्ति प्राप्त होती है, तो स्वभावदृष्टि ही एक उपाय है कि जितना हम अशान्तिसे हटे और शान्तिमे आये। वह स्वभावदृष्टि बनती किस प्रकार है? उसके लिए हमे स्वभावके ज्ञानका अभ्यास चाहिये? स्वभावका ज्ञान हम किस प्रकार कर सकेंगे उसके लिए हमे प्रमाण नयका विशद परिज्ञान हो और उन उपायो द्वारा हम वस्तुकी परीक्षा रखे तो हम स्वभाव परिचय पा सकते है। शास्त्रोमे जो कुछ भी कथन है उन सबका प्रयोजन है जीवमे स्वभावदृष्टिके लिए प्रेरणा करना। जो प्रथमानुयोग है, उनमे कथानक हैं, उन कथानकोसे भी हमे प्रेरणा यह ही मिलती है कि बाहरी समागम छूटे और एक अपने अन्त स्वरूपमे मग्न रहे। करणानुयोग है वह तो एक निष्पक्ष निर्णायक रूपको बताता है, जो कुछ स्थितियां जिस-जिस परिणाममे होती हैं उनमेभी यह शिक्षा मिलती है कि जहा कर्मभार न रहे, विकल्पजाल न रहे ऐसे पदमे आना चाहिए। चरणानुयोग भी हमे यह ही शिक्षा देता है कैसे चरणानुयोग कार्यकारी है और उसका स्वभाविकदृष्टिमे सहयोग है यह अभी कहेगे। थोडा यह बतलाकर कि धर्मपालनमे हमको स्वभावदृष्टि करता है

और स्वभावदृष्टिके लिए स्वभावपरिचय करना है, और स्वभावपरिचय बनता है हमारा प्रमाण नयोके द्वारा। प्रमाण तो उसे कहते है कि जो दोनो नयोको प्रधानतया समझे। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। बात ऐसी है कि जो भी पदार्थ है वह सदा रहता है अनादि अनन्त है, किन्तु उसकी स्थितिया प्रति समय नवीन-नवीन होती है। तो सदा रहने वाले तत्त्वको बनाने वाला द्रव्यार्थिक और क्षण-क्षणकी स्थितियोको बनाने वाला पर्यायर्थिक। दूसरी बात समझिए। जो भी वस्तु है वह वस्तु अपने स्वभावरूप है, अखण्ड है, उसको समझनेके लिए शक्तिभेद, गुणभेद, करके हम उसे समझते है और प्ररूपण है। तो उसमे जो अभेदको बताने वाला नय है वह है पर्यायर्थिक। तो इन सब नयोका उपयोग हमारी स्वभावदृष्टिमे सहायक होता है, इसलिए यह कहना कि द्रव्यार्थिक सत्य है, पर्यायार्थिक असत्य है या निश्चय सत्य है, व्यवहार असत्य है, ऐसा द्वैत युक्त नही है। जब द्रव्य और पर्याय दोनो ही वस्तुमे पाये जाते है। सदा रहे वस्तु और उसकी प्रतिक्षण परिणतिया हो, पर्याय बिना द्रव्य नही, द्रव्य बिना पर्याय नही, तो एक नयको असत्य कैसे कहा जा सकता है ? और, फिर दोनो है सम्यक श्रुतज्ञानके अग।

नयोके प्ररूपणसे आत्महितकी बात निकलना—भैया हितकी बात तो इसमे है कि पर्याय अध्रुव है उसरूप अपनेको समझना, उसकी ही दृष्टि रखना, यह हमारे मोक्षमार्ग मे साधक न बनेगा। और द्रव्यार्थिकदृष्टिसे जो हमने स्वभावपरिचय किया उसकी दृष्टि साधक बनती है। लेकिन फिरभी अगर सदुपयोगकी दृष्टि हो और एक स्वभावदृष्टिका प्रयोजन परिपूर्ण बन गया हो तो निश्चयनयके द्वारा हमको स्वभावदृष्टिमे मदद मिलती है उसी प्रकार व्यवहारनय द्वारा भी हमको स्वभावदृष्टिमे मदद मिलती है। इसको और स्पष्ट यो समझ सकते हैं कि बात दो समझली—वस्तुस्वतन्त्रय निमित्त नैमित्तिकभाव प्रत्येक पदार्थ अपने आप सत् है और अपने आपमे अपने आपकी परिणमन शक्तिसे परिमता रहता है। परिणमन स्वमेव उसमे चलता है, किसी अन्य पदार्थकी परिणति लेकर नही परिणमता। इस दृष्टिसे वस्तु स्वतन्त्रय अभेद है। इसे कोई तोड नही सकता। जब विकारकी बात कहते है तो विकार होनेमे जिसमे विकार हुआ है वही पदार्थ खुद निमित्त नही हो सकता। कोई भी पदार्थ खुद ही अपने आपके परिणमनमे निमित्त नही बन सकता। इसलिए वह निमित्तपरसग ही है। तो जब हम विकार परिणतिका निर्णय बनाने है तो वहा यह ही निर्णय होता है कि यह पदार्थ परका सन्निधान पाकर ही विकृतरूप परिणम सकता, ऐसा होने पर भी वस्तु स्वातन्त्रय नही मिला, अर्थात् निमित्तकी परिणति लेकर यह परिणमा हो या निमित्तने

अपनी परिणति उपादानमे आकर परिणमाया हो, ऐसा तोनही है। वस्तुस्वातन्त्र्य कहा मिला? इतने परभी परसंग बिना विकार होता नही, अन्यथा विकार स्वभाव बनेगा। तो विकार होनेमे वस्तुस्वतन्त्रयभी नही मिटा और निमित्त नैमित्तिक भाव भी नही मिटा। बात दोनो है और हमको इन दोनो ही कथनोसे स्वभावदृष्टिका प्रयोजन रखना चाहिए जैसे निश्चयनय की दृष्टिमे हमे प्रयोजन सिद्ध होता है कि एक ही पदार्थको निहारना, एक ही मे उसके सर्वस्वको देखना, किसी अन्य पदार्थ निमित्तको न देखना, ऐसा जब हम एक निश्चयनयका आशय बनाते है उस समय कोई भी परपदार्थ हमारे उपयोगका विषय नही होता। हम उस विकारको लम्बा नही कर सकते। उस वक्त विकारको हम नही बना पाते, क्योकि आश्रय-भूत पदार्थ पर भी दृष्टि न हो रही, अन्य कोई विकल्पभी न रहा, ऐसी स्थितिमे एक ही द्रव्यको निहार निहार कर हम उस विकारको गौण कर स्वभावदृष्टि पर आ सकते है ऐसा वहा ही अवसर है, और परमशुद्ध निश्चयनयका तो साक्षात् ही विषय है और जब हम निमित्त नैमित्तिक भावके वर्णनका सदुपयोग करते है तो देखिए कितनी सुगमतया मदद मिलती है। स्वभावको जब परखते है तब ये कषाये, ये विकार मेरे नही, मेरे स्वरूप नही, ये कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए। यह कर्मलीलाकी छाया है, ये औपाधिक हैं, परभाव है, मेरे नही, मैं इन सबसे निराला एक ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभावरूप हू। तो इन औपाधिक भावोके निर्णयने इस नैमित्तिक भावके निर्णयने हमको उससे हटने मे मदद दी और अपने आपके स्वभावको परखने मे मदद दी। तो निमित्त नैमित्तिक भावके वर्णनका भी जब हम सदुपयोग करते है तो स्वभाविक दृष्टिसे हमे बहुत अच्छी प्रकार मदद मिलती है, और इन दोनो पद्धतियोसे मदद लेनेकी बात समयसारमे जगह-जगह बतायी गई है। ये नरनारकादिक भव, ये वर्ण, रस, गध, शरीर आदिक, ये क्रोध, मान, माया, लोभआदिक और यहा तक बताया कि गुणकी अवस्थामे गुणस्थानभी ये कर्मविपाकका निमित्त पाकर हुई है इसलिए ये मेरे स्वभाव नही, मेरे स्वरूप नही, ये पौद्गलिक बनाते है। पुद्गलकर्मसे निष्पन्न है याने अपने आपके स्वभावसे कितना अधिक विविक्त और कितना निराला समझा देनेमे यह व्यवहारनय निमित्त नैमित्तिक भाव कितना उपकारी बन रहा है।

निश्चयनय, व्यवहारनय व उपचारकी सत्यासत्यताका निर्णय—सक्षेपमे इतना समझना कि तीन बाते जाननेकी हैं--(१) निश्चयनय, (२) व्यवहारनय और (३) उपचार निश्चय तो एक द्रव्यको ही निरखने वाला होता है, व्यवहारनय निमित्त नैमित्तिक भाव सम्बधसे बताने वाला होता है और उपचार निमित्त नैमित्तिक सम्बधकी बात निरखकर उसकी सीमासे आगे बढकर कर्त्ताकर्म भावके रूपमे उपस्थित करना उपचार है।

उपचारमे जैसा जो कुछ कहा है उन्ही शब्दोमे कोई समझे तो वह मिथ्या है, पर व्यवहार-नय, और निश्चयनयने जो कुछ कहा है वह मिथ्या नही है जैसे कोई यह कहे कि घडा बना, मिट्टीने घडा बनाया, मिट्टीमे बना, मिट्टीमे परिणामन है। मिट्टी स्वामी है। तो यह कथन अगल नही। कोई कहे कि उस प्रकारका व्यापार करने वाले कुम्हारका निमित्त पाकर यह घडे रूप पर्याय हुई है यह व्यवहारकी बात, निमित्त नैमित्तिककी बात, यह भी मिथ्या नही है, और, कोई यह कहे कि कुम्हारने घडा बनाया। क्रियाका अर्थ सब जगह यह लेना कि यह परिणाम सकर्ता, अर्थात् जो परिणमे सो कर्ता। ऐसी परिभाषा मनमे रखकर ऐसा सोचना कि कुम्हारने घडा किया, ऐसे ही कोई समझे तो यह मिथ्या है, इसी प्रकार अपने आपके आत्मामे घटाये। आत्मा, यह जीव रागी बना, राग रूपसे परिणत हुआ, ऐसा निरखना, सो बात मिथ्या नही है और ऐसा निरखनेमे कि राग कि परिणतिके उदयका निमित्त पाकर जीव रागी बना, ऐसा भी मिथ्या नही है, किन्तु यह समझना कि कर्मने जीवको रागी किया तो यह मिथ्या है, इन तीनोका अन्तर बिल्कुल स्पष्ट है। निश्चयनय तो केवल एक द्रव्यको निहारता। दूसरे द्रव्यकी बात ही नही करता। जीव रागी बना, राग रूपसे परिणत हुआ, यह निश्चयनयका विषय है, और, कर्मराग परिणतिका निमित्त पाकर जीव राग परिणत हुआ, यह व्यवहारका विषय हुआ। इनका सम्बंध बताया। यह अपने आप रागी नही बना, किन्तु परसंगका निमित्त पाकर रागी बना। अब यहां कोई कहे कि कर्मराग परिणातिने जीवको रागी बनाया तो बनाया या किया इसका भाव है—य परिणमति स कर्ता तो यह राग प्रकृति ही रागरूप परिणमे तो यह अपने आपके अनुरागरूप परिणामी, पर जीवकी कल्पनामे, उपयोगमे, विचारमे जो कुछ लगाव आया उस प्रकारका परिणमन तो वह जीवका है। उस परिणामको कर्मने नही किया। अर्थात् जीवके परिणामरूप कर्म नही परिणमा। आत्मार्थीकी, कल्याणार्थी की विशेषता यह है कि उसने यह निर्णय बनाया कि मेरेको स्वभावदृष्टि चाहिए, तब वह समस्त कथनोका प्रयोजन स्वभाव दृष्टिको बनाता है।

चरणानुयोगकी उपयोगिता—अब इस प्रसगमे यह भी देखिये—चरणानुयोग कैसे हमारे काम आया ? बात यह कही जा रही कि स्वभावदृष्टि करो, स्वभावमे मग्न हो, पर अनादि कालकी वासनासे वशीभूत हुआ यह जीव थोडा स्वभावका परिचय भी पाले तिसपर भी बारबार च्युत होता है, क्षण भर भी नही ठहर पाता, ऐसी अज्ञान वासनाका जो संस्कार है वह इस स्वभावदृष्टिमे आगे नही बढ पाता, क्यों नही बढ पाता कि व्यक्त विचारके साधन भूत बाह्य पदार्थोका इतना सम्बन्ध है कि उनको निरखकर यह अपने

स्वभावसे च्युत रहता है। ऐसी स्थितिमे है ही सब जीव अनादिसे ही है। तो यह स्थिति हमको बाधक बन रही है। समयसारमे भी बताया है ना कि नहि बाह्य वस्त्वनाश्रियाध्यव-सानमात्मानमुपलभते" अर्थात् बाह्य वस्तुका आश्रय किए बिना अध्यवसान अपना स्वरूप नही बना पाता। विकार होनेमे तीन बाते प्रसक्त होती है—कर्मोदय, जीवका विकार और आश्रयभूत पदार्थका उपयोग। जैसा क्रोध हुआ तो कहा क्रोध प्रकृतिका उदय अन्तरङ्ग निमित्त है। और पुत्र, नौकर आदिक जिनको ध्यानमे लाकर क्रोध किया जा रहा वे बहिरङ्ग निमित्त है और क्रोध करने वाले जीव उपादान है। तो जब बाह्य वस्तुका आश्रय करके ही व्यक्त विकार बनता है और व्यक्त विकारसे ही सस्कार पुष्ट होता है तो उसके लिए जैन शासनमे यह उपदेश है कि आश्रयभूत पदार्थका त्याग करे, कोई थोडा कर पाता है तो उसकी वह श्रावक अवस्था है, कोई आश्रय भूतका पूर्ण रूपसे त्याग कर सकता है तो वह मुनि अवस्था है। तो इस आधारपर यह ही चरणानुयोग प्रक्रिया युक्तिसगत होती है।

अन्तरङ्ग निमित्त व बहिरग निमित्तका स्थान—अब इस सम्बन्धमे एक दो बाते और ज्ञातव्य है कि जैसे आजकल एक बात यह कही जाने लगी है कि निमित्तपर जब उपयोग दो तो वह निमित्त बनता है, उपयोग न दो तो निमित्त नही होता। और तभी निमित्त पर उपचार किया जाता है। कार्य बन गया तो निमित्त पर उपचार किया जाता है। उनका कथन सही है या गलत है, इसका एकान्त से निर्णय नही है। सही भी है, गलत भी है। सही तो यो है कि यह कथन बहिरङ्ग निमित्त पर घटित होता है, गलत यो है कि यह कथन अन्तरङ्ग निमित्त पर लागू नही होता हैं यह भेद जानना है, और ऐसा भेद समझे बिना दोनो निमित्तोसे एक निमित्त शब्द से कहकर इस कक्षा मे रख देनेपर फिर विसम्बाद होने लगता है। जैसे दृष्टान्त दिया जाता कि देखो जिनप्रतिमा के दर्शन सम्यक्त्वका निमित्त लोग कहते है, और ग्रन्थोमे भी लिखा है, तो कहते है कि जिनप्रतिमाका दर्शन करना यदि निमित्त है तो जितने दर्शन करने वाले लोग हैं उन सबको सम्यक्त्व क्यो नही होता ? इसलिए सम्यक्त्वके होने मे तो जिन प्रतिमापर निमित्तका उपचार है। बात ठीक है मगर इस निमित्त की बात को अन्तरङ्ग निमित्त तक कोई ले जाय कि ७ प्रकृतियोको क्षय, क्षयोपशम आदिक निमित्त जो अन्तरङ्ग हैं, उपचार वाला यह कथन मिथ्या हो जाता है। तब ही जो यह दोष नही आता कि यह अनेक बार समवशरणमे भी गया होगा लेकिन फिर भी सम्यक्त्व न हुआ तो देखो, निमित्त कुछ कर तो नही सकता ? उनके लिए यह समझना होगा कि कुछ कर न सके,

इसका अर्थ यदि इतना ही है कि यह उपादानरूप न परिणम सके तब यह बिल्कुल सही बात है कि अकिञ्चित् कर है और निमित्त नैमित्तिक भावकी दृष्टिसे देखिये तो समवशरण जिनप्रतिमा आदिक ये निमित्त नही, किन्तु आश्रयभूत है याने अन्तरङ्ग निमित्त नही, किन्तु बहिरङ्ग निमित्त है। बहिरङ्ग निमित्तका आश्रय करना, मेल करना जिस-जिस परिणाम के लिए होता हुआ देखा जाता है उसका उपदेश है, पर अन्वय व्यतिरेक नही है। जैसे कि कर्मोदयके साथ जीवके विभावका अन्वयव्यतिरेक है, क्रोध–प्रकृतिका उदय होनेपर ही क्रोध हो सकता, उस क्रोध प्रकृति के अभाव मे क्रोध नही हो सकता। तो जैसा अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध अन्वय निमित्त के साथ है ऐसा सम्बन्ध बहिरङ्ग निमित्त के साथ नही है। यही आश्रयभूत और निमित्तमे अन्तर है। जैसे जिन प्रतिमाके दर्शन करने पर ही सम्यक्त्व होता या प्रतिमाके दर्शन न हो तो सम्यक्त्व नही होता ऐसा अन्वय व्यतिरेक न लगा सकेगे। वह आश्रयभूत पदार्थ है, पर वह सब क्षय क्षयोपशम होने पर ही सम्यक्त्व हुआ, उसके होनेपर नही हुआ, तो निमित्त तो वास्तवमे कर्मोदय है। ये बाहरी पदार्थ निमित्त नही कहलाते, इसीकारण एक दृष्टान्त दिया जाता है कि कोई वेश्या मरी, और उसका शरीर जलाने के लिए लोग लिए जा रहे थे तो उसे देखकर एक कामी पुरुषका विचार काम विषयक बना और एक साधुका विचार उस वेश्याकी मूर्खता देखने का बना–देखो कितना दुर्लभ मानव जीवन पाकर भी इसने अपना कोई कार्य न किया। मास खाने वाले कुत्ते, स्याल वगैरह के और तरह के विचार बने। ये इन्द्रिय और मनके विषय है। पदार्थ अगर निमित्त हो तो सबके लिए एकसा ही नैमित्तक भाव होना चाहिये था। पर बात क्या हुई कि मुनि महाराज के तो अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषाय न थी, इस तरह का तीव्र उदय और उदीरणा नही है। यह है अन्तरङ्ग निमित्त, तो देखो उसके अनुरूप मुनिका भाव हुआ। और कामी पुरुषके वेदका तीव्र उदय और उदीरणा है तो कामीका उसके अनुरूप भाव हुआ। तो अन्तरङ्ग निमित्त वास्तविक निमित्त है और बहिरङ्ग निमित्त आश्रयभूत पदार्थ यह आश्रयभूत है। इसे कहो तो बहिरङ्ग निमित्त कहो, न कहो तो केवल नोकर्म या आश्रयभूत कहो। तो आश्रयभूत का त्याग करना आवश्यक पड गया। इस जीवको। अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध न होनेपर भी चूंकि इतना तो नियम है कि जीवके जब व्यक्त विकार होता है तो आश्रयभूत पदार्थ कोई न कोई विकारमे हो तब ही हो सकता है। तो व्यक्त विकार का साधन हटाने के लिए चरणानुयोग मे उपदेश है। अब रही अव्यक्त विकार की बात। कर्मोदय हुआ। और उपयोग हमारा ज्ञानबलके प्रमाद मे किसी बाह्य

पदार्थकी ओर न जाय। जैसे स्वानुभूति की स्थिति हो या इस ही ओर चर्चा करने की स्थिति हो, ऐसी स्थिति मे चूँकि नोकर्मका उपयोग न हो सका अतएव याने इतने मात्रसे विकार से हटेगा तो नही, पर वह अव्यक्त विकार होगा। और अव्यक्त विकार मे विशेप आश्रव बधका अवकाश नही। व्यक्त विकारमे विशेप आश्रव बधका अवकाश है तो चरणानुयोग विशेष उपयोगी बना, उसीके अनुसार श्रावक धर्म और मुनिधर्म दो प्रकार से बनाये जाते है, तो इसके समस्त उपदेशोमे प्रयोजन एक लेना है स्वभावदृष्टि। स्वभावदृष्टि के लिए जो हमारे मन, वचन, कायके प्रयास चलते हैं वे गृहस्थधर्म और मुनिधर्मके बताने वाले है। ऐसी वासनावश हुए ऐसे सस्कारमे रत हुआ पुरुष अपने आप को गृहस्थधर्म मुनिधर्मका एक व्यवहारमे आये बिना उसमे इसका सस्कार क्षीण हो नही सकता अतएव यह द्विविधधर्मका उपदेश है।

व्यवहार किये बिना व व्यवहार छोड़े बिना आत्मप्रगतिकी असंभवत्ता—बात यहाँ यह स्पष्ट आयी कि इन धर्मो मे भी बात यह ही बतायी जा रही, व्यवहार छोडो, व्यवहार छोडो। और यह भी बात आयी कि व्यवहार को करो। व्यवहार छोडना और व्यवहार करना ये दोनो बाते करने को कहा। जैसे-जैसे आगे बढें वैसे-वैसे व्यवहार छूटा। तो वह पद व्यवहार के बिना नही मिलता और व्यवहार छोडे बिना नही मिलता। जैसे नीचेसे ऊपर की मजिलपर आप आते हैं तो इस मजिल-पर पहुचना सीढी ग्रहण किए बिना नही बनता और सीढी छोडे बिना भी नही बनता। इन दोनोमे कोई एक ही बात का एकान्त करले कि सीढी पकडे बिना ऊपर नही आ सकते इस कारण मैं तो सीढी पकडकर ही रहूँगा, तो वह भी ऊपर नही आ सकता। और कोई यह कहे कि सीढी छोडे बिना ऊपर नही पहुच सकते इसलिए मे तो सीढी छोडकर ही रहूँगा। नीचे के नीचे खडे है, तो वह भी ऊपर नही आ सकता। तो उनेक स्थितियो और दृष्टियोसे स्पष्ट बात है बिसम्बाद की कही कुछ बात ही नही है। स्याद्वाद पद्धति से हमारे सारे बिसम्बाद समाप्त हो जाते है।

विकारपर्यायोके नियतत्त्व व अनियतत्त्वका विश्लेषण—एक बात और सुनिये—जैसे जब एक चर्चा होने लगती है कि जब जो होना है तब ही तो वह होगा उसमे कोई फेर फार तो नही हो सकता। तब किसीने यह कहा कि नही, जैसा करूंगा, वैसा होगा, फेरफार करूगा तो फेरफार हो जायेगा, ये दोनो बाते सामने है। अब इन दो को एक दृष्टिसे खोजे तो इन दो बातोको बताने वाली दृष्टिया हैं दो—(१) ज्ञप्तिनय और (२) उत्पत्तिनय। भगवानने सब जाना और कदाचित कोई यह कहे कि हम नही समझते है भगवानको कि वे

सब समझते है तो चलो अवधिज्ञाननियोंने जाना, उन्होने सीमासे जाना। मानो वे करोडवर्ष आगेकी बात जानेगे और इतनी ही पहले की बात जानेगे, विशेष न जानेगे। इतनेसे ही चलो, तो जब उनके ज्ञानमे आया, जब जो होना है हुआ। ग्रन्थोमे भी उपदेश है—अवधिज्ञानी मुनियोंने यह बताया, उनको भावोका ज्ञान हुआ। जब विशिष्ट ज्ञानियोने जाना, तो ठीक है, जैसा जाना वैसा होगा। इस दृष्टिमे आकर हम इस बातको मना कर सकत, लेकिन यहा समझना होगाकि भगवानने जाननेकी स्वतन्त्रता क्या इस प्रकार की कि पहिले जाननेकी बात उठी, फिर जो जाना सो पदार्थमे होता है ऐसा तो नही है। जाननेका विषय है यह सब। जो होगा सो प्रभुने जाना, अवधिज्ञानीने जाना। तो अत्र होगाकि बातका निर्णय बनाना किस तरहसे होता है। उसका निर्णय उत्पत्तिनयसे होता है। ज्ञप्तिनय कार्य-कारण विधानको नही बताता। कार्यकारण विधान तो उत्पत्तिनयसे ज्ञात होगा। तब वहा यह बात विदित होती है कि उपादान प्रतिक्षण अपने आपमे एक पर्यायको लिए हुए रहता है, और अगले विकार परिणमनमे विकार होता, जैसाकि निमित्त सन्निधानमे होता है। योग्य उपादान निमित्त नैमित्तिक सन्निधान पाकर अपनी अकेले नवीन परिणति रूपता हैं और इसी तरहसे समाप्त कार्य होते जा रहे है। तो इस तरह होते हुए पदार्थ किसी विशिष्ट ज्ञानीके ज्ञानमे आये तो जससे कार्यकारण विधान न बनेगा। चूकि भगवानने जाना इसलिए हुए ऐसा नही, बल्कि ऐसा तो कह सकते कि चूकि ऐसा होगा सो भगवानने जाना। कार्य-कारण विधान ज्ञानकी ओरसे नही बनता, किन्तु वह निमित्त नैमित्तिक भावकी पद्धती पूर्वक बनता है। तो जब केवल ज्ञप्तिनयसे देखते है, एक जानकारीकी दृष्टिसे देखते है, तब ऐसा कहनेमे हर्ज नही, और कहते भी आये कि "जो जो देखा वीतरागने, सो सो होसी बीरा रे। अनहोनी नहि होती कबहु, काहे होंत अधीरा रे।" जो बात जिस कालमे होती है उसे उस प्रकार प्रभुने जाना। इससे जिस विधानसे यह एक कार्य कारणको सिद्ध करने वाला एक खास वाक्य है। एकान्त करने वाले उनमे किन्ही शब्दोको छोडदें, किन्ही शब्दोको ले तब एकान्त बनता है ऐसा कहनेम कहा आपत्ति आयी ? जो वात जिस प्रकारसे होनी है, होती है, उसे जाना है किसने, ठीक है। तो जब उत्पत्तीनयकी ओरसे देखते है तो यह नही कहा जा सकता कि द्रव्यमे पर्याय नियत है, और जब ज्ञप्तिनयसे देखते है तो यह कह सकते कि पर्याय जब जो होनी है सो होती है, यह नियत है। ज्ञप्तिनयका अर्थ यह है कि विशिष्ट ज्ञानीने जान लिया, इस आत्मामे तीनो कालकी बातको जाननेकी सामर्थ्य है। और, जब किसी विशिष्ट आत्माने जान लिया तो विषय है तब ही तो जाना, विषय बिना नही जाना। तो जिस प्रकार होनेको है सो हुआ, किन्तु इसमे कार्यकारणविधान रच भी नही है। किन्तु

जाना और देखा है। जैसे नेमिनाथ भगवानने बताया कि १२ वर्ष बाद यो होगा। हुआ, तो देखो ज्ञप्तिनयकी ओरसे बात कही जायेगी कि भगवानने जाना वही हुआ, पर इससे यह बात नही कही जा सकती कि भगवानने जान लिया इस कारणसे हुआ। होनेका कारण और ही है। वह निमित्त नैमित्तिक विधान और उत्पत्तिनयसे समझा जायगा। हा तो बात यह है कि जिसको स्वभावदृष्टिके प्रयोजनका निर्णय है वह समस्त नयोसे सही उपयोग होता है। उसीको ही एक निष्पक्ष कल्याणार्थी कहते है कि किसी भी नयकी बातको वह असत् नही ठहराता, किन्तु उससे अपना प्रयोजन निकालता है।

मोक्षशास्त्रके प्रथमसूत्रमे मोक्षमार्गकी घोषणा की गई है, मानो सर्वप्रथम फहराती हुई ध्वजा बतला रही हो कि सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रणिमोक्षमार्ग —याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है, इस सूत्रमे शब्दो द्वारा ही मोक्षमार्गके कारणोका सामान्यरूपसे स्वरूप बता दिया गया है। अब इन तीनोका विशेषरूपसे स्वरूप बताना चाहिए। उसमेसे सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनका स्वरूप बतानेका उपक्रम किया जा रहा है—**तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनम् ॥२॥**

सूत्रमे सम्यग्दर्शनका स्वरूप कहनेकी आवश्यकताका दिग्दर्शन—वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका श्रद्धान होना सम्यग्दर्श है। मोक्षशास्त्रका जिसने कुछभी अध्ययन किया है वह भी यह समझ सकता है कि मोक्षशास्त्रमे सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका लक्षण किसी सूत्रमे नही बताया है। सो प्रश्न हो जाता है कि केवल सम्यग्दर्शनका ही लक्षण क्यो कहा जा रहा है ? ज्ञान और चारित्रका लक्षण जैसे नही बताया उसी प्रकार सम्यग्दर्शनका भी लक्षण न कहा जाना चाहिए था, क्योकि मोक्षमार्ग तो इन तीनोका समुदाय है। तो जो बात सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके बाबतमे है वही बात सम्यग्दर्शनके बाबतमे है फिर क्यो सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा और सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका लक्षण नही कहा। मोक्षशास्त्रके द्वितीय आदिक अध्यायमे भी कही भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका स्वरूप निर्दिष्ट करने वाला सूत्र नही है। तो जब इन दो के स्वरूपका सूत्र नही तो सम्यदर्शनके स्वरूपका सूत्र कहनेकी भी क्या आवश्यकता थी ? यदि कहो कि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका लक्षण किसी और रूपसे आ जाता है तो भेद प्रभेदके कहनेसे या अन्य प्रकारसे तो इसीतरह सम्यग्दर्शनका भी लक्षण शब्दोसे या उनके भेद आदिकसे समझ लिया जाता है। इसमे कारण क्या है कि आचार्य महाराजने केवल सम्यग्दर्शनका स्वरूप सूत्रमे बाधा है, इसके समाधानमे यह समझना चाहिए कि आचार्य महाराजका जो प्रतिपादन होना है वह मर्मको लिए हुए होता है। देखिये—ज्ञान और चारित्रका लक्षण कहनेकी यो आवश्यकता नही हुई कि जो जाना जाय—

जिससे जाना जाय। ज्ञायते इति ज्ञान, इसी प्रकार चारित्रका लक्षण है चर्यते इतिचारित्र, जो आचरण किया जाए सो चारित्र। इन दोनोका स्पष्ट अर्थ धातुसे ही निकल आता है इस कारणसे चारित्र और ज्ञानके स्वरूपका निर्देश करनेके लिए अलग सूत्रकी आवश्यकता नही होती। सम्यग्दर्शनका लक्षण धातु और शब्दमे नही बन पाता। क्यो नही बन पाता? सम्यग्दर्शनमे जो दर्शन शब्द है वह जिस धातुसे बना है उसका अर्थ अवलोकन है, तो वहा विसम्वाद हो जाता है क्या अच्छा देखनेका नाम सम्यग्दर्शन है? जो बडी अच्छी तरहसे खूबसूरतीसे देख लेता हो, क्या उसे सम्यग्दर्शन हो गया? तो सम्यग्दर्शनका अभिप्राय शब्दसे व्यक्त नही हो पाता इसलिए सम्यग्दर्शनका लक्षण कहने की आवश्यकता पडी। सम्यग्दर्शन का अर्थ यह नही कि अच्छा देखना—किन्तु सम्यग्दर्शनका अर्थ है—वस्तुस्वरूप जैसा है उस प्रकारसे श्रद्धान करना। अच्छा देखनेकी बात तो मिथ्यादृष्टिके भी होती, अभव्यके भी होती है। अभव्य कोई पुरुष है, उसकी आखे अच्छी हो तो क्या वह अच्छा नही देख रहा? तो प्रशस्त अवलोकनका नाम सम्यग्दर्शन नही किन्तु तत्त्वार्थ श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन शब्दका अर्थ—अब जरा सम्यग्दर्शन शब्द पर सम्यग्दर्शनका भाव निरखे। सम्यक् शब्दका अर्थ है प्रशसावादी अच्छा दर्शन। पूज्यका दर्शन। सो सम्यग्दर्शनमे सम्यक शब्द जो है वह निपात शब्द है अथवा व्युत्पन्न भी शब्द है। संस्कृत व्याकरणसे शब्दकी निष्पत्ति दो तरहसे होती है—एक तो होती है निपात, जिसके बारेमे कुछ सोच ही नही सकते कि कैसे बना, कौन धातुसे बना? और, एक होता है प्रत्यय लगाकर, तो यहां दोनो तरहके शब्दोकी सिद्धि है--निपात भी और प्रत्यय लगाकर भी है। उपसर्ग है अञ्च धातु है और प्रत्यय लगा है क्विप्। सम्यक्, यह प्रशसावाचक शब्द है। अच्छा रूप, अच्छा कुल, अच्छी जाति, अच्छा ज्ञान आदिक जो लोकके अभ्युदयवाची शब्द है उनका और मोक्ष का प्रधान कारण है सम्यग्दर्शन, इसलिए इसमे सम्यक् शब्द देना ठीक है। लोकके बडे से बडे वैभव सम्यग्दृष्टि ही पा सकता है। मिथ्यादृष्टि तो लोकके उत्कृष्ट वैभव भी नही पा सकते। तीर्थंकर होते है, चक्रवर्ती होते हैं, नारायण होते है, प्रतिनारायण होते है, बलभद्र होते है या और भी पद होते है, जो भी और ऊचे-ऊचे पद है उनमे भी प्राय. आप यह ही पायेगे कि सम्यग्दर्शनके रहते हुए इतना पुण्य बना कि जिससे तीर्थंकर हुए। तो सम्यग्दर्शनके रहते हुए कोई विश्वकल्याणका राग करता है तो इससे बडा से बडा पुण्यका बन्ध होता है। सम्यग्दर्शनके होते हुए जो राग रहता है पुण्य बन्धतो उस रागके कारण होता है, सम्यक्त्व के कारण पुण्यबन्ध नही होता। सम्यक्त्व तो निर्जराका कारण है, पर सम्यक्त्वके होते हुए जो रागभाव रहता है उसका निमित्त पाकर विशिष्ट पुण्यका बन्ध होता है। आप देख लो

जिस सम्यग्दर्शनके साथ रहने वाली गल्तीसे मिला लोकका बडा भारी वैभव, (राग तो गल्तीका नाम है) इतना महत्त्व हो गया, फिर जिसका निमित्त पाकर इतना विशिष्ट पुण्य-बन्ध होता है कि चक्रवर्ती आदिक जैसे बडे-बडे वैभव प्राप्त होने है और तीर्थंकर पदवी तक प्रप्त हो जाती है। फिर सम्यक्त्वके होते सते अगर पुण्यवन्ध हो तो विशिष्ट पुण्यवन्ध होता है, इससे महीमा जानी गई सम्यग्दर्शनकी। मोक्षकी वाततो स्पष्ट ही है। इसलिए यह सम्यग्दर्शन प्रशस्त दर्शन है, अथवा सम्यक शब्दका अर्थ तत्त्व लगा लीजिए। तत्त्वदर्शनसम्यग्दर्शन अर्थात् परम यथार्थ विषय करने वालेको तत्त्व कहत है और ऐसा तत्त्वस्वरूप है उस प्रकारसे श्रद्धान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनमे सम्यकक् शब्दका तो अर्थ है वास्तविक, तथार्थ। जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा और दर्शनका अर्थ है श्रद्धान। यद्यपि दर्शनका प्रसिद्ध अर्थ देखना है, अवलोकन है, लेकिन धातुके अनेक अर्थ होते हैं, उन अनेक अर्थोमे यहा श्रद्धान अर्थ उचित बैठता है। इस प्रकार वस्तुस्वरूप सहित अर्थका श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है।

दर्शनका अर्थ श्रद्धान किया जानेमे प्रकरणकी कारणता :— कभी यहा ऐसा सोच सकते कि जब दृशि धातुमे अनेक अर्थ है तो उसमे से श्रद्धान अर्थ ही क्यो लिया तुमने? इसका समाधान तो स्पष्ट है कि जिस प्रकरणमे जो बात कही जाती है उससे फवता हुआ अर्थ लिया जाता है। एक शब्द हैं सैंधव, उसके मायने है नमक और सैंधव मायने है घोडा। अब कोई भोजन कर रहा हो और वहा कोई मागे कि भाई सैंधव लावो, वहा यदि घोडा खडाकर दिया जाय तो वह अच्छा लगेगा क्या? और, जब कही जा रहे हो, जाने की तैयारीमे हो, मकानके वाहर हैं और कहे कि सैंधव लावो, वहा यदि कोई नमककी डली ला दे तो वह अच्छा लगेगा? तो जिसके अनेक अर्थ हैं उसका वह अर्थ लिया जाता जो प्रकरणमे रहता है, और, प्रकरणमे बैठे और लगे दूसरा अर्थ लगे तो इसमे दोषकी बात आती है। प्रकरणके अनुसार अर्थ लिया जाता है। यहा मोक्षका प्रकरण हैं। मोक्षकी बात कही जा रही है तो मोक्षका कारण देखना नही है, बल्कि देखना तो मोक्षके लिए उल्टा हो जाता है। देखने से रागद्वेश, मोह विकल्प आदि होते हैं, ये तो विपरीत मार्गमे ले जा सकते है, तो अच्छा देखनेका नाम सम्यग्दर्शन नही, किन्तु वस्तुस्वरूप सहित पदार्थका श्रद्धान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनका एक सामान्तया अर्थ किया गया है, उसका विश्लेषण क्या है? तत्त्वरूप श्रद्धान सम्यग्दर्शन। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है। इसमे तीन शब्द पडे है—तत्त्व, अर्थ और श्रद्धान। तत्त्वका अर्थ क्या है? तस्यभाव. तत्त्व। वस्तुके स्वरूपको तत्त्व कहते है, यह सामान्यभाव हो गया। जैसे मनुष्यस्यभाव=मनुष्य

अर्थात् मनुष्यके भावको मनुष्यत्व कहते हैं। जो सब मनुष्योमे पाया जाय इसे कहते है मनुष्य। तो तत्त्व शब्दने भावसामान्यका बोध किया। तत्त्व प्रत्यय संस्कृतमे जो लगता है वह भावमे लगता है। तत् शब्दमे समग्र वस्तु आ गई, उसका जो भाव सामान्य है उसे कहते है तत्त्व। जो वस्तु जिस तरह है उस तरहके होनेका नाम तत्त्व है। अगर यह तत्त्व शब्द न लावे तो, उल्टे अर्थका श्रद्धान करे तो वह भी श्रद्धानमे आ जाता है, तत्त्वसे पदार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और यो भी लगा सकते कि अर्थ मायने पदार्थ नहीं, किंतु जो निश्चित किया जाय। देखो शब्द अनेक होते है और उन शब्दोका जो अर्थ है वह उस पदार्थकी विशेषता बताया करते है। अर्थ, पदार्थ, वस्तु ये सब एक ही चीज तो कहलाती हैं उसीको यहा अर्थ कह दो, चाहे पदार्थ कह दो, चाहे वस्तु कह दो, किसी शब्दसे कह दो। ये शब्द उस एकको ही कहने वाले है, मगर जो नाना शब्द है उनके अर्थ भी नाना है और उनसे उस पदार्थकी विशेषता ही जानी जाती है। जैसे—अर्थ मायने क्या ? जो निश्चित किया जाय उसे अर्थ कहते है, जिसका निर्णय किया जाय उसे अर्थ कहते है, क्या मतलब हुआ ? जो पदार्थ जानने मे आता है वह अर्थ है, यह विशेषता है। जहाँ कहा वस्तु, जिसमे अनेक गुण बसे हैं उसका नाम वस्तु है। अनेक गुण कब रह सकते ? जब अपने स्वरूपसे तो वे हो और पररूपसे न हो। तो वस्तुस्वरूप कहकर दूसरी बात चित्तमे आ गई। ग्रहण किया उस सबको, मगर दूसरे नातेसे ग्रहण हुआ। पदार्थ जो भी कुछ पद बोला गया, शब्द बोला गया उसका वाच्यभूत जो हो सो पदार्थ। जैसे मनुष्यके कई नाम है कि नही ? मनुष्य, मानव, जन आदिक, इनमे जनका अर्थ है—जो उत्पन्न हो, मनुष्यका अर्थ है जहा विवेकशील मन है, मानवका अर्थ है जो मनुकी सतान है, तो एक ही चीजको कहने वाले जितने शब्द हैं उन सबके अर्थ जुदे-जुदे होते है। जैसे अनेक शब्द दे सकते। पुत्रके नाम कितने है ? पुत्रका नाम सुत, पुत्र, मगर देखिये इन दोनो शब्दोमे कितना अन्तर है ? सुत उसे कहते है जो पैदा हुआ हो, सारे सुत हो गये, और पुत्र उसका नाम है जो वशको पवित्र करे, उज्वल करे, सुत तो सारे हैं, पर पुत्र तो कोई बिरला ही होता है। तो जितने शब्द है उतने ही उसके अर्थ है, और उन शब्दोसे यह बात सही आती है। यहा अर्थका अर्थ है जो निश्चित किया जाय वह अर्थ है, तत्त्व—याने यथार्थ स्वरूप जो वास्तविक स्वरूपसे निश्चित किया जाये उसे कहते है तत्त्वार्थ, उसका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शनकी मौलिकता व वचनागोचरता—सम्यग्दर्शनका जो सही अर्थ है उसको बतानेके लिए शब्द नही है। जितने भी शब्द हो सम्यग्दर्शनको बताने वाले उनका सही अर्थ या तो ज्ञान परिणति है या चारित्र। सम्यग्ज्ञानकी चीज है, जिसके होनेपर वस्तुका यथार्थ

ज्ञान हो और यथार्थ आचरण बने वह है सम्यग्दर्शन। तो सम्यग्दर्शन शब्द अवक्तव्य है, इसका स्वरूप वचनो द्वारा नही बोला जा सकता है, मगर सम्यक्त्व एक ऐसी स्वच्छता है कि जिसके होनेसे ज्ञान और चारित्र समीचीन हो जाते है। इस बातको एक नियोजित विषयसे बताना कठिन है किन्तु नैमित्तिक पद्धतिसे बताना सरल है, पुरुषार्थ सिद्धियुपायमे बताया है कि विपरीत अभिप्रायके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन एक ऐसा प्रकाश ऐसी स्वच्छता है कि जिससे विपरीत अभिप्राय ठहर नही सकता। तो यह सिद्धान्त आत्मा का स्वरूप, आत्माका स्वभाव, आत्माका परिणाम, वह है श्रद्धान। देखिये विश्वास बिना मोक्ष नही रहता है। विश्वास ज्ञान और आचरण प्रत्येक जीवमे पाये जाते है। अब यह बात जुदा है कि कोई कैसे विश्वास करे कोई कैसे ? सच्चा करे, झूठा करे, मगर विश्वास बिना कोई जीव रहा क्या ? एकेन्द्रीयसे लेकर सिद्ध भगवान तक समग्र जीव सब विश्वास, ज्ञान आचरण वाले हैं। किसीका किसी ढगसे। सिद्ध भगवान अपनेमे रम रहे है। विश्वास तो कर लीजिये, और जिसका जो विश्वास है उसीकी भक्ति भी समझना चाहिये। जिस तरह धुन लगी हो, जिसकी ओर विश्वास हो यह मेरेको हितकारी है, शरण है, मेरे लिए सार यह ही है, जिस पदार्थमे यह प्रतीति जग रही हो भक्ति उसीकी होती है। तो भगवान जिनेन्द्रकी-भक्ति तब कहे जब भगवान जिनेन्द्रके प्रति ऐसी भक्ति हो कि बस मगल है तो यह, शरणभूत हैं तो यह, जो काम इन्होने किया बस सारभूत तो वही है, यह ही हितकारी है, यह ही मेरेको प्राप्त हो, ऐसी अगर धुन बनी हो तो आपकी जिनेन्द्रभक्ति है, और धुन तो बनी है स्त्री, पुत्रादिककी, स्त्री बडी आज्ञाकारी है, पुत्र बडे अच्छे हैं, और भगवानके आगे बोलते ऊचे स्तवन तो झूठ क्यो बोलते ? सच बोलनेमे सरम आती है इसलिए झूठ बोलते। अगर वहा बोले कि मेरी स्त्री, पुत्रादि खूब सुखी हो तो इसमे सरम आयेगी। मनमे धुन बनी है कि पुत्र ऐसे हो, कमाई ऐसी हो, तो देखो जो खोटी बात है उसे सबके बीच बोलनेमे सरम आती है। सब आदमियोके बीचमे यो नही बोला जायगा कि मेरे स्त्री पुत्रादि बडे अच्छे रहें, उनको खूब सुख मिले। जब मनमे परिवारके लोग बसे हैं, धनवैभव बसा है बाहरी बातें बसी है तो फिर प्रभुभक्तिकी बात चित्तमे कहा समायेगी ? अरे जिस बातकी धुन लगी हो वही बात भगवानके सामने क्यो नही निकालते, और और कुछ क्यो कहते ? तो मालूम होता है कि वे बाते सारभूत नही हैं। जिनेन्द्रभक्ति तब कही जायगी जब यह धुन हो कि जिनेन्द्रकी जो अवस्था है वह मगल है। वही शरण है, जो इन्होने किया वही मेरे कर्तव्यकी बात है यह बात चित्तमे बसी हो तो यह जिनेन्द्रभक्ति है।

व्यवहारकी श्रद्धानसारिता —भैया ! ज्ञान विश्वासके अनुसार होता है। जिस

तरहका विश्वास हो उस तरहकी बुद्धि जगती है। देहमे आत्मरूपका विश्वास हो तो उस देहको पालने पोषने, सुख दिलाने, आरामके लिए आपकी प्रवृत्तिया बनेंगी। जहाँ यह विश्वास हो कि मै आत्मा तो यह केवल ज्ञानमात्र हू, इसके लिए केवल एक यह ही शरण है, यही उत्तम है, यही तत्त्व है, अगर यह बात समायी हुई हो तो आत्माके अनुकूल आचरण चलेगा। हर जगह देख लो, विश्वासके अनुसार ही फल मिलता है। जब चित्तमे यह समाया हुआ है कि मै तीन चार पुत्रोंका बाप हू तो फिर उन पुत्रोंके प्रति जो व्यवहार करना चाहिए वैसा करना पडेगा। और, जिसे पुत्रोसे अरुचि होती है वह कहता है कि मेरा इन पुत्रोसे कोई मतलब नही, तो फिर वह पुत्रोचित काम तो नही करता। देखिये—सुकौशलके पिता कीर्तिधर जब विरक्त हुए उस समय सुकौशल गर्भमे था। तो कीर्तिधरके विरक्त होते ही उसकी स्त्री (सुकौशलकी मा) को उनपर बडा क्रोध आया, उसने कीर्तिधरको बहुतसी भली बुरी गालिया भी दी, मुनियोसे भी उसे घृणा हो गई। पहरेदारोको भी आगाह कर दिया कि यहा कोई मुनि न आने पाये, और दूसरा कारण यह था कि मुनिमुद्रा देखकर सुकौशल विरक्त हो जायगा यह भी किसी ज्ञानी महात्माने बता दिया था। दोनो कारणोसे रानीने यह निर्णय दिया कि कोई भी मुनि यहा न आये। एक दिन वही कीर्तिधर मुनि बिहार करते करते वहा आ गये। उसे देखकर रानी (सुकौशलकी माँ) ने अपशब्द कहे—घरखोजू, घरमिटावनू यहा आ गया। रानीकी ऐसी बाते सुनकर धायको बडा दुख हुआ। आखिर धायसे सब वृन्त जानकर सुकौशल भी विरक्त हो गया। तब संक्लेशसे मरकर मां सिहनी हुई। खैर तो यहा यह देखिये कि जब सुकौशलकी मा मोहवश सुकौशलको अपना पुत्र मान रही थी तो वह उस तरहका पुत्रवत् व्यवहार कर रही थी और कीर्तिधर अपना पुत्र न मान रहा था इसलिए उसका दूसरे ढगका व्यवहार था, कुछ विकल्प नही, आत्महित का ही लक्ष्य था। सब जीवोका व्यवहार श्रद्धाका अनुसारी है।

परमे आत्मबुद्धिकी अशान्तिमूलता :—हम आप सब जीवोको एक शान्ति ही अभीष्ट है। प्रत्येक जीव चाहता है कि मेरेको शान्ति हो, सुख हो, आकुलता न हो, कष्ट न हो, और जितने भी हम यत्न करते हैं वे सब इसीलिए करते है कि हमको शान्ति मिले। मगर एक बात समझो कि इस जगतमे यह मै अकेला ही आया, अकेला ही जाऊगा, अब भी अकेले ही सुख दुःख भोगता हू, मेरा मात्र एक मैं ही हू, मेरा जगतमे कोई दूसरा नही है, ऐसा सोचनेपर शन्तिपथमे गति गति प्रारम्भ हो जाती है। जब किसी दूसरेमे आत्मबुद्धि करके, शरणबुद्धि करके, उसे सहाय मानकर, उससे हितकी आशा रखकर उसमे जो दिल लगाया जाता है वह सब बेकार है। कुछ अपनी दयाकी बात सोचना चाहिये। देखिये—एक

बार लक्ष्मण और परशुराम जब आमने सामने मिले तो परस्परमे बडा वाक्‌युद्ध हुआ। जब परशुरामने क्रोधभरे वचन कहे कि तू हट जा मेरे सामनेसे, तो लक्ष्मणने कहा था—"करि विचार देखहु मन माही, मूदहु आख कितहु कुछ नाही।" अर्थात् हे परशुराम जी, आप अपनी आखे मीचले, फिर आपके लिए कही कुछ नही है। यह एक बहुत सरल सा उत्तर दिया। यही बात आप अपने लिए घटायें—आँखें मीचकर देखे तो कही कुछ नही है, और जब आँखें मुद जाती हैं, मरण हो जाता है तब तो सारा प्राप्त समागम छूट जाता है। तो मतलब यह है कि इस प्राप्त समागमका भी क्या विश्वास ? जो यह विश्वास बना रखा है कि मेरी हवेली, मेरी फर्म, मेरा वैभव, मेरे स्त्रीपुत्रादिक परिजन, ऐसा जो विश्वास बना रखा है, ये सब बाते तो तेरे लिए कलक है, दोष है, कीचड है, इनमे हितबुद्धि मत करें। गृहस्थावस्था है, करना सब होगा, घरकी व्यवस्था, आजीविका, पालन पोषण, कमाई, सामाजिक व्यवस्था आदिके सारे काम तो करने होगे, पर सही विश्वास तो रखें कि मेरे आत्माका तो यह देह भी नही है। मेरे आत्माका तो केवल मेरा ज्ञानस्वरूप ही है, अन्य कुछ नही है। इतना अगर विश्वास बना रहे तो वह पवित्रता चित्तमे रहेगी कि मोक्षमार्ग आपका चलता रहता है। ससारमे रहते हुए भी मुक्तिकी ओर आपका कदम। अगर यह विश्वास रहे कि मैं तो एक ज्ञानस्वरूप हूँ, और किसी रूप नही, यह है अपनी दयाकी बात। यह चीज कही देख लिया, सुन लिया, ऐसी रटिकी बात नही है, किन्तु अपने आपके चित्तमे बसा लेनेकी बात है। कल्याण करे, हित हो आत्माका वह बात सोचे। मेरे आत्मका हित है तो अपने आपका ज्ञान हो, श्रद्धान हो, अपने आपमे ही मग्नता हो, इसमे मेरा हित है, बाहर कही कुछ देखनेम हित नही है।

अन्तस्तत्त्वमग्नतामे विपदाकी समाप्ति :—एक बहुत बडी नदीमे कोई कछुवा रहता था। वह तो पानीके अन्दर रहता था। एक बार उसके मनमे आया कि मैं एक बार पानीके ऊपरभी तो तैरकर देखू। तो उसने पानीके ऊपर अपनी चोच बाहर निकाल लिया तो कोई पक्षी पूर्व दिशासे आकर उसकी चोच चोटने लगा कोई पश्चिम दिशासे। यो हजारो पक्षी उसकी चोच चोटनेका प्रयत्न कर रहे थे। वह कछुवा उनसे हैरान होकर अपनी चोच इधर उधर डुलाता फिरता था, दु खी होता था, पर उसे कोई समझा दे कि अरे कछुवे, तू क्यों व्यर्थमे दु खी हो रहा है ? अरे तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिस कलाके कारण ये हजारों पक्षी तेरा कुछ भी बिगाड न कर सकेगे। वह कौन सी कला है ? अरे जरा एक बालिश्त पानीमे अपनेको डुबा तो दे, बस सारे पक्षी तेरा क्या बिगाड कर सकेंगे। तेरे सारे दु ख खतम हो जायेंगे। इसी तरह हम आप जीव चर्चायें तो करते है, अपने उपयोगरूपी चोचको

बाहर निकाले हुए है और अपना जो उपयोग है, जाननेकी दशा है, लगता है ना ऐसा कि जब हम कुछ जानते है तो ऐसा लगता है कि मेरा मुख ही वस्तुकी ओर गया है, मैं उसकी ओर अभिमुख हो गया हूँ तो हमारी उपयोगरूपी चोच हमारे ज्ञानसमुद्रसे बाहर चल रही है, खिंची खिंची फिर रही है, हम अपने उपयोगको अपने इस ज्ञानस्वरूपमे नही रमा पाते है, तो ऐसी स्थितिमे होता क्या है ? जब हम अपना उपयोग बाहर की ओर लगाये है, परिजनोकी ओर, वैभवकी ओर, तो उसमे अनेक विघ्न आते है। सबकी प्रवृत्ति मेरे अनुकूल हो जाय तो ऐसा हो नही सकता, प्रतिकूल बाते बहुत कम आती है तो यह परेशान होता है, और उस परेशानीमे अपना उपयोग फिर दूसरेकी ओर लगता है। अगर भैयाने कष्ट पहुंचाया तो अपने रिस्तेदारोकी ओर उपयोग लगता, और अगर रिस्तेदारोने कष्ट पहुचाया तो वह अन्यकी ओर अपना उपयोग बदल-बदलकर दु खी रहा करता है। इसे कोई समझाये कि रे भव्य आत्मन् ! तू क्यो व्यर्थ दु खी हो रहा ? अरे तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिसके द्वारा तू सारे दु ख एकसाथ मेट सकता है। वह कला क्या है कि तू अपने आपके स्वरूपको दृढतासे श्रद्धापूर्वक जान। ऐसा निर्णय रख कि मेरे आत्माका तो यह मै ही हू, मेरा स्वभाव तो यह मेरा ज्ञानस्वरूप है। तू बाहरकी ओर मत देख। अपने आपमे बिहार कर अपनेको, उपयोगके अपने निज ज्ञानसागर स्वरूपमे मग्न कर तो सकट तेरे दूर हो जायेगे। देखिये जितने जो कुछभी सकट है उनमे यह आत्मा स्वय अपने आप निमित्त नही है, स्वयं ही ये कारण नही बने है, किन्तु साथमे उपाधि लगी है, कर्मविपाक है, उसका उदय है। उसके उदयमे जैसे कि कर्मोंमे गडबडी हो रही है वैसे ही यह भी गडबडी कर लेता है, तो अपना उपयोग सम्भाले, कर्मकी दशाको अपने उपयोगमे न लगायें, अपने आपके स्वरूपकी ओर आये तो शान्ति मिलेगी, अशान्ति दूर होगी। अधिक नही तो २४ घण्टेमे एक आध घन्टा तो अपने आपकी दयाके लिए रखना ही चाहिये, सुबहका समय, सामका समय जहा आत्माकी चर्चा हो, आत्माका चिन्तन हो, यहाके इन विषम कषायके प्रसगोमे रह रहकर हितकी बात कहा से मिल सकेगी ?

आत्मदृष्टिमे यथार्थ विश्राम :—देखिये—बडे-बडे देव, सर्वार्थसिद्धिके देव ३३ सागर तक तत्त्वचर्चामे रहते है, वे सारा जीवन तत्त्वचर्चामे ही बिताते है, और और भी जगह-जगह अनेक श्रीमान, बुद्धिमान अपनी ऐसी गोष्ठी बनाते है कि तत्वचर्चामे रहते है। देखो जैसे कोई थका हुआ पुरुष आराम करनेकी बात सोचता है, वह अपने शरीरको कुछ ढीला सा करके लेट जाता है, विश्राम करता है, थकावट दूर करने के लिए विश्रामकी आवश्यकता है कि नही, इसी तरह इस दिलकी थकावट कबसे करते चले आये। अपने जीवनकी बात

देखो—जबसे जिन्दगी हुई है इस मनुष्यभवकी तबसे समझलो दिलकी थकावटका काम करते चले आये, विकल्प किया, मोह किया, राग किया, कल्पनाये की, दिलको थकाते चले आये और दु खी भी हो रहे, तो इस थकावटको मिटानेके लिए कुछ विश्रामकी बात सोची कि नही? दिलको जो इतनी थकावट हुई, उससे जो अपनेको तकलीफ हुई उस थकावटको दूर करनेका क्या उपाय है, वह उपाय है मन, वचन, कायकी, चेष्ठाये रोके। मत विचारे, परका विकल्प न करे, कुछ मत बोले, कही कोई चेष्ठा न करे, अपने आपके स्वरूपमे मग्न होनेका भाव रखे, ऐसा उपाय बनाने तो एक विश्राम मिलेगा। होता क्या है ? अगर ससारके वैभवकी ही इच्छा है, यहा वैभवमे अगर मोह रखा तो अगले भवमे वैभव न मिलेगा, और यहा उदारता है, ज्ञान है, विवेक है, धर्मबुद्धि है, त्यागबुद्धि है तो ऐसा विशेष पुण्यबध होगा कि अगले भवमे वैभव भी होगा याने जिम मोह रागद्वेपमे, कषायोकी तीव्रतामे न यहा भी आनन्द है और न परलोकमे आनन्द है ऐसे कपायकी बात क्यो की जा रही है। कुछ ध्यान देना चाहिये, कहा मेरेको शान्ति मिले ? इस ओर अगर ध्यान दिया जाय तो आपका बडप्पन है यह ध्यान न हो तो कोई बडप्पन नही। बहुत-बहुत वैभव भी जोड लिया तो कुछ पडप्पन नही और एक आत्मज्ञान किया, यहा ही रमनेकी बात आये, हम बडे-बडे ऋषी सतोंके चरणा मे नमते है, बडे पुरुषोकी आराधनामे रहते है तो वहा क्या है ? यह ही चर्चा है। यह ही आत्माकी बात वहा व्यक्त हो रही है इसलिए नमन करते है। सो वह बडप्पन है। तो अपने आपको सोचो अपना बडप्पन क्या है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका जो विकास है वह ही हमारा बडप्पन है, उसे छोड और कुछ हमारा बडप्पन नही। भले ही कोई लोकमे बडा हो गया, राष्ट्रपति हो गया, प्रधान मन्त्री हो गया, या सयुक्त राष्ट्रसघका मन्त्री हो गया, कोई बडसे बडा पद मिल जाय पर यहाँ शान्तिकी सम्भावना नही, क्योकि वहा तो विकल्पोका ही भार निरन्तर बना रहता है। मूदहु आख कितहु कछु नाही, मेरा कही कुछ नही, मेरा कोई सहाय नही, यह भी भ्रम है कि इतने लोग मुझे जानते है। अरे भाई जितने लोग इसे देखते है यह भी मैं नही हूँ। मैं तो इस शरीरसे परे ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ, मुझे कौन जानता है ? मुझे कौन समझता है ? मेरे लिए किसका कौन है ? लोग जानते है तो इस नाक, आख, कान वाले शरीरको जानते है। यह शरीर मैं नही हूँ, अपने आपके स्वरूपनिर्णयमे गम्भीरतासे चले तो विदित होगा कि यह ससारका माया जाल, व्यवहार यह सब भ्रम है।

भ्रम त्यागकर निजधर्मके अभिमुख होनेसे हो शान्तिका लाभ—भैया! भ्रममे ही अपने आपको बनाये रखा और ऐसे ही जीवन अगर व्यतीत कर दिया तो दुर्लभ अवसर

व्यर्थ ही खो दिया, जैसे किसी के हाथ रत्न लग जाय और कौवा उडानेके लिए फेके और फेकनेके साथ वह समुद्रमे गिर जाये, सो बडी मुश्किलसे रत्न पाया हो और यों ही काग उडानेमे फेक दिया जाय तो जैसे इसे मूर्खता कहेगे, ऐसे ही इस दुर्लभ मानवजीवनको पाकर यदि विषय कषायमोह रागद्वेषमे ही इसने सारा जीवन लगा दिया, सारा जीवन यहां ही खो दिया तो उससे भी बडी मूर्खता और क्या है ? ढगसे न रहे, ज्ञान करके न रहे, आत्मबुद्धि करके न रहे, रागद्वेष मोहगे ही चित्त बनाये रहे तो मरकर मानो कीडे मकोड़े हो गये, पेड पौधे हो गए तो फिर क्या कर लिया जायगा ? क्या इनकी कोई जिन्दगीमे जिन्दगी है ? पेड पौधे आदिकका कोई महत्त्व भी है क्या ? वे विवश है मगर करे क्या ? ऐसा ही भव उन्हे मिल गया। यहा तृष्णा लगाये है और यहासे मरकर मानो हो गए कीडे मकोडे तो फिर यहाका क्या रहा ? या यहाँ ही पापका उदय आ जाय, निर्धनता आ जाय तो फिर क्या रहा अपना ? तो भाई तृष्णा मत रखो, अपनेको शान्तिमे रखो। जहा शान्ति है वहा आनन्द है। जहा तृष्णा है वहा महान वेदना है। तृष्णा एक महान पाप है तृष्णासे अपने आपको दुखी करना, इस तरह मारना है जैसे कोई किसीको तडफाकर मार दे, इसी तरह कोई अपने आपको क्लेशमे डालकर अपने आपका घात करता है। विचार पवित्र बने, व्यवहार हमारा शुद्ध रहे, सब जीवोंका हम सम्मान करे और यहा पाई हुई जो अवस्था है उसे हम सार न माने, दूसरेकी पर्यायको देखकर यह माने कि यह तो पर्याय है, यह स्वय आत्मा नही है, यह तो मायाजाल है, नष्ट हो जाने वाला है, इसके अन्दर कोई सारकी बात नही है। सार तो एक अपने आपमे अपने ज्ञानस्वभावका श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करने मे है। तो आत्मदयाकी बात बहुत-बहुत सोचना चाहिए। चन्द दिनोंकी कल्पित मौजकी बात सोचनेसे पूरा न पडेगा। इससे भाई कल्याणका मार्ग आचार्य महाराजने रत्नत्रय धर्म बताया है। आत्मविश्वास करे, तत्त्वार्थश्रद्धान करे, प्रत्येक वस्तुका यथार्थ स्वरूप निरखे, प्रत्येक पदार्थ अपने आप सत् है, अपने आप अपनेमे अपना उत्पाद व्यय करता है, अपनी दशा अपने आप बनाता है, किसीका कोई परिणमन कर सकनेका नही है, सब स्वतन्त्र है, सबका अपनेपर ही उत्तरदायित्व है। मेरा किसी भी अणुमात्रसे सम्बन्ध नही है। वास्तविकता तो यह है, निज वास्तविकतापर दृढ रहे, ज्ञान बनाये, श्रद्धान बनाये। सभीको जैसे अपने नामकी इतनी दृढ श्रद्धा होती है कि चाहे कोई किसी काममे व्यग्र भी हो रहा हो, अथवा सो रहा हो तो भी अपने नामकी श्रद्धाका सस्कार उसके भीतर चल रहा है। चाहे कोई किसी हिसाब किताबके काममे बडा व्याग्र हो रहा हो फिर भी कोई जरा सा नाम ले तो ले, झट कान खड़े हो जाते है। तो जैसे भीतरमे नामका सस्कार बसा है ऐसे

ही मैं ज्ञानमात्र हूँ, ऐसी ही श्रद्धाका संस्कार बस जाय तो बस संसारसे पार हो गए। यह ही तो उपाय बनाना है, श्रद्धान ही तो सही बनाना है। मैं मनुष्य नही, स्त्री नही, मै व्यापारी नही, सेवक नही, मालिक नही, जो जो भी बाते मान रखी है लोगोने वे सब मैं नही हू, मै तो एक सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, मै तो वह हू जैसे कि सब है, मै तो वह हू जैसे कि भगवान है, मै इन पर्यायोरूप नही हूँ, मै ज्ञानमात्र हू, देखो यह श्रद्धा बना ले जिस किसी भी उपायसे। इस उपायको बनानेमे तन, मन, धन, वचन, प्राण तक भी न्यौछावर होते हो तो हो जाये और एक यह श्रद्धा बन पाती है कि मै तो ज्ञानमात्र हू, मेरा अन्य कुछ भी वैभव नही है, केवल ज्ञानज्योति स्वरूप हू, मेरा मेरेसे काम है, अगर यहाकी इज्जत मिटती है तो मिटने दो, कोई कैसा ही चलता, चलने दो, मेरा उससे क्या ? मेरा तो मेरे ही रत्नत्रय धर्मसे पूरा पडेगा, तो यही एक उपाय है कि मै ससारके दु खोमे छूट सकू, उसीकी इस सूत्रमे चर्चा है, सम्यग्दर्शन क्या चीज है ? सम्यग्दर्शनकी कितनी अपूर्व महिमा है। जिसे सम्यक्त्व हो गया वह नियमसे सिद्ध भगवान बनेगा। सबके चित्तमे यह रहती है कि मैं यह बनू, अमुक बनू, करोडपति बनू, राष्ट्रपति बनू, ऐसी सब बाते मनमे रहती है। ये सब बातें बेकार हैं, पहिले एक ही प्रोग्राम बना लो कि मैं तो सिद्धभगवान बनू, और कुछ न बनू, जिस किसी भी उपायसे बनू, एक ही बात चित्तमे बसावे कि मुझे तो सिद्ध होना है, शुद्ध होना है, मै जैसा हू वही मात्र रह जाऊ, यह मै चाहता और कुछ नही चाहता, इतनी दृढता लावे। भले ही लोग मुझे पागल कहे, कहने दो, वे स्वय पागल हैं, जिस बातको वे नही समझते। भले ही लोग कायर कहे, कहने दो, वे स्वय कायर है। १४ गुणस्थानोमे एक छटवा गुणस्थान प्रमत्तविरत है, मुनि तो हो गए मगर अभी प्रमाद है, कही यहा प्रमादका अर्थ आलसीसे न लेना कि बस पडे रहे, किंतु दीक्षा दे रहे, उपदेश दे रहे यह है प्रमाद। यह पुरुषार्थ नही है मोक्षका, यह प्रमाद है, कायर बन रहे। तो प्रमाद न रहे वह दशा क्या है ? आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमण। याने मोक्षमार्गका काम जहा न चले वह प्रमाद है, कायरता है, बेकार बात है और मोक्षमार्गमे कदम बढता रहे, वही हमारा पौरुष हैं।

ससारतारक पौरुषके लिये अनुरोध—देखिये जो कहते है कहने दे। व्यर्थके विचार क्यो लाते कि मै काम न करूँ तो कैसे काम होगा ? ऐसा ही सभी लोग विचार लें तो फिर ससारका काम कैसे चलेगा ?" अरे भाई जैसे भाडमे चने भूजे जाते है तो उससे सभी चने तो नही उछल जाते। कोई बिरले ही चने उछल पाते हैं। तो यो क्यो चिन्ता करते ? वे अपनी एक उद्दण्डताके अपराधको ढाकनेके लिए कहते है कि वाह सभी लोग अगर व्रत नियम आदिमे लग जाये तो फिर ससार कैसे रहेगा ? अरे सबकी क्या सोचते ?

अपनी सोच लो। क्या करना है, यहाँ तो धर्ममे लगते लगते भी, धर्ममे चलते चलते भी पिछडते रहते है, मुश्किलसे सफल हो पाते है, ऐसा एक वासनासंस्कार जीवमे लगा है। तो एक धर्म ही शरण है। अपने आत्माकी बातको समझिये। मेरा शुद्ध यथार्थ ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र सदा एक स्वरूप रहने वाला जो एक सामान्य ज्योति स्वरूप है, उसको यह समझना कि यह मै हूँ, बाकी सब मै कुछ नही हूँ, यह ही मेरा वैभव है और कुछ मेरा वैभव नही, ऐसी अपने आपकी बुद्धि रखना, ऐसी श्रद्धा रखना, बस यह ही ससारसे पार कर देने वाला पुरुषार्थ है। तो ऐसे स्वरूपका सही परिचय पाले, ऊधम छोड दे, उद्दण्डता छोड दे। ऊधम क्या है ? अनेक प्रकारकी खटपटे बनाना, बाह्य पदार्थोका सग्रह विग्रह करना, बाह्य पदार्थोकी तोड फोड करना आदिक ये सब ऊधम है। जैसे कोई ऊधमी बालक स्कूलमे बडी खटपटे करता है। स्कूलके टेबुल, बेंच आदिको तोडता है, बडा हो हल्ला मचाता है तो यह उसका ऊधम हुआ। उस ऊधमके फलमे वह बालक मास्टर द्वारा पीटा जाता है ठीक ऐसे ही जो जीव खटपटे करता है, बाह्य पदार्थोके सग्रह विग्रह आदिके नाना खटपटोमे पड़ता है उसके लिए ऋषिजनो की आज्ञा है कि तुम निजमे रहो, किसी तरहकी खटपट न होगी, पर यह मोही अज्ञानी प्राणी उन ऋषिजनोकी आज्ञाका उल्लघन करता है, बाह्य-पदार्थोमे अपना उपयोग लगाता है तोड फोडका भाव करता है तो उसका फल क्या है कि यह चिरकालतक बहुत ही अधिक सासारिक क्लेश पाता है।

आत्माके अभेदपरिणाममे निर्देशस्वामित्वादि घटित न हो सकनेसे पुद्गलश्रद्धानमे सम्यक्त्वलक्षणत्वकी आशका होनेका समाधान—मोक्षशास्त्रके दूसरे सूत्रमे सम्यग्दर्शनका लक्षण किया जा रहा है। तत्त्वार्थश्रद्धानसम्यग्दर्शन तत्त्वसहित अर्थके श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है, अथवा वस्तुस्वरूपसहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस लक्षणको सुनकर और आगेके कहे जानेवाले सूत्रोका स्मरण करके शकाकार एक आशका रख रहा है कि आगे पदार्थके परिचयकी विधि बताई गई है, यह कि निर्देश, स्वामित्व, अधिकरण स्थिति व विधान इन उपायोसे वस्तुका ज्ञान होता है, जैसे एक इस चौकीको जानना है तो चोकी यह निर्देश है, चौकीका स्वामी कौन है ? यह काठ। बाह्य साधन क्या है ? हथियार, औजार। अधिकरण क्या है ? जिस जगह बनाया हो वह जगह, यह है चौकीका आधार। कितनी देर तक टिकेगी आदिक उपायोसे पदार्थका ज्ञान होता है अब जब कि सम्यग्दर्शनको, आत्मपरिणामरूप कह दिया और आत्मासे वह है अभिन्न दर्शन, याने सम्यक्त्व आत्मासे अभिन्न है, आत्माका ही परिणमन है तो आत्म-

परिणाम मात्र सम्यग्दर्शन है और वह है अभेद। तो फिर उसका परिचय कैसे बनेगा ? निर्देश, स्वामित्व आदिक बाते इस सम्यग्दर्शनके साथ कैसे घटित होगी ? इससे मालूम होता है कि सम्यग्दर्शनका जो लक्षण किया गया-तत्त्वार्थश्रद्धान, वह पुद्गलके श्रद्धान के लिए ही है। आत्माकी उसमे कोई बात नही। ऐसी कोई शकाकार शका कर रहा है। यदि आत्मश्रद्धानका नाम सम्यक्त्व कहा जाता तो उसमे निर्देश, स्वामित्व, सत्, सख्या आदिक का परिचय नही बन सकता। इस शकाके समाधानमे कुछ भेददृष्टिसे सोचना पडेगा। निर्देश स्वामित्व आदिकके परिचयकी बात बताई गई है वह आत्मपरिणाममे भी लग जाता है। सम्यग्दर्शन आत्माका एक अभेद परिणाम है, उसमे भी ये सब प्रक्रियाये घटित हो जाती है। जैसे सम्यग्दर्शनका निर्देश यह है कि तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, लो निर्देश बन गया। सम्यग्दर्शनके स्वामी हैं नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदिक चारो गतियोके जीव व सिद्ध। साधन क्या है ? अन्तरङ्ग साधन तो आत्माका पूर्व परिणाम है और बाह्य कारण ७ प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम है आदिक रूपसे सम्यग्दर्शनमे भी ये प्रक्रियाये घटित हो जायेगी। इससे यह भी शका न करना कि तत्त्वार्थ श्रद्धान केवल मनुष्योके लिए कहा गया। सबके लिए कहा गया। प्रयोजन आत्मतत्त्वसे है, उसको प्रधानरूपसे देखना, यो वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका, आत्मस्वरूपका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है।

सम्यक्प्रकृत्युदयकी सम्यग्दर्शनोत्पत्तिसाधनताकी आशका का समाधान—निर्देश, स्वामित्व, साधन आदिक की कुछ घटनाये सुनकर एक आशका और आ सकती कि यह जो बताया गया कि मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र है, सो हमे तो ऐसा विदित होता कि मान लो यह भी है, लेकिन कर्मका उपशम, क्षय, क्षयोपशम अथवा सम्यक्त्व प्रकृतियोका उदय भी कारण है। शकाकारकी शका यह बात अभिप्रायमे होकर है कि सम्यग्दर्शन जैसे मोक्षका कारण है तो सम्यग्दर्शनके साथ कही सम्यक्प्रकृतिका उदय भी चलता है। सम्यक्त्वप्रकृतिमे वेदक प्रकृतिका उदय चलता है। सम्यक्प्रकृति चल रही तब मोक्षमार्ग चल रहा। तो मोक्षका कारण सम्यक्प्रकृतिका उदय भी है। फिर क्यो कहा जारहा कि सम्यक्त्व मोक्षमार्ग है ? यहाँ सम्यक्प्रकृति कर्मका उदय भी मोक्षमार्ग है। ऐसी एक आशका की गई है। समाधान स्पष्ट है कि शकाकार सम्यक्प्रकृतिके लक्षणसे अनभिज्ञ है। सम्यक्प्रकृति उसे कहते है जिसके उदयसे सम्यक्त्वमे चल मलिन अगाढ दोष उत्पन्न हो। यद्यपि इस प्रकृतिके उदयमे इतना सामर्थ्य, अनुभाग नही है कि सम्यग्दर्शनका घात कर सके तो भी इसका कार्य सम्यग्दर्शन नही, किन्तु दोष है। सम्यक्त्वका घात न कर

अत्यल्पदोषमात्रका कारण होने से इसका नाम सम्यक् पडा है । सम्यक्त्वका साधन सम्यक्त्वघातप्रकृतियोका उपशाम क्षय क्षयोपशम कहा है सो उपशम व क्षयके प्रति तो आशका नही, किन्तु क्षयोपशमके प्रति ही आशंका उठ सकती है । सो वहां यह समझना कि उपशम व क्षय तो सम्यक्त्वका साधन है । किन्तु साथ जो सम्यक्प्रकृतिका उदय चल रहा है वह दोषका कारण है । इसीकारण क्षयोपशमको वेदक सम्यक्त्वका साधन कहा है सम्यक्त्वका नही । अल्प दोषपर ध्यान न दिया जानेके कारण विशेष विश्लेषण की विवक्षा न होनेसे उपशम व क्षयकी भाति क्षयोपशमको भी सम्यक्त्वका साधन कहते है ।

भूलको भूल न समझ सकनेकी विडम्बना—आत्मापर जो एक अनादिकालीन वासनाका सस्कार बुरा जो लग रहा है, देखिये कितनी बडी आफत इस जीवपर पडी है तिस पर भी यह आफत नही समझता तो इससे भी बडी आफत तो यह है भूल भी कर रहे और भूलको भूल नही मान रहे और भूलको चतुराई समझ रहे तो इससे बढकर मूढता और क्या हो सकती है ? एक गाँवमे कोई बढई रहता था । उसका घर गाव मे सबसे किनारे शुरूमे पडता था । उसके द्वारसे दूसरे गावोको जानेके लिए रास्ता भी था । वह बढई बडा चालाक था । उसके द्वारसे जो भी मुसाफिर निकलता था उसे वह गलत रास्ता बता देता था ? मानो रास्ता गया हो पूरबको और वह पश्चिमको बता दिया करता था । और साथ ही यह भी कह दिया करता था कि देखो इस गावके सभी लोग मजाकिया है, उनके कहनेमे न आ जाना, वे सब तुम्हे उल्टी रास्ता बतावेगे । ऐसी उस बढई की आदत थी । तो एक बार कोई मुसाफिर उसके द्वारसे निकला, बढईसे रास्ता पूछा तो था वह गांव पूरब दिशामे और बता दिया पश्चिमकी ओर । जब वह आगे बढकर गावके भीतर पहुचा तो सोचा कि जरा लोगो से रास्ता पूछकर देखे तो सही कि वह बढई सही कहता था या झूठा सो जब उसने पूछा तो सभी ने पूरब दिशाकी ओर बताया । सोचा कि देखो बढई ठीक ही कह रहा था, सचमुच गावके सब लोग मजाकिया है । सो वह मुसाफिर उल्टा ही रास्ता चलता गया, किसीकी बात न मानी । जब वह आगे के किसी गावमे पहुचा और वहाँ अपने निर्दिष्ट गावका रास्ता पूछा तो उन्होने बताया कि देखो उस गावका रास्ता तो तुम पीछे ही छोड आये । पीछेके गावसे पूर्व दिशाकी ओर वहा से रास्ता जाता है । आखिर उस मुसाफिरको पुन वापिस लौटना पडा, हैरान होना पडा । तो मतलब यह है कि जैसे कोई भूल करे और उस भूलको भूल न समझे, सच्चाईकी बात माने तो जैसे वह बडी मूढता है इसी तरह हम आपपर

रात दिन विपत्तिया छा रही है, विकल्प उठते है, पर द्रव्यके विकल्प चलते हैं, बाह्य पदार्थोंकी धुन रहती है, यश, प्रतिष्ठा आदिकको बात चित्तमे आ जाती है। बाहरी पदार्थोंके राग, बाहरी पदार्थोंके सम्बन्धकी बुद्धि यह कितनी बडी भारी विपत्ति है। तो आकुलताका नाम ही तो विपत्ति है। अब यह देखो कि हम आपके जो रातदिन मानसिक चर्या चलती है इस चर्यामे आकुलता कितनी बसी रहती है। आकुलता तो रहेगी ही। आकुलताका साधन, धाम, उपाय, आधार तो एक निज सहजज्ञानस्वरूप आत्माकी वेमुखी है। अपने आपका यदि यह विश्वास हो कि मै तो ज्ञानज्योतिमात्र हूँ, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई वैभव नही, और मैं कुछ नही, इस मुझ ज्ञानस्वरूप आत्माको कोई दूसरा पहिचाननेवाला नही, किसीसे मेरा मतलब नही। यह तो इस प्रकार एक ध्रुव अवस्थित है, जिसकी निगाहमे रहकर वेदान्तियोने अपरिणामी, अद्वैत, एकस्वरूप ब्रह्म कह डाला है, है यह द्रव्यदृष्टिका एकान्त।

परमब्रह्म स्वरूपका दिग्दर्शन—परमब्रह्मके अपरिणामित्वकी बात दृष्टिमे ठीक है, लेकिन वस्तुका सत्त्व सर्वथा द्रव्यदृष्टिसे जाना गया मात्र नहीं हैं। इससे अन्तर आ गया। मगर जिसको हम शरण समझना चाहते है वह तत्त्व है एक तुरीयपाद, जैसा कि वेदान्तियोने माना है। वेदान्तमे जागृति, सुषुप्ति, अन्त-प्रज्ञ और तुरीयपाद इन चारकी व्यवस्था की। जागृतिके मायने है अज्ञान, मिथ्यादृष्टि। जो व्यवहारम जग जाय, बाहरी पदार्थोंमे जो सावधान बना रहे उसे कहते है जागृत। यद्यपि धर्मशास्त्रमे सोया हुआ कहते हैं अज्ञानीको और जागृत हुआ कहते हैं ज्ञानीको, लेकिन यहा यह विवक्षा है कि जो व्यवहारके काममे जगा हुआ है वह है जागृत। तो जागृत कहा बहिरात्मस्वरूपको और सुषुप्ति कहा अन्तरात्मस्वरूपको। जैसे सोये हुएको देखते है कि उसकी कोई चेष्टा नही होती है इसीप्रकार जो व्यवहारमे सोया है उसे कहते है सुषुप्ति, यह है एक ज्ञानी जेसी दशा। यहाँ वेदान्तकी सिद्धान्त विधिसे बात कही जा रही है, और, अन्त प्रज्ञ है एक सर्वज्ञता, प्रभुता। एक इस आत्माने प्रभुता पा ली। और, तुरीयपाद है, जो इन तीनोसे निराला है। तीनमे जिसका अन्वय है फिर भी इन तीनरूपमे नही है किंतु अपरिणामी है, ध्रुव है, वह तुरीयपाद। अब देखिये—क्या अन्तर आया बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और आत्मस्वभाव इन चारोके वर्णनमे क्या अन्तर आया ? अन्तर तो आया केवल इस दृष्टिसे कि वहाँ ये चारो भिन्न है। तुरीयपाद कोई निराला ही है और ये तीन जीवके परिणमन है। यहा एक द्रव्य है चेतन और ऐसे अनेक चेतन है। सब चेतनका स्वरूप एक समान है किसी भी चेतनका बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये परिणमन होते हैं

फिर भी वह चेतन इन तीनमे ही रहता है, तीनसे निराला कहा बाहर जायगा ? किसी न किसी अवस्थामे यह रहता है, यह है एक वस्तुस्वरूप । उसकी दृष्टि नही हुई ।

सहजस्वरूपके अपरिचयमें संसारजाल—अज्ञानसे ससारमे रुलना चल रहा है। परम ब्रह्मका दर्शन चहुगति दुःखहारी, ऐसा जो अपने आपमे विराजमान शरणभूत अपना सर्वस्व सार जो एक अन्त भगवान आत्मा है, उसका प्रेम नही, उसकी रुचि नही, उसकी धुनि नही, उसकी चर्चा नही सुनी, उसका अनुभव नही किया, उसका परिचय नही हो रहा और हो रहा है बाहरके इस जड भौतिक पुद्गलका परिचय, जो दिख रहे उनको ही सर्वस्व माना जा रहा है, बस यह ख्याल होनेसे ऐसा अभिप्राय जगनेसे आकुलता ही उत्पन्न होती है। वह मेरा धाम नही जो मेरा स्वरूप नही, जो वास्तविक परमार्थ द्रव्य नही उसका कोई शरण गहे तो उसको तो चोट लगेगी, आकुलता होगी । जो मायाजालरूप है उसमे कोई पडे, गिरे, उसमे लगाव रखे तो वह तो पतित होगा । बच्चे लोग कभी कभी ऐसी भी बच्चोसे मजाक कर बैठते है कि बिना बुना हुआ पलग हो, जिसमे केवल चार पाये हो, चारो पाटी सिरे हो, सिर्फ रस्सी या निवाडसे बुना हुआ न हो, खाली हो, उसपर एक चद्दर खूब तानकर लगा दी जाय और पायेसे बडे कच्चे धागेसे बाध दिया जाय और किसी बच्चेसे कहा गया कि आइये महाशय जी इस पलगपर बैठिए–जब वह अचानक ही उस पर बैठ जायगा तो उसके सिर और पैर एक हो जायेगे याने वह अपने पैरोको नमस्कार करने लगता है। देखिये धोखे वाली चीजमें बडी दृढतासे रुचिपूर्वक बैठनेसे क्या हालत हुई । इसी प्रकार यह सब मायाजाल जो कुछ दिख रहा है इसपर कोई ज्ञानसे, रुचिसे, प्रेमसे लगाव रखे, उपयोग रखे तो उसकी दशा क्या होगी ? उसकी बरबादी ही है, देखो यह सब मायाजाल है। जो कुछ दिख रहा है यह क्या परमार्थ है ? परमार्थ तो वह है जो शाश्वत है, जो कभी मिटता नही है, इसमे जो एक एक अणु है वह है परमार्थ, और जो ये दिखने वाले स्कध है, मायारूप है, अभी मिलकर ऐसा दिख रहा है, किसी कालमे बिछुड जायगा । तो जो दिखता है वह सब माया है, धोखा है, उससे मेरे आत्माका हित नही है, लेकिन प्राय करके सभी मनुष्य एक इस मायाजालमे लगे हुए है । इसे ही अपना शरण समझते है, तो देख लो क्या हालत हो गई ।

भूलको भूल न समझ सकनेसे होनेवाली दुर्दशाका दिग्दर्शन—भूलको भूल न समझने वालेकी क्या दशा होगी ? यह समय बताता है । मरण होगा, इसके बाद जैसी परिणतिका उपयोग बनाया उसके अनुसार गति होगी, वहा जन्म लेना होगा यो बडी दुर्दशा है । आज सुन्दर अवसर पाया, पञ्चेन्द्रियां श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ जाति मिली है, सभी श्रेष्ठ चीजे मिली हुई

है तो इस श्रेष्ठताका उपयोग क्यो न कर लिया जाय ? यदि विषय कषायोमे ही रमा जायगा जो कि पशु पक्षी कीडे मकोड़ेको भी मिल सकते, इन विषय कषायोमे ही रमा जायगा तो दशा बुरी है। इससे चेतना चाहिये। श्रद्धा करे आत्मतत्त्वकी। मैं क्या हू, इसके निर्णयमे सारा कल्याण बसा हुआ है। बात तो छोटी सी है, विडम्बना बहुत वडी है। कोई यह कहे कि इस जीवने ऐसी क्या गल्ती की कि इसको पेड, पृथ्वी, जल, अग्नि, कीडा मकोडा, पशु पक्षी आदिक नाना दशाओमे पैदा होना पड रहा है ? इस जीवको इतना बडा दण्ड किस अपराध पर दिया गया ? तो देखो जितने बडे झगडे होते है उन झगडोका मूल याने झगडेकी जड बहुत छोटी हुआ करती है। आप झगडोपर दृष्टि डाले। जैसे मानो भाई-भाईमे बटवारा हुआ और उनमे इतनी लडाई हुई, झगडा हुआ, बात बढी, कोर्ट कचेहरी हो गई और बरबादी दोनोकी हुई। फिर भी वह सब कुछ सुलझनेमे नही आ रहा, वे दोनो वडे गरीब हो गए। उन दोनोसे अगर पूछा जाय कि भाई तुम दोनोके इतने बडे झगडेका मूल कारण क्या है ? तो बतायेगे कि इसने मुझे मारनेका षड्यन्त्र रचा था ? क्यों रचा था ? (सब सुनते जाइये) अन्तमे कोई क्षुद्र ही बात निकलेगी जैसे कि एक फिट चबूतरेकी जगह थी उसपर लडाई हुई थी कि यह मुझे मिले, देखो उतने बडे झगडेकी जड निकली जरा सी। घरमे भी जब सास बहूमे देवरानी जेठानीमे झगडा चलता है तो उसमे भी मूल बात बहुत छोटी होती है, गाली हुई फिर पार्टी बनी, फिर मार पीट हुई, फिर बहुत बडी बात वढ गई, पर मूलमे बात कितनी थी ? तो कहेगे कि मूलमे बात इतनी थी कि सासने कहा कि जरा पानी ला दो, बहूने कहा ला दूगी। बहु तुरन्त न लायी, वह किसी काममे लगी रही, बस यह झगडेकी जड बन गई। इसीतरह यहा भी देखो कि इतना बडा जो झगडा बन गया- पशुपक्षी कीटपतिंगा, आदिकी नाना पर्यायोमे पैदा हो रहे, दीन हीन बन रहे, तो ऐसे जो अनेक प्रकारके झगडे लग गए—मरे जिन्दा हुए, आकुलताये हुईं, इष्ट अनिष्ट आदिककी नाना विडम्बनाये हुईं तो इनकी जड क्या है। यह जीवसक्लेश परिणाम करता है ना ? तो सक्लेश क्यो करता है ? सक्लेश यो होता है इस जीवको कि इसने बहुत परिग्रह बाध रखा है। बहुत जायदाद बना रखा है इसलिए सक्लेश होता है। इतना बडाभारी परिग्रह क्यो बनाया ? इसलिए कि अज्ञानीके विकल्पोमे इसके विना कुछ आराम, चैन नही मिलती शान नही रहती। तुम्हे इतने आराम, शान आदिककी क्यो जरूरत पडी ? अजी जब घरमे रह रहे तो चाहिए ये सब बाते ? घरमे क्यो रह रहे ?' अजी भूख प्यास आदिकी वेदनाये चल रही है, शरीर साथ लगा है इसलिए घरमे रह रहे। शरीर साथ क्यो लगा ? इस लिए कि इस शरीरको मान लिया कि यह मैं हू, देखो मूलमे कितनी गल्ती आयी ? न

किसीको सताया, न मारा, न पीटा, न कुछ किया, केवल यह भाव किया कि यह शरीर मैं हूँ। भला सुनने वाले यह सोचेंगे कि यह तो कोई बडी गल्ती नही मालूम होती, फिर क्यों इतना बडा दण्ड दिया गया। बस इतनी भर गल्ती की कि इस शरीरको मान लिया कि यह मैं हू। इतना भर मानने का दण्ड इतना बडा तो न मिलना चाहिए।'' अरे भाई यह तो बहुत बडी गल्ती है, यह तो बडे भारी पापकी बात है, शरीरमे अहबुद्धि करना। देखनेमे ऐसा लगता कि यह कोई ज्यादह कसूर नही है। कोई ज्यादह गडबडी नही की, बस इतना ही सोचा कि यह मै हूँ।' 'हा सोचा तो जरूर मगर यह सोचनेका फल इतना बडा मिला कि ८४ लाख योनियोमे, चार गतियोमे इसे जन्म मरण करना पड रहा है और यह दुखी हो रहा है। तो समझिये यह मिथ्यात्व कितना बडा पाप है, शरीरमे आत्मबुद्धि करना कितना बडा पाप है, जिसका फल यह ससार है

अनात्मतत्त्वकी अविश्वास्यता—भैया जो समागम पाया इनमे विश्वास करके मत रहो, इनमे विश्वास करनेके फलमे खुदमे ही ससारके महान कष्ट भोगने पडेंगे। इसे पाये हुए समागममे मोह मत करो। समागम भी क्या चीज है? सब मायारूप है। पुद्गल-स्कध मायारूप है, और जो घरमे लडका लडकी आदिक उत्पन्न होते है वे सब भी मायारूप है। दो या और अधिक अनेक द्रव्योका मिलकर जो एक ठाठ सा बनता है वह उसका रूप है जो बिछुड जायगा, वह मायारूप है। इन मायारूप चतुर्गति भ्रमणसे, इस कष्टको बनाया किसने? इसने ही अपनी गल्ती से बनाया। इसे मिटायेगा कौन? खुद ही अपनी गल्तीके सुधार से। बच्चे लोग रेतमे घर बनाते है। पैरमे कुछ मिट्टी रक्खी, उसे दोनो हाथोसे थपथपाया, पैरको धीरेसे निकाल लिया तो वह मढ़ैया सा घर जैसा बन गया। अब उसे देखकर बच्चे लोग बडे खुश होते है मेरा घर अच्छा बना, मेरा कैसा बना''। अगर कोई दूसरा बच्चा उस मकानमे लात मारकर मिटा दे तो वह बच्चा उससे लडता है, बडा दुखी होता है। इसीतरह यहा भी बात है। अपना मायाजाल रचते है, अपना परिणाम बनाते है, उसे कोई मिटा दे तो उसपर आग [illegible] होते है। वह बालक जिसने अपना कल्पित घर बनाया था वह यदि खुद ही लात मारकर मिटा दे तो उससे तो वह प्रसन्न ही रहता है। उसमे उसे रच दुख नही होता। इसी-तरह जो ससारी जीव है इसने पहिले घर बार बनाया, शरीर बनाया, ठाठ बनाया और अपने ही अज्ञानमे उसी पर [illegible] है तो वह तो [illegible] रहता है, और अज्ञानी घर बनाये तो वह घर तो मिटेगा ही, चाहे खुद मिटे, चाहे कोई [illegible] कर मिटा दे, तो उसके मिटनेपर यह दुखी होता है, और जो खुद लात मारकर मिटा देता है वह

प्रसन्न रहता है। तो खुदका बनाया हुआ जो घरबूला यह शरीर, ये समागम, ये चीजें, यह भीतरका राग, जो इन चीजोमे राग बनाया, जो इन चीजोमे विकल्प बनाया, लगाव बनाया, मोह बनाया, ऐसा लगाव यह खुदने बनाया, भीतरका घर खुदने बनाया, तो खुद ही मिटायेगा तो प्रसन्न हो जायगा और खुद न मिटा सके तो फिर दुःखी होना पडेगा। तो कुछ विवेक करना चाहिये और मात्र ऐसा धर्मकि पूजा कर ली। आज भी करली, रोज पढते है, आज भी पढ लिया, एक दिन चर्या सी बना ली, ऐसा जानकर पढना सुनना, ऐसे धर्मसे तो वह लाभ न मिल पायगा जो लाभ इस आत्माको अनाकुलता-की ओर ले जा सकता है। श्रद्धान करना होगा कि यह बात मेरे लिए ही तो कही गई है। अभी देखो यहा बहुत से श्रोता बैठे है, यहा हम कोई ऐसा वर्णन करने लगे कि परस्त्रीसेवन बडा पाप है, कलंक है, महा दुष्ट है, महा अधम है, नीच है ऐसी बातका अगर वर्णन करने लगे और यहा कोई परस्त्रीगामी पुरुष बैठा हो तो वह तो उस वर्णनको सुनकर यही सोचेगा कि आज तो महाराज बस हमीको फटकार रहे है, इन्हे हमारा कुछ पता हो गया है क्या ? इन्हे न जाने क्या हो गया सो आज हमी हमी को कह रहे है, यो वह अनेक प्रकारके विकल्प बनायेगा। यह विकल्पबुद्धि की बात चल रही है, यह महा अनर्थ है, असार है, दुःखदायी है, बरबाद करने वाला है, इसमे अज्ञान है, मूर्खता है। राग कर रहे, विकल्प कर रहे, कडे शब्दोमे अगर बोले तो ऐसा न सोचना कि आज तो महाराज हमारे लिए कह रहे, और अगर हम सभीकी बात कह रहे तब फिर क्यो नही समझ पाते कि यह सब मेरे लिए कहा जा रहा है ? सचमुच मुझपर विडम्बना है, क्लेश है, इसे मिटाना चाहिए। इसका उपाय सोचना चाहिए। तो भाई कल्याण मार्ग मे चलना चाहते हो तो सबसे पहिला कदम यही है कि इस पाये हुए समागममे सुख का विश्वास मत करो

साधारण विवेकसे हितका प्रारम्भ—यहा बतला रहे है कि सम्यग्दर्शन न भी हुआ हो, ज्ञान न भी हुआ हो, तत्त्वाभ्यास न भी हुआ हो तो भी अपने जीवनकी घटना-ओके आधार पर इतनी श्रद्धा की जा सकती है कि पाया हुआ समागम बेकार है। असार है। भिन्न है, नष्ट हो जाने वाला है। इतना कौन नही जान सकता ? नही अधिक ज्ञान है, नही सातो तत्त्वोका श्रद्धान है, नाम भी नही सुना, थोडा भी कोई विवेक करे तो इतना जान सकता कि ये पाये हुए समागम अनर्थ हैं। इन समागमो से आत्माकी कोई भलाई नही है। तो यह असार है इतनी बात मनमे लाये। फिर आगे बढें। सार क्या है, शरण क्या है ? अन्तस्तत्त्वकी बात निरखिये अपने आप सहज अनादि अनन्त अन्त.प्रकाश-

मान है, विराजमान है, यह ही मैं हूँ, अन्य नही हूँ। यह श्रद्धा हुई हो, फिर कोई उसे गाली दे तो भी वह बुरा न मानेगा। इसकी गाली मेरेमे नही आती। मैं तो अमूर्त हू। इससे मेरा क्या सम्बन्ध ? बल्कि वह विकल्प यो करेगा उसपर दया करने का। कैसा अज्ञान छाया है कि यह अपना सत्यस्वरूप नही समझ पा रहा है, बाह्यमे फसा है, बडी विपत्ति मे है, बडा कष्ट पा रहा है। जिससे आकुलित होकर उसकी कुछ चेष्टा हो रही है। वह तो दयाकी बात सोचेगा। बूरा न मानेगा। यहा भी देखो-जो बडे पुरुष होते है वे लोगो द्वारा बोले गए अपशब्दोपर विशेष ध्यान नही देते, बल्कि उनपर दया करतें है। तो जो परमार्थसे बड़ा है वह तत्त्वज्ञानी पुरुष अपने आत्माके विशुद्ध अन्त स्वरूपकी श्रद्धा करने वाला पुरुष उसपर दूसरो की गाली, दूसरोके अविनयके व्यवहार, दूसरेके प्रतिकूल व्यवहार उनका उसपर कोई प्रभाव नही। जो होता है सो हो। वह देख रहा है कि जो होता है सो भला, क्योकि अगर न हो तो पदार्थकी सत्ता न रही, पदार्थ तो उत्पादव्यय और ध्रौव्यमय है तो उसमे परिणमन तो हुआ ही करेगा। तो परिणमन हो रहा है यह तो सत्त्वकी रक्षाके लिए है, न परिणमन हो तो सत्व नही रह सकता, इसलिए जो हो रहा है वह ठीक, वह हो रहा। यह तो एक बात इस दृष्टिसे कहा और लोक-दृष्टिसे देखो—जो होता है सो ठीक, भलेके लिए। आखिर भूले लोग कहने लगते है ना कि नरक जाना भी अपने भलेके लिए है, और इस दृष्टिसे सोचे, जो पाप कमाया था वे पाप मेरे खिर जायेगे तो देखो भला हुआ ना ? ऐसा होता है कि नरकसे निकल करके कोई भी नारकी पेड पौधा आदिमे न उत्पन्न होगा, वह पञ्चेन्द्रियमे ही उत्पन्न होगा तो देखिये वह भी भलेके लिए हुआ। तो हर बातमे बात ढूढना है अपने भलेके लिए। अगर किसीको हर बातमे भलापन दिखता है तो यह उसकी समझदारी हुई, विवेक हुआ।

एक राजा था और एक मन्त्री। मन्त्रीकी ऐसी आदत थी कि वह हर बातमे यही कहता था कि यह भी भलेके लिए, यह भी भलेके लिए। तो एक बार वह राजा और मन्त्री कही घूमने जा रहे थे। रास्तेमे राजाने पूछा कि मन्त्री जी बताइये—मेरे जो ६ अगुलियां है, लोग मुझे छगा कहते है सो कैसा ? तो मन्त्रीने कहा—महाराज यह भी अच्छा है, भलेके लिए है सो राजाको गुस्सा आया, सोचा कि देखो कहा तो मै छगा और यह कहता कि यह भी भला सो मन्त्रीको राजाने एक कुवेमे ढकेल दिया। खैर वह कुवेमे पड गया, जिन्दा रहा। उधर वह राजा आगे बढता गया। वहा एक घटना यह घटी कि किसी दूसरे देशमे नरमेध यज्ञ हो रहा था सो अग्निमे होमनेके लिए कुछ पडालोग किसी सुन्दर नरकी खोजमे निकले हुए थे। उन्हे वह राजा दिख गया। वह राजा सुन्दर, हृष्टपुष्ट तो था ही, सो पडालोग उसे पकड़कर

ले गये, अग्निके पास एक खूटेमे बांध दिया। अग्निमे होमने को ही थे कि किसीको यह दिख गया कि इसके तो ६ अगुलिया है। सो कहा—अरे पुरोहित जी ठहरो, यह पुरुष हवन-कुण्डमे होमने लायक नही है, इससे तो यज्ञ खराब हो जायगा। सो दो-चार डडे मारकर वहामे भगा दिया। राजा बडा खुश होता हुआ उसी जंगलमे आया। वह सोच रहा था कि देखो मन्त्री ठीक ही कह रहा था कि छगा होना भी भलेके लिए है। यदि मै छगा न होता आज अग्निमे होम दिया जाता। झट वह राजा मन्त्रीके पास गया, उसे कुवेंसे निकाला और अपना सारा हाल कह सुनाया। बादमे राजाने उस मन्त्रीसे पूछा कि बताइये मन्त्री जी हमने आपको कुवेमे ढकेल दिया सो कैसा रहा ? तो मन्त्री बोला—यहभी भलेके लिए रहा। कैसे ?—सुनो, आप तो बच गए छगा होनेसे, यदि आप मुझे कुवेमे न ढकेल देते तो वे पडालोग मुझे ही पकड ले जाते और मैं अग्निमे होम दिया जाता, इसलिए वह भी भलेके लिए हुआ। तो भाई हर जगह हम अपने भलेकी बात निकाल सकते है।

मोक्षमार्गकी आत्मपरिणामरूपता—मोक्षका मार्ग क्या है ? इसका उत्तर प्रथम सूत्रमे आया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है, सम्यग्-दर्शन क्या है ? इसका उत्तर द्वितीय सूत्रमे कहा गया है। तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्-दर्शन है, मोक्षका कारण जो सम्यग्दर्शन है वह आत्माका परिणाम है, इस बातको सुनकर शकाकारने यह शका की थी कि मोक्षका कारण जैसे सम्यक्त्व नामक आत्मपरिणामको कहते हो इसीतरह मोक्षका कारण सम्यक्त्व नामक प्रकृतिके उदयको भी कहो। देखो—क्षयो-पशम सम्यक्त्वमे सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय है, फिर भी सम्यक्त्व बना हुआ है, इसका उत्तर दिया गया था कि मोक्षका कारण तो आत्मपरिणाम ही विवक्षित है, क्यो है ? आगे खुलाशा कहेगे, पर सम्यक् प्रकृति तो पर पदार्थ है, कर्म है, पौद्गलिक है, वह तो बाह्य है अत किसी विकारका ही साधन हो सकता है। पर पदार्थकी परिणति मोक्षका कारण नही होती, औपशमिक आदिक जो सम्यग्दर्शन है वे ही आत्माके परिणाम है, और इसीकारण मोक्षके कारण हैं, पर सम्यक्त्व नामक कर्म प्रकृति पौद्गलिक है। परकी पर्याय है, परकी परिणति है, वह आत्माके मोक्षका कारण कैसे हो सकती है ? इस विषयपर शकाकार पुन कह सकता है कि देखिए—जितने भी कार्य होते है वे स्वपर निमित्तक होते हैं, तो उपादान कारण और निमित्त कारण दो कारण हुआ करते है कार्यमे। जैसे घडा बना तो उसमे मिट्टी तो उपा-दान कारण है और दडचक्र आदिक निमित्त कारण हैं। तो जैसे स्वपर निमित्तक कार्य लोकमे होते है उसीतरह ये जो सम्यग्दर्शनरूप कार्य है वह आत्मा उपादानके कारणसे हुआ और सम्यकप्रकृति कर्मके कारणसे हुआ सम्यकप्रकृति निमित्तके कारण है ऐसी शकापर

उत्तर देते है कि भाई यह मोक्षमार्गका प्रकरण है, अभिन्न और उपादान कारणभी विवक्षा है। जब आत्मा सम्यग्दर्शनरूप आत्मपरिणामसे परिणमता है उस समय सम्यक्त्वप्रकृति भले ही निमित्तरूप बाह्य कारणरूप सामने रहे तो भी क्षयोपशम सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्वमे रहता है, अन्यमे नही, उसे कैसे कारण कहा जायगा ? सम्यक्त्व नाम प्रकृतिको कारण क्यो नही कहा ? एक तो वह पर्याय है दूसरे वह उपकरणमात्र है। बाह्य साधनमात्र है, तीसरे सम्यक्प्रकृतिने सम्यक्त्वको सहयोग नही दिया किन्तु सम्यक्त्वका मक्त उत्पन्न करनेमे कारण है। तीसरी बात यह है कि मुख्यता तो आत्मपरिणाम की है। आत्मपरिणामके कारण उस मिथ्यात्वके रसका घात हुआ है जिससे सम्यक्त्वप्रकृति बनी है।

वस्तुस्वातंत्र्य होनेपर निमित्तनैमित्तिकयोग बिना विकार पर्यायकी असंभवता—यहाँ यह कर्म सिद्धान्त की बात चल रही है। सहसा यह प्रश्न हो सकता कि दुनियामे जो इतनी विडम्बनाये दिखती हैं—धनी होना, गरीब होना, मूर्ख होना, पडित होना, दुःखी होना, सुखी होना आदिक ये विडम्बनाये क्यो हुई ? आत्मा तो एक समान स्वरूप वाला है, ये विडम्बनाये किस कारण से हुई ? आत्माकी ओर से स्वय ये विडम्बनाये नही हो सकती, क्योकि ये विडम्बनायें विनाशीक हैं, क्योकि विनाशीक चीजमें स्वय उपादान निमित्त नही होता तब कोई परउपाधि यहाँ कारण है देखो परउपाधिसबको मानना पडा। कोई मानता है कि इस जीवके सुख दुःखको ईश्वर करता है। कोई मानता है कि जीवके सुख दुःखको कोई बाहरी लोग करते है। तो सिद्धान्त कहता है कि जीवके सुख दुःखका निमित्त कारण कर्म है। कर्म यद्यपि अपनी परिणतिसे जीवके सुख दुःख नही कर सकता, क्योकि वह परपदार्थ है। जीव भिन्न चीज है लेकिन ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि जिसप्रकारके कर्मका निमित्त हो उसप्रकार का आत्मामे परिणाम होता है। देखो अनेक दृष्टान्त सामने है—आगपर रोटी धरते हैं तो रोटी सिक जाती है। वहा यह बात कहना कि जब रोटी सिकने की पर्याय आयी तब आग हाजिर हुई, यह बात तो एक हँसी की है। निमित्त नैमित्तिक योग होनेपर भी वस्तुकी स्वतत्रता को निरखो। वस्तुस्वातन्त्र्य होनेपर भी विकार परसग बिना नही हो सकता है। रोटी अपने आपमे उस गर्म पर्यायको प्राप्त हुई, पक्व पर्यायको प्राप्त हुई आगने अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रोटीमे डालकर उसकी परिणति नही की। यह बात सही है, पर उसमे यह कहना कि उसमे यह पर्याय पैदा होती है तब आग हाजिर हो जाती है। ऐसा होनेमे क्या होता कि रोटी सिकना हो गया निमित्त कारण और आग का हाजिर होना हो गया नैमित्तिक कार्य। उल्टी बात हो जाती है। जब आगका सन्निधान हुआ तब रोटीमे पक्व पर्याय होती है। इससे

स्पष्ट है कि आग है निमित्त और रोटी सिकना है उपादान और उल्टा जब तब बतलाये कि जब रोटी बनती है तब आग हाजिर होती। इससे यह जाहिर है कि रोटी बनना हुआ निमित्त और आगका आना हुआ नैमित्तिक कारण। फिर निमित्त नैमित्तिककी कोई व्यवस्था नही रहती। यद्यपि निमित्त और उपादान दोनो एक साथ हे। एक साथ होनेपर भी उल्टा निमित्त नैमित्तिक नही घटाया जा सकता। वह सही घटाया जा सकता और लोककी यह बात प्रसिद्ध भी है। तो बात क्या हुई कि वस्तुकी स्वतत्रता न मिट जाय इस डरके कारण निमित्त नैमित्तिक भावका खण्डन करना पडा। लेकिन यह नही समझा कि निमित्त नैमित्तिक भाव बराबर रहते हुए वस्तुकी स्वतत्रता पूर्णतया ठीक रहती है। स्वतत्रताका कोई घात नही कर सकता। वस्तु स्वातन्त्र्य मिटने के भयसे निमित्त नैमित्तिक का खण्डन करना भी ज्ञानकी निर्बलता है। बात यथार्थ है। तो ऐसा नही है कि जब आत्मामे सम्यग्दर्शन पर्याय होनेको होगी तब कर्मका क्षयोपशम हाजिर हो जायगा। यों नही किन्तु अपनी-अपनी योग्यतासे दोनो की दोनो पर्यायें हो रही हैं। आत्मामे आत्माकी योग्यता मे सम्यग्दर्शन पर्याय हो रही है। कर्ममे कर्म की योग्यतासे कर्मकी क्षयोपशम पर्याय हो रही है, पर निमित्त नैमित्तिक भाव यह है कि कर्मके क्षयो-पशमका निमित्त पाकर जीवके सम्यग्दर्शनरूप पर्याय हुई। स्वतत्रता नही मिटी। वह तो वस्तुका सत्त्व है, प्राण है। स्वत सिद्ध वस्तु है। सत् परिणामनशील है। पर प्रत्येक वस्तु अगर स्वत परिणमे, अपने आपके उपादान निमित्तसे परिणमे तो वह शुद्ध रूप परिणमेगी। कभी विकार रूप नही परिणम सकती। विकाररूप परिणमनमे परपदार्थ निमित्त होता है।

आत्महितप्रयोजनकी दृष्टिसे नयोके उपयोगकी बुद्धिमानी—अब दूसरी बात प्रयोजन की देखिए—प्रयोजन क्या है ? मेरेको शान्ति मिले, मुक्ति मिले, मोक्षमार्ग मिले, लेकिन वह मिलती है स्वभावदृष्टिसे। तो आपको एक स्वभावदृष्टिकी शिक्षा लेना है। स्वभावदृष्टिकी बात प्राप्त करना है। कैसे मेरेको स्वभावदृष्टि हो, तो स्वभावदृष्टिके लिए परमशुद्ध निश्च-यनयकी दृष्टि करके आत्माके उस ज्ञानमात्र स्वभावको एकदम सामने उपयोगमे ले लेना यह तो उसका एक डाइरेक्ट (सीधा) काम है। परमशुद्ध निश्चयनयके आलम्बनसे आत्माके परमशुद्ध स्वरूपका दर्शन होता है और व्यवहारनयसे जहा निमित्त नैमित्तिक भावका वर्णन किया जाय उस वर्णनसे कैसे स्वभावदृष्टिकी शिक्षा मिलती है सो सुनो। जहाँ यह देखा कि परिणति तो विकार रूप है, यह इस मुक्त आत्माकी योग्यतासे हुआ, आत्माकी पूर्व पर्याय मिलकर नवीन पर्याय हुई, ठीक है, पदार्थ स्वयं सत् है, स्वय परिणामनशील है। इसी कारण

उसमे अपने आप उत्पाद व्यय होता है. पर स्वभावके प्रतिकूल किसी पर्यायका उत्पाद तब होता है जब कोई परउपाधि सामने रहती है। यहां एक अवधिज्ञानियोंकी दृष्टिसे या सर्वज्ञने जाना इस दृष्टिसे यह कह सकते कि पदार्थमे जब जो कार्य होता है, देखा गया है, जब वह कार्य होता है और उस समय जो निमित्त होता है वह निमित्त भी होता है तो निमित्तका होना भी निश्चित है उपादानमे पर्यायका होना भी निश्चित है। ऐसा कहने पर भी यहाँ यह बात देखे कि यह वृत्त घटनाकी ओर से, व्यवस्थाकी ओरसे नही कहा गया है, घटना और व्यवस्थाकी ओरसे तो यह बात है कि जब जिसका निमित्त सान्निधान पाता है तब उसके अनुकूल द्रव्यमे वह बात होती है। मतलब यह है कि यह बात भी ठीक, वह बात भी ठीक। इसमे से एक बातको ओझल करना यह एक नयचक्रसे वहिष्कृत बात है। निमित्त नैमित्तिकके वर्णनसे हम स्वभावदृष्टि किस तरह पाते है यह देखिये—ये विकार कर्मप्रकृतिका निमित्त पाकर हुए, ये मेरे स्वभाव नही है। ये नैमित्तिक है, निमित्तका सन्धिान पाकर हुए इसलिए ये मेरे नही हैं, इसलिए इन्हे दृष्टिमे न ले, ये पौद्गलिक हैं, विकार है, मैं तो एक ज्ञानमात्र स्वभावी हूँ, इसमे निमित्त नैमित्तिकके वर्णनसे स्वभावदृष्टिसे हमे प्रेरणा मिली और जब हम यह दृष्टि करते हैं कि आत्मामे आत्मपरिणतिया होती रहती है, बस यह ही हमे देखना है, इसतरह भी कोई देखे तो भी उसे स्वभावदृष्टिकी बात आ सकती है। प्रयोजन है स्वभावदृष्टिका वस्तुस्वातत्र्यके कथनसे भी स्वभावदृष्टिको प्रेरणा मिलती है। निमित्त नैमित्तिकदृष्टिसे भी हमे स्वभावदृष्टिकी प्रेरणा मिलती है।

प्रमाणसे विज्ञात अर्थ किसी भी नयसे निहारनेका श्रृङ्गार—जब हम एक निश्चय दृष्टिकी बात करे अर्थात् जीवमे पर्याय हो रही है, होती जा रही है, जब जो हो रही है। यो एकके वर्णनमे निश्चयदृष्टि की बात करे तब, निश्चयदृष्टि की बात करके हम स्वभावदृष्टिकी प्रेरणा ले, उस समय बीचमे निमित्तकी बात कह देना अनुयुक्त बात है। उस प्रसगमे विधिया निषेध किसी भी रूपमे निमित्त न बोले क्योकि तुम उस समय निश्चयके मूडमे चल रहे हो। अगर निमित्तकी बात वहा बोलते तो तुम्हे व्यवहार दृष्टिमे चलकर बोलना चाहिए। निश्चयकी दृष्टिमे चलकर निमित्त की कथा न करे। वह भी एक नय है. आप उस नयसे केवलका दर्शन करते रहे, व्यवहारकी बात न चले, निमित्त नैमित्तिककी बात न करे। क्योकि उस समय द्रष्टा निश्चयके मूडमे है, लेकिन एक बात यह ख्यालमे रखनी होगी कि प्रमाणसे ग्रहण किये गये पदार्थके बारेमे एक दृष्टि लेने का नाम नय है न कि एक दृष्टिका निर्णय करके उस दृष्टिमे अटल रहनेका नाम नय है। वह सुनय है। पहिले प्रमाणसे गहण करो पदार्थ, फिर एक दृष्टिसे निरखते रहे तो कोई

हानि नही, सर्व नयोसे, प्रमाणसे कि वस्तुका स्वरूप क्या है, समझनेके बाद आप केवल परमशुद्ध निश्चयकी दृष्टि ही बनाये रहे, निरन्तर बनाये रहे वह तो बडी उत्तम बात है, यह तो बडी पूज्य बात है। अथवा अशुद्धनयकी दृष्टि भी बनाये रहे, कोई बात नही है, अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिमे यह बात आती है कि जीवमे जो विकार होता है वह जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है, किसी परपदार्थकी परिणतिसे नही होता है, जीवके परिणाम जीवके ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होते है। वह क्रोध, वह विकार, वह मलिनता किसी कर्मकी परिणतिसे नही हुई, यह भी समझनेके लिए बोला है। अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिसे इतना भी नही कर सकते। निश्चयकी दृष्टिसे दूसरेकी बात करना मना है, बात असलमे यह है, क्योकि निश्चयदृष्टि केवल एक पदार्थको ग्रहण करती है। तो अशुद्ध निश्चयदृष्टिसे जब तक रहे हो तब तक एक ही को तका, जीवमे विकार हुआ, जीव द्वारा हुआ, जीवकी पूर्व पर्याय बिलीन हुई, उत्तर पर्याय निष्पन्न हुई, जीवमे ही होती चली जा रही है, निरखते जावो, कोई दोषकी बात नही है, क्योकि वह एक निश्चयदृष्टिसे मूड बना। मगर निश्चय-दृष्टिका तो मूड बना और इतनी बात कहदे कि लो जब यह विकार होनेको हुआ तब कर्म हाजिर हो गए। अरे दूसरेकी चर्चा करना निश्चयदृष्टिमे होती ही नही। जैसे किसी गाडीमे ऊट और गधा जोड दिया जाय तो वह असगत बात है, मना नही है। जैन सिद्धान्तका कितना स्पष्ट वर्णन है। यहा यह वर्णन चल रहा है कि निमित्त नैमित्तिक भाव होनेपर भी वस्तु स्वतन्त्र है। वस्तुस्वरूपकी बात दिखाने वाला निश्चनय है। निमित्त नैमित्तिककी बात कहते तो फिर व्यवहारकी बात न करो। श्रद्धामे रखो उस बातको, क्योकि प्रमाणसे जाना हुआ है, इसलिए उस बातको धारणामे रखो कि यह भी एक तथ्य है, मगर बात करना केवल एक द्रव्यकी, जबकि तुम निश्चयदृष्टिके मूडमे आये हो। शुद्ध निश्चयके मूडमे हो या अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिमे आत्मासे विकार हो, आत्मासे हो, आत्माकी परिणतिसे हो, आत्मा की पूर्व पर्याय बिलीन हो, विकारको देखो—अशुद्ध निश्चयसे देखो, एक आत्मामे देखो, आत्मासे ही सब बाते जोडो, उसमे दूसरे पदार्थका नाम न लो, क्योकि निश्चयनयके मूडमे हो अगर प्रसक्तका नाम लेते तो वह बन गई व्यवहारकी दृष्टि। विरोध किसी बातमे नही आ रहा, लेकिन बातके पीछे विरोध है। बातमे विरोध नही है, विरोध कहासे आया? बतलावो जब कि अन्य दार्शनिकोके द्वारा कही हुई बातोसे भी जब नयचक्र सिद्ध कर सकते है तो बतलाओ जैन जैनमे जो बाते हो रही हो, उन बातोको सिद्ध करनेमे कोई कठिनई है क्या? तो जरा न्यायसे चले, अन्याय न करे। न्याय यही है कि जिस दृष्टिके मूडमे हो उसकी ही बात निरखे। कोई मूड बनाकर बोले तब कुछ और बतलावें साथमे दूसरी दृष्टि करे तो यह

बात ठीक नही बैठती, हा लावे दोनो बाते, पर दोनो लावे तो प्रमाणका मूड बनावें तो बात ठीक बैठ जायगी।

स्वभावदर्शन और धर्मपालनसे आत्माकी शोभनता—आपको चाहिये क्या ? स्वभाव दर्शन, इसमे तो कोई विवाद नही। जब संसारके दु खोसे छूटनेकी अभिलाषा है तो स्वभाव-दर्शनके बलसे ही हम दु खोसे छूट सकते है। परिजन, धन सम्पदा वैभव इनके लगावसे हम दु खोंसे छूट नही सकते। जो सामने एक समस्या बनाये रहते कि भाई जब निर्धन थे तब सोचते थे कि कुछ धन हो जाय तो फिर सुखसे रहेगे। अब धन हो गया तो शान्ति तो कुछ मिली नही, बल्कि पहिलेसे भी अधिक दु खी हो गए। इन बाह्यपदार्थोसे लगाव लोग क्यो रखते है ? यो रखते कि उनके अज्ञान है, उन्होने भ्रम कर रखा है कि बाह्यपदार्थोके लगाव से, सम्बन्धसे, समागमसे सुख शान्ति होती है। सुख शान्तिका कारण तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। सुख शान्तिका कारण बाहरी पदार्थोका लगाव नही। देखो शोभा भी धर्मके सम्बन्धसे है इस जीवनकी, मोटा दृष्टान्त ले लो, विवाह शादी होती है, एक दो दिन बारात ठहरती है। वहा विवाह शादियोमे नेगचार होता है। अब अमुक काम हुआ, अब अमुक काम हुआ, अब तैल चढाते, अब टीका लगाते, भावर भी करते, विवाहके सब काम भी करते और धर्मकी दो चार बाते भी उस प्रसंगमे चलती है। मन्दिरमे जाना, कुछ चढाना, विधान करना आदिक जो भी धर्मके काम चलते, उनमे धर्मका काम यदि बिल्कुल निकाल दिया जाय, केवल विवाह-विवाहकी ही बात रखी जाय तो उस कामकी शोभा नही जचती। धर्मकी एक भी बात अगर बीचमे आ गई तो उसकी शोभा बन जाती है। कोई भी काम हो। घरमे रहते हुए आप कितने ही बड़ेसे बड़े काम करते जाइये, रातदिन वही कमाई धमाई खाना पीना ऐश आराममे ही अगर जीवन बीते, मन्दिर जाने, जाप जपने, भगवानकी भक्तिमे रहने आदिके काम न करें तो इससे यह समझिए कि हमारा जीवन अधेरे मे है, उस जीवनकी कोई शोभा नही है, न वहा जीवनका कोई श्रृंगार है। एक बात और समझिये—इस तरहसे कोई जी भी नही सकता। जितने मनुष्य है, भिखारीसे लेकर राष्ट्र-पति तक सबका जीवन किसी न किसी रूपमे कुछ न कुछ समय धर्मके प्रसंगोमे बीतता है। अगर धर्मके प्रसंगमे न आये तो जीना कठिन हो जायगा। एक भी ऐसा मनुष्य बताओ जो धर्मके प्रसंगमे एक भी बात किसी भी क्षण न करता हो ? चाहे ढगसे न करे। बात यह चल रही है कि जीवनकी शोभा धर्मसे है।

सम्यक्त्वकी मोक्षमार्गरूपता—पहले यह बात चल रही थी सम्यग्दर्शन होता है, मोक्षका कारण बनता है, सो सम्यक्त्व प्रकृति भी तो साथ रहती है उदयमें तो वह भी

कारण कहलायगा-तो उसके उत्तर अनेक होंगे। वह सम्यक् प्रकृति कारण यों नही कि वह परपदार्थकी पर्याय है, सम्यक्प्रकृति कारण यों नही कि वह बाह्य उपकरण मात्र है, निमित्त मात्र है। सम्यक्त्वप्रकृति मोक्षका कारण यों नही कि वह तो सम्यक्त्वमे दोष लगानेका कारण है, न कि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका है। सम्यक्त्वप्रकृति कारण यो नही कि सम्यक्प्रकृति तो खुद आत्मपरिणामके कारण रसघातसे बनती है, मूलमें कर्म तो ८ है, पर उनके और भेद करनेसे १४८ भेद है, उन १४८ प्रकृतियोंमे ७ प्रकृतिया सम्यक्त्वके घातकी निमित्त हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और मिथ्यात्व ये ७ प्रकृतिया सम्यक्त्वके घातकी निमित्त है। इनका उदय आदिक होने पर सम्यक्त्व नही होता। अब ये ७ प्रकृतिया हैं तो इनमे से इस जीवके द्रव्यसे अनादिसे ७ प्रकृतिया न रही, ५ रही-मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। ७ नही रहती गाठमे, फिर ये ७ आती कैसे हैं? जिस समय इन ५ प्रकृतियोंका उपशम होता है, अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके उस कालमे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, तो पहिले समयमे यहा ही रहा औपशमिक सम्यक्त्व और यहा ही हो रहे मिथ्यात्वके टुकडे। जैसे चक्कीमे चने दले जाते है तो उन चनोकी तीन हालते होती है—कुछ दालके रूपमे और कुछ आटा, भुसीके रूपसे निकलते है। तो जैसे चना दलनेपर चनेकी तीन बाते हो जाती हैं इसीतरह उपशम सम्यक्त्वके परिणामके द्वारा मिथ्यात्वके दले जानेपर तीन भाग हो जायेंगे। कुछ तो मिथ्यात्व ही रह जाते है, कुछ दलकर सम्यग्मिथ्यात्व हो जाते, यो दो भाग हो गये और कुछ आटा रूप हो गए, वह हो गई सम्यक्प्रकृति। तो सम्यक्प्रकृति बनी कैसे? उस मिथ्यात्वमे जो रस पडा था उसका घात हुआ तब सम्यक्प्रकृति बनी, तो सम्यक्प्रकृति बननेमे निमित्त है आत्मपरिणाम, फिर तो उस सम्यक्प्रकृतिको सम्यक्त्वका कारण क्यो न कहा? रसघात हुए सम्यक्त्वके परिणाममे जातित्व तो मिथ्यात्वका है, दर्शनमोहका है। इस कारण यह नही कह सकते कि सम्यक्त्वप्रकृति कारण है मोक्षका। सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नही है, क्योकि सम्यक्प्रकृति तो हेय है, भिन्न है, छूट जाती है मगर आत्मपरिणाम सम्यग्दर्शनरूप परिणाम नही छूटता। साथ रहता है, जीवसे अभिन्न है इसलिए जीवके मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन परिणाम है। सम्यक्त्व परिणाम ही मोक्षका कारण है, सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नही है, क्योकि प्रधान तो सम्यग्दर्शन परिणाम है। बाहरी चीज तो केवल बाह्य साधन है, सो वह सम्यक्प्रकृति तो दोषका उपग्राहक है न कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेमे उपग्राहक है। आखिरी बात यह है कि सम्यग्दर्शन है निकटकी चीज, आत्मासे अभिन्न वस्तु, वह तो मोक्षमार्ग है, वह मोक्षका कारण है, किन्तु सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नही है। इस तरह यहा तक यह बात आयी कि

वस्तुस्वरूप सहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पदार्थ जिस तरहसे अवस्थित है उसका उस रूपसे श्रद्धान करना सम्यग्ज्ञान है, इस बातको संक्षेपमे इतना मान लीजिए कि निजके रूपसे निजका श्रद्धान करना, परके रूपसे परका श्रद्धान करना यह सम्यग्दर्शन है। जब समाधिशतकमे पूज्यपाद स्वामीने मगलाचरण किया तो उन्होने कहा कि जिसने आत्मा को आत्मा रूपसे जाना और परको पररूपसे जाना ऐसे अक्षय अनन्त ज्ञान वाले सिद्ध भगवानको मैं नमस्कार करता हू। तो निजको निज, परको पर जान, फिर दुःखका नहि लेश निदान।

आत्मश्रद्धान बिना परतन्त्रताके क्लेशसे छुटकाराका अभाव—प्रयोजनभूत वस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अपनी शान्तिके लिए प्रयोजनभूत वस्तु कौन है? स्वयं यह निज आत्मा। उस निज आत्मामे भी प्रयोजनभूत है शाश्वतस्वभाव, उसका दर्शन होना, परिचय होना, अनुभव होना, अर्थात् ज्ञानमे यह चित्स्वभाव आये और यही ज्ञान मे कुछ क्षण बना रहे, ऐसी स्थितिमे जो स्वय अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वह कहलाया प्रयोजनभूत वस्तुका यथार्थ अनुभव। तो साक्षात् प्रयोजनभूत है यह समयसार और उसके परिचयके लिए प्रयोजनभूत है—जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा, और मोक्ष तत्त्वका श्रद्धान, इसलिए ये ७ तत्त्व भी मोक्षमार्गके प्रयोजतभूत है। प्रयोजनभूत मे ही प्रयोजनभूत है। जो अपना प्रयोजनभूत आत्मतत्त्व है उसके परिचयके लिए जो प्रयोजनभूत है वह भी प्रयोजनभूत कहलाता है। ऐसे आत्मवस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। आत्मतत्त्वके श्रद्धान बिना यह जीव अनादिसे अब तक परतंत्र रहा आया है। बाह्य वस्तुमें आत्मरूपसे इसका श्रद्धान रहा। जिस परवस्तुमें इसने आत्मरूपकी श्रद्धा की, उसके आधीन रहा। जिसको परिवारसे, घरसे, वैभवमे मेरेको सुख है, बडप्पन है, हित है, मौज है इसीमें उसका महत्त्व है, ऐसी जब श्रद्धा हो तो यह परिजन आदिकके आधीन हो गया। निश्चयसे तो आत्मा परके आधीन होता हि नही है अपने आपके कषायभावके आधीन है, पर कषाय भावका जो आश्रयभूत परवस्तु है उसकी ओर चूँकि उपयोग लगा है और अनुभव करता है परवस्तुके लगावमे परतन्त्रताका इसलिए उस आश्रयभूत परवस्तुके भी यह आधीन रहता है। यों अज्ञानमें यह जीव आश्रयभूत वस्तुके आधीन है, अथवा आश्रयभूत वस्तुको विषय करके जो उपयोग बना, कषाय बनी, राग बना, विकल्प हुआ उस विकल्पके आधीन है, ऐसी परतन्त्रता यह जीव अनादिकालसे भोगता चला आया है। कभी इसने स्वरूपका अनुभव नही किया। मैं स्वयं आनन्दस्वरूप हूँ, स्वयं सर्वस्व कल्याणस्वरूप हूँ। मेरा किसी परवस्तुसे सम्बन्ध नही है, किसी परवस्तुकी

मेरेमे आधीनता नही, ऐसा अपने आपमे कभी विचार नही किया। पराधीनता अनर्थ है, व्यर्थ है और बरबादी एव कष्टका कारण है। पराधीन भावमे सार कुछ नही है । जिस परवस्तुकी ओर दृष्टि देकर हम पराधीन हो रहे हैं वह असार है, विनश्वर है।

किसीका दूसरेसे लगावकी वस्तुत अशक्यता—परवस्तु विनाशीक है, वह अपनी ही योग्यतासे अपने आपके अनुकूल परिणमेगा। मेरेको कौन चाहता है ? मेरे लिए कौन क्या है ? सबकी अपने आपकी शान्तिके लिए धुन रहा करती है । वहा जिस किसी पुरुषको जिसमे अधिक विश्वास हो कि मेरा लडका आज्ञाकारी है, मेरेको चाहता है, वह भी धीरतासे विचार करेगा तो मालूम होगा कि कोई लडका किसी दूसरेकी आज्ञा नही मान सकता। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। आप मिथ्या कल्पनाये बनाते है कि यह लडका मेरी बात मानता है। अरे उस लडकेको खुद अपने आपमे विकल्प है, स्वार्थ है, कषाय है, भावनाये है, वासनायें हैं, वह समझता है कि मेरेको सुख मेरेको शान्ति इस प्रकारकी बात माननेमे ही मिलेगी। ऐसे विश्वासके कारण वह बात मानता है । कही आपके नानेसे वह आपकी बात नही मानता। प्रत्येक पुरुष अपनी अपनी कषायसे अपने आपकी चेष्टा करता है। कोई भी किसीको चाहने वाला नही है। यह तो व्यर्थका ख्याल है कि अमुक कोई मुझे चाहता है। यह तो कह रहे पर्यायकी बात और द्रव्यकी बात देखो तो इसका तो किसीको परिचय ही नही। चाहेगा क्या। और चाहेगा तो उसका अर्थ हुआ कि उसने अपने ही स्वरूपको चाहा। कोई वस्तु किसी अन्य वस्तुसे कोई सम्बन्ध नही रख पाती, क्योकि सबका सत्त्व अपने आप स्वत.सिद्ध है। तो जब ऐसा वस्तुस्वरूप है कि कोई भी पदार्थ उसका कुछ नही लगता, फिर क्यो किसी परवस्तुमे लगाव और धुन की जा रही है ? यह सब मोहमे करना पड रहा है। मोहकी शराबमे बेहोश हुआ यह प्राणी अटपट काम करता है। जैसे शराब पीकर बेहोश हुआ मनुष्य बडे अटपट कार्य करता है । वह स्वय तो नही समझ पाता, पर जो शराब नही पिये है वे जानते हैं कि देखो यह कैसा अटपट कार्य कर रहा है, इसीतरह ये ससारके मोही प्राणी मोहरूपी शराबका पान करके अटपट कार्य कर रहे हैं, वे स्वय तो नही यह बात समझ पाते, पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष जानते है कि अहो—ससारके ये प्राणी मोहमे कैसा अटपट कार्य कर रहे हैं । तो यहा ही ये परतत्र हो रहे है। पचेन्द्रियके विषयोकी ओर अपनी दृष्टि लगाना, बस इसीमें पराधीनता हैं। वास्तविक स्वतत्रता तो तब है, जब विषयोकी आशा न रहे, किसी भी परपदार्थकी आधीनता न रहे, किसी प्रकारका चित्तमे विकल्प न रहे, मोह न रहे, केवल ज्ञाता द्रष्टा रहे, अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करे, ऐसी ही स्थिति कहलाती है

वास्तविक स्वतंत्रता । ऐसी स्वतंत्रता इस जीवने अब तक नही पायी । इसका परिचय न हुआ, अनुभव न हुआ इसी कारण यह प्राणी बाह्य वस्तुओमे, काम भोगोमे अपना लगाव रखता है और यह उसमे परतंत्र होकर अपनेको सुखी अनुभव करता है ।

विनश्वर समागममे अविनश्वर प्रभुताका दर्शनकर वास्तविक आजादी पानेका प्रयास---मनुष्यदेह पाया, श्रेष्ठ मन पाया तो इस बडी विभूतिका कब सदुपयोग किया जायगा ? इसका सदुपयोग यह कि समग्र बाह्य वस्तुओंको भिन्न असार जानकर उनमे प्रीति न करे, उसमें मोह न बनाये, उसको अनर्थ समझे । यदि बाह्य वस्तुमे मोहदृष्टि होती है तो उसे अनर्थ समझे, उस परमे लगावको हटाकर निज आत्मतत्त्वमे अपनी अनुभूति बनायें, यह हो गई वास्तविक आजादी । देखो जैसे देशवासियोने आजादी प्राप्त की है तो उस आजादीके लिए इन्हे क्या करना पडा ? तो नेताओको दो उपाय बनाने पडे थे-(१) सत्याग्रह और (२) असहयोग । देखो जिन्होंने उस आजादीके आन्दोलनका समय देखा है उन्हे भली प्रकार विदित है कि ये आजादी इन्ही दो उपायोसे प्राप्त कर सके । सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करना, देशके लिए जो हितरूप था, जो सत्य था, उसका आग्रह था, मुझे आजादी ही पाना है, और असहयोग क्या कि जो विदेशी धन है, विदेशी चीजे है उन्हे न अपनायेंगे, अपनी स्वदेशी चीजे अपनायेगे । यह था उनका असहयोग । ये देशवासी उस समय और कुछ तो कर नही सकते थे, सभी ब्रिटिश शासनके आधीन थे; उनका कुछ अधिकार न था, वे किसीसे लड सकते नही थे । तो उन्होने ये दो उपाय काममे लिए थे-सत्याग्रह और असहयोग । इसीप्रकार कर्मशासनमे पराधीन हुए इस जीवको इस परतन्त्रतासे बचने और आजादी हासिल करनेका उपाय हो सकता है तो सत्याग्रह और असहयोग । सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करके रह जाना । यह हू मै, यह है मेरा, यह ही मुझे चाहिए, सत्य ही चाहिए । सत्य क्या है ? सति भवं सत्य । जो सत्मे हो सो सत्य है । सत् हू यह मै आत्मवस्तु । उस निज आत्मवस्तुमे जो सहज है उसका नाम है सत्य । इस निज वस्तुमे सहजभाव क्या है ? सहजभावमे यह ज्ञाता ज्ञानस्वभाव, यह चित्स्वभाव, यह अखण्ड चैतन्यभाव । इसका आग्रह करना होगा । यह हूं मैं । यह ही है आनन्द धाम । यह ही है मेरा शरण । मैं तो इसमे ही रहूँगा, और मुझे कुछ न चाहिए । यह तो हुआ सत्याग्रह और असहयोग क्या हुआ कि जो मैं नही हूँ, जो अनात्मवस्तु है, जो नैमित्तिक है, जो परवस्तु है, मानो कर्मकी दयापर जो चीज प्राप्त हुई है ऐसे ये वैभव, परिजन, यश देह, विषय साधन, सांसारिक सुख, जो कुछ भी ये वैदेशिक चीजे है, नैमित्तिक चीजें हैं, परभावकी चीजे हैं इनमें हो जाय असहयोग, यह मुझे न चाहिए, और बल्कि जो आये हों उनको दूर करें ।

मेरेमे आधीनता नही, ऐसा अपने आपमे कभी विचार नही किया। पराधीनता अनर्थ है, व्यर्थ है और बरबादी एव कष्टका कारण है। पराधीन भावमे सार कुछ नही है। जिस परवस्तुकी ओर दृष्टि देकर हम पराधीन हो रहे है वह असार है, विनश्वर है।

किसीका दूसरेसे लगावकी वस्तुत अशक्यता—परवस्तु विनाशीक है, वह अपनी ही योग्यतासे अपने आपके अनुकूल परिणमेगा। मेरेको कौन चाहता है? मेरे लिए कौन क्या है? सबकी अपने आपकी शान्तिके लिए धुन रहा करती है। वहा जिस किसी पुरुषको जिसमे अधिक विश्वास हो कि मेरा लडका आज्ञाकारी है, मेरेको चाहता है, वह भी धीरतासे विचार करेगा तो मालूम होगा कि कोई लडका किसी दूसरेकी आज्ञा नही मान सकता। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। आप मिथ्या कल्पनाये बनाते हैं कि यह लडका मेरी बात मानता है। अरे उस लडकेको खुद अपने आपमे विकल्प है, स्वार्थ है, कषाय है, भावनायें है, वासनाये हैं, वह समझता है कि मेरेको सुख मेरेको शान्ति इस प्रकारकी बात माननेमे ही मिलेगी। ऐसे विश्वासके कारण वह बात मानता है। कही आपके नातेसे वह आपकी बात नही मानता। प्रत्येक पुरुष अपनी अपनी कषायसे अपने आपकी चेष्टा करता है। कोई भी किसीको चाहने वाला नही है। यह तो व्यर्थका ख्याल है कि अमुक कोई मुझे चाहता है। यह तो कह रहे पर्यायकी बात और द्रव्यकी बात देखो तो इसका तो किसीको परिचय ही नही! चाहेगा क्या। और चाहेगा तो उसका अर्थ हुआ कि उसने अपने ही स्वरूपको चाहा। कोई वस्तु किसी अन्य वस्तुसे कोई सम्बन्ध नही रख पाती, क्योकि सबका सत्त्व अपने आप स्वत.सिद्ध है। तो जब ऐसा वस्तुस्वरूप है कि कोई भी पदार्थ उसका कुछ नहीं लगता, फिर क्यो किसी परवस्तुमे लगाव और धुन की जा रही है? यह सब मोहमे करना पड रहा है। मोहकी शराबमे बेहोश हुआ यह प्राणी अटपट काम करता है। जैसे शराब पीकर बेहोश हुआ मनुष्य बडे अटपट कार्य करता है। वह स्वय तो नही समझ पाता, पर जो शराब नही पिये है वे जानते है कि देखो यह कैसा अटपट कार्य कर रहा है, इसीतरह ये ससारके मोही प्राणी मोहरूपी शराबका पान करके अटपट कार्य कर रहे हैं, वे स्वय तो नही यह बात समझ पाते, पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष जानते है कि अहो—ससारके ये प्राणी मोहमे कैसा अटपट कार्य कर रहे हैं। तो यहा ही ये परतत्र हो रहे हैं। पचेन्द्रियके विषयोकी ओर अपनी दृष्टि लगाना, बस इसीमे पराधीनता हैं। वास्तविक स्वतन्त्रता तो तब है, जब विषयोकी आशा न रहे, किसी भी परपदार्थकी आधीनता न रहे, किसी प्रकारका चित्तमे विकल्प न रहे, मोह न रहे, केवल ज्ञाता द्रष्टा रहे, अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करे, ऐसी ही स्थिति कहलाती है

वास्तविक स्वतंत्रता। ऐसी स्वतंत्रता इस जीवने अब तक नही पायी । इसका परिचय न हुआ, अनुभव न हुआ इसी कारण यह प्राणी बाह्य वस्तुओमें, काम भोगोमे अपना लगाव रखता है और यह उसमे परतंत्र होकर अपनेको सुखी अनुभव करता है।

विनश्वर समागममे अविनश्वर प्रभुताका दर्शनकर वास्तविक आजादी पानेका प्रयास——मनुष्यदेह पाया, श्रेष्ठ मन पाया तो इस बडी विभूतिका कब सदुपयोग किया जायगा ? इसका सदुपयोग यह कि समग्र बाह्य वस्तुओको भिन्न असार जानकर उनमे प्रीति न करे, उनमें मोह न बनाये, उसको अनर्थ समझे। यदि बाह्य वस्तुमे मोहदृष्टि होती है तो उसे अनर्थ समझे, उस परसे लगावको हटाकर निज आत्मतत्त्वमे अपनी अनुभूति बनाये, यह हो गई वास्तविक आजादी। देखो जैसे देशवासियोने आजादी प्राप्त की है तो उस आजादीके लिए इन्हे क्या करना पडा ? तो नेताओको दो उपाय बनाने पड़े थे-(१) सत्याग्रह और (२) असहयोग। देखो जिन्होंने उस आजादीके आन्दोलनका समय देखा है उन्हे भली प्रकार विदित है कि ये आजादी इन्ही दो उपायोसे प्राप्त कर सके। सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करना, देशके लिए जो हितरूप था, जो सत्य था, उसका आग्रह था, मुझे आजादी ही पाना है, और असहयोग क्या कि जो विदेशी धन है, विदेशी चीजे है उन्हे न अपनायेगे, अपनी स्वदेशी चीजे अपनायेगे। यह था उनका असहयोग। ये देशवासी उस समय और कुछ तो कर नही सकते थे, सभी ब्रिटिश शासनके आधीन थे; उनका कुछ अधिकार न था, वे किसीसे लड सकते नही थे। तो उन्होने ये दो उपाय काममे लिए थे-सत्याग्रह और असहयोग। इसीप्रकार कर्मशासनमे पराधीन हुए इस जीवको इस परतन्त्रतासे बचने और आजादी हासिल करनेका उपाय हो सकता है तो सत्याग्रह और असहयोग। सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करके रह जाना। यह हू मैं, यह है मेरा, यह ही मुझे चाहिए, सत्य ही चाहिए। सत्य क्या है ? सति भवं सत्य। जो सत्मे हो सो सत्य है। सत् हूँ यह मैं आत्मवस्तु। इस निज आत्मवस्तुमे जो सहज है उसका नाम है सत्य। इस निज वस्तुमे सहजभाव क्या है ? सहजभावमे यह आता ज्ञानस्वभाव, यह चित्स्वभाव, यह अखण्ड चैतन्यभाव। इसका आग्रह करना होगा। यह हूं मैं। यह ही है आनन्द धाम। यह ही है मेरा शरण। मै तो इसमे ही रहूँगा, और मुझे कुछ न चाहिए। यह तो हुआ सत्याग्रह और असहयोग क्या हुआ कि जो मैं नही हूँ, जो अनात्मवस्तु है, जो नैमित्तिक है, जो परवस्तु है, मानो कर्मकी दयापर जो चीज प्राप्त हुई है ऐसे ये वैभव, परिजन, यश देह, विषय साधन, सांसारिक सुख, जो कुछ भी ये वैदेशिक चीजें हैं, नैमित्तिक चीजे है, परभावकी चीजे है इनमे हो जाय असहयोग, यह मुझे न चाहिए, और बल्कि जो आये हो उनको दूर करें तो ऐसा

परवस्तुओसे असहयोग हो तो इस जीवको स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। जैसे आजादीके जमानेमें कई लोग केवल मुखसे बोलने वाले थे, वे करना धरना कुछ नही चाहते थे तो उनका क्या हाल हुआ ? जब वे गिरफ्तार हुए तो जरा सी देरमें माफी मांगकर आ गए। वे अपने संकल्पमे दृढ न रह सके, ऐसे ही समझिये कि जो केवल मुंहसे बोलने वाले है, उस पर चल नही पाते; चित्तमे उनकी रुचि नही, उस मार्गकी मनमे भावना नहीं, वे बोल बोल कर ही रह जाते है और पद-पद पर फिसल जाते हैं, तो जिनका एक दृढ सकल्प है कि मेरे को तो सत्यकी प्राप्ति करना ही है वे असहयोग और सत्याग्रहके प्रतापसे अपने आत्माकी आज़ादी पा सकते है। वह आजादी मिलती है वहा इस आजादीका प्रारम्भ होता है जहां, उस भावको कहते है सम्यक्त्व। अब आजादीका उपयोग प्रयोग, जिसे करनेमे वर्षो लगते हैं; जैसे भारत आजाद हो गया यह मानो निर्णय तो हो गया, १५ अगस्तसे, लेकिन उपयोग प्रयोग तो नही हुआ। उपयोग प्रयोग होनेमे अनेक वर्ष लगे प्रेक्टिकल काम करना पडा। इसीतरह सम्यक्त्व होनेपर आजादीका निर्णय हो गया कि यह मुक्त होगा, सदाके लिए शुद्ध होगा, अब इस आत्माकी यह चर्या रहगी, अब यह अपने आनन्दधाममे बसा करेगा, अपना स्वयं शासन सम्हाल लेगा, आजादीका निर्णय हो गया, सम्यक्त्व भाव होनेपर किन्तु अभी उपयोग प्रयोग होनेमे विलम्ब है। उसके लिए मनको केन्द्रित करना, सयम रखना, चारित्रमे चलना, बढना; बाह्य अन्तरङ्ग चारित्र सभी तरहके प्रयोग चलेगे, तब जाकर इसे वास्तविक आजादी प्राप्त होगी।

स्पर्शन रसना घ्राणइन्द्रियके विषयोकी आधीनताकी विपत्ति—देखिए—यह ध्यान करें, यह निर्णय रखे कि मेरे को जो परतन्त्रता आज बन रही है यह मेरे पर बहुत बडी विपत्ति है। स्पर्शनका विषय है स्पर्श होना। अगर कोई कोमल, कडी, ठडी, गरम चीज छू लिया तो इस प्रक्रियासे आत्माका उद्धार क्या हुआ ? कौन सा आनन्द मिला ? क्या शान्ति मिली ? पर यह मोही जीव अपनेको मौज मानता, कृतार्थ मानता। रसनाका विषय है खट्टा मीठा, कडवा; कषायला आदिक रसोका स्वाद लेना। जहाँ इसकी कल्पना हुई कि इसका स्वाद उत्तम है, इसमे बडा आनन्द आ रहा; बस उस मौजमे आ जाता है। अभी देखो करेला कडवे होते है मगर एक ऐसी बात बन गई कि यह भी एक साग है, और बडा अच्छा है, सो उसे खाते है, कडवापन आता जाता है और मौज मनाते जाते है। और कही कोई बादाम कडवी निकल आयी तो उसे थू थू करेंगे क्योकि उसमे यह श्रद्धा बनी है कि यह प्रकृत्या कडवी चीज नहीं है। अरे कडवाहट दोनोमे है लेकिन भाव बना लिया सो करेला खूब खाते है, तो यह क्या है? जहां जैसी कल्पना बना ली बस उसकी ओर बढ चले। तो कोई चीज खट्टी अच्छी लग

रही है, कोई चीज मीठी अच्छी लग रही, कोई कडवी अच्छी लग रही, कोई कषायली अच्छी लग रही। देखिये ऊँटको तो नीमकी पत्तिया ही अच्छी लगती है। वह उनसे ही आनन्द मानता है। तो जिसे जो रस जचा बस उस रसमें वह आशक्त हो गया। भला बतलावो रसकी आशक्तिसे इस आत्माको शान्ति क्या मिली ? उद्धार क्या हुआ ? खाया, अच्छा लगा। ज्यादह खाया तो नुकशान कर गया तकलीफ हुई। तत्काल भी व्याकुलता है, बादमे भी व्याकुलता है। आसक्ति हो गई तो उसके फलमे तो तकलीफ ही मिलती है। एक विषय है सुगन्धका। अच्छी गन्ध आयी तो उसे अच्छा मान लिया, दुर्गन्ध आयी तो उसे बुरा मान लिया। जैसे इत्रोमे अच्छी गन्ध होती है, लोग मानते हैं कि इत्रकी गन्धसे स्वास्थ्य अच्छा बनता है, मगर इत्र सूँघने वालोको देखा होगा, वे कोई स्वस्थ तो नही दिखते। बल्कि अधिक गन्धमे रहनेके कारण वे कमजोर हो जाते हैं। आप लोग तो कभी कभी थोडा सा इत्र सूँघ लेते है इससे आपको पता नही पड़ता, पर इत्र के गन्धसे स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ कुछ नही है। लोग जरा जरा सी बातोमे घृणा करने लगते। पर इस सुगन्ध दुर्गन्धसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है ? उससे क्या सिद्धिका मार्ग है, लेकिन यह जीव मोहवश इस गन्धमे आसक्त है।

चक्षु और मनके विषयकी आधीनताकी विपत्ति—चक्षुका विषय है रूप। रूप देखा, सुन्दर रूप जचा, चित्र देखा, सनीमा के लोग स्त्री पुरुषोके शरीर देखे, कुछ सुहावने लगे, अरे उससे मिला क्या ? रूप कोई हाथमे पकडकर उपयोगमे लेने वाली चीज तो नही, सिर्फ आखोसे देख लिया। यह रूप अन्य इन्द्रिय मनके ग्रहणमे आता नही, केवल बाहर-बाहर से इसने आखोसे देखा, और मिला क्या इसमे आत्माको ? मगर परतन्त्रता है, पराधीन बन रहा है, और है क्या ? वैसे देखो तो जो सुहावना रूप लग रहा यह है क्या ? शरीरका रूप है क्या ? हड्डी, मांस, खून आदिक जो अशुचि पदार्थ हैं उनका यह एक घर बना हुआ है, यह है रूप। और फिर सुन्दर रूपके मायने क्या ? देखो इसपर चमड़िया लगती है। जहाँ तीन चमडी लग जाये वह सावला, काला जैसा रहता है और एक चमड़ी कम हो तो वह गोरा और दो चमडी कम हो तो वह इन्गलैण्डका आदमी हो जाता है। क्या है ? बल्कि गैर ठोस की बात है. और जिसे कहते है काला, वह ठोस रूप है। पक्का रग है मगर मनका ऐसा उद्दण्ड भाव है कि जिस चाहे में जैसी कल्पना कर लेता है। तो आंखका विषय क्या है ? रूप। रूपको देखा, पराधीन हो गए। देखिये पराधीनता रूपसे नही होती। पराधीनता परवस्तुसे नही होती। पराधीनता कोई स्त्री पुत्रसे नही होती। पराधीन तो हुआ है वह अपने ख्यालसे, अपने विचारसे।

विचारमे इतना तीव्र मोह है, विकारमें इतना मोह है। परवस्तुमे मोह है, यह तो उपचार कथन है। कोई भी पुरुष परवस्तुमे मोह नंही कर सकता । जव वतला ही रहे है कि परवस्तुसे मेरे आत्माका सम्बन्ध नही है तो मोह कैसे कर सकते ? परवस्तुमे कोई राग नही कर सकता। जो कोई राग करता है, जो मोह करता है वह अपने आपमे उत्पन्न हुए विषय, विचार, विकल्प इन भावोसे मोह करता, इन भावोसे राग करता, परवस्तुसे राग कोई कर ही नही सकता

एक वस्तुके स्वरूपका अन्यमे अप्रवेश—जैसे कहते हैं ना कि जिस पदार्थमे जो चीज है, पदार्थकी परिणतिमे जो वात है वस वही चीज उस पदार्थकी है, उससे वाहरमे पदार्थकी कोई चीज नही है। जैसे हाथ, हाथमे रूप है तो यह हाथकी चीज है, रूप है, हाथकी चीज है, क्रिया है, हाथकी चीज है। हाथसे वाहर हाथकी कोई चीज नही जाती । दर्पणके सामने हाथ किया। दर्पणमे फोटो आया वह हाथकी चीज नही है । हाथकी चीज हाथके प्रदेशोमे रहेगी, हाथसे वाहर नही, दर्पणमे जो प्रतिविम्ब आया, यद्यपि वह आया हाथका निमित्त पाकर, हाथका निमित्त सन्निधान विना वह नही हो सकता, तिसपर भी हाथने उसमे कुछ नही किया । हाथकी समग्र बात हाथके प्रदेशोमे है, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि हाथका निमित्त पाये तो वह दर्पण अपनी स्वच्छता तजकर उतने अशमे वह प्रतिविम्बरूप परिणाम जाता है। हाथकी चीज दर्पणमे नही गई, इसीतरह यहा पर भी परिवार स्त्री पुत्रादिक जिन जिनमे मोह वस रहा उनकी कोई चीज मुझमे नही आयी, मेरी कोई चीज उनमे नही गई। मेरी क्रिया, मेरा ज्ञान वह सब मेरे प्रदेशोमे चल रहा है। मेरे प्रदेशोमे वाहर नही जा सकता । जब मेरे प्रदेशोसे वाहर मेरी कोई क्रिया, प्रयोग, उपयोग आदिक कोई चीज नही जा सकती तो मैं कैसे कहूँ कि मेरा अमुकमे मोह है, अमुकमे नही है। तव तो अपने विचारमे मोह है और उस विकारके विषयभूत हैं स्त्री पुत्रादिक इसलिए उपचारसे कहा जाता है कि मेरा पुत्रादिकमे मोह है। तो कहा रही परतत्रता ? जीव अपने आपके भावसे अपने आपकी स्वतंत्रतासे परतत्र है। परतत्रमे भी स्वतत्रतासे परतत्र हुआ न कि परवस्तुकी जवर-दस्तीसे। ऐसी परतत्रता इस जीवकी अनादिकालसे चली आ रही है, उस परतत्रताको दूर करनेका मूल उपाय है सम्यग्दर्शन। यह निर्णय है। सम्यक्त्वका निर्णय हो गया तो आजादी मिल गई अब आजाद होकर रहेगा। सम्यग्दर्शनका इस सूत्रमे स्वरूप कहा जा रहा है। प्रयोजनभूत वस्तुका वस्तुस्वरूप सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हैं। यह सम्यग्दर्शन आत्माका परिणाम है, आत्मासे अभिन्न है। आत्मामें तादात्म्यरूपसे रहता है।

आत्माके साथ इसकी निकटता है ऐसा यह विपरीत अभिप्राय रहित आत्मपरिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ १ ॥

उपलब्धसम्यक्त्व जीवोकी अपेक्षासे अल्पबहुत्वकी संभवता होनेसे अधिगमोपायप्रदर्शक व सम्यक्त्वलक्षणनिदशक सूत्रकी उपयुक्ततामे संदेहका अनवकाश—आत्मपरिणामकी बात सुनकर शकाकार कहता है कि जब सम्यग्दर्शन आत्मपरिणाम है तो वह तो एक ही रूप रहेगा। आत्मा तो एकस्वरूप है। तो जब पुरुष ब्रह्म एकस्वरूप है और उसका परिणाम ही सम्यग्दर्शन है तो सम्यग्दर्शनके बारेमे कोई अल्पवहुत्वका अनुयोग नही बन सकता। जैसेकि अगले सूत्रोमे बताया है–निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान सत् सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल अन्तर, भाव, अल्पवहुत्व आदि, इनसे पदार्थका ज्ञान होता है। तो मालूम होता है कि ये जो दो सूत्र रचे गए हैं वे पुद्गलका परिचय करानेके लिए रचे गए है, क्योकि पुद्गलमे ही अल्पबहुत्वकी बात बनेगी, इस आत्मपरिणामसे कैसे बनेगा ? जब अल्पबहुत्वकी बात इसमे नही बनती तो यह जाहिर होता है कि इस सम्यग्दर्शनका लक्षण बताने वाले इन सूत्रोका लक्ष्य है पुद्गल और पुद्गलका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है, ऐसी बात जाहिर होती है, ऐसी एक आशका है, उस आशाकी निवृत्तिमे सोचे कि सम्यग्दर्शनमे अल्पबहुत्वकी बात आ सकती है कि नही। सम्यग्दर्शन याने सम्यग्दृष्टि जीव। धर्मात्माओको छोडकर धर्म और कहा रहेगा ? जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह ही सम्यग्दर्शनकी मूर्ति है। अब देखो सम्यग्दर्शनका प्रादुर्भाव कैसे होता है ? जिसके सम्यग्दर्शन नही है उसके कर्मका ऐसा उदय होता है कि सम्यक्त्व नही हो पाता, उसके कर्मका क्षय हो, क्षयोपशम हो तब सम्यक्त्व प्रकट होता है। ७ प्रकृतियोका उदय होनेपर औपशमिक सम्यक्त्व, ७ प्रकृतियोका क्षयोपशम होनेपर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ७ प्रकृतियोका क्षय होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होता है। देखो पहिले तो इस सम्यक्त्वमे भिन्नता हो गई कारणभेद से, क्योकि कारणभेद से भेद जाहिर होता है। अगर कारणभेदसे भेदकी बात नही मानते तो सब जगह एकरूपता हो जानी चाहिए, क्योकि भेदका उपाय तो कारणभेद है, उस भेदके होनेपर भी यहां भेद नही माना तो सब जगह भेद न माने। सब एक हो गए। न कोई अलग आत्मा रहा, न अलग नाम रहा, न अलग बात रही तो इस सम्यक्त्वमे कारणभेदसे भेद पडा, अब अल्पवहुत्व लगा लो। दुनियामे सबसे कम जीव तीनो सम्यक्त्वोमे उपशम सम्यग्दृष्टि मिलते हैं, उसका कारण क्या है ? एक तो उपशम सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्तको होता है और वह अन्तर्मुहूर्त भी ३०—४० मिनटका नहीं किन्तु अधिकसे अधिक दो चार सेकेण्ड। इसके बाद उपशम सम्यक्त्व मिट जाता है। अब इस नातेसे देखें कि दुनियामे उपशमसम्यक्त्व करने वाले भी

थोड़े हैं। उपशमसम्यक्त्वका भी समय थोडा है तो उपशमसम्यक्त्व करने वाले भी थोड़े ही होंगे। उससे अधिक होते संसारमे रहने वाले क्षयिक सम्यग्दृष्टि जीव। उपशम सम्यग्दृष्टिसे असंख्यातगुणे हैं ससारके क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उनसे असख्यातगुणे क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका समय है अधिकसे अधिक ६६ सागर। तो देखिए--इतने समय तक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहे, तो उनकी सख्या ज्यादह बन जायगी। इसलिए क्षायोपशमिक मम्यग्दृष्टि असख्यातगुणे है। वैसे अगर ससारकी विवक्षा न रखें तो सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि उससे अधिक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि और उससे अधिक अनतगुणे क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते है। क्योकि सिद्ध भगवान तो अनन्त है, वे सब क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। यहा ससारमे रहने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी बात कह रहे हैं, उनसे असख्यातगुणे हैं और उनसे असख्यातगुणे हैं क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि। लो देखो अल्पबहुत्व बन गया ना। तो यह समझना कि यह तो अनुयोगद्वार है जिससे पात्रका परिचय कराया है, वह आत्म-श्रद्धानके लिए है, और परको पररूपसे समझनेके लिए भी कहा गया है।

भूतार्थनय व अभूतार्थनयका विषय—मोक्षमार्गका प्रारभिक साधन सम्यग्दर्शन है, उसका लक्षण इस द्वितीय सूत्रमे कहा जा रहा है। प्रमाणभूत वस्तुका, तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पदार्थ जिस रूपसे है उसका उस स्वरूपसे विश्वास हो जाना यह कल्याणके लिए अत्यन्त आवश्यक बात है, इसको सक्षेपमे कहे तो निजको निज, परको पर जान, यह ही एक मूल उपाय है। निजको जान ले कि यह मैं हू, परको जान लें कि ये पर हैं। अब जरा इस विषयको गहराईमे विचारें, वस्तुके जाननेकी मूलमे दृष्टिया दो होती हैं। (१) शुद्धनय (२) अशुद्धनय। इनका दूसरा नाम है भूतार्थनय और अभूतार्थनय। शुद्धनयका अर्थ है सहज शाश्वत अखण्डस्वरूपको निहारना यह शुद्धनयका काम है, और शुद्धनयके विषयभूत अखण्ड वस्तुमे क्रमवर्ती या सहवर्ती विशेषोका भान करना अशुद्धनयका काम है जिसे कहो जोड तोड, यह तो अशुद्धनयका काम हैं। और अखण्ड ज्यो का त्यो, न कुछ जोड, न कुछ तोड, यह शुद्धनयका काम है, जैसे आत्मा ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है, चारित्र वाला है, आनन्दगुणवाला है, इस तरह गुणोकी बात कहना यह आत्माको तोडनेकी तरह है। आत्मा तो एक अखण्ड तत्त्व है। इसमे तोड क्या है ? यद्यपि ये शक्तिया है और इसकी समझसे आत्माकी समझ बनती है। व्यवहारके आश्रय विना निश्चयकी समझ हम कहासे उत्पन्न करें ? है, तो भी वस्तु तो एक अखण्ड है। जैसे अग्नि जो है सो है, अखण्ड है, अब उसको समझानेके लिए हम दो भेद करते हैं। देखो जो जलाये सो अग्नि, जो प्रकाश दे सो अग्नि। यो अनेक वर्णन कर देते है, किन्तु अग्नि जो है सो है। उसमे ये भेद नही पडे हैं।

अग्नि क्या है यह समझनेके लिए भेद किया गया है। और यह भेद सत्य है, व्यवहार असत्य नही, किन्तु वस्तु स्वयं अभेद अखण्ड है। उसके समक्ष भेदकी बात कहना स्वयं सहज न होनेके कारण अभूतार्थ है, स्वय सत्मे न होनेके कारण असत्यार्थ है। अब आत्माको देखिये—भूतार्थनयसे, शुद्धनयसे, आत्मा एक अखण्ड वस्तु है। उसमे तत्त्वोके भेद करना यह अभूतार्थ है, गुणके भेद करना अभूतार्थ है, पर्यायके भेद करना अभूतार्थ है, पर अभूतार्थ उपकारी है।

अभूतार्थका द्विविध प्रयोग—अभूतार्थ दो प्रकार के है—कोई अभूतार्थ होते है औपचारिक और कोई अभूतार्थ होते है सत्य। जो उपचारवाला है उसे उन्ही शब्दोमें समझे तो वह मिथ्या है। उपचारका भी अभिप्राय समझे तो मिथ्या नही, पर उपचारकी जो भाषा है उसीको सत्य समझे तो वह है मिथ्या अभूतार्थ। देखो जैसे जिस घडेमे घी रखा है उस घड़ेको लोग यही तो कहकर पुकारते है कि घीका घडा ले आवो। भला बताओ घी का भी कोई घडा होता है क्या? कदाचित कोई घी का घडा बना भी दे तो वह थोडी देरमे पिघल जायगा, घीका घडा नही होता। घडेमे चूकि घी भरा है, उसे ही लावे, अन्य न लावे इस लिए उस घडेमे घी का उपचार है, अगर कोई उसी को ही सत्य समझले तो वह मिथ्या है।

भूतार्थनय व अभूतार्थनयकी उपयोगिता—आत्मा एक अखण्ड ज्ञानानन्दमय वस्तु है, उसमे कोई भेद करे, पर्यायभेद करे तो वह कहलाता है अभूतार्थ और भेद न करे तो वह कहलाया भूतार्थनय (शुद्धनय), तो इस शुद्धनयका जो आश्रय करते है वे सम्यक्त्व पाते है। पर शुद्धनयका आश्रय करने लायक हमारी पात्रता कब बने, जब हम शुद्धनयका बहुत-बहुत परिचय कर ले। एक वेदान्तकी जागदीशी टीकामे कथन आया है कि एक बार एक पुरुष किसी साधुके पास गया तो कहा—महाराज मुझे कुछ उपदेश दीजिए। तो साधुने कहा—ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, दुबारा गया तो फिर साधुने वही कहा—मै ब्रह्म हूँ, चितस्वरूप हूँ, तो वह पुरुष बोला—महाराज मुझे तो और कुछ समझाइये। तो साधु बोला—भाई अगर तुम्हें बहुत कुछ समझना है तो अमुक गावमे एक विद्वान ब्राह्मण रहता है, उसके पास जावो, वह तुम्हे बहुत कुछ बता देगा। वह पुरुष उस ब्राह्मणके पास पहुंचा बोला—महाराज मैं अपना कल्याण चाहता हूँ, मुझे कुछ विद्या सिखलाइये। तो वह ब्राह्मण बोला—ठीक है देखता हूँ, अगर कोई सेवाकार्य तुम्हे मिल जायगा तो विद्या सिखा दूंगा "देखो तुम हमारी गौशाला की सफाईका काम प्रतिदिन कर लिया करना हम तुम्हे विद्या पढ़ा देगे।" ठीक है। अब वह ब्राह्मण उसे विद्या पढाने लगा और वह पुरुष प्रतिदिन गौशालाकी सफाईका काम करने लगा। इस तरहसे १२ वर्ष व्यतीत हो गये। बहुत-बहुत विद्याध्ययन करनेके पश्चात् उस पुरुषने कहा—महाराज अब मैं अपने घर जा रहा हूँ, कृपा करके आप मुझे दक्षिणा रूपमें

अन्तिम शिक्षा दीजिए। तो ब्राह्मणने कहा-ब्रह्मास्मि, मै ब्रह्म हू, तो वह बोला-अरे इतनी सी बात तो १२ वर्ष पहिले हमे एक साधुने भी बतायी थी, फिर बताइये क्या १२ वर्ष मैंने व्यर्थ ही गोबर उठाया। तो वह ब्राह्मण बोला-ठीक है, बताया था गुरुने, मगर तुम्ही बताओ कि इस ब्रह्मास्मिका मर्म तुमने १२ वर्ष पहिले समझा था या अब १२ वर्षमे समझमे आया? तो वह बोला—हाँ मर्म तो अब समझे। ऐसे ही भैया! एक मूलभूत निश्चनयकी बात समझानेके लिए व्यवहारनय, अशुद्धनय, अभूतार्थनय भेदनय इन सबका आलम्बन लेकर, इनके सहारे समझना होता है, तब समझमे आता है।

अभूतार्थनयकी उपयोगिताका एक दृष्टान्तपूर्वक कथन—और भी एक दृष्टान्त लीजिए, जैसे आत्मा राजा अपने दरबारमे बिराजा है, उसका दर्शनार्थी पुरुष उसके दर्शन करने चलता है तो पहिले एक पहरेदार मिलता है। मानो उस पहरेदारका नाम था मन। मन पहरेदारसे वह पुरुष बोला कि मुझे आत्मा राजाके दर्शन करना है, कृपा करके कराइये तो मन पहरेदारने उस पुरुषको साथ लिया और कहा तक ले गया, जहाँ तक आत्मा राजाके दर्शन कर सकने का स्थान था। पहरेदार राजाके पास तक नही ले जाता, उसे वहा तक नही ले जाता, उसे वहां तक जाने की इजाजत नही होती। अब वह मन पहरेदार वहा से लौट आया। अब मिलने वाला पुरुष आत्मा राजासे मिले।—तो क्या मतलब हुआ इसका? मन कहो व्यवहारनय कहो, यह व्यवहारनय इस पुरुषको वहा तक ले गया जहा तक कि उस अखण्ड तत्त्वके बारेमे भेदनयसे बात करनेका प्रसग था। जहा जान लिया कि यह है अखण्ड तत्त्व, समझ लिया व्यवहारनयसे, अब उस अखण्ड तत्त्वको अनुभवमे उतारनेके लिए ज्ञानमे उसे विषयभूत बनानेके लिए जो एक अनुभवके समय वाली स्थिति है उस स्थितिमे मन काम नही करता, व्यवहारनय ज्ञान करता, व्यवहारनयके बाद निश्चयनयका स्वाद लिया और निश्चयनयके बाद उसका भी सहारा छोडा और एक समस्त ज्ञान द्वारा उस ज्ञानके द्वारा उस आत्माका अनुभव किया। ऐसा अनुभव जिसने पाया वह जो कुछ इस आत्मतत्त्व के बारेमे समझता उसका साधन है व्यवहार, वह है तो सही बात, तभी वहाँ होता है इसे सम्यक्त्व। उस सम्यक्त्वका लक्षण इस सूत्रमे कहा जा रहा है कि तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन, अर्थात् तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्वका अर्थ है वस्तु स्वरूप सहित अर्थका याने पदार्थका, आत्मवस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

"अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" ऐसा सूत्रलाघव करनेमे आपत्तिका दर्शन—इस प्रसगमे एक शककार अपनी बात रख रहा है कि यह सूत्र अगर इतना ही बनता कि अर्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनं, तो क्या हानि थी सूत्रलाघव ही होता। तत्त्व शब्द न बढ़ाते तो कुछ हानि तो

थी। बल्कि सूत्र और भी लघु हो जाता। सूत्र अगर छोटा हो तो उसमे तो व्याकरणके विद्वान बडे प्रसन्न होते है, सो अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, इतना ही सूत्र कहना चाहिए था। तत्त्वशब्द बोलना अनर्थक है, क्योकि अर्थ पदार्थ है। पदार्थका श्रद्धान किया, वह सम्यग्दर्शन हो गया। अब इसके उत्तरमे विचार करे कि यह तत्त्वशब्द न लगाया जाय, केवल अर्थश्रद्धान ही कहा जाय तो क्या दोष आता है ? देखिये-अर्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तो अर्थमे सभी अर्थ आ जायेंगे। समस्त अर्थके मायने क्या है कि जहा तत्त्वग्रहण नही है, वस्तुस्वरूपकी बात नही है ऐसा मिथ्यावादियोके द्वारा बताया गया, व्यवस्थित किया गया जो पदार्थ है जो स्वरूप है उसका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाता, इस लिए अर्थ करना कि वास्तविक स्वरूपसहित पदार्थके श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहते है। यहा कोई सोच सकता है कि अर्थ तो वह कहलाता है जो वचन और विकल्पका विषयभूत हो। तो वचन और विकल्पका विषयभूत जो कुछ है वह सही अर्थ है तो क्या बात है ! सभी अर्थोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कह लीजिए। अर्थ वही है जो वचनका विषयभूत हो और विकल्पका विषयभूत हो। तब अर्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन इतना ही कहा जाय तो इसमे क्या हानि है ? उत्तर—यहां यह दोष आता है कि जो यह कहा है कि जो वचन और विकल्पका विषयभूत हो, सो वचन विकल्पका विषयभूत तो अनर्थ है, लोग अनर्थ शब्द बोलते है उसके बारेमे कुछ सोचते भी है तो विकल्पका विषयभूत हो गया। जैसे कोई बच्चा ऊधम करता है तो उसको डराने के लिए या चुप करनेके लिए मा या बहिन कहती है कि बेखो हौवा आ जायगा, चुप रहो। अच्छा यह तो बतलावो—वह हौवा किसीने देखा है क्या ? उसकी कोई सकल है क्या ? वह हौवा कोई चीज भी है क्या ? अरे वह कुछ भी तो वस्तु नही है, लेकिन वचनका विषयभूत है, विकल्पभूत भी है। तो अनर्थ भी वचनके विकल्पके विषयभूत होते। सोअगर इतना सा सूत्र कहा जाय 'अर्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन' तो उसमे अर्थका अनर्थका सबका श्रद्धान करनेकी बात आती है, और मिथ्या जो तत्त्व हैं उनके श्रद्धानको भी सम्यग्दर्शन कहना पडेगा। इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धान यह शब्द बिल्कुल ठीक कहा गया है। और भी समझ लीजिए, केवल अर्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते है, इतना ही कहा जाता तो अर्थमे तो बडा सदेह हो जाता। अर्थके अनेक अर्थ है। अर्थके मायने धन भी है। कहते हैं ना आर्थिक स्थिति मायने धनसम्बधी स्थिति। अर्थके मायने प्रयोजन भी है। अर्थ सिद्धान्त की भाषामे द्रव्य, गुण, कर्मको भी माना है। वैशेषिक लोग मानते है कि द्रव्य, गुण, कर्म ये तो अर्थ है और सामान्य, विशेष समवाय ये अर्थ नही किन्तु ये कुछ चीज हैं, सत्त्वका अर्थ भी अर्थ होता है। तो अर्थ शब्दसे क्या मतलब लेना चाहिए. यह सन्देह होगा, होगा ना सन्देह ?

फिर कैसे अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। कोई सोचता होगा कि धनका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तो शायद लोग राजी हो जायेंगे, जल्दी समझते चले जायेंगे (हसी) तो किस अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ? तो बताना होगा कि तत्त्वभूत अर्थका श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है।

मोक्षमार्गमे यथार्थ उदारतासे ही सिद्धि—अर्थ अनर्थ सबके श्रद्धानके बारेमे कोई बात रख सकता है कि क्या हर्ज है ? आज कल तो उदारताका जमाना है। अरे सभीके अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाय तो यह तो बडा मेल खा जायगा। जो अन्य मत वाले है वे भी और आप भी सब एक जगह आ जायेंगे। कह दो सबके ही अर्थका श्रदान करना सम्यग्दर्शन है। इसमे तो सबका गुजारा होता है। आपको ईर्ष्या क्यो हो रही है कि जो एकान्तवादी है उनके अर्थको सम्यग्दर्शन नही कहो। अरे उनका अर्थ भी सम्तक्त्व बोल लो। अरे सारे लोग उन्नतिमे लग जायें तो आपको क्या हर्ज है। नित्य एकान्तवादी जो कहे उसका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वेदान्ती जो कुछ कहें उनका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, स्याद्वादी जो कुछ कहें उनका भी श्रदान करना सम्यग्दर्शन है। तो सबके अर्थको अच्छा कह दो। सब भला। सबके अर्थग्रा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और देखिये लोकमे उसकी बडी महिमा गायी जा रही है जो सब सब देवताओको माने सब मत (मजहब) माने, सबका विनय करे सबकी पूजा करे उसे लोग आजकल बडा उदार मानते है तो तुम तो उदार बनो सबके माने हुऐ तत्त्वके श्रदानको सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा कह दो, क्यो नही उदार बनते ? तो देखो भाई यह बहुत बडी बात एक शकाकारने रखी समझो किन्तु हितके लिए जरा सोचो तो क्या चाहिए आपको ? मोक्ष, मोक्ष कैसे मिलेगा ? मोक्ष नही है तो क्या है ? बन्धन। बन्धनके मायने क्या है कि जो पर पदार्थ हैं जो मेरे साथ नही रह सकते जो मायारूप हैं उनसे मोह बनाये लगाव बनायें, यह ही तो बन्धन है। यही बन्धन मिटे तो मोक्ष हो। तो ऐसा मोह कैसे मिटे कि सत्य बात समझले तो या असत्य बातका झूठका लगाव करे समर्थन करे तो ? मुक्तिके मार्गकी बात कभी भी वस्तुस्वरूपके विपरीत भाव से नही हो सकती। जो एकान्त वाद है वह असत्य अर्थ को विषय करता है तो असत्य अर्थ का विषय करनेपर इसको मुक्तिका मार्ग नही मिल सकता। भले ही मोहकी दुनियामे मोहभरा जीवन बितानेके लिए यह लोकसघ सत्य असत्य सबका मेल कर रहा। मोह असत्य है, मायारूप है फिर भी घुल मिलकर रहते हैं ये तो संसारमे रुलनेका मार्ग अलग है और मोक्षमे पहुचनेका मार्ग अलग है यहा यह सत्य अर्थका ही विषय बने तब इस जीव को सम्यक्त्व हो, मोक्षमार्ग मिले। हमारी ईर्ष्या नही है ? एकान्तवादियोसे। यह मुक्तिका

सवाल है, यहमोक्षमार्गका प्रयत्न है। इस संसारके रुलने वाले जीवको मोक्षका मार्ग कैसे प्राप्त हो यह उपाय कहा जा रहा है। तो यह सही है कि असत् अर्थका श्रद्धान करना तो संसारका कारण है और तत्त्वरूप भूतार्थ वस्तुका श्रद्धान करना मोक्षका कारण है सब जीवोका उपकार हो, इसलिए यह बात कही जा रही है कि तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग दर्शन है। अगर दूसरोंको खुश करनेके लिए सबकी बातमे हा मे हां मिलाया जाय तो इससे काम न बनेगा। मोक्षका काम तो मोक्षके ढगसे बनेगा। इसमे भी ससारके सब जीवों के उपकारकी भावना है कि सब जीव तत्वकी बात समझ ले और संसारके दुखोंसे छूट जायें। तो समस्त जीवोके अनुग्रहके लिए यह कहा जा रहा है कि तत्त्वार्थ श्रद्धासम्यग्दर्शनं अर्थात् तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

विपरीत अर्थके श्रद्धानका निवारण करनेके लिये तत्त्व शब्दके निबंधनकी आवश्यकता— मूल शकाकी यह बात चल रही थी कि अर्थ श्रद्धानसम्यग्दर्शन इतनी बात कहना चाहिए, तत्त्व श्रद्धान क्यो लगाते ? तो समाधान काफी मिल चुका होगा लेकिन जिस किसीको अभी सन्तोष नही हो सकता तो उसके मनमे एक बात यह आ सकती कि केवल अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहनेमे वह ही अर्थ बनता कि जो तत्त्वार्थ कहनेसे बनता पहिले अर्थका अर्थ समझ, अर्यते इति अर्थ. अर्थात जो निश्चित किया जाय वह अर्थ है। निश्चित कौन होता है जो सत् है। असतका निश्चत नही किया जाता। मिथ्यावादियों द्वारा कहा जो पदार्थ है वह अर्थ नही हो सकता क्योकि वह असत है। तब अर्थग्रहणं सम्यग्दर्शनं इतनी बात कहनेसे हो प्रकृत बात हो जाती है फिर क्यो तत्वका ग्रहण किया ? तो यह एक आखिरी समस्या सी रखी कि अर्थग्रहण कहनेसे ही यह बात आ जायगी कि अर्थका अर्थ है सद्भूत। जो निश्चित किया जाय, असत् का निश्चय नही होता फिर तत्त्व शब्द डालकर सूत्रको लम्बा क्यो किया। अब समाधानमे चलो। देखो बात तो ठीक कह रहे कि अर्थ जो है वह सत् होता है और सत् का ग्रहण करना सम्यग्दर्शन है, लेकिन कोई असत् को ही सत् मानकर चले और कह दे कि सत् तो वही है। तो क्या उसका श्रद्धान करना भी सम्यक्त्व हो जायगा। बात तो ठीक है—दूध पीने से शरीर पुष्ट होता है, मगर कोई आक के दूध को भी दूध कह कर उसे पाव भर पी ले तो क्या वह पुष्ट होगा। अरे वह तो मर जायगा। तो सतकाग्रहण करना सम्यग्ज्ञान है, ठीक है, किन्तु कोई असत को ही सत् मानकर उसके श्रद्धानमें चले तो उसके सम्यक्त्व न होगा। तो विपरीत ग्रहण न हो जाय इसके लिए तत्त्व शब्द लगाया गया है कि प्रयोजनिक तत्त्वार्थका ग्रहण हो, श्रद्धान हो तो सम्यक्त्व होता है। जैसे गन्ना मीठा होता है, लेकिन जिसको पित्तका रोग हो वह गन्ना चूसता है तो उसे वह रस

कडवा लगता है मीठा होनेपर भी पित्तरोगवालेको वह कडवा लगता है। उसकी इन्द्रियां पित्तसे आकुलित हो गई है तो वह मीठे रसको भी कडवा मानता है, इसी तरह आत्मामे मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेसे उस व्यामोही जन उस दोषके कारण वस्तुको एकान्तरूपसे सही मानते हैं तो उस दोषका कैसे निवारण हो उसका भी अर्थ समझें। तो ऐसे विपरीत अर्थका निराकरण करनेके लिए तत्त्व शब्द दिया है कि जो भाव सूत्रमें कहा गया है वह कितना नपा तुला है कि जिसका कोई शब्द कम कर दिया जाय तो उसका शब्द अर्थ सही न निकलेगा। जिसमे कुछ जोडा जाय तो यह व्यर्थकी चीज रहेगी। ऐसी सूत्रों की रचना होती है। सूत्र वह कहलाता कि जिसमे थोडे अक्षर हो, मगर स्पष्ट अर्थका प्रतिपादन कर सके।

यथार्थ पदाथकी अपेक्षा न करके कल्पनाभिमत तत्त्वोंके श्रद्धानके निवारणार्थ सूत्रमें अर्थ शब्दका निबन्ध—अब यहा कोई यह भी शका कर सकता कि चलो तत्वशब्द जोडते हैं ठीक है, मगर तत्त्व इतना ही बोले, तत्त्वश्रद्धान सम्यदर्शन। अर्थ कहनेकी क्या जरूरत? जो तत्त्व है उसका ग्रहण हो जाय श्रद्धान हो जाय उसी को ही सम्यग्दर्शन कहते है तो उसका तत्त्व तो सभी लोग अपना अपना कहते। जो एकान्तवादी हैं वे भी कहते कि यह तत्त्व है उत्तर यह है कि अथवा यह अर्थ किया जाय कि तत्त्व है इस तरह का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तो एकान्तवादी भी अपनी मानी हुई चीजमे तत्त्व है इस प्रकारसे श्रद्धान कर ले वह भी सम्यक्त्व हो जायगा। आत्मा नही है यह ही तत्त्व है ऐसा भी कहने वाले लोग है चार्वाक तो आत्मा नही है ऐसा श्रद्धान करन तो यह तत्त्व है इस तरहका श्रद्धान भी सम्यक्त्व हो जायगा। है कोई ऐसे दार्शनिक और उनकी युक्तिया ऐसी है कि जिसका खण्डन करनेको भी कुछ बुद्धि चाहिए। एक क्षणिकवादी लोग हैं जो आत्माको तो मानते है, पर इस तरह मानते है कि आत्मा क्षणक्षणमे नया नया उत्पन्न होता रहता है एक शाश्वत आत्मा नही है जो अनादिसे अनन्तकाल तक रहता है लाखों करोडों आत्मा इस शरीरमें एक ही घन्टेमे निरन्तर नये नये पैदा होते जाते है। कोई कहे कि यह मैं आत्मा हूँ तो वह संसारमें रूलेगा। क्षणिकवादियोकी युक्ति देखो जो आत्मा पैदा हुआ वह तो तुरन्त मिट गया तो जो श्रद्धा करे कि भाई मैं आत्मा हू इतने समयमें दूसरा आत्मा पैदा हो जायगा तो उसे दूसरा आत्मा मानते कि यह मैं हूँ तो बताओ वह मिथ्या हुआ कि नही? क्षणिकवादियोका दर्शन कह रहे हैं। तो जो यह मानले कि आत्मा नही है क्योकि जो आत्मा हुआ दूसरा तो पहिला मिट गया फिर दूसरा हुआ तब वह भी नही तो यह श्रद्धा जो कर ले कि आत्मा यही है उसका मोक्ष न होगा। यह ताथागत दर्शन है। तो यह भी तो एक दर्शन है। तो योभी श्रद्धान कर—

ना सम्यक्त्व हो जायगा। चार्वाक तो खुलकर कहते है कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु यदि ये मिल गए तो ऐसा एक करेन्ट आया कि यह जानना बोलना आदिक चलने लगा। जापानी लोग भी तो ऐसे खिलौने बनाते है गुड्डा गुडिया आदिक कि उनमे कोई मसाला भर दिया, बटन दबा दिया और खिलौने हाथ, पैर, मुख आदिसे अनेक प्रकारकी क्रियायें करने लगते है। ऐसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इनके मेलसे एक करेन्ट आ जाता है, जिससे अनेक क्रियाये होने लगती है। वह आत्मा है कहा ? वे बिखरे तो आत्मा भी बिखर गया। अब बताओ इसके निराकरणके लिए भी बुद्धि चाहिए। लोगोको जहा आराम मिले और विषय भोगनेमे उनको एक सामर्थ्य मिले उस धर्मकी श्रद्धा करनेमे, उस धर्मके मानने वालोको देर नही लगती। वे तो चाहते है कि हमे कुछ सयम आदिकके कष्ट न करने पडे और ऐसा धर्म मिल जाये कि बात बातमे गप्प गप्पमे मोक्ष हो जाय, तो ऐसे धर्मका प्रचार तो बहुत जल्दी हो सकता है। तो चर्वाकमतके अनुयायी प्राय सारी दुनिया है। तो हाँ ऐसे भी लोग तत्त्व मानते है, तो ऐसे एकान्तका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाता यदि यहाँ अर्थ शब्द न होता, तत्त्व तो सभीमे निकलता है। हा, अगर तत्त्व हो और वहा पदार्थ जैसा है तैसा मानते है तो वहा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और भी देखो—तत्त्व सामान्य, विशेष, समवाय इनको भी लोग तत्त्व कहते है। द्रव्यादिक भी जुदे है, वे भी और पदार्थ है। जो चीज ही नही है उसे भी पदार्थ माने क्या ? तो क्या ऐसे असत्का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन होगा ? नही हो सकता। इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धान बिल्कुल ठीक कहा है।

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' इन शब्दोंमे सम्यक्त्वलक्षणकी युक्तता—अच्छा एक बात और, इसमे शंका, भी हो सकती कि यदि उसका एक विग्रह कर दिया जाय कि तत्त्वेन श्रद्धान याने तत्त्वके मार्गसे तत्त्वका श्रद्धान करनेका नाम तत्त्वश्रद्धान है, तब तो अनर्थकी बात न आयगी। तो उसमे यह बात सोचनेकी है कि ऐसा कहनेपर भी यही तो पूछा जायगा कि किसका श्रद्धान करना ? तत्त्वसे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। किसका श्रद्धान करना, किसमे श्रद्धान करना, यह बात समझना बाकी रह जाता है उसका नाम है अर्थ। तो तत्त्वसे अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। बात आखिर यह ही आयी, इसलिए यह लक्षण बिल्कुल ठीक कहा गया है। तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वह तत्त्वार्थ क्या है ? आत्माका वह सहजस्वरूप, अपनेको बारम्बार इस तरहसे विचारे कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ज्ञान ही हू, ज्ञानसिवाय और कुछ नही हूँ। ज्ञानमे ज्ञानस्वरूपको ही लीजिए, अन्य सबका ख्याल भुला दीजिए। जब ज्ञानमे यह सहज ज्ञानस्वरूप ज्ञेय बन गया उस समय ज्ञान और ज्ञेय एक हो गये, ज्ञानसे भिन्न ज्ञेय न रहा। तो वहाँ एक निर्विकल्प स्थिति उत्पन्न होती

अनुभूति होती। उस अनुभूतिपूर्वक जो श्रद्धान है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

श्रद्धानका इच्छासे विलक्षण अर्थ—संसारके दुःखी जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटाने का आशय रखने वाले आचार्य इस मोक्षशास्त्रके द्वितीय सूत्रमें कह रहे हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। प्रयोजनभूत अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, इस विषयमें बहुत कुछ विश्लेषण हो चुका है। अब यहां एक बात रखी जा रही है कि श्रद्धानका अर्थ इच्छा ठीक बैठ रहा है, क्योंकि किसी वस्तुके त्याग करनेकी इच्छा, हेयको छोड़नेकी इच्छा हो, उपादेयको ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो यह इच्छा तो बहुत अच्छी चीज है और यह ही कहलाता है धर्मपालन। तो इच्छाका ही नाम श्रद्धान है और इच्छारूप श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। शंकाकारने बात एक मोटे शब्दोंमें रखी है, जैसे कि लोगोंका भाव बना रहता है कि हेयका त्याग करे, उपादेयका ग्रहण करे, व्रत नियम आदिक करे, इस प्रकारकी जो इच्छा हुई, बस यह ही तो श्रद्धान है। शंकाकारने अपनी बुद्धि अनुसार कहा तो है यह, लेकिन यह युक्त नहीं बैठता, क्योंकि यदि इच्छाका ही नाम श्रद्धान रखा जाय तो जिनके मोह नहीं है उनके इच्छा भी नहीं है। तो जो मोहरहित हैं ऐसे पुरुषोंमें फिर श्रद्धान न बन सकेगा, क्योंकि उनके इच्छा तो है ही। इच्छा तो मोहका ही कोई परिणाम होता है। तो इच्छा श्रद्धान है ऐसा कहनेपर मोही जीवके श्रद्धान नहीं रह सकता। और जब श्रद्धान नहीं रह सकता तो फिर ज्ञान और चारित्र कहां ठहरेंगे ? फिर तो मोक्षमार्ग ही नहीं मिल सकता। जो मोहरहित जीव हैं उनके इच्छा नहीं, क्योंकि इच्छा तो मोहका कार्य है, अगर मोहरहित जीवके भी इच्छाका प्रसंग हो गया, और जब इच्छा स्वभाव ही बन गया तो फिर मुक्ति नाम ही किसका ? मुक्ति तो उसे कहते हैं जहां विकार नहीं रहा। जब इच्छा मान ली गई तब तो मुक्ति कुछ न रही, न आत्मीय सुखका कोई उपाय रहा। हां शंकाकारकी बात लोगोंको कुछ भली जचती है। त्याग करने वाली चीजकी इच्छा करना इसका नाम श्रद्धान है, और ऐसी इच्छा मोहरहित साधुवोंकी, त्यागियोंकी इच्छा यह सब मोहका कार्य नहीं है, वह तो उनका कार्य है। ऐसा यदि अभिप्राय रखेंगे तो यह भी युक्त न बैठेगा, क्योंकि इच्छाको यदि मनका कार्य समझा जायगा तो जैसा साधुवोंके मन है और उनको हेय, त्याज्य, अनुचित पदार्थोंके छोड़नेकी इच्छा जगती है, तो जिन जिनके मन है उन सबको भी ऐसी इच्छा जग जानी चाहिए, क्योंकि मन इनके भी है और मन असाधुवोंके भी है, लेकिन देखा तो नहीं जाता। कोई विरला ही उदासीन पुरुष हेयको छोड़ने और उपादेयको ग्रहण करनेकी इच्छा रखता, बाकी तो मन वाले जीव ऐसे पड़े हैं कि जिन्हें हेयके त्यागकी इच्छा नहीं जागती। तो कैसे जाना जाय कि यह मनका कार्य है। यदि मात्र मनका कार्य हो तो ऐसी इच्छा

सबके जगनी चाहिए थी। तो मालूम होता है कि मात्र मनका कार्य नही, किन्तु उसके साथ जो मोहभाव लगा है उसका कार्य है। इच्छा मोहका कार्य है वह मुक्त जीवोमे या निर्मोह साधुवोमे कैसे सम्भव हो सकता है, फिर उनका श्रद्धान ही न माना जायगा और श्रद्धान नही, तो ज्ञान और चारित्र कुछ न रहा, यो मुक्तिमार्गका अभाव हो जायगा।

सम्यग्ज्ञानसापेक्ष मन कार्यरूप इच्छामे भी श्रद्धानार्थत्वका अभाव—यदि कोई ऐसे मनकी आशका रखे कि सभी जीवोके मनका कार्य नही है यह इच्छा, किन्तु सम्यग्ज्ञानके साथ-साथ मनका कार्य चले तो ऐसी इच्छा होती है कि हेयको त्याग दिया जाय तो ऐसी इच्छा जो फैली है, इसीका नाम श्रद्धान होता है, तब तो सभी मन वालोके इच्छा जगे ही जगे, यह तो अनिष्ट आपत्ति नही आती। ऐसी आशका रखने वाले यह सोच विचार करे कि देखो किन्ही-किन्ही मिथ्यादृष्टि जीवोके मिथ्याज्ञान हो रहे हो तब भी उदासीन अवस्था हो जानेपर हेयको छोडनेका और उपादेयको ग्रहण करनेकी कोई इच्छा हो जाती है, अत यह भी नही कह सकते कि वास्तविक सम्यग्ज्ञानके साथ ही ऐसी इच्छा होती है, और फिर यह भी तो देखिये कि कई सम्यग्दृष्टि जीव जो गृहस्थ है, घरमे रहते है ऐसे श्रावकके है तो सम्यग्ज्ञान, लेकिन जब रागद्वेषकी तीव्रता होती है तो कैसे वे कुटुम्ब, धन आदिकको छोड सकते है? और कुटुम्ब धनके आरम्भसे जो हिसा होती है उनको त्यागनेकी इच्छा ही नही है, और रागद्वेष विशेष होनेपर दीक्षा ग्रहण करनेकी भी इच्छा न हो तो यह नहीं कह सकते कि सम्यग्ज्ञानके साथ इच्छा होनेका कार्य है यह। कही ज्ञानके विना भी इच्छा देखी जाती, कही ज्ञानके होनेपर भी इच्छा नही पायी जाती। इससे यह भी नही कह सकते कि सम्यग्ज्ञानसापेक्ष मनका कार्य है इच्छा, जिसे श्रद्धान कहा जा रहा। श्रद्धान इच्छाको नही कहते। सम्यग्दर्शनका वास्तविक स्वरूप तो अवक्तव्य है। यो कहो कि जिस शुद्ध भावके होने पर ज्ञान समीचीन हो जाता है, चारित्र समीचीन हो जाता है उस शुद्ध भावको सम्यग्दर्शन कहते है। उस सम्यक्त्वका जिसके सद्भाव हुआ है ऐसे पुरुषका अन्दरमे मन संसारसे उदासीन है और विरक्त हो जाता है। तो इच्छाका नाम श्रद्धान है। यह बात युक्त नही जचती, किन्तु तत्वार्थकी प्रतीति सहित जो ज्ञानकी दृढता है वह सम्यग्दर्शनका कार्य है।

सम्यग्दर्शन अद्वैतात्म परिणाम—अब इस समय एक उलझन यह रखी जा सकती है कि मोक्ष जीव और कर्म दोनो का कार्य मालूम होता है। जब मोक्ष हुआ तो मोक्षका अर्थ यह है कि जीव और कर्म दोनो अलग हो गए, तो मोक्ष नामका जो कुछ तत्त्व है वह दो मे रहा। एक मे कहा मोक्ष होता। मोक्ष शब्द वहा घटित होता है जहा संयोग

पहिले दो का हो और फिर उसका वियोग हो जाय। तो जैसे मोक्षरूप परिणमन जीव और कर्म दोनोंमे घटित होता है इसीप्रकार मोक्षका कारणभूत जो श्रद्धान है उसे बहुत से लोग कह भी बैठते है कि इनका भाग्य अच्छा नही है, सम्यक्त्व नही हो पा रहा, इस कारण जीव और कर्म दोनोकी पर्याय मानना चाहिए सम्यग्दर्शनको। समाधान—यह बात यो युक्त नही बैठती कि यदि सम्यग्दर्शनको जीव और कर्म दोनोकी प्रकृति मान लिया जाता है तो मोक्षमे सम्यग्यदर्शनका अभाव हो जायगा। मोक्ष होनेपर भी खाली एक जीव ही जीव है, कर्मका तो वियोग हो गया। जब कर्मका सद्भाव नही तो कर्म और जीव दोनोमे रहने वाले शकाकारके अभिप्राय वाला सम्यग्दर्शन एक जीवमे कैसे हो सकता है? तो मोक्ष अवस्थामे भी उसका अभाव हो जायगा, क्योकि जब कर्म नही हैं तो कर्मका परिणाम कहाँ से हो? तो भले ही मोक्ष जीव और कर्म दोनोके विकारका निमित्त होने से दोनोका अपना अपना मोक्ष कह लीजिए। वस्तुतः तो जब एक जीवपर दृष्टि डालो तो मोक्षका अर्थ यह हुआ कि यह जीव अकेला रह जाय। जो अकेलेपन है वह ही मोक्षस्वरूप है। अकेलापन का अर्थ है कि शरीर न हो, कर्म न हो, विषय कषाय न हों, किसी प्रकारका विकार न हो, ऐसी जो एक जीवकी स्वभावदशा है उसका नाम मोक्ष है। यह स्वभाव दशा कही बनानेसे नही बनती। यह तो जो है सो ही प्रकट हो गया, यों कहो। तो मोक्ष बनता नही है, किन्तु जो है सहज सत्त्व इस पदार्थका अपने आपका निज स्वरूप वही प्रकट हो गया। इसीके मायने है मोक्ष।

दृष्टान्तपूर्वक आत्मविकासमे मोक्षरूपताकी सिद्धि—देखिये जैन शासनकी परम्परामे कि पाषाणमूर्ति बनाते है, जिसमे प्रभुकी, तीर्थंकर की स्थापना करते हे, उसका निर्माण भी इसी बातको पुष्ट करता है कि भगवान बनानेसे नही बनते, किन्तु जो है सो ही व्यक्त हो गया इसीके मायने है भगवान। मूर्तिभी तो इसीतरह बनती। मूर्ति बनायी नही गई, किन्तु जो पाषाणमे मूर्ति व्यक्त हुई, लोगोको दिखी उतने अशमे, स्कधमे पाषाण पहिले उसमे था वही प्रकट हो गया, इसके मायने प्रतिमा है। कारीगरने उस प्रतिमामे कुछ लगाया नही, किन्तु प्रतिमापर आवरण करने वाले जो पाषाण खण्ड थे उनका हटाना ही हटाना है। पहिले बडे छेनी हथौडेसे बडे आवरण हटाया, बादमे छोटे छेनी हथौडेसे छोटे-छोटे पाषाणखण्ड हटाया और उसके बाद अत्यन्त छोटे छेनी हथौड़ेसे अत्यन्त छोटे पाषाण खण्ड हटाया। लो मूर्ति जो थी सो प्रकट हो गई। तो वहा उस कारीगरने किया क्या? केवल उस मूर्तिका आवरण करने वाले पाषाणखण्डो को हटाने हटानेका ही काम किया। तो यही बात सिद्ध भगवानके विषयमे समझना। जो स्वभाव है अनादि अनन्त वस्तुका

प्राण, अपने आप जो वस्तुमे है वही प्रकट हो गया उसको कहते है सिद्ध भगवान । तो मोक्ष भी क्या है ? भले ही शब्द दृष्टि से यह कहा जायगा कि कर्म और जीवका सम्पर्क हटना सो मोक्ष है, पर मोक्ष होनेपर जीवकी स्थिति क्या होती है इस बात पर विचार करो तो वहां भी एक स्वरूप की ही बात समझ मे आयगी ।

सम्यग्दर्शनकी केवलात्मपरिणामरूपता—अद्वैतात्यविकासरूप मोक्षका कारण जो श्रद्धान है वह तो जीव और कर्म दो की पर्याय है ही नही, बल्कि आत्माके शुद्ध परि–णामके निमित्त से कर्मकी सामर्थ्यका घात होता है । तो कर्मका कही अकर्मत्व पर्याय होगा । सम्यग्दर्शन तो स्वय कर्मका विनाश करनेका निमित्त है । वह क्या कर्मको साथ लेकर अपनी परिणति बनायगा ? कर्मका पर्याय या कर्म व जीव दो का मिलकर सम्यग्द–र्शन पर्याय नही है । सम्यग्दर्शन तो जीवका ही एक अभिन्नपरिणाम है । क्योकि सम्यग्दर्शन तो मोक्षका प्रधान कारण है । सम्यग्दर्शन तो आत्मासे कभी दूर होगा ही नही । जैसे सम्यग्ज्ञान प्रकट हो गया तो क्या ज्ञानावरण कर्मका कार्य है ? ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है । कर्मका अभाव होनेपर आत्मामे ज्ञान प्रकट हुआ है । जो था वही परिपूर्ण सामर्थ्यके साथ प्रकट हुआ है । यों ही सम्यग्दर्शन जो सम्यक्त्वपूर्ण है वही आवरण हटनेपर स्वयं परिपूर्ण सामर्थ्यमे प्रकट हुआ है । मोक्षका प्रधान कारण सम्यग्दर्शन है, क्योकि वह असा–धारण आत्माका धर्म है । सम्यग्दर्शन आत्माको छोडकर अन्य कही नही पाया जाता । तो यह सम्यग्दर्शन असाधारण धर्म है । निजधर्म है क्योकि मुक्त होनेवाले पुरुषके अन्य कुछ हो ही नही सकता मोक्षका कारण । आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण ही मुक्तिका कारण हो सकता है । तो श्रद्धान जीवरूप है, आत्मासे अभिन्न परिणाम है, ऐसे सम्यक्त्व परि–णाममे भेदनयसे देखनेपर निर्देश स्वामित्व आदिक सब घटित हो जाते है, पर यह सब समझानेके लिए है । वस्तुतः तो आत्मा एक अखण्ड है और उसका जो कुछ शुद्ध परिणाम है । वह भी आत्मा से अभिन्न परिणाम है ।

सरागसम्यक्त्व व वीतराग सम्यक्त्वमे भेद व्यपदिष्ट होनेपर भी सम्यक्त्व लक्षण-की समानता अबसम्यग्दर्शनके लक्षणको निर्दोष बताने के बाद जरा सम्यक्त्वकी विशेपताओपर भी ध्यान दीजिए । सम्यक्त्व तो वस्तुत एक ही है, पर अपेक्षा-भेदसे सम्यक्त्वके दो भेद कहे जा सकते है । (१) सरागसम्यक्त्व और (२) वीतरागसम्यक्त्व । सराग सम्यक्त्व तो वह है जहा प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदिकी अभिव्यक्ति है । सराग सम्यक्त्व तो वह है जहां वीतराग सम्यक्त्वकी भाति कोई बाहरी चिन्ह नही है, जितने मे सम्यक्त्वकी परख की जाय । सराग सम्यक्त्व मे मन, वचन, कायकी ऐसी चेष्टा होती है कि जिस

लक्षणसे सम्यक्त्वका अन्दाज कर लिया जाता है। सरागसम्यक्त्व और वीतरागसम्यक्त्वके लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं कि जो रागी जीवके सम्यक्त्व है वह सराग सम्यक्त्व है और जो वीतरागके सम्यक्त्व है वह वीतराग सम्यक्त्व है। दोनो प्रकारके लक्षणोमे विरोध कुछ नही आता, पर एक समझनेके लिए प्रधान लक्ष्य देनेका फर्क है। सम्यग्दर्शन तो विशुद्ध निर्मल सबके हुआ करता है, जिसका जितने अशमे प्रकट हो। औपशमिक और क्षायिक तो एक समान प्रकट होते है, क्षायोपशमिकमे कुछ भेद है। कारणमे भी अतर उनका यह है कि औपशमिक और क्षायिक तीन करण परिणामके बाद होते है और क्षायोपशमिक दो करणपरिणामके बाद होता है। अगर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जग गया तो उसमे कुछ दोष सूक्ष्म हो सकते है। सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे चल, मलिन, अगाढ आदिक हो जाते है। फिर भी सम्यक्त्व जितने अशमे प्रकट है वह तो सम्यक्त्व एक सा ही है। सम्यक्त्वमे सबसे भिन्न अन्यपदार्थोसे निराला, विकारोसे भी परे आत्माके सहजस्वभावका विश्वास होता है। सरागसम्यक्त्व और वीतरागसम्यक्त्वके ये लक्षण कहे जा रहे है। लक्षण समीचीन वह होता है जो लक्षण अपने लक्ष्यमे पूर्णतया व्यापकर रहता है। सम्यग्दर्शनका निर्दोष लक्षण सरागसम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। सम्यग्दर्शन जिसे कहते हैं वह बात दोनो सम्यक्त्वोमे है, फिर भी सराग जीवके जो सम्यक्त्व पाया जाता है वहा प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य, इसतरहका परिणाम देखा जाता है, जिससे सराग सम्यक्त्व की प्रसिद्धि होती है। यहाँ उन चिन्होको लिया जो चिन्ह रागभावके बिना नही होते, और रागभाव बिना जो परम दर्शन है उसका कोई चिन्ह नही प्रकट होता। भले ही यह कहे कि जब वीतराग मुद्राके दर्शन किए जाते है तो कभी वह हसती हुई मालूम होती और कभी वह प्रतिमा उदास मालूम होती है। तो वहा बात क्या है कि जब आप स्वय प्रसन्न चित्त होकर प्रतिमाके दर्शन करते हैं तो वह प्रतिमा प्रसन्न मालूम होती है, और जब आप उदास होकर दर्शन करते है तो आपको वह प्रतिमा भी उदास मालूम होती है। तो वहा प्रतिमाकी तरफसे कोई बात नही है। वह तो आपकी कल्पनासे प्रसन्न और उदास दिखी, उस प्रतिमाकी ओर से कोई चिन्ह मिले यह बात नही हो सकती। ऐसी बात तो सराग जीवके ही हो सकती है। सरागसम्यक्त्वका लक्षण है प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये प्रकट हुए। और वीतराग सम्यक्त्व का लक्षण है—आत्मामे विशुद्धि मात्र। अब यहा कोई यह दोष नही ला सकता कि दर्शन मोहनीय का उदय जहा नही है ऐसा किसी महान आत्माका जो स्वाभाविक श्रद्धान है, जैसा वह ठीक सराग सम्यग्दृष्टिमे पाया जाता है, वीतराग जीवमे तो आत्मरूप श्रद्धान ही तो है।

तो सराग सम्यक्त्वका जो लक्षण कहा है वह तो उचित नही होता। वह लक्षण वीतराग सम्यक्त्व मे भी लगा, सराग सम्यक्त्वमे भी लगा। तो जो लक्षण लक्ष्यमै सबमे प्रकट हो वह तो निर्दोष होता और लक्ष्यको छोडकर अन्यमे प्रवेश न हो वही तो निर्दोष कहलायगा। यह कैसे निर्दोप है ? तो यहा बात यह समझना है कि एक ओर से नियम लगावे। प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पादि जहा प्रकट होते है वह तो सराग सम्यक्त्व है ही। चाहे सब जीवो मे यह चिन्ह नही दिख सकता, पर जहा यह चिन्ह दिख जाय नियमसे वह सराग–सम्यग्दृष्टि है।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होमे प्रशमभावका निर्देश—चिह्नोके लक्षण देखिये–प्रशमका अर्थ है-किसी जीवने चाहे तुरन्त अपराध किया हो या पहिले, ज्ञानी पुरुष सम्यग्दृष्टि जीव उन अपराधोकी प्रतिक्रिया नही करता अर्थात् उसके अहितकी भावना नही रखता। जैसे मा बच्चेको दूध पिलाये अथवा दवा पिलाये, और वह बच्चा पीना नही चाहता, तो मा उसे थप्पड भी मारती है तिसपर भी उस बच्चेके प्रति उस मा के अहितका भाव नही होता इसीतरह ज्ञानी जीव अपने किसी शिष्य का प्रतिकार करे, दण्ड दे, इतने पर भी उसका उस पुरुषके प्रति अहितकी भावना रच नही है, वह तो एक व्यवस्था है। प्रशमभाव उसे कहते है, जहा क्षमाका भाव प्रकट होना है। देखिये जिसने सब जीवोमे एक उस स्वभावको निरखा है, जो सबमे है, भगवन्तो मे है, उस स्वभावका आश्रय करने वाले पुरुषको सर्व जीवोके प्रति क्षमाका भाव रहता है। क्रोध और ऐबका रच परिणाम नही होता। प्रशम उसे कहते है कि चाहे तुरन्त अपराध किया हो चाहे पहिले किया हो तो भी उस अपकारी जीवपर अहितका भाव न लाना और उसे क्षमा कर देना यह है प्रशमभाव। आप समझिये कि जिसने अपने आपके अन्त. प्रकाशमान उस सहज ज्ञानस्वभावका अनुभव किया है, जिसने उसे अनुभवके आनन्दको पाया है, ऐसा अनुपम आनन्द पा लेने वाला पुरुष बाहरी बातोमे क्या उपयोग फसाये ? उसके सहज प्रशमभाव होता है। प्रशमभावमे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान. माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व-का उदय नही रहता। सम्यक्त्व प्रकृतिका भी किसी किसीके उदय नही है। क्षयोपशम (वेदक) सम्यक्त्वमे सम्यक्त्वप्रकृति का तो उदय है तो वह सम्यक्त्वप्रकृति भी इस जीवका बिगाड नही कर पाती, सम्यक्त्वका विनाश नही कर पाती। यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके भी कुछ क्षमा शान्ति जैसी बात कही कही पायी जा सकती है लेकिन अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वादिक प्रकृतियोके उपशम अनुदय जहां न हो, वहा भले ही प्रशमभाव ऊपरसे जच रहा हो वास्तविक प्रशम नही है। सम्यग्दृष्टि के वास्तविक प्रशमभाव है, क्योंकि

अनन्तानुबन्धी आदिक प्रकृतियोका अनुदय होने से वहा वास्तविक प्रशमभाव प्रकट हुआ। यद्यपि बाहरी दृष्टिसे प्रशम और प्रशमाभास कहे गए। अज्ञानी जीवके प्रशमाभास है, ज्ञानी जीवके प्रशमभाव है, लेकिन प्रशमका वास्तविक अर्थ किया गया है कि जहा अनन्तानुबधी आदिक की प्रक्रिया न हो वह प्रशममाव है। तो यह अज्ञानियोमे सम्भव नही। भली प्रकारमे परीक्षा की जाय तो प्रशम और प्रशमाभासका अन्तर भी समझा जा सकता है। तो सम्यग्दृष्टिमे यह स्वभावसे गुण प्रकट होता हैं। वह दूसरे जीवोपर क्षमाका भाव रखता।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होमे संवेगभावका निर्देश—सम्वेग–जो सम्यग्दर्शनका, सरागसम्यक्त्वका चिन्ह है उसका लक्षण है कि संसारमे भयभीतपना होना सो सम्वेग है। ससार नाम है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भवपरिवर्तनका इनमे सब ही ससार आ गया, भावससार आया, द्रव्यससार आया। जहा, अज्ञानमय परिणाम है, भ्रमभरा भाव है वहा ससारमे कुयोनियोमे सर्वत्र जन्ममरण होता रहता है। वह रागद्वेष रूप ससार है। रागद्वेषादिक भाव परिवर्तनमे जितने प्रकारके भाव हैं वे सब इस परिवर्तन के कारण बनते रहते हैं, तो वे सब विकार ससार हैं, उन विकारोसे भीतता होना याने विकारोसे दूर होनेका भाव रखना सो सम्वेग है। जितने भी उपद्रव हम आप पर हैं वे सब रागद्वेष मोहसे है। मोहसे बढकर और विपदा क्या? किसी जीवसे लेनदेन नही, सम्बन्ध नही, प्रत्येक जीव अपने कर्म लिए है, अपनी परिणतिसे उसका परिणमन होता है। अनन्तानन्त जीव हैं, उनमे से कोई दो चार जीव आपके घरमे आ गए तो आपका उनसे क्या सम्बन्ध? सबका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपने आपमे है। किसी का किसीसे कुछ सम्बन्ध नही, लेन देन नही, फिर भी उनमे इतना लगाव है जिससे इतने कष्ट पा रहे है, यह विपत्ति नही है तो क्याहै? तो इन विपत्तियोसे दूर होनेका परिणाम होना सम्वेग है याने विपत्तियोसे हटनेके परिणामका नाम सम्वेग है। ऐसा सम्वेग ज्ञानी जीवके प्रकट होता है। जिसने अपने आपके स्वाभाविक आनन्दका अनुभव किया है, सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप को तका है उस पुरुषको बाहरी सुख दुख मे क्या लगाव होगा? तो संसारसे अलग होने, हटने, उपेक्षा होनेका नाम सम्वेग है।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होमे अनुकम्पा व आस्तिक्यका निर्देश—अनुकम्पा जीवोंमे दया उत्पन्न होना अनुकम्पाभाव है। वास्तविक दया यह है कि इन प्राणियोको जो व्यर्थका दुख हो रहा है उनके प्रति ऐसा भाव हो कि अहो, ये प्राणी कैसा अपने

आत्मस्वरूपको भूल गए, उसका श्रद्धान नही किया, आपने स्वरूपकी ओर दृष्टि नही किया। ये अपने निज स्वरूपको जान जायें तो इनका यह सारा दुख मिट जाय। इस प्रकारका करुणाका भाव ज्ञानी जीवके उत्पन्न होता है। कारण यह है कि दुःख सहनेपर, संक्लेश करनेपर इस जीव की अधोगति होती है। क्यो हुई ऐसी निम्न दशा ? इनका दुख दूर हो, प्रशम भावका अनुभव करे और अपनेको मोक्षमार्ग मे लगायें, ऐसी सद्भावनासे ओतप्रोत होकर ससारके प्राणियोकी दया करना यह है अनुकम्पा। वास्तवमें अनुकम्पा तो जीव अपने आप पर ही कर पाता है मै दूसरे पर दया करता हूँ ऐसा विश्वास करना मिथ्या है। कोई किसी दूसरे पर दया नही कर सकता। जो भी दया करता है वह अपने आप पर करता है। जब किसीका दुख देखकर चित्तमे वेदना होती है तो वह अपने आपकी वेदना शान्त करनेके लिए ही चेष्टा किया करता है। तो किसपर दया की ? अपने आप पर। कोई बडा भूखा हो, भूख मे बिलखा रहा हो तो उसे देखकर किसी गृहस्थको उसके दुखका अन्दाज ही तो हुआ और उस अन्दाजके आनेसे स्वयमे किसी न किसी रूपमे दुख उत्पन्न हुआ। अब अपने दुख की शान्तिके लिए वह एक चेष्टा करता है, उस भूखेको भोजन कराता है। तो वास्तवमे अनुकम्पा अपने आपकी भलाईके लिए ही तो है। सम्यग्दृष्टि जीवमे एक नैसर्गिक गुण ऐसा आता है कि उसके अनुकम्पा जगती है। ऐसी अनुकम्पाका चिन्ह लखकर कोई भी ज्ञानी पुरुष समझ लेता है कि इसके सम्यक्त्व है। यो सराग सम्यक्त्वका चिन्ह है अनुकम्पा। आस्तिक्य—जीव, अजीव, आश्रव, बंध सम्वर आदिकका श्रद्धान करना, विश्वास रखना युक्ति और आगमसे अविरुद्ध जो कुछ भी पहिचान है उसमे यथार्थताकी दृष्टि रखना यह ऐसा ही तत्त्व है लोक है परलोक है, आत्मा है, पुण्य पाप है, संसार है मोक्ष है, ऐसा भाव रखनेको आस्तिक्यभाव कहते है। जिस पुरुषके आस्तिक्यभाव है उस पुरुषके परिणाम निर्मलताकी ओर बढते है, और जो कहते हैं कि आत्मा फात्मा कुछ नही है, यह सब एक बहाना है, भौतिकतत्त्व है, तो वे आत्माका बन्धन क्या तकेंगे ? और आत्मामे मुक्तिकी बात क्या जोडेगे ? सम्यग्दृष्टि पुरुषके सब यथार्थ निर्णय है। जीवका निजस्वरूप क्या है। वर्तमानमे जीव किस दशामे चल रहा है ? उसका क्या परिणाम बन रहा है ? इस बन्धन परिणामसे जीव कैसे हट सकता है ? जीवका कल्याणमय परिणाम क्या है ? सब पर उसे विश्वास है। उसके आस्तिक्यभाव प्रकट होता है। तो ये चारो ही गुण सम्यक्त्वकी पहिचान है।

प्रशमादिलक्षणोकी सम्यक्त्वानुमापकताका निदर्शन—वस्तुत तो प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यसे अपने आपके सम्यक्त्वका अनुमान होता है, क्योकि सम्यग्दर्शन

तो परोक्ष है। सर्वज्ञदेवके अतिरिक्त अन्य जीवोंको तो अनुमानसे ही ज्ञात हो सकता। तो इन चारो गुणोमे से १, २, ३ या ४ जो भी गुण स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे जाने गए, खुदमे खुदका प्रत्यक्ष किया गया उसमे ज्ञात यह चिन्ह सम्यक्त्वका अनुमान करा रहा है फिर जब अपने ही चिन्ह से सम्यक्त्वका अनुमान किया तो ऐसा चिन्ह जब दूसरेमे दिख गया तो वहा उस सम्यक्त्वका अनुमापक होता है। तो इस अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन गुणको सिद्ध करने वाला ज्ञायक हेतु, पहिचान करा देने वाला लक्षण सम्यक्त्वका प्रख्यापक है। प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य इन चार गुणोंका जो स्वरूप है और उसका जो एक मम है वह सब सम्यग्दृष्टिमे पाया जाता है लेकिन जो इन चिन्होमे अभिव्यक्ति होती है वह होती है किसीमन, वचन, कायकी चेष्टा से। तो उस अभि व्यक्तिसे सराग सम्यक्त्वका अनुमान होता है। यद्यपि किन्ही–किन्ही अज्ञानियोमे भी प्रशम आदिकके चिन्ह दिखाई देते है, फिर भी वे वास्तविक प्रशमादिक नही है। कारण यह है कि उन अज्ञानियोको अपने माने हुए एकान्त मे ऐसी हठ हुई है कि वे वस्तुके सत्य अनेकात्मक स्वरूपको नही समझते और वे अपनेमतमपर मान कषाय बनाये हुए है। तो वह वास्तविक प्रसम नही है। वास्त-विक प्रशम ज्ञानी जीव के ही सम्भव हो सकता है।

सम्यक्त्वके प्रकृतिपरिणामताका अभाव—अब यहा कोई आत्माके निरपेक्ष स्वरूप-का एकान्त करने वाले लोग ऐसी आशका रख सकते कि आत्मा तो एक निरपेक्ष चैतन्य-मात्र है। सम्यग्दर्शन तो एक प्रकृतिकी पर्याय होगी। क्योकि अपरिणामी है। प्रकृतिका हो विकार है यह श्रद्धान। और आत्मा तो एक शुद्ध चैतन्य चैतन्यमात्र है। ऐसा अभिप्राय रखने वाले कुछ विचार कर चले तो उन्हे विदित होगा कि श्रद्धान प्रधान का परिणाम नही हो सकता। अगर मान लिया कि सम्यग्दर्शन तो प्रकृतिका परिणाम है तो मोक्ष भी प्रकृतिका ही करावे, पुरुषके आत्माके मोक्षकी बात फिर क्यो कहते यदि कोई यह कहे कि आत्माका जो वास्तविक स्वरूप है शुद्ध चैतन्य, उसमे न समीचीनता होती है न मिथ्यापन। वह तो केवल ससार अवस्था मे है। इस आत्माके साथ प्रकृतिका सम्बध चल रहा है, इसलिए प्रकृति की समीचीनता होनेसे चेतन भी समीचीन माना जाता और प्रकृति के विकृत होनेस चेतनको विकृत मानलिया जाता। इस तरह प्रकृतिधर्म का आत्मामे उपचार किया जाता, तब प्रकृतिका ही उपयोग सम्मयग्दर्शन हुआ। यह बात माननेसे आत्माके सत्यस्वरूपकी रक्षा हो सकती है। इस समस्या पर भी कुछ विवेक पूर्वक देखें तो यह विदित होगा कि प्रधान चू कि अचेतन है, इसलिए अचेतन पदार्थ मे श्रद्धान, ज्ञानचेतना जैसी बात कैसे आसकती है? सम्यक्त्व की बात तो चेतना मे ही सम्भव हो सकती है। ऐसा मानने-

पर भी कि प्रकृतिका धर्म महान अहकार आदि चेतनमे प्रतिभासते हैं, वहा चेतन स्वय कषायरग नही करता, वहा यह तो मानना पडेगा कि चेतन चेतना है और अनेक प्रकारोमे चेतता है, विरुद्धचेतनेका परिणाम न रहे जब, किसी भी प्रकार हो, प्रकृतिकी निवृत्तिसे हो, उस सम्यक सचेतनके आधारको ही तो सम्यक्त्व कहते है। यह सम्यग्दर्शन प्रकृतिका परिणाम नही, किन्तु आत्माका अभिन्न परिणाम है।

मोक्ष शास्त्रके द्वितीयसूत्रमे सम्यग्दर्शनका लक्षण बताया है। प्रयोजनभूत तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। देह विषय कषायसे निराले आत्मतत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। भूतार्थनयसे तत्त्वोको जानकर परमतत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनके कितने ही लक्षण किए जाये सबका लक्ष्य है निज सहज ज्ञानस्वभावका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है सम्यग्दर्शनका लक्षण कहने के बाद अब एक जिज्ञासा यह हो सकती है कि वह सम्यग्दर्शन क्या अपने आप होता है या अनादि अनन्त नित्य ही है, या नित्य कारणसे होता, किस प्रकार उसकी सत्ता होती है, ऐसी एक जिज्ञासा सम्यग्दर्शन सम्बन्धमे हो रही सम्यग्दर्शन किस तरह होता है या अपने आप ही पहिले से है, उसकी क्या विधि है उसका समाधान करने के लिए सूत्र कहते है तन्निसर्गादधिगमाद्वा।

सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिविधिका विचार—तत निसर्गात अधिगमात वा यहा ४ पद दिए गए कि सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा परोपदेशसे होता है निसर्गका अर्थ है अपने आप यने उपदेशके बिना। कही निसर्गका अर्थ यह यह न समझना कि जैसे स्वभावसे कोई स्वभावपर्याये होती रहती है यो स्वभावसे सम्यक्त्व होता यद्यपि सम्यग्दर्शन स्वभावपर्याय है लेकिन यह अनादि कालसे आवरणसे ढकी हुई है अतएव इसकी उत्पत्तिका कोई कारण है। तो कारण वस्तुत ७ प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है, पर बाह्यकारणो का, जाति, स्मरण वेदना, ऋद्धिमदर्शन दूसरोका उपदेश श्रवण, ये सब बाह्य साधन हो गए। तो जैसे सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होनेमे, उस भावमे दूसरेका उपदेश तो साधन जुडे किन्तु जातिस्मरण से, वेदनानुभवसे ऋद्धि दर्शन से सम्यक्त्व उत्पन्न हो तो उसे नैसर्गिक सम्यग्दर्शन कहते है। निसर्ग शब्दका अर्थ क्या है ? नि उपसर्ग है, सृजी धातु है और क प्रत्यय लगा हुआ है, जिसका अर्थ होता है निसर्जन निसर्ग। यने स्वभाव। स्वाभावसे जो सम्यग्दर्शन हो उसे नैसर्गिक कहते है। स्वभाव का अर्थ यहा सहज स्वभावसे मतलब नही, याने, कोई बाहरी, प्रसग यहा आये नही और सम्यग्दर्शन हो सो मतलब नही, किन्तु परोपदेश बिना जातिस्मरण आदिक अन्य साधनपाकर जो सम्यक्त्व हो उसे नैसर्गिक कहते है।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा इस सूत्रमे 'उत्पद्यते' क्रियाके अध्याहारकी युक्तता—सूत्रमे क्या कहा गया है ? तन्निसर्गादधिगमाद्वा, इस सूत्रके शब्दोसे जो अर्थ पाया जाता है वह इतना ही है कि "वह स्वभाव से और अधिगमसे" इतना ही चार शब्दोका अर्थ है। अब इसमे आप क्या समझे ? वह स्वभासे अथवा परोपदेशसे, इसके आगे और अर्थ नही भरा है। क्यो उत्पन्न होता है। ऐसी क्रियाका अध्याहार किया जायगा, जिसका अर्थ बन गया कि वह निसर्ग अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है। तो यहाँ उत्पद्यते लिखना पडेगा। सूत्रमे यह नही लिखा है, किन्तु ऊपरसे लगाना होगा। अब कोई यह शका कर सकता है कि तुमने ऊपरसे क्या लगाया ? उत्पन्न होता है उत्पद्यते। और, हम यदि यह लगादें—न उत्पद्यते, अर्थात् नही उत्पन्न होता है तो अर्थ यह बन जायगा कि वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा उपदेशसे उत्पन्न नही होता। ऊपरसे माननेका इसका भी अधिकार है। तो नउत्पद्यते यह क्रिया क्यो नही लगायी जा सकती ? और जब यह क्रिया शब्द लगा दिया जाय तो यह अर्थ हुआ कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न नही होता किन्तु सदा है जैसे जीव उत्पन्न नही होता, न निसर्ग से न अधिगमसे, न किसी पर पदार्थसे सगसे तो जैसे जीव उत्पन्न नही होता ऐसे ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न नही होता, किन्तु वह सदा शाश्वत, विराजमान रहता है, यह अर्थ बन जायगा अब समाधानमे सोचे कि शकाकार जब यह कह रहा है कि तन्निसर्गादधिगमाद्वा इस सूत्रमे न उत्पद्यते और लगा देना चाहिए तो इससे सम्यग्दर्शन नित्य सिद्ध हो जायगा। यह ही तो शकाकार कह रहा। समाधानमे उससे पूछे कि तुम जो सम्यग्दर्शनको नित्य कहते हो तो द्रव्यदृष्टिसे कहते हो या पर्याय-दृष्टि से ? अगर द्रव्यदृष्टिसे सम्यक्त्वको नित्य कहते हो तो वह बात हमे भी इष्ट है। द्रव्यदृष्टि से जैसे जीव नित्य है ऐसे ही द्रव्यदृष्टि से जैसे जीव नित्य है ऐसे ह द्रव्यदृष्टिसे सम्यक्त्व गुण नित्य है। सम्यक्त्व भी गुण है। पर्याय रूप सम्यक्त्व को बात तो कहते नही, द्रव्य सम्यक्त्वकी बात कह रहे हैं। द्रव्यसे सम्यक्त्व सदा काल रहता है, इसमे कोई विवाद नही। यदि पर्यायदृष्टिसे कहते हो तो पर्यायदृष्टिसे अगर सम्यग्दर्शनको नित्य कहोगे तो हमेशा सम्यग्दर्शनका अनुभव होना चाहिए। अनुभव होता है पर्यायका, गुणका नही। गुण तो एक शक्ति है, उस शक्ति की जो दशायें होती हैं उन दशाओका अनुभव होता है। सम्यक्त्व नामक गुण जो कि द्रव्यदृष्टिसे निरन्तर है, अनादि अनन्त है, उसकी पर्याय बने, परिणति बने तो अनुभव होगा। अनुभव होता है परिणमन-का। तो सम्यग्दर्शनको यदि पर्यायदृष्टिसे नित्य समझ लिया जायगा तो सम्यग्दर्शन का सदा अनुभव होना चाहिए। किन्तु है क्या ऐसा ? नही है। अगर सम्यग्दर्शन अनादिकालसे हो और उसका अनुभव अनादि कालसे जीवको हो तो संसार क्यो रहे ? मोक्ष क्यो

नही हो जाता ? तो सम्यग्दर्शनका सम्वेदन सदासे नही है, वह कभी से होता है। तो जब कभीसे सम्वेदन होता है तो है तो उसकी अद्भूति पर्याय दृष्टिमे आयी है, सो ही इस सूत्रमे बताया कि वह सम्यग्दर्शन उत्पन्न कैसे होता है।

परद्रव्योसे भिन्न आत्मतत्त्वमे रूचि करनेका संस्करण—यहां तक क्या बात सिद्ध हुई कि सम्यग्दर्शन किसी जीवके तो परोपदेश बिना हो जाता और किसी जीवके परोपदेश के कारणसे होता है। इस तरह से सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है। सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या तो सरलसे सरल शब्दोंमे पहिचाने। जैसे छहढालामे बताया है—"परद्रव्यन तें भिन्न आपमे रूचि सम्यक्तव भला है।" अर्थात् पर द्रव्योसे भिन्न अपने आपके आत्मस्वरूपमे रुचि करना सम्यग्दर्शन है। देखिये-सम्यग्दर्शन एक अपूर्व निधि है। सम्यक्त्व अगर न प्राप्त हुआ और इन जीवनमे जाते रहे तो चाहे लखपती करोडपती हो जाय, चाहे राज्यपद मिल जाय चाहे कितने ही विषयो के साधन जुट जाये लेकिन वह सब बेकार है। व आगामी कालमे दुर्गति के ही कारण बनेंगे, और अगर सम्यक्त्व लाभ हो जाता है अपने इस निज ज्ञान स्वभावमे दृष्टि जाती है तो फिर चाहे कैसी ही दद्रिता की स्थिति क्यो न हो पर उसे सब कुछ मिल गया। सदाके लिए संसारसे छूट, जाये ऐसा कारण बन जाता तो इससे बढकर और क्या निधि हो सकती है ? सम्यक्त्वमे क्या बात पायी जाती है ! परद्रव्योसे निराले अपने आत्मस्वरूपमे रुचि हो जाना, श्रद्धान होना, प्रतीति होना, उसकी दृष्टि होना यह सम्यग्दर्शन है। अब उस परद्रव्यकी बात समझिये क्या क्या वे पर द्रव्य है धन मकान आदि जो जो प्रकट भिन्न क्षेत्रमे रहते है' उनसे मेरा आत्मा बहुत दूर है, वे तो प्रकट भिन्न है। और कुटुम्ब परिवार ये जीव ये भी प्रकट भिन्न है, और शरीर, यह भी प्रकट भिन्न है। जैसे दूध और पानी मिले हुए हो, एकमेक हो रहे हो फिर भी दूध दूधमे है और पानी पानीमे है। दूधमे पानी नही चला गया और पानीमे दूध नही चला गया। पारखी लोग उस मिले हुए दूध और पानी मे यन्त्रो द्वारा या यो ही किसी सोख्ता आदिमे डालकर परख लेते है कि इसमे इतना तो दूध है और इतना पानी है। अथवा और भी उदाहरण तो है, पानी उस रंगका बन जाता है। वहा भी यही बात है कि पानीमे पानी है और रंगमे रंग है। आप और भी देखिये जैसे इस भीटमे यह सफेदी (कलई) पुती है तो बताइये भीट सफेद है या कलई ! अरे कलई सफेद है भीट तो ज्यो की त्यौ है। जो कलई पहिले उसीके रूपमे थी वह अब पानी का सम्बन्ध पाकर इस रूपमे फैल गई। वहां भीटमे भीट है और सफेदीमे सफेदी। तो ऐसे ही समझिये हम आपका शरीर और आत्मा ये दोनो एकक्षेत्रावगाही बन रहे है फिर भी शरीरमे शरीर है और आत्ममे आत्मा है। शरीर

जड है, शरीर जानता नही, आत्मा जानने- वाला है । तो आत्मा इस शरीरसे न्यारा है ।

विभावपरिणतियोसे विविक्त अन्तस्तत्त्वकी रुचि करनेका अनुरोध—विविक्तता मे और आगे चले तो आत्मामे जो रागद्वेष होते है, विषय कषायके भाव होते हैं उन विषय-कषायके भावोसे भी आत्मा न्यारा है । वे विषयकषायके भाव आत्माके स्वरूप हैं क्या ? आत्माके स्वभाव है क्या हैं ? आत्मामे सहज ही पैदा हो गए क्या ? क्या आत्मामे निमित्त कारण हैं ? दर्पण तो अपने स्वभावसे स्वच्छताको लिए हुए है और उसमे परिणमनेका स्वभाव पडा हुआ है, मगर दर्पण स्वय ही छायाका निमित्त नही बनता सामने कोई चीज हो तो हाथ छायाका निमित्त बना और यहा दर्पण मे दर्पणकी परिणतिसे छाया परिणमन हो गया अब बतलावो वह छाया क्या दर्पणकी चीज है ? एक दृष्टिसे तो एक द्रव्यकी परिणति होती है, तो कह दीजिए, दर्पणका चीज है, लेकिन यह भी आप क्षणिक बता पायेगे । और घटनाये और निर्माण विधिसे देखकर आप यह कहेगे कि यह छाया दर्पणकी नही है, यह नैमितिक है, परद्रव्यकी छाया है, परद्रव्यका निमित्त पाकर हुई है । तो चूकि उस छायाका अन्वयव्यतिरेक हाथके साथ है, हाथ आया तो छाया हुई और हाथ हटा तो छाया हटी । तो कैसे आप सम्बध जोडेगे ? छाया हाथ के प्रति जाय दर्पणमे मत रहे । दर्पण तो शुद्ध स्वच्छ है । दर्पण उस छायासे निराला है । जैसे हम यहा यह परख करते हैं ऐसे ही विषय, कषाय, विकल्प जो उत्पन्न होते है वे कर्मोदयका निमित्त पाकर होते है । एक बात और खास समझनेकी है, जैसे दर्पणके सामने लाल कपडा किया जाय तो दर्पण मे लालिमा आ जाती है तो वह कपडा स्वय लाल है । तो दर्पणमे लालिमा आयी इसी तरह उस उस तरह के कर्मोदय समाने है, क्रोध, मान, माया, लोभ प्रकृति उस उस प्रकार की प्रकृति शरीर कर्म सामने है, तो उसका निमित्त पाकार इस उपयोगमे झलक हुई और झलकके साथ अज्ञानी मोही आत्माने उसमे अपना उपयोग जुटाया और उसे अपनाया । तो वह विवेक करें कि ये क्रोधादिक विकार परद्रव्य हैं, ये मैं नही हू, उनसे भी निराला समझना है और जो भीतर कल्पनाये विचारतरगे हुई ये भी कर्म क्षयोपशमका निमित्त पाकर हुई, मन इन्द्रियका साधन पाकर हुई, अत ये परद्रव्य हैं, मेरी चीज नही हैं । अहोज्ञानकी परिणति होकर भी परद्रव्य देखे जाते है, ऐसा परमात्मतत्त्वसे मैत्री भाव भेदविज्ञानीके शुद्ध ज्ञानी पुरुषके होता है । सबसे निराला मै हू, तब क्या रहा ? क्या बताया जाय । जो है । लेकिन बतानेको अगर चलेगे तो कहेगे टकोत्कीर्णवत निश्चल एक ज्ञायक स्वभाव है, याने जो अनादिसे अनन्तकाल तक अन्त प्रकाशमान है, जिसको लक्ष्यमे लेनेके प्रयासमे वेदान्तियो-

ने ब्रह्मस्वरूप माना है उस प्रकारका कोई अविकार स्वरूप वह मै हू। देखिये अन्तः एक ज्ञानकी ही बात है। परम ब्रह्म माना तो है अद्वैतवादियोने, मगर सर्वथा अपरिणामी माना है। और जो सर्वथा अपरिणामी हो वह तो सत् ही नही हो सकता। फिर और बात सोचना व्यर्थ है। इसलिए वह नित्यत्वैकान्तसे ब्रहमस्वरूप मिथ्या बन गया, और जैन शासनमे परम ब्रह्मस्वरूप बताया है अविकारी शाश्वत एकस्वरूप सहज, लेकिन एकान्तवाद नही किया है। द्रव्यदृष्टिसे देखा जानेपर ऐसा ज्ञात होता है मगर वस्तु तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। उसमे परिणाम होता है, पर्याय होती है अन्यथा सम्वेदन नही हो सकता, अनुभव नही हो, सकता। उसका कोई प्रयोग ही न हो सकेगा। जैसे आपको किसाने बहुत बढिया भोजन तो दिखाया और कहा-साहब इसे देख लो मगरर खाना मत, तो भला बतलाओ वह भोजन आपके किसी काम का है क्या ? किसी भी कामका नही, इसीतरह वह परमब्रह्म जिसका कि परिणाम नही, पर्याय नही, दशा नही, अनुभव नही हो सकता प्रयोग नही हो सकता वह परमब्रह्म किस काम आयगा ? उसका फिर सत्त्व ही क्या रहेगा ?

शकाकार द्वारा निसर्गज सम्यग्दर्शनकी असभवताका पूर्वपक्ष—अनादि अनन्त अहेतुक सहजज्ञानमात्र आत्मतत्त्व दृष्टिमे आये तो समझिये कि सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है दो प्रकारसे (१) निसर्गसे (२) अधिगमसे, ऐसी बात सुनकर एक जिज्ञासु कह रहा है कि सम्यग्दर्शनमे निसर्गजता होना अनुचित जच रहा है, क्योकि जिस पुरुषने इस ज्ञानस्वभावी आत्माका समझा नही, जाना नही उसके वह सम्यग्दर्शन कैसे होगा ? जो पदार्थ कभी जाननेमे आयाही नही उसका विश्वास कैसे हो सकता है ? तो निसर्गज कहोगे तो वहा यह ही बात समझमे आयगी कि जिस आत्माको अब तक कभी जाना ही नही उसका अपने आप दर्शन हो रहा है। यह ही तो निसर्गज सम्यग्दर्शनका अर्थ हो गया तो ऐसा कभी हुआ नही। मूल तत्त्व कभी जान नही पाया तो उसका श्रद्धान कभी हो नही सकता। जैसे औषधि, कोई रसायनकी वस्तु अत्यन्त परोक्ष हो और जिस औषधिको कभी देखा नही, जाना नही, कभी सुना नही, ऐसे रसायनके बारे मे और उस औषधिके बारेमे फल कैसे हो सकता है। जो समझमे अब तक आया ही नही, उसके बारेमे कैसे विश्वास किया जाय और समझमे आ गया तो उसके मायने हो गया कि अधिगमज हुआ। बाह्य उपदेशसे समझमे आया निसर्गज सम्यग्दर्शन तो कुछ चीज नही है यह शकाकारका अभिप्राय है। उसके समाधानमे यदि कोई यह कहे शकाकार ही कह रहा है कि इस शकाका यदि कोई यह जवाब दे कि जैसे लोकमे यह प्रसिद्ध बात है किशुद्रने वेदको कभी नही जाना। वेदवाले तो कहते है कि शुद्रको वेद पढने का अधिकार नही, जब अधिकार ही नही तो फिर

वे कैसे वेदकी बात समझे ? तो जैसे वेदकी बात कभी सुना ही नही फिर भी उसे वेदकी बहुत भक्ति रहती है, वह उसे नमस्कारकरता है। उस वेदके सम्बधमे कभी चर्चा हो जाय तो वह सामने आकर कहता है कि यह तो मेरा है, वह उस मतकी बडी श्रद्धा करता है तो देखिये जाने बिना भी वेदमे श्रद्धा होगई। तो उसकी वह श्रद्धा निसर्ग से है। जाना नही फिर भी श्रद्धा है। इसीतरह इस सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मपदार्थ जाना नही फिर भी नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। ऐसा जो कोई समाधान दे तो शकाकार कह रहा है कि उसका समाधान ठीक नही बैठता। क्योकि उदाहरण जो दिया वह विषम उदाहरण है। वेद वादियोकी धारणाके अनुसार शूद्र को वेद पढने का अधिकार नही मगर उसने कभी सुना तो है और उस वेदके जानने वाले जो लोग हैं वे तो कुछ बताते हैं कि वेद कैसे है, किस तरह से उनके जाननेमे तो आया। जाननेमें किसीप्रकार न आया हो और फिर उस वेदमें श्रद्धा की जा रही हो तब तो यह दृष्टान्त हमारी शकाका समाधान देने मे ठीक बैठ जायगा लेकिन ऐसा नही है, यह समाधान ठीक नही है। हमारी शका बराबर खडी हुई है। जब पदार्थको जाना नही, आत्मस्वरूपको जाना नही तो फिर श्रद्धान कैसे हो जायगा ? और, जाने बिना श्रद्धान होता नही तब यह सिद्ध होगया कि नैसर्गिक सम्यग्दर्शन कुछ चीज नही होती। तो शकाकार अपनी यह शका पुष्ट कर रहा है कि जीवको केवल आत्माका श्रद्धान नही होता अत निसर्ग सम्यग्दर्शन है ही नही। तब इसके भेद न करना चाहिए। शकाकार कह रहा है कि हमारी शकाके समाधानमे यदि कोई यह कोई यह उत्तर दे कि कि देखो जैसे किसी पुरुषको मणि (रत्न) की जानकारी नही है, वह यदि उसे कही पा जाय और बाजारमे बेचने जाय तो काचके टुकडेमे अधिक कीमत वह पा लेगा ना ? तो नही भी जाना मणिको फिर भी उसे ग्रहण कर सकते और उसका फल भी भोग सकते। तो ऐसे ही जिसने आत्मतत्त्वको नही जाना उसे भी उसका ग्रहण हो सकता, उसका फल हो सकता, उसका फल हो सकता तो नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो जायगा। यदि कोई हमारी शका— का समाधान इस तरह देना चाहे तो उसका भी कहना ठीक नही, क्योकि वह भी विषम उदाहरण है, फिर यह कैसे कहा जायगा- कि उसने नही जाना ? तो निसर्ग सम्यग्दर्शन कोई चीज नही, शंकाकार कह रहा है इस कारण भी निसर्ग सम्यग्दर्शन नही हैं। जिस समय सम्यग्दर्शन होता है उसी समय पहिलेका जो ज्ञान है बस वही सम्यक्त्वरूप परिणम जाता है, मानो ज्ञान सम्यक बन जाता है, तो वह अधिगमज बन ही गया। इस सम्यग्दर्शन से पहिले उपदेश मिला या सम्यग्दर्शनके साथ उपदेश मिला ? सम्यग्ज्ञान तुरन्त हो गया, इसलिए मालूम होता है कि सम्यग्दर्शन एक नैसर्गिक चीज नही है।

निसर्गज सम्यग्दर्शन की सिद्धि द्वारा शंकाकार की शंका का समाधानः—नैसर्गिक सम्यग्दर्शन न माने जानेकी शंकाकार की शका का अब समाधान सोचे। यहाँ नैसर्गिक का यह अर्थ नही है कि बाहरी प्रसंग कुछ न आये, और हो जाये, यह बात नही किन्तु परोपदेश न मिले और जाति स्मरण, वेदनानुभव आदिक बाह्य साधन मिले तब होने वाला सम्यग्दर्शन नैसर्गिक कहलाता है। सम्यग्दर्शनोत्पत्ति मे तो निसर्गजसम्यक्त्व मे भी अन्तर मे निमित्त अनिवार्य है। सम्यक्त्वोत्पत्तिका अन्तरङ्ग निमित्त सम्यक्त्वघातक प्रकृतियो का उपशम क्षय, क्षयोपशम है। इस तरह सम्यक्दर्शन किसी के यों भी हो जाता कि दूसरे का उपदेश नही भी मिला किन्तु जाति स्मरण हो जाये अथवा वेदना का अनुभव आदि हो। अनेक नारकियो को वेदना का अनुभव होने से सम्यक्त्व हो सकता है। वेदनानुभव करते हुए वे ज्ञान से सोचते है—ओह पूर्वभव मे मैंने धर्म नही किया, व्रत नही किया, विवेकपूर्वक नही रहे, अन्याय किया, हिंसा की पाँचो प्रकार के पापो का हमने बहुत बहुत तरह से सेवन किया इस कारण यह दुःख भोगना पड़ा। उन्हे ज्ञान हुआ, वेदना का अनुभव हुआ, उससे उनको अकल ठिकाने हुई। विवेक हुआ और उनके नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो जाता। सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त होता है उसे पहिले ५ लब्धियाँ प्राप्त होती है। (१) क्षयोपशमलब्धि (२) विशुद्धिलब्धि (३) देशनालब्धि (४) प्रायोग्यलब्धि और (५) करणलब्धि। ज्ञान जब क्षयोपशम को प्राप्त होता है। इस स्थिति मे बनता है कि जहाँ विशुद्धिका लाभ हो, कुछ विवेक चले तो इसे कहते है क्षयोपशमलब्धि। तो देखो हम आपको क्षयोपशमलब्धि है कि नही ? इतना तो है ही कि हम आप जान सकते है, सोच सकते हैं। आत्मा अपने निर्मल परिणाम बनाता है तो विशुद्धलब्धि है उपदेश प्राप्त होता है सो देशनालब्धि है। मगर इसका हम आपठीक–ठीक उपयोग नही कर रहे। ग्रन्थ है, विधिपूर्वक उनमें उपदेश भरा है। उपदेश सुननेको मिलता है, उसे भी हम ले सकते है, तथा इसके बाद हम कुछ आगे नही बढते, कुछ हम अपने सोचनेमे अपना उपयोग आगे नही ले जाते तो हम आगे प्रायोग्यलब्धि नही ले पाते। जहा प्रायोग्यलब्धि होती है वहा परिणाम बडे विशुद्ध होते है। प्रायोग्यलब्धिमे ३४ बंधावसरण होते है, तो यह कोई मामूली बात नही है। ऐसी–ऐसी कर्म प्रकृतिया कि जिनका बध छठे गुणस्थानमे सम्भव है उन प्रकृतियोका बध इस प्रायोग्यलब्धिस्थ इस मिथ्यादृष्टि रुक केजाता है। जो प्रायोग्यलब्धिमे हो उसके प्रकृतियोका बन्ध रुक जाये इससे बढकर और क्या बात कही जाय ? छटे गुणस्थानमे अस्थिर, अशुभ, अयश, असाता, अरति, शोक इन प्रकृतियोका बध चलता है। ७ वें मे बंध होता है लेकिन इन प्रकृतियो का बंध प्रायोग्यलब्धिमे रहने वाले मिथ्यादृष्टि नही करते है, पश्चात सम्यक्त्व होनेपर भी

इनका बध होने लगता। परिणामोकी इसमे किनना निर्मलता है। प्रायोग्यलब्धि कदाचित् किमीको प्राप्त हो जाय, और करणलब्धि न प्राप्त हो तो भी सम्यक्त्व नही होता। अध करण, अपूर्वकरण अनवृत्तिकरण परिणामके होने पर नियमसे सम्यग्दर्शन होता है। तो यद्यपि ये ५ लब्धिया वहा अवश्य हे और जिम किसको भी सम्यक्त्व हुआ है देशानालब्धि भी मिली है लेकिन यह उस भवकी बात है जिस भवमे देशना नही मिल रही किन्तु जातिस्मरण आदिकसे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

सम्यक्त्वोत्पत्तिके निमित्तकारण व बाह्य साधन का विश्लेषण—एक बात और ध्यान मे लावे। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने का निमित्त कारण क्या है? तो कुछलोग कह देते हैं कि भगवानके दर्शन करना अथवा तप व्रत करना या जातिस्मरण होना, उपदेश मिलना, ये निमित्त कारण हैं, लेकिन सम्यग्दर्शनके ये निमित्त कारण नही हैं।-देखिये दो तरहके जानने वाले लोग है या उपदेश करने वाले लोग है? एक तो इन बाहरी बातोंको सम्यग्दर्शनका निमित्त मानकर उपदेश करते है कि ये निमित्त हैं। इनका दर्शन करनेसे, प्रभुके निरखनेसे या प्रभुका उपदेश सुननेसे सम्यक्त्व होता है, ऐसा नियम बनाये हुए हैं। दूसरे लोग जो निमित्तका खण्डन करना चाहते हैं वे जानबूझकर जो निमित्त नही है उनको निमित्त बताबताकर यह समझाना चाहते कि निमित्त कुछ चीज नही। जैसे कहते है कि इसने जिनेन्द्रदेव के दर्शन अनेक बार किया पर सम्यक्त्व न हुआ तो निमित्त कुछ नही करता। दोनो ही भूलमे है। जो जिनबिम्ब का निमित्त कारण कहकर इस बातका खण्डन करते हैं कि निमित्त कारण कुछ नही रहा वे आखे मीचकर जगते हुए भी सोये हुए है। देखिये दो तरह के सोये हुए पुरुष होते हैं एक तो सचमुच सोये हुए, जो जगाने पर जग जाते है और एक बनावटी सोये हुए। यो ही आखे मीचकर सोनेका बहाना कर लिया, तो बहाना करके सोये हुए पुरुषका जगाना कठिन है। उसके आगे कोई ढोल बजावे तो भी वह नही जग सकता। तो बात क्या है? घटना देखिये—जिनेन्द्र भगवानके दर्शन या साक्षात् समवशरणमे दर्शन या उपदेश ये सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण नही है, ये तो आश्रमभूत है। सम्यग्दर्शनका निमित्त कारण है ७ प्रकृतियोका उपशम क्षय, क्षयोपशम। तो एक भी दृष्टान्त बतायें जहा ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो जाय और सम्यक्त्वन हो? वह उसकी उत्पत्तिका निमित्त कारण है, किन्तु जो विषयभूत पदार्थ हं उनमें यह नियम नही बनाया जा सकता कि जो भगवानके दर्शन करके उसको सम्यक्त्व हो ही जाय। हो भी और न भी हो।

उदाहरणपूर्वक आश्रयभूत व निमित्तकारणमे अन्तरका प्रदर्शन—एक और उदाहरण लीजिए आश्रयभूत व निमित्तका समझनेके लिये। एक वेश्या मर गई और उसे लोग जलाने

के लिए लिए जा रहे थे । तो उस मृतक शरीरको किसी मुनिने देखा तो उसका यह भाव हुआ कि देखो इसने दुर्लभमानव जीवन पाकर कैसा व्यर्थ विषयमे अपना जीवन गमाया, उसे देखकर किसी कामी पुरुषके मनमे ऐसा भाव आया कि यदि यह अभी कुछ दिन और जीवित रहती तो इससे मिलकर कुछ मौज और लूटता । उसी मृतक शरीरको देखकर कुत्ता स्याल आदिके मनमे इस प्रकारका भाव आया कि ये लोग व्यर्थ ही इसे जला रहे है । यदि इसे यो ही छोड देते तो मेरा कुछ दिनोका भोजन बनता । तो देखिये—एक वेश्याशरीरको तीन तरह के लोगोने देखा तो उनके अलग अलग भाव हुए । अगर वह बाह्य पदार्थ निमित्त होता तो निमित्त तो सबके लिए हुआ ना, वह वेश्याका शरीर । फिर तो सभीके एक सा ही भाव होना चाहिह । मुनि महाराजका और विचार, कामीका और विचार, स्याल, कुत्ते आदि का और विचार क्यों हुआ ? मुनि महाराज के विचार में निमित्त कारण नही है वह वेश्या । मुनि महाराजके विचारमे निमित्त कारण है कर्मका क्षयोपशम । प्रत्याख्यानावरणकषाय नही रहा इसलिए उनके वैराग्यरूप भाव चल रहे है, उस समय वह वेश्या दिखी तो वह विषयभूत हुई उनके अनुरूप विचारका आश्रयभूत हुई । उसका आश्रय बनाकर मुनि महाराजके ये परिणाम हुए कि इसने सम्यक्त्व न प्राप्त किया । तो निमित्त कारण क्या रहा ? प्रकृतिकी योग्या दशा । कामी पुरुषके मनमे जो कामभाव जगा उसमे वह वेश्याका शरीर निमित्त कारण नहीं, किन्तु उस प्रकारके वेदका कामीके तीव्र उदय अथवा उदीरणा है, जिससे उसने वैश्याको आश्रय बनाकर काम भाव बनाया । यह ही बात स्याल कुत्ते आदिकी है । तो ये बाहरी पदार्थ निमित्त नही कहलाये । लोग तो बहकाने के लिए बाह्य पदार्थोको निमित्त बताकर यह बतलाते है कि देखो निमित्त कोई जीज नही है । देखो वेश्याशरीर मुनिराजने भी देखा, लेकिन उनके मनमे तो विकार भाव नही आया तो वह निमित्त तो न रहा । अरे भाई वेश्याशरीर तो निमित्त है ही नही । कामी पुरुष के काम कषायका, वेद प्रकृतिका उदय है, उसकी उदीर्णा हो तो काम भाव हो सकता है भैया ! जैन सिद्धान्तमे जो कर्मोका वर्णन है, एक-एक समयकी जो दशाये बतायी है, कैसे उदय है उदीरणा है, कैसे क्षय है, कैसे स्पर्धक है, इतना विस्तृत वर्णन है कि जीवन भर भी कोई अध्ययन करे तो नई-नई बातें समझमे आवेंगी । तो क्यायह व्यवहारनय झूठ है ? प्रमाणमे दो अश है— निश्चयनय और व्यवहारनय । व्यवहारनय झूठ है, तो जिसका अंश झूठा है वह प्रमाण भी झूटा है । तो यह अश झूठा नही । जो उपचार करके बोला वह झूठ । घडा बनने मे कुम्हार का व्यापार निमित्त है—यह कहना झूठ नही, किन्तु घड़ा कुम्हारने बनाया यह कहना झूठ है । कैसे झूठ है ? भिन्न पदार्थोमे कर्ता कर्म भाव लादना झूठ नही । निमित्तनैमित्तिकयोग

होनेपर भी कुम्हारमें कुम्हारकी ही परिणति होती, मिट्टीमे मिट्टीकी ही परिणति होती। अतः निमित्तनैमित्तिक योग व वस्तुस्वातन्त्र्यका एक साथ होना विरुद्ध नही। बाह्य साधन, निमित्त व उपादान इन तीनो को सही समझे बिना जीव परिणामोत्पादका रहस्य नही समझा जा सकता। निसर्गज सम्यग्दर्शनमें निमित्त तो है सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोका उपशमादिक, बाह्य साधन है जातिस्मरणादिक तथा उपादान वह जीव है जिसको सम्यक्त्व हो रहा है। मात्र उस भवमें अधिगम (उपदेश) पाये बिना जो सम्यक्त्व हो जाता उस निसर्गज सम्यग्दर्शन् कहते हैं।

विपदाओकी कल्पनामूलता—अनादि कालसे भ्रममे गोते लगा रहा यह जीव अपनी कल्पनायें बना कर दुःखी हो रहा है। अपनी-अपनी बात देखो इस देहके अन्दर जो यह जाननहार आत्मा है, मैं हू, उस मैं की परख करके देखें कि यह भीतरमे क्या कर रहा है, जिससे यह क्लेश पाता है और क्या करें कि जिससे इसके क्लेश दूर हो जायें ? तो निहारो यह मैं भावमात्र पदार्थ हू, जैसे बाहर देखते है—खम्भा हैं तो कोई पिण्ड, कोई मोटी लम्बी वस्तु है। बाहर परखते हैं तो कोई आकारकी चीज है। कठोर नरम वस्तु है। जरा अपने आपको विचारिये—क्या मैं कठोर, नरम वस्तु हूँ ? क्या मैं ढेला पत्थर आदिककी तरह पकडा जाने वाला पदार्थ हूँ ? नही, मै हूँ एक जाननभाव मात्र। तो जाननभाव मात्र यह मैं कर क्या सकता हू सो देखिये यह केवल जानने का ही तो काम कर सकता, और कुछ नहीं कर सकता। उस जाननेमे कल्पना बना डाले तो कल्पनाओका काम कर सकता हूँ। पर जाने, कल्पनाए करे इसके सिवाय और कुछ यह नही करता देखो दिल को सुहावने वाली बातें इस आत्मा को पार न कर सकेंगीकिन्तु भेदविज्ञान वाली बात आत्माको पार करेगी। इससे दिल लुभावने जैसी बातकी इच्छा मत रखो। इच्छा रखो इस बातकी कि मुझको ऐसा प्रकाश मिले कि जिससे मेरा दुःख कट जाय। देखो—दुःख तो इस जीवके कटे हुए ही है। कोई जीव दुःखी नही है। किसी जीवका स्वभाव दुःखका नही है। लोग मानते हैं कि मैं दुःखी हू, मेरेको यह कष्ट है। बाहरी पदार्थोकी बात निरख—निरखकर अपनेमे कष्ट मानते हैं। एक मोटी सी बात देख लो, मर गए, यहा से चले गए फिर इसके लिए यहाँ का क्या ? तो आत्मापर दया करके ऐसा ही समझलें कि हम कुछ पहिले ही मर गए थे। अब इस नरभवमे मानो हैं तो एक मुफ्त हैं, इन लोगोके लिए नही, इस बाहरी सम्पदाके लिए नही। मेरेको तो आत्महित कर लेना है, छूटना तो हैं ही सब। जो छूटे।। उसका मोह जिन्दगी भर बसा बसाकर पा क्या लोगे ? प्रभुभक्ति करने आते, भगवानकी उपासना करते तो भगवानका स्वरूप ही और क्या है ? केवल ज्ञानमात्र 'ज्ञान

ज्योति, ज्ञानप्रकाश। और कुछ नही। जो प्रभुका स्वरूप है सो मेरा है, सो सबका है। प्रत्येक देहधारीमे वही स्वरूप है जो प्रभुका है, जो मेरा है। सबका एक समान स्वरूप है। वह स्वरूप क्या है? ज्ञान और आनन्दका पिण्ड। यहा कष्टका कोई नाम नही है, कष्टकी गुंजायस ही नही है इस स्वरूपमे, पर, कल्पनाये करके अपने को ही कष्टमे डाल रहे है। हिम्मत नही बनाते। बाहरमे अगर कुछ हो गया तो हो गया, उसमें इष्ट अनिष्टकी बुद्धि क्यो करते कि यह मेरे लिए इष्ट होगया यह मेरे लिए अनिष्ट हो गया। मैं आत्मा सबसे निराला केवल भावमात्र, केवल ज्ञानप्रकाशमात्र, इस देहके फन्देमे पडा हूँ इतनी ही तो त्रुटि हो रही है और इसी कारण वह सब भार मैं मान रहा हूँ। स्वरूपको सम्हालू, बोझ न मानूं, ऐसी दृष्टि बनाऊं और कभी आत्मा के सहजस्वरूपका अनुभव कर लूं तो सम्यक्त्व हो जायगा।

आत्महितके लिये स्वभावाश्रयकी नितान्त आवश्यकता—देखो भैया, क्या करना है? अपने निरपेक्ष आत्मस्वभावका अनुभव करना है। सम्यक्त्व पैदा करो। वह सम्यक्त्व होता है स्वभावके आश्रयसे। इस अन्तस्तत्त्वके लिए, पहिले एक भीतरमे बड़ी तैयारी करना है। अपनेको सबसे अत्यन्त निराला निरखना। निराले विविक्त ज्ञानस्वरूपको दृष्टिमे लाते लाते ही वह क्षण आ सकेगा कि जब मेरेको ज्ञानस्वरूपका अनुभव होगा। कोई ऐसी शका न करे कि गृहस्थीमे रहकर स्वानुभव करेगे तो गृहस्थी चलायेंगे तो स्वानुभव न होगा। अरे गृहस्थ हो तो, साधु हो तो, सम्यक्त्वकी दिशामे दोनोका एक सा कदम होता है फर्क क्या रह गया? एक बाहरी परिग्रह का। बाह्य परिग्रह जितना जिसके कम होता है वह उतनी अधिक देर बराबर स्वानुभव पानेका अधिकारी बनता है। तो गृहस्थ शीघ्र बारबार स्वानुभव प्राप्त करने का अधिकारी नही है लेकिन उसके अनुभवका स्वाद लेनेका अधिकार तो है। जैसे किसीने एक छटाक ही मिठाई खाया और किसीने वही मिठाई एक किलो छककर खाया तो इसमे छक कर खानेका अन्तर तो है मगर स्वाद तो दोनो को एक सा आयगा ऐसे गृहस्थ हो या मुनि सम्यक्त्व परिणति समान रह सकती।

आत्महिताभिलाषियोके व्यावहारिक कर्तव्यो मे स्वाध्यायकी प्रमुखता—स्वाध्याय नाम किसका है? प्रथा तो बहुत चली की मैं स्वाध्याय करता हू, स्वाध्याय तप है, स्वाध्याय करना चाहिए, स्वाध्यायसे कल्याण होगा, पर स्वाध्याय नाम किसका है? स्व का अध्ययन करना सो स्वाध्याय है। ग्रन्थ पढकर, बाचकर, पक्तिका अर्थ लगा लगाकर, अपने पर घटा घटाकर अपने आत्माका अध्ययन करना सो स्वाध्याय है, या दिल सुहावनी बातो को पढने—का नाम स्वाध्याय है? अरे वह तो दिलाध्याय है। कषाय उत्पन्न करने वाला विषय

बाचनेका नाम कषायाध्याय है। अब ममझलो स्वाध्याय नाम किसका है ? जिसमे स्वका अध्ययन किया जाय वह स्वाध्याय है। जीवने अब तक अनेक बाते की, पचेद्रियके विषय और मनका विषय, इन ६ प्रकारके विषयोको इसने बहुत भोगा। भोगता ही चला आया। तो इन ६ विषयोको प्रेरगा मिले ऐमी बात करनेका ही उपक्रम रहा तो वहा कौन सा लाभ लूट लिया जायगा जैसे तेलीका बैल कोल्हूमे जुतता है तो उसकी आखोमे पट्टी बाध दी जाती है। वह कोल्हूमे चलता रहता है। उसे ऐसा भ्रम रहता है कि मैं तो सीधा ही चल रहा हू, और चल रहा वह उसी जगह। उमकी आखे क्यो खोली जाती ? इसलिए कि उसे यदि मालूम पड जाय कि मै तो उमी जगह चल रहा हू तो उमे चक्कर आ जायगा और गिर जायगा। उस कोल्हूके बैलको तेली सही ज्ञान नही कराता, उसे भ्रममे ही रखता है आखे बाधकर कि यह भ्रममे रहे तो यह गोल गोल चलता रहे और हमारा तेल निकलता रहे इसीतरह हम आप सभी जीव अकेले चल रहे हैं भ्रम रहे हैं चारो गतियोमे या दुर्गतियोमे नई जगह नही चल रहे। क्षेत्र दृष्टिसे देखे तो लोकमे भ्रमरग कर रहे, भाव दृष्टिमे देखे तो इन्द्रियके विषय और मनके विषयको भोग रहे। वही कल भोग भोगे थे, वही आज भोगा और वही कल भोगेगे। कोई नई चीज है क्या ? अरे उसे तो अनन्त बार भोगा जा चुका है. छोडा जा चुका है, तो खा खा कर, छोडे उसे तो लोग कयाकरना कहते। यह सब जगतका विषय वैभव क्या हुआ है। भोग भोगका छोडा हुआ है। यह ज्ञान प्रकाश जगे और उससे विरक्ति जगे कि मुझे विषयभोगोसे प्रीति नही। मैं तो एक अपने आपके आत्मानुभवके लिए ही जीवित हूं। परवाह न करेकि क्या होगा हमारा। जो एक मुक्ति का मार्ग मिला बस उसपर चलें। जिस परिस्थिति मे हो उस परिस्थितिमे अपना कर्तव्य निभाये भला ही होगा, बुरा नही हो सकता। अच्छा भाव करके चलेंगे तो कभी बुराई नही आ सकती। बुरे भाव करके चलगे तो भले ही पूर्व पुण्यवश थोडा अभी पोल ढक जाय मगर उसका परिरणाम अवश्य मिलेगा। भीतरमे अपनी गुत्थी सुलझा ले। बाहर-मे सग्रह विग्रह करनेसे कभी सच्चा मार्ग न मिलेगा। भीतरमे निरखिये—यह मैं भावमात्र हूँ आकाशकी तरह अमूर्तहू। केवल जानना इसका एक गुरा है, उस जाननेमे आनन्द अपने आप बसा हुआ है। होता क्या है कि पूर्वबद्ध कर्म जब उदयमे आते है और उनका जब एक विकराल रूप सामने होता है, अनुभाग सामने आता है, उसका विस्फोट होता है तो उस समय ज्ञानमे ये सब रग आ जाते हैं। जहा ज्ञानमे यह कषायोका रग आया, इस रुप उपयोग बना कि इसमे नाना कल्पनायें होती है। मिथ्या श्रद्धानके समान कोई हमारा वैरी नही है और सम्यक्त्वके समान मेरा कोई मित्र नही। निर्णय ठीक करलो।

मानवधर्मसे आत्मधर्मके धारणकी पात्रता—भैया कर्तव्य तो गृहस्थीमे गृहस्थी जैसा करें, यह तो एक व्यवस्था सौंपी गई है कि तुम इन ५—७ जीवो की, स्त्री पुत्रादिक की व्यवस्था करो, तुम इन दो चार जीवोकी व्यवस्था करो। मानो यह व्यवस्था सौंपी गई है, ममताके लिए नही है ये घरके जीव। क्योकि मानो तुम्हारे घरमे ये जीव न आये होते, कोई ममताकी गुंजाइस रही क्योंकि ये मेरे है? जो आये, कोई आये। संसारमे चारो गतियोके जीव रुलते फिरते है। कोई आ गया आपके पास। आपका है कुछ क्या? कुछ भी नही है। सर्व जीव स्वतंत्र है। सबके अपने-अपने कर्म साथ है। सब अपने अपने उदयके अनुसार सुख दुःख पाते। किसीका कोई कुछ लगता नही, केवल एक अपने आपके ज्ञानका ही सहारा है, ज्ञान ही परमात्मतत्त्व है, ज्ञान ही सार है, वही मेरे लिए शरण है। जगतमे कोई दूसरा मेरे लिए कुछ नही है। फिर भीतरमे अपनी ईमानदारी खो देना, यह तो मेरा है, यह दूसरेका है, यह भ्रम है और यह बहुत क्लेश देने वाला भाव है। बात सत्य समझे। व्यवस्था अपने जिम्मे जो है उनकी करे। वह एक गृहस्थीका कर्तव्य है, किन्तु आत्माका कर्तव्य क्या है? देखो बात दो है—इसे लोग कहते है मानवधर्म, और एक दूसरी चीज है आत्मधर्म। चूंकि मानव धर्मका ही टोटा पड रहाहै इसलिए बडे बड़े भाषण होते है मानवधर्म पर। मानव बनिये, दानव न बनिये। परोपकार करो, सब पर समबुद्धि रखो दानव न बनिये। परोपकार करो, सब पर समबुद्धि रखो मानवधर्मके उपदेश होते है ना। तोपहिले मानवधर्मकी ही पात्रता नही है। मानव अपने कर्तव्यसे इतना दूर हो गए है, तो आवश्यकता है मानवधर्मके उपदेशकी। लेकिन एक बात और समझिये—मानवधर्मसे बढकर है आत्मधर्म। जहा आत्मधर्मका प्रसग आयगा उसका प्रयोजन क्या है कि जन्म छूट जाय, ज्ञाता दृष्टा रहू, केवलज्ञानज्योतिमात्र रहू और सदाके लिए क्लेशमुक्त हो जाऊं। आत्मधर्म का प्रयोजन यह है। और, मानवधर्मका प्रयोजन क्या है? देशमे, समाजमे सही व्यवस्था बनी रहे और कोई आपत्ति, गडबडी न आये इस जीवनमे यह है मानवधर्मका प्रयोजन। तोभाई पहिले मानव बने, यह तो ठीक है, पर मानव मानव ही बन बनकर जीवन गुजारना, यह भविष्यके लिए ठीक नही है। मानवधर्म तो और आत्मधर्ममे अग्रसर हो। एक बात और भी समझना चाहिए कि जो आत्मधर्मका अभिलाषी होगा उससे मानवधर्म तो अपने आप पलेगा, पर जो केवल मानवधर्म तक सीमित रह जायगा वह आत्मधर्म से वंचित रह जायगा। अब समझ लीजिए कि आत्मधर्मका कितना विशेष महत्त्व है।

सम्यक्त्वोपलब्धिकी भेदविज्ञानपूर्वकता—सम्यक्त्व पानेके लिए मूल बात यह है कि भेदविज्ञान करो। दो कभी एक नहीं बनते, यह निश्चित बात है, अगर अस्तित्व दो है

तो वे दो मिलकर एक कभी नही हो सकते, किन्तु यह मूढ अज्ञानी प्राणी करना चाहता है दो को एक। बस यह ही संघर्ष है जो ससारमे इसे रुलाये फिरता है। दो कभी एक नही हो सकते और यह दो को एक करना चाहता। देखलो जब मोह होता है, पिताका पुत्रमे मोह है तो ऐसा चाहता है कि मैं एक बन जाऊं, शरीर भी क्यो अलग रहे स्त्री और पतिमे प्रीति है तो वे चाहते है कि मेरा यह शरीरका भी भेद क्यो हो रहा? मै तो एक बन जाऊं ऐसा ऐसी कल्पनायें करता है यह जीव, पर जो बात हो नही सकती उसे कल्पना लाये तो उसका फल क्लेश है। कोई ५०—६० मन बोझ वाली गाडी बैल अथवा झोटा लादे लिए जा रहे हो, बच्चे लोग उसे हाथसे ढकेलते हों तो यद्यपि वह गाडी बच्चे लोग नही चला रहे। चला रहे वे बैल अथवा झोटा। अब वह गाडी कही रुक जाय तो वे बच्चे बडे दुखी होते है, हैरान होते है- हाय गाडी क्यो रुक गई? उन बच्चों के जोरसे लगानेसे कही वह गाडी चल तो न जायगी, गाडी तो बैलों अथवा झोटे द्वारा ही चलेगी, पर वे यह कल्पना करते है कि इस गाडीको मैं चलाता हूं इसलिए उन्हें दुःखी होना पडा ऐसे ही घर गृहस्थीके बीच रहने वाले ये अज्ञानी प्राणी मानते है कि मैं इस गृहस्थीको चलाता हू। मैं धन कमाता हूँ, मैं इस धनको अपनी तिजोरी मे रखता हू। इसपर मेरा पूरा अधिकार है, इन स्त्री पुत्रादिक पर मेरा पूरा अधिकार हैं, ये मेरे से बिछुडकर जायेंगे कहां? बिछुडते तो औरोंके है, ये मेरे से कभी न बिछुडेंगे, ऐसा विश्वास किए हैं ना? तो यह उनका झूठा विश्वास है कि नही? ऐसा जो विश्वास करेगा उसका फल क्या होगा? क्लेश ये संग मेरे साथ ही रहे ऐसा वे सदा तो नही रह सकते, अपने अपने समयपर गुजरेंगे। तो जब गुजरेंगे तब यह कष्ट मानेगा। याने निर्णय यह बनावे कि जितने हमारे कष्ट हैं वे छूटें। कष्ट है अज्ञानका, कष्ट है झूठे विश्वासका अन्यथा मेरेको कष्ट रंच नही। कष्टकी कहानी लोग बहुत सुनाते हैं तो उनकी सारी कहानीमे बात मूर्खकी भरी हुई, क्या कि परके प्रति झूठा विश्वास जगा, झूठा ज्ञान जगा इसलिए कष्ट पाया। इतनी सी बात है।

कषायोंकी बलिमे स्वानुभूति भगवतीकी प्रसन्नता—बहुत सी बातें आती है नाजो तुमको सबसे अधिक प्रिय हो उसका बलिदान करदो। मुसलमानीमे भी कहा है और उसका प्रयोग किया गया। किसीने सोचा कि मेरेको तो मेरा बच्चा प्यारा है तो उसकी बलि कर दू। अरे वह तो अर्थ ही नही समझा। बच्चा किसीको प्यारा नही, धन किसीको प्यारा नही, यह तो लोग झूठ कहते है कि हमे अमुक प्यारा है। प्यारी है सबको अपनी-कषाय। बच्चा तो वह ही है मगर कोई गडबड हो जाय, मन न मिले तो फिर उस बच्चेपर प्यार कहा रहा? स्त्री तो वही है, उसका मन बिगड गया, दिल हट गया, फिर कहा रहा प्यारा?

ये बाहरी पदार्थ प्यारे नही होते किसीको। यह तो झूठ कहते है कि मुझे यह प्यारा है। असली बात यह है कि मेरेको मेरी कषाय प्यारी लग रही। उस स्त्रीके बारेमे जो कुछ मैं सोचता हूँ, जो राग भाव होता है वह कषाय मेरेको प्यारी है। जब दिल न मिला उस समय द्वेष कषाय प्यारी हो गयी। पहिले राग कषाय प्यारी थी, अब द्वेष कषायप्यारी हो गई। तो कषाय सबसे प्रिय हुई। उस कषायकी बलि करनी पडेगी तब उद्धार होगा अन्यथा नही। जो कषायोकी बलि कर सकनेका साहस बना लेता है उसकी शान्ति कही नही गई। सदा है, और जो कषायोको नही छोडसकता वह कायर है। और कायर पुरुषोको शान्तिका अवकाश नही है भेद विज्ञानकी बात कही जा थी। जब तक यहा का भेद विज्ञान नही जगा तब तक बाहरके भेदोकी कोई बात कहे तो वह उसकी ऊपरी ऊपरी बात है। जैसे अनेक लोग कहते है अरे भाई किसका मकान है? यह तो बाहरकी चीज है, सब छूट जायगा। अरे तुम्हे अपने अन्दरका भेदविज्ञान जगा कि नही? नही जगा तो यह बात तुम्हारी केवल कहनेकी है, उसे त्याग नही सकते। जिसको यह भीतरमे ज्ञान जगा कि मैं तो ज्ञानप्रकाश मात्र हू। कषाय जगना आदिक जो कुछ है वह सब कर्मकी चीज है, कर्मका रग है, उसे मैं क्यो अपनाऊ? मै तो ज्ञान ज्ञान हू। ऐसा जिसने भीतरमे भेदविज्ञान किया उसकी सारी बाते सही है और जिसको अन्दर का भेद विज्ञान नही जगा उसकी बाते कोरी है, ऊपरी है। यो तो विचारो— जैसे रेलगाडियोमे या और भी अनेक जगह देखा होगाकि बहुत से वस्तुओ के नीलाम करने वाले लोग फिरा करते है। वे अपनी वस्तु लोगोको दिखाते है, उनसे वे उसकी बोली बुलवाते हैं। जो कुछ अधिक वोली बोलता है उसके पास वे उससे रूपया निकलवा कर देखते है। अगर रुपया निकल आया तो वे उसे कोई इनाम दे देते है और अगर सौदा ठाक-ठीक निपट गया तो वे उन रुपयोको अपनी जेब मे करते है और उस वस्तु को दे देते है। प्राय करके वे लोगोको बहका देते है और उनसे वे कुछ ठग ले जाते है। तो ऐसे ही समझिये कि ये दिखने वाले समस्त पर पदार्थ ठग है, बहकाने वाले है। अरे जिन्हे मेरा मेरा कह रहे वे सब मायारूप हैं उनसे धोखा ही धोखा है। अरे अपना एक वास्तविक ज्ञान बनाइये कि ये दिखने वाले पर पदार्थ मेरे कुछ नही है, मै तो एक ज्ञान मात्र हू ये कषाये, यह दिखने वाला देह यह ही जब मेरा नही तो फिर अन्य कुछ मेरा कैसे हो सकता है? जिसे बाहरमे अन्धेरा है वह बाहरमे जो कुछ भी बोलता है वह केवल उसका बोलना मात्र है।

जन्ममरणकी बाधासे मुक्त होनेके लिये अजर अमर अन्तस्तत्त्व की रुचिकी श्रेयता—अनात्मतत्त्वसे रुचि न रहे, केवल एक आत्मप्रकाशमे रुचि जग जाय, यह काम

करने का है अगर जन्म मरणकी वाधा मे मुक्त होना चाहते हो। सवमे वडी विपत्ति हम आपपर जन्ममरणकी लगी है। जीवनमें कुछ साधन वना लिया, मकान वना लिया और कुछ आरामके साधन बन गए तो वे मब वेकार हो जायेंगे। क्योंकि मरण होगया तो फिर से वही पाटी पढनी पडेगी तो यह ठाटवाट किस काम आयगा? थोडा मा कुछ साधनसा बन गया, फिर मर गए तो वे सब वात वेकार हो गई। यह जीव अनादि कालमे यही जन्म मरण करता आया। इस रही गही थोडी सी जिन्दगी मे ऐसा साधन वनाये कि अपनेको ऐसा जचेकि समस्त बाह्य पदार्थ वेकार की चीज है यह वात इस लिए मुना रहे है कि उनकी रूचि न रहे। करना पडता है मव। रहेगे कहा? रहेगे मकान मे। और यदि सब छूट जाय, इतना बल प्रकट हो जाय तो बहुत उत्तम है, पर नही प्रकट होता है तो घरमे रहना होता है। पर सत्य-सत्य तो ममभते रहें, उमसे अशान्ति न रहेगी। सम्यग्ज्ञानमे अशान्ति नही होती। जितनी अशान्ति होती है वह सब मिथ्याज्ञानमे है, और ऐसा अपने आपका निर्णय रखिये कि हमको जितने भी कष्ट है वे मव हमारे मिथ्या ज्ञानके कष्ट है। सच्चे ज्ञानमें तो कष्टका नाम नही कर्तव्यपथपर चले चलो। कमाई के समय कमाई करो, धर्मके समय धर्म करो, प्रतीति कभी मत छोडो। पूजनके ममय पूजनमे आवो स्वाध्यायके समय स्वाध्याय करो, पर प्रतीति अपनी कभी मत छोडो। मै इन सबमें निराला ज्ञान-स्वरूप मात्र हू। भेद विज्ञान ही बधु है। भेदविज्ञान ही पिता है, और भेदविज्ञान ही हमारा रक्षक है, दूसरा कोई रक्षक नही। वाहरी पदार्थो मे राग मोह करके चोटपर चोट सहते चले जाते है और फिर भी ज्ञानप्रकाशमे नही आते। ऐमा व्यामोह है जीवोको। तो इस जीवनमे एक प्रयोजन बनाले कि हमको ऐसा उपाय बनाना है कि मेरा जन्म मरण छूट जाय। इससे बढकर अन्य कोई बात अपने हितकी नही है।

कर्ममुक्त होनेके लिये कर्मविविक्त अन्तस्तत्त्वकी प्रतीतिकी प्राथमिकता—देखो एक छोटी सी कुजी है। सर्व दुखोसे, कर्मोमे, बाधाओमे मुक्त होनेकी कुजी। छूट वही सकती है चीज जो वाहर की हो। जो बात वाहरमे लगी हो वह ही चीज छुटसकती है। अन्य की चीज कभी नही छूट सकती। चौकीमे जो काठका असली रग है वह कभी छूट सकता है क्या? वसूलेसे कितना ही छीला जाय तो क्या वह रग छूट सकेगा? अरे काठ मे उसका जो निजका असली रग है वह उससे कभी छूट नही सकता। और जो काठ पर बीट या मैल लग जाय, या पालिसका रग लग जाय तो वह छूट सकता कि नही? अरे धोनेका उपाय बनाया जाय तो वह छूट सकता। तो जो चीज छूट जाने की है उस चीज के लदे हुए होने पर भी भीतरमे वह चीज उससे छूटी हुई ही है। चौकीका मल झाडनेसे छूट

जायगा तो जब तक मल लगा है चौकीपर तब तक भी वह चौकी अपने आपमे उस मलसे छूटी हुई है। खूब समझले, और ऐसी जिनको श्रद्धा है वे ही चौकी को साफ करते है, इसीतरह आत्माको जिन जिन बातो से छूटनेको आवश्यकता है, विषयकषाय, राग, कर्म देह, इनसे निराला होनेकी आवश्यकता है तो सम्यग्दृष्टि जानता है कि मैं इनसे छूटा हुआ अपना निजी स्वरूप रख रहा हू। तभी तो मैं छूट सकता हूँ। और, मेरे मे ही जन्म मरण घुसे हो, मेरे स्वरूपमे ही कषाय कर्म पडे हों तो ये कभी छूट नही सकते। कारीगर एक पत्थरमे से जिस मूर्तिको निकालता है वह मूर्ति उस पत्थरमे पहिलेसे बनी हुई है कि नही ? बनी हुई है। बस उसको ढकने वाले अगल बगलके पत्थर हटा दिये तो वह मूर्ति ज्यों की त्यो प्रकट हो गई, इसी प्रकार हमे होना है सिद्ध, प्रभु। तो सिद्ध क्या हुए ? जो मेरेमे स्व-भाव है, जो आत्मा मे स्वभाव है, वही केवल स्वभाव प्रकट हो गया इसको कहते है सिद्ध। तो कैसे प्रकट हो गया ? अरे वह था स्वभाव जो प्रकट हो गया, वह अनादिसे था, उसको ढकने वाले विषय कषायके पत्थर लगे थे। उन्हें ज्ञानकी छेनी, ज्ञानकी हथौडीसे काट काट-कर हटा दिया तो जो स्वभाव पहिलेसे था वह प्रकट हो गया। उसी को कहते है सिद्ध भगवान।

क्लेशमुक्तिका उपाय क्लेशविविक्त अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति—ममता छोडो, मिथ्यात्व हटाओ। भ्रमको नष्ट करो। सत्य सत्य स्वरूप समझो, सम्यक्त्व हो जायगा। और सदाके लिए क्लेश दूर हो जायगा। कभी कभी कोई यो भी कह बैठते है हमतो उसे बहाना समझते कि अगर सत्यस्वरूप समझेतो त फिर हम यह घर कैसे चलायेगे ? बात उनकी सही है। सत्यस्वरूप समझले तो कल्पित घर, मिट्टीका घर मायाका घर भ्रमका घर नही चला सकते, फिर तो वह उस आनन्दधामकी ही सम्हाल करेगा। पर स्वरूपको समझना, उस स्वरूपमे रत होना, ये दो बाते बने तब। स्वरूपको समझ लेने पर भी पूर्वबद्ध कषायोके सस्कार के कारण पहिले अज्ञानमे जो क्रियाये कर डाला उसके संस्कार के कारण इसे रहना पडता है घरमे, और सारी व्यवस्था करनी पडती है, करे व्यवस्था, पर अपनेको यह समझे कि हमारा नाम अब मोहियो की लिस्टमे नही है, मेरा नाम तो मैंने सिद्धभगवान की लिस्ट-म लिखाया है। तो ओर दृष्टि होनी चाहिए। मेरेको तो सिद्ध होना है। मुझे यहां नही रहना है, मेरेको तो सिद्ध लोकमे रहना है। मेरे को तो शुद्ध स्वरूपमे रहना है यह रहने की चीज नही। राग सताते हैं। रहना पडता है रह रहे है, रहते जाते है मगर प्रतीतिमे यह बात लावे कि मेरेको रहनेका यहाँ काम नही। मेरेको तो स्वरूपमे रहनेका, सिद्ध लोकमे रहनेका काम है। बात भेद विज्ञानकी कही है, जिसमे स्वाध्याय बने। स्वका अध्ययन बने

और इस स्वरूपकी दृष्टि हमारी प्रबल बने तो चाहे बड़ीसे बड़ी विपत्तियाँ आये, पिता गुजर गया, पुत्र गुजर गया, या और कोई भी बड़ीसे बड़ी घटना घट गई, कैसी कुछ भी बड़ी से बड़ी विपत्ति आये तो यह उसे देखता रहे, हसता रहे, बाहर की चीज है, बाहरका बाहरमे परिणमन हो गया। यदि ऐसा ज्ञानबल जग जाय तोफिर इसके विपत्तिका नाम नही।

मोक्षोपाय व मोक्षोपायोंके प्रथम अङ्गका स्वरूप कह कर सम्यक्त्वोत्पत्तिविधिका प्रकरण मोक्षशास्त्रमे सर्वप्रथम संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय बताया गया है, वह उपाय है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व। सम्यग्दर्शन कहते हैं—पर द्रव्योसे भिन्न परभावोंसे भिन्न जो एक अनादि निधन अहेतुक चैतन्यस्वभाव है उसरूप अपने आपकी प्रतीति हो कि यह हूँ मैं, और मै कुछ नही हू, बाकी सब मायाजाल है। मैं गृहस्थ हूँ तो, साधु हू तो, यह सब एक पर्याय है। यह मै नही हू। यद्यपि इनमे से मैं गुजरता हू लेकिन यह तो विनाशीक चीज है, मैं अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्यस्वभावी हू जिसको कारणरूपसे ग्रहण कर करके स्वभाव गुणपर्याये होती रहती है, इसकी प्रतीतिको सम्यग्दर्शन कहते है, और इस आत्मस्वरूपके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते है और आत्मस्वरूपमे रमण करने को सम्यकचारित्र कहते है। मोक्षमार्गके उपायस्वरूप सम्यग्दर्शनका स्वरूप इस दूसरे सूत्रमे कहा गया है। अब तृतीय सूत्रमे कहा जा रहा है कि वह सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है? तन्निसर्गादधिगमाद्वा—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से स्वभावसे उत्पन्न होता है अथवा परोपदेशसे उत्पन्न होता है? इस सम्बन्धमे कुछ वर्णन किया गया है। निसर्गका अर्थ है स्वभाव, सहज स्वभाव। यद्यपि सम्यग्दर्शन सभी अपने सहजस्वभावकी ही व्यक्ति है इसलिए सहज स्वभावसे हुआ ऐसा कहनेमे भी कोई अपराध नही लेकिन सम्यग्दर्शन अब तक नही है, और अब हुआ। तो जो नहीं है और अब हुआ, इसमे कारण क्या है? अगर सहजस्वभाव ही कारण हो तो वह अनादि से ही रहना चाहिए था, लेकिन अनादि से तो नही है और अब हो रहा है तो उसमे कोई कारण तो होगा। उस कारण का यहा वर्णन है। निसर्गसे अथवा अधिगमसे होता है। परोपदेश बिना अन्य कोई कारण जुटे तो वह निसर्ग कहलाता है। परोपदेश हो तो वह अधिगम कहलाता है। इस प्रकार सूत्रका अर्थ कि वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा परोपदेश से उत्पन्न होता है।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा सूत्रमे तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानका ग्रहण कर लेने की आशंका— अब इस सूत्रमे तत् इस पदका विचार कीजिए। तत्के मायने है, 'वह'। वह निसर्गसे अथवा उपदेशसे उत्पन्न होता है तो वह से क्या अर्थ लिया जाय? वह मे कोई नाम तो आया नही, यहही कहा गया— 'वह उत्पन्न होता है।' तो वह क्या चीज है? सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान

या सम्यक्चारित्र या मोक्षमार्ग या और कुछ। तत् से क्या मतलब है ? इस पर कुछ विचार कीजिए। तनमे यहाँ अर्थ है सम्यग्दर्शन केवल सम्यग्दर्शन, वह निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है, कौन ? सम्यग्दर्शन। ज्ञान चारित्र मोक्ष मार्ग, इसका अर्थ नही है तत शब्दसे, क्योकि निसर्ग और अधिगम से सम्यग्दर्शन ही होता है। अच्छा, तो बताओ ज्ञान निसर्गसे या परोपदेशसे होता है, यह बात रखी जाय याने यदि तन्निसर्गाधिगमाद्वा इस सूत्रका यह अर्थ किया जाय कि सम्यग्ज्ञान निसर्गसे अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है तो इसमे क्या हर्ज है ? देखिये सूत्रका अर्थ क्या है यह तो समझते नही अथवा समझना भी नही चाहते। केवल पाठ कर लिया इतने से ही सन्तोष कर लेते है कि हमने उपवास मे, व्रतमे पाठ कर लिया। यद्यपि वहा भी कुछ फल है, पर वह—जैसी श्रद्धा है उतना मात्र है। तत्त्वार्थसूत्रका पाठ करनेसे भला होता है, धर्म होताहै, पुण्य होता है। उपवासका फल मिल जाता है, श्रद्धा है, उसके अनुसार मद कषाय है। उस मद कषायका उसे फायदा तो हुआ, लेकिन सूत्र मे क्या विषय है, किसका प्रतिपादन है यह और कोई उसके साथमे जानले तो महत्त्व उसका ही है। अच्छा तो कुछ लोग सूत्रका अर्थ भी जानते है लेकिन एक दो दिन मे ही जल्दी जल्दी पढ लिया, एक दिनमे एक अध्याय पढना होता है तो उसे बहुत जल्दी-जल्दी बांचा जाता है, उसमे बडी आकुलता बनी रहती है। देखो—तत्त्वार्थ सूत्रका दूसरा नाम है मोक्षशास्त्र। यह एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ है कि इसका वाचन, अध्ययन, मनन करे तो वर्षो लग जाय। देखिये-इस तृतीय सूत्रमे कहा जा रहा है तन्निसर्गादधिगमद्वा, वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है, यहा शंका यह रखी गई कि तत् शब्दसे यह ही अर्थ क्यो लगगया ? तत् मायने वह सम्यग्दर्श, सम्यग्दर्शन ही क्यो लिया ? हम यह अर्थ करेन कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है, तो इसमे क्या आपत्ति है। देखिये—शब्दरचना करना सूत्ररचना करना, हर एकके वशकी बात नही है। जो व्याकरण न्याय,धर्मशास्त्र, सिद्धान्त सभीमे पारगामी हो, उसको ही अधिकार है कि वह सूत्रनिर्माण करे, कुछ शब्द अधिक हो गए तो वह भी रचनाके अनुकूल नही है। और अगर कोई शब्द बदल कर आ गया तो वह भी रचनाके अनुकूल नही है। सूत्र उसे कहते है जिसमे थोडे अक्षर हो और नि सन्देह अर्थ झलक जाय।—तो तन्निसर्गादधिगमद्वा, इस सूत्रका अर्थ तो है कि वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है, सूत्रकारका भी अभिप्राय है कि सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है। शंकाकार यहाँ यह कह रहा है कि यह मानलो कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगमसे होता है। अब इसका समाधान सोचिये।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा 'सूत्रमे तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानका ग्रहण न किये जानेका कारण

बनाते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शंकाका समाधन यह मिलेगा कि चूंकि सम्यग्ज्ञान सभोके सभी निसर्ग और अधिगमसे नही होते। सम्यग्दर्शन ही एक ऐसा है कि प्रत्येक सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है। अगर ज्ञान और चारित्रकी उत्पत्तिमे निसर्ग अधिगम को कारण माना जाय तो सिद्धान्तसे विरोध खाता है। देखिये सिद्धान्तकी बात, जरा इस विषयको विकल्पमे देखिये, यदि यह कहा जाय कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है तो जरा यह तो बतलावो कि कौन सा सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगमसे होता है। सम्यग्ज्ञान है दो प्रकारके, एक समस्त पदार्थो को विषय करने वाला और एक नियतपदार्थ को विषय करने वाला। याने केवलज्ञान, सकल ज्ञान और विकल ज्ञान, तो क्या सकल ज्ञानके बारेमे आप कह रहे हैं कि वह निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। यदि सकल ज्ञान के विषयमे कहते हो तो यह बात यो युक्त नही है कि केवलज्ञान निसर्गसे नही होता, वह समस्त श्रुतपूर्वक होता है, याने क्षीण मोह गुणस्थानमे सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्रकट हो जाता है तब वहा केवलज्ञान होता है और श्रुतज्ञान उपदेशपूर्वक ही होता है, जिसको श्रुतज्ञान पूर्ण हुआ है, कुछ पहले उपदेश जरूर पाया हो, अध्ययन किया हो, सुना हो दूसरोने बताया हो, फिर क्षयोपशम बढकर श्रुत ज्ञान पूर्ण हो जाय लेकिन उसमे मूल प्रभाव तो उपदेशसे हुआ तो तो उपदेश पूर्वक हुआ सकल श्रुत ज्ञान और श्रुतज्ञान पूर्वक हुआ केवलज्ञान इसलिए केवल ज्ञानको हम निसर्गज नही कह सकते। यद्यपि केवल ज्ञानमे उपदेश कारण नही है साक्षात् अगर देख तो, वह एक निर्विकल्प शुक्ल ध्यानसे प्रकट होता है लेकिन केवलज्ञान जिसके भी हुआ है उसे सकल श्रुतज्ञानपूर्वक हुआ है और सकल श्रुतज्ञान जिसे होता है उसे परोपदेश पूर्वक होता है, इस धारा से केवल ज्ञानको निसर्गज नही कह सकते। यो तो सभी ज्ञान निसर्गसे होते है, किसी दूसरे पदार्थके आश्रय से नही होता है। जैसी दृष्टि करे वैसा उत्तर आता चला जायगा। लेकिन इस सूत्रमे निसर्गका इतना ही अर्थ है कि परके उपदेश बिना किसी अन्य कारणसे तो उसे कहते है निसर्गज। तो केवल ज्ञान सकल श्रुतज्ञानपूर्वक होता है अत उसे निसर्गज न कहेगे। और श्रुतज्ञान परोपदेश पूर्वक होता है। अगर परोप देश न हो तो श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकती।

स्वयबुद्ध और बोधितबुद्ध दोनोके ज्ञानकी अधिगमजता—अब उक्त समाधान सुनकर आशंका सामने आती है कि दो प्रकार के साधक होते हैं—स्वयबुद्ध और बोधितबुद्ध। स्वय बुद्ध वह है जो परके उपदेश बिना स्वय ज्ञानी बन गया हो और बोधित बुद्ध उसे कहते है जो किसी दूसरे के उपदेशको पाकर ज्ञानी हुआ हो। तो उनमे बोधित बुद्ध भले ही परोपदेशपूर्वक श्रुत ज्ञानका धारी माना जाय लेकिन प्रत्यकबुद्धका श्रुत ज्ञान तो परोपदेशपूर्वक

नही है । तब यह कैसे कहा गया कि श्रुतज्ञान परोपदेश पूर्वक होता है । लो स्वयं बुद्धका श्रुतज्ञान तो निसर्गज हो गया । इसके समाधान मे देखिये—अभिप्राय ज्ञानके विषयमे स्वयं बुद्ध और बोधित बुद्धके लक्षणके प्रसगमे यह है कि स्वयं बुद्ध को उस भवमे दूसरे का उपदेश नही मिला और ज्ञानी हो गया । बोधितबुद्धका अभिप्राय है कि उस भव मे दूसरेका उपदेश मिला तब वह ज्ञानी होता है । तो स्वय बुद्धको यद्यपि उस भवमे दूसरेका उपदेश नही पाया था उसका संस्कार बना है और उससे ज्ञान प्रकट होता है । एक कथा सुना होगा कि एक ब्राह्मणके कोई पुत्रीथी । वह एक बार सबके साथ जाकर एक बनमे मुनिराज के दर्शन को गई । वहा मुनिराजके मुखसे उसने ५ प्राकारके पापोंका वर्णन सुना वर्णन सुनकर उसका चित्त पवित्र बना और उसने ५ पापोका त्याग कर दिया । घरमे लडकी आयी, अपने पिता से कहा कि मैंने तो आज मुनिराजसे ५ पापोके त्यागका व्रत लिया है । तो उसकी बात सुनकर पिता नाराज हो गया । बोला—अरे मुनिराजने बिना मेरी आज्ञा तुझे व्रत क्यो दिया ? मैं तेरा व्रत छुडा दूंगा । चलो उन्ही मुनिराजके पास । जब वे दोनो मुनिराजके पास जा रहे थे तो एक जगह रास्तेमे लडकी ने देखा कि किसी व्यक्तिको फासी दी जा रही थी । लडकी ने पूछा—पिता जी यहा क्या हो रहा है ? तो पिताने बताया कि किसी पुरुषने किसीकी हत्या करदी है तो उसको फासी की सजा दी जा रही है । तो लडकी बोली-पिता जी जब हिंसा करने का यह फल है तो मैंने हिंसा पापको छोड दिया तो बुरा किया ? ठीक किया बेटी पर तू एक यह नियम रख ले बाकी ४ नियम तो छोड दे । कुछ और आगे बढे तो लडकी ने क्या देखा कि एक जगह किसी पुरुषकी जीभ काटी जा रही थी । वहाँ लडकी ने पूछा—पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो पिता बोला—बेटी यहा किसने झूठ बोला है इसलिए उसकी जीभ काटी जा रही है । तो पिता जी मैने झूट बोलनेके पापको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? ठीक किया बेटी, तू ये दो नियम रखले, बाकी तीन नियम तो छोड दे । कुछ और आगे जाकर लडकीने देखा कि किसीपुरुषको सिपाही लोग हाथमे हथकडी डालकर पकड़े लिये जा रहे थे । तो वहा लडकीने पूछा पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो पिताने बताया—बेटी यहा किसीने चोरी किया है इसलिए उसे सजा देनेके लिए सिपाहीलोग पकडे लिए जा रहे हैं । तो पिता जी मैंने इस प्रकारके चोरी के पापकोत्याग दिया तो कोन सा बुरा किया ? ठीक है बेटी, तू इन तीन नियमोको रखले बाकी दो नियम तो छोड दे । कुछ और आगे बढे तो क्या देखा कि एक जगह किसी पुरुषके हाथ पैर काठ मे फसाये जा रहे थे । वहां लडकीने पूछा—पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो पिताने बताया—बेटी यहा किसी पुरुषने कुशील किया है इसलिए उसे सजा दी जा रही है । तो पिता जी मैने कुशील

होता है। यहा तो सम्यग्दर्शन ही विवक्षित है, क्योकि त्रिविध सम्यग्दर्शनोंमे ऐसी विशेषता है कि ये निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होते हैं। अब यहा कोई ऐसी आशका रखे कि चलो ५ ज्ञानोमे कोई भी ज्ञान निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न होना न बन सका तो ज्ञान-सामान्यको हम यहां तत् शब्दसे ले और फिर यह बात समझ लेगे कि कोई सम्यग्ज्ञान निसर्गसे होता कोई अधिगमसे होता। सभी ज्ञान ज्ञान ही तो है और तत् शब्दसे ज्ञान-सामान्य ले लोगे, उनमे कोई निसर्गसे होगा कोई अधिगमसे होगा तो लो ज्ञानसामान्यमे तो द्विविध हेतुता आ गयी ना, ऐसी भी आशका न रखना चाहिए, क्योकि इस तरह तो द्विविध हेतुता दर्शनमे ही है याने व्यक्तिगत प्रत्येक सम्यग्दर्शन वह औपशमिक हो, क्षायोपशमिक हो या क्षायिक हो, तीनो निसर्गसे भी हो सकते और अधिगमसे भी हो सकते, किन्तु ज्ञानमे कोई भी ज्ञान नही है जो निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न होता है। मतिज्ञान निसर्ग से होता है, श्रुतज्ञान उपदेशसे होता, अवधिज्ञान, मन. पर्ययज्ञान निसर्गसे होता। केवलज्ञान श्रुतज्ञानपूर्वक होता है और वह श्रुतज्ञान उपदेशपूर्वक होता है यों किसी भी ज्ञानको नही कह सकते कि वह निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न होता है। इसी कारणसे तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानको न ग्रहण करना, किन्तु सम्यग्दर्शन ही विवक्षित है। तन्निसर्गात् अधिगमाद्वा, वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है।

सम्यग्दर्शनकी सहज विशुद्धता—अब सम्यग्दर्शनकी बात देखिये सम्यग्दर्शन एक ऐसा सत् प्रकाश है, ऐसी ज्ञानस्वच्छता है, ऐसी आत्माकी विशुद्ध है कि सम्यक्त्वके होने पर उसके ज्ञान और चारित्र सम्यक हो जाते हैं। देखिये—सम्यक्त्व बिना कितना ही पुष्ट ज्ञान हो फिर भी ज्ञान सम्यकपनेको प्राप्त नही होता। वहा एक ऐसी अनुभूति की गई है इस आत्मामे कि जो एक सहज निरपेक्ष सत्य निजकी अनुभूति है। जिसके होनेपर स्पष्ट विदित हो जाता कि जगतका यह समस्त रजकण, जगतके ये सब जीव मुझसे अत्यन्त निराले है। आत्माका किसी से रंच भी सम्बध नही फिर मरे लिए कौन शरण ? मैं ही एक मात्र अपना शरण हूँ, ऐसी प्रतीतिपूर्वक अनुभूतिपूर्वक जिसकी दृष्टि बनी है अब उसे विचलित करनेमे कोई समर्थ नही हो सकता, जब कि मोही जनोको लग रहा कि कषाय करना सरल है, रागकी बात सरल है, समागम बनाना सरल है, ज्ञान और वैराग्य तो उनके लिए बडी कठिन चीज है, पता ही नही कि यह सहज हो सकने वाली चीज है। असम्भव होगी, मोहियोको इस प्रकार दिखता है। देखिये कोई मोही किसी विरक्त पुरुष के वैराग्यकी अदभुत महिमा सुनकर विश्वास नही कर पाता। सुकौशल मुनिराज थोड़ी ही उम्रमे जब कि उनकी स्त्रीके गर्भ था, विरक्त हुआ और छोडकर चल दिया, लोगोने बहुत

समझाया, अरे बच्चा तो हो जाय तब जाना। यहाँके मोहियोंको विश्वास नहीं होता कि ऐसा हो भी सकता है क्या? लेकिन जहाँ आत्मतत्त्वकी अनुभूति होती है वहा ऐसा आनन्द प्रकट होता है, कि फिर जिसके सामने सारा जगत धूलवत् दिखता है उसके जगतके परतत्त्वोंमे कैसे प्रतीति हो सकती है? हो गए वे मुनिराज।

ज्ञानीके पराक्रमकी विलक्षणता—एक कथा सुनी होगी वज्रबाहुकी। वह विवाह करके स्त्री सहित आये ४—६ दिन बाद स्त्रीका भाई उदयसुन्दर लेने आया, तो वज्रबाहुको इतना राग था उस स्त्रीमे कि उसे एक क्षण भी छोड नही सकता था। जब लेने आया भाई, तो स्त्रीके साथ वज्रबाहु भी चल दिया। अब वे तीनो प्राणी किसी जगलमे से गुजर रहे थे। रास्तेमे देखा कि एक जगह कोई मुनिराज विराजे थे। मुनिराजकी मद मुस्कान और शान्त मुद्राको देखकर वज्रबाहुका मोह गल गया। वह इस चिन्तनमे पड गए कि अहो, धन्य है इन मुनिराजको और धिक्कार है मेरे मोहको, इस मेरे मोहने मुझे कितना विपत्तिमे डाल रखा है यह देखो शान्त सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष कैसा अद्भुत आनन्द पा रहे है। वह उन मुनिराजको टकटकी लगाकर देख रहा था। उदयसुन्दरने उससे मजाक किया। क्या आप भी मुनि बनेगे? क्यों, यदि मैं मुनि बन जाऊं तो क्या तुम भी बन जाओगे।' तो उदयसुन्दर तो जानता था कि यह मोही पुरुष क्या मुनि बन सकेगा, सो झट कह दिया हा यदि तुम मुनि बन जावोगे तो मैं भी बन जाऊगा। अब क्या देर थी। वज्रबाहु वही दीक्षित हो गया। ऐसी अद्भुत घटना देखकर उदयसुन्दरका भी मोह गल गया। वह भी मुनि हो गया। ऐसी दो पुरुषोकी विचित्र घटनायें देखकर स्त्रीका भी मोह गल गया वह भी वही दीक्षित हो गई। तो मोहियोको विश्वास हो सकता है क्या कि ऐसा भी हो सकता है। वे तो असम्भव सा समझते हैं। मोहियोंकी तो यह आदत है कि वे घरसे बाहर जायेगे तो स्टेशनपर ही पत्र लिखेंगे, रोज-रोज घर पत्र डालेंगे। भला इन ज्ञानी पुरुषोंका पता न पूर्व देशको हैं न उत्तर देशको और मुनि हो गए, दीक्षित हो गए। मोहियोंको विश्वास ऐसी घटनामे नही होता। अब जरा ज्ञानियोकी दुनियामे आइये। उन्हे मोही पुरुषोंकी करतूतपर आश्चर्य होता है। कैसे ये करते हैं, क्या इन्हे पडी है, क्यो पर वस्तुमे इन्हे मोह बसता है? क्या सम्बध है? बडा कष्ट है, क्यो ये परका ख्याल रखते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष-के तो मोहियोके प्रति विचित्रता सी मालूम होती है। जिसने सम्यग्दर्शन पाया है उसकी एक अद्भुत दशा हो जाती है, वह अपने ही ज्ञानमे मग्न रहता है, अपने ही ज्ञानमे सतोष पाता है और अपने ही ज्ञानमे आनन्दमग्न रहता है ऐसे पुरुषको किस कारणसे अन्तस्तत्त्वका अनुभव उत्पन्न होता है यह प्रसग चल रहा है। सम्यग्दर्शनकी उद्भुति किसीके निसर्गसे और

किसीके अधिगमसे होती है। यद्यपि उद्भूतिके कालमे उपदेशका कही प्रसंग नहीं है और निसर्गमे भी जो कारण बताये जाते हैं, जातिस्मरण, वेदनाप्रभव, देवदर्शन आदिक, ये भी कोई प्रसंग वहा नही हैं। लेकिन जिनके ये तीन करण होते है, जिनके प्रसादसे सम्यक्त्व होता है उनकी क्या स्थिति थी कि जिससे उत्तरोत्तर बल पाकर सम्यक्त्व किसी के निसर्गसे और किसीके अधिगमसे होता है। तो सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है, यह सूत्रका अर्थ है।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा सूत्रमें तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानके अग्रहणकी भांति सम्यक् चारित्र व मोक्षमार्गका अग्रहण होनेसे सम्यग्दर्शनके ग्रहणकी उपयुक्तताका उपसंहार—अब इस प्रसंगमे एक नई आशका और आती है कि तत् शब्दमे सम्यग्ज्ञानको नही लिया जा सकता तो मत लो, पर सम्यग्दर्शनको ही क्यो ले रहे ? सम्यक् चारित्रको ले लीजिए। चारित्र तो निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न हो सकता है। तो तत् शब्दसे हम यहा चारित्र अर्थ लेंगे। तो इस आशकाके विषयमे भी वही बात सोचिये कि क्या चारित्र भी निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न होता है ? न होगा। चारित्र तो अधिगमज ही होता है, क्योकि चारित्रका पालन जो करता है वह श्रुतज्ञानपूर्वक करता है, उन्होने सुना, अध्ययन किया, उपदेशमे सुना तो उनको उस विषयकी सुमति जगी, चारित्र पालने लगे। तो जितने चारित्र है वे श्रुतपूर्वक है और इसी कारण चारित्रके जो भेद है वे सब अधिगमज होंगे तो उनमे कोई निसर्गपना नही है, सो चारित्रमे भी नही कह सकते कि चारित्रपना दो हेतुवोंसे होता है। तो न तो चारित्रको कह सकते कि वह निसर्ग, अधिगम दोनोसे होता न सम्यग्ज्ञानको कह सकते, किन्तु सम्यक्त्व ही एक ऐसा इन तीनमे है कि जो निसर्गसे भी हो सकता है और अधिगमसे भी हो सकता है। तब तत् शब्दका अर्थ सम्यग्दर्शनका लेना, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रसे न लेना, और न मोक्षमार्ग से लेना कोई यह कहने लगे कि शब्दसे न सम्यग्दर्शन ले, न सम्यग्ज्ञान ले, न सम्यक्चारित्र ले किन्तु मोक्षमार्ग ले लै ? नही, मोक्षमार्ग निसर्ग अधिगम दोनोसे उत्पन्न नही होता। मोक्षमार्ग क्या चीज है ? वह तो तीनरूप है। उन तीनोपर ही तो विचार किया जाना चाहिए कि वे किस कारण उत्पन्न होते है ? तो तत् शब्दसे यहा सम्यग्दर्शन ही विवक्षित होता है। तो सम्यग्दर्शन किसीमे निसर्गसे होता है किसीमे अधिगमसे।

अधिगमकी अद्भुतकारणरूपता—अब देखिये सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेमें यद्यपि निमित्त कारण एक ही प्रकारसे सबमे है। दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियां और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन ७ प्रकृतियोंके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमसे क्षायोपश-

मिक सम्यक्त्व और ७ प्रकृतियों के क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है। तो निमित्त कारण तो उन ७ प्रकृतियोका अभाव है, उसपर यहा विचार करनेकी आवश्यकता नही, वह तो है ही, किन्तु व्यवहारमे जो सम्यक्त्व देखा जाता है तो वह किस किस कारणको लेकर उत्पन्न होता है ? सम्यग्दर्शन अहेतुक तो है नही कि किसी कारणसे न हुआ हो। जो चीज नही है और किसी समयसे हो उसका नियमसे कोई कारण होता है, अहेतुक नही होता। जो अहेतुक हो वह अनादिसे होता है। सम्यग्दर्शन अनादिसे नही है। भले ही चाहे वह अनन्त काल तक रहे, मगर उत्पत्तिकी बात कही जा रही है। जो अहेतुक होता है वह किसी दिनसे होता हो, उसमे ऐसी बात नही कही जा सकती। सम्यग्दर्शन अहेतुक नही है, यह तो अनुभव ही बता रहा। जगके इतने मोही जीव ऐसा घोर कष्ट पा रहे है, तो यह वेदना, भ्रांतज्ञानसे है, यह मिथ्यात्व ही तो है। सम्यग्दर्शन हो तो यह कष्ट क्यो भोगना पडता इस जीवको। अनादिसे मिथ्यात्व बस रहा है और अब हुआ सम्यक्त्व, तो उसका कारण अवश्य सोचना चाहिए। कुछ कारण जरूर है, तो निमित्त कारण तो ७ प्रकृतियोका अभाव अथवा हटना है और बाह्य कारणोमे किसी को तो परोपदेशसे होता है और किसी को निसर्गसे अर्थात् उपदेश बिना कुछ अन्य कारण घटना पाकर, जातिस्मरण आदिक पाकर। देखिये यहा वह बात कही जा रही है—एक ओर तो परोपदेश और दूसरी ओर परोपदेशको छोडकर बाकी सब बाह्य कारण। परोपदेश एक ऐसा अद्भुत कारण हैं कि सब कारणोके मुकाबलेमे एक पलडेमे ही रखा गया है और इस परोपदेशकी कितनी अद्भुत महिमा गायी जा रही है तो परोपदेश एक बडा महत्त्वशाली उपाय है। वैसे देखो तो देशनालब्धि के बिना किसीको भी सम्यक्त्व नही हुआ। देशनालब्धि अवश्य होती है। चाहे पूर्वभवमे हो चाहे इस भवमे हो। देशनालब्धिको बात यहा नही कही जा रही है। इस भवमे किसी जीवका परके उपदेश पूर्वक सम्यक्त्व होता है तो किसीको परोपदेश बिना जातिस्मरण आदिक ऐसी घटनाओको पाकर सम्यग्दर्शन होता है। यो सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम दोनोसे उत्पन्न होता है। तो तत् शब्दसे यहा सम्यग्दर्शन लिया है। सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रका ग्रहण यहा तत् शब्दसे नही किया गया है।

प्रधान शब्द मोक्षमार्गका ग्रहण न हो कर सम्यग्दर्शनका ही ग्रहण हो एतदर्थ तत् शब्दका तन्निसर्गादधिगमाद्वा सूत्रमे निबधन—मोक्षशास्त्रके तृतीय सूत्रमे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके कारण बताये जा रहे हैं। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निमित्त तो सम्यक्त्वघाती ७ प्रकृतियोका उपशम, क्षय और क्षयोपशम है, पर बाह्य साधन किसीके लिए परोपदेश पडता है तो किसी के लिए परोपदेशके बिना जातिस्मरण आदि ही होता है। इस तरह निसर्गज और

अधिगमज सम्यग्दर्शनके दो भेद कहे गए है। तत् शब्द किसको ग्रहण करता है ? जो निसर्ग और अधिगमसे होता है। तो वह कौन है। इसको भलीप्रकार सिद्ध किया गया कि वह के मायने है सम्यग्दर्शन। अब एक आशका और रखी जा सकती है कि इस सूत्रमे यदि तत् शब्द न देते, सीधा इतना कह देते निसर्गात्अधिगमाद्वा, स्वभावसे और अधिगमसे उत्पन्न होता है। स्वभावके मायने निसर्गसे और अधिगमसे उत्पन्न होता है। कौन होता है ? सम्यग्दर्शन जिसकी बात चल रही वही तो ग्रहणमे आयगा। तो तत् शब्द निरर्थक है, क्योकि सूत्ररचना मे सामर्थ्यकी वजहसे दर्शनसे सम्बंध हो जायगा पहिले कहा—तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्द—र्शनं तदनतर ही कहा गया निसर्गादअधिगमाद्वा, बात जहा जो चल रही उसकी बात आ जायगी, तो तत् शब्द न डालना चाहिए। वैयाकरण लोग तो एक भी शब्द लघु हो जाय तो उसमे बड़े खुश हो जाते है। तो तत् शब्द हटा लीजिए, ऐसी एक आशका रखी है। अब चलिये समाधानमे-जब सूत्र इतना ही बनाया जा रहा है निसर्गादअधिगमाद्वा, निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। कौन होता है ? तो कोई कहेगा सम्यग्दर्शन। कोई कह देगा ? मोक्षमार्ग होगा तो मोक्षमार्गका भी सम्बध बन जायगा, फिर सूत्रका अर्थ सही न रहेगा इसलिए तत् शब्द डालना पडा। यहा यह बात बिचारी जा सकती कि तत् शब्द न डाले, केवल यह कहे— कि निसर्ग और अधिगमसे होता है। तो लिया वह जायगा जो पासमे शब्द पड़ा हो। तो तीसरे सूत्रसे पहिले आया हुआ है दूसरा सूत्र—तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। तो सम्यग्दर्शन शब्द कहकर जब निसर्गादधिगमाद्वा कहा जायगा तो सम्यग्दर्शन ही तो लिया जायगा। मोक्षमार्ग कैसे ले लिया जायगा ? तो तत् शब्द निरर्थक ही रहा। लेकिन यह बात सही यों नही है कि भले ही इस तीसरे सूत्रसे पहिले दूसरे सूत्र मे सम्यग्दर्शन शब्द आया है लेकिन एक न्याय होता है कि निकटकी अपेक्षा प्रधान बलवान होता है तो इस सारे शास्त्रमे मोक्षमार्गका वर्णन है, सम्यक्त्वका तो प्रकरण पाकर वर्णन चल रहा है, पर पूरे मोक्षशास्त्रमें तो मोक्षका ही वर्णन है. मोक्षका ही एक अग सम्यक्त्व आयगा। निकट शब्द है सम्यग्दर्शन, मगर प्रधान शब्द है मोक्षमार्ग इसलिए मोक्षमार्गका इसमें ग्रहण हो जायगा तब तो मोक्ष मार्गका सम्बध ही लाना पडेगा। तो मोक्षमार्गका मतलब इस सूत्रमे तत् शब्दसे नही है किन्तु सम्यक्त्वका मतलब है अतएव तत् शब्द डाला 'वह'। और, प्रक्रिया भी ऐसी ही है। इसका नाम सम्यग्दर्शन है और वह निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता। तो वह कहनेसे निकटवर्तीका ही ग्रहण होगा, प्रधानका नही। अगर कुछ न कहे तो प्रधान का ग्रहण होता, मोक्षमार्गका होता, इसलिए इस सूत्रमे तत् शब्द डाला। बताया भी गया कि सूत्र मे कोई शब्द निरर्थक न हो, कोई शब्द अधिक न हो, ऐसी शब्दरचनासे सूत्र बनता है जैसे कि

ईंटोंपे भोट बनो। उसमें एक भी ईंट ज्यादह पड जाय तो काम न बनेगा, कोई ईंट कम रख दी जाय तो काम न बनेगा, इसीतरह सूत्रमे कोई शब्द कम नही होता और न कोई शब्द अधिक होता। तो यहा तक क्या बात आयी कि तन्निसर्गादधिगमाद्वा, इस सूत्रमें तत् शब्दमे ग्रहण किया गया है सम्यग्दर्शनको, क्योकि सम्यग्दर्शन निकटमे है। इस सूत्रसे पहिले सूत्रमे आया है।

लिङ्ग व वचनकी समानतासे भी तत् शब्दसे सम्यग्दर्शनके ग्रहणकी उपयुक्तता—एक आशका यह भी की जा सकती है कि पहिले तो मोक्षमार्ग ही शब्द आया। देखो पहिले सूत्रमे तो मोक्षमार्ग शब्द है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग और दूसरे सूत्रमे सम्यग्दर्शन शब्द है। तो तीसरे सूत्रमे पहिले जैसे सम्यग्दर्शन आता है वैसे ही मोक्षमार्ग भी तो आता है तो सम्यग्दर्शनको ही क्यो ग्रहण करते? मोक्षमार्गको क्यो नही ग्रहण करते? उत्तर इसका कारण यह है कि मोक्षमार्ग तो बहुत पहिले है और अनन्तर पहिले सम्यग्दर्शन है, इसलिए तत् शब्दसे सम्यग्दर्शन ग्रहण किया जायगा। तब अर्थ हुआ ना-वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। अब इस सम्बन्धमे एक बात और परख लीजिए। देखिये—तत् शब्द है नपुसक लिंग तो तत् शब्दसे उसका ग्रहण होगा जो नपुंसक लिङ्ग मे प्रयुक्त होता है। मोक्षमार्ग और सम्यग्दर्शन इन दोनोमे मोक्षमार्ग है पुलिंग और सम्यग्दर्शन है नपुसक लिङ्ग। और तत् शब्द नपुसक लिङ्ग है तो जिसके लिए वह कहा जा रहा है वह भी नपुंसक लिङ्ग ही होना चाहिये। तो नपुंसकलिङ्ग जो सम्यग्दर्शन है उसका ही ग्रहण होगा, मोक्षमार्गका ग्रहण न होगा। अच्छा तो कोई यह कह बैठे कि चलो न मोक्षमार्गका ग्रहण करे, न सम्यग्दर्शनका ग्रहण करे, किन्तु इन सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनोका ग्रहण कर लिया जाय, मानो तीनो ही निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होते है तो उसका समाधान बिल्कुल ही स्पष्ट है। तत् शब्द है एक बचनमे, सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि है बहुवचन मे, तो इन तीनोका ग्रहण करना अभीष्ट होता सूत्रकारको तब तो बहुबचन शब्द देते ना—तानि निसर्गादधिगमाद्वा, मगर यहा दिया है एक बचन, इससे तीनोका ग्रहण नही होता। इस प्रकार यह भली भाति सिद्ध हो जाता कि तत् शब्दसे सम्यग्दर्शन अर्थ लेना याने सूत्रका यह अर्थ लेना—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। निसर्गका अर्थ तो स्पष्ट कह दिया गया कि परोपदेश नही किन्तु अन्य कुछ भी कारण मिले वहा सम्यक्त्व जगे तो उसे कहते है निसर्गज सम्यग्दर्शन और दूसरेका उपदेश पाकर हो तो उसे कहते है अधिगमज सम्यग्दर्शन। निसर्ग शब्दने यह न समझना कि कुछ भी बाह्य साधन न मिलना चाहिए और अपने आप सहज हो जाना चाहिए। देखिये निसर्ग शब्दका

प्रयोग, जैसे कहा जाय कि यह बालक निसर्गत शूरबीर है, यह सिंह निसर्गसे शूरवीर है तो क्या उसकी शूरवीरतामे कोई कारण नही है ? अरे निरोगता हो, शरीरमे बात पित्त कफ कि समता हो या पहिलेसे ढाचा वगैरह ठीक हो, देश काल अनुकूल हो, तब शूरवीरता हुई, मगर उसे निसर्गसे बोलते है । सिंह निसर्गसे शूरवीर होता है, इसी प्रकार यह सम्यग्दर्शन निसर्गसे हुआ, इसका अर्थ यह न लेना कि कोई बाह्य साधन न मिले किन्तु यह लेना कि परोपदेशको छोड़कर अन्य कोई कारण मिले और हो सम्यग्दर्शन तो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते है ।

सम्यक्त्वसे पहिले होनेवाले ज्ञानकी विशेषता—अब एक बात और सामने रखी जा रही है कि देखो—बताया यह गया है ना कि सम्यग्दर्शनके होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है, अच्छा बतलावो—सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान है या मिथ्याज्ञान ? तो कहा यह जायगा कि मिथ्याज्ञान है । जब तक सम्यक्त्व न हो तब तक ज्ञान मिथ्याज्ञान है, लेकिन एक समस्या आती है कि सम्यग्दर्शन जिस क्षणमे होगा उस क्षणसे पहिले यदि ज्ञान मिथ्याज्ञान है तो ऐसे मिथ्याज्ञानसे सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? कही झूठे ज्ञान से भी सम्यक्त्व जग जायगा ? मोटे रूपमे लगता है ऐसा कि सही ज्ञान बने किसीके तो सम्यक्त्व जगेगा, मिथ्याज्ञानसे नही, लेकिन सिद्धान्तमे तो यह कहा जा रहा है कि सम्यग्दर्शन के साथ ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है उससे पहिले नही । तो उससे तो यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह मिथ्याज्ञान कहलायगा । तो यह बात जचती नहीं । सम्यग्ज्ञानसे पहिले उत्पन्नज्ञानके विषयमे या सम्यग्ज्ञानको उत्पन्न करनेके लिए जो ज्ञान पहिले हुआ है वह ज्ञान मिथ्या कैसे हो सकता है ? मिथ्याज्ञानमे सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करने की योग्यता नही हो सकती । तो क्या कहा जाय ? यों मिथ्याज्ञान तो कह नही सकते और सम्यग्ज्ञान भी नही कह सकते, क्योंकि सम्यग्दर्शन होनेसे पहिले ज्ञान यदि सम्यक् है तो सम्यक्त्वकी और जरूरत क्या रही ? ज्ञान तो समीचीन हो गया, तो उसे सम्यक् भी नही कह सकते । तो क्या कहा जायगा सो बतलाओ ? तो कोई यह सोचे कि चलो न उसे सम्यक कहे, न उसे मिथ्या कहे, किन्तु उसे सामान्य कहें । ज्ञान सामान्य है, उस ज्ञानसामान्यके द्वारा जाना गया जो पदार्थ है, उस पदार्थमे प्रवर्तमान हो रहा जो सत्यज्ञान है वह सम्यग्दर्शनके विषयका ग्राहक है और उसे सम्यक्त्व हो जायगा, ऐसा मान लो ना । तो इस सम्बन्धमें भी सोचे । अब तीन बाते आयी सम्यग्दर्शनसे पहिले होनें वाला ज्ञान क्या सम्यग्ज्ञान है ? क्या मिथ्या ज्ञान है ? क्याज्ञान सामान्य है ? अब सोचिये-सम्यग्ज्ञान भी नही कह सकते, मिथ्या ज्ञान भी नही कह सकते । ज्ञान समान्यसे भी क्या फायदा निकलेगा ? ज्ञानसामान्य तो इस जीवके

सदा काल रहता है। तो क्या कहना होगा कि वास्तवमे वह ज्ञान मिथ्याज्ञान है, लेकिन समीचीनताके कारण और सम्यक्त्वका जनक होनेके कारण ज्ञानको उपचारसे सम्यक् कहा जायगा।

दृष्टान्तपूर्वक सानुभव ज्ञान व निरनुभव ज्ञानका विश्लेषण—देखो सम्यक ज्ञान व मिथ्याज्ञानके निर्णयके लिए एक दृष्टान्त लो। जैसे जिस पुरुषने श्रवणबेलगोलमे जाकर बाहुबलि स्वामीके दर्शन नही किए और उनकी यह भावना हुई कि मैं दर्शन करूं, तो वह यहा लोगोसे उस मूर्तिके विषयमे पूछकर पूरी जानकारी करता है, उसका फोटो देखकर और उसका इतिहास पढकर उसकी नाप आदिका भी पूरा ज्ञान कर लेता है। बाहुबलि प्रतिमाके दर्शनके पहिले ज्ञान तो कहा जायगा। वह ज्ञान वैसा ही कर रहा है जैसी कि वह प्रतिमा है। एक तो ऐसा ज्ञान किया और दूसरे वह श्रवणबेलगोल जाकर उस बाहुबलि प्रतिमाकी मूर्तिके दर्शन प्रत्यक्षरूपमे करता है वहाँ जाकर ज्ञान किया। तो अब आप बताइये इन दोनो प्रकारके ज्ञानोमे कुछ अन्तर है कि नही ? अरे अन्तर है। देखिये—उस प्रतिमाके दर्शन करने से पूर्व उसके विषयमे जो जानकारी किया था उसे मिथ्याज्ञान तो नही कह सकते, क्योकि वैसा ज्ञान कर रहा है। तो क्या वह ज्ञान सम्यक् था ? सम्यक् भी नही कह सकते अगर वह ज्ञान सम्यक् था तो फिर मूर्तिके दर्शनके समयमे होने वाले ज्ञानमे कुछ विशेषता न आनी चाहिये थी, क्योकि ज्ञान तो पहिले से ही रहा था। तो बात क्या हुई कि दर्शनके समय जो ज्ञान हुआ है वह अनुभवसहित ज्ञान है अनुभव--सहित ज्ञान हो उसे कहते हैं सम्यक् और जो अनुभवरहित ज्ञान है उसे कहते हैं मिथ्याज्ञान। लेकिन विपरीतज्ञानसे सम्यक्त्व नही होता, अनुभव न बनेगा, उसके लिए ज्ञान उसके अनुरूप करना होगा। वह अनुभवरहित होने के कारण मिथ्या है और जैसा वह जाना गया वैसा जाननेके कारण वह सम्यक् है। तो अब देखिये—सम्यक्त्व उत्पन्न होनेसे पहिले जो ज्ञान बन रहा है वह ज्ञान कितना विशिष्ट ज्ञान बन रहा है वह ज्ञान कितना विशिष्ट ज्ञान है कि उस अधःकरण, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण के समयमे कितने बधापसरण होते, कितनी विशुद्धता होती और उसकी निर्विकल्प स्थिति होने लगती है उस कालमे इसे अनुभव जगता है, और अनुभव जगा कि वही ज्ञान पूरा सम्यक् हो जाता है।

ज्ञानके सम्यक् होनेका विद्यानन्दस्वामीका एक उदाहरण--अबसे सैकडो वर्ष पहिले एक विद्यानन्द स्वामी हुए हैं जो कि बहुत ही दिग्गज आचार्य हुए हैं जिन्होने समंतभद्राचार्य रचित देवागम स्तोत्रकी अष्टशतीपर अष्टसहस्री टीका की है। अष्टशती टीका की है अकलक स्वामीने। और अकलक स्वामीकी टीकापर इस तरह की टीका विद्यानन्द स्वामीने

की कि अकलंक स्वामीके वाक्य बीच-बीचमें ऐसे लगा दिए गए कि वह सारा व्याख्यान एक हो गया। टीका की वह एक अनोखी पद्धति है। टीका प्रायः उसे कहते है कि जिस बात पर टीका करना है उसको पहिले हेडिङ्गमे लिखते हैं, बादमे वक्तव्य देते है लेकिन उन्होने ऐसा नही किया। वे टीका करते गए। जहां अकलंक देव का वाक्य फिट बैठता है वहा बैठा दिया, बादमे अपना वाक्य जोड़ दिया, फिर अपनी बात कहने लगे। वह बड़ी कठिन टीका है जो अष्ट सहस्री के नामसे प्रसिद्ध है। बहुत से लोग तो उसे कष्टसहस्री भी कहने लगे। इतनी ऊंची सूक्ष्मदार्शनिक टीका है। तो उन विद्यानन्द स्वामी का हम जीवन चारित्र बतलाते हैं। उन्होंने मोक्षशास्त्रपर भी टीका की है। वे बहुत दिग्गज विद्वान थे। वेद वेदान्त के उस समय सबसे ऊंचे आचार्य कहलाते थे। और जैनधर्मसे वे द्वेष रखते थे। वे राजदरबार मे प्रधान पुरोहित थे, राजा उनका बडा सत्कार करता था। उस समय उनके ५०० शिष्य थे। घरसे दरबारमे जाते तो रास्तेमे एक पार्श्वनाथचैत्यालय मिलता था। वे उससे इतना द्वेप करते थे कि उसकी ओर अपना मुख भी नही करते थे। वहाँ से मुख फेर कर तिरछे होकर निकलते थे। याने उस चैत्यालयको देखना भी वह न पसन्द करते थे, इतना द्वेप था। एक दिन उनके मनमे आया कि मैं बहुत समयसे इस चैत्यलयकी ओर पीठ देकर जाता हू, जरा एक बार इसके अन्दर जाकर देखे तो सही कि इसमे है क्या चीज ! तो केवल एक तफरी बतौर देखनेके लिए उस चैत्यालयमे चले गए। कुछ देखा तो वहा एक मुनिराज बैठे थे। और वे मुनिराज देवागमस्तोत्रका पाठ कर रहे थे। वह पाठ उन्हे बडा सुहावना लगा।

जैन शासनके रत्नोका ग्रहण करने का अनुरोध—जैनशासन मे कितने रत्न पडे हैं और आचार्योने क्या दे दी है इस बातको पहिचानने वाले वे ही हो सकते हैं जो कुछ उस ओर ज्ञान करे और उस ओर कुछ प्रवेश करे। समुद्रमे रत्न कैसे है इस बातको वे ही पहिचान सकते हैं जो समुद्रमे डुबकी लगायें। क्या-क्या रत्न हैं, क्या-क्या तत्त्व बसा हुआ है। आज कल तो लो स्वाध्याय या सभामे आना, प्रवचन सुनना या अध्ययन करना आदि इन कामोंको आवश्यक काम नही समझते और आवश्यक काम समझते है देरसे उठना साबुनसे नहाना, चाय पीना, अखबार पढना आदिक। मगर भाई अगर अब भी न चेते, दुर्लभ मनुष्यभव पाकर भी अगर सदबुद्धि नही आती तो बताओ किस भवमे तिरनेका उपाय बनाओगे। अगर मरकर पशुपक्षी हो गए स्थावर हो गए पेड पौधे हो गये तो सब गडबड हो गया। अभी तो एक बडा अहंकार सा बना हुआ है, बडी शान रखते, बडे ऐश आराम की बाते चाहते है और हो जाय दुर्गति तो फिर क्या किया जायगा ? तो आवश्यक काम है तत्त्वज्ञान

का । घरका काम आवश्यक नही । घरका काम तो जी जैसा होता है उसे वैसा होने दो। दूकान आदिक मे धनार्जनका काम तो पुण्योदय से होता है । वे सब काम तो जैसे होते हैं हो मगर सदाके लिए हम सकटोसे छूट जायें ऐसी कोई दृष्टि मिलें, ऐसीकोई भीतरमे बात मिले तो भला बतलाओ इससे बढकर और कोई बात है क्या ? यह तो चददिनोका समागम है, ये सब समागम तो छोडने पडेंगे । तो जिन बातोमे कुछ सार नही रक्खा उनको तो लोग आवश्यक समझते है और जो तत्त्वज्ञानकी बात है, सारभूत बात है, कल्याणकारी बात है, जो दृष्टिको निर्मल कर सकने की बात है, ये आचार्योंके बचन, इनको सुननेकी बात लोग अनावश्यक समझते है—इसे इतना आवश्यक समझिये कि यह बात अगर किसी भी क्षण समझ मे आ गई तो आपका भला हो जायगा । लोग तो चाहते है कि हम आज ही स्वाध्यायमे पहुचें और आज ही हमे आनन्द मिल जाय, आज ही हमारा कल्याण हो जाय, तो यह बात कैसेहो सकती है ? अनादि कालसे मोहरूपी विषका पान किए हुए है तो उस विषका उतरना इतना जल्दी कैसे हो सकेगा ? अरे इसके लिए तो सारा जीवन लगाना होगा ।

विद्यानन्द स्वामी पर प्रथम प्रभाव—हा तो विद्यानन्दस्वामी वहा चैत्यालयमे खडे मुनिराजसे देवागमस्तोत्र सुन रहे थे । वह विद्वान तो थे ही । वह बडा अच्छा लगा तो वही पास मे बैठकर मुनिराज से कहा-महाराज हमे आप इसका अर्थ बता दीजिए। तो मुनिराज बोले भाई मै विद्वान नही हू, मैं पाठ करता हू । तो इतनी बात सुनकर विद्यानन्दस्वामी पर और भी अधिक प्रभाव पडा । सोचा कि देखो यह हैं तो कितने बडे महात्मा, पर यह अपनी कमजोरी बताने मे रच भी सकोच नही कर रहे है । कैसे सच बात कह रहे है । लोग तो प्राय ऐसे होते है कि वे दूसरो के सामने अपनी कमजोरी उनसे छिपाते हैं । अभी अभी समय नही है, फिर कभी समझा देंगे आदि बातें कह कर टाल देते है । पर महाराज तो अपनी कमजोरी हमसे रच भी नही छिपाते । वहा विद्यानन्दस्वामी थोडा झुक गए और कहा—अच्छा तो महाराज एक बार फिर सुना दीजिए । तो उन्होने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक देवागमस्तोत्र सुनाया । क्या है ? देवागमस्तोत्र मे भगवान की स्तुति हो रही है और निर्णय हो रहा कि यह एकान्तवाद क्यो सही ।

देवागमस्तोत्र की भूमिका का दिग्दर्शन—प्रथम भूमि का रूप बताया गया है कि हे भगवान आपको हम अपना सिर झुकाते तो क्यो झुकाते ? कारण क्या है ? तो मानो भगवान बोले, हम आकाश मे चलते हैं, देवता गण हमारी भक्ति मे आते है, देवता चमर ढोरते हैं इसलिए सिर झुकाना चाहिए । तो समन्तभद्र का यह उत्तर है कि इस कारण से

हम सिर नही नमा सकते। अरे इतनी बाते तो कोई मायाचारी पुरुष भी कर सकता है। कोई विद्या सिद्ध करले तो वह भी ऐसी बाते दिखाने लगे। इससे तो आप बडे नही। तो मानो भगवान बोले कि इससे बडे न सही तो इससे बडा मान लो कि हमारे शरीर मे खून पीप आदिक नही है, हमारा शरीर परमोदारिक है इससे तो बडा मान लों, तो कहते कि इससे भी आप बडे नही हो। अरे देवो के भी तो शरीर ऐसे मिलते है। तो मानो फिर भगवान बोले कि अच्छा इससे भी बडा नही मानते तो न 'सही' लेकिन हमने तो एक धर्म चलाया है इससे तो बडा मानो कहते कि अरे तीर्थ तो अनेक लोगो ने चलाया। सभी लोग अपने अपने तीर्थ चलाते है, इसमे भी आपका क्या बडप्पन ? तो फिर मानो कोई पूछ बैठा कि इन बातो से बडे नही तो फिर यहा क्यो आये और स्तवन क्यों करने आये ? तो कहा—सुनो बात ऐसी है कि बडा वह होता है कि जिसमे गुण तो हो पूरे दोष एक भी न हो। कही इससे बडप्पन नही कि धर्म चलाया, शरीर निर्दोष है, देवागनायें आती है। बडप्पन तो इसी कारण है कि गुण तो पूरे हो और दोष एक भी न हो। कहते है कि ऐसा हो सकता है क्या ? हां कोई ऐसा भी मनुष्य होता कि जिसमे एक भी दोष न हो। देखो जब हम जीवो मे यह देख रहे कि किसी मे कम दोष हैं किसी मे और कम तो किसी मे दोषो का अभाव भी है। अच्छा तो देखो किसी मे ज्ञान कम है किसी मे और भी कम है, तो कोई ऐसा भी आत्मा हो सकता कि जिसमे ज्ञान बिल्कुल न रहेगा। कहते नही। ऐसा पटतर मत दो। बात यह है कि जो उपाधि के हटने से हटे वह तो कही पूरा भी हट सकता है मगर जो उपाधिके हटने से बढता हो उसमे यह नही कहा जा सकता है कि यह ज्ञान कही बिल्कुल कम हो जायगा। अच्छा यह भी बात मान ली। मगर एक मै ही निर्दोष हूँ यह तुमने कैसे जाना ? तो कहते है कि सुनो—निर्दोष वह कहलायगा जिसकी वाणी मे न युक्ति से विरोध खाये, न शास्त्रसे। और वाणी से ही मनुष्य की पहिचान होती है। जिसके वचन खोटे निकले। समझो कि उसका अभिप्राय खोटा है और जिसके वचन प्रिय, मधुर निकले, समझो कि उसके दिल मे बडी उदारता है और स्वच्छता है। तो वचनो से पहिचाना जाता है कि मनुष्य कैसा है। तो हे भगवान मैंने आपके वचनोसे ही पहिचाना कि आप निर्दोष है, क्योंकि आपकी वाणी मे युक्ति से कही विरोध नही खाता। कैसे विरोध नही खाता ? जब यह बात बतानी पडी तो सभी मतो का वर्णन करना पडा और बताना पडा कि आपके अनेकान्तवाद की बात सत्य बैठती है, पर एकान्तवाद की बात सत्य नही बैठती है। तो सारे एकान्तो का बहुत पुष्टता से संक्षेपमे वर्णन किया है। समन्तभद्राचार्य को तो कलिकाल केवली जैसी बात कही जाती है, इतने ऊँचे दिग्गज विद्वान आचार्य थे।

जिसकी रनचा पर टीका अकलकदेवने की और उसपर विद्यानन्द ने की।

विद्यानन्दस्वामी के ज्ञान मे सम्यक्त्व आये बादका प्रकरण—बात यह कह रहे थे। कि विद्यानन्दस्वामी ने उन मुनिराजसे पाठ सुना और उनका चित्त बदल गया कि वास्तव में अनेकान्तवाद ही सही है। तो देखिये जितना ज्ञान उन्होने किया था वह ज्ञान कुछ सही तो था, मगर दृष्टि से। अब उसमे जितनी खोट थी और जितना सहीपन था वह सब एक साथ नजर आ गया। तो अब तो उनका प्रभात हो गया। अब तो विद्यानन्दस्वामीका कल्याण हो गया। उनका चित्त बिल्कुल बदल गया। अब एक इस ही ओर की सुध हो गई। तो जब वे रात्रि को सोये उसी चिन्तन मे सोपे, उस चिन्तनको करते करते एक शंका उनको चित्तमे रह गयी थी वह शका है अनुमान प्रमाणसे सम्बन्धित। अनुमान प्रमाण याने धूम देखा और अग्निका ज्ञान कर लिया। साधन से साध्यका ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। तो अनुमान अन्य प्रमाणो की भाति पुष्ट ज्ञान होता है। तो बौद्ध लोग तो मानते हैं कि त्रैरूप्य उसका साधन है और नैयायिक मानते है कि पाच रूप उसका साधन है। अनुमान की मुद्रा यह है—इस रसोई घर मे अग्नि है धुवा होनेसे जहा जहा धुवा होता है वहा वहां अग्नि होती है जैसे रसोई घर और जहा धुवाँ नही होता वहा अग्नि नही देखी जाती जैसे तालाब। ऐसा लोग बोलते कि नही ? तो इसमे ५ अवयव आ गए। प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय व निगमन। तो अब शंका यह थी कि अनुमान पचरूपमे सिद्ध हुआ या त्रैरूप्यसे ? त्रैरूप्य है—पक्षवृत्ति सपक्षवृत्ति, विपेक्षव्यावृत्ति। तो उनको स्वप्न हुआ। स्वप्नमे वह बात आयी कि तुम शका मत करो। उस चैत्यालय मे जावो तो भगवान के पीछे तुम्हे इसका उत्तर मिल जायगा। उस स्थानपर वह गए तो उस समय वहा दो श्लोक दिखे, चमत्कार था वे दो श्लोक क्या थे ? "अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पचभि। नान्यथानुपपन्नत्व यत्र किं तत्र पचभि अन्यथानुपन्नत्व, यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। जहा अन्यथानुपपत्ति है वहा पाचसे क्या प्रयोजन, जहा अन्यथानुपपत्ति नही वहा पाच से क्या प्रयोजन, जहां अन्यथानुपपत्ति है वहा जहा अन्यथापानुपपत्ति नही वहाँ भी तीनसे क्या प्रयोजन। देखो यह सोचना कि अनुमानका साधन क्या है? पाचरूप्य है या त्रैरूप्य ? तो देखिये साधन केवल एक है अन्नथानुतपन्नं त्व मायने अग्नि बिना जो नही हो सकता वह चीज अग्निका साधन है, इसे कहते हैं अविनाभाव। चाहे पचरूप हो चाहे न हो, मगर जहां अन्यथानुपपत्ति होती है वहा अनुमान प्रमाण सही कहलाता है। चैत्यालमे गये श्लोक लिखे शकानिवृत्ति हो गई। अब दूसरे दिन जब विद्यानन्दस्वामी राजदरबार मे गए तो व्याख्यान तो रोज देते ही थे। उस दिन जब व्याख्यान दे रहे थे तो उसमे अनेकान्तवाद (स्याद्वाद)

की छाया थी। उनके ५०० शिष्य तथा अन्य बहुत से लोग भी वह व्याख्यान सुन रहे थे, तो वहां सभी लोग एक आश्चर्यमें आ गए कि आज हमारे गुरु महाराज को क्या हो गया बात है? आज यह क्या बोला जा रहा है? तो उन्होंने कहा कि भाई आज तक हम एकान्त वादमें थे। हमने सत्य शासन अब जाना और जिसे शंका हो वह हमसे वादविवाद कर ले। वह बहुत ऊंचे विद्वान तो थे ही। सबको समझाया। दरबारसे चले आये और मुनि हो गए। उसके साथ उनके सभी शिष्य भी मुनि हो गए। तो बतलाया यह जा रहा है कि जो संचित ज्ञान है, जिस दिन दृष्टि समझ ली, उस दिन वह सही ज्ञान बन जाता है। जब यहाँ यह बात देखी जा रही है तो उसमें भी यह अलौकिक बात है। क्या? कि सम्यक्त्वसे पहिले जो ज्ञान है वह सम्यक भी है, मिथ्या भी है। जो सम्यग्दर्शन से पहिले ज्ञान होता है वह ज्ञान झूठा ज्ञान नही। परन्तु स्वरूप के अनुरूप ज्ञान है, हां अनुभवरहित ज्ञान है, इतनी बात जरूर है। जैसे कभी मिश्री तो खाया न हो, सिर्फ गन्ना ही चूसा हो, वह दूसरों से सुनकर पढ कर उस मिश्री का ज्ञान करले। कुछ अन्दाज करले तो उसका वह ज्ञान है तो सही, मगर वही व्यक्ति अगर उस मिश्री को चखकर उसका ज्ञान कर ले तो उसका वह ज्ञान अनुभव सहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और अनुभवरहित ज्ञान मिथ्या ज्ञान है। वह मिथ्याज्ञान है जिस तरह मिथ्या है, मगर वस्तुस्वरूप के अनुरूप होने से वह सम्यक है।

सत्य तत्त्वकी कल्याण मूलता—इस जीवका भला कर सकने वाला उपाय सम्यक्त्व है। जिसके सम्यक्त्व नहीं है वह दीन है, गरीब है, असहाय है, संसारमें जन्ममरण करते हुए कष्ट भोगेगा। तब सभी चाहते हैं कि मेरे सुख शान्ति हो। कभी भी क्लेश न आये। जब ऐसा चाहते हो तो भलीप्रकार इसका प्रयोग करो, कुछ अमलमें लावो देखते तो जा रहे सभी लोग कि बहुत परिकर मिलते, बहुत समागम मिलते लेकिन किसी समागमसे कोई लाभ नही होता। दुःख ही दुःख मिलता है। रागद्वेष मोहके फलमें तो दुःख ही दुःख है। तो जिस बातमें कष्ट होता है उसको करते ही क्यो? खूब परख करलो, किसी भी पर वस्तुमें मोह करनेका फल क्या मिलता है? मोह परवस्तु में ही तो होता है, निजमें मोह कौन करता है? निजमे तो एक स्वच्छता प्रकट होती है। बेहोशी नही होती है निज दृष्टिमें। बेहोशी आती है मोहसे पर वस्तुके प्रति जो लगाव है यह ही इस जीवको ऐसा बुरी तरह से दुःखी करता है। जैसे कहते है कि किसीको बोटी बोटी छेद करके दुःख देना। इस आत्मा के प्रत्येक गुणपर कैसा आघात पहुचता है इस रागमोहमे। लेकिन यह मोही प्राणी राग मोहमें दुःखी होता है और उसी में ही मरना चाहता है। यह जीव स्वयं आनन्दस्वरूप है। जो लोग कहते हैं-आनन्दब्रह्मणोरूपी, यह कुछ असत्य नही हैं। ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है,

लेकिन वे एकान्त करते कि आनन्द के सिवाय और कुछ नही है। बस इतनी ही तो कमीकी बात है। आनन्द है क्या नही आत्मामे ? आत्मा स्वय आनन्दस्वरूप है, उसमे कष्टका कोई नाम नही, लेकन यह जीव मोह करके बाहरी पदार्थोमे लगाव करके स्वय दुखी होता है। व्यर्थका लगाव है। व्यर्थका मोह है, मर गए फिर क्या रहा इस जीवका। अब भी क्या लाभ मिलेगा ? इसे कोई लाभ नही परवस्तुका मोह रखनेमे। ज्ञानप्रकाश लावे। घरमे तो रहो, गृहस्थ हो लेकिन सत्य बात यदि न समझोगे तो जीवन बेकार है। केवल कमाई करके धन भर लिया अरे किसके लिए धन जोडने की धुन बनाते ? कहेगे कि हमारे पुत्र है, उनके लिएहमने धन रखा है। अरे मरने पर तुम्हारे पुत्र क्या ? मरने पर वे तुम्हे क्या लाभ दे सकने वाले है ? कहाँ उत्पन्न होगे। कौन है ? सारा भ्रम है। तो सम्यक्त्वके बिना यह जीवन व्यर्थ समझिये।

मनका ऊधम छोडकर उद्धारक धर्म मे उपयोग लगाने का अनुरोध—धनपर आस्था मत रखो। चू कि कुछ जरूरत पड गई है, भूख प्यास, ठड आदिकी अनेक बाधाये है इसलिए गृहस्थ होकर कुछ कमाई करना चाहिए, यो कुछ जरूरत पडी, है, इतना मात्र समझिये। इससे आगे कोई मोह की बात सोचा, कोई लाग लपेट की बात बनाया तो यह सब ऊधम है। यह समझिय कि कोई लाभ मिला है, पुन्यका अवसर आया है। मन मिला है तो इनका प्रयोग ऊधम के लिये न करो। इस ऊधमको छोडो। बच्चे लोग तो ऊधम करते है तो उन्हे ये बडे लोग डाटते है—अरे क्यो ऊधम कर रहे हो, लेकिन वे यह नही सोचते कि अरे हम भी तो कितना ऊधम कर रहे है। परवस्तु से मोह करना, पर पदार्थोमे लगाव रखना यह इसका ऊधम नही है तो फिर और क्या है ? पर इसे कौन डाटे ? इसे डाटने वाला कोई नही है इसलिए यह स्वच्छन्द होकर ऊधम कर रहा है। यह मोहका ऊधम छोडना चाहिए और अपने आपपर कुछ दया करना चाहिए। सम्यक्त्व प्राप्त करो। सम्यक्त्वके बिना जीवन निस्फल है, यो तो ये कुत्ते गधे सूकर आदि हो जाते तो वे भी विषयो का मौज मानते। जैसे यहा खाने, पाने, मैथुन आदिके विषयोमे मौज मान रहे वैसेही उन खोटी पर्यायोमे भी तो मौज मान सकते थे फिर फर्क क्या रहा उन सूकर, कुत्ता, गधा आदिकमे और इनमनुष्योमे ? क्यों हुए मनुष्य ? अगर सुख भोगनेके लिए मनुष्य हुए तो वह सुख तो कुत्ता, गधा आदिकी पर्यायो मे भी तो लूटा जा सकता था। फिर मनुष्य बनने का लाभ क्या उठाया ? अरे मनुष्य बननेका लाभ तो तब है जब कि अपना मन ऐसा बनाले कि यह आत्मा पवित्र बनजाय। बनाइये—इन स्त्री पुत्र घर द्वार, धन वैभव आदिक मे मोह करनेसे आत्मापवित्र हो सकेगा क्या ? धर्मकी बात सुननेके लिए किसी भी प्रकार से

समय नही मिलता ऐसायह व्यस्तजीव, यह क्या आत्माको पवित्र बनानेका उपाय है ? अरे आत्माको पवित्र बनानेका उपाय सिवाय रत्नत्रयके और कुछ नही हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, बस यही आत्माको पवित्र बनानेका उपाय है।

मोह राग के अधर्मसे हटकर रत्नत्रयकी आराधनामें ही धर्मात्मत्त्व—रत्नत्रयकी शरण्यताकी बात अपने आप पर दया करनेकी बतायी जा रही है, कही दूसरोको नही बताना है कि मैं धर्मात्मा हूँ। उससे लाभ कुछ नही मिलनेका। अगर किसीके मनमे ऐसा आ जाय कि लोग मुझे समझे कि यह तो बडे धर्मात्मा है तो समझो कि वह एक तरहसे अधर्म कर रहा है, क्यो कि उसके परिणाममे मिथ्यात्व हो सकता है। अरे जो स्वयं दुःखी है, कर्मके प्रेरे है उनसे अपनी क्या प्रशंसा चाहते ? तो ऐसी स्थितिमें कोई ऐसा उपाय बनालें कि हमारे संसारके दुःख सदाके लिए छुट जाये। बस इसी के लिए हमारा जीवन है' कमर कसकर चलो, भगवानकी भक्ति करो तो वहां भी ध्येय एक यही रखो कि हे भगवन मुझे तो आप जैसा पवित्र ही बनना है। बस उसी स्थिति में आनन्द है, मेरे मे भी वह शक्ति है, वह स्वभाव है जो आपमे है। अगर न हो तो फिर आपकी भक्ति करनेसे लाभ क्या ? अगर पवित्र बन न सके, आकुलताये दूर न कर सकें तो फिर आपकी भक्ति करनेसे लाभ क्या ? मानो थोडा सो लौकिक सुख मिल भी गया तो उससे लाभ क्या है। यह तो कीचड है। इस संसार सुखमें क्या रखा है। तो उस सुखसे भीतरमे ऐसा मुख मोडे कि श्रद्धामे तो यही बात रहे कि हमे तो इसकी ओर देखना ही नही है। समयसारमे बताया है कि परमाणुमात्र भी जिसके राग है वह आत्माको नही जानता। और जो आत्माको नही जानता वह जीव अजीव को नही जानता वह सम्यग्दृष्टि कैसे ? तो परमाणुमात्र भी राग न होना चाहिए तब समझिये ज्ञान। इसका अर्थ क्या ? राग बिना घरमे रह सकते क्या ? नही रह सकते। तो फ़िर इसका मतलब यह है कि श्रद्धामे परमाणु मात्र भी राग न होना चाहिए। तो किसी भी रागसे, बाह्य वस्तुकी प्रीतिसे मेरा हित न होगा, ऐसे श्रद्धामे राग न होना चाहिए। एक निर्णय रखो कि किसी भी विषय सेवन इस आत्माका उद्धार नही। और, परिणामोको गंदा करना, कलुषित करना विषयविस है, अनर्थ है। इससे प्रीति न करना चाहिए ऐसा मनमे विश्वास बनाये और इस धनके व्यामोह विषको उगल दीजिए। अगर नही उगलतें तो इससे आप बरबाद होगे। ऐसी श्रद्धा रखो कि इससे इस आत्माको कुछ शान्ति नही। यह तो परिस्थितिमे जरूरत पडी है इसलिए थोडा सा संग है। इतनी बात है।

लोकेषणामे असिद्धि—मैं दुनियामे बडा कहलाऊ इसके लिए जो धन कमाता है

वह मूढ है। भला दुनियामे कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिसपर सभी लोग खुश हो जायें ? ऐसा कोई न मिलेगा। चाहे तीनो लोकका कोई अधिपति हो जाय, जिनेन्द्रदेव बन जाय जिसका समवशरण रचा गया हो, जिसका धर्मोपदेश हो रहा हो ऐसे पुरुषकी भी तो सभी लोग प्रशसा नही करते। बहुत से लोग उसके भी विपक्षी होते है। दुनिया मे ऐसा कोई नही मिलेगा जिसपर सभी लोग खुश हो जाये। एक कथानक है कि एक सेठके चार लडकेथे और उसके पास ५ लाखका धन था। एक एक लाखका धन सभी लडकोको बाट दिया। सभी लड़के न्यारे-न्यारे हो गए। एक दिन सेठ ने कहा कि देखो तुम लोग बडी शान्तिसे न्यारे हो गए तो इस खुशीमे तुम सभी लोग बिरादरीकी पगत कर लो। सबसे पहिले मानलो सबमे छोटे लडके ने बिरादरी की पगत को। उसमे उसने ८-१० तरह की मिठाइयां बनवायी और सभी को बडे प्रेमसे भोजन करवाया। वहा बिरादरीके लोग भजन करते हुए मे आपसमे चर्चा कर रहे थे कि मालूम होता है कि सेठने अपने इस छोटे बेटेको सबसे ज्यादह धन दे दिया है। ठीक ही है। छोटा बच्चा सभीको सबसे प्यारा होता है, तभी तो यह बड़ा खर्च करके अनेको प्रकारकी मिठाइया सबको खिला रहा है। उसके बादमे उससे बड़े लडकेने बिरादरी की पंगत किया तो उसने कोई चार व पाच ही तरह की मिठाइयां बनवायी। अब बिरादरीके लोग जीमते जा रहे थे और आपसमे चर्चा कर रहे थे कि देखो यह तो चालाक निकला। इसने तो ४-५ प्रकार की मिठाइयो मे टरका दिया। यह तो उससे बडा था। इसको तो और भी अधिक धन मिला होगा, पर इसने बिरादरीपर खर्च करनेमे बडी कजूसी की। उससे बडे लडके ने जब बिरादरीकी पगत किया तो उसने मिठाई का नाम ही न रक्खा। सिर्फ पूडी साग ही बनवाया। वहा बिरादरीके लोग जीमते जाते थे और आपसमे यह चर्चा करते जाते थे कि देखो यह तो बडा ही कजूस निकला। इसने तो मिठाई का नाम ही न रखा। जब सबसे बडे लडके ने पगत किया तो उसने पकवानका नाम न रक्खा, सिर्फ दाल रोटी ही बिरादरीके लोगोको खिलाया। वहाँ भी खाने वाले लोग यही चर्चा करते थे कि देखो यह तो सब लडकोसे बडा था। इसने तो सबसे अधिक धन अपनेपास दाब रखा होगा पर वह कैसा चालाक निकला कि सिर्फ रोटी दालमे ही सबको टरका दिया तो देखिये खुशकरने का प्रयत्न तो किया गया पर सभी लोग खुश तो न हो सके। बाहरी बातो मे अपना यह निर्णय न बनायें कि मैं ऐसा करूगा तो ये लोग खुश हो जायेगे। हम अपनेमे एक यह निर्णय बनायें कि मैं क्या करू कि जिससे मैं खुश हो जाऊ ? मैं कौन सी भावना बनाऊ, कैसी बात सोचू, कि मे अपने आपमे प्रसन्न, हो जाऊं, निर्मल हो जाऊ ! सदाके लिए संकटोसे छूट जाऊं ?

मन के ऊधम के फल में पुनः निगोदवास की झंझट का लाभ—जब ये सब जीव अपने-अपने में कष्ट मे पड़े है तो उनसे अपने लिए क्या आशा करते हो। मन को स्वच्छंद न बनाना चाहिए उधम न करना चाहिए। दूसरो पर दृष्टि रखना, उनमे रागद्वेष मोह करना यह सब ऊधम है और अपने भगवान आत्मा पर अन्याय करना है। अगर ऐसा अन्याय इस भगवान आत्मा पर किया गया तो उसका फल क्या मिलेगा कि जिस दुर्गति से निकल कर आये वही दुर्गति फिर मिलेगी। एक कथानक है कि साधु के पास कोई चूहा रहता था। एक बार उस चूहे पर बिलाव झपटा तो साधु ने चूहे को आर्शीवाद दिया- बिडालोभव- तू भी बिलाव बनजा। लो वह चूहा बिलाव बन गया। अब उसे बिलाव का डर तो न रहा। फिर एक बार उस बिलाव पर कुत्ता झपटा तो बिलाव को साधु ने आर्शीवाद दिया- श्वानभव, अर्थात तू भी कुत्ता बनजा। लो वह बिलाव कुत्ता बन गया। एक बार उस कुत्ते पर झपटा तेदुआ तो साधु ने कुत्ते को आर्शीवाद दिया- व्याघ्रोभव अर्थात तू भी तेदुआ बनजा। तो वह कुत्ता तेदुआ बन गया। एक बार उस पर झपटा सिंह तो फिर साधु ने आर्शीवाद दिया- सिहोभव, अर्थात तू भी सिंह बनजा। लो वह भी सिंह बन गया। अब उस जगल मे उस सिंह को भूख लगी- वहा कुछ खाने को था नही। उस सिंह के मन मे आया कि न हो तो मैं इस साधु को ही क्यो न खा जांऊ। यह भी तो हृष्ट पुष्ट है। जब सिंह के मन की बात साधु ने समझ लिया तो श्राप दिया- पुनर्मूंष-कोभव, अर्थात तू फिर चूहा बन जा। लो वह फिर चूहा बन गया। तो इस कथानक से शिक्षा यह लेना है कि हम आप अनादि काल से निगोद मे थे। वहां से निकलकर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय में आये। कुछ और ऊंचे उठे तो मनुष्य हुए। यहा श्रेष्ठ मन मिला हुआ है तो इस मन का दुरुपयोग किया तो इसका फल यही होगा कि आत्मा भगवान का आशीष मिलेगा- पुनर्निगोदोभव फिर से निगोद जाना पडेगा। मन का दुरुपयोग यही तो है कि जो इस पर पदार्थो के प्रति इतना लगाव लगाया जा रहा है। यह तो इस आत्मा भगवान के लिए कलक है। हां गृहस्थी मे रह रहे हैं तो पर पदार्थों से सम्बन्ध रखना पड रहा है पर श्रद्धा अपनी सही बनाये रखे कि इसमे मेरी बरबादी ही है। यह अपने आपके दया की बात कही जा रही है।

स्वभाव सुधार संगम में शाश्वत शान्ति का संगम—यदि यह आत्मा मिथ्यात्व से हटे, भ्रम से दूर हो जाय, अपने आपके स्वभाव को पहिचान ले, उसकी लगन लगाये, उसका आचरण करे तो उसके प्रताप से इसका आनन्द सदा के लिए अरहत सिद्ध बन जाय, सदा के लिए अनन्त आनन्दमग्न हो जाय, सदा के लिए यह आत्मा पवित्र हो जाय।

क्या यह बात आपके लिए बुरी लगती है ? अरे वह तो आनन्द की बात है। उसके लिए तो सदा बाट जोहना चाहिए। बाट जोहना चाहिए कि कब सिद्ध होऊँ और सदा के लिए मैं संकटो से मुक्त हो जाऊ। यहा की झूठी मायामय चीजो की बात जोहने से काम न चलेगा। यहा के धन वैभव की भी धुन बनाये रखे और चाहे कि मैं भगवान जैसा बन जाऊ तो ये दोनो बाते एक साथ न बन पायेगी। अरे किन के लिए इस धन वैभव की होड मचाई जा रही है ? यहतो एक बेकार सी बात है। सबका अपना-अपना भाग्य है। गृहस्थी मे रहकर तो अपना एक कर्त्तव्य समझो ८-१० घंटे कमाई के कामकाज मे रहोगे, जैसा सबका भाग्य होगा सो कमाई होगी। क्या है जिन्दगी का गुजारना। इसको तो गरीबी मे भी गुजार सकते, कष्ट मे भी गुजार सकते। यदि अपने परिणामों मे समता रखें, शुद्ध ज्ञान प्रकाश रखे तो इस जीवन का भला हो जायेगा। देखिये अनादि काल से अब तक अनन्त भव पाये, बडी बडी विभूतियो के स्वामी भी बने पर वह सब साथ रहा क्या ? अरे वह सब छोडना ही पडा। और इस भव मे भी जो कुछ समानता प्राप्त है वे क्या सदा पास रहेगे ? वे भी छूटेंगे। तो इससे रही सही जिन्दगी मे इन पर पदार्थों से लगाव रखना। लगाव रखे आत्मकल्याण का। सम्यक्त्व उत्पन्न करे।

सम्यक्त्वोत्पत्ति मे वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक भावके यथार्थ परिचय की उपयोगिता—सम्यक्त्व उत्पन्न करने का सही उपाय यह है कि वस्तु का सही स्वरुप समझे। सही स्वरुप समझे। सही स्वरुप समझने मे दो दिशाये है (१) वस्तुस्वातन्त्र्य (२) निमित्त-नैमितिकभाव उसमे जो वस्तु स्वातमन्त्रकी ऐसी हट करते हैं कि जब जो पर्याय होती है सो होती है, निमित्त कुछ नही है क्रम से बंधी है सो निकलती जाती है, उस समय जो सामने हो, उस पर निमित्तका आरोप करते है, यह उसका अज्ञान है, क्योकि इसदृष्टि मे यह बात आयी कि आत्मा मे जो भी बात हुई वह सब हमारे स्वभाव से हुई, कोई विरुद्ध बात है ही नही। राग किया तो वह भी स्वभाव से हुआ उसे छोडने की क्या जरुरत ? तो यह स्वातत्र्यका ऐसा एकान्त जो सीमा का उल्लघन करे वह भी ठीक नही। कोई कहे कि कर्म ने ही किया विकार राग तो यह एकान्त भी ठीक नही। इस एकान्त का अर्थ यह हुआ कि जब ये कर्म दया करेंगे तब राग मिलेगा अन्यथा नही, सो उसके इस एकान्त मे भी सही मार्ग न मिलेगा। तथ्य सच समझिये जगत के सर्व पदार्थ स्वतन्त्र है, सब अपनी-अपनी सत्ता स्वय रखते है। स्वयं सिद्ध हैं। स्वत. परिणामशील है, अपने आप परिणमते रहते हैं। स्वतन्त्रता तो यो है मगर देखिये- इस जीव मे अनादिकाल से यह बात चली आ रही है कि अशुद्ध बना हुआ है, तो क्या इसकी अशुद्धता स्वभाव से है ? यदि

स्वभाव से यह जीवअशुद्ध है तो यह फिर वह कभी मुक्त हो ही नही सकता। यह इस तरह अशुद्ध होता चला आया। कि कर्म उपाधि का निमित्त पाकर यह जीव उसके अनुरुप होती चला आया है। उसका परिणमन उसकी ही कारण शक्ति से है। कही निमित्त की करण शक्ति से नही है निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, प्रभाव कुछ भी उपादान मे नही गया, लेकिन उपादान एसा बिगड गया तो क्या स्वभाव से बिगड़ कर बिगड गया ? ऐसा हो तो फिर उसके छूटने का कोई उपाय नही रहेगा। बिगडा वह उसी तरह से है कि पर वस्तु का निमित सन्निधान पाया और यह आत्मा स्वय अपनी परिणति से उस प्रकार हुआ है। दृष्टान्त देखिये-दपर्ण मे हाथ की छाया पडी तो बताइये क्या वह छाया उस दपर्ण की है या हाथ की ? हाथ मे हाथ है, दपर्ण मे दर्पण है। हाथ का कुछ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दर्पण मे नही गया और न दर्पण का हाथ मे। हाथ मे निमित्तता मात्र थी, दर्पण मे योग्यता थी अत हाथ सामने आने पर दर्पण स्वय अपनी परिणति से उस रुप परिणम गया। इसमे विवाद की क्या बात ? जैन सिद्धान्त मे इसकी बहुत स्पष्ट विवेचन है। एक पक्ष का चित चिन्त मे न रहे तो विवाद के लिए एक भी स्थल नही बैठता। आचार्यदेव की ऐसी परम करुणा है कि इस जीव को ऐसा सत्यमार्ग बतायागया है।

स्वभावदर्शन के लिये निश्चयनय व व्यवहारनय के सदुपयोग की कला का दिग्दर्शन— अब देखिये- मोक्ष के लिए, अपना मार्ग अपनाने के लिए कर्त्तव्य क्या है ? स्वभाव दर्शन। अपने स्वभाव की दृष्टि बनाये, इसमे दूसरी राय नही है। यदि शान्ति पाना है, मोक्ष मार्ग पाना है तो एक ही उपाय है कि अपने सहज स्वभाव की दृष्टि करे और उस ही रुप असने को माने। यह ही तो काम करना है, इसमे विवाद की कोई बात नही, लेकिन स्वभाव दृष्टि हमारी कैसे बने, इसके लिऐ जो उपाय सोचा जा सकता है उसमे भूल भी हो सकती, कोई सही भी कह सकता, मगर वास्तव मे यह धुन बने कि मेरे को स्वभाव दर्शन चाहिऐ। अन्य बातो की हमे जरुरत नही। अगर वास्तव मे आत्महित की श्रद्धा हुई है तो भी यह श्रद्धा निर्विवाद सब काम कर देगी। निश्चय दृष्टि से देखो सभी पदार्थ स्वतन्त्र है, अपने आप मे अपना परिणमन कर रहे है, अपने आप की शक्ति मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रुप रहा करते है। ऐसा सोचने का प्रभाव क्या पडा कि किसी भी पर वस्तु पर दृष्टि न होगी, किसी भी पर वस्तु का ख्याल न आयगा तो निराश्रय अध्यवसान नही हो सकता। तब इसने पर वस्तु का आश्रय छोड़ दिया। अध्यवसान की व्यक्ति कैसे हो। निश्चयनयका आलम्बन करके जब इसने परका आश्रय छोड दिया तब फिर निराश्रय तो रागभाव न रहेगा। वहा अपने को मार्ग मिल जायेगा। स्वभाव दर्शन हो जायगा। अब

जरा व्यवहार दृष्टि से देखो, कैसे स्वभाव दर्शन मिलता है ? व्यवहारनय यह बताता है कि जीव में जो विकार परिणति होती है वह कर्म विद्या का निमित सन्निधान पाकर होता है। अहो आत्मा मे ये विकार स्वभाव से नही हुए है, कर्म उदय का निमित्तपाकर हुए है नैमित्तिक भाव है, अथवा कर्मविपाक में स्वय यह उधम पडा हुआ है। वह उधम इसमे झलकता है, झलका वह करता है, मोही इसे अपनालेता है। यह न अपनायेगा तो ऐसा विशुद्ध परिणाम होगा कि कर्मकाऊधम भी मिट जायेगा। तो स्वभाव दर्शन हो जायेगा। ये समस्त विभाव नैमित्तिक भाव है, परभाव है, मेरा स्वरूप नही, मेरा स्वभाव नही, ऐसी गंभीर दृष्टि मे स्वभाव दर्शन भी हमे मिलेगा। बात सीधी है कि विकार को निमित्त नैमित्तकभावपूर्वक मानने परकल्याण की दृष्टि जगेगी और कर्त्ता कर्म भाव न मानने मे ही हमको स्वभाव की दृष्टि और कल्याण का मार्ग मिलेगा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता। यह निर्णय अपेक्षित है, लेकिन यह भी एक तथ्य है कि जब जो विकार होगा वह पर द्रव्य का निमित्त पाकर ही होगा। निमित्त बिना विकार नही होता और निमित्त परमे कुछ करता नही। ये दोनो के निश्चय से अपने को कल्याण का मार्ग मिलता है। तो ऐसी दृष्टि बनाकर अपने आपमे एक स्वभाव दृष्टि करें और अपने कल्याण मार्ग मे लगें।

बाह्यसमागम मे हितलाभ की अशक्यता—भैया देह देवालय मे अन्त: विराजमान आत्मदेव की अपना निर्णय बनाले कि धन वैभव परमाणु मात्र भी ऐसा कुछ नही है। अपने हृदय मे पवित्रता लाये। पर वस्तु का मोह रखने से आत्मा मे अपवित्रता जगती है और उससे पापका बंध होता है। श्रद्धा सही बनालें कि परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नही है, शान्ति नही है, ऐसा अपने आप मे एक विशुद्ध भाव बनायें। देखो बाहर में जो होना है सो होता है। जैसा आपके घरके लोगो का उदय है वैसा सब काम चल रहा है। हा ऐसा होता है कि जैसा उन लोगो का उदय है वैसा होने मे आपकी बुद्धि भी निमित्त बनती है, वैसी बुद्धि चलती है लेकिन आपका उसमे कोई सम्बध नही, कुछ बात नही, आप निराले हैं, यह धन वैभव जड आपसे निराला है। वह अजीब है आप जीव है। इससे आपका क्या सम्बध ? जरा अपने आप पर दया करने के लिये सोचे किजिन पर मोह कर रहा हूँ वे कोई आपके साथी नही हो सकते। न पुत्र, न स्त्री, न पति, न पिता, न धन वैभव मे कोई आपके शरण, साथी नही हो सकते। आपके साथी, आपका शरण सब आप ही है। कोई दो मित्र थे तो वे दोनों रोज मिलकर स्वाध्याय किया करते थे। तो उनमें एक दिन ऐसा ठहराव हो गया कि हम दोनो मे से कोई अगर गुजर जाय और गुजर करके देव बने, तो वह आकर दूसरे को समझाये। उनमे से एक मर गया और देव बना। उसने अवधिज्ञान

से परखा और उसी मन्दिर मे आया जिसमे कि उनका वह पूर्वभव का मित्र स्वाध्याय कर रहा था। उसे समझाने के लिए आया क्योंकि वादा निभाना था। उसे देव ने कुछ विरक्तिकी बाते कही देखो जिन परिजनो मे तुम मोह करते हो वे तुम्हारे कुछ नही, नही तो वह मित्र यही कहे कि अरे मेरे पुत्र बडे अच्छे, मेरी स्त्री बडी आज्ञाकारिणी, मेरे परिजन बडे अच्छे। तो उस देव ने समझाया कि देखो तुम भूल मे हो, वे तुम्हारे कुछ नही है, यो देवने बहुत बहुत समझाया पर उसकी समझ मे न आया। देव ने फिर कहा- अच्छा तुम एक काम करना, कलके दिन दोपहर को तुम पेट दर्द का बहाना कर लेटजाना, हम वहा आयेगे तब तुम्हे समझायेगे। अच्छी बात। दूसरे दिन वह पुरुष पेट दर्द का बहाना करके लेट गया। घर वाले बडे हैरान हुए। ईसी बीच वह देव वैद्य का रूप रखकर सडक पर फिरने लगा, लो दवा खरीदो दवा, हमारे पास हर प्रकार की पेटेन्ट दवाये है। जब घर वालो ने सुना तो बुलाया। कहा आप हमारे अमुक की दवा कर दीजिए। जब उस वैद्य ने उस पुरुष की नाडी पकडी तो कहा अरे इसको तो बडी जबरदस्त बीमारी है। इसका बचना मुश्किल है, लेकिन हम इसका इलाज करते है।······अच्छा भाई एक गिलास पानी ला दो, आ गया पानी। अब उसमे कोई झूठ मूठ की दवा या भस्म डाल दी और कोई झूठ मूठ का मत्र सा पढकर उन घर वालो से। उस पुरुष के माता, पिता, स्त्री, पुत्रादिक से, कहा लो तुममे से कोई इस दवा को पी लो, अभी तुम्हारा आदमी अच्छा हुआ जाता है।···अरे ऐसी क्या बात कह रहे ? बीमार तो वह है, दवा हमें पीने को क्यो कह रहे ? ···अरे यह दवा मन्त्रसिद्ध है, इसमे विशेषता यह है कि इसे जो पीता है वह तो मर जाता है और जो बीमार होता है वह अच्छा हो जाता है।···अब बस पुरुष की माँ सोचती है कि अभी तो मेरे पास ३–४ लड़के है, यदि मैं ही मर गई तो फिर पुत्रो का मुख कहाँ से देख सकू गी, यह सोचकर उसकी मा ने वह दवा पीने से इन्कार कर दिया। ऐसा ही कह कर उसके पिताजी ने भी इनकार कर दिया, जब उसकी स्त्री से दवा पीने को कहा तो उसने सोचा कि मेरे पास दो तीन लडके है। यदि मैं ही मर गई तो फिर इन पुत्रो का सुख न देख सकू गी, इसलिए उसने भी मना कर दिया। ऐसे ही लडको ने भी मना कर दिया। बाद मे ह वैद्य बोला—तो क्या मैं पी लू ? ···हाँ हाँ आप पी लीजिए। आप तो बडे दयालु मालूम होते है···अच्छा तो तुम लोग यहाँ से जावो, हम पी लेंगे। सब लोग वहा से चले गए। अब वह देव उस पुरुष के कान मे कहता हैसमझ गए न ? जिसको तुम बडा आज्ञाकारी कह रहे थे वे तुम्हारे लिए कुछ न हुए ना। उस पुरुष की समझ मे झट आ गया।

आत्महित के लिये आत्मबोध व आत्माश्रय करने के दृढ नियम की आवश्यकता-- भैया अपना दृढ निश्चय करो--मुझे तो पवित्र बनना है। उसके द्वारा ज्ञान प्रकाश पाना है, अपने आपका मन शुद्ध करना है केवल जीवन मे उसका एक ही लक्ष्य है, बाकी सभी लक्ष्य छोड दे, ऐसा भाव बने तो इस जीव को कुछ लाभ भी मिलेगा और अगर नही करते तो फिर जो करते सो करो। होगा यही कि जो ससार मे जैसे अभी तक चलते आये, कीडे मकोडे बनते आये वैसे ही बनना पडेगा। उससे इस जीव को लाभ क्या है ? लो सम्यक्त्व पाने के लिए उपाय है तत्वाभ्यास। ज्ञान की बात सीखें, जो पदार्थ जैसा उसे वैसा समझले। यह बात कही १०—१५ वर्ष सुनने मात्र से बोध हो जाये ऐसा करने मे सारा जीवन लगाना पडेगा। तत्वज्ञान करते हुए समय व्यर्थ की गप्पो मे निकला जाता है। अपने दुर्लभ क्षणो का सदुपयोग करो। अच्छा, लो जरा हम आपसे कहते है कि आप २४ घटे धन कमाओ। खूब कमाओ। मगर कोई २४ घटे धन कमाता है क्या ? और २४ घटे किसी से कमाई बनती है क्या ? कोई २४ घटे का समय धन कमाने मे लगा सकता है क्या ? कितना समय लगाते ? मुश्किल से ९—१० घटे। अब बताइये आप के पास बाकी जो १४ घटे बाकी जो समय है उसमे आप क्या करते है ? उसे फालतू ही तो गमाते हैं। अरे मित्रो मे, दोस्तो मे कभी भी ऐसी बाततो कर लिया करो कि यार बताओ तो सही कि मेरे आत्मा का उद्धार कैसे हो ? इस ओर तो चलना चाहिए। धर्म के मार्ग मे खुद भी लगो और दूसरो को भी लगाये। अगर ऐसी बात मित्रो मे होती तो वह सच्ची मित्रता है, और यदि ऐसा नही हो सकता है तो धोखा है, उसे दु ख मे डालता है और खुद भी दु ख मे पडता है, ऐसी गोष्टी बने कि दूसरो का भी उपकार और खुदका भी उपकार हो। तो एक निर्णयकर लीजिए कि मेरा परमाणु मात्र से भी प्रयोजन नही, परिस्थितिवश करना पडता है। सो जिस कर्म के उदय से हम मनुष्य हुए हैं उसमे इतनी बात तो होती ही रहेगी कि बिना किसी विशेष चिन्ता के इतना तो मिल ही जायगा कि गुजारा ही चलता रहे। मानलो अधिक धन जोड-जोड़कर रख लिया और उसको किसी ने छुडा लिया, अगर सरकार ही कोई कानून बनाकर आपसे छुडाये तो उससे आपको फायदा क्या रहा ? और छुटेगा तो है ही। अभी न छूटा तो मरने पर एकदम सारा का सारा धन छूट जायगा। इससे धनार्जन करने का अपना मुख्य लक्ष्य न बनायें। अपना लक्ष्य बनायें आत्म-कल्याण का। यही सारभूत बात है।

प्रत्येक आत्मा मे धर्म की एक रूपता और उसके प्रारम्भिक विकासका साधन निसर्ग व अधिगम--सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम से होता है अर्थात् किन्ही जीवोंको

सम्मग्दर्शन दूसरे के उपदेश सुनकर होता है। तो जो अपने आप होता याने उपदेश सुने बिना अन्य किसी कारण घटना को देखकर होता है। उसे कहते है निसर्गज सम्यग्दर्शन और जो दूसरे का उपदेशकर सम्पग्दर्शन लाभ होता है उसे कहते हैं अधिगमज, सम्यक्त्व क्या वस्तु है ? आत्मा का परिणाम। जगतमे जितने जीव है वे सब सुख शान्ति चाहते है और दु ख से दूर होना चाहते है।उस ही का उपाय है सम्यग्दर्शन। यही आत्मा का धर्म है। जो भी जीव है उसका यह स्वभाव है। धर्म है। प्रत्येक जीव अपने आपके धर्मको सम्हाले तो वह पवित्र हो जायेगा। इस लोक मे मुद्रामुद्रित जो धर्म फैले हैं, जो मजहब चल रहे है वे धर्म नही कहलाते है। वह तो एक परिस्थिति है। मार्ग मे लगने वालो का एक समूह है, धर्म तो जात्मा मे है और वह है आत्मा के स्वरुपका सही श्रद्धान होना ज्ञान होना और आचरण होना। मुक्ति इस ही उपाय से मिलती है।

श्रद्धान ज्ञान आचरण बिना लौकिक कार्यकी भी सिद्धि की अशक्यता—जगत मे जितने भी कार्य होते है वे सभी कार्य विश्वास, ज्ञान, आचरणपूर्वक होते है। कोई रोगी निरोग होना चाहे तो वहाँ पर भी औषधिका विश्वास, ज्ञान और आचरण चाहिए। कोई कहे कि औषधि का विश्वास न करे और खा ले तो ऐसा कहाँ होता ? वह तब खायेगा जब उसके प्रति विश्वास होगा। विश्वास बिना खाये तो वह औषधि असर भी नही करती। प्रथम तो यह बात है, जब वह विश्वास नही है तो खायेगा कैसे ? चाहे एक थोडा विश्वास करे करना ही तो पडता है और ज्ञान न हो- कैसे खाया जाता है, इसमे क्या चीज है, तो उससे उसका आचरण नही बनता और आचरण करे तो निरोग हो जायगा। जैसे कोई रसोई बनाता है तो क्या वह विश्वास, ज्ञान, आचरण बिना बना सकता। अरे उसे विश्वास है कि कल रोटी बनाया था। आज भी इसी तरह से बन जायगी। क्या कोई यह सोचता है कि कल तो आटे से रोटी बन गई थी, आज पता नही बनेगी भी या नही ? अरे उसे पूरा विश्वास है कि आटे से रोटी बना करती है और ज्ञान भी है कि इस तरह से रोटी बन जाती है। आटे को पहिले भिगोया और फिर उसे गूथ कर ऐसा लसादार बना लिया कि उसे उठावे तो वह थाली भी साथ उठ जाय। उसकी पहिचान है कि रोटी अच्छी बनेगो। परोथन होना चाहिए आटे से पतला, फिर रोटी बनाया, तवे पर डाला, पहिली बार जल्दी रोटी को बदल दिया, फिर उसे देर तक तवे पर रोके रहे, फिर रोटी को तेज अंगारे मे डाल दिया, अगर कोई उस रोटी में छेफ हो जाय तो उसे चमीटे से बन्द करदे। यो सब ज्ञान है ना, तो वह रोटी बनाता है, उस क्रिया का आचरण करता है, उस तरह की क्रिया करने से बन गई रोटी।

बात यह बतला रहे है कि विश्वास, ज्ञान, आचरण बिना कोई काम नही बनता। चाहे वह व्यापार आदिक के कार्य करे, चाहे कुछ भी करे, विश्वास, ज्ञान, आचरण तो होना ही चाहिये।

स्वयं के श्रद्धान ज्ञान आचरण स्वभाव से लाभ लेने का विवेक—जीव मे यह स्वभाव पडा है कि वह विश्वास ज्ञान, आचरण बिना रहता ही नहीं है। यह विभाग की बात है कि कोई अच्छे काम मे विश्वास, ज्ञान, आचरण करता है तो कोई खोटे कामो मे मगर इनके बिना कोई नही रहता है। तो जिसे मुक्ति चाहिये तो मुक्ति भी एक कार्य है, कर्मो से छूटना भी एक कार्य है, उसके लिए विश्वास, ज्ञान, आचरण क्या? क्या काम चाहिए हमे? छूट जाना। किससे? कर्मो से, शरीर से छूट जाना। तो देखो जिसको छोड़ना है पहिले उसका विश्वास हो कि हां इसका छुटा स्वभाव है तब ही छूट सकता है तो अपने आप का वास्तव मे विश्वास होना चाहिए और जिसमे छूटना है उसका विश्वास हो, कैसे छूटना, उस उपाय का विश्वास हो, ज्ञान हो और फिर वैसी ही क्रिया करे याने ज्ञान की भीतर मे ही वैसी ही वृति बने तो उसे मुक्ति प्राप्त हो जायगी। तो उस ही सम्यक्त्व की बात कही जा रही है कि वह क्या है। देखिये—अभी तक बहुत-बहुत बातो मे आनन्द लिया। स्पर्शना, रसना, सुगन्ध लेना, रूप देखना, राग के शब्द सुनना, मान प्रतिष्ठा नामवरी की इच्छा रखना और उस कार्य मे लगना आदि, अब तक बहुत-बहुत काम कर डाले मगर किसी काम मे भी शान्ति न मिली तो फिर यह निर्णय तो बनाये कि जोरोज़िगार हमने अब तक किया, विषय से मनका व्यापार जो अभी तक करते आये, इसमे अभी तक टोटा ही टोटा पडा तो अब यह काम बदल दो। यहा तो आप रोजिगार मे अगर ४–६ वर्ष टोटा ही टोटा पडता रहा, नफा कुछ नही होता तो आप उस काम को बन्द कर देते हैं, कोई दूसरा काम करने लगते है, किन्तु अनादिकाल से जो अब तक स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु, कर्ण और मन इसके विषय लगे है, इसमे बराबर तुमको नुकशान ही नुकशान रहा, बरबादी ही रही, चारो गतियो मे परिभ्रमण करते रहे, इसमे तो सारा नुकशान ही नुकशान है। तो इसे बदलना क्यों नही चाहते। तो क्या बदल करना चाहिये? आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मआचरण, ये उपाय करे।

यथार्थज्ञान में ही कष्टविध्वंसन की क्षमता—देखो अपना अनर्थ कितने विकल्प उठा करते? जैसे मरते समय मोहियो को दुःख होता कि मैने जीवन भर कमाई की, मकान खडा किया दुकान बनाया, इतने ठीक बच्चे तैयार किए और इन सबको छोडकर जाना पड रहा है, इसका ही तो दुःख होता है, और विशेष दुःख क्या होता है। मरना तो सभी को

पडता है। मरने मे कष्ट क्या ? अरे एक कमरेसे उठकर दूसरे कमरे में हम बैठते तो उसमे दु ख तो नही मानते; इसीतरह एक इस शरीर कमरे से निकलकर किसी नये कमरेमें, शरीरमे पहुचे तो वहां दुःखकी क्या बात है ? दु.ख तो इस बातका होता कि मैंने बडी कठिनाई से इतनी कमाई की, पर यह सब छूटा जा रहा है, इसका कष्ट मानता है यह। और, जिसे ज्ञान हो जाय कि मैंने इसे कमाया ही नही, यह तो यो ही जुड गया, उदय था, जिनको भोगना है उनके उदयसे यो ही जुड गया। क्या किया मैंने ? इसे मैने नही कमाया, मैंने इसका कुछ नही किया, ये पर द्रव्य हैं, इनकी मैं परिणति नही कर सकता। अगर ऐसा जानकर बन जाता तो मरते समय इसको कष्ट न होता। तो जितने भी कष्ट है जीवको वे सब भ्रमके कारण है। विपरीत बुद्धि है उसका कष्ट है। इसलिए क्या करे कि भ्रम दूर करे। समस्त पर द्रव्योंसे निराला, शरीरसे निराला, कर्मोंसे निराला विषय कषाय भाव विकल्प विचारसे निराला, शुद्ध सहज एक ज्ञानस्वभावी मैं आत्मा हूँ। यहा तक कोई दृष्टि लिए जाय तो उसे मोह कहां सतायगा ? सब भिन्न है, सब पर है। यो ही अचानक मिल गए। जैसे रास्ता चलते–चलते किसी चौहट्टे पर वहां सामनेसे आते हुए कोई आदमी मिल गए तो वहा आप कितनी देर तक उनसे मिलते ? बस जरासा नमस्ते या रामराम या जय जिनेश किया, बस आगे चल दिया। तो जैसे वह थोडी देर का मिलाप है ऐसे ही यह भी थोडे समयका मिलाप है। कोई किसी गति से आया कोई किसी गति से रास्तेमे मिल गए तो थोडी देरका मिलाप है। उस ही समयको रागद्वेष, मोह, कषाय कर लिया।

यथार्थ परिचय होनेपर रागद्वेष मोहका अनवकाश—अरे भाई किसपर कषाय करते, किसपर द्वेष करते, किसपर विरोध करते ? जिसे देखकर आप विरोध करते उसे आप जीव मानते, वह तो मायारूप है, परमार्थ वस्तु नही है। जिसपर विरोध करते वह जीव तो कई बार तुम्हारा कुटुम्बी हो गया बन्धु हो गया। किस पर मोह करते। तुमसे सभी जीव भिन्न हैं एक कथानक है कि एक कषायी एक बकरा मारनेके लिए कही लिए जा रहा था। वह किसी शहरसे निकला। रास्तेमे एक सेठकी दूकान थी। वहा वह सेठ खडा हुआ था। सो वह बकरा जब उस दूकान के पास पहुचा तो झट दूकान पर चढ गया और उस सेठ के चारो ओर चक्कर मारने लगा। सेठ के शरीर मे बहुत बहुत चिपटने लगा। सेठने कषायी से बहुत बहुत कहा कि भाई यह बकरा यहा से हटता नही इसे मुझे दे दो। तो कषायी बोला—यदि आप दो हजार रुपये मुझे दें तो मे यह अपना बकरा आपको दे दू। वह सेठ क्यो दे दो हजार रुपये ? उसने सोचा कि बकरे तो ४०–५० रूपयो मे

बिकते है । आखिर सेठ ने बकरे को ढकेल दिया तब वह कषायी बकरे का कान पकड कर हत्यागृह मे उस बकरे को ले गया और फिर जो करना था सो कर दिया अब वह सेठ एक मुनिराज के पास पहुचा । मुनिराज से सेठने पूछा कि महाराज आज एक ऐसी घटना घटी कि एक बकरा मेरी दूकान पर चढ आया और वह मेरे पास आकर मेरे शरीरसे चिपट रहा था और मेरे चारो ओर चक्कर लगा रहा था । मैंने बहुत भगाया, भागा नही, बड़ी मुश्किलसे मैंने उसे खदेडा । यह क्या मामला है ! तो मुनिराज बोले-बेटा वह तेरे बापका जीव था । तेरा बाप गुजर गया तो वह मरकर बकरा हुआ था । कषायी उसे मारने के लिए ले जा रहा था सो वह बकरा अपने प्राण बचाने की आशा से तेरे पास आया था, इसलिए वह तेरे शरीरसे चिपट रहा था और तेरे चारो तरफ चक्कर लगा रहा था मुनिराजकी बात सुनकर सेठ जल्दी ही वापिस आया, कषायीके हत्यागृहमे पहुचा तो वहा तब तक वह मर ही चुका था । तो बात यह है कि वे ही जीव जो तुम्हारे घरमे आज हैं वे मरकर दूसरा भव धारण करले तो उनमे फिर आपको ममता जगती है क्या ? आपके घरका कोई जीव मरकर मान लो गाय की बछडी बन गयी तो उससे आप प्रेम करेंगे क्या ? अरे उसे तो आप डडे ही लगायेंगे । वह जब दूध देने वाली बन जायगी, दूध देने लगेगी तब तो आप उसे कुछ हरी भरी घास तथा दाना खिलायेंगे, नही तो वही रूखा सूखा भुस ही देगे । तो कोई किसीसे क्या प्रेम करता, क्या राग करता ? जगतमे जितने भी समागम है वे सब बेकार है । व्यर्थ पर द्रव्यो मे मोह किया जा रहा और अपने आपको दुःखी किया जा रहा । व्यर्थ ही कर्म बन्धन किया जा रहे, अगली गति बिगाडी जा रही । किसीका कोई दूसरा शरण नही । सब अपने आपके जिम्मेदार हैं दूसरा जिम्मेदार नही । यह ख्याल रखना कि मेरे को क्या परवाह है, मेरा तो अभी बाप जिन्दा है, मेरा तो सपूत सदा हाजिर रहता है । मेरे को क्या परवाह है । मेरी स्त्री आज्ञाकारिणी है, ये सब बातें थोथी है, इस जीवके लिए कोई शरण नही है । ऐसा जब देखते है तो चिन मे यह बात लाये कि ये जो बाहरी बातें हैं ये मेरे लिए कुछ नही हैं । इस ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वके लिए ये बाहरी बाते क्या महत्व रखती हैं ? भिन्न हैं बाहरी चीजे हैं । भैया ? तृष्णा करो तो अपने आत्माको जानने की और आत्माके शुद्ध ज्ञानप्रकाश मे मग्न होनेकी तृष्णा करो। बाहरो की तृष्णामे क्या फायदा पा लोगे ? ये तो अत्यन्त भिन्न चीजे हैं । ज्यादह आ गई तो क्या, न आयी तो क्या ? तो अपने आपको पहिचानो, अपने आपको समझें, मैं ज्ञानमात्र हूँ । देखो एक यह ही बुद्धि रखें कि बस जो ज्ञान प्रताप है, मे वही वही हूँ, दूसरी बात ज्ञान मे न लावे । कहते है ना कि ऐसे ऐसे लोग अन्जन चोर या और भी लोग ऐसे हुए

जिन्हे विशेष ज्ञान न था, वे भी तिर गए। तो किस बलपर वे तिर गए ? न था उन्हे अधिक ज्ञान लेकिन मैं ज्ञानमात्र हुँ, ज्ञान प्रकाश हूँ, इतना ज्ञान तो उन्हे हुआ था ही। तभी तो तिर गए ! भैया ! ऐसी भावना लावो कि यह दिखने वाला शरीर भी मैं नही, मै तो ज्ञानमात्र हूँ। जब कोई शरीर मे रोग हो जाय, कोई वेदना हो जाय तो यह जैसी कि शरीर मे वेदना हुई है दवा कर लिया, कुछ बात नही है, मगर उसमे ममता न करें। मेरे दुःख का कारण तो शरीर की ममता ही है बाह्य के मोह मे, बाह्य साधन के लगाव में दुख का होना प्राकृतिक है, क्योकि वह सब कोरी कल्पना है भ्रम है, अज्ञान है। देखिये जितने भी कष्ट हो रहे है उनमे यह साधन शरीर बनता रहता है, तुम कोई भी कष्ट की बात सामने रखो, अन्त मे उत्तर यही मिलेगा कि तुम्हारा शरीर है दुःख का कारण। कोई कहे कि वाह अमुक ने मेरा अपमान किया तो इसमे दुःख का कारण शरीर कहा रहा ! तो सुनो आपको है इस शरीर मे ममता, इस शरीर को आपने माना कि यह मैं हूँ, फिर ध्यान मे लाये कि इसने मेरा अपमान किया तो यह आपकी शरीर में आत्मीयता की बुद्धि हुई इस कारण आपने अपना अपमान महसूस किया। अपमान आपका यह ध्यान बन जाय कि मैं शरीर ही मे तो एक ज्ञान पुञ्ज हूँ तो फिर आप किसके सम्मान अपमान की बात सोचेगे उस ज्ञानपुञ्ज का कोई अपमान कर सकता है क्या ? अगर कही अपमान का दुःख हुआ तो उसका भी कारण यह ही शरीर बना।

शरीर का शरीरों से रिश्तेदारी का तांता—अच्छा मान लो कोई रिश्तेदार मे खट-पट हो गई, बात नही बनती है तो कहते है कि मेरे को बडा दुःख है इस रिश्तेदार की वजह से। अरे वह रिश्तेदार किसने बनाया ! इस शरीर ने इस ज्ञान पुञ्ज चैतन्यस्वरूप आत्मा को कष्ट है क्या ! रिश्तेदारी है शरीर की शरीर से। इसलिए इस दुःख का कारण यह शरीर हुआ। भैया किसे कहते है ! जिससे यह शरीर पैदा हुआ उसी से जो अन्य शरीर पैदा हो, उसका नाम है भैया। देखो सब शरीर के नाते से बोले जायेगे। बहिन किसे कहते है ! जहां से यह शरीर पैदा हुआ वही से जो स्त्री जाति का शरीर पैदा हो उसे बहिन कहते हैं। स्त्री किसे कहते है ! जो इस शरीरको रमाने वाला, ऐसा जोकोई शरीरहो उसे कहते हैं स्त्री पुरुष किसे कहते है ! इस शरीर को रमाने वाला जैसा शरीर शरीर है वह शरीर जिससे पैदा हो उससे जैसा ओर पुरुपजातिकर शरीर पैदा हुआ हो उसका शरीर है साला। स्वसुर किसे कहते हैं ! इस शरीर को रमाने वाला जो शरीर है वह शरीर जिस शरीर से पैदा हुआ हो उसका नाम है स्वसुर। यो सब नाते रिस्ते शरीर के साथ मिलेंगे। जब कोई बडा सा हल्ला होता है तो लोग कहते है कि अरे यह कलकल क्यो मचा रहे हो ! यह कलकल क्या

चीज है ! कल मायने शरीर, याने शरीर शरीर की ही बात हो रही, सारे बचन व्यवहार ये सब इस शरीर के ही कारण तो होते है। तो शरीर शरीर का ही तो सब कुछ होता है। यहा यह बात कही जा रही है कि जितने भी कष्ट होते हैं उनमे माध्यम है यह शरीर। भूख प्यास लगी तो इस शरीर की वजह से ठड गर्मी लगी तो शरीर की वजह से लगी। हा कोई अगर टोटा आ गया, घर गिर गया, दूकान फेल हो गई या पैसा डूब गया तो उसका भी कारण यह शरीर है। शरीर कैसे कि इस शरीर मे ममता है। इस शरीर को माना कि यह मै हूँ। कोई नुकशान हो गया तो कहते कि मेरा नुकशान हो गया। वे इस शरीर को ही मैं हूँ ऐसा समझकर कहते हैं वे यह नही कहते कि मेरा शरीर है। अगर वे ऐसा बोले तो कुछ गुजाइस निकले, इतनी भी बात नही चलती है। हाथ उठा उठा कर कहते हैं, कि पहलवानो की तरह छाती ठोक ठोक कर कहते है इसने मुझे यो कष्ट दिया।

अज्ञानजन्य विपरीत कल्पनाओं मे क्लेश का विलास—अरे भोले प्राणी अज्ञान मे तू कितना दुःखी हो रहा है, कषाय करके कितना दुःख पा रहा है। अपने को समझ जाओ कि मै ज्ञानमात्र हूँ, अन्य कुछ नही हूँ मैं स्वतन्त्र सत् हूँ मैं स्वयं उत्पाद व्यय ध्रौव्य से सहित हूँ मेरे मे मेरा परिणाम होता रहता है। मैं दूसरे का परिणमन नही करता। दूसरा कोई मेरा परिणमन नही करता। कोई मुझे क्या कहेगा ! कोई मेरा क्या बिगाड करेगा जो कोई करता है अपना करता है। कोई दो लडके २०-२० हाथ कीदूरी पर खडे हो, उनमे एक जरा कमजोर है या मान लो कैसा ही हो। एक लडका दूसरे लडके को अँगुली मटका कर या जीभ निकाल कर चिढा रहा हो तो वह २० हाथ दूर खडा हुआ बच्चा चिढ़ता है, दुखी होता है। बताओ अज्ञान मे वह करे क्या, वह यह सोचकर दुःखी होता यह तो मुझे यू यो कर रहा, यह मेरे को यो चिढा रहा। दुःखी हो रहा। अब कोई सज्जन आता है तो वह कहता है कि अरे बालक तू क्यो रो रहा है ! तो वह कहता है कि वह मुझे चिढा रहा ! अरे वह कहा तुझे चिढा रहा ! वह तो अपने हाथ को अगुली मटका रहा है अपनी जीभ निकाल निकाल कर अपने को कष्ट दे रहा है, वह तो तेरा कुछ नही कर रहा। तो ऐसे ही समझिये कि जितने गाली देने वाले हैं, तिरस्कर करने वाले है वे अपना कष्ट कर रहे हैं, तुम्हारा क्या बिगाड करते ! तुम तो ज्ञान स्वरूप हो। ज्ञानी बनो तो सुखी रहोगे। अज्ञान मे कोई सुख न पावोगे। उस अज्ञान को छोडना पडेगा। कोई कहे वाह इस अज्ञान को तो हमने अनादिकाल से अब तक पाला पोषा है। अब मैं इसे कैसे छोडू। जैसे कोई मोही कहते हैं कि मैंने तो इस परिवार को अब तक ऐसा पाला पोसा है इसे मैं कैसे छोडू ! अथवा ये मिथ्या-दर्शन, लिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र इन्हे मैंने अनादिकाल से पाला पोषा है, इन्हें मैं कैसे छोडू

अरे अनादि कालसे ही-इन्हे रखते आये तो क्या कल्याण हो गया ? अरे इन्हें छोडना ही होगा। शान्तिका दूसरा कोई उपाय नही। कोई सोचे कि मे ऐसा धन कमालू तो सुखी हो जाऊँगा। कमाले, पर कभी ऐसा मोका न आयगा कि आप सुखी हो सके। बल्कि धन अधिक हो जायगा तो उसे कहा रखना, कहाँ छिपाना किसे देना, यो अनेक उलझने सामने आयेगी। तो भाई जैन सिद्धान्त यह उपदेश देता है कि तुम्हारे थोडे परिश्रममे जो धन आता हो आने दो, उसीमे सन्तुष्ट रहो। उसीमे अपनी सारी व्यवस्था बना लो। लोग तो सोचते है कि हम कैसे व्यवस्था करले ? हमारे पास तो धन बहुत कम है। अरे भाई जितनी आमदनी हो बस उतने मे ही व्यवस्था बनाना है। उदाहरण के लिए जिनके पास कम धन है उनको देख लो, वे भी जिन्दा रहते कि नही ? जिसके पास जो है उसीमे व्यवस्था बना ले। उसीमे कुछ हिस्सा पालन पोषण के लिए रक्खे कुछ दान के लिए रक्खे। और, उसी से आनन्द से जीवित रहे।

परको अपने तंत्र बनानेकी मूढ़तामें क्लेशका विलास—भैया दुख तो तब है कि जब अपने मनमे ऐसी इच्छा बनाया है कि मेरे को तो ऐसा ही बनना चाहिए। उसके बिना गुजारा नही। उसको कहते है ऊधम जब कोई बच्चा ऊधम करता तब तो बडे लोग उसे बहुत डाटते, पर जब खुद ही ऊधम कर रहे तो फिर उन्हे कौन डाटे ? पर वस्तुओ पर जिनपर आपका अधिकार नही उनकी आप इच्छा किए हुए हो। अगर कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे का खिलौना देखकर रोता है तो आप उसे डाटते हैं—अरे क्यों रोता है, वह तो दूसरेका खिलौना है, मगर आप भी तो इन दूसरो के खिलौनो से देखकर, उनकी तृष्णा करके दुखी हो रहे हो ! जितने भी पर द्रव्य है वे दूसरे खिलौने ही तो हैं, वे तुम्हारे कुछ लगते तो नही। और नही तो इतना तो लोग कह ही देते है कि क्या यह तुम्हारे बापकी चीज है ? यह पुद्गल, यह धन, यह पैसा, यह तुम्हारे बापकी चीज है क्या ? वहा क्यो नही दृष्टि लगाते। तो जो बात जैसी नही है उसे वैसी न जानकर विपरीत करे और विपरीत चेष्टाये करें तो उसे ऊधम कहते है। सहारनपुर की एक घटना है। एक बजाजका लडका था तो उसका घर जम्बू प्रसादकी हवेलीके सामने था। वह मोहियोके बडे रईस हुए हे। सुनते है कि जमीदारी के जमानेमे उनके पास ७०० गाव थे तो बजाज लडका एक बार किसी हाथी को देखकर अपने पिता से मचल गया कि पिता जी हमे हाथी खरीद दो। तो हाथी खरीदना तो उनके लिए कठिन था खरीदे भी कोई तो पर उसका इन्तजाम कौन करे ? सो उस लडके के पिताने महावतसे कहकर अपने द्वार पर हाथी खडा करवा दिया और कहा—लो बेटे तुम्हारे लिए हाथी खरीद दिया। फिर भी वह

बालक रोने लगा। पिता ने फिर पूछा-अरे बेटे अब क्यो रोता है ? अब तो हाथी खरीद दिया ? तो वह लडका बोला-इस हाथीको मेरी जेबमे धर दो। अब भला बतलाओ यह काम कौन करे ? तो जैसे वह बच्चेकी हठ है जो काम कभी हो नही सकता त्रिकाल सम्भव नही और उसकी हठ करे तो ऐसी हठ मे रो रहा है तो उसका रोना कैसे मिटे ? तो इसी तरह जाने कि ये सब प्राणी अनहोनी हठकर रहै है। यह दूकान ऐसी ही बन जाय। और वह तुम्हारी चीज है क्या ? तुम्हारे आत्माकी चीज है क्या ? तुम्हारे आत्माकी परिणति है क्या ? यह काम ऐसा ही बन जाय, यह काम ऐसा ही होना चाहिए, ऐसी हठकर रहा यह बच्चा ही तो है। तो इस हठ मे कभी भी सुख नही पाया जा सकता। हठ छोडना पडेगा, मिथ्यात्व हटाना पडेगा, सम्यक्त्वका सगम करना पडेगा यदि यह श्रद्धा नही है कि जो कुछ जड वैभव हमे मिला है लाख दो लाखका ये सब कुछ महत्त्व नही रखते और मेरे आत्माका ज्ञान, श्रद्धान, तत्त्वा यास, व रत्नत्रय बने वह ही महत्त्वकी चीज है। यदि ऐसी श्रद्धा हो तो वह धर्मको पल रहा है। हम छोडने की बात नहीं कह रहे, काम सब करते रहो मगर जो सच्ची बात हो उसमे श्रद्धा बना लो और झूठ हो तो हमे समझाओ सच है ना। जितने भी बाह्य समागम है वे सब भिन्न हैं, मेरे लिए असार हैं, ऐसा श्रद्धान बनाओ और अपने ज्ञानमे लगो। तत्त्व—चिन्तनके काममे लगो। सम्यक्त्व पालो।

सभी सम्यग्दर्शनोकी अधिगमजता ही होनेसे निसर्गज सम्यक्त्वकी असंभवताकी शंका—सम्यक्त्वका वर्णन इस सूत्रमे चल रहा है। वह सम्यक्त्व पेदा कैसे होता है ? तो कोई तो निसर्ग से और कोई अधिगमसे उत्पन्न होता है। इस विषयमे कुछ गत दिवस ऊहापोह किया गया है। पहले उस निसर्गका अर्थ क्या और अधिगम का अर्थ क्या ? इसका अब भले प्रकार समझ लेना चाहिये। कुछ यहा कोई शकाकार-शका रख सकता है कि हमे तो ऐसा मालूम होता है कि जितने भी सम्यक्त्व हैं वे सब अधिगमज हैं मायने उपदेश से उत्पन्न होने वाले है। निसर्गज नही है कोई सम्यग्दर्शन अधिगमके बिना उत्पन्न हो ऐसा कोई सम्यग्दर्शन नही। देखो जिसे भी सम्यग्दर्शन होता है तो इतनी बात देखी जाती है कि वह ज्ञान से जाने हुए पदार्थमे ही तो विश्वास करता है, ज्ञानमात्र से अधिगत पदार्थमे उसके सम्यग्दर्शनकी प्रवृत्ति होती है। सम्यग्दर्शन वही होता है जहा सामान्यज्ञानसे कुछ जाना गया, हो। और, सामान्यज्ञान से कुछ जाना गया हो तो चू कि सामान्यज्ञान से जाना गया तो यह ही तो एक उपदेश हुआ। बाचकर जाना गया, उपदेश सुनकर जाना गया या कुछ भी घटनायें सुनकर जाना गया, इसीको उपदेश कहते है। देखिये कहते है ना कि कोई

आदमी बोले भी नहीं और शान्ति से है। साधु संत बहुत शान्ति से विराजे हो तो उन्हें देखकर लोग कहते हैं कि इनकी सकल उपदेश दे रही है, इनकी मुद्रा उपदेश देती है। तो उपदेश मुद्रा से भी होता है स्वाध्याय से भी होता है और शब्द सुनने से भी मिलता है। किसी भी प्रकार उसे आत्माके बारे मे ज्ञान जगे। ज्ञानसामान्य हो तब तो उसमे सम्यग्दर्शन की प्रवृत्ति होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि सम्यग्दर्शन सभी अधिगमज होते हैं।

निसर्गज सम्यक्त्व न होनेकी शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमे सोचे कि अधिगमजका अर्थ क्या है और निसर्गज का अर्थ क्या है। अधिगमका अर्थ है परके उपदेशकी अपेक्षा रखकर तत्त्वज्ञान हुआ है उसे कहते है अधिगम उस अधिगम से जो सम्यक्त्व होता है उसे कहते है अधिगमज। दूसरेका उपदेश सुनकर जो तत्त्वज्ञान हुआ उस तत्त्वज्ञानसे जो सम्यक्त्व हुआ उसे अधिगमज कहते है। यह बात सुनकर शंकाकार बोला कि तब तो और बड़ी कठिनाई हो गई। इसमे तो इतरेत राश्रय दोष हो गया। कैसे कि आप कह रहे हो कि परोपदेशापेक्ष, तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शन होता है। तो यहा दो बातें रखी तत्त्वज्ञानसे सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्दर्शसे तत्त्वज्ञान उपदेशापेक्ष तत्व ज्ञान से सम्यग्दर्शन होता है। अब यहांयह समझिये कि जब सम्यग्दर्शन होवे तब बने तत्त्वज्ञान और जब तत्त्वज्ञान होवे तबबने सम्यग्यदर्शन, इसे कहते है इतरेतराश्रय दोष। जैसे बिना तालीके कोई ताला लग जाता है, अब ताली तो धर दी सन्दूकमे और ताला लगा दिया तो अब समस्या सामने आ गई ना। चाभी निकले तो ताला खुले और ताला खुले तो चाभी निकले। ऐसे ही यहाँ समस्या आयेगी कि जब वहतत्त्वज्ञान हो तो सम्यक्त्व हो और जब सम्यक्त्व हो तब तत्त्वज्ञान हो। इसमे तो इतरेतराश्रय दोष हो जाता है। इसका समाधान करने के लिए कोई अगर ऐसा कहे कि यह तो परोपदेश देने वाले ज्ञानकी अपेक्षा बात कह रहे कि उपदेश देने वाले को तो ज्ञान है तत्त्वज्ञानका और उससे फिर इसको सम्यक्त्व हुआ, तो यह उसका समाधान कोई सिद्ध नही, क्योकि तत्त्वज्ञान तो इसे होना है इस ही एकको बात करिये। अथवा यह समाधान कि जो उपदेश देने वाला है उसका ज्ञान परके उपदेश से होता है। तो यह भी निश्चय नही है कि उपदेश देने वाले का ज्ञान परोपदेशसे होता है, संभव है निसर्गज होता हो, अपने आप होता हो, स्वय सचित होता हो उनका ज्ञान तो परोपदेशकी अपेक्षा वह नही रखता हो अत यह भी सही उत्तर न जामेगा। तब फिर क्या ? उत्तर यह है कि जो पहिले बताया था कि सम्यक्त्व होने से पहिले जो तत्त्वज्ञान है वह तत्त्वज्ञान अनुभव रहित होनेसे तो मिथ्या और चूंकि वैसा ही ज्ञान किया जैसा ज्ञान सम्यक्त्व होनेपर पर हो गया उस अपेक्षासे वह सम्यक् है। ऐसे इस तत्त्वज्ञानसे परोपदेशसे यह अधिगमज

सम्यग्दर्शन होता है । तो सम्यग्दर्शनका हम आप उपाय करें, और शास्त्राभ्यास करे, दूसरेके मुखसे उपदेश सुने । सम्यक्त्वका कारण तो यह ही है पुरुषार्थ इस बातपर मत रहे कि जब जो होना होगा हो जायगा। ऐसा भी हो सकता जिससे यह नही हो सकता उसका ऐसा भाव बने वेसे । पौरुष करे । वह पोरुप है, ज्ञानमय पौरुष । अपने ज्ञानसे अपने आत्माके सहज ज्ञानस्वरुपका बोध बनावे और निर्णय बनावे कि मैं हूँ, यह मैं हूँ ।

सम्यग्दर्शनकी अधिगमजताके विषय शंकाका निवारण—मोक्षमार्गका प्रारम्भ सम्यग्दर्शन होनेपर होता है । जहा जाना है, जहा रमना है उसका ही श्रद्धान न हो. उस धामका ही पता न हो तो रास्तेपर चला ही जायगा कैसे । ही जायगा तो मुझे रमना है, आनन्द मग्न होना है आत्माके सहज धाममे जो कि आतन्दमय है, विशुद्ध ज्ञान स्वरुप है । और जिन कारणोसे हम अपने मे मग्न नहीं हो पाते थे उन कारणोंसे छूटकारा पाना है, तो ऐसी बात तब ही तो हो सकेगी जब हमे उस रम्य स्थानका परिचय हो। तो सर्व-प्रथम मोक्षार्थी जीवको यह आवश्यक हो गया कि वह सम्यक्त्व प्राप्त करे । वह सम्यक्त्व प्राप्त करे वह सम्यक्त्व कैसे प्रोप्त होता है । तो उसके बाह्य साधन को बताया जा रहा है कि वह निसर्ग और अधिगमसे होना है । अधिगम से होता है इस सम्बन्धमे चर्चा चल रही है ईश्वर के ऊपदेशसे होता है, इस चर्चा मे अब तक यह कहा गया कि अधिगम सम्यग्दर्शन इस विधिसे होना है कि परका उपदेश मिले और उससे तत्त्वार्थका ज्ञान जगे तब सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् परोपदेशाये तत्त्वार्थज्ञानका नाम है अधिगम और उस अधिगमसे जो सम्यग्दर्शन हो उसे कहते हैं अधिगमज इस अधिगम के विषयमे शका की गई थी इसका निश्कर्ष यह निकला कि जो प्रतिपाद्य है शिष्य है जिसे सम्यक्त्वलाभ हुआ है उसे परोपदेशापेक्ष तत्त्वार्थज्ञान हो तो वह सम्यग्दर्शनका जनक है । अब एक समस्या और रखी जा रही है कि परोपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञानसे सम्यग्दशन होना मानने पर इतरेतराश्रय दोष दिया था ना तो उसका निवारण भी हो और उसकी आशका आ जाय इस तरह एक समस्या रखी जा रही है कि परोपदेशसे प्रतिपाद्य शिष्यको तत्त्वार्थज्ञान होता है, तत्त्वार्थज्ञान होते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है । यो सम्यग्दर्शन और यह परोपदेशाये क्षतत्त्वज्ञान दोनो ही साथ होते है । उसे इतरेतराश्रय दोषकी गुंजाइस नही रहती है । इतरेतराश्रय दोष क्या था कि जब उपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान हो तो सम्यग्दर्शन हो वहाँ भिन्न समय मान लिया जाय भिन्न-भिन्न बात मान लिया जाय तब ही तो इतरेतराश्रय है लेकिन समय इसका एक ही है । जिस समय उपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान होता है उस ही समय सम्यग्दर्शन होता है । इसतरह की एक समस्या रखने वाले

शब्दमर्म को नही जानते। क्योकि कारण यह है कि सम्यग्दर्शन का जनक परोपदेश है। वह परोपदेश जो कि तत्वार्थ ज्ञान का साधन है वह तत्वार्थ ज्ञान पहिले होता है और उसके बाद से सम्यग्दर्शन होता है। तब ही तो वह जनक कहा जायेगा कि परके उपदेश को सुनकर तत्वविषयक ज्ञान हुआ। उस ज्ञान से फिर सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई। अतः यह मानना होगा कि शिष्य को ही तत्वार्थ का ज्ञान जगे। परोपदेशापेक्षा से, और उसे ही सम्यक्त्व हो तो वह है अधिगमज सम्यग्दर्शन। एक बात सब जगह सामने रख रहना कि सम्यग्र्शन होने के समय जो ज्ञान होता है उसका नाम तो सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्दर्शन होने के अनन्तर पूर्व जो तत्वज्ञान होता है उसे न सम्यक् कहते न मिथ्य कहते, किन्तु अनुभवरहित ज्ञान है इस कारण मिथ्या कहते और अनुभवसहित ज्ञान हो जाने पर फिर सम्यक्त्व के साथ होने वाले ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वैसे वह तत्वज्ञान मिथ्या नही है। जैसा सम्यक्त्व होने पर ज्ञान जगेगा वैसा ही ज्ञान अब बन रहा है लेकिन जैसे एक तो सुनी सुनाई बात कहना और एक आखो देखी वही बात हो जाना। तो बात वही जाना पहिले भी अब भी, लेकिन पहिले जाना सुने सुनाये ढग से वह अनुभवरहित है। अब यह हो गया स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष। तो इस तरह अधिगमज सम्यग्दर्शन परोपदेशापेक्ष तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है।

स्वकारणजन्यता होने पर भी विधि की अनपक्षर की अनुपेक्ष्यता—अब यहां एक जिज्ञासु अपनी बात रख रहा है कि देखिये—पर के उपदेश से हुआ तत्वार्थक ज्ञान। वह भी अपने कारण से ही हुआ। जैसे कि निसर्गज सम्यग्दर्शन मे जो तत्वार्थज्ञान होता है वह अपने कारण से होता है याने ज्ञानावरण का क्षयोपशम हो, बुद्धि विवेक वैसा बनें तो ज्ञान जगता ना, निसर्गज सम्यग्दर्शन से पहिले, तो इसी तरह अधिगमज सम्यग्दर्शन पहिले भी जो तत्त्व ज्ञान है वह भी अपने कारण सेही उत्पन्न होता है। फिर वहा इतरेतराश्रय दोष नही कह सकते तत्वार्थज्ञान अपने कारण से हुआ, सम्यग्दर्शन अपने कारण से हुआ। वहा यह दोष नही लगता कि तत्वार्थज्ञान हो तो सम्यग्दर्शन हो। सम्यक, यह तो है मगर सम्यग्दर्शन हो तो तत्वार्थज्ञान है, ऐसा वहा आश्रय नही है, क्योकि ? ज्ञान का कारण है अपना क्षयोपशम, अपनी ही योग्यता सो कारण निसर्ग मे है, सो अधिगम मे है तब तो इतरेतराश्रय न आयेगा। एक बात जिज्ञासुओ ने रखी तो यह सिद्धान्त भी यह ही मानता है कि जो भी ज्ञान जगा जिस ज्ञान के बाद सम्यग्दर्शन होगा वह ज्ञान अपने कारण से जगा। क्या कारण थे उसके। ज्ञानावरण का क्षयोपशम था, उस प्रकार का ज्ञान जगा, ऐसा ही उपयोग बना, सो यह ही बात उपदेश पाने पर भी ज्ञान जगने मे होती है, और यह ही बात उपदेश न पाने पर भी ज्ञान जगने मे होती है। तो ठीक है मगर वह परोपदेशापेक्ष तत्वाज्ञान हुआ, उससे तो

हुआ अधिगमज सम्यग्दर्शन । और जो उपदेश विना नाना कारणो से सम्यक्त्व जगे उसे कहते है निसर्गज सम्यग्दर्शन । देखो सम्यग्दर्शन क्या चीज है ? सम्यक्माय ने सच्चा दर्शनमायने देख लेना । सहीस्वरुप देख लेना ।सही स्वरुप किसे कहते है? जैसे दर्पणके आगे हाथ कर दिया और उसमे हाथ की छाया आ गई तो क्या दर्पण का सही स्वरुप है ? नही, क्योकि वह अपने आप होने वाला स्वरूप नही है । वह परापेक्ष स्वरुप हो गया अर्थात नैमित्तिक बात हो गई । वह सही स्वरुप नही है । इसी प्रकार आत्मा मे जो विषयकषाय है, विचार विकल्प है, ये क्या आतमा के सही स्वरुप है ? नही, ये भी नैमित्तिक है । पुदगल कर्म का उदय क्षयोपशम आदि का निमित्त पाकर होते है ।

आत्मस्वरुप का दिग्दर्शन—

विभाव परभाव है तव आतमा का सही स्वरुप क्या है ? तो मानो, सोचो कि आत्मा जव सत् है तो अपने आप सत है । किसी दूसरे की दया परअस्तित्व किसी का नही होता जिसका अस्तित्व है उसका अपने आप स्वय सहज हुआ करता है । तो जो अस्तित्व हुआ है आत्माका वह किसी अन्य वस्तु के कारण नही हुआ । है सत् ! अपने आप है, अकेला है, तो ऐसा ही वह अकेला सत कैसा होता है इस बात पर दृष्टि दीजिए । जहा शरीर न हो, कर्म न हो, कषाय न जगे, विषय विकल्प न जगे । यह पर व परभाव का सम्बन्ध न रहे तो अपने आप यह जीव किस स्वभाव मे है, ऐसा ध्यान मे लाइये । और, उस स्वभाव रुप से अपने आपका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । देखो भैया सब लोग अपने आपके बारे मे कुछ न कुछ ख्याल निरन्तर बनाये हुए है मै हूँ जो गुजर रहा है भीतर उस पर और अपने आपके बारे मे क्या हूँ, इस प्रकार का ख्याल अवश्य बना हुआ रहता है मैं हूँ, व्यापारी हूँ, बैंक वाला हूँ, जायदाद वाला हूँ, फर्म वाला हूँ, सर्विस वाला हूँ, अथवा मैं धर्म का प्रबन्ध करने वाला हूँ, विद्वान हूँ, मूर्ख हूँ, कुछ न कुछ यह अपने को हूँ के साथ एक बात और लगाये रहता है । हूँ तो सब तो सब मानते है, पर हूँ के साथ एक चीज और लगी रहती है । बस हूँ के साथ जो एक बात और लग रही है वह क्या हूँ, बह इस पर ही सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की बात का फैसला है । मैं क्या हूँ ? मैं एक सहज स्वच्छ ज्ञानमात्र हूँ, यह तो सम्यक्त्व की दिशा और उसे छोडकर बाकी और कुछ मान कर है । मैं गृहस्थ हूँ, मैं मुनि हूँ, मैं साधु हूँ, मैं इनका गुरु हूँ, नेता हूँ, मैं इनको समझाने वाला हूँ, मै समझने वाला हूँ, कुछ भी ऐसी बात लगावे कोई तो समझिये यह सब मिथ्यात्व हो गया । तो जहा अनादि अनन्त अहेतुक सहज ज्ञान स्वभावरुप मे आत्मश्रद्धा है वहा सम्यक्त्व है । ऐसी श्रद्धा हुए बिना शान्ति न मिलेगी । मुक्ति का मार्ग न मिलेगा । यह सब खटपट बनी रहा करेगी । वह श्रद्धा लावे । तो ऐसे इस सम्यग्दर्शन की यहां चर्चा चल रही है ।

स्वकाल में स्वकार्य होने पर भी सहेतुकला की अप्राक्तिषिध्यताः—अब यहा एक जिज्ञासु अपनी एक बात और रख रहा है कि सम्यग्दर्शन के जो दो भेद किए गए- निसर्गज और अधिगमज ये दो भेद इष्ट नही है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि सभी सम्यग्दर्शन नैसर्गिक ही है, स्वाभाविक ही है, क्योकि उनकी अनेक समय मे उन्नति होती है। लोग कहते है कि जिस समय जो होना है उस समय वह होता है। तो फिर जिस समय जो होना है उस समय वह होगा ही, उसमे कारण की क्या बात है ? नैसर्गिक हो गया। जब अपने कालमे स्वय उत्पत्ति हुई तो वह सम्यक्त्व नैसर्गिक है। जैसे मोक्ष के बारे मे भी तो कहते हैं लोग कि जिस समय मे मोक्ष होना है उस समय मोक्ष होगा न ज्यादह समय मे होगा न कम समय मे होगा। जब होना है तब होगा। ऐसी ही सम्यक्त्व की बात है। अपने काल मे उत्पन्न हुआ तो वह नैसर्गिक ही रहा। अधिगम कैसे हुआ ! शका एक रखी गयी है कि जिसके बारे मे लोग ऐसे भ्रम वाले अब तक भी है पहिले भी थे और अब भी है, जब जो होना है सो होगा। उसमे कारण की कोई जरूरत नही। देखिये ऐसी शका करने वालो ने इसका रहस्य नही समझा ऐसी बात बोलले, कुछ हर्ज नही। जिस काल मे जो होना है सो होता है, जब मोक्ष होना है तब होता, जब सम्यक्त्व होना है तब होगा ऐसा बोलले। बोलने मे कुछ हर्ज नही मगर मर्म तो समझे। कही वह काल की वजह से नही हो गया किन्तु ऐसा उस कालमे ऐसा साधन जुटना हुआ ऐसा निमित हुआ ऐसा पुरुषार्थ हुआ तो उस प्रक्रिया पूर्वक हुआ है वह। जिस काल में जो होना है उस काल की बात कहते है यहा काल विवक्षा करके बात न सोचना नही तो सिद्धान्त विरुद्ध बात हो जायगी। जिस काल मे ऐसा हुआ बस उस काल की बात कह देते। जैसे कहते है ना, कलयुग पचमकाल। यह काल नाम का द्रव्य है जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश मे एक-एक ठहरा हुआ है। और उस काल द्रव्य की प्रति समय में नई-नई परिणति होती है। तो क्या उस समय मे भी ऐसी विशेषता आ गयी कि कलयुगमे या पचम काल मे लोग ऐसे गिरे भावोके बनेगे ? नही। कालकी वजह से नही, किन्तु एक ऐसा प्रवाह है कि जिस समय ऐसा सस्थान सहननहीन सघनन हीन काय, हीन चित्त आदि सब साधन मिलने है उस कालमे ऐसी बात होती है। तो काल तो एक उदासीन कारण है। कालमे कालकी वजह से पदार्थोंका परिणमन हुआ ऐसी बात नही, किन्तु सभी पदार्थ जिस विधिसे होना होते है उस विधि से होते है। गुरुजी सुनाते थे एक वेदान्त कथा की बात की कोई एक राजा था, उसके कोई लडका न होता था तो राजा एक साधुके पास पहुचा और कहा महाराज मेरे कोई बालक नही, कृपा करके एक पुत्रका आशीर्वाद दे दीजिए। तो साधु ने कहा-तथास्तु, ऐसा हो जायगा। तो राजा बडा खुश होकर

अपने महल आया । अपनी रानियोंसे सारा समाचार कह सुनाया। सभी रानिया वह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुई । अब राजाने रानियोंसे कहा कि अब तो आर्शीवाद मिल ही चुका, सतान तो होगी ही, इसलिए अब अपन लोग ब्रह्मचर्य से रहे । अब वे ब्रह्मचर्य से रहने लगे । जब काफी दिनो तक कोई सतान न हुई तो उसने किसी ते पूछा कि भाई हमे तो साधु से आर्शीवाद मिल चुका है पर अभी तक सतान क्यो नही हो रहा । तो वहा बताया गया कि देखिये जो काम जिस विधिसे होना है वह उस विधिसे होता है। सतान आदिक होने के कारण है उपद्रव, करे। सतान होगी तुम बन गए उपद्रवरहित, वह तो मुक्ति का मार्ग है, फिर कैसे सतान की प्राप्ति हो ? तो जो काम जिस विधिसे होना है वह उसी विधिसे होगा । लोग तो उस कालका का नाम लगाते है। लेकिन बात तो कारण कलापपूर्वक होती है। हा, यह बात अवश्य हैं कि वस्तुकी स्वतत्रता है।

अपनी–अपनी परिणतिमे पदार्थोकी स्वतंत्रता—निमित्त अपना असर प्रभाव कुछ भी उस उपादान मे नही डालता है। निमित्त और उपादान दोनो स्वतंत्र है अपनी अपनी परिणति मे, मगर योग उनका हो, वो वैसा परिणमन है। जैसे कोई देहाती आदमी कभी कचेहरी नही गया, उसे कभी जाना पडा तो वह जजको हौवा जैसा समझता है, डर तो पहिलेसे ही बेठा था सोचता था, वहा भगवान सा कोई बेठता है अनेक कल्पना ये थी उसके सामने जानेमे वह कापता है। कहो डरके मारे वह मूत्र भी करदे तो बताओ उस देहाती पुरुषपर जजने कोई प्रभाव डाला क्या ? अरे वह तो जैसा बेठा हैं सो बैठा है । वह पुरुष स्वयं अपने मे कल्पनाये करके अपने आपमे सोच विचार करके अपने आपमे प्रभाव बनाता है। और उस प्रभावके समय मे विषय वह जज हुआ। इसलिए जजका नाम हुआ, आरोप हुआ, मात्र, अन्यका देखो तो इतने वकील वगैरह जाते है उनके कुछ नही होता है। तो यह सब अपनी अपनी बात है अपनी अपनी योग्यता की बात है। जब जैसी योग्यता है, जैसा ढग है-उस योग्यता से वह अपनेमे प्रभाव लाता है । सो देखो यहा आश्रयभूत निमित्त वह रहा ना ।-तो इसी तरह से सर्वत्र यह ही बात समझ लो कि निमित्त पाकर विकार होता है पर निमित्त विकारमे कुछ डालता नही। ऐसा ही सहज योग है कि जिस समय योग्य उपादान अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाये तो वह इस प्रकार का विकृत बन जाय। ऐसा ही सहज योग चल रहा है। व्यवस्था हे ऐसी, तब ही सारे काम चल रहे हैं। तुम्हे चाहिए मोक्षमार्ग वह मिलता है स्वभाव दृष्टि से । तो स्वभाव दृष्टि की अभिलाषा रखने वाले से निमित्ताधीन दृष्टि न रहना चाहिए । ऐसा उपयोग बनावें कि केवल आतना राम ही दृष्टिमे रहे । यह है उसका पुरुषार्थ । मोक्षमार्ग मे बढ़नेकी चीज, किन्तु यह कह

बैठे कि विकार हुआ तो अपने स्वभावसे हुआ, बिना कारण के हुआ, अपने कालमे हुआ। तो यह ऐसी सुविधा रखने वाले पुरुषने विकार को अपने गाठकी चीज मान ली। तो वह कैसे निवृत्त हो सकेगा ? तो यथार्थ तत्त्वज्ञानमे सब दिशाये मिलती है। स्वभावदर्शन की सब विधिया प्राप्त होती है। तो सम्यग्दर्शन जिस कालमे होना था हुआ, पर उस काल की वजहसे नही हुआ। ज्ञानियोने समझ लिया, जान लिया इस वजहसे नही हुआ। वह सब अपने कारणकलापसे हुआ।

उदाहरणपूर्वक भवितव्यके कारणकलाप संभवत्वकी सिद्धि—नेमिनाथ स्वामी के समवशरणमे जब यह बात प्रकट हुई कि यह द्वारिकापुरी १२ वर्ष मे जल जायगी तो इसके जलनेका निमित्त बनेगा यह द्वीपायन, सब कुछ बता दिया, तो सबने किसीने दीक्षा ले ली, कोई विरक्त हो गए, कोई घर द्वार छोड़ कर चले गए। जिसका जैसा उपादान था उसने वैसी चेष्टा की। द्वीपायनने जब यह जाना कि मेरे कारण यह नगरी जलेगी तो वह मुनि हो गए और उस नगरी को छोडकर जगल चले गए। सोचा कि जब मै निमित्त हीन बनूँगा तो फिर नगरी कैसे जलेगी ? देखिये वे किसी साल मे १२ महीना होते है तो किसी सालमे १३ महीने भी तो हो जाते है। १२ वर्ष बीत चुकनेपर द्वीपायनने सोचा कि अब तो १२ वर्षका समय व्यतीत हो गया, अब मुझे अपनी नगरी लौट जाना चाहिए। सो द्वीपयन १२ वर्ष बाद उस नगरीमे आये। महीनोके घट बढ होनेसे उन्हे समयका सही ख्याल न रहा, इस कारण हुआ क्या कि जब वह नगरीमे आये तो वह १२ वे वर्षका अन्तिम महीना था। वहा रहने वाले लोगो ने किया क्या था कि उस नगरीका ऐसा प्रबध कर लिया था कि शराब जैसी नशीली बेहोशी ला देने वाली चीजोको नगरीसे बाहर फिकवा दिया था। यह सोचकर कि कही ऐसा न हो कि नशीली चीजोका सेवन करनेसे बेहोशी हालत मे कोई अग्नि फेक दे तो जब वहां द्वीपायन मुनि पहुचे तो लोग दर्शनार्थ गये। कुछ लोगोने फिके शराब के गड्ढे का पानी पिया, इन लोगो को मुनि पर बडा क्रोध आया। सोचा कि देखो इसी के कारण नगरी जलना बताया था और यह आ पहुचा। बेहोश लोगोंसे उनपर इतना क्रोध उमडा कि उनपर ढेला पत्थर आदि बरसाना शुरू कर दया उन मुनिराज को तपस्या के कारण तैजसवृद्धि प्रकट हो गई थी। तो तैजस वृद्धिमे होता क्या है कि अगर वह प्रसन्न हो जावे तो उनके दाहिने कन्धे से एक पुतला निकलता है कि उसके आसपास चारो ओर बहुत दूर दूर तक दुर्भिक्ष मिट जाता है, सब लोग आनन्दमे आ जाते है, और अगर नाराज हो गए तो बाये हाथसे ऐसा तैजस निकलता है कि उनके चारों ओर आसपास के लोग भस्म हो जाते है। तो वहां हुआ

क्या कि द्वीपायन मुनिको ऊस समय ऐसा क्रोध उमडा कि उनके बाये कन्धेसे तेज निकला उस समय वे सम्यग्दृष्टि नहीं रहे तब उससे सारी द्वारिका नगरी भष्म हो गई। देखो उसकाल में यह सब हुआ, पर कही उस कालकी वजह से ऐसा नही हुआ। वह हुआ कारणकलाप से। जिस साधन से जो बात होती है उस साधनसे वैसी बात होगी। कालकी नही होती किन्तु कारणकलापसे होती है। ऐसे ही समझिये कि मोक्ष जिस कालमे होता है, मोक्ष जिस कालमे होना था हुआ, मगर उसका अर्थ यह नही है कि बिना विधिके हो गया। और, सम्यग्दर्शनके बारेमे तो यह निश्चित ही है कि ज्ञानमात्रसे भी अगर कुछ जाना नही गया उस सामान्यज्ञान ज्ञानसे जिसे न हम मिथ्या कहते न सामान्य कहते उसे सामान्य ज्ञानसे कुछ समझा नही गया आत्मतत्त्व श्रद्धान भी कैसे बनेगा ? यहा कोई इस तरह बात रख सकता कि जैसे अन्य लोगो मे यह बात प्रसिद्ध है कि भाई शूद्रोको वेदके अध्ययनका अधिकार नही, ऐसा होने पर भी, उसने अध्ययन नही किया फिर भी वेदके प्रति भक्ति तो देखी जाती है नमता है विनय करता है। तो देखो उसकी भक्ति निसर्गज हो गई कि नही ? इसीतरह से कुछ जाना भी नही, उपदेश भी नही सुना तो भी सम्यग्दर्शन हो जाना चाहिये। तो यहा बताया गया था। कि शूद्र से भी जो वेदकी भक्ति हुई वह बिना जाने नही हुई। सुना तो है दूसरो से अपने कुलवालोसे सुनता है तो उससे उसे ज्ञान हुआ। जितना ज्ञान हुआ उसके माफिक भक्ति हुई। किसी विषयका ज्ञान जरा भी न हो, भक्ति हो, श्रद्धान हो, विश्वास हो तो ऐसा कैसे हो सकता है। इसलिए ऐसा कहना कि सारे सम्यग्दर्शन निसर्गज होते हैं सो बात ठीक नही। और निसर्गज मे भी अन्य कारण तो है। इससे यह समझना कि सम्यक्त्व होता है निसर्ग मे भी और अधिगमसे भी

प्रत्येक अपूर्व दशावोकी कारणकलापसंभवता—जो शकाकारने यह बात रखी थी कि अपने आप होता है सम्यग्दर्शन तो उनका कहना ठीक यो नही कि स्वाभाविकपना साधन दर्शनका नही है। कैसे ? तत्त्वज्ञान हो, उसके उपायमे लगे, अभ्यासमे लगे. उसका ध्यान करे, चिन्तन करे, ये सब बाते करते है तब ही तो वह ज्ञान हुआ। तब ही तो वह सम्यग्दर्शन होता है। तो सम्यग्दर्शन निसर्गज नही है, अपने आप नही है कि अपने आप ही वह निकल गया। जैसे कहते हैं ना भैया भाडमे चने भुनते हैं तो कोई चने ऊपर उछल जाते है। अब कोई कहे कि अपने आप वे चने निकल गए तो वे भी अपने आप नही निकले। किसीसे सिर्का, किसी से चोट लगी, उसे मौका मिला तो वह उचट गया। तो क्या वह बिना कारण के उचका। नही। बिना कारणके कोई बात नही होती। स्वतन्त्रता

की यह बात समझना है कि वस्तुका परिणमन अपने आपकी परिणतिसे होता है, अन्यकी परिणतिसे नही, यह है स्वतन्त्रताका सिद्धान्त। मगर जो बात जिस विधिसे है वह उससे होती है। तो यह जो कहते है कि मोक्ष जिसका जब होना है होता है, उसका उन्होने अर्थ नहीं समझा। अर्थ उसका यह है कि भले ही कोई सख्यात कालमे मोक्ष जायगा कोई असंख्यात कालमे जायगा, कोई अनन्त काल मे जायगा, कोई अनन्तानन्त कालमे भी न जायगा ऐसा काल बताया है मगर उसका अर्थ यह है कि किसीके तो सख्यात कालमे ऐसेकारणकलाप जुटेगे कि उसका तत्त्वज्ञानपूर्वक, पौरुष सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रपूर्वक मोक्ष हो जायगा। ऐसा नही है कि निरुपाय मोक्ष हो जायगा। बात यह ही आयगी सबमे, पर उस कालमे होनेका है इसलिए ऐसा कह दिया। सम्यग्दर्शनके कारण है क्या ? अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति इन ७ प्रकृतियोका क्षय हो तो सम्यक्त्व हो, उपशम हो तो सम्यक्त्व हो और साथमे छह का उदयाभावी क्षय और उपशम हो और एक सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय हो तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। कारण तो है, स्वकालमे हुआ, ठीक है, यो तो हर एक बात है कि जिस कालमे जो होता है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने आप ही होता है अपनी परिणतिसे होता चला जाता, इसमे कुछ सन्देह नही। किसी परकी परिणतिसे नही होता, मगर जो परिणति जिस साधनका निमित्त पाकर होती है वैसी ही होती है। तो युक्तिसे भी विचारो। सम्यक्त्वके मायने क्या ? विपरीत अभिप्राय का विनाश हो जाना। विपरीत अभिप्राय जब तक जीवोके लगा है तब तक उसका नाम है मिथ्यात्व। विपरीत अभिप्राय क्या लगा ? जैसे शरीरको मानना कि यह मे आत्मा हूँ, अपनी कषाय, इच्छा, विकारको मानना कि यह मैं आत्मा हूँ, यह ही है विपरीत अभिप्राय यह विपरीत अभिप्राय जब न रहे तो उसे कहते है सम्यग्दर्शन।

सम्यक्त्वकी निषेध वचन गम्यता—भैया एक बात और समझलो दृष्टान्त मे देखो भाई न तो किसी ने किसी का रोग देखा, न किसी ने किसी की स्वस्थता देखी। किसी ने किसी का रोग देखा है क्या ? अरे वह आखो नही दिखता। हा फिर भी वह समझ में आता है। छूने से भी समझ मे आ जाता। जैसे बुखार है तो उसे नाडी देखकर झट समझ लिया जाता। ऐसे ही क्या निरोगता के किसी ने दर्शन किया ? अरे जब रोग न रहा तो एक प्रकार की जो स्वच्छता है उसे कहते हैं स्वास्थ्य। थोड़ी देर को रोग का तो हम वर्णन

कर सकते हैं। रोग की हम विशेषता सद्भावात्मक बना सकते है । सद्भावात्मक बुखार किसे कहते ? जिसमे इतनी गर्मी हो। खासी किसे कहते ? जिसमे दूसरे को खाये जैसा लगे खांसी। जब कोई खासता है तो ऐसा मुह हो जाता है कि मानो किसी को खाने को तैयार हो। अब आरोग्य का वर्णन करो। आरोग्य मे क्या होता तो आरोग्य का वर्णन नकारात्मक तो कर सकेंगे पर सकारात्मक नही। देखो, जहाँ एक भी रोग न हो, खाँसी भी नही, बुखार भी नही, पित्त कफ भी, विषमता भी नही, तो उसे कहते है अरोग। रोग का वर्णन करने के लिए आपके पास हजारो शब्द मिलेगे आरोग्य के वर्णन को शब्द नही। वह आरोग्य एक ऐसी स्वच्छता है कि जहां एक भी रोग नही, इसी तरह मिथ्यात्व की बात वर्णन करने वाले शब्द आप अनेक बता सकेंगे। जो देह मे ममता करे, विषय कषाय को अपना माने, यो बहुत बहुत बातें करते जावो। मगर सम्यक्त्व का वर्णन करने के लिए आप के पास क्या शब्द है ? किसका नाम सम्यक्त्व ? जरा बतलाओ तो सही। आप कहेगे जहा आत्मतत्त्व की रुचि जगे वह सम्यक्त्व है। अरे रूचि की बात तो तुमने एक चरित्र की बात कही। हा जो जहा आत्मतत्व की प्रतीति बने सो सम्यग्दर्शन हे। तो प्रतीति की बात तो तुमने सम्यग्दर्शन की कहदी। जरा बताओ तो सही, किसका नाम सम्यक्त्व है ? अच्छा सुनो, जहा विपरित अभिप्राय न रहा, देह जीव को एक नही मान रहा, विषय कषाओ को अपना आप नही मान रहा, विषय कषायो से जो निराला हो गया, इस प्रकार जो गुण है उसका नाम सम्यक्त्व है। कहते हैं कि हाँ अब आये ठिकाने। सम्यक्त्व का वर्णन विपरित अभिप्राय दूर करने की बात कहकर बता सकेंगे तब ही तो पुरूषार्थ सिद्धयुपाय मे जहा लक्षण किया गया है वह इस तरह किया गया है कि विपरीत अभिप्राय दूर होने का नाम तो सम्यग्दर्शन है। उसको तो व्यय, अभाव विनाश के रुप मे बताया गया हैं। आत्मतत्वका ज्ञान आत्मतत्व मे रमण यह तो प्रसिद्ध बात है, मगर विपरित अभिप्राय दूर होने का नाम सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति की साधनपूर्वकता—विपरित अभिप्राय का जो विनाश है क्षय है, यह विपरित अभिप्राय का क्षय यो ही नही हो गया, वह कारणपूर्वक हुआ। प्रकृतियो का क्षय,क्षयोपशम,उपशम,ये निमित्त पा करके वहा हुआ है। तो तत्त्वार्थ श्रद्धान जो परोपदेशापेक्ष तत्त्वार्थ ज्ञान से उत्पन्न हुआ वह अधिगमज है। और जो परोपदेश के बिना अन्य घटना पाकर हुआ हो वह नैसर्गिक है। चाहे नैसर्गिक सम्यक्त्व हो, चाहे अधिगमज, सम्यग्दर्शन हो, दोनो ही इस निमित कारण पूर्वक होते है ७ प्रकृतियो का उपशम हो, क्षय हो, और क्षयोपशम हो। ऐसे इस सम्यक्त्व के प्रसँग मे जो इसका वर्णन सुना उसको सुनकर हम अपने आपके भीतर एक ऐसी भावना रखें कि समय पर बारबार ऐसी दृष्टि आये, ऐसी

मुध हो कि मै तो केवल ज्ञानमात्र हूँ। चैतन्यमात्र हूँ, प्रतिभास स्वरुप हूँ, बस प्रतिभास ही मेरा वैभव है, वही स्वरुप है, उसका ही मैं कर्ता हूँ, उसका ही मैं भोक्ता हूँ। अपने आपके प्रदेश मे इस प्रक्रिया होने के अलावा बाहर मे मैं रच मात्र भी कुछ नहीं करता हूँ। ऐसी प्रतीति श्रद्धा सहित समय समय पर करे तो आपका ऐमा अमूल्य मानव जीवन सफल हो जायगा।

स्वभावद्रष्टा का सर्व जीवो मे परमात्यत्वस्वभावका दर्शन—हम आप ससारी जीवों पर जो विपत्ति छायी है वह भ्रम और कषायो की विपत्ति है। भ्रम से ऐसा मानते है कि मेरे को कष्ट देने वाला कोई दूसरा प्राणी है। इस बेचारे को यह सुध नही है कि जीव जीव सब एक समान है। मूल जीव द्रव्य मे किसी का किसी के साथ रच भर भी अन्तर नही है, जहा यह स्थिति है कि मै वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ, वह है भगवान, वहां यह बात भी नही मान सकते कि ससार मे जितने प्राणी हैं वे सब जीव चैतन्य भाव से एक समान नही है। एक का दूसरे से रच अन्तर नही है, लेकिन यहा व्यवहार मे जो अन्तर दिख रहा है वह सब अज्ञान का प्रसाद है। अज्ञान के ही कारण यह बडा भारी अन्तर देखा जा रहा है। पहिले तो अपना ही अन्तर क्योकि मैं हूँ एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र। उसकी सुध न होने से, उसका अज्ञान होने से इसकी दृष्टि बाह्य की ओर ऐसी तृष्णामयी हो गई कि इसको यह रुचता है कि सारा सार तो धन मे है। इस बात के कहने वाले लोग भी तो बहुत हैं। कहते हैं कि आज कल तो धन का युग है। धन है तो सब कुछ है और धन नही है तो कुछ नही है। तो ऐसा उन्हे कहने दो, तुम्हे सँसार मे रुकना है या ससार के दुखो से सदा के लिए छूटना है? क्या मजूर है? अगर ससार मे रुकना है तो यह ससारी प्राणी जैसे चलते है वैसे चलो तो वह भी काम बनेगा और ससार मे रुकने का भी काम बना रहेगा, और यदि समझ मे आया हो कि यहा तो पग पग पर सकट ही सकट है, यहा रमने की जगह नही है तब फिर ठिकाने आइये। अपने आप के स्वरुप की सुध कीजिए। बाहर का सारा बैर विरोध हटावो। देखो जिस घर मे रहते है ना कुछ परिवार के लोग तो जो समाज के बडे पुरुष है वे बच्चो को भी क्षमा करते, स्त्री को भी क्षमा करते, अपने से बडे बूढो को भी क्षमा करते तब उनको उदारतापूर्वक रहने के कारण उनकी महिमा बढती है। तो यहा हम सब पर क्षमा भाव रखे, सब जीव मेरे ही समान हैं, अन्तर क्या है? भीतर मे ऐसी श्रद्धा बनाये और ऐसी निगाह मे ही सबको निरखते रहे। बाहरी अन्तर के विचार का स्वरुप मे मानने का भ्रम लगा हुआ है, अज्ञान मे ऐसा बहक रहा है मेरे को गाली दे रहा। कुछ कर रहा। बेचारा क्या करे? अज्ञान है, भ्रम मे भरा हुआ है।

दया कर दे। इस तरह से भी क्षमा करे। मतलब यह है कि जिस तरह प्रत्येक प्राणी के अन्दर आप यह न निरखेगे कि सबका वही स्वरुप है जो मेरे अन्दर है, सबका वही स्वभाव है जो मेरे अन्दर है, इतनी बात अगर सब प्राणियो के अन्दर नही निरख सकते तब तक धर्म मे पग नही है।

अनेक बाह्य धर्मक्रियायें होने पर भी स्वभावाश्रयवित धर्मकी अनुपलब्धि—भैया भले ही कल्पनाये जगती हैं कि मै धर्म कर रहा हूँ, पूजा करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, पढता हूँ, प्रवचन करता हूँ, अथवा अनेक उत्मवो के, समाज के कार्यो मे भाग लेता हूँ मैं तो बडा धर्म कर रहा हूँ। अरे भाई सोचो जो कर रहा हूँ सो ठीक है, वह भी करना चाहिए। वह भी एक धर्मरुचि मदकषाय की बात है लेकिन वास्तविक धर्म तब होगा जब यह समझ मे आयगा कि अहो मेरे ही स्वरुप के समान सब जीव हैं। यह बात कब समझ मे आयगी कि मेरे स्वरुप के समान सारे जीव है ? यह बात तब समझ मे आयगी, जब अपना स्वरुप समझ मे आयगा मै स्वय ज्ञानानन्द स्वरुप हूँ। सहज ज्ञानस्वरुप हूँ, यह जो शरीर लपेटे फिर रहा हूँ यह तो कीचड है, मेरे लिए विडम्बना है, विपत्ति है। मैं तो स्वय अपने आप मे एक हज ज्ञानमात्र हूँ, पवित्र हूँ, स्वय परिपूर्ण हूँ, कल्याणमय हूँ। यहा अपूर्णता का कोई काम ही है। मै ऐसा शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ। इतनी बात यदि अन्दर मे न परख सके तो अनुभूति न जगेगी तो जीवन निष्फल है, बेकार है। बडे धनी बन गये, प्रतीष्ठा वाले बन गए, चेला बन गया और जो कुछ कपाय मे हम पर का अनुग्रह निग्रह करना चाहते है सो भी कदाचित् हो जाय तो भी सब बेकार है।

मोहनिद्रामे दृष्ट मायाजालकी असारता—यह दृश्यमान सब स्वप्न का जाल है। किसी को नीद आती है वह स्वप्न देखता है तो स्वप्न मे सब सार समझता है। क्या स्वप्न के समय मे वह यह समझता है कि यह सब कुछ झूठ बात है ? कोई नही समझता। इसी प्रकार जहा मोह मे सोचा, निद्रा आ रही है, इस मोह की नीद मे क्या कोई यह समझ सकता है कि जो कुछ यह दिख रहा है। जो कुछ मेरे पास लदा है वह सब असार है ? कैसे समझे ? मोह की नीद है ना। एक कथानक प्रसिद्ध है कि कुछ घसियारे लोग घास बेचने के लिए सिर पर गट्ठा लादे हुए एक गाव को चले जा रहे थे। गर्मी के दिन थे। दोपहर के समय मे वे एक पेड के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। उनमे से किसी घसियारे को निद्रा आ गई सो वह सिर के नीचे ईंट का सिरहाना रखकर लेट गया और सो गया। अब उसे सोते हुए मे एक स्वप्न आया कि मै राजा बन गया हूँ। मेरे सामने अनेक राजा महाराजा चरणो मे आकर नमस्कार कर रहे है। मै उन पर हुक्म चला रहा हूँ। बडा

आनन्द आ रहा। लोग मेरे गीत गा रहे। वह बहुत खुश हो रहा। अब उसी स्वप्न-स्वप्न मे ५ बज गए तो और घसियारो ने सोचा कि अब तो सिर्फ दो घटे दिन रह गया है, कब घास बेचेगे, कब लौटेगे। यह सोचकर उस घसियारे को जगा दिया। जगने पर उसका वह स्वप्न मे दिखने वाला सारा सुख समाप्त हो गया। अब वह घसियारा उन लोगो से लडने लगा—तुमने मेरा राज्य क्यो खो दिया, तुमने मेरा वैभव क्यो खो दिया! सब लोग उसकी बाते सुन कर बडे आश्चर्य मे पड गए। सोचा कि यह घसियारा क्या बक रहा है! कपडे भी इसके तन पर नही है, फटी हालत है फिर भी कहता कि मेरा राज्य क्यो खो दिया। तो जैसे उस घसियारे की वहा मूर्खता भरी बात है इसी प्रकार यहा सभी जीवो की मूर्खता भरी बाते हो रही है। मै धनिक हूँ, मै समाज का खास व्यक्ति हूँ, मेरी बडी प्रतिष्ठा है, बडा सुख है, बडा आराम है, बडा मौज है खाली ये सब मोह की निद्रा के स्वप्न है।

सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति—यहाँ मोह करना व्यर्थ है। कुछ करने का स्मरण होगा, यहा से कूच करना पडेगा, फिर क्या रहेगा आपका? पूर्व समय मे एक राजा भोज हो चुके है। वह विद्वानो का बडा आदर करते थे। कवियो को एक एक कविता पर लाखो रुपया दे दिया करते थे। एक बार एक कवि को सकट होने के कारण बहुत दिनो से इनाम न मिल सकने के कारण ऐसा मन मे आया कि अब मै क्या करूँ? कैसे खाऊँ? मुझे चोरी करना चाहिये लेकिन किसके यहाँ चोरी करूँ? छोटे मोटे लोगो को सताने से क्या लाभ? राजा के यहाँ चोरी करना चाहिये। यह सोचकर वह किसी तरह रात्रि को राजा के महल के अन्दर पहुचा। वहा कोई आहट मिली, छिपने को कोई जगह न मिली तो झट राजा भोज के पलग के नीचे छिप गया। वहा राजा भोज रात्रि मे अपने पलग पर बैठे हुए एक कविता बना रहे थे। वह कविता इस प्रकार थी—चेतोहरा युवतय सुहृदोऽनुकूल, सद्बान्धवा प्रगतिगर्भगिरश्च भृत्या गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलस्तुरङ्गा। बस ये तीन चरण तो बन गये थे, चौथा चरण नही बन पा रहा था। वे ही तीन चरण बार—बार दोहराते थे। तो वहा वह चोर (विद्वान कवि) सुन रहा था। उससे न रहा गया। जैसे कोई बडा संगीत का प्रोग्राम होता है तो वहा नाचने की कला जानने वाले को चैन नही पडती ऐसे ही उस विद्वान कवि को भी चैन न पडी और झट चौथा चरण बोल उठा। वह चौथा चरण इस प्रकार था। सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति। राजा भोज अपनी कविता मे अपने वैभव का वर्णन कर रहे थे। जिसमे यह अर्थ भरा हुआ था कि मेरी सभी स्त्रियां चित्त को हरने वाली है जैसा मैं चाहता हूँ वैसी आज्ञा मानती है। मेरे मित्र मेरे बडे

अनुकूल है। मेरे बन्धुजन बडी नम्रता मे भरे हुये है। मेरे सेवक सदा मेरे चरणो के पास हाजिर रहते हैं। मेरी अश्वशाला मे घोडे तथा गजशालामे हाथी गर्जते रहते है यो वह अपने वैभव का वर्णन कर रहा था तो नीचे से जो उस चोर ने चौथा चरण बोला तो उसका अर्थ था कि नेत्रो के मिच जाने पर फिर आपका कही कुछ नही है। अब उस चौथे चरण को सुनकर राजा का चित्त आश्चर्य से भर गया, अरे कौन मे गुरू महाराजने ये शब्द कहकर मेरे ज्ञान नेत्र खोल दिये ? मैं कैसा कुमार्गमे जा रहा था, किसने मेरी अज्ञानता दूर करदी ? यह सोचकर वह इधर उधर देखने लगा। नीचे छिपा हुआ जो कवि था वह बाहर निकल आया। राजाने उसे गलेसे लगा लिया और कहा धन्य हो गुरुराज, तुमने मेरा वडा उपकार किया, मै वडे कीचडमे धस रहा था, मिथ्यात्व मे वढ रहा था, अब तुमने मुझे विवेक दिया तो उस कवि ने कहा—महाराज मै चोर हूँ, तो राजा ने कहा—नही, नही, तुम चोर नही, तुम तो मेरे गुरु हो। राजा ने उस कवि को वहुत कुछ पुरस्कार देकर विदा किया। तो यो समझिये कि जो कल्याण की बात है उसे सुननेमें तो अरुचि होती है मोह मे तो यही होता है और जो विषय कषाय, कमाई या विषय सेवनकी बात है उसकी रुचि जागती है मगर यह तो बताओ कि ऐसी बेढगी रफ्तार मे चलकर आर पार क्या पा लोगे ? कुछ तो उत्तर दो। जैसा चक्कर रोज-रोज लगाया जा रहा है वैसा ही चक्कर जीवन भर लगाते रहे तो उससे फिर आपके आत्मा का क्या भला होगा ! कुछ अपने आप पर दया नही लाना चाहते। दया क्या ? अपने आपको शान्ति प्राप्त हो, आनन्द मिले, ऐसा काम बनाना इसमें दया है। जिसमे आत्महित हो वह काम करे। किसी भी बात का दुःख अब मत उठाओ। इच्छा, कषाय यह सबको पीड रहा है, पर यह कषाय वाला जीव अपने आपकी भूलको नही तक पाता कि मेरे मे क्यो कषाय उठी ! मैं इसे क्यो भोगू, यह ही तो मेरे को कष्ट देने वाली है जगत मे कौन दूसरा कष्ट देने वाला है ! लेकिन हम आपको क्या कहे ! अपनी भूल क्यो नही देखते ! जैसे हम भी कभी दुःखी तो हो जाते, यह सोचकर कि लोग क्यो नही तत्त्वाभ्यास मे लगते ! क्यो नही ज्ञानमार्ग मे लगते ! जो अपने कल्याण की बात है उसमे क्यो नही लगते ! अरे हम अपनी गलती तो नही देखते। आखिर मेरे मे ही तो कमी है। जो दूसरे लोग रुचिपूर्वक नही आ सकते तो इसमे दूसरे का क्या अपराध ! इसी तरह मानो सब लोग अपनी अपनी बात सोचे। अगर अपनी भूल को निरखे और अपनी भूल को निकाले तो इस जीव को शान्ति का वहुत कुछ मौका मिलता है।

सम्यक्त्वकी पात्रताके लिये मायाजालकी उपेक्ष्यता—यह प्रकरण सम्यग्दर्शनका चल रहा है। तत्त्वार्थसूत्रके तीसरे सूत्रकी यह चर्चा है कि यह सम्यग्दर्शन निसर्ग और

अधिगमसे होता है। जो सम्यग्दर्शन होना, कैसे ही होता उस सम्यग्दर्शनमे बनना क्या है! यह बात बतला रहे है। पहिली बात यह बनेगी कि अपने स्वरूपके समान ससारके सब जीवोका स्वरूप निरखना। अन्दरमे घुसे, भीतर मे चले। वाहरी बाते मोहजालकी है। वाहरी बातोका हठ न करे। उस वीतराग स्वरूपका हठ करें। ऐसा मेरा स्वभाव, ऐसा मेरा स्वरूप। बस इस स्वरूपमे मैं प्रीति करूँ, रत रहू, मग्न होऊँ, दुनियाका कुछ भी हो जाय, उन उनका उन उनकी परिणतिसे सब होता है। अपने आपमे निशंक बनो, अपना स्वरूप सही समझो। किसी भी प्रकारकी शका मत करो। मेरा क्या होगा इस लोकमे? मेरा कैसे गुजारा होगा इस लोकमे, यह शका भी मिटा दे और ध्यान बनावे, जैसी वर्तमान मे परिस्थिति है, जितनी आय है, जितनी चीज है उसके भीतर ही त्याग भाव करें और परिवारके पोषणका भी भाव करे, धर्म हेतुवोमे भी लगाये। आपकी नगरीमे। अहमदाबादमे एक महानुभाव ऐसे है कि जिन्होने यह नियम ले रखा है कि २५ हजार रुपये सालाना से अधिक आमद मे न रखूँगा और होती है लाखो की आमद। तो देखो उनका कुछ घट गया क्या? कुछ बात हो गई क्या! अरे घरमे धन भरते जावोगे तो वह धन भरनेसे आपको कोई नही पूछता, उस धनका त्याग न करनेसे आपको कोई नही पूछता। ऐसी एक उमग होनी चाहिए कि मै जो कमाऊँ उसका आधेसे भी अधिक भाग त्यागमे जाय तो देखो कितनी प्रसन्नता रहती है। और अपने आपकी वहा सुध रहती है। जगतमे और भी तो जीव हैं। इस धन वैभवको तृणवत जाने। वह असार वस्तु मिली है तो उसे अच्छे कामोमे लगाया जाय, उसका सदुपयोग किया जाय तो उसमे अपनेको प्रसन्न माने। देह, धन वैभव, विषय कषाय, इच्छा, इन सब बातोको कलक समझ करके इनके त्यागनेका भाव बनाना चाहिए। किसी प्रकारसे त्याग हो वह भाव बनना चाहिये। और अपने आपके बारे मे शका छोड दे कि मै इस लोक में किस तरह जिन्दा रहूँगा। रहोगे जिन्दा। भिखारी भी तो जिन्दा रहते, गरीब भी तो जिन्दा रहते, ऐसी हिम्मत बनावे।

न्यायनीति व सात्विकतामे मन.प्रसाद—आपको एक घटना सुनकर आश्चर्य होगा कि वृन्दावनमे एक कटेरा ग्राम है, वहा एक रायसाहब थे, वह जैन थे और वहा राजा का राज्य था। तो राजा उनका कर्जदार बहुत रहता था। तो राजा उनका बड़ा सन्मान करता था। जब कभी जरूरत पडे तो लाखो रुपया वह राजाको उधार दे दिया करता था। यह बहुत बडा आदमी था, लेकिन सब कुछ करने बाद उनका एक प्रोग्राम और रहा करता था। क्या प्रोग्राम रहा करता था कि वह एक बोरेमें नमक, धनिया, हल्दी, मिर्चा आदि भरकर अपनी पीठ से लाद कर पास पड़ोसके गावोमे एक घटा फेरी कर लिया करते

थे। किसीने उनसे कहा कि रायसाहब आपकी तो हजारो रूपये प्रतिदिनकी आय है फिर आप यह रूपये दो रूपये कमानेका काम क्यो करते है ? तो उन्होने यही कहा कि देखो-धनिया, मिर्चा, नमक आदिकी फेरी लगानेके कई कारण है। एक तो कारण यह है कि मेरे मे यह प्रतीति बनी रहे कि जैसे ये गरीब लोग है वैसा ही मैं भी हूँ। दूसरा कारण यह है कि उससे मेरेको धनका अभिमान भी नष्ट हो जाता है, तीसरा कारण यह है कि आज हम बडे है और पापका उदय आनेपर फिर गरीब हो जाये तो फिर मुझे ऐसा काम करनेमे सरम तो न आयगी। देखिये कैसे कैसे पुराण पुरुष हो गए है, उनका कैसा सात्विक रहन सहन था। एक राजा की भी तो कथा है। एक राजाने एक सन्यासी को आमन्त्रण किया। वह सन्यासी आया भोजन करने के लिए। उस सन्यासीको तो हलुवा, पूडी, खीर आदिक परोसा गया और राजा को ज्वार की रोटी, भाजी परोसी गई। भोजन करते हुएमे वह सन्यासी बडे आश्चर्य मे था, वह सोच रहा था कि क्या कारण है कि मुझे तो हलुवा, पूडी वगैरह खिलाया और खुदने ज्वारकी रोटी भाजी खाया, भोजन करनेके बाद सन्यासी ने पूछा-राजन बताइये, क्या कारण है कि आपने मुझे तो मिष्ठान खिलाया और आपने सिर्फ रोटी भाजी खाया ? तो राजाने उत्तर दिया मेरी इतनी गुजाइश है, इतनी ही आमदनी है, इससे अधिक नही। क्या कहा राजन ? आपकी इतनी आमदनी, यह आप क्या कहते ? मै ठीक कहता हूँ, देखिये-इस राजदरबार मे प्रजाजनो से जो भी कर, टैक्स आता है उसका प्रबध मत्रीजन करते है और वह प्रजाजनोंके उपकारमे लगता है, वह मेरा नही है। मेरे लिए तो जो यह १०—५ बीघा जमीन है उसीमे कुछ मे कर लेता हूँ, कुछ नोकर लोग कर लेते है, कुछ मेरे बच्चे लोग कर लेते हैं बस वही मेरी आमदनी है, उससे ही मेरा गुजारा होता है। राजाकी ऐसी बात सुनकर वह सन्यासी श्रद्धासे झुक गया और विचार करने लगा-अरे 'मैं काहे का सन्यासी ? सन्यासी तो यह है। देखिये-जिससे मन प्रसन्न रहे वही तो विभूति है, वही तो सुख है। तो आप बताओ ऐसे आराममे बडे-बडे विषयोके प्रसग मे, इन बातोंमे रहकर प्रसन्नता कितनी आती है। अपने आपके दिलसे पूछो। किसी पुरुषको ज्ञान जग जाय, और उसकी वृत्ति परके उपकारमे लग जाय, जैसे पहिले महात्मा गाधी हुए, आजकल विनोबा भावे है, और भी ऐसे लोग हुए है जिनकी धुन केवल यही रही कि मैं परका उपकार करूँ उनके मनमे जो प्रसन्नता रहती है वह एक विलक्षण जातिकी है, उसे और लोग नही पा सकते।

नितान्त भिन्न पदार्थोंमे प्रीति ना होनेसे निःशंकामाल. अमुदय—भैया चित्तमे यह

बात लावो कि मेरे आत्मा का तो मै मात्र आत्मा हूँ। मेरे को तो यह ज्ञानस्वरुप ही वर्णन है, यह ही सार है, इसी जगत की कोई भी चीज मेरे लिए सारभूत नही है। यह सकल्प बनावे और मोक्ष पाने के लिए एक सकल्प ठान ले। तन, मन, धन, बचन, प्राण आदि भी देकर भी अगर मेरे को मुक्ति का मार्ग प्राप्त होता हो तो इससे बढकर दुनिया मे कोई विभूति नहीं है। सम्यक्त्व के समान जगत मे कोई भी वैभव नही है, क्यो नही इसकी धुन वाले बनते ? क्यो नही इस धन को विकार तृणवत चित मे लाते ? इसमे सार नही है तब कह रहे है। अत्यन्त असार है तब आपको यह बात कह रहे है। इसमे कोई आनन्द की बात नही होती। और जिसे आप आनन्द मानते है यह विष है। जरा यहा के लोगो ने कुछ प्रशंसा कर दिया, यश गा दिया तो मान लिया कि मेरे को बडा सुख है। अरे यह तो विप है। ऐसा विषपान कर रहे कि अगर हालाहल विषपान किया जाय तो एक बार ही मरण होगा। मगर यह ऐसा विषपान है कि इससे अनेको बार जन्म मरण होगा। फिर क्यो नही उससे हटते ? अब तो चेतो। जो उम्र गई सो गई, अज्ञान मे गई, भ्रम मे गई। जो सिद्ध हुए उनका भी अनन्त काल पहिले भ्रम मे बीता, अज्ञान मे बीता। वह भी कभी हम आपके ही समान दु खी थे। जब उन्होने ज्ञान प्रकाश पाया, मोक्षमार्ग मे लगे तो उन्होने सिद्ध अवस्था पायी और सदा के लिए वे परम पवित्र हो गए। तो हा पहिली बात है कि निशंक बनो। मेरा कही बिगाड नही, मेरे को कही कष्ट नही, मेरे मे कोई विपदा नही, विडम्बना नही। मै तो यह ज्ञानमात्र परमेश्वर की तरह भगवत्स्वरुप अपने आप मे सहज शुद्ध स्वभाव को लिए हुए हूँ। यह बात कब बनेगी ? जब आपका भीतर मे इतना त्याग हो जायगा कि पुत्र मेरा कुछ नही, परिवार मेरा कुछ नही, धन मेरा कुछ नही।

कषाय की वलि करने से परमार्थ मनोरथ की सिद्धि—कथानको मे कभी कभी आता है, मुसलमान भी कहते हैं कि खुदा के नाम पर कोई ऐसी चीज चढावो (बलि करो) कि जो तुम्हे सबसे प्यारा था अपना बेटा तो वह बेटे का ही कत्ल करने को तैयार हुआ। वह उसकी अज्ञानता है। हम वह बात नही कह रहे मगर वह इस बात का त्याग कराया गया था कि जो तुम्हे सबसे प्यारा हो उसकी बली करो। देखो वह अज्ञान की बात है। क्या अधिकार है कि दूसरा जीव हो, प्राणी हो या मनुष्य हो उसे कष्ट दे या उसकी बलि कर दे। अरे उसे भीतर में बिचारे। जो तुमको सबसे प्यारा हो उसकी वलि कर दो। देखो बाह्य मे जितने जीव है वे किसी को प्यारे नही हैं, आपको भी प्यारे नही है। आप भ्रम से मानते हो कि मेरे को बच्चा बडा प्यारा, मेरे को स्त्री बडी प्यारी। यह सब झूठ बात है। भ्रम मे, बेहोशी मे आप ऐसा बोल रहे। जैसे शराब पीने वाले लोग बेहोशी मे बोलते है इसी

तरह मोह की बेहोशी में बोल रहे हैं कि यह घर मुझे प्यारा है, यह वैभव मुझे प्यारा है। अरे किसी पर वस्तु आप से प्रेम कर ही नहीं सकते। अरे आपका आत्मा स्वयं सत् जो परिणमेगा वह अपने आप में ही तो परिणमेगा। बाहर में तो वह न जायगा। आप प्रेम करेंगे तो अपने आप में करेंगे। आपने अपनी कषाय से प्रेम किया, पुत्र से नहीं। असलियत यह है। आप झूठ बोलते है कि मैंने पुत्र से प्रेम किया, घर से, वैभव से प्रेम किया। अरे त्रिकाल में भी आप किसी पर वस्तु में प्रेम नहीं कर सकते। आप कषाय करते है। इनसे बाहर रंच मात्र भी आप कुछ करतूत नहीं करते। तो आपको सबसे प्यारी लग रही कषाय। और बातें तो झूठ हैं। तो उस कषाय की बलि करदो, फिर देखो मोक्षमार्ग मिलता कि नहीं। देखो आपका कल्याण होता कि नहीं। अनादि से लेकर अब तक अनन्त भव बिता डाले, इसी बढगी रफ्तार में यह जीवन बिताया जा रहा है। पञ्चेन्द्रिय के विषय भोगने जैसी बेढगी रफ्तार में समय बिता रहे, ऐसे ही अनन्त भव बिता डाले, पर उनसे कुछ लाभ भी मिला क्या ? अरे अनन्त काल बिताया परभाव के लिए। अब जरा एक यह ही भव अगर अपने आत्मा के लिए लगे, तो उसमें आपका कोई टोटा पड़ता है क्या ? अनन्त भव जब तुमने विषयों में, कषायों में भ्रम में बिता डाला, इसमें एक यह भव बिना उधम का सही कल्याण के लिए भव बिता डाले तो उसमें क्या हानि है ? कल्याण के लिए भव बिताने की बात तब बनेगी जब कषायों का त्याग करदे। विषयों का पहाड आप की मुक्ति को रोकने वाला है। कोई दूसरा नहीं।

आत्माके अभिन्नात्मपदार्थमें ही आत्मप्रतीति होने में कल्याण—भैया भ्रम छोड़े, कषाय छोडे, तत्त्वज्ञान करे, अपने आप में विश्वास बनाये, निशक बने, अपने आपकी बात बनाले तो आत्मकल्याण है और पर के लिए अब तक मरते रहे, बरबाद होते रहे, अपने विषय भावों के लिए बरबाद होते रहे। अब जरा अपनी बात बनावे। आत्मा का यह आत्मा सत् है कि नहीं ? अगर यह आत्मा नहीं है तब तो अच्छी बात है। अगर मैं न होऊं तो फिर दुःख किसे हो ! मैं हूं। करीब ६ वर्ष की उम्र में जब हम पाठशाला में पढ़ने जाते थे तो वहा देहातों में ऐसी पाठशालायें होती थी कि बस पढ़ते जावो, पर कक्षा का कुछ पता नहीं। जब हम दो साल पढ़कर सागर पढ़ने गए तो हमको छटवी कक्षा में भर्ती किया। तो वहां हमने एक बार देखा कि एक पडित जी ने किसी बालक को पीटा। हम तो नहीं पिटे पाते थे, पता नहीं क्यों न पिटते थे, पर दूसरे को पिटते देखा तो हम पाठशाला न गये और एक दिन की बासी रोटी खाने का रिवाज था। बासी रोटी और मक्खन खा रहे थे जैसे कि लडके बच्चे खाते हैं। तो मा बोली—आज पढ़ने न जावोगे क्या ! तो हमने कहा-नहीं हम

आज नही जाते । क्यो न जावोगे ! हम चुप रह गए । तो मेरी मां एक रहपट मारकर बोली, तुम्हे पढने जाना पडेगा । तो उस समय रोता रोता मै सोच रहा था कि यह जो खम्भा खडा है काट का, जिस पर मठ्ठा बिलोया जाता है, यदि मैं लकडी का होता तो पिटता नही । यह उस समय की हमारी एक कल्पना थी । तो अगर मै नही हु तब तो यह बडी अच्छी बात है । अगर मैं हूँ तो अब कहा जाऊं ? सदा के लिए हूँ, मेरी सत्ता मिट नही सकती । कोइ वैज्ञानिक बता दे कि जो पदार्थ मूलतः है उसका क्षय होता हो ? जब मैं हूँ तो मेरा विनाश न होगा । यह बात तो हम देखते ही है कि मनुष्य को मरना पडता है, शरीर जल जाता है तो यह भी बात देख रहे, तो इसके बाद मैं हो जाऊगा । भगवान तो न हो जाऊगा । भगवान जैसी करतूत तो नही हो रही, तब फिर क्या हो जाऊगा ? ये ही जो जगत के जीव दिख रहे कीडा मकोडा, सूकर, कुत्ता, गधा, पेड पौधे आदिक, और क्या होगे ? एक शराबी गया किसी शराब वाले की दुकान पर । उससे कहा भाई मुझे बहुत ही बढ़िया शराब दो । अजी हमारे पास बहुत ही बढिया शराब है । जब वह बहुत बहुत ऊची शराब की बात करने लगा तो उस दूकानदार ने कहा अगर आपको हमारी शराब का विश्वास न हो तो ये जो नाली मे कोई लोग बेहोश पडे हुए है जिनके मुख मे कुत्ते भी मूतते हैं, इनको ही देख कर अन्दाज करलो कि हमारी दूकान की शराब अच्छी है या नही । सो भाई अब विश्वास न हो तो ये कुत्ता, गधा, सूकर, कीडा मकोडा इनको ही देख कर विश्वास करलो कि खोटी करनी का फल यह होता है । खराब करतूत का फल यह होता है, मोह बसाने का फल यह होता है । तो अपना हृदय विशुद्ध बनावे और आत्मकल्याण के लिए दृढ़ सकल्प हो और अपना यह जीवन का ढाचा बिल्कुल बदल करके चलना चाहिए ।

सम्यक्त्वोत्पत्ति मे निसंग व अधिगम का स्थान:—सम्यग्दर्शन के प्रकरण में यहां यह चर्चा चल रही है कि सम्यग्दर्शन अहेतुक है या सहेतुक, याने हेतु के बिना होता है या किन्ही हेतुवो से होता है, यहां यह जानना कि निश्चय से तो प्रत्येक पर्याय अपने आपके उपादान से ही होता है । अतएव सभी पर्याये हेतुके विना होती है, तो कोई भी बाह्य पदार्थ अपनी परिणति नही देता, वहां प्रभाव नही करता फिर भी जो पर्याय होती है वह किस विधि से होती है, इस पर विचार करे तो वहा हेतुवो की बात आती है । कोई भी परिणति अहेतुक नही है और नही तो स्वभाव पर्याय भी है ना इस मे भी काल परिणमन हेतु है और फिर अब तक जो स्वभाव परिणमन न था अब हो रहा है तो उसमे कुछ और हेतु बनाने पड़ते है फिर विकार तो सहेतुक है ही विकार तो किसी निमित्त सन्निधान बिना होता ही नही है । यह सब करते हुए भी निर्णय यह रखना कि प्रत्येक पर्याय अपने आपके उपादान की

परिणति से होता है, वह उपादान अपने मे उस पर्याय का प्रभाव लाता है तो वह किसी निमित्त को पाकर लाता है। तो यहा सम्यग्दर्शन को कहा जा रहा है कि यह सम्यग्दर्शन अधिगम से उत्पन्न होता है और निमित्त दृष्टि से तो दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम का निमित्त पाकर होता है। तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कहो या विपरीत अभिप्राय की निवृत्ति कहो, दोनो का एक भाव है। विपरीत अभिप्राय न रहना, यह भी सहेतुक है अर्थात विपरीत अभिप्राय चल रहा था मिथ्यात्व कर्म के उदय का निमित्त पाकर। तो मिथ्यात्व कर्म का दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो तो विपरीत अभिप्राय का क्षय हो, सम्यग्दर्शन का उत्पाद हो।

कर्मविध्वंस से आत्मपरिणाम की निमित्तता:—यहां एक शँका की जा सकती है कि दर्शन मोहनीय का उपशम होना, क्षय होना, क्षयोपशम होना यदि यह तत्वश्रद्धान का कारण हो तो सब जीवो को सब समय सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर देगा क्योकि दर्शनमोहनीय का उपशम क्षय, क्षयोपशम अहेतुक है. वह तो किसी हेतु से नही बनता। सम्यग्दर्शन भले ही है दर्शनमोह के उपशम आदिक हेतु से बने मगर दर्शन मोह के उपशम आदिक तो बिना हेतु के हो गए तब तो सभी समय सबके सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाना चाहिए और अहेतुक होने पर भी यदि सब समय किसी को सम्यग्दर्शन नही होता तो फिर कभी भी न हो या जब चाहे बिना नियम के किसीके भी हो बैठे। एक यह शका रखी गई है। उत्तर इसका साफ है। दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी सहेतुक है अर्थात् दर्शन मोह के क्षय का प्रतिपक्षी है विशुद्ध भाव। विशुद्ध भाव जगे, कुछ तत्त्वाभ्यास जगे, कुछ ज्ञानाभ्यास बने तो यह प्रवृत्ति दर्शन मोहके उपशम आदिक का कारण है। इस बात को युक्तिसे सोचिये जो पदार्थ कही कभी किसीके उपशान्त होता है, दबता है तो या क्षयको प्राप्त होता है या कुछ दबता, कुछ उमड़ता है तो वह बात अपने प्रतिपक्षी पदार्थ की वृद्धि की सदृशता से होती है तो विशुद्धि बढी तो कर्मोमें भी क्षय, क्षयोपशम, उपशम हो गए। कर्म दूर हो इसका कारण है आत्म निर्मलता। आत्मा को सम्हालिये। आत्मा मे से रागद्वेषकी गीलाई को हटावो तो कर्म निर्जराको प्राप्त होगे। जैसे धोती धोया, निचोई, गीली धोती हो गई उसे दो खूँटो मे बाधकर सूखने के लिए डाल देते है। अब मानो धोतीका एक खूँट छूट गया, धोती नीचे गिर गई, उसमे धूल लग गई तो वहा लोग क्या करते है? जिनको विशेष बोध नही है वे उस धूलको लकडी या हाथसे छुटाते है। परिणाम उसका यह होता है कि वह धूल और भी गहरी होती जाती है। पर जो विवेकी लोग है वे क्या करते हैं कि उस धोतीको यो ही खूँट से बाध देते हैं। जब वह धोती सूख जाती है तो एक ही झिटके

मे सब धूल झड जाती है। तो इसी तरह आत्मा मे जो कर्मका बन्ध हो रहा है वह मोह रागद्वेप की गीलाई से चिपटकर हो रहा है। तो लोग करते क्या है ? जो उस विषयमे ज्यादह बुद्धि नही लगाते वे मन, वचन, काय की चेष्टाको लम्बा करके, देकरके उस कर्म को हटाना चाहते है। जैसे बोलते है ना, अष्ट कर्म के ध्वंस करनेके लिए मे घूप चढाता हूँ। भाव तो वहा कुछ भीतर का है कि भाई यह द्रव्य रख दिया है तो इसके सहारे इतना समय पूजा मे लग जायगा।

आत्मविशुद्धिके अर्थ व्यहारधर्मकी प्रवृत्ति—द्रव्य पूजा किस लिए है ? जो चावल वगैरह धोकर चढाते है, पूजा चढाते है तो यह चावल वगैरह धोना, चढाना यह किसलिए है ? यह इसलिए है कि उसके सहारे ऐसा करनेके माध्यमसे इतना समय घटे भर पूजामे लग जायगा। और बीच-बीच मे हम अपने भाव सम्हाल सकेंगे। न कि द्रव्य चढा देना यह ही पूजा है, या द्रव्य चढाने से कर्म नष्ट होते है। तो जो इस रहस्य को नही जानते और जब वह मंत्र आता है कि अष्ट कर्मके ध्वस करने के लिए मे घूप चढाता हूँ तो वह उमग से मूठी भर घूप लेकर बडे जोर से आग पर पटक देते है। अब उनका लक्ष्य किधर है। उनका उपयोग किधर है। स्वकी ओर छुवा नही है। कुछ बाहर की प्रवृत्ति है। तो बात यह कह रहे हैं कि धर्म के नामपर भी मन, वचन, काय की चेष्टा को ही दृढ जमाना और भीतरके मर्मको न पहिचाने तो यह काम ऐसा है कि जैसे गीली धोती धूल मे गिर गई। धूल चिपट गई तो उस धूल को आप हाथो से निकालना चाहते तो कैसे निकले ? अरे यह समझो कि यह द्रव्य पूजा तो हमारा उपयोग लगाने के लिए है। इससे यह भाव भरते है कि वह वीतराग सर्वज्ञ देवका जैसा स्वरूप है वेसा ही मेरा स्वरूप है। हे प्रभो ! जिस विधि से आपने अपना वह पद पाया उसको करने की कला मुझमे भी है। मै उस पर चलूँ तो उसको पा सकता हूँ।

परमें कुछ भी करनेकी अशक्यताकी आस्थासे धर्मधारणकी सुगमता—देखो हम आप रात दिन २४ घँटे क्या किया करते है ? इसपर जरा विचार तो करे। यह बात तो झूठ है कि मै दुकान चलाता हूँ। मै कुछ चीज बनाता हूँ। मे कुछ कला करता हूँ। मै ड्राइग करता हूँ, मे कुछ लिखता हूँ आदिक बाते, तो यह मिथ्या है। मिथ्या क्यो है ? निश्चयसे कह रहे है। यो मिथ्या है मेरा जो आतमा है वह अपने प्रदेश मे अपना ही काम कर पाता है, अपने प्रदेश से बाहर कुछ नही कर सकता है। तो अब अपनी बात देखिये कि [illegible] दिन क्या किया करता हूँ। घरमे हो तो वहा भी क्या करता ? दुकान [illegible] वहा भी क्या करता ? धर्मस्थानमे आता तो वहाँ भी क्या करता ?

देखो—सबका एक ही उत्तर है, नाना उत्तर नही है कि जैसे कोई कहे कि मैं घरमे जाता हूँ तो रोटी बनाता हूँ। घरमें जाता हूँ तो कोई सागभाजी लेकर जाता हूँ। घरमे जाता हूँ तो मे बाल बच्चो को डाटता हूँ। या कोई मै व्यवस्था बनाता हूँ। और दुकानमे जाता तो मैं दुकान का काम करता हूँ। धर्मस्थान पर जाता तो मैं पूजा करता। जाप देता। ये नाना उत्तर न आयेंगे। उत्तर एक आयगा। मे क्या करता हूँ ? मे कुछ उपयोग बनाता रहता हूँ। घर पर भी मैं उपयोग को ही करता हूँ। अपना ज्ञान बनाये, समझ बनाये, अपना उपयोग बनाये, यह ही काम मैं घर पर करता, यह ही काम दुकान पर करते। यह ही काम मे धर्मस्थानपर करता ऐसा विचार करिये। यह तथ्यकी बात कह रहे है। हम सब जगह उपयोगकी ही बात करते हैं। अन्य कुछ नही करते। तब उपयोग मे हम क्या किया करते है ? जरा इसका भी जवाब ले तो इस जवाब मे भी आप बहुत-बहुत बात कह सकते है। उस उपयोग मे कभी बच्चो की बात लाते। कभी घर की बात लाते, कभी दूकान की बात मन मे लाते। कभी सामाजिक व्यवस्था की बात मन मे लाते, वहा भी अनेक उत्तर देगे। पर वहा भी अनेक उत्तर न आकर दो उत्तर आयेंगे। आप उपयोग मे क्या किया करते हैं! कभीतो आप पर का उपयोग देकर परका उपयोग करते हैं और कभी स्वका उपयोग देकर स्वका उपयोग करने है। ये दो उत्तर हैं स्व और पर मे सारा उत्तर आ गया। स्व मे आया निज और पर मे आया निज को छोड कर बाकी के जीव चाहे घर के जीव हो चाहे विदेश के जीव हो तो सब एक समान हैं पर मे आये पुदुगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल पर को महत्व देने मे लाभ क्या पाते हैं ? अब जरा इस पर दृष्टि दी जिए। और स्व को महत्व देने मे लाभ क्या मिलता है इस पर विचार कीजिए। पर को महत्व देने मे होता क्या है ! क्षोभ, आकुलता और स्व को महत्व देकर स्व की दृष्टि करने मे स्व मे रत होने मे मिलता क्या है ? शान्ति और पर के उपयोग मे मिलती है अशान्ति बुद्धि जगे, सुमति बने।

तत्वज्ञान और कष्टसहिष्णुताकी वाञ्छनीयता:—प्रभो से प्रार्थना करें कि हे प्रभो मैं आपसे यह मागने नही आया कि मेरा घर अच्छा बन जाय, मेरा बगला बन जाय, घर के लोग सुखी रहे। मैं मुकदमे मे विजय पाऊँ या मेरा अमुक काम बन जाय या मेरा यश फैल जाय, मेरी प्रतिष्ठा हो''' हे प्रभो मैं आपसे ये कुछ मागने नही आया। मेरेको कष्ट न आये, विपत्तिया न आये, सुख ही सुख रहे, यह मागने मैं नही आया। मैं तो यह बात चाहता हूँ कि मेरे को सत्य ज्ञानका प्रकाश मिले। सही जैसा वस्तु स्वरूप है, जैसा मेरा आत्मरूप है वैसा जानने का प्रकाश मुझे मिले। अरे इसमे तू क्या पायगा ?

तुमने तो फोकट की बात मांगा। इसमे तो तेरे हाथ कुछ न आयगा। न देखने की बात, न पकड़ने की बात। तू ऐसी बात मांगने क्यो आया कि मैं तो एक सत्य ज्ञानका प्रकाश चाहता हूँ ! मै और कुछ नही चाहता। इसमे मुझे सब कुछ मिलता है। क्या मिलता है ? कष्ट अगर आप तो आये, उसको सहन करने की मुझे क्षमता मिलती है। एक बात। दूसरे मुझमे उपयोग जाने से परके विकल्प हटने से कष्ट भी दूर होता है। कष्टका दूर होना और कष्ट आये तो उसे सहन करने की क्षमता होना यह सत्य ज्ञानप्रकाश मे ही सम्भव हैं। अन्य प्रकार सम्भव नही है। तो हे प्रभो मैं तो यथार्थ तत्त्व ज्ञानप्रकाश चाहता हूँ। अन्य कुछ मैं नही चाहता। उस ज्ञानप्रकाश भी बात कह रहे हैं कि वह मिलता कब है ? सम्यक्त्व होते ही मिल जाता है। सम्यक्त्व होता कब ! निमित्त दृष्टिसे दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो तो मिलता है। यो दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी कब होता है ? जब आत्मा मे विशुद्धि बढती है। पहिले हुई क्षयोपशम लब्धि। मायने कर्ममे उस प्रकार का कुछ क्षयोपशम हुआ, फिर आत्मा में विशुद्धि हुई, उससे मैंने तत्त्वज्ञात किया, उसमे मेरा भाव बढ गया, फिर वही सम्यक्त्व के लिए सहकारी कारण बन जाता है,

स्वावलम्बनकी कर्मविध्वंसन क्षमता—भैया ! आत्मलाभके लिये क्या करना ! कर्मको आंखके आगे धरना, देखना, और मै इनका नाश कर दूँ, यो सोचना इससे काम न बनेगा, किन्तु निजका स्वरूप सामने रखना, एक सहज ज्ञानस्वभाव और उसमे मग्न होना, उससे काम बनता है। कहते है ना कि जब किसी दुष्टसे पाला पड जाय, किसी दुष्टसे फसाव हो जाय तो उस दुष्ट का आमने सामने मुकाबला करके हम वहा विजय नही पा सकते। युक्ति से, धीरतासे, चतुराई से, साम्यभावसे कोई काम बनावे तो उस दुष्ट से पिण्ड छूट जायगा। इस प्रकार इन कर्मोका, इन बाह्य पदार्थोंका, इस शरीर का जो बध है। सम्बन्ध है यह ही दुष्ट प्रसग है। इस दुष्ट प्रसग से हम इन दुष्टो के साथ लड़ करके, अनुग्रह करके इनसे छुटकारा नही पा सकते, किन्तु हम कुछ धीरता लाये, अपने आपकी और अपना उपयोग बनाये, साम्यभाव लाये तो ये अपने आप सब दूर हो जायेंगे। तो कर्त्तव्य क्या है ! आवो अपने पास, आवो अपने धाममे ठहरे आवो अपने आपके भगवान के दर्शन करके अपने आपसे मिलो। अब तक सम्यग्दर्शन न हुआ और हो रहा तो सही बात, यह सिद्ध होती है कि इस सम्यक्त्वका कोई प्रतिपक्षी था जिसका सन्निधान होने पर नही हो रहा था उस प्रतिपक्षी का हटाव तो सम्यक्त्व हो। वह प्रतिपक्षी है कर्म, दर्शन मोह। दर्शन मोहका क्षय

पहिले से न था। अब हो रहा है तो यह इस बात को सिद्ध करता है कि दर्शन मोहका प्रतिपक्षी भी कोई होता है। वह क्या है? निर्मलभाव, विशुद्धभाव। अपनी उन्मुखता। यह बात जैसे बढी वैसे ही दर्शन मोह दूर हुआ, कर्म दूर हुए। कर्म दूर हुए तो सम्यक्त्व निधि प्राप्त हुई। जैसे कोई पुरुष वेहोश न था, अब वेहोश हुआ तो कोई कारण तो है। क्या कारण है? शराब पीली। अच्छा, वह पुरुष शराब पिये वेहोश है और अब कोई चीज खिला दी, वेहोशी मे न रहा सचेत रहा तो उसका भी कारण है कि उस शराब के नशे का प्रभाव हट गया, यो ही समझिये कि जो बात अब तक नही है और अब हुई तो उसका कोई कारण होगा।

अलौकिक कार्यमे अलौकिक साधनकीउपयोगिता—यद्यपि वस्तुस्वातन्त्र्यको देखें तो वह स्वतन्त्र है, स्वय परिणमनशील है। अपने आपकी करण शक्ति से परिणमता है, किन्तु इसका तो उत्तर बताओ जरा कि अब तक यह न था और अब यह हुआ। उसको भी अगर यो कहो निमित्तकी बात हटाकर कि वह तो उपादान मे जिसमे जो होने की योग्यता है सो होती है तो इसमे व्यवस्था नही बनती, इसमे किसी प्रकारका समाधान न हो सकेगा। निमित्त नैमित्तिक योग है और वस्तुस्वातन्त्र्य है। दोनो को भली भाति समझने से सब बात हो जायगी। एक बात और सोचना चाहिए कि कल्याणलाभ के लिए हमारा कर्त्तव्य क्या है? स्वभावदर्शन। हमारे स्वभावदर्शन मे अगर विघ्न आये जिस ज्ञान से वह ज्ञान तो न करना चाहिए और जिस ज्ञानसे हमको स्वभावदर्शन मे मदद मिले, सहायक वने उस से ज्ञान कोई वाधा है क्या? जब निश्चय दृष्टि करते है कि पदार्थ अपने अपकी शक्तिसे अपने आपमे अपनी पर्यायोंको करता चला जाता है। यह भी एक प्रामाणिक मार्ग है, इससे भी स्वभावदर्शन मिलेगा कि एक द्रव्य की निगाह मे जब हम रहते है, दूसरे द्रव्य की निगाह भी नही कर सकते तो पर पदार्थ का निमित्त न होने से, आश्रय न होने से हमको स्वभावदशन बनेगा। लेकिन निश्चय की तो हम दृष्टि बनाकर बात करे और वहा निमित्त की चर्चा छेडे चाहे न रुप से या चाहे हा रूप से तो वह अनधिकार बात है। जैसा दृष्टि मे आया हो, उस ही दृष्टि की बात करते जावो, उसमे अन्य दृष्टि की बात मत मिलाओ, स्वभावदर्शन होगा। अच्छा अब व्यवहार दृष्टि की बात देखिये, व्यवहार दृष्टि मे यह ही तो बताया गया कि ये जो विकार हैं ये कर्म का निमित्त पाकर हुए है, ये मेरे नही है, यह शिक्षा मिली, ये मेरे नही है, ये नैमित्तिक भाव हैं, ये मेरी कला नही है, इनका मे ग्रहण नहीं करता। ये पर द्रव्य हैं, ये परभाव हैं। इनसे मेरे को क्या मतलब? ऐसी जो दृष्टि रखेगा वह तो स्वभावदर्शन की ओर मुडेगा। जरा इस विषय को

जैसा कि तथ्य है, जैसा कहा हो थोडे समय के लिए, अगर वहा कुछ बात कठिन जचे तो भी समझने की ओर पोरुष करना। इसकी समझ बिना काम न बनेगा। चाहे आज समझ लो, चाहे कुछ दिन बाद समझो, आज कल्याण पायेगे। इस समझ के बिना कल्याण मार्ग न पायेंगे, इसलिए कठिन लगे तो भी समझना, सरल लगे तो तत्काल उसका आनन्द लेना।

प्रकृतिधर्मकी शक्ति व व्यक्ति—देखो जिस कपायके कारण, जिस विषय के कारण, जिस वासना के कारण, जिस विकल्प के कारण हम इतना कष्ट पा रहे है, रात दिन दुखी हो रहे है वे विकल्प, वे विषय कपाय क्या चीज है, इस बातको सोचना चाहिए। क्या है सो देखिये। इस जीव के साथ पूर्व काल से बाधे हुए कर्मकी सत्ता है। पहिले शुभ अशुभ भाव बनाकर पुण्य पाप परिणाम करके यह कर्म का बध हुआ था, उसकी सत्ता है अब। तो जिस कालमे कर्म वंध हुआ था उसही कालमे कर्गमे क्या हुआ, प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग का निर्णय बन गया। प्रकट घोषणा है जैन सिद्धान्त मे। कर्मकाण्ड देखिये, करणानुयोग के ग्रन्थ देखिये, जिस कालमे इस जीव ने शुभ या अशुभ भाव किया उसही कालमे प्रकृति बध, प्रदेश बध, स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध हो गया। क्या हो गया। जिन कर्म परमाणुओंका यहा बन्धन हो गया, इनके साथ रहना निश्चित हो गया, उन कर्मो परमाणुओमें प्रवृति निश्चित हो गई कि इनमे ज्ञानावरण की प्रकृति हो गई ये ज्ञानको ढकनेके कारण बनेगे ये सुख आदिक के हेतु भूत बनेंगे। उनमे प्रकृति पड गई और कितने दर्जे के ये दुखके हेतुभूत बनेगे ऐसा अनुभाग पड गया और ऐसे ये कर्म कितने दिन तक यहा रहेगे, यह स्थिति पड गई। तो देखिये जैसे चूनाका डगला है ठोस है, रखा है, मगर उसमे स्थिति है। क्या वह चूनाका डपला दो चार वर्ष तक ठहर सकेगा। नही ठहर सकता। जैसे कि सीमेन्ट होता ना तो सीमेन्ट का उपयोग जल्दी ही कर लेना चाहिए। उसे बहुत दिन तक धरे रहते है तो उसमे कमजोरी आती है, बल्कि कभी कभी तो बिल्कुल खतम हो जाता है। वह पत्थर बन जाती है, टपला बन जाती है ऐसे ही जो कर्म सत्तामे पडे है उन कर्मो की स्थिति है, सो जब तक स्थिति है जब तक आखिरी समय नही आया, उदयकाल न आया तब तक वे अच्छे है। उनसे कोई कष्ट नही होता इस जीवको, लेकिन जब उनका उदयकाल आता है, स्थिति पूरी होती है उस कालमे उन कर्मोमे अनुभाग बनता है, फैलता है, उस कर्म विपाकमे भी कोई विकृति आती है। जब तक कर्ममे सत्ता थी विकृति नही आयी, जब उदयकाल आया तो विकृति आयी।

कर्मविपाककालमें कर्मकी उपयोग्यता—एक दृष्टान्त समयसारमे दिया कि

७-८ वर्षकी बालिका का विववाह हुआ किसी नवयुवक से अभी, वह वच्ची अत्यल्पायु है। वहां कोई प्रकार का विकार नही है, वह उपभोगके योग्य नही है। जिस काल मे वह युवती हो जाती है तो क्या हुआ, विपाक काल आ गया अव वह उपभोग के योग्य हुई, इसीतरह जो कर्म सत्तामें पडे हैं वे भी उपभोगके योग्य नही हैं, वे फलके योग्य हो जाते हैं। तो उन कर्मोंमें स्वय रागद्वेप, क्रोध, मान, माया, लोभकी प्रकृति है उसी पर उस उस नामका वह कर्म है वही बात उनमे उस काल मे होती है। वे अचेतन है सो वे सव वातें कर्मके अनुभवमे न आयेंगी। भवनमे अवश्य हैं। पर पदार्थकी वात हमारे अनुभव मे नही आ सकती। लेकिन वन्धन तो यही है, एक क्षेत्रावगाह ही तो है, जैसे वहां ऊधम मचाया उन कर्मो ने तो इसकी जानकारी से वे दूर कैसे हो सकते! झलका तुरन्त ज्ञान मे आया और चूंकि हम वुरे हैं, बुरी वासना लिए हैं, अनादि से खोटे सस्कार मे पले हुए है तो जानने तक की वात नही रहती किन्तु जानने के ही साथ, झलक के ही साथ हम उस ओर आकर्पित हो जाते है। हमारा उपयोग उस ओर पहुच जाता है, हम उसको अपनाने लगते है, और अपना करके हम अपने मे वड़ा विकार उत्पन्न कर लेते है। तो ऐसा दु ख मेटने के लिए हमको कर्त्तव्य क्या करना है? कर्मानुभाग और तथाविधानुभव इनमे भेदविज्ञान करना चाहिए। वहां की बात क्या है, मैं क्या हूँ। और पुद्गल क्या है कर्म तो पुद्गल की हैं पुद्गल वात क्या है और मेरी वात क्या? ऐसा वहां भेदविज्ञान करना चाहिए। इस वात को समयसार मे एक स्थल मे बडे ढंग से वताया गयाहै, कर्तृकर्माधिकार मे हुआ करे? कर्मविपाक, कर्म विकार हुआ ना। हा कर्म का जो विकार है, कर्म मे जो स्वय अपने आपकी दशा है वह कर्म मे तन्मय है कि मेरे आत्मा में? वह कर्म मे तन्मय है। विकल्प हुआ तो वह विकार कर्म मे तन्मय है कि मुझ मे! मुझ मे। पुद्गल परिणामका, पुद्गल फल का ज्ञान हुआ, वह मुझ मे तन्मय है और ज्ञान से आगे वढकर जो हम खिच गए, लीन हो गए अपना उपयोग वहुत रग बिरगा वना डाला यह बात किसमे तन्मय है, कर्म मे कि मुझमे वह भी निज मे तन्मय है। अब रग बिरगा उपयोग बना डालना ऐसी तन्मयता तो मेरे लिए है अहितरूप, उसे तो हटाओ और पुद्गल परिणामका ज्ञान, वह तो एक अनिवार्य है, उसे हम हटा नही सकते, हो रहा है उसके ज्ञाता रहो, और वह भी हटेगा। वह हटेगा जब हम पहिले मे ज्ञाताद्रष्टा रह रह कर अपने आपमे दृष्टि बहुत वढाले अपने आपमे सन्तुष्ट होने का हम काम पहिले बनाले तो मेरी इस तृप्ति के कारण से उन कर्मो की निर्जरा हो जायगी। बन्धन दूर हो जायेंगे, विपाक ही न रहेगा, तब ज्ञान किसका किया जायगा ज्ञान यो ही सहज विशुद्ध बन जायगा।

कर्मविपाक और उपयोगवृत्ति मे भेदविज्ञान करने का कर्तव्य—हमारा इस समय कर्तव्य क्या है ? हम ऐसा समझे कि ये कर्मविपाक जितना जो कुछ हो रहा है, इसका मै करने वाला नहीं हूँ। यह तो कर्मविपाक है, हो रहा है, इसका तो मै ज्ञान कर सकने वाला हूँ, और जो लोग ज्ञान से आगे बढकर जाननहार देखनहार से आगे बढकर और कुछ फसते है, ओर कुछ लगते है तो वे ससार परिभ्रमण करते है, उसका कर्तव्य है जो विकार का कता है मगर अपने उपयोग के दुरुपयोग का कर्ता है, न कि पुदगल के विकार का कर्ता है, और विकार का कर्ता कहना यह भी अशुद्ध निश्चय की बात है। स्वभावत तो यह अकर्ता है, तो तीन बातो का निर्णय करे, यह जीव पुदगल कर्म का कर्ता नही। पुदगल कर्म मे आये हुए फल का कर्ता नहो किन्तु पुदगल के ज्ञान का कर्ता है। पुदगल के फल के ज्ञान का कर्ता है और कोई मोही जीव पुदगल कर्म के फल मे लिप्त होता है और अपने उपयोग को विकृत करता है तो वह उसका भी कर्ता हो गया। पर वस्तुत आत्मा उन पुदगल कर्मो का कर्ता नही है। पुदगल फल का कर्ता नही तो फिर उपयोग के विकार का कर्तव्य हम छोडे भेद विज्ञान से। भेदविज्ञान ही एक ऐसा सुधा अमृत है कि जिसका पान करले तो सदा के लिए सकट छूटते है। इस दुनिया मे जिस प्रसग मे मनुष्य रह रहा है—घर घर मे परिवार मे, कुटुम्ब मे, समाज मे, लोगो मे रह रहा है, इस ओर जिसकी दृष्टि है, इस ओर जो ख्याल करता है वह कीचड मे फस रहा है, उसे सन्तोष नही मिलता है और जो सबमे रहे तो और जगल मे जाकर अकेला रह जाये तो, जो अपने उपयोग को एकान्त मे रख लेता है अर्थात् एक निज आत्म तत्व मे ही अपना अभ्यास बनाता है, ऐसे अपने उपयोग का एकान्तधाम बना लेता है, निर्जन विविक्त ऐसा अपने उपयोग को जो कोई बना ले, चाहे घर मे बैठकर बना ले, बना सकता है, शान्ति पा लेगा। देखो आप करे तत्वज्ञान। कैसे सम्यक् बोध हो ? कैसे समीचीन तत्त्वज्ञान की बात जगे ? अभ्यास करे इसका। अब तत्त्वज्ञान की बात तो कुछ मन मे लावे नही और घर छोडकर जगल चले गये तो क्या लाभ होगा ? जैसे पुष्पडाल की कथा है, वे घर छोडकर चले गये, पर उन्हे अपनी कानी स्त्री का ख्याल रहा और मानो कोई सदगृहस्थ है ज्ञानी गृहस्थ, घर मे रह रहा तो सँगके मध्य उसे आसक्ति नही होती। प्राय कुछ ऐसा है कि जो चीज पास मे नही है उसकी ओर ख्याल ज्यादह जाता है और जो चीज पास मे हो उसका फिर ज्यादह ख्याल नहो होता है। वहाँ आपको ऐसे मौके मिले कि जरा अपनी भी दृष्टि बना लेगे, परिवार के बीच रहकर भी भेदविज्ञान मे कुशल बन रा । चाहिये दृष्टि, चाहिये एक लक्षय। इस लक्षय को प्राप्त करे और अपना जीवन सफर ।

सम्यग्दर्शन के स्वरूपका शब्दों में दिग्दर्शन एवं सम्यग्दर्शन के गतिपथ की सफाई—: सम्यदर्शन मे दो शब्द है (१) सम्यक् (२) दर्शन सम्यक् का अर्थ है प्रशस्त, भला, उत्तम, तो सम्यग्दर्शनका अर्थ है कि सम्यक् मे, सम्यक् के द्वारा सम्यक् के लिए ही सम्यक् निरखना इसे कहते है सम्यग्दर्शन । सम्यक् मे सम्यक् है यह स्वय सहज स्वभावी आत्मा इस आत्मा मैं सम्यक् के द्वारा अर्थात एक भक्ति परिणति के बल से, विशुद्धि के बल से सम्यक् के लिए अर्थात एक सही शान्तिपूर्ण वर्तना रहने के लिए सम्यक् को निरखना अर्थात जो सहज स्वभाव है उसको अनुभवना, निरखना सो सम्यग्दर्शन बहुत ही सरल सहज सीधी वस्तु है तत्व है, जिसमे दूसरे का लपेट नही, जिसमे दूसरे की परतन्त्रता नही, आधार भी स्वय है, वर्तता भी स्वय है, ऐसा अपने आप मे सम्यक् सहज स्वरुपका दर्शन है । अब बात एक सामने यह आती है कि सम्यग्दर्शन अब तक न था और अब हुआ है तो इसमे कोई कारण अवश्य होना चाहिए । जो अहेतुक होता है अनैमित्तिक होता वह अनादि से अनन्त काल तक वर्तता ही रहता है । पदार्थ मे स्वय ऐसी स्वच्छन्दता नही है कि वह अपने आप अपनी ही परिणति से, अपने ही स्वभाव से अपने ही निरपेक्षतया जिस चाहे रूप परिणमे । उसे ऐसी जरुरत क्या पडी ? अगर निरपेक्ष पदार्थ है, पर उपाधि रहित पदार्थ है तो वह एक समान ही बर्तेगा । जैसे कि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य, ये अनादि से अनन्त काल तक एक प्रकार से बर्तते चले जा रहे हैं, जीव और पुद्गल से जो विभिन्ता पाई जाती है उस दशा के लिए यह नही कहा जा सकता कि द्रव्य मे इतनी पर्याय मे बधी है, क्रम से निकल रही है, वे अपने स्वभाव से निकल रही है, और कोई कुछ चर्चा छेड दे, निमित्त की बात कहे तो यो कहा जाता कि जो सामने हाजिर हो, उसे निमित्त कहा है, यद्यपि एक ही वस्तु की दृष्टि मे तथ्य तो यह है किन्तु एकान्त बाद मे विकार स्वभाव बन जायगा सो व्यवस्था इस प्रकार नही बनती । व्यवस्था यह है कि योग्य उपादान अनुकूल निमित्त का सन्निधान पाकर स्वय अपनी परिणति से वह उपादान अपने मे अपना प्रभाव उत्पन्न कर लेता है । जैसे मैं तखत पर बैठा हूँ तो यह कहना कि जब मैं तखत पर ऐसा बैठूगा तो तख्त आगे हो जायगा लो इसका क्या अर्थ निकलता है ? और ऐसा कहने मे कौन सी बात सामने आती है कि तखत का मिमित्त पाकर मे अपनी शक्ति मे, अपनी परिणति से अपने आप मे अपना प्रभाव बनाकर बैठ गया, इसमे स्वतन्त्रता का कहा घात हुआ ? स्वतन्त्रताका घात तो तब कहलाये जब निमित्त उपादान की परिणति करे । उपादान स्वय परिणति न करे । मैं तो अपनी स्वतन्त्रता से अपने आप मे ऐसा परिणमन करके बैठा, पर यह क्या गलत है कि इस तखतका निमित्त पाकर बैठा ? इसमे कौन

करने की शक्ति है, मगर सम्यक्त्व कभी प्रकट होता ही नही, जैसे कि सुशील विधवा मे पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति है मगर वह तो सुशील है, सदाचारणी है। उसके जीवन मे कभी पुत्र उत्पन्न होगा नही मगर पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति की व्यक्ति की योग्यता है कि नही ? है, और बध्या मे पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति तो है मगर उस शक्ति की व्यक्ति की योग्यता नही है। यहाँ आप जरा सोचिये। आप कहेगे कि वध्या मे तो पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति ही नही है सो बात गलत है। अगर शक्ति न होती तो वह स्त्री ही न बनती। स्त्री है, पुत्र उत्पन्न करने की उसमे शक्ति है मगर उस शक्ति के व्यक्त करने की उसमे योग्यता नही है। यह बात कुछ गहराई से समझने पर समझ मे आयेगी। इसी तरह अभव्य जीव मे भी केवल ज्ञान की सम्यक्त्व की शक्ति है मगर उस शक्ति के व्यक्त करने की योग्यता नही हो सकती। तो यो यहाँ तक यह बात सिद्ध की गयी कि दर्शन मोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम निमित्त है, और सम्यग्दर्शन उस जीव को अध करण, अपूर्वकरण और अनवृत्तिकरणपूर्वक अपने उपादान से प्रकट होता है।

निमित्तनैमित्तिक संबंध और वस्तुस्वातन्त्र्यका संगम—देखो निमित्त और उपादान के बारे मे यह जिज्ञासा बनी है कि इसमे तथ्य कहाँ है ? निमित्त नैमित्तिक सम्बध है या नही ? निमित्त उपादान मे परिणति कराता है या नही या उपादान स्वय निरपेक्ष परिणति करता है। कुछ ऐसी जिज्ञासाये लोगो को बनी रहती है। इस विषय मे तथ्य है कि जिसे अध्यातम सूत्र के एक सूत्र मे कहा है कि "निमित्त प्राप्योपादान स्वप्रभाववत्" अर्थात् निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है। इन शब्दो मे सब समाधान आ गए। निमित्त पाये बिना विकार भाव नही होता तिसपर भी निमित्त उपादान मे विकार परिणति को नही करता। निमित्त अपने आपमे अपने ही विकार को करता है और उपादान अपने आपमे अपने ही विकार को करता है, पर जितने भी विकार होते है ये पर निमित्त का सन्निधान पाये बिना हो जाये तो वे स्वभाव कहलायेंगे, विकार नही कहला सकते तो उस सम्बध मे इतना ही एक निश्चय है कि निमित्त के सन्निधान बिना विकार होता नही और निमित्त उपादान मे विकार परिणति करता नही। उपादान ही विकार परिणति करता है अपने आपकी करण शक्ति द्वारा, पर निमित्त सन्निधान बिना यह बात नही हो सकती। दृष्टान्त के लिए स्पष्ट उदाहरण ले लो। एक दर्पण के सामने हाथ किया तो दर्पण मे जो छाया आयी वह हाथ की छाया आयी। हाथ के सन्निधान न होने पर तो नही आ सकती, लेकिन हाथ ने कुछ दर्पण मे छायारूप परिणति की हो सो बात नही। हाथ जो कुछ कर सकेगा वह अपने आपमे कर सकेगा। अपना रूप बदले, अपना रस बदले, अपना स्पर्श

बदले, अपनी क्रिया करे, अपने मे चेष्टा करे, जो हो सो यहां होगा और दर्पण मे छाया रूप परिणति होगी तो वह दर्पण की शक्ति से दर्पण की परिणति से ही होगी। मगर सामने बात तो स्पष्ट है कि हाथ का सन्निधान निमित्त पाकर दर्पण ने अपने मे छाया परिणति की। अब इसमे समझे कि क्या, ये शब्द ठीक लग रहे कि दर्पण मे जब छाया होने को हुई तो हाथ को हाजिर होना पडा ? अरे यह सहज निमित्त नैमित्तिक। योग है कि हाथ का सन्निधान पाये तो यह दपर्ण छाया रुप परिणम जाय। अब इन शब्दो में कोई यह कहे कि तब तो दर्पण की परिणति परतत्र हो गई। अरे वह स्वतत्र है, पर स्वतत्र का अर्थ है कि दर्पण मे दर्पणकी योग्यता से, दर्पणकी परिणतिसे करण शक्तिसे छाया हुई, पर उसमे यह अर्थ नही है कि वह परसन्निधान न हो तो भी वह उस रूप परिणमे स्वतत्र परिणतिका अर्थ है कि अपनी ही शक्तिसे अपनेमे परिणमन करे।

स्वभावदर्शनके लिये ही नयोकी उपयोगिता—देखिये प्रयोजन की बात क्या है ? जान लो सब बाते। अपने लिए लाखो और करोडो वातो मे सार बात क्या है ? स्वभावदर्शन। एक ही इस स्वभाव दर्शन के प्रयोग मे लग रहे। यह मानव जन्म बडी मुश्किल से प्राप्त हुआ है, यह रागद्वेप विकल्प विकार करने के लिए नही है, यहा जो कोई यह उपाय कर लेगा कि स्वभाव दर्शन, अपने मे अपने स्वभाव की दृष्टि बनाले। वह कृतार्थ हो जावेगा। बस अपने को चाहिए स्वभाव दर्शन, क्योकि स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव के दर्शन, अपने सहज ज्ञानमात्र की रुचि, उसमे लीनता बिना शान्ति और मुक्ति हो नही सकती। एक यह अनिट विर्णय है। आपको स्वभावदर्शन चाहिए और स्वभाव दर्शन के लिए ही सारे प्रतिबोध बनाये गये। यह तो बडे सुभीते की बात है प्रमाण से जानो, नय से जानो और फिर प्रमाण नय सबको छोडकर एक निर्विकल्प प्रतिभास से जानो। देखो दोनो आखे मूद सोच कर दाहिनी आख से हम देख सकते है ना ? देख सकते है। दाहिनी आख बन्द करके बाई आंख से भी देख सकते है ना ? देख सकते है। दोनो आखे खोलकर देखते है ना, देखते ही है, और दोनो आखो को बन्द करके भी हम कुछ देखते है ना ? देखते है। इसी तरह जानने के साधन हमारे चार है (१) निश्चयनय (२) व्यवहारनय (३) प्रमाण और अनुभव। निश्चयनय को समझिये दाहिनी आख, व्यवहारनय को समझिये बाई आख, प्रमाण को समझिये दोनो आखे और अनुभव समझियेनय और प्रमाण तीनो को बद करके एक जो अन्तर्दशा है उसे। हम व्यवहारनय को गौण करके निश्चयनय से देखे तो देखते है ना ? जानते हैं ? अब आखो को बन्द करके दाहिनी आख से देखे और बीच मे थोड़ा-बन्द करे कराने मे ही बायी आंख से देखने का पौरुष करे तो वह अटपट लगता है। दाहिनी आंख

से देखना चाहते हो तो बाई आख को पूरा बद करके देखते रहो, क्या हानि है ? निश्चयनय से आप वस्तु का स्वरूप जानना चाहते है तो व्यवहारनय को गौण करके देखते रहो। बन्द करके शब्द यो नही कह रहे कि सस्कार से, ज्ञान मे अगर व्यवहारनय का विरोध है तो वह निपट अज्ञान है और उसमे कभी मुक्ति सम्भव नही है इसलिए व्यवहारनय को बन्द करके न कहना, किन्तु व्यवहारनय को गौण करके कहना, क्योकि प्रमाण से ग्रहण किये गए अर्थ मे किसी एक दृष्टि से देखने को नय कहते है। प्रमाण से तो वह जाने और निश्चय व्यवहार दोनो नयोंने से ज्ञान होता है। पर प्रमाण से जान कर अब व्यवहार नयको गौण करके निश्चय से देखिये तो खूब देखिये, द्रव्य अपने मे अपने द्वारा अपनी परिणति से परिणमता रहता है। यह बात सत्य है। इसमे किसी भी प्रकार का कोई विवाद नही है। अच्छा अब व्यवहारनय से देखिये, निश्चयनय को गौण कर लीजिये। निश्चयनय को बद करके मत देखिये यदि निश्चयनय को बद करके व्यवहारनय से देखा तो मिथ्या हो जायगा, क्योकि प्रमाण से ज्ञात किये गए पदार्थ मे ही किसी एक दृष्टि को ग्रहण करने को नय कहते है। निश्चयनय की बात जानिये, सस्कार मे रखा समझिये। अब कुछ परिस्थिति है, प्रयोजन है, अत व्यवहारनय से जाने। अब इन प्रसग मे निश्चयनयको गौण करके व्यवहार नय से देख रहे तो यो देखा जायगा कि ये विकार कर्म विपाक का निमित्त पाकर आत्मा मे उत्पन्न हुए है। व्यवहारनय यह न कहेगा कि यह राग अनुभव, यह चैतन्यराग कर्म मे हुआ है। व्यवहारनय यो न कहेगा कि कर्म ने चेतन मे राग उत्पन्न किया है। जब किसी किसी प्रसग मे कर्त्ताकर्म की बात व्यवहारनयकी की गई हो कि व्यवहारनय का कर्म जीव मे राग कराता है तो वह व्यवहारनय नही है किन्तु उपचार से कहा हुआ है उपचरित व्यवहार हो तो उपचार मिथ्या हुआ। वह नयसे परे की बात है, पर नयको मिथ्या नही बोलते। सम्यक श्रुतज्ञान के अश है निश्चयनय और व्यवहारनय, पर व्यवहारनय कर्ता कर्म की बात नही कहता। कर्ता कर्म की बात एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य से उपचार से कही है और ज्यो ही व्यवहार मे उपचार का मूड करके बोला तो यह भाषा - उपचार की बनती है भले ही व्यवहार शब्द से कहा हो पर उसमे निर्णय रखना कि यह व्यवहार की भाषा नही है, किन्तु उपचार को साथ लेकर व्यवहार की भाषा बनाई गई है। उपचार मिथ्या है, व्यवहार मिथ्या नही। व्यवहारनय ने तो एक घटना बतादी। कर्मविपाक का निमित्त पाकर जीव मे राग परिणति हुई है, बात भी बहुत समझने की है और बारम्बार यदि उन पर उपयोग लगायें तो भेद विज्ञान की बडी दृढता आयगी।

प्रकट भिन्न अचेतन परिग्रह से आत्मतत्त्व की विविक्तता—भैया। जैसे सामने कोई

रस्सी पडी है। उसमे साप का भ्रम हो गया तो हम उसके पास जाने मे डरते है। जरा हिम्मत बाधकर चले यह सोचकर कि देखे तो सही कि यह साप है कैसा ? जब कुछ आगे बढे तो सोचा कि अरे इसमे तो जरा भी चल विचल नही हो रहा। कुछ और पास गए तो देखा कि अरे यह तो कोरी रस्सी है। जब वह रस्सी को रस्सी समझ गया तो फिर क्या भ्रम मे पडता है ? क्या वह पहिले जैसा डरता है ? अरे अब उसके ज्ञान को कोई बदल नही सकता। इसी तरह भेदविज्ञान जो बात निरखता है उस बात को अपने पर घटा कर समझो, यदि तथ्य निरख मे आज.यगा तो उसे स्पष्ट हो जायगा कि भेदविज्ञान की कितनी उत्कृष्ट उपयोगिता है। हमे भेदविज्ञान करना है। किससे भेदविज्ञान करना है ? दो बातें होगी तो, तब ही तो भेदविज्ञान की बात कहेगे। यह इससे अलग है, यह जुदा है, यह जुदा है। दो को समझना है ना, तो दो को समझिये, स्व और परको, स्व तो एक है पर अनेक है। पर से किस किस को समझना है ? चलो पहले तो यही एक मोटी बात है कि धन वैभव से अपने को जुदा समझे। जुदा हर एक कोई समझ रहा है, पर भीतर मे मोह की प्रेरणा ऐसी है कि बाहर मे ही पडे रहते है। किसको समझ नही है कि मकान मेरे से अलग है। अज्ञानी भी जानता है कि मकान मेरे से अलग है। मैं इतना हूँ। भले ही शरीर तक को समझता कि यह मैं हूँ और मेरे से यह मकान वैभव अलग है फिर भी मोह की ऐसी प्रेरणा है कि अलग क्षेत्र मे रहने वाले मकान आदिक से भी इसका ऐसा लगाव है कि उसको वैराग्य नही जगता।

चेतन परिग्रहसे आत्मतत्त्वकी विविक्तता—अच्छा, अब अपने को कुटुम्ब से अलग निरखो। देखो अचेतन वैभव से चेतन परिग्रह के लगावसे उलझन अधिक बढ जाती है। अचेतन परिग्रह से चेतन परिग्रह जबरदस्त और कठिन है। कैसे कि अचेतन परिग्रहसे हम राग करते है तो अचेतन की ओर से कोई ऐसी चेष्टा नही होती जो हमारा राग बढानेका कारण बने। मकान तो जहा खडा है सो खडा है, चीज तो जहा रखी है सो रखी है, इसकी ओर से कोई चेष्टा ऐसी नही होती कि जो हमारा राग बढ़ानेका आश्रय बने! यह तो हम अकेले ही अपनी ओर से साधनोमे राग करते है। कर्म इस घटनामे अन्तर निमित्त है उसकी बात नही टाल रहे। उपयोगके विकारके आश्रयभूतके लिए बात कह रहे है कि हम अपनी ओर से ही इन अचेतन पदार्थोंमे राग लपेटे हुए है मगर चेतन परिग्रह से छोटे-छोटे बच्चे और नई नई स्त्री उससे जब बात करता है, प्रेम करता है तो वह पुरुष तो उसकी ओर से भी राग की प्रेरणा पाता है। राग भरे शब्द स्त्री आदिके निकलते, हाव भाव निकलते, कटाक्ष होते, बच्चे तोतले बोल बोलते, उनको सुन-सुनकर

इस जीवमें राग बढनेका एक मोका होता है। तो अचेतन परिग्रह से चेतन परिग्रह कठिन है जैसे कुपूत से सुपूत ज्यादह कठिन होता है। अगर पुत्र कुपूत हो गया तो वह उतना कष्टकारक नही जितना कि सुपूत। पिताको वरबाद करने वाला, कठिन लगने बाला, विपत्तिमे डालने वाला है वह सुपूत। अगर पुत्र कुपूत हो गया तो उससे आप कुछ अपना मतलब ही नही रखते। उसे चाहे जहा जो कुछ हो, बल्कि आप अखबारोंमे भी निकाल देते कि अब इस पुत्र से मेरा कुछ सम्बध नही। लो सारा झगडा मिट गया, और अगर पुत्र सुपूत हुआ तो उसके पीछे जीवन भर आपको बडा परिश्रम करना पडेगा, उसका लक्ष्य रखकर-मैं इसे इतना धन कमा जाऊँ कि यह जिन्दगी भर सुखी रहे। तो देखिये जिन्दगी भर मरे उस सुपूतकी वजह से। यो समझिये कि अचेतन से चेतन परिग्रह कठिन है,

विकार निर्माण विधि—निमित्त नैमित्तिक भाव के प्रसगमे यह भी बात खास करके समझ लीजिए कि जिस बातकी चर्चा बहुत कम है, प्रसिद्धि नही है या कोई लोग जानते तो भी नही बताना चाहते। जीवके विकार होनेमे, रागद्वेष होनेमे तीन प्रसग होते हैं (१) निमित्त, (२) उपादन और (३) आश्रय भूत। आश्रय भूत की बात लोग कोई जानकर नही कहते, अथवा उसकी प्रसिद्धि नही है। पर तीनो बाते समझनेसे एक बहुत बडी दिशा मिलेगी। रागभाव हुआ तो उसमे निमित्त कारण, उपादान कारण और आश्रय भूत कारण, ये तीन प्रसग आते है। क्या ? राग प्रकृतिका उदय, यह तो है निमित्त कारण और यह जीव रागपरिणमन जो कर रहा है वह है उपादान कारण, मगर राग परिणाम व्यक्त बनता तभी है ना कि जब किसी की ओर लक्ष्य हो, किसीका ख्याल हो, किसी पर राग हो रहा हो। तो जिस वस्तुको ख्यालमे लाकर राग करते- मानो पुत्र को ख्याल मे लाकर राग करते तो पुत्र हुआ आश्रय भूत। आश्रय भूत के साथ नैमित्तिक कार्य होने का नियम नही है, विभाव हो अथवा न भी हो। जैसे—मुनि महाराजको आश्रयभूत नही बन पाता वही पुत्र जो कि पहिले गृहस्थावस्था मे आश्रयभूत था। तो आश्रयभूत कारणमे कोई कार्यकी नियमकता नही है। पर निमित्त कारण मे नैमित्तिक कार्य होने का नियम है। इसका अविनाभाव सम्बध है। निमित न होने पर विकार नही होता, निमत के होने पर ही विकार हो सकता है, आश्रयभूत के साथ [illegible] नियम हैं कि पुत्र के होने पर ही राग हो सकता है या पुत्र के न होने पर [illegible] नही हो सकता है। दोनों तरह से नियम नही है। देखिये आश्रयभूत [illegible] मे

नियामकता नही है, इससे कभी यह शंका न करे कि देखो यह जीव समवशरण मे गया और सम्यक्त्व न हुआ। तो निमित्त कारण कुछ नही है, उसे उलाहना मत दो, क्योकि समवशरणमे जाना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नही, भगवान के दर्शन करना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नही। वदना जातिस्मरण या दूसरे से उपदेश सुनना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नही, ये सब आश्रयभूत कारण है। निमित्त कारण तो वह है जिसका कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध हो, हा परस्पर निमित्त उपादानमे अत्यन्ताभाब तो जरूर है। अध्यात्मसूत्र के एक सूत्रमे आया—अत्यन्ताभाव वदन्यव्यतिरेक सम्बन्ध वच्छिन्नानि-निमित्तनि ॥ ये सब बाते समझनेका प्रयोजन क्या रहा ? स्वभावदर्शन का लाभ स्वभाव की ओर आना। इसी के लिए सारे प्रयास है,

चारो अनुयोगो की स्वभावदर्शनप्रयोजकता:—प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग, इन सब शास्त्रो का प्रयोजन यह है कि यह पुरुष स्वभावदृष्टि की ओर लगे। जब कथा मे पढते है तो वहा कुछ उत्साह जगता है ना, कुछ वैराग्य की बात आती है ना, कुछ उमग उठती है ना, जब चरणानुयोग के शास्त्र पढते है तो इसमे यह बात सीखते है कि देखो अध्यवसान परिणाम निराश्रय नही होते। समयसार मे स्पष्ट घोपणा की है कि बाह्य वस्तु का आश्रय किए बिना रागादिक भाव अपना स्वरूप नही बना पाते। चरणानु-योग हमे यह शिक्षा देता है कि तुम अध्यवसान के आश्रयभूत पदार्थो का परित्याग करो। यह ही तो चरणानुयोग कहलाता है। अब उसके साथ कोई यदि बाहर बाहर ही दृष्टि रमाकर रह जाय कि बाहरी चीज का त्याग करे तो काम न चलेगा। यह बाहय पदार्थों का त्याग किस लिए किया कि मेरे मे रागभाव न हो। अब बाहय पदार्थों का हम ख्याल कर करके राग कर रहे और बाहय पदार्थों को छोडे रहे तो यह करने की बात नही है। ख्याल ही मत करे उसका। यह तो है छोडे रहना। बाहर से छोड दिया, ख्याल मे नही छोडा तो वह छोडना नही कहलाया। मगर एक अवसर जबरदस्ती मे भी आ सकता कि मानो छोड दिया और ख्याल मे आता रहता है, कभी ख्याल मिट भी जायगा। जैसे कोई पुरुष घर मे मर जाता है तो वह उन घर वालो से छूट ही तो जाता है मगर उसका कुछ दिनो तक ख्याल बना रहता है। तो ऐसे ही विषयों का त्याग भी करे, कषाये भी मद करे तो न भी हो अधिक ज्ञान तो भी वह उससे कुछ न कुछ लाभ उठा लेता है। व्रत, तप, सयम आदि हानि कारक नही है, पर हानिकारक है ये तीव्र कषाये। कषायो की तीव्रता मे आकर व्रत करें कोई तो वह हानिकारक है, मदकषाय करे और सम्यक ज्ञान न जगे तो भी मद कषाय से व्रत तप करे तो मोक्षमार्ग का लाभ तो न होगा मगर हा कुछ लाभ है। जब तक रहेगा तब तक उस

की दशा ठीक होती रहेगी । मोक्षमार्गका लाभ होता है सम्यग्दर्शन मे । तो उस स्वभावदृष्टि के लिए ये सारे उपाय किए गए । करणानुयोग मे भी जब गुणस्थानो मे होने की दशा का वर्णन करते है, जानते हैं और उसमे उपयोग लगाते है तो एक तो उपयोग लगने से बाह्य विषय कषायो का उपयोग दूर हुआ और फिर उसमे गुरुजनो की एक ज्ञानशीलता उनकी सम्यग्दृष्टिता, उनका एक भाव यह भी रचयिता का अनुमान मे आता है और परिस्थितिया भी जो है वे भी मोक्षमार्ग की प्रेरक होती है, सभी शास्त्र स्वभावदर्शन के अनुरूप भाव कराने वाले है, उस स्वभावदर्शन की ही बात यहा देख लीजिए ।

आश्रयभूत कारणपर कारणत्वका उपचार:—ये आश्रयभूत पदार्थ मेरे मे राग नही कराते, ये राग के कारण भी हैं, किन्तु मे ही विकल्प करके इनका ख्याल करते हुए मैं ही इन्हे निमित्त बनाता हूँ । जैसे कहते हैं ना कि जब यह राग करे तो पर पदार्थ निमित्त बन जाता है । उस पर निमित्तका उपचार होता है यह बात आश्रयभूत के साथ ही लगावें कि जब यह जीव राग करता है, जब यह राग करने को होता है तो जो हाजिर हो वह कारण बन जाता है । यह बात आश्रयभूत के साथ लगती है । और चूकि जीव को आश्रयभूत पदार्थ सामने दीखा करता है तो उनके साथ जो बात होती है उसी बात का और जगह जिक्र कर देते हैं । करे क्या ? जिसके सम्बन्ध मे विशेष जानकारी नही हैं उसके बारे मे जो एक रूढि चलती आयी है उस तरह की बात लगा देते है । जैसे जब पहिले ट्रेन निकली थी । लोगो को पता पड गया कि भाई अमुक दिन रेलगाडी निकलेगी तो गाव के देहात के आदमी बहुत से जुडकर आये होगे तो वे देखकर यही कहते होगे कि इस रेल मे जो आगे काला काला हैं उसमे काली देवी रहती है वह इस गाडी को चलाती रहती है । जब समझ मे ही न आया कि ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि जिससे यह चल रही है तो वे उसमे काली देवी की कल्पना कर बैठे, तो इसी तरह हर जो आश्रयभूत पदार्थ के साथ जो बात देखते है, क्या कि जब जीव राग करने को होता है तो बाहरी पदार्थ जो हाजिर हुआ वह निमित्त बन जाता है । यह बात आश्रयभूत पदार्थ के साथ फिट बैठती है । जब इस जीव को क्रोधप्रकृति होती है तो सामने नौकर आये तो उसे ही देखकर कोई न कोई बात उमड जाती है । कभी-कभी प्रयोजनवश किसी पर ख्याल करके राना उमड जावें और कभी बिना प्रयोजन के भी उमड जाता है तो यह आश्रयभूत कारण के साथ तो फिट बैठता है पर निमित्त कारण के साथ फिट नही बैठता है, कि जब जीव मे राग की परिणति आने को होती तो उस समय निमित्त को हाजिर होना पडता । यह निमित्त के साथ नही है, किन्तु ऐसा सहज योग है निमित्त का सन्निधान या कर योग्य उपरान्त अपनी परिणामशक्ति से विकार

करता है ।

जीव विकार में कर्म दशा के निमित्तत्वका दिग्दर्शन—सत्ता मे पडे है कर्म, और उनकी स्थिति पडी थी उनकी स्थिति जब पूरी होती है तो उदयकाल आता ही है अथवा किन्ही विशुद्ध परिणामो से अथवा किन्ही परिणामो से बाहर उदीरणसे बाहर उदीरणा कर दी तो उदीरणा का भी भाव यही है कि उनका समय पूरा हो गया। उदीरणा मे तो समय से पहिले समय मे पार कर देगा और उदय मे अपने आप निश्चित समय मे पार कर देने मे आखिरी हुआ, तो स्थिति पार होते समय ही वे कर्मविपाक निमित्त है। उस निमित्त का सन्निधान पाकर चू कि यह जीव उपयोग स्वरूप है तो इसमे उस कर्म का विपाक, कर्म की दशा, कर्म का उद्यम, कर्म का क्षोभ वह अनुभव करता है और न उसे जीव करता, क्योंकि कर्म अपने परिणाम को भी नही जानता, अपने परिणाम के फल को नही जानता, अपने को नही जानता तो वे कर्म अपने आप मे होने वाले राग का तो अनुभव क्या करे ? मगर राग प्रकृति का उदय आने पर उसमे राग है। जैसे कपडा लाल है तो लाल है। कपडा अनुभव नही करता कि मै लाल हूँ। उस कपडे मे लालिमा है और हमने उसकी लालिमा का अनुभव किया तो हमारे उपयोग मे भी लालिमा आयी। अगर हमने लाल कपडा देखा तो कपडे मे भी लालिमा है और हमारे उपयोग मे भी लालिमा है। कपडे की लालिमा तो है अचेतन और उपयोग मे जो लालिमा आयी वह है चेतन लालिमा । तो हम न तो इस कपडे की लालिमा का अनुभव करते न कपडा अपनी लालिमा का अनुभव करता किन्तु उस लालिमा को विषय करके हमारे उपयोग मे जो लालिमा का परिचय हुआ है उसके ज्ञान का हम अनुभव करते है। यह ही बात वहा रख लीजिए । कर्म विपाक हुआ, कर्म में क्षोभ हुआ, राग, क्रोध, मान, माया, लोभ हुए, बताते ना, मिथ्यात्व भी दो तरह का है, विषय भी दो तरह का है। इस कर्म की भी कुछ बात हुई जो कर्म मे हुई। वह मेरे क्षेत्रावगाह मे है ना, तो वह उपयोग से बाहर नही जा सकता। उपयोग मे छलका और तुरन्त यह मोही जीव उसे अपना लेता है। यह दशा बनती है। तो यहा यह जानना कि कर्म ने रागभाव नही किया। जीव का राग कर्म ने नहीं किया, कर्म का राग कर्म ने किया जीव का राग जीव ने किया, मगर ऐसा सहज योग है कि कर्म के राग का निमित्त पाकर इस जीव ने अपने मे राग परिणति की। निमित्त नैमित्तिक योग भी है और वस्तु स्वतत्रय भी है कितना एक स्पष्ट वर्णन है, कही विवाद का काम नही एक तो यह बात । दूसरी बात जो कुछ थोडा अपने प्रवाह मे परम्परा मे कुछ थोडी बहुत एक अटकाव सा हो गया वह एक अटकाव हो गया मुनियों को मानने न मानने का पर जरा गम्भीरता से तो सोचिये मुनि क्या है ? एक साधक याने आत्मशुद्धि के लिए जिसने अपनी तैयारी की हो उसे कहते हैं साधक ।

साधक कही निर्दोप हो सकता है क्या ? अगर निर्दोष है तो साधक क्यो बन रहे है। जितने साधक है वे साधना करेगे तो उनमे कुछ दोष भी रहेगे और इन दोषो को दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहेगे। यथार्थता ध्यानमे रखिये। व्यर्थ विकल्प करके अपना समय खोटा न कीजिये।

ज्ञान अपरिमित लोक व अनन्तकालके बीच थोडे से क्षेत्र व कालमे पर्याय का यश चाहने का दुष्परिणाम—जगत की कितनी ही बातो का परिचय कर लेना, बहुत सी बातो को समझ लेना और एक अपने आत्माकी बातकी सुध न होना, ऐसी अगर स्थिति है तो चाहे वह जगत का बडा से बडा वैज्ञानिक हो जाय तो भी वह शान्तिका पात्र नही है, और कोई पुरुप बहुत-बहुत बाते नही भी जान पाता, नही बोल पाता और एक अपने आपके अन्तस्तत्त्वकी परख कर लेता है जो बहुत सुगम है, स्वाधीन है, सहज है, कठिन नही, एक दृष्टि द्वारा साध्य है तो आत्मतत्त्व की परखकर लेने वाला पुरुष ज्ञानी है, शान्तिका पात्र है, जन्म मरणकी विपदासे दूर हो जायगा। तो उस अन्तस्तत्त्वकी परख करने के लिए दो बातोका सही निर्णय करना बहुत आवश्यकहै। (१) वस्तुस्वातन्त्र्य और (२) निमित्त नैमित्तिक भाव। यह बात केवल सुन लेने की नही है, बोलने मात्र की नही है, किन्तु अपने आपमे घटत करके समझने की बात है। जीवका धन केवल ज्ञान ही है, दूसरा कुछ नही। वे लोग तो गरीब है दीन हीन है जो बाह्य वैभवमे, धनमे दृष्टि लगाये हैं और अपना बडप्पन समझते है। वे तो ससारसंतति के बढानेका ही प्रयत्न कर रहे है। है उनमे भी परमात्मस्वरूप, पर अपने उस स्वरूपकी दृष्टि न करने से उनका जीवन व्यर्थ ही जा रहा है। मोटे रूप से सोचो कि यह सारा लोक कितना बडा है ? जिसे बतलाया है ३४३ धनराजू प्रमाण। उसके सामने यह परिचय वाला क्षेत्र कितना है। जैसे समुद्र के आगे एक बिन्दु। इतनी बिन्दु भर जगह मे पर्यायबुद्धि के कारण नामवरी की बात कोई सोचे तो वह मूढता है और कितनी हानि कर रहा है। काल कितना गुजर गया ? अनन्तकाल। आगे कितना गुजरेगा ? अनन्तकाल उस समस्त काल के आगे आजकी पायी हुई यह १००–५० वर्ष की जिन्दगी या जिसने हजारो, लाखो, करोडो वर्षकी जिन्दगी पायी हो, सागरपर्यन्तकी भी जिन्दगी क्यो न पायी हो, पर वह एक बूँद माफिक भी नही है। जैसे समुद्रके आगे एक बूँद की गिनती है उतनी भी गिनती नही है, क्योकि काल अनन्त है। तो जरा से जीवनके लिए अपनेको महान समझना, दूसरो को तुच्छ समझना, पर्यायबुद्धि करना, पाये हुए समागमो मे मोह ममता करके इस जीवन को गुजार देना यह सब मूढता है और यह इतना बडा अपराध है कि जिसके फलमे

कीडा मकोडा पेड पौधा आदिक होकर नाना यातनाये सहनी पडेगी।

अनन्तानन्त जीवोमे से न कुछ संख्याके कुछ जीवोमे यशका विकल्प बनाकर अपने को बरबाद करनेका दुष्परिणाम—जगतमे जीव कितने है ? अनन्तानन्त। यह मनुष्य मोहवश ऐसा चाहता है कि लोग मेरी तारीफ करे। कितने लोग तारीफ करे ? क्या इस गाव के सभी लोग तारीफ करे लेगे।...अरे गावके ही क्या, इस देश के भी सभी लोग तारीफ करे। मगर ऐसा कभी हो सकता है क्या ? प्रथम तो व्यावहारिक दृष्टिसे ऐसा कोई मनुष्य न मिलेगा, तीर्थकर भी न मिलेगा कि जिसकी सभी मनुष्य तारीफ करते हो। कुछ मान भी लो तो जगतके अनन्त जीवो पर दृष्टि दे तो उन अनन्त जीवोके समक्ष यह कितनी सो सख्या है ? ये कुछ करोड़ मनुष्य उन अनन्त जीवो के समक्ष कुछ भी तो गिनती नही रखते। कितने जीव है ससार मे...अनन्तानन्त। जिसका अनुमान यो कर सकते कि सबसे कम जीव तो मनुष्य हैं। दोनो तरहके मनुष्योको जोड ले तो भी सबसे कम है दो तरह के मनुष्य कौन से ? एक तो जो शरीरधारी ऐसे दिखने वाले है, जिन्हे पर्याप्त मनुष्य कहते है, ये कुछ सख्या मे ही है, पर असख्या मनुष्य वे हैं जो निगोद की तरह यातनाये भोगते एक २ स्वास मे १८ बार जन्म मरण करते और काख आदिक से पैदा होते रहते, वे सम्मूर्छन है, उन सब मनुष्यो को भी जोड लो, तो सब गतियो से कम मनुष्य है। उनसे अनगिनते गुने है नरकगतिके जीव। उनसे अनगिनते गुने है देवगतिके जीव और देवो से अनगिनते गुने है त्रस जीव और त्रस जीवोसे अनगिनते गुने है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति और उनसे अनन्त गुने है सिद्ध भगवान और सिद्ध भगवान से भी अनन्त गुने जीव है निगोद जिनके बारे मे बताया है कि अब तक जितने सिद्ध हुए है वे सब सिद्ध अभव्यो से तो अनन्त गुने है मगर निगोद से अनन्त वे भाग है, और इतने अनन्त वे भाग है कि अनन्त काल के बाद भी यह ही कहा जायगा कि अब तक जितने सिद्ध हुए है वे निगोद के अनन्तवे भाग हैं। तो जगत के जीवोकी सख्या समझलो, और यहा सन्तोष करो कि अगर कुछ हजार मनुष्योने मुझे बुरा कहा तो कहने दो, उससे बुरा क्या हुआ ? कुछ हजार लोगो ने भला कह दिया तो उससे भला क्या हुआ। मेरा बडप्पन यदि भगवान के ज्ञानमे झलक रहा हो तो वह तो मेरी सच्ची बात है। बाकी यहाका क्या ? तो ऐसे ससारकी बात समझकर यहा मुग्ध न होना और जैसे अपने आत्माका हित हो उस प्रकारका ज्ञान बनाना, चिन्तन करना, मनन करना यह ही एक इस विनश्वर जीवन का लाभ है।

वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिक भावकी समझमें शौर्य और स्वच्छता का अभ्युदय—दो बातें, निमित्त नैमित्तिक भाव व वस्तुस्वातत्रय निर्णय मे आये तो अपना आत्मतत्त्व, अपना सहज स्वरूप और जगत का वास्तविक रूप दृष्टि मे सामने रह सकता है। वस्तुस्वातंत्रय तो यही है कि प्रत्येक पदार्थ है और प्रति समय उत्पादव्ययशील है और उसके ही उपादान मे, उसके स्वरूप मे, उसके ही परिणमन मे उत्पादव्यय आता है। उस उत्पादव्यय को दूसरा पदार्थ नही करता। एक हाथ दूसरे हाथ को मरोड दे, इतने पर भी उस एक हाथ ने अपने मे ही कुछ काम किया। पर उस मरोडे हुए दूसरे हाथ मे कोई क्रिया नही की। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसा ही वह एक हाथ के बीच फसा है कि यह हाथ जैसी क्रिया करे वैसा इस अगुली को भी करना पडा। इतना होने पर भी मरुडने वाली अगुली अपनी क्रिया से ही मरुड गई है। अनेक जगह आप यही बात समझे तो उससे मुझे बल क्या मिलता कि जब अपना उपयोग भाव और कर्मोदय इन दो का निर्णय करने चलते है तो यह स्पष्ट जाहिर होता कि कर्मोदय का निमित्त सन्निधान होने पर जीव ने रागद्वेष विकार रूप परिणमन किया। इस प्रसग मे अगर वस्तु स्वातन्त्रय न माने तो मैं उन्नति नही कर सकता हूँ और निमित्त नैमित्तिक भाव न मानू तो मैं उन्नति नही कर सकता। सो कैसे? अगर वस्तु स्वातन्त्रय नही मानते, जिसका अर्थ यह हुआ कि कर्मोदय ने मेरे को रागी बना दिया। जैसा कि अनेक लोग कहते ना कि ईश्वर इस जीव को सुख दु:ख देना है तो ऐसा समझने वाला मनुष्य इतना कायर बनता है कि उसके मन मे यह है कि ईश्वर जो करता है सो होगा, मैं कुछ कर ही नही सकता। मेरी कुछ सामर्थ्य ही नही, अथवा वह स्वच्छन्द हो जायेगा तो इसी तरह यदि यह बात किसी के चित्त मे बसी हो कि कर्मोदय ने मेरे को रागी किया, अब मैं क्या कर सकता हूँ? वे कर्म जब कभी अवसर दे तो मेरा उत्थान है मैं कुछ कर ही नही सकता। जबकि बात इसके विपरीत है। कर्मोदय कितना ही आये वह अपने आपके प्रदेशो मे ही अपना अनुभाग, अपना विस्फोट करता है, इसके आगे उसका काम नही। जैसे दर्पण के आगे लाल चीज आई तो लाल कपडा अपने मे ही लालरूप परिणमता है, उससे बाहर कपडे का कोई काम नही। हाँ निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसी घटना मे दर्पण भी लाल प्रतिबिम्बित हो जाता है, हां, लेकिन कर्ता कर्म भाव नही है यह तो ज्ञानी पुरुष है, यह तो ज्ञान बल बना सकता है। दर्पण तो ज्ञानबल नही बनाता। तो कर्मोदय होने पर यह जीव अपने ही उत्पादव्यय से अपना उत्पाद व्यय करता है। कर्मोदय ने मेरे मे राग नही किया, ऐसे वस्तुस्वातन्त्रय की परख से यह अपने मे शौर्य प्रकट करता है कि मैं क्यो अज्ञानी बनकर दु खी हो रहा हूँ।

अज्ञान छोडूं तो शान्त होऊं। वस्तुस्वातन्त्र्य न मानने पर अपने को हानि है । इसी प्रकार निमित्त नैमित्तिक योग न मानने पर भी हानि है। बात यह है कि कर्मोदय का सन्निधान होनेपर यह मैं विकार रूप परिणम गया। अब निमित्त नैमित्तिक योग माने नही और यह ही कहे कि मै अपनी योग्यता से रागी बना, दूसरेका इसमे क्या ? यद्यपि राग परिणमन मेराही है परिणमन, लेकिन मैं अपनी ही सामर्थ्य से, अपनी ही योग्यतासे अपनेही आप रागी बन गया यदि यह सोच बैठे कोई कि मेरेमे मेरे ही कारण से राग हुआ, निमित्त की तो लोग तग करते सो लेना पडता, ऐसे सोचने मे राग स्वभाव बन गया, अब उस राग को हटानेका क्या उपाय सोचूं ? निमित्त नैमित्तिक योग माननेपर तो यह ज्ञान प्रकाश रहता है कि राग मेरी चीज नही है, यह तो कर्मकी लीला है । यह मेरा स्वभाव नही। मैं तो उपयोग मात्र हूँ। इस राग भाव से उपेक्षा करना है और अपने ज्ञान परिणमन को अपना ही उपयोग वृत्ति को अपने मे आत्मसात् करना है । तो स्वभाव दर्शन मिला ना उसे । वस्तु-- स्वातंत्र्य मानने से भी स्वभावदर्शन को प्रेरणा मिली । निमित्तनैमित्तिक भाव माननेपर स्वभावदर्शनको प्रेरणा मिली । तो ये दो निर्णय ऐसे अद्भुत निर्णय है कि जिनके पाये बिना कोई आत्मा मोक्षमार्गमें लग नही सकता ।

वस्तुतथ्यनिर्णोताकी शान्ति पात्रता—जब वस्तुस्वातन्त्र्य निमित्त नैमित्तक योग ये दो वस्तुतथ्य निर्णयमे आ जाते है तो स्वय ही उसके बडे प्रशमभाव, चारोकषायो को मंदता होती है, क्रोध नही होता, घमंड नही होता, सरल रहता । किसी बाह्य पदार्थ से लगाव न रखना, यह सहज ही उसमे प्रकट होता है। और चारित्रमे उन्नति उसके फिर होने लगती है। कषाये दूर हो, यह ही चारित्र कहलाता है । तो ये दो निर्णय अनेकानेक ज्ञानाभ्यास करके करले । और, वास्तविकता तो यह है कि गुरुचरणप्रसाद मिले बिना यह सँतापहारी, छाया प्राप्त नहीं होती। गृहस्थोको जिज्ञासुवो को गुरुचरण कही साक्षात् मिले तो उनकी उपासनोके प्रसादसे प्राप्त शुद्ध अन्तस्तत्त्वको अनुशासन मे यह आनन्द झरने वाली बात प्रकट होती है, और उसे पात्रता तय समझिये कि जब यह विभूति, यह अचेतन परिग्रह जड़ पदार्थ, ये सब यो मालूम होने लगेंगे कि मेरे आत्महितके लिए तो ये सब पूर्णतया बेकार हैं । आत्महित इनमे नही है । परि- स्थिति वश इनमें रहना पड़ता है और हमें इनका सग्रह विग्रह रखना पडता है । यों परसे उपेक्षा हो, आत्मतत्वमें रुचि हो, ज्ञानाभ्यासका प्रयत्न हो तो जीवनकी सफलता है ।

सम्यग्दर्शनकी मधुराई—सम्यग्दर्शन शब्द भी सुनने मे मधुर है और अर्थ भी मधुर है और जब इस रूप उपयोग होता है तो उसकी मधुराई तो एक बहुत उत्तम है। जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ अन्तरग मे आकुलता नही है। नारकी जीव भी जो सम्यग्दृष्टि है। बाहर मे बहुत कष्ट सह रहे है एक नारकी दूसरे नारकी के तिल-तिल बराबर खण्ड कर डालता है। वहाँ की पृथ्वी के स्वय कठिन दुख हैं। भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि की बहुत तेज बाधा है ऐसी बाधाओ मे रहकर भी सम्यग्दृष्टि नारकी अन्तरगमे व्याकुलता नही करता। आकुलता तो होती है मगर भीतरमे उसे आकुलता नही है वह स्वरूप ठीक-ठीक समझ रहा है मेरे आत्माका स्वरूप यह उपयोग मात्र है। यह शुद्ध ज्ञानमात्र है। ये सब कुछ जो बीत रही है वे सब कर्म की दशाये है। वे मेरे उपयोग मे झलकती है। उनका वह सम्यग्दृष्टि नारकी ज्ञाताद्रष्टा रहने का यत्न करता है। तो विपत्ति भी आये उससे भी बिगाड नही है जीव का, किन्तु मिथ्यात्व हो तो उससे बिगाड है। चाहे बडी सम्पत्तिके बीच भी रह रहा हो—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष तो भी वह उसमे मुग्ध नहीं होता। जैसे कोई सम्यग्दृष्टि देव है वह अपनी अटूट ऋद्धि के मध्य रह रहा है, उसकी जो देवियाँ हैं नारियाँ है वे वैक्रियक शरीर वाली है उनके पसीने का काम नही, बदबू का काम नही, फोडा फुन्सी आदिक का काम नही, मलमूत्रादिक का काम, नही वह हाड मास रहित दिव्य शरीर है, यहाँ तो मनुष्य मलमूत्रादिक महा अपवित्र चीजो से भरे हुए इस शरीर को देखकर बहुत सुहावना समझते है और घृणा योग्य पदार्थ पर दृष्टि तक नही पहुँचती। ऐसा घृणा योग्य शरीर भी जब यहाँ बडा मनोज्ञ लगता है और उसे छोडा नही जाता, मोहीजन ऐसे अपवित्र शरीर की प्रीति भी नही छोड पाते तब देखो वहाँ ऐसे सम्यग्दृष्टि देव ऐसे पावन धातुरहित वैक्रियक शरीर के बीच रहकर भी, देवियो के बीच रहकर भी उनमे बेसुध नहीं रहते है, सहज विरक्त रहते है, इनसे मेरा क्या पूरा पडेगा ? मेरा स्वभाव तो यह है, उपयोग है शुद्ध ज्ञानमात्र जैसे सम्यक्त्व के होने पर सम्पदा से भी क्षोभ नहीं होता, विपदासे भी क्षोभ नही होता ऐसे ही यह सम्यक्त्व यह ही हम आपके लिए उन्नति और उद्धार के लिये हेतूभूत है। सम्यक्त्व मे मुख्य प्रतीति यह रहती है कि यह तो मै ज्ञानमात्र हूँ, और उपयोग का परिणमन है, ज्ञानका जो परिणमन है वह मेरा काम है। ज्ञान मे जो आया है, अनुभवा जाता है वह ही ज्ञान मेरे अनुभव मे आता है और यह ही मात्र मेरा वैभव है, ऐसी प्रतीति रहती है। जैसे कोई पुरुष समझता है कि यह गैर आदमी है तो उसके कारण अपने मे रोग नही लगता। गैर है यह तो। देशवासी लोग समझते हैं कि अन्य देश के लोग गैर है, वे ऊनकी क्षति से अपने मे क्षोभ नही लाते है, तो राग नही लाते है, तो

यहा सम्यग्दृष्टि समझता है कि जो मेरे मे कपाय विकला विचार जग रहे है ये सब कर्म विपाक है मुझसे विविक्त है। सो ऐसा जानकर कि वे परद्रव्य है, परभाव है, परतत्व है, इनसे मेरा क्या नाता है। यदि इनमे लगता हूँ तो मै बरबाद होता हूँ। उनसे प्रीति को छोड देता है। ऐसे सम्यक्त्व की बात कही जा रही है।

दर्शनमोहोपशमादिमे विशुद्ध परिणामकी निमित्तभूतता—सम्यक्त्व का निमित्त कारण है दर्शनमोहका उपशम, क्षय और क्षयोपशम। चाहे निसर्गज सम्यग्दर्शन हो और चाहे अधिगमज सम्यग्दर्शन हो, दोनो मे ये निमित्त होते है और दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम कैसे होता ? तो उसका कारण है विशुद्ध परिणाम। देखो जैसे किसी ने विष खा लिया हो तो विष को दूर करने के चार साधन देखने मे आते है। एक तो यह द्रव्य कोई चीज पिला दी गई, कोई औपधि पिला दी गई जो उस विष को मारने वाली हो। तो यह तो है उसकी द्रव्यरूप चिकित्सा और क्षेत्र अनेक लोग विष खाये हुए मनुष्य को किसी क्षेत्र पर ले जाते हैं। जो मन्त्रशाला का क्षेत्र हो या जहा कुछ मुन रखा हो, कोई देवस्थान हो तो ऐसे क्षेत्र पर ले जाते। तो क्षेत्र भी एक चिकित्सा बन गई। तो कई व्याधियो को दूर करने के लिए काल योग्य काल देखा जाता है। कोई किसी खास नक्षत्र मे, किसी खास दिन मे चिकित्सा करना है, इस तरह का व्यवहार लोक मे देखा जाता है, और कुछ चिकित्सा भाव साध्य है। जैसे धनजय सेठ के लडके को सॉप ने डस लिया था उस समय धनजय सेठ तो पूजा मे थे। वहाँ उनकी स्त्री आयी और बोली, तुम तो यहाँ पूजा पाठ मे लगे हो, वहाँ बच्चे को सॉप ने डस लिया। धनजय सेठ ने कुछ न सुना। स्त्री ने उन्है बडा भला बुरा कहा, फिर भी कुछ न सुना। पूजा मे ही मग्न रहे। स्त्रीको गुस्सा आया तो वह उस बेहोश लडके को वही मन्दिर मे छोड गइ और यह कह कई कि अब इसे तुम जानो, हत्या लगेगी तो तुम्हे लगेगी। धनजय सेठ अपने भावो मे मग्न रहे। तो उस लड़के का विप दूर हो गया। तो यह विशुद्ध भाव लडके के विप को दूर करने मे कारण हो गया। तो ऐसे ही समझिये कि दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने के लिए भी योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होते है। चाहे सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के लिए कहो चाहे दर्शनमोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम के लिए कहो, ये चार बाते आती हैं। देखो जब कोई बडा कठिन रोग होता है तो औषधि पिलाने से भी वह दूर नही होता, पर जैसे औषधि एक साधन है करते ही हैं लोग उसका उपचार तो इसी प्रकार हमारे व्यवहार के जो साधन है—जिनेन्द्रदेव के दर्शन करना, गुरुजनो की सत्सगति करना, गुरुजनो की वैयावृत्ति रखना, स्वाध्याय करना आदिक यह सब द्रव्य का सन्निधान हुआ। योग्य क्षेत्र तीर्थ पर गए, जहाँ ज्ञानीजन विराजे हो उस

क्षेत्र मे गए, यह क्षेत्र का सन्निधान है। काल का सन्निधान—दश लक्षण पर्व आया उसमे विशेष उपाय बनाया, धर्मसाधन किया, अष्टानिका आयी तो उसमे विशेष उपाय बनाया। और योग्यभाव—उसके योग्य विशुद्ध परिणाम बने, मद कषाय रखे और विशेष परिणाम तो अध करण, अपूर्वकरण, अनवृत्तिकरण है, तो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होने पर कर्म मे भी यथायोग्य फेरफार होता ही है। उनका उपशम, क्षय, क्षयोपशम होता है। और जहा दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम मिला वहाँ यह जीव अपने आपकी परिणति से, अपनी करणशक्ति से, अपनी विशुद्धि के बल से सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है। ऐसा यह सम्यक्त्व निसर्गज हो अथवा अधिगमज हो, यह इस प्रकार का कारण पाकर उत्पन्न होता है।

सर्व जीवोमें अन्त स्वरूप की समानता—अब जीव के एक अन्त स्वरूपपर पुन दृष्टिपात कीजिये—देखिये हम आपका शरण है तो आत्मा का सहजज्ञान स्वभावका जितना लगाव हो, दृष्टि हो बस वही शरण है जगत मे कोई दूसरा शरण नही। बल्कि जगत मे दूसरे को शरण मानने की बात ही असहाय हो जाने की बात है। उल्टा काम होता है परकोशरण मानने मे अशरणता बढती है और निजको शरण मानने मे सशरणता बढती है। तो यह सम्यक्त्व जो इस जीवको शरणभूत है यह सम्यक्त्वगुण शक्ति सब जीवों मे पायी जाती है चाहे भव्य हो चाहे अभव्य हो लेकिन सम्यग्दर्शन की शक्ति की अपेक्षा समस्त ससारीयो मे भेद नही है तो भी किसी मे सम्यग्दर्शन सम्भव हो पाता है, व्यक्त हो पाता है, किसी मे असम्भव रहता है, ये भेद पाये जाते है। देखो लोक मे आपको अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। जैसे कनक पत्थर होता है स्वर्णपाषाण होता है तो जिस खान से ऐसी मिट्टी निकलती है कि जिसमे उपाय से स्वर्ण निकल आता है, भले ही १० मन मिट्टी मे कोई एक आधा तोला स्वर्ण निकले, पर वहाँ उस मिट्टी मे स्वर्ण व्यक्त होने की बात है। तो जैसे कितनी ही कनक भूमि, स्वर्णभूमि कनक पाषाण बहुत ही जल्दी उपाय से स्वर्णरूप मे आ जाता है तो कुछ बहुत दिन बाद स्वर्णरूप हो पाते है, तो कुछ ऐसे भी कनक पाषाण हैं जिन्हे अधपाषाण कहते है, उनमे स्वर्ण की शक्ति होने पर भी, अनेक उपाय किए जाने पर भी उनमे स्वर्णत्व नही व्यक्त होता। यही आप देखलो मूग की दाल बनाइ जाती है, कोई तो छिलका सहित बनाता है और कोई बिना छिलके की बनाता है। छिलका सहित बनने वाली दाल तो साग जैसा काम करती है तो जो छिलका सहित मूग की दाल बनती है उसमे कोई दाना कुरड्डू मूंग होता अथवा साबित मूग को पकाई जावे तो उसमे हजारो लाखो दानो मे से कोई एक दो दाने ऐसे भी होते है कि जिन्हे चाहे कितना ही पकाया जाये

वे पढ़ते नही है। जिसे कुड्डू मूँग बोलते है। तो मूग तो मूग है, वह उसी वृक्ष से ही तो पैदा हुआ, मूग में जो गुण है, रुप है, रस है, गध है, भीतर जो बात है, जो स्वाद है, जो कुछ भी है वह शक्ति तो दोनो मै बराबर है, चाहे कुरड़ू मूग हो चाहे सही मूग हो। जाति एक है, फिर भी कोई दाने नही चुगते है। तो ऐसे ही एक ही जाति का सम्यग्दर्शन गुण हो, अन्य गुण हो, इस जाति की अपेक्षा से भव्य अभव्य मे अन्तर नही है, लेकिन कोई जीव सिद्ध हो पाता। ऐसे भी जीव है। यहा ऐसा न सोचना कि जो भव्य जीव है वह तो कभी मोक्ष जायगा ही। सारे भव्य मोक्ष चले जायेंगे तो ससार अभव्यो की वजह से रहेगा, ऐसा नही है। भव्य जीव भी अनन्तानन्त ऐसे है कि जो कभी भी मीक्ष न जा सकेंगे। और भव्य है वे। तो ऐसे सम्यग्दर्शन की शक्ति समान होने पर भी किन्ही मे व्यक्त होनें की शक्ति है और किन्ही मे नही है।

शरीर के आठ अंगों की मुद्रा का दृष्टान्तः—अब जरा सम्यगदर्शन का एक रुपक देखिये—जैसे एक शरीर है, शरीर मे आठ अग है। २ हाथ, २ पैर, १ पीठ, १ छाती, १ सिर और १ नितम्ब। ये आठ अंग इस शरीर के होते है। तो आठ अगोमय यह शरीर है ना ? अगर अंग न हो तो फिर शरीर किसका नाम ? तो जैसे अष्टांग सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के भी आठ अग है। उन आठ अगों मे वे भावरूप है, वे पौद्गलिक नही है, सम्यक्त्वभाव है। तो सम्यक्त्व के अग भी आठ हैं। वे आठ भाव निश्चयदृष्टि से भी समझ में आने की चीज है और व्यवहार दृष्टि से भी। निश्चय दृष्टि के जो ८ अग है वे तो सबके होते ही हैं। व्यवहार दृष्टि के जो ८ अग हैं वे सराक अवस्था मे व्यक्त हो सकने वाले है, वे आठ अग है। उनका वर्णन जब किया जायगा तब शरीर के अगो की विधि मुद्रा की तरह लगेगा। जैसे जब चलते है तो दोनो पैरोकी क्या मुद्रा बनती है। जैसे मानो चलतेमे जक दाहिना पैर आगे रखते हैं तो कैसा नि शक रखा जाता है, बडी निर्भयता से रखा जाता है। यह नि शक भाव हुआ। पीछेका पैर, बाया पंर कैसी उपेक्षासे पीछेके स्थानसे उठाया जाता है जरा भी उसकी आकांक्षा नही, मानों उस जमीनसे अब काम ही नही कुछ पडेगा। यह नि शक भाव हुआ। दोनों हाथोमे से बाये हाथसे लोग रोज २-३ बार शौच साफ करते है, फिर भी उस हाथसे घृणा की किसीने क्या, उसे काटकर फेकेगा कोई ? नही, दाहिना हाथकी तरह उससे भी स्नेह रहता। यह निर्विचिकितसभाव हुआ। दाहिने हाथकी तर्जनी से निर्णय विवेककी कैसी मुद्रा बनाती है यह 'ऐसा ही है' यह अमूढ दृष्टिका भाव हैं। नितम्ब (पौद) जैसे ढाँके ही रहते है वस्त्रसे यह उपगूहण हुआ। पीठ पर बोझ रखकर चलते है यह स्थितिकरण है। हृदयमे प्रेम वात्सल्य है, यह वात्सल्य है।

और शिरसे प्रभावना होती है याने मस्तक मुख मुद्रा से लोगो पर प्रभाव पडता है। यह प्रभावना का उदाहरण है

सम्यक्त्वके आठ अंगोकी मुद्रामे निःशंकित अंगकी मुद्राका दिग्दर्शन—देखिये शरीरकेअंग मुद्राकी भाति सम्यक्त्वके व्यावहारिक आठ अग सम्यक्त्व के ८ अग है-पहिला अग है नि शकित अग बहुत ध्यानसे सुनने की बात है, और हमारा जीवन कैसे बने, हमारा आचरण कैसे बने, यह सब इससे विदित हो जायगा। पहिला अग है नि शकित अग। अन्तरग मे हम भयरहित रहे, मेरे पर कोई भय नही आ सकता, क्योकि मैं तो उपयोग लक्षण ज्ञानमात्र हूँ। उस ज्ञान मे क्या कोई उपद्रव आयगा ? यह मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान को ही करता हूँ, ज्ञान को ही भोगता हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरी दुनिया है। मेरे को दुनिया मे क्या भय ? इस ज्ञान स्वरुप मे न टिक सकने वाले लोग इस लोक का बडा भय रखते। सरकार बडे कानून बना रही, सम्पत्ति की म्याद भी बना देगा, सरकार छुडा लेगी। बडी कठिन बात आयगी। अरे कठिन कुछ नही है। सरकार क्या करगी ? जैसा मेरा अनुभव चलता, जो मेरी करतूत है, जितनी मेरी दुनिया है जहा आनन्द भरा हुआ है, इस ज्ञानस्वरुप को कोई भेद सकता है क्या ? इस लोक का क्या भय करना ? अरे जिसका भय मानते हो, मानो १०, २० वर्ष जिन्दा रहेगे, आखिर यह सब छूटेगा तो सही, आगे क्या रहेगा इसके साथ ? इसका यह स्वरुप, इसका यह स्वभाव। स्वरुप को देखो। देखो इस सम्यक्त्वलाभ के लिए अपने आप को बहुत-बहुत बलिदान करना पडेगा। घरमे रहने वाले स्त्री पुत्रादिक परिजन, धन, वैभव मकान, महल इन सबको दिल से हटा देना होगा। इनको दिल से श्रद्धा मे न चिपकना होगा। अपनी श्रद्धा मे ऐसी बात रखें कि ये मेरे कुछ नही हैं, मैं तो एक ज्ञानमात्र स्वरुप हूँ। ज्ञान-स्वरूप के सिवाय मेरा और कोई वैभव नही। मुझे इस लोक का क्या भय, परलोक का क्या भय ? परलोक मे भी जीव तो मे यही। रहेगा मेरा यही स्वरुप। यह मेरी दृष्टि मे रहे। परलोक का भय क्या ? वेदना का भय—शरीर मे थोडी हरारत सी हुई बस डर गए, अरे अब न जाने क्या होगा। कहीं यह बहुत बडी बीमारी न बन जाये। अरे इतना डर तो तेज बुखार मे भी नही होता। कदाचित तेज बुखार हो जाय तो वहा तो यह सह लेता है, और जहा यह आशका हुई कि अब न जाने मेरा क्या होगा ? अरे हरारत हो तो, बुखार हो तो, एक निर्णय तो करो कि हो क्या रहा है ? शरीर मे शरीर की गर्मी है गर्मी कहीं जीव मे आ सकती है ? गर्म तो होता है यह शरीर। कहीं कोई नस चमकती है तो वह पुदगल मे हो रहा है, कर्म विपाक है, वह कर्म मे हो रहा है। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। मेरे ज्ञान मे यह सब आ रहा हैं। ज्ञान में आ रहा है इतनी भर बात रहे तो कुछ हानि

नही। केवल जानन देखन हार रहूँ यहा तक कुछ हानि नही मगर ज्ञान मे आया और तत्काल ही यह उसको पकड लेता, अपने उपयोग मे इने ग्रहण कर लेता। पर को अपनाना, दुख इसमे है, और पर को मै रुप से न अपनाये। मै अजर अमर हूँ। अमृत का सरोवर हूँ। इसे किसी प्रकार का कष्ट नही। कष्ट है कषाय को अपनाने मे, शरीर को अपनाने मे। तो क्यो ये कष्ट सहते? अपने ही भीतर के समझ की तो बात है। अपने आप भीतर मे ऐसी दृष्टि करे कि मेरा मैं ही हूँ। क्यो कष्ट पाऊ? कभी कभी देखा होगा कि घर मे जो बडा है वह जब तक रह रहा है तब तक घरवालो का ऐश्वर्य नही बढ सका। कई कुटुम्ब ऐसे मिलेंगे जिस पर लोग बडा गौरव रखते है कि इसको बिना फिर कमाई न रहेगी, फिर पालन पोषण का कोई जरिया न रहेगा और कहो उसके मरने के बाद ऐसा हो जाता कि वे लड़के मालोमाल हो जाते हैं। तो यह अभिमान करना व्यर्थ हुआ कि मै इनका पालन पोषण करने वाला हूँ। अरे तुम इसके पालन पोषण करने वाले नही हो। जितने लोग घर मे है उनका अपना-अपना उदय है, और उनका इतना उदय है कि आपको उनकी नौकरी करनी पड रही है। आप कर्त्तव्य का अभिमान कर रहे तो आपको कष्ट इसी बात का है। जिसने ज्ञानस्वरुप को प्रतीतिमे लिया है उसे शका का भय नही, वेदना का भी भय नही। जो हो रहा है उसे जान रहा है। जो पुरुष अपने ज्ञानस्वरुप मे अपने आत्मा की प्रतीति लिए हुए हैं उसको किसी प्रकार का सशय, शका, शल्य अन्दर मे नही रहता। देखो बताया है कि जब तक ये तीन शल्य हैं—(१) माया (२) मिथ्या (३) निदान, तब तक व्रत नही। और व्रत ही क्या? सम्यक्त्व भी नही। तो वह शल्य क्या है? यह ही कि पर मे आपा मानने मे शल्य हुआ ही करता है। यह ही शल्य काटे की तरह चुभती है। कौन? पर को अपना मान लेना। तो शल्य नही रहती ज्ञानी जीव को। वह किसी प्रकार का भय नही करता। उसकी सर्वत्र रक्षा है। मैं सब जगह सुरक्षित हूँ जबकि मोहीजन मानते कि ये किवाड ठीक नही है, मेरी तो रक्षा नही है, यहा यह ज्ञानी पुरुष सोचता है कि मेरा यह स्वरुप का किला अभेद है। इसमें किसी अन्य का प्रवेश नही। देखिये मैं अमूर्त ज्ञानमात्र निज धाम से ही प्रयोजन रखू, ऐसी दृष्टि बनावे और देखो जो वैभव मे प्यार है, जो बाह्य वस्तु मे राग है, बाह्य वस्तु का ख्याल है इन विषों को उगल देवे। चाहे जब उगल दो हम यह नहीं कहते कि अभी छोड दो, मगर जिस समय आपको धर्मधारण करने की अभिलाषा हो और उसे भीतर मे घटाने की बात हो उस समय तो उस विष को त्याग दीजिए। परिग्रह के राग के विष को भुला तो दीजिए तब ही अपने आपकी बात चित्त मे आयेगी। मै सुरक्षित हूँ, अरक्षित मैं नही हूँ। मेरा मरण भी नही है। मेरे प्राण तो चेतन है। ज्ञान दर्शन है। वस्तु

का प्राण वह कहलाता कि जिसके कारण वस्तु की सत्ता रहती है। मेरी सत्ता मेरी चेतना से है। मेरी सत्ता इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास से नही है। मेरा बल कही बाहर नही हो सकता। न मिट सकता। मैं मरणरहित हूँ। मेरे को कोई भय नही। कही अचानक भी भय नही आ सकता। मैं रक्षारहित नही हूँ। मेरा मै रक्षक हूँ, यह सब प्रतीति रहती है इसलिए वह ज्ञानी भीतर मे निशक रहता है। देखो यह सब बात जिन वाणी मे लिखी है, जिन वाणी से सुना है, जिन वाणी से समझा है। जिनेन्द्र के वचन मिथ्या नही होते यह व्यवहार मे भी निशक है और अन्त भी निशंक है।

सम्यग्दृष्टि का निःकाक्षित गुण—दूसरा अग है निकाक्षित अग। श्रद्धा मे तो उसे किसी भी परवस्तु की इच्छा नही है। कुछ कर्मोदय है, घर मे रहना पडता है, इच्छा विना रहना होता नही, और धर्म धारण करके उसके एवज मे किसी वाह्य वस्तु की इच्छा नहीं करता। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के यह इच्छा न होगी कि मेरे मुकदमा लगा है, मै महावीर जी जाऊ। अथवा मैं रोज पूजा करता हूँ तो उसके फल मे मेरे घर मे सुख शान्ति रहे। इन बाहरी बातो की इच्छा करके वह धर्म नही करता। वह धर्म नही करता। वह धर्म करता है एक अपने आपके स्वरुपको समझनेके लिए मोक्षमार्ग के लिए वह धर्म करता है ? धर्म-धारण करके भोगो की इच्छा ज्ञानी जीवके नही होती। भला बतलाओ-जो भोगोसे विपत्ति समझता हो, विडम्बना समझता हो, बताओ वह भोगोकी क्या इच्छा करेगा ? धर्मधारण करके तो वह उन भोगो को विडम्बना समझता है, विपदा समझता है। है तो कुछ और बन रहा कुछ और, जैसे कहते है ना कि-"आये थे हरि भजनको, ओटन लगे कपास।" अरे इस ससारमे आये तो थे हरि भजनको हरि का अर्थ है जो पापोको हरे, अर्थात् जो अपना स्वरूप प्रकट करे, ऐसा कौन है ? यही अपना आत्मा, तो आये तो थे आत्माकी उपासना करनेके लिए पर करने क्या लगे कि कपास ओटने लगे। यहाँ कपास ओटनेका मतलब यही है कि कपास को बहुत-बहुत ओटने पर उसमे बिल्कुल अन्तमे थोडा एक किलो ही कपास ओटनेमे, २ किलो बिनोला कपास जहा रखना हुआ एक साथ रख दिया जाता है। दिन भर परिश्रम करनेके बाद कोई मुश्किलमे एक दो किलो बिलोना बच पाता है, मतलब, आये तो थे इसलिए कि सदाके लिए शान्त हो जाये ऐसा मे उपाय बनालू, पर करने क्या लगे ? व्यर्थ के काम, भोग विपय। जरा सोचो तो सही कि जो घरके लडका लडकी आदिसे मोह कर रहे हो तो ऐसा करते हुए कितने दिन काम चलेगा ? कितने दिन अपना पूरा पाड लोगे ? एक दिन भी तो नहीं चलता। उससे दुख ही तो होता। वे दूसरे जीव है, उनसे कोई लेन देन नही, कोई मतलब नही, पर उन्हे ऐसा

मान रहे कि ये तो मेरे ही है, इनसे मेरा बडा सम्बन्ध है। अरे रच भी सम्बन्ध नही, रच भी कोई बात नही है, केवल मोहकी नीदमे एक स्वप्न साले रहे हो, ऐसी बात है और यहां मोहमे बेसुध हुआ जाय नो यह कितनी अज्ञानताकी बात है, कितना अपने आपके अकल्याणकी बात है, उसे छोडो उसकी इच्छा न रखो, अभिलाषा करो तो मुक्तिकी करो, स्वरूपदर्शनकी करो। मै अपने आपमे आनन्दमग्न रहूँ, ऐसी अभिलाषा कीजिए। तो सम्यग्दृष्टि जीव नि शाति होते है।

सम्यक्त्व का निर्विचिकित्सित अंग—सम्यग्दृष्टि जीव के एक निर्विचिकित्सा गुण होता है, वह ग्लानि नही करता। भीतर कोई क्षुधा तृष्णा इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग सुख दु.ख आदिक जितनी भी चीजे है उन सब मे अधीर नही होता है। इनमे अलग रहता है, इनमे विषाद नही करता है। अन्दर मे तो यह स्थिति है और बाहर मे कोई ग्लानि की चीज (मलमूत्र वगैरह) देख लें तो उसे देखकर जानना है कि यह ऐसी वस्तु है। उसे देखकर वह नाक भौं नही सिकोडता है, जबकि लोग जरा जरा सी बात देखकर तुरन्त थूक देते है। अरे थूक क्या खराब चीज है ? जब तक मुख मे थूक है उसे गुटकोगे तो स्वास्थ्य सुधरेगा। जैसे कहते हैं ना कि देवताओ के कठ से अमृत झरता है। जरा आराम से बैठे हो उस समय गुटकोगे तो उस समय देखो कितना सन्तोष मिलता है। तो क्या थूक ऐसी चीज है कि उससे घृणा करे ? अच्छा और आगे चलो। मानो कोई मुनिराज है, साधु सत है उनको कोई रोग हो गया, फोडा फुसी आदिक हो गई तो उनकी सेवा करना, उनसे ग्लानि न करना। सम्यग्दृष्टि को तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र मे प्रीति है। तो जो रत्न भयकी मूर्ति है उनकी सेवा करते हुए मे ग्लानि न आना यह है निर्विचिकित्सा अग।

सम्यक्त्व का अमूढदृष्टि अङ्ग व प्रसक्त लोकमूढता का प्रदर्शन—सम्यग्दृष्टि का एक अग अमूढदृष्टि है। किसी भी गुरु के चमत्कार को देखकर उनमे मुग्ध न होना। चमत्कार तो एक बाहरी चीज़ है, वह तो बहुत से लोगो में देखने से मिल सकता है। वह इस जीव को लोभ करने वाली बात नही है। वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र मे अपनी प्रीति बनाये रहता है। गुरु का महत्व, चमत्कार रत्न त्रय की प्रतिष्ठा के बल पर ही करता है इस तरह सम्यग्दर्शन के इन अगो मे उसकी प्रकृति रनी सनी रहती है। ऐसा यह सम्यग्दृष्टि जीव इस ससार समुद्र से तिर कर सदा के लिए दु खो से दूर हो जाता है। अमूढदृष्टि में कैसी कैसी मूढताओं का विच्छेद है इस पर दृष्टिपात कीजिये मोह भरी दृष्टि होने को मूढ़ दृष्टि कहते है। जहां धर्म नही वहां धर्म की रुढ़ि कर लेना सो मूढ दृष्टि है। मूढ दृष्टि मे तीन प्रकार की मूडताये होती है। (१) लोकमूढता (२) देवमूढता (३) पाखण्ड मूढता। लोक–

मूढता-जैसे लोक मे धर्म की रुढि फैली है। नदी स्नान करना, गगा स्नान करना, पर्वत मे गिर जाना, या कही ईट पत्थर का ढेर लगा कर उसे देवता मान लेना या पेड पौधो मे देवता मानना आदिक जो धर्म के नाम पर रुढिया है उनको माने तो उसे लोकमूढता कहते है। यद्यपि कुछ बातो को देखकर उनमे अच्छाई की ओर खोज करने पर ज्ञात होगा कि कोई न कोई मूल मे बात थी ठीक ढंग की लेकिन वे बाते तो नजर से उतर गई और एक मूढता की बात रह गई। जैसे नदी स्नान करना धर्म है। धर्म तो नही है, पर नदी मे किसी ने स्नान किया तो उसके स्नान करने से शरीर मे हल्कापन आता है, मैल दूर होता है, शरीर हल्का होता है, कुछ मन भी हल्का हो जाता है, भावो मे कुछ विशुद्धि का अवसर होता है उस समय यदि जाप, ध्यान वगैरह करे तो मन लग जायगा, इसलिए वह धर्म करने की पहिले की एक बात थी लेकिन उसी को ही लोग धर्म मानने लगे। तो ऐसी किन्ही किन्ही बातो मे कोई ढग से कोई स्थिति की बात थी, लेकिन वह भी न मिट्टी, और-और ऐब भी इसमे आ गए। लोकमूढता मे जैसा लोग करते वैसा खुद भी करते। एक बार एक सन्यासी जी गगास्नान करने गए, उनके पास था एक कमण्डल। तो उसके रखने के लिए उन्होने गंगाकी रेत मे एक गड्ढा खोदा, उसमे कमण्डल धर दिया और उसे बालू से ढक दिया। बाद मे वह गगा स्नान करने चले गए। वहा अनेक लोगो ने सोचा कि गगास्नान करने की यही पद्धति होती होगी, सो उन्होने भी रेत का ऊचा ढेर बनाकर गगा स्नान करना शुरु कर दिया। थोडी ही देर मे वहा सैकडो ढेर बन गए। अब सन्यासी जी गगा स्नान करके लौटे तो उन बहुत से ढेरो के होने की वजह से उनका कमण्डल गुम गया। तो कितनी ही ऐसी बाते होती है। जहा मूल मे प्रयोजन तो कुछ और था, मगर लोगो ने देखा देखी रुढि बढा दी। ऐसे ही आत्मानुशासन मे एक सकेत दिया है कि एक सन्यासी महाराज एक लाडू लिए जा रहे थे। रास्ते मे एक जगह बिष्टा के ऊपर एक ओर वह लाडू गिरगया उस सयासीको लाडूमे इतनी आशक्ति थी कि उसे ऊठा लिया और पौछकर अपने बर्तनमे रखलिया ऊसे एक शका बनी रही कि शायद किसी ने लाडू उठातेहुए मुझे देख लिया होगा, सो अपनी पोल ढाकने के लिए उस सन्यासी ने उस बिष्टा को कुछ फूलो से ढाक दिया। जब लोगो ने सन्यासी जी को उस जगह फूल रखते देखा तो सोचा कि शायद इस जगह कोई देवता होगा। सन्यासी तो चला गया, पर जो भी वहा से निकले वह उस जगह देवता समझ कर फूल चढा दे। अब तो वहा फूलो का बहुत बडा ढेर लग गया। कुछ लोगो के मन मे आया कि यहा जो फूलो का इतना बडा ढेर लग गया हैं। उसमे देखना चाहिए कि वास्तव मे वहा है कैसा देवता, उसके दर्शन करे। जब सारे फूल

उठा लिया तो वहाँ बिष्टा (मैला) निकला। तो कितने ही स्थल ऐसे हो जाते है कि किसी बडे पुरुषने किया तो था किसी और प्रयोजन से, मगर अन्य लोगो ने उस प्रयोजनको भूलकर उसको करना शुरू कर दिया तो वह एक रुढि बन जाती है। जैसे किसी सज्जनके मनमे आया कि इन पत्थरोको उठा कर मै एक जगह रख दू, ये यहासे आने जाने वाले लोगोके पैरोमे लगते है। अब प्रयोजन को ध्यानमे न रखकर लोग उसे देवता समझ कर उसपर पत्थर डालना शुरू कर देते है। वह एक दिन रुढि बन जाती है। काशीकरवटकी तथा सिद्धवरकूटके पासके किसी पहाड की बात सुनते है कि कभी कोई समय ऐसा था कि लोग उस पर्वतसे गिरकर नदीमे खतम हो जानेमे अपना धर्म समझते थे, वह भी एक लोकमूढताकी वात थी। अनेक प्रकार के जत्र मत्र, खोटे गुरुवोके दर्शन, खोटे देवोकी आराधना आदिमे रुचि रखना और इसमे अपना कुछ धर्म समझना यह सब लोकमूढताकी बात है। इसमे रुढ़ि विशेष कारण हुई। अब रुढिका कहना क्या ? रुढि ऐसी बन जाती है कि बात हो कुछ और बन जाती है कुछ। जैसे एक सेठके यहां उसको लडकीका विवाह था, सो भावरके समयमे घरमे पली हुई बिल्ली बार-बार आती जाती थी। सेठने सोचा कि ऐसे शुभ काममे यह तो असगुन जैसी बात हो रही है सो उसने उस बिल्लीको एक टिपारेके अन्दर बन्द करवा दिया। अब वह सेठ तो गुजर गया। जब उसके किसी लडकेने अपनी लडकीकी शादी की तो वहा भाँवर पडते समय किसीने कहा ठहरो अभी एक दस्तूर बांकी है। उस दस्तूरके किया बिना भावर नही पड सकती।" क्या दस्तूर बाकी है ? अभी एक बिल्ली पिटारेके अन्दर बन्द करके रखना है। अब बिल्ली यो ही सहज तो नही पकडमें आ जाती। उसे पकडनेके लिए कई लोग निकले, ४, ५, घटेमे पकडकर लाये। उसे किवाडमे बन्द किया तब भावर पडी। तो ये रूढिया है। ऐसी ऐसी कितनी ही लोकमूढताये होती है।

सम्यक्त्वके अङ्गभूत अमूढदृष्टिअङ्गमें देवमूढ़ता व पाषण्डमूढताका प्रदर्शन—देवमूढता क्या ? कि जो देव नही है उसे देव मानना। अब देव कौन है कौन नही ? जिसने बाहर से स्त्री पुत्रादिक रखा है वह कुदेव ही तो है। कुदेव भी कुछ नहीं है। या तो कोई देव है या फिर अदेव है। याने कोई भी पुरुष या तो देव है या देव नही है। कुदेवकी क्या बात है ? अगर देव नही है और देवकी प्रसिद्धि करे तो उसका नाम कुदेव होता है। अपने आप कौन कुदेव है ? प्रारम्भमे कौन कुदेव है ? या तो कहो कि भगवान है या कहो कि 'भगवान नही है। खोटे देवका क्या मतलब ? देव तो नही है मगर खुद या कोई उसे देव के रूप में प्रसिद्ध करे, देव नामसे लोग बोलने लगे, तो वह है कुदेव। तीसरा है पाखण्डमूढता। याने जो कुगुरु है उनकी सेवा, उपासना, आराधना करना, उसमे धर्मपालन मानना यह पाखण्ड-

मूढ़ता है। कुगुरु कौन है ? जिनका चिन्ह है कि वे ऊपरसे कुछ लिए हुए होते है, जैसे डडा रख लिया, तिलक लगा लिया, जटा रख लिया, पट्टी लगा लिया, त्रिसूल ले लिया, दूसरी कुछ भी चीज जोडे। तो पहिले इसी बाहरी चिन्हसे ही कुगुरु समझ लें। मुनिलिङ्ग तो यह है कि छोडने छोडनेसे ही जो अपने आप रह जाय। वैसे वे पिछी, कमण्डलु, शास्त्र थोडेसे जो मुनिके उपकरण माने गए उनकी सयमसाधनाके लिए, स्वाध्यायार्थ शुद्धिके लिए जरूरत पडती है इसलिए उन्हे अपने साथ रख लेते है, पर उनके न होनेसे कही उनका मुनिपना नही मिटता। जैसे जब वे विहार करते हैं तो उस समय उनको पिछीकी जरूरत पडती है, नही तो पिछीकी कोई जरूरत नही, अथवा जब शौच करते है तब उन्हे कमण्डल की जरूरत पडती है अन्यथा क्या जरूरत ? अथवा यो ही अकेले बैठे हुए समाधिमे नही रह पाते इसलिए शास्त्रोका आधार लेकर अपने समाधिभाव बनाते है। तभी वहा शास्त्र की भी जरूरत पडी, वरना शास्त्रकी भी क्या जरूरत ? तो ये पिछी कमण्डल और शास्त्र उपकरणके रूपमे रख सकते है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी रखना ठीक नही। अब इन चीजोके अलावा अन्य जितनी भी चीजे रखी जायें, उन्हे उपकरण माना जाय, तो यह भूल है। भूल करे और उस भूलको ही एक धर्मका रूप दे तो ये सब बातें कुगुरुके रूप में आती है। तो ये कुगुरुके बाह्य चिन्ह है और भीतरमे सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चरित्रकी जिन्हे प्रीति नही है और बाहरी विषय कषायोकी प्रीति है, यदि यह बात हो तो ऐसे गुरुजनका आराधन करना कुगुरुकी मान्यता है। किसीका चमत्कार देखकर उसके प्रति भक्ति करना कुगुरुकी भक्ति कहलायेगी। चमत्कार तो कोई भी कर सकता है। क्योकि चिच्चमत्कारस्वरूप जीवके छोटी-छोटीबुद्धिया कर्ला जगना साधारणसी बात है। बहुतसे मदारी लोग भी बडे-बडे चमत्कार दिखाते है। जैसे कि हमने एक बार बरुवासागरमे देखा कि एक मदारी खेल दिखा रहा था। उसने किसीसे कहा भाई क्या खाओगे ? तो उसने कहा—करमकल्ला। अब करम कल्ला क्या होता हम तो जानते नही, पर उसने गोभीके फूल जैसे आकारकी चीज अपनी पेटीसे निकाल कर दे दी और कहा लो करमकल्ला निकाल दिया। किसी ने कहा—भाई हम तो खावेंगे तो उसे खिला भी दिया। तो ऐसे बडे बडे चमत्कारके खेल तो जादूगर लोग भी दिखाया करते हैं। तो ऐसे ही किसी प्रकारके चमत्कार देखकर कोई माने कि यह तो हमारे गुरु है इनकी पूजा करनेसे हमे धर्म होगा, इस प्रकार समझ कर उन्हें पूजना सो मूढदृष्टि है। सम्यग्दृष्टि जीवको इस तरहका मोह कही भी नही उत्पन्न होता, मूढदृष्टिपना नही बनता।

सम्यक्त्व का अङ्गभूत उपगूहन गुणः—सम्यक्त्वका एक गुण है उपगूहन, इसका दूसरा नाम है उपबृहण। देखिये जिसने अपने आपके सहज स्वरूपका परिचय पाया और

दृढता पूर्वक जिसके यह अनुभवमे आया कि लोकमे मेरे लिए सार तो केवल एक अपने सहज ज्ञानस्वरूपका बोध, उसका श्रद्धान और उसमे रमण करना है, शेष सब बाते असार है। अन्य जितने भी कार्य किए जाते है वे सब वेकार है। करने पडते है राग अवस्थामे, लेकिन सब बेकार चीजे है। ऐसा जिसे अनुभव हुआ है ऐसे पुरुषको यह ही उत्सुकता रहती है कि मैं गुणोमे बढू। आत्माका जो रत्नत्रय गुण है, चरित्र गुण है इसकी मेरे मे वृद्धि हो, दूसरो मे भी वृद्धि हो। एक तो यह भावना रहती, दूसरी भावना यह रहती कि किसी धर्मात्मा के द्वारा किसी परिस्थितिवश कोई दोप बन जाय तो उस दोषको समाजमे प्रकट न करना यह ज्ञानीका गुण है। कर्मोका उदय है, विपाक है, कोई दोष हो गया धर्मात्मासे तो उसे समाजमे प्रकट करनेसे बुराई यह आती है कि लोगोकी धर्मसे श्रद्धा हट जायगी। जो सुनेगा वह यही कहेगा कि ऐसे धर्मात्माजन भी ऐसा करते है, यही धर्म होगा याने धर्म कुछ नहीं है। धर्मके प्रति आदर न रहेगा, यह बुराई होगी, धर्मकी अप्रभावना होगी। कितने ही लोग तो किसी दोषको ढाकनेका ऐसा भी प्रयत्न करते है कि उसको अपने ऊपर ले लेते है। एक अभी की घटना है। बुन्देलखण्ड मे एक शहर है ललितपुर। तो वहां कोई एक ब्रह्मचारी वेशमे मन्दिरमे ठहरा हुआ था। वह एक बार वहांसे मन्दिरकी धोती लेकर भगा। धोती चुराकर चला तो मालीको खबर पडी। बुन्देलखण्डमे माली मन्दिरका बडा जिम्मेदार पुरुष होता है। वह मन्दिरमे एक मालिककी तरह होता है। तो वह माली उस ब्रह्मचारीके पीछे दौडा। कुछ दूर जाकर मालीने उस ब्रह्मचारीको पकड लिया। उस ब्रह्मचारीको बहुत बहुत भला बुरा कहा। बाजारमे उसी जगह वहां के जैन प्रमुखकी एक दुकान थी तो वह दूकानसे बाहर आया और मालीके दो एक तमाचे मारकर कहा-अरे तू क्यो इसे भला बुरा कहता ? इन धोतियोको तो मैने मगाया था। लो चला गया वह ब्रह्मचारी और माली भी मन्दिर आ गया। उधर माली सोच रहा था कि देखो मैंने चोर को पकडा, मन्दिरके सामानकी रक्षा की फिर भी मै ही पीटा गया। उधर वह जैन प्रमुख क्या विचार करता है कि देखो यदि मैं इस जगह मालीको न मारता तो जनतामें कितनी धर्मकी अप्रभावना होती। लोगोके मनमे आता कि जैनियोंके ब्रह्मचारी इसी तरहके हुआ करते है। अब वह जैन प्रमुख मन्दिरमे मालीके पास पहुँचा और उससे हाथ जोड़ कर कहने लगा भाई आज तुमने मन्दिरके सामानकी रक्षा की, बडा अच्छा किया। हमने आपको परिस्थितिवश थप्पड़ मारा था, हमारी उस गल्तीको माफ करो। वहा तुम्हारी गल्ती कुछ न थी। हमने वहां यह सोचकर तुम्हे मारा था कि यदि मै ब्रह्मचारीको चोर बताता हूँ तो वहाँ धर्मकी अप्रभावना होगी। देखिये यह तो अभी अभी की घटना कही। अब पुराणो

की एक घटना सुनो—एक जिनेन्द्रभक्त सेठ थे। उनके मन्दिरमे एक बार एक चोर क्षुल्लक का भेष बनाकर रहने लगा। उसके मनमे यह था कि मौका मिलने पर यहाँसे सोना चादी के छत्र चमर वगैरह चुरा ले जावेगे। सेठका एक बार कही जाना था तो सेठने क्षुल्लकजी से कहा-महाराज हम ४-५ दिनके लिए यहासे बाहर जायेंगे। आप मन्दिरकी रक्षा करना (सेठको क्षुल्लकजी से बढकर विश्वास बताओ और किस पर हो सकता था ?) सो वह सेठ तो बाहर गया हुआ था, वहा वह क्षुल्लक मौका पाकर मन्दिरके छत्र चमर व रत्न उठा कर भग गया। मन्दिरका कोतवाल तथा कुछ सिपाही उसके पीछे लगे थे उसको पकडने के लिए। उसी रास्तेसे वह सेठ भी अपने घर आ रहा था, जो बाहर गया हुआ था। वहा उसने जब अपने धर्मकी अप्रभावना होते देखी तो कहा-भाई इन्हे मत पकडो, यह सामान तो हमने ही इनसे मगवाया था। तो यह क्या है ? जिस किसी भी प्रकार हो, धर्मकी अप्रभावना न हो ताकि लोगोकी धर्ममे श्रद्धा बनी रहे। कदाचित किसीमे आप दोष देखे तो उसे अलगमे आप बार बार समझाये। बहुत—बहुत समझाने पर भी यदि वह न न माने तो उसे समाजमे जाहिर करदो ताकि सब लोग जान जायें कि यह तो इस तरह का है, गुरु नही है। वहा फिर अप्रभावनाकी बातन रहेगी। देखिये-कुछ न कुछ दोष तो सभी मे होते है, दोपोके निवारण करनेके लिए ही तो वह साधु हुआ है, उसके दोष देख कर समाजमे उसके दोप बखाने, यह बात सम्यग्दृष्टि पुरुषसे न बन सकेगी। यह है उपगूहन अग। अपने गुणोको बढाना, यह है उपवृहण।

सम्यक्त्वका अङ्गभूत स्थितिकरण गुण—सम्यग्दृष्टिजन, जिन्होंने अपने आपके स्वभाव का दर्शन किया, परिचय किया, निज सहज स्वभावकी दृष्टिके आनन्दका अनुभव किया उनको अन्दरमे ऐसी उत्सुकता रहती है कि मैं इस सहज भावको, इस आनन्दको बढाऊँ, प्राप्त करू, इसीमे स्थित रहूँ, इससे हट्ट नही, और कदाचित कर्मोदयवश कोई खोटे भाव बीचमे आये और धर्मसे च्युत होता हो वह तो फिर जल्दी इस दोषसे हटकर अपने आपको धर्ममें स्थिर करनेका पौरुष करता है, और इसी प्रकार अगर दूसरे लोग भी धर्म से च्युत होने लगें तो उनकी भी तन, मन, धन, वचन सब प्रकारसे सेवा करके धर्ममे स्थिर करता है, यह स्थितिकरण अग है। आज इसकी बहुत कमी कि साधर्मीजन साधर्मी को साधर्मीके रूपमे नही व्यवहार करते हैं। बहुतसा खर्च कर डालते है अनाप सनाप खर्च करते है, पान बिडीमे ही देखलो, लोग कितना खर्च कर तो डालते हैं। एक जगह मैंने खुद देखा है कि मन्दिरका माली जो कोई ४० रु० माहवार ही पाता था उसके मुखमे हरदम पान भरा रहा करता था। एक बार हमने उससे पूछ ही लिया

कि भाई तुम रोज कितने पान खा डालते होंगे ? तो शायद उसने बताया था कि हम तो रोज करीब ३० पान खा डालते है। फिर हमने पूछाकि एक पान कितने पैंसेमें आता है ? तो बताया ५ पैसेमें। हमने कहा कि फिरतो तुम्हारे १।।) रोज के पान हो गए। भला बताओ यह फिजूल खर्च ही तो है अरे अगर वह पान खरीद ले और स्वय ही कत्था सुपाड़ी डालकर खा लिया करे तो कोई ४-६ आनेमे ही उसका काम हो जाय मगर उसे भी करे कौन ? तो कितना फिजूल खर्च किए जा रहे हैं। नजाने कितने प्रकारके शौक लोगोने लगा रक्खा है। आपके गुजरातमे तो शायद उतना फाल्तू खर्च नही किया जाता जितना कि यू पी और पंजाब वगैरह मे। इन फाल्तू खर्चोंकी बात कहना क्या ? आप सभी जानते है। इन व्यर्थके खर्चोंको दूर करो। अगर कोई गरीब साधर्मी बन्धु हो, साधुजन हो ती उन्है ऐसा गुप्त रूपसे मदद करदो कि जिससे वे विपदामे न पडे। देखिये—आजकल मजदूरभी अधिक दु:खी नही बडे-बडे उद्योगपति भी अधिक दु खी नही, पर मध्यम दर्जेके लोग अधिक दु.खी है। आखिर वे करे क्या ? मजदूरी वे कर नही सकते। वे मजदूरी करनेमे अपनी तौहीनी समझते है। लोग समझते हैं कि मजदूरी करनेमे हमारी शानघट जायगी, पर बताओ तो सही कि उसमे शान घटनेकी कौनसी बात है ? महाराष्ट्र मे और इधर इटारसी वगैरहमें अनेक जगह मैने देखा है कि बहुत से जैन भाई मजदूरीभी करते हैं। अपनी पीठपर बोझा ढोनेका भी काम करते है, कारीगरी भी करते है, कास्तकारी भी करते है। ऐसा करनेमें कौनसी बेशानकी बात हो गई, बल्कि यह तो एक व्यापकताका परिचय कराने वाली बात होगी कि सब तरहके लोग जैनधर्मका पालन करते हैं। तो यह सोचना गलत है कि इसमें हमारी शान घटती है, अरे यह सोचेकि पालन पोषण करनेके लिए हमे कुछभी उचित काम करना पडे तो उसमे हमे कोई लज्जाकी बात नही है। फिर धर्मसे, स्थिर रहना कितने बडे लाभकी बात है। अब सकोच सकोचमे आखिर बुरी दशा आ जाती है। कोई बड़ा आदमी अगर गरीब हो रहा है तो वह पहिनेके सोना चादी रत्न जवाहरात आदिके गहने बेच सकता था, मगर वह यह लज्जा करता है कि मे खुद बेचूगा तो लोग मुझे क्या कहेगे ? इस लज्जा-के कारण वह उन्हे दूसरे लोगोके द्वारा बिकवाता है या धरोहर धराता है। आखिर उसका फल यही देखने को मिलता है कि उसका सारा जेवर गायब हो जाता है। उसके हाथ कुछ नही लगता है। यहां तक कि उसकी ऐसी नौबत आ जाती है कि बस मिट्टीके बर्तनोंमें ही उसे गुजारा करना पड़ता है। यह देखिये जरा जरासी, बातोमे सरम करनेका फल तो हमें विवेकपूर्वक रहना चाहिए। बाहरी बातोमे किसीभी प्रकारका उचित कार्य करेंगे तो उसमे कोई सरमकी बात नही। कुछभी करले, पर धर्मकी क्षति न होने पावे। धर्ममे हमारा मन

न लगे तो क्षति कहलाती है। तो जिस किसीभी प्रकार हो, जो दुःखी है, गरीब है उनको तन, मन, धन, वचनसे सब प्रकारसे धीरता देकर उसे धर्ममे स्थिर करना यह है स्थितिकरण।

सम्यक्त्वका अङ्गभूत वात्सल्य गुण—जिसने अपने आपके स्वरूपमे वात्सल्य बनाया है, प्रीति जगाया है, अपने गुणोमे अनुराग जगाया है उसका बाहर भी अनुराग पुपता है। अपने गुणोमे वृद्धिकरना, अपने गुणोमे अनुराग करना, आनन्द मानना, जब निर्विकल्प समाधि जैसी स्थिति होती हो, अपना ज्ञान अपने ज्ञानस्वरूपमे लग रहा हो और ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप समा रहा हो उस समय एक निर्विकल्प जैसी दशा होती हो, सामान्यप्रतिभास बर्त रहा हो तो उसमे उसको कितनी उमग है, कितना आनन्द वह मानता है। जैसे कि लोग जिस कार्यको बहुत महत्त्व वाला समझते हैं तो वे उमंगसे लगते है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपके स्वरूपके रमणमे उमग बनाते है। उसका कारण क्या? एक वात्सल्य, निज वात्सल्य तो ऐसा जो निज वात्सल्यवान पुरुष है वह दूसरे धर्मात्मा जीवोमें भी निष्कपट वात्सल्य करता है। उसकी उपमा दी है गाय बछड़ेकी तरह। जैसे गायको अपने बछड़ेसे कोई प्रकारकी उम्मीद नही होती कि यह मुझे घास खिलायगा या यह मेरे किसी काम आयगा, पर उसे अपने बछडेसे बडी प्रीति रहती है। और, ऐसी प्रीति रहती कि अगर बछड़ा नदीमे गिर जाय तो वह भी नदीमे गिरकर अपने प्राण गवा दे। इतनी अधिक प्रीति होती है गायको अपने बछडे पर। लेकिन उस गायको बछड़ेसे कोई स्वार्थ नही होता, वह एक निष्कपट प्रीति है, इसीतरह एक एक धर्मात्मा पुरुषको दूसरे धर्मात्मा पुरुषके प्रति निष्कपट प्रीति होती है, यह कहलाता है वात्सल्य अग

सम्यक्त्वका अङ्गभूत प्रभावना अङ्ग—सम्यक्त्वका अन्तिम अग है प्रभावना अग। प्रभावना किसे कहते है? देखो अज्ञान अंधकार दूर करनेका कोई प्रोग्राम न हो, ज्ञानकी प्रसिद्धि करनेका कोई प्रोग्राम न हो वह तो प्रभावनाका काम नही है। जैसे समारोह करना। बहुत से लोगो को बुलाते है, हजारो लाखो रुपये की कीमत का सामान निकलता है। छत्र, चमर, रथ, आदि निकलते है। गाजे बाजे से बडा हो हल्ला होता है। दिन भर इस तरह से व्यतीत कर दिया, फिर वहा से आकर जहा का तहा सामान पहुँचा दिया। लो समारोह पूरा हो गया। उसमे न तो कोई धर्मशास्त्र सभा का प्रोग्राम रखा, न कोई ज्ञानचर्चा का प्रोग्राम रखा तो भला बतलाओ उससे सीख किसने पायी? अरे न तो उस समाजने सीख पायी और न अन्य समाजने, बल्कि अन्य लोगोकोईर्ष्या हो गई। यह एक बात बतला रहे है कि जो ढगकी चीज है उसके विरुद्ध चलने से

कोई न कोई कष्टही आयगा । और, कष्ट आया है, ऐसे अनेक उदाहरण भी है । जिन लोगों ने देखा कि यह बडे धनिक है, इस तरह कमाते है, ऐसा कमा डालते है और यह दिखाते है, यो अनेक प्रकार के भाव उठते है । तो वहा गलती क्या हुई ? काम तो करे, काम करनेको मना नही, जैसे बने यथौचित समारोह भी करे व जप, तप, व्रत, संयम, आदिक भी करें मगर मूल बात को न छोडे । मूल बात क्या है कि अज्ञान दूर होना । अपनो अज्ञान दूर करें दूसरो का अज्ञान दूर करे और ज्ञान की प्रभावनाके साथ-साथ प्रभावना हो तो वह प्रभावना है, उसमें आपत्ति भी नही आती । यदि व्याख्याताओ के व्याखान मे किसी भी अजैन बन्धु की समझ मे आ जाय कि तत्वयह है, स्वरुप यह है, यह तो मेरे आतमा की बात कहीजा रही है । धर्म तो आतमा का होता है, व्यक्ति का नही, समाजका नही । आत्माको दुख से हटाने के लिए, सुखमे पहुचाने के लिए अपने आपका धर्म है । तो देखो उनसे तो आपसे और प्रेम बढेगा, उनकी तो आपकी ओर रुचि बढ़ेगी, आपसे वात्सल्प बढेगा । समन्तभद्राचार्य ने स्पष्ट कहा है अज्ञानतिमिख्याप्तिमयाकृत्य यथायथम् जिनशासनमाहात्म्यप्रकाश. स्यात्प्रभावना अज्ञान रुपी अधकारको दूर करके फिर यथायोग्क जैनशासनके माहात्म्यको प्रकट करना सो प्रभावना है ।

सम्यक्त्वके अष्ट अङ्गोंका पारमार्थिक व व्यावहारिक प्रयोगका उपसंहार—उक्त प्रकार ८ अगो सहित सम्यग्दर्शन है । तो अपने आपमे विचार करें, पौरुप करे, मेरे को ये ८ अग प्राप्त हो, इन अगोमे व्यवहार क्या ? सो देखिये जिनेन्द्र भगवान की वाणीमे शंका न करना, धर्म पालन करके किसीभी संसारी काम की इच्छा न करना । धर्मात्माजनोको देखकर उनकी सेवा करके ग्लानि न करना । कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु इनके चमत्कार को देख कर उसमे रीझ न जाना, धर्मात्मा जनो से कोई दोष बन जाय तो उस दोषको प्रकट न करना, धर्मात्माजन अगर किसी कारणसे धर्मसे कुछ गिरने वाले हो, कठिनाई से गरीबीसे, किसी कारण से तो उनको किसी प्रकार बने धर्ममे स्थिर करना और ज्ञानकी प्रभावना करना ये ८ बाते व्यवहारत है । और निश्चयत अपने स्वरुपमे शंका न रखना, ज्ञानमात्र ही मैं हूँ, यह निर्विघ्न है, यह सहज आनन्दमय है, यह ही मैं हूँ । अन्य कुछ मैं नही हूँ । कभी अन्य बातो की इच्छा न लाना, श्रद्धा में यह न रखना कि ऐसी चीज प्राप्त हो तो मेरे को हित है । अपने को कोई बाधा आये तो उसमे ग्लानि न करना । उसे समता से सहना, विषाद न करना और अपने आपके स्वरुप में सजग रहना, उसमे मूढ़तानलाना । और अपने गुण प्रकट करना, दोष दूर करना, और खुद धर्म से च्युत होता हो तो पुन. उसमें स्थिर करना अपने स्वभाव मे रुचि रखना और अपने ज्ञान को विकास करना, यह ८ अगो सहित सम्यग-

दर्शन है ।

शरीरके आठ अङ्गों द्वारा सम्यक्त्वके अष्टाङ्गोका समर्थन—देखो इस शरीर के भी ८ अग है-२ पैर, २ हाथ, छाती, पीठ, नितम्भ और मस्तक । इन अगो मे भी ऐसा ही काम लिया जा रहा है । जैसे कि सम्यग्दर्शन के अगो का काम है । देखो जब कोई आदमी चलता है तो वह अपना दाहिना पैर निशक होकर रखता है और फिर मानो उपेक्षा करके पिछला पैर उठाता है । तो दाहिना पैर निशकित जैसा काम करता है और पिछला (बाया) पैर नि काक्षित जैसा काम करता है । जैसे सम्यग्दृष्टि जीव को भोग साधनो मे आकाक्षा नही रहती ऐसे ही इस पुरुष को वह पिछला पैर उठाने मे आकाक्षा कुछ नही रहती । वह बाये पैरकी छुई हुई जमीन को देखता तक नही है । अच्छा अब देखो बाये हाथ की बात । लोग शौच करके इसी बाये हाथसे शुद्धि करते है फिर भी इस बाये हाथ से कोई ग्लानि तो नही करता । बल्कि बाये हाथको तो और भी अधिक मुद्रिकाओंसे सजाया जाता है । तो इस तरह से सम्यग्दृष्टिको निर्विचिकित्सा होती है । वह धर्मात्माजनोंसे ग्लानि नही करता । अब दाहिने हाथकी बात देखो-जैसे अमूढ दृष्टिमे जीवको मूढताकी बात नही आती और बात सत्य कहता है कि यह है देव । ऐसे ही दाहिना हाथ भी आगे बढकर यही कहता कि बात तो यह सत्य है, बाकी झूठ है । तो देखिये इस दाहिने हाथने अमूढ दृष्टिका पार्ट अदा किया । अब इसके बाद आता है उपगूहन अग । इस उपगूहन अगका पार्ट अदा करता है यह नितम्ब । देखो नितम्बको कोई उधाडकर तो नही रखता, ढके रहता है उघाडने वाला वह ही होगा जो अलौकिक पुरुष हो । जैसे लोग नितम्ब ढकते है ऐसे ही सम्यग्दृष्टि पुरुष धर्मात्माके दोषोको ढकते है । ये शरीरके अग भी सम्यक्त्व का पार्ट अदाकर रहे है । इसके बाद है स्थितिकरण यह पीठ स्थितिकरण का पार्ट अदाकर रही है । चाहे मन दो मन का वजन इस पीठ पर रख दो फिर भी उस बोझ को स्थिर करदे । तो देखिये यह पीठ स्थितिकरणका पार्ट अदा कर रही है । इसके बाद है वात्सल्य अग देखिये आपकी यह छाती वात्सल्य अगका पार्ट अदा कर रही है । जब आप किसी से वात्सल्य करते है तो उसे छाती से लगा लेते है । इसके बाद है प्रभावना अग । तो यह मस्तक प्रभावना अगका पार्ट अदा कर रहा है । मस्तक से (दिमाग से) सोचकर ज्ञान बनाया जाता, फिर उससे ज्ञानकी प्रभावनाका काम किया जाता । तो देखिये यह मस्तक प्रभावना अगका पार्ट अदा कर रहा है । तो ये शरीर के अग देखो इनमे भी सम्यक्त्व के ८ अगो की जैसी बात बसी हुई है । ऐसा यह साष्टाग सम्यग्दर्शन है कैसा है कि किसीके निसर्ग से होता और किसीके अधिगमसे होता । इस बात का वर्णन इस तीसरे सूत्रमे पूर्ण किया है । मोक्षक उपाय बताने वाले

इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थ मे द्वितीय सूत्र मे जो कहा गया था कि तत्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसीके सम्बन्धमे तबसे चर्चा चली आ रही है। अब यहा यह जिज्ञासा हो रही कि वह तत्त्व क्या है जिस तत्त्वसे निर्णय किये गए पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस तत्त्वकी बात अब इस चतुर्थ सूत्रमे कही जा रही है। जीवाजीवाश्रवबधसवर निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्

मोक्षशास्त्र प्रवचनः द्वितीय भाग

आचार्य संतोकी वाणीमें निश्चयव्यवहार समन्वयकी झलक—जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व है पहिले इस बातपर ही दृष्टि दीजिये कि आचार्योंकी नीति निश्चय व्यवहारात्मक रहो। प्रतिपादन रीति देखिये प्रथम सूत्र कहा गया सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग तो इसही सूत्रमे मोक्षमार्ग निश्चय वचन है और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र णि व्यवहारवचन है। ये है तीन और है बहुवचन। जो तीन है, बहुवचन है वह तो व्यवहार हुआ। और, जो एकत्वको लेकर एक वचनमे प्रयोग है-मोक्षमार्ग वह निश्चय का प्रतीक हुआ। फिर द्वितीय सूत्र कहा गया तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन, यहा तत्त्वार्थश्रद्धान है व्यवहारवचन, सम्यग्दर्शन है निश्चयवचन। प्रयोजनभूत अर्थोका श्रद्धान करना, एक तो यह विवरण किया, कैसा श्रद्धान जो कि ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखता है उस माध्यमसे वर्णन किया वह व्यवहार वचन हुआ। और, सम्यग्दर्शन जो लक्ष्यभूत है वह निश्चय प्रतीक है। तृतीय सूत्रमे कहा गया, तन्निसर्गा दधिगमाद्वा तत् निसगात् अधिगमाद्वा इसमे तत् शब्द है निश्चय प्रतीक, निसर्गाद् अधिगमद्वा यह है व्यवहार प्रतीक। तत् एक सकेत है, एक वचन है, लक्ष्यको दिखाने वाला है, और निसर्गसे अधिगमसे उत्पन्न होता है इस प्रकारका विश्लेषण, हेतुका वर्णन यह सब व्यवहारनय है, तो अब इस चतुर्थ सूत्रमे भी देखिये जीवाजीवाश्रवबधसवरनिर्जरामोक्षा यह है व्यवहार वचन और तत्त्व यह है निश्चयवचन। ये ७ है, सख्या है अनेक है, सो बहुवचन है। यह व्यवहारवचन हुआ तत्त्व एक वचन है, लक्ष्यको दिखानेमे समर्थ है, अथवा एकत्वका अभिप्राय लिए हुए है अत हुआ निश्चयवचन। अब सूत्रार्थ क्या हुआ जीव-अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष ये सब तत्त्व है एक वचनसे तत्त्वका जुडान बनेगा

तत्त्वका तथ्य—बात यहां यह है कि तत्त्व तो जो है सो है। वह क्या है? एक है, इस रूपमे भी नही कहा जायगा" किन्तु अनुभवमे नजरमे जो आया सो तत्त्व। इसके सम्बन्धमे समयसारके एक कलसमे बताया है कि इस शुद्ध तत्का साक्षात् दर्शन कराने वाला शुद्धनय है अर्थात् दर्शन तो होता है अनुभवमे, जहा शुद्धनय भी नही रहता, लेकिन उस

अनुभवसे पहिले शुद्धनयका उपयोग था, इसलिए कहा जाता कि शुद्धनयसे शुद्ध तत्वका निश्चय होता अनुभव निश्चयनयसे न होगा। अनुभव तो अशुद्धनय, शुद्धनय, निश्चयनय, व्यवहारनय सब नयोका परिहार करके एक निर्विकल्प स्थितिमे होगा, लेकिन उसके नजदीक क्या था ? वह शुद्धनय था विकल्प। तो उस शुद्धनयकी वात कही जा रही है। आत्मस्वभाव परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेक, विलीनसकल्पविकल्पजाल प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युठेति। अर्थात् शुद्धनय आत्मस्वभावसे प्रकाशित करता हुआ उदित होता है। कैसा है वह आत्म—स्वभाव ? परभाव भिन्न है, परपदार्थोसे निराला है, परिपूर्ण है, सनातन है, एक है इतने भी विकल्पसे परे है। देखिये हम आप सबकी शान्तिके लिए, सदाके लिए सकटोंसे छूटनेके लिए कोई यदि तत्त्व है, विवेक है निधि है तो यह सम्यग्ज्ञान है। वैभवबघन तो कलक है, कीचड है, मलिनताका हेतुभूत है, जिसका आश्रय करके क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषाये जागृत होती है। भला, बताओ इस आत्माका इस ज्ञानस्वभावी ? जीवतत्त्वका क्या लेन-देन है इन बाहरी पदार्थसे। मोटे रूपसे न साथ लाये न साथ ले जायगे। और मोटे रूपसे जब तक यह है तबतक इसके कारण शान्ति नही प्राप्त हो रही। अनेक परेशानिया है। राज्यकी, बन्धुओकी, कुटुम्बियोकी, समाजकी, और भी अनेक परेशानिया हो रही है, जिनका आश्रय करके यह उपयोग अपने स्रोतसे चिगकर विकल्पमे, विचारमे, बाह्य अर्थमे चल रहा है। एक बार तो उसकी उपेक्षा कर। कोई भी परपदार्थ मुझे न चाहिए। यहा तो परसे विमुख हो लो। यहा से उठनेके बाद घर जावोगे, दूकान जावोगे, परिस्थिति होगी। काम पडेगा। बना लेना, वे विकल्प पर यहाँ एक धर्मका अमृत पीनेके उद्देश्यसे आप लोग बैठे है। सदाके लिए नि सकट होनेके उद्देश्यसे आप लोग बैठे ही हैं, नही तो यहा आने और बैठनेकी क्या आवश्यकता थी ? यहा क्या कोई धन बट रहा क्या लेसेस मिल रहा, क्या कोई पासपोर्ट मिल रहा, एक विशुद्ध अभिप्रायसे आप लोग बैठे है ना कि मेरेको वह तत्त्व मिले जिसका ज्ञान करनेसे, जिस तत्त्वको प्राप्त कर लेनेसे मेरे सारे सकट सदाके लिए छूट जाये

स्वरुपतः स्वयंकी संकटहीनता व स्वयंकी गलतीसे संकटी बननेका चित्रण—देखिये—हम आप सब सकटहीन है, सकट कुछ नही है। किसी पर चीजसे संकट आ ही नही सकता। धन से संकट आयगा क्या ? धनका तो मेरेमे प्रवेश ही नही फिर सकट कहा से आयगा ? क्या कुटुम्बसे सकट आयगा, क्या भाई बंधु से सकट आयगा ? इस ज्ञानस्वरुप चैतन्यमात्र इस आत्मतत्वाको किसी भी पुद्गलसे सकट आयगा क्या ? उसका सम्बन्ध हीन हो पाता। तो क्या किसी जीवसे संकट आयगा ? जीव जीव का तो सम्बन्ध सदा असम्भव है। देखो-जीव

का तो सम्बध सदा असम्भव है देखो-जीव और पुद्गल का तो सम्बंध हो जाता है। सम्पर्क हो गया, बन्धन हो गया, मगर एक जीवका दूसरे जीवके साथ तो कभी बन्धन न हुआ न हो सकेगा। शरीर से बन्धन हो गया, कर्म से बन्धन हो गया, पुद्गलका तो बन्धन हो गया, निमित्त नैमित्तिकभाव बन गया, मगर इस जीवका दूसरे जीवके साथ कभी भी न तो निमित्त नैमित्तिक भाव बन सका और न बन्धन बन सका। पर कितनी भूल पडी है इस ज्ञान नेत्र पर कि जितना आकर्षित यह पुद्गल पर नही होता उतना आकर्षित यह परजीवो पर होता है। सो यह भी एक उपचार वचन है। पर वस्तुमे तो कोई लगाव नही रख सकता। तो बाह्य पदार्थ से मेरेमे कोई विपत्ति नही है तब फिर यह विपत्ति आयी तो कैसे आयी। मैने अपने उपयोगमे ही अपने उपयोगकी ही कोई वृत्ति बनाकर एक सकट मोल लिया है। अच्छा तो ऐसा सकट क्या अकारण है ? अनादिसे है क्या ? स्वभाव रुप है क्या ? नही नही, इसमे निमित्त कारण तो जरुर है। पर, निमित्त कारण की भी बात देखिये निमित्तकारण क्या है ? कर्मविपाक। जो पहिले बाधे हुए कर्महै वे कर्म जब उदय अवस्थामे आते है तो वे कर्मविपाक पर पदार्थ, बाह्य उपाधि वह निमित्त है। होता क्या है तब, कि ये कर्म, ये प्रकृतिया विपाक–समयमे स्वयमेअपना अनुराग फैलाती है चूकि उनमे अनुराग बध था ना? जब उदयमें आया तब स्थिति हो रही है पूरी, उस कालमे कर्मका प्रकृतिका अनुराग बना। जैसे किकिसी चूनाके डगलामे मानो एक महीनेकी स्थिति है वह अपने ठीक स्वरुपमे अपनी सत्तामें बिना गडबड किये जैसे वह एक महीना रह सकता है, एक महीनेके बाद वह फूल जायगा। उसमे उमाड आ जायगा, उसके भीतर मे रहने वाले अनुराग वह खिसने लगेगा, इसी तरह बधे हुए जो हमारे कर्म है वे कर्म अब खिल रहे है। कौन खिल रहा ? कर्म खिल खिला रहे ? कर्म। कर्ममे तो यह हालत हो रही और साथही यह क्या हालत हो रही ? उपयोगमे सब झलका। हमको पता नही पड़ता कियह झलका। जैसे दर्पणके आगे अधेराआ जाय तो अधेरा झलकता तो है, पर पता तो नही। वह वैसाही पता है। तो फिर इस उपयोग ने क्या किया ? झलकके ही समय झलकके ही साथ इस उपयोगने उसको ग्रहण किया ? झलक के ही साथ इस उपयोगने उसको ग्रहण किया। माना अपने रुपसे अपने में हुआ और आत्माका स्वरुप है प्रतिभासमात्र, चैतन्यमात्र उपयोग तत्व। जो है उसे न समझनेके कारण बाह्यको अपना लियाकि यह मैं हूँ, यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह एक इतना बडा पाप है, महापाप है, मिथ्यात्व मोह महापाप है कि जिस पापका मुकाबला करनेवाला कोई पाप नही हो सकता। मोह पाप को रखते हुए धर्म न हो पायगा। स्व और परका सही प्रतिभास किए बिना, सही परिचय किए बिना, सही जानकारी किए बिना बतलाओ क्या धर्म मिल जायगा।

अपूर्व अवसर न खो देनेका अनुरोध—ओह, था कोई महान सौभाग्य जो एक सत्यस्वरुपका दर्शन कराने वाले एक जैनदर्शनकी परम्परामे हम आपने जन्म पाया, अब ऐसा दुर्लभ जन्म पाकर काम वही करे जो अनादि काल मे अनेक भवो मे अब तक करते आये है, तो इसके पाने और न पाने का क्या अर्थ रहा ? बराबर रहा। यहा बाह्य पदार्थो का लगाव रखकर कौन सा आनन्द पाना चाहते सो तो बताओ ? अगर खाने पीने और स्वाद लेने का आनन्द पाना चाहते है तो मनुष्यभव पाकर तो खानेपीने स्वाद लेने का आनन्द तो पशुपक्षी कीडा मकोडा आदिक सबको आ रहा है। यदि मनुष्योको यहा लड्डू, पेडा, हलुआ वगैरह मजेदार लग रहे हैं तो इन गाय, भैस, बैल वगैरह पशुओ को हरीघास वगैरह कम मजेदार नही लग रहे है। उन्हे घास मजेदार ही मालूम होती है सो यह कोई खास बात तो न प्राप्तकी। ऐसा इन्द्रिय सुख चाहिये था तो पशु बनकर घास खाकर भी पा लेता। किसलिए मनुष्य हुए ? कोनसा आनन्द पाने के लिए इस मनुष्यभव का निर्णय किया है सो तो बताओ ? अच्छा, एक धनी और परिग्रह वाले बहुत धनिक ऊँचे आदमी कहलानेके लिएना, इन बाह्यपदार्थोसे, इन पुद्गलोके ढेरोसे अगर इनका मौज पानेके लिए करते है तो देखो जिसकी जितनी बुद्धि विकसित हुई है, जितनी बुद्धिमे मनुष्य हुए है वे अपनी बुद्धिमे पाये हुए परिग्रहको काफी मानते हैं और उसे सारभूत मानते है। यह एक प्राकृतिक बात है। जगलमे रहने वाले भील जब आपसमे बात करते हैं और किसी राजाकी चर्चा करने लगे तो वे यही तो कहेगेकि राजा बडा सुखी है, क्या कहना राजाके सुखका वह तो रोज गुड ही गुड खाता होगा। अब देखिये उन भीलोकी बुद्धि उत्कृष्ट पदार्थमे गुड तक ही सीमित है। तो वे उत्कृष्ट पदार्थमे वे गुड तक ही सतुष्ट रहते है, लेकिन भीतर तथा इन चीटा चीटियोंके पास क्या परिगह नही रहता ? अरे होता है परिग्रह, कुछ जोडकर भी रखते है, कुछ अपना समझकर भी रखते है। चैतके महीनेमे ये चीटाचीटी अपनी चोचमे अनाज लालाकर अपने बिलोमे सग्रह करते है। देखा खलियानमे उनकी इतनी ही बुद्धि है, वे उसीको उत्कृष्ट मानते है। यहा लाख दो लाख करोड हो गया, उसको उत्कृष्ट मानते हैं। चक्रवर्ती इतने से विशेप वैभवको उत्कृष्ट मानता है। तो यह यो अपने माननेकी बात है। परिग्रहका मौज जेसे मनुष्य लेते हैं वैसे ही पशु पक्षी भी लेते हैं। कौनसी बडी बात आप करते हैं सो तो बताओ ? कुटुम्बका राग, लडके बच्चे खेले, कूदे उनका राग उनका मजा। यह मजा क्या गाय भैस वगैरह पशु नही पाते ? उनका मजा देखे। आपने बच्चेको देखकर वे कितना सुन्दर आवाजमे बोलते है। जब बछडा गायके पास आता है तो गाय जीभसे अपने बच्चोको चाटती है, क्या वह मोज नही लेती ? अगर कुटुम्बका

मौ ना मनुष्योका उद्देश्य है तो क्या ऐसा मौज पशुपक्षियोको नही मिलता ? कोई भी मौ बता दो । आप कहेगे-बडे अधिकारी बनते है उसका बडा मौज होता है । देखो सब बुद्धि र्मामित चीज चलती है । गाय भैसका जहा जत्था होता है उनमे प्रकृत्या ही कोई भी बैल नग अपनेको राजा अनुभव कर लेता है । जो बलवान है । जिसकी चलती है, जिससे और गाय, बैल, भैस डरते है वह तो अपनेमे गौरव अनुभव करता है ना । उनकी भाषामे जो बातचीत होती है उनकी आज्ञाका पालन भी वे गाय, भैस आदि करते है । खूब निगाहसे परख लो । सारी बात हो रही वैसी उन पशुपक्षियोमे जो मनुष्योमे होती है । है अपनी अपनी बुद्धिकी बात । तो ससारका कौनसा मौज ऐसा है कि जिसके पानेके लिए यह मनुष्यभव समझा ? कुछ नही है । चाहिये तो यह कि अपनेमे मनुष्यका नाता ही मत लगाओ । मत समझो कि मै मनुष्य हूँ-और मनुष्यका जो आवरण है वहा से और खिचकर भीतर आवो, मै मनुष्य नही हूँ यह ध्यानमे लावो ।

अन्तरमे रहस्य समझे बिना धर्ममें प्रगतिकी अशक्यता—देखो दो बाते है । एक तो है मानवधर्म और एक है आत्मधर्म । आत्मधर्मकी बात कह रहे है जिससे कि यह आत्मा ससारके दु खोसे छूटकर मुक्ति पा सके । सदाके लिए दु खोसे दूरसे दूरहो सके । और मानवधर्म ? मानवधर्मभी अच्छा है । जो मानव नही बन सकता वह आत्मधर्मका पात्रभी कैसे बने ? पहिले तो यही बात है कि इन्सानमे इन्सानियत होनी चाहिये । कोई जरा--जरा सी बातमे लड बैठे अपशब्द बोले खुदगर्जी बहुत हो, स्वार्थ हो, किसी दूसरेका उपकार नही कर सके । मानो नहा धोकर आये, मन्दिर जा रहे है और रास्तेमे कोई जीवजन्तु किसी जगह गदले पानीमे फस गया है, बडा दु खी हो रहा है, उसेतो देखते जाये और कहते जाये देखो यह कैसे दु खी हो रहा और बस आगे चलते जाये, क्योकि अगर इसको छू लेंगे तो अशुद्ध हो जायेगे, अभी मन्दिर जाना है । याने मानवधर्म क्या बतलाता है ? तुम्हे देर हो जायगी, तुम चार पूजा करते थे, तीन ही कर लेना, फिर बादमे नहा लेना । और जो तडफ रहा है पशुपक्षी या कोईभी जीव जो तुमसे सहायता चाह रहा है तो उसका उपकार करदो । देखो जिसने जीवस्वरूपसे नाता मान रखा हो वही तो ऐसीकरूणा कर सकेगा । याने अपने सुखके लिए कितना अपनेको अपने अन्दरमे आना है ? इसका अन्दाज करते जाइये । मानवधर्म का भी सही पालन करनेके लिए कुछ तो अन्दर मे आना पडेगा, अन्यथा सही न बनेगा । अभिमान से करेगे और भावसे करेगे किसी खुदगर्जीसे किसी कपटसे या किसी अन्यभावसे करेगे । कुछ अन्दरमे आना पडेगा तब मानवधर्म सहेगा, और अतीव अन्तरमे आना पडेगा तब आत्मधर्म बनेगा । तो आत्माके धर्मकी बात कह रहे है । हाँ

किसके लिए अपना यह जीवन है, इसका निर्णय करना है। हिम्मत बनावो। देखो कई जगह ऐसा कहते हैं कि धर्मके लिए आओ, धर्मयज्ञ करना है तो अपने प्यारेकी बलि दो। तो देखो आपको प्रिय है रागद्वेष मोह और उनका विषय बन रहे है घर कुटुम्ब आदिक तो आपको इस रागद्वेष मोहकी बलि देनी पडेगी। यहाँ कोई बहुत बडा ऊँचा काम होता है तो उस ऊँचे कामको करनेके लिए आप बडा प्रोग्राम करते, बडा खर्च करते, बडा परिश्रम करते। जैसे कोई बडा फर्म या मिल वगैरह खोलना हो तो आज ही जमीन ली तो क्या तभीसे लाभ मिल जायगा। उसको तैयार होनेमे, उसके चलनेमे काफी समय लग जाता है। कई वर्षोतक आप उसकी आमदनीके लिए बडी धीरता रखते हैं। कही। उसी समयसे तो लाभ नही मिलने लगता। तो ऐसेही आत्मकल्याणके मार्गमे इस जीवनमे कुछ धीरता तो रखो इस तत्त्वज्ञानके मार्गमे तो लगना चाहिये। तो एक निर्णय बनाये कि मेरा जीवन है केवल आत्मतत्त्वका ज्ञान, श्रद्धान और आचरण बनानेके लिए। बाकी काम तो भव-भवमे किए।

कर्म और नोकर्मसे छुटकारा पानेकी रीति—भैया इस शरीर से सम्बध है अतएव इस शरीरको मनाये रखने के लिए कुछ जरुरी हो गया। कुछ अगर यह बिगड गया, कोई इन्द्रिया बिगड गई, कुछ और हो गया तो सक्लेशका अवसर न आ सके इसलिए इस दुष्ट को मनाने के लिए कुछ काम करते जाइये, क्योकि दुष्टसे फस गए है, चिरकालसे फसे है। अब इस दुष्टसे हम इसकी दुष्टता जानकर व्यवहार करे। याने मेरे सारे कष्टोका कारणभूत यह मेरा शरीर है। कुछ ऊपरकी बात कह रहे है। अन्दरमे कर्म है निमित्तभूत, तो ऐसा समझ करके चाहे कि इसकी तो अभी हत्या कर दी जाय, जैसे कहते कि अभी खजर चला दो, क्योकि यह शरीर दुष्ट है, तो क्या ऐसा करनेसे शरीर का पिण्ड छूट जायगा? अरे जायगे तो और नया शरीर मिलेगा। छूटेगा तो नही। जिस शरीरमे इस जीवको इतना मोह बन रहा है वह शरीर देखो सारे कष्टोका एक साधन है या नही? भूख प्यास, ठड गर्मी आदिक की बाधाये, मान अपमान, सयोग वियोग आदिक की बाधाये ये सब क्लेश शरीर न हो तो क्या हो जायेगे? जितनी भी बुराई समझी जाती है, जितनी भी लोगो को अशान्ति होती है उस सबमे भीतरमे साधन है तो यह शरीर साधन है। तो इस शरीरसे अलग होने की बात चित्त मे आनी चाहिए। शरीर को सजाने, इतर फुलेल लगाने, खूब बढिया बढिया श्रृगार करने के लिए चित्त न डुलाईये। चित्तमे यह बात आनी चाहिये कि मेरा कब वह समय आये कि इस शरीरसे मेरे को मुक्ति प्राप्त हो। तो यह बात कैसे मिले? इस शरीर से छुटकारा कैसे मिले? कर्मोसे छुटकारा कैसे बने? बाह्य दृष्टि करनेसे नही, किन्तु अपने

को ज्ञानमात्र, उपयोगमात्र, स्वच्छतामात्र, प्रतिभासमात्र समझनेसे, अनुभवने से यह बात स्वय सहज अपने आप हो जायगी। जैसे गीली धोतीमे धूल चिपट गई हो तो उसकी गीलाई समाप्त होनेपर अर्थात धोतीके सूख जानेपर धूल अपने आप झड जायगी? ऐसे ही इस जीव ने गीलाई बना रखी है, काहेकी गीलाई? राग द्वेष मोहकी गीलाई। तो जीवमें राग द्वेष मोहकी गीलाई। तो जीवमे राग द्वेष मोहकी गीलाई आगई है। उससे कर्म चिपट गये अब इस कर्मधूलको झडानेके लिए, कर्म दूर करने के लिए मोह राग द्वेषादिक विकार ही करते करते जाये तो इससे वह कर्म चिपटन दूर न होगी। अरे इस रागद्वेष मोहादिक की गीलाई को सूखने दो, ये सब सूखने पर कर्मधूलकण अपने आप ही समाप्त हो जायेंगे। रागकी गिलाई भी सूखने दो और द्वेषकी गिलाई भी सूखने दो। द्वेषकी गिलाई भी कैसी सो जरा देखो—किसीको किसीसे दुश्मनी हो तो वह कहता है कि यह मेरा शत्रु है। अहो, उसे कैसा अपना बना रहा है। कहता है कि मेरा दुश्मन। अहा एक बार ऐसा वह कह ही लेता है। भले ही उस द्वेषमे गीलाई बसी हुई है। रुक्षता है, विद्वेष है मगर भीतरमे वह लगाव बसा हुआ है। यह मेरा दुश्मन। प्यारसे तो वोल रहा, मेरा दुश्मन, वह अपना लगाव तो कर रहा है। देखो मूलमे उसने कैसा लगाव लगाया है और चल रहा है द्वेष। मोह रागद्वेष इन तीनोमे गीलाई भरी है। उससे कर्मधूल चिपट रही है उसको दूर करना है।

आत्महितकी भावना होनेपर मोक्षमार्गमें उमंगकी दृष्टि—देखो आत्महितकी बात अगर चित्तमे आ गई है तो उसके पक्ष नही रहता। उसको हठ नही रहता। उसमें तो यह ही भाव रहता है कि किसप्रकारसे मै इन कर्म और शरीरके बन्धनो से मुक्त हो जाऊँ? और-जब उस मार्गमे चलता हैं और जब इसे देखने लगता है भीतरमे, उसको नजर आने लगता है कि यह है ज्ञानस्वरूप। यह हूँ मैं। यह है ज्ञानमात्र। और, ऊसपर दृष्टि होती है, उसपर उपयोग जमता है तो ऐसी स्थितिमे उसे बडा विश्वास होती है, दृष्टि होती है, ओह यह ही मुक्तिका मार्ग है, मुक्ति मेरे निकट ही है। जैसे कोई मुसाफिर किसी गांवको जा रहा है और जाते जाते उसका गाव निकट हो तो आ रहा है। उसका गांव निकट ही तो आता जा रहा है उसका मार्ग ध्यानमे है तो वह कितनी गम्भीरता से चलता है। लो अब तो आया अपना धाम। और जैसे-जैसे वह निकट आता जाता है वैसे ही वैसे उसे और उमग बढ़ती है। ठीक यही बात मोक्षमार्गमे चलने वाले ज्ञानियोकी होती है। ज्ञानी जीवने समझा कि यह है मार्ग। यह ही तो है मोक्षमार्ग क्या कि ज्ञानमात्र इस निज तत्वका श्रद्धान करना, उपयोग होना, उसपर दृष्टि होना, उस और रहना, उसमे तृप्त रहना, यही है मोक्षमार्ग। यह ही किया भगवानने। ऐसी दशा पाई वह दशा बाहर

नही है। उसको अपने आपमे सन्देह नही है। यह हो तो है मुक्ति, कहाँ बाहर है। देखो दूरीकी भी समझ अनेक दृष्टियोंसे होती है। एक समझ ऐसी होती कि चाहे कितनी ही दूर हो, निकट लगती है। दर्पणमे बहुत दूर रखी हुई चीजका जब प्रतिबिम्ब पडता है तो बडी सूक्ष्मदृष्टिसे देखे तो बहा भी आप केवल दर्पण दर्पणको देखकर पहिचान जायेंगेकि जिसकी यह झलक है वह इतनी दूर है। बहुत गहरी दृष्टिसे देखे तो यह पहिचान सकते, केवल दर्पणको देखकरकि इस दर्पणमे जिसकी झलक आ रही वह चीज कितनी दूर रखी है। बहुत दूर रखी होनेपर भी आपके लिए तो बिल्कुल निकट है। दो दृष्टिया आयेंगी। निकट की भी दृष्टि है और दूरकी भी दृष्टि है। कोई समझ ऐसी होती है। जो ज्ञानीके लिए यह मोक्षकी दूरी भी इतनी निकट है कि उसमे लम्बापन नही दिखता है। चाहे वह कई भवोंके बाद हो, लेकिन जिसने आत्मतत्त्वका दर्शन किया, मोक्षमार्गपर जिसका विश्वास है, जो मोक्षके पथमे चल रहा है उसे कितनी ही देरमे मुक्ति हो, मगर देखता है कि यह है मुक्ति जैसे लोग कहते है ना मानो अहमदाबादसे कलोल जाना है तो किसीने पूछा भाई कलोल कितनी दूर है ? तो वह कहता है कि बस यही तो है कलोल। तो क्या है ? जिसके ज्ञानमे साफ स्पष्ट झलक रहा—यह ही तो है सामने। कहाँ दूर है ? अरे जिसकी ओर मुख किया वह पास है और जिसकी ओर पीठ किया वह दूर है। बुन्देलखण्डके कई व्यापारी सावर नामक ग्राममे नमक खरीदने गए। वे व्यापारी थे समरिया ग्रामके। तो जब वे नमक खरीदकर वहासे लौटे कोई मील दो मील ही गए रहेंगे कि वहा उनमे साथियोमे से किसीने पूछा कि सिमरिया ग्राम कितनी दूर है ? तो था तो तो मानो २०० मील दूर पर अभी ९९८मील दूर है सिमरिया, पर वह बोल उठा—सॉवर दूर सिमरिया नीरी नीरीका अर्थ है नजदीक। याने जिसकी ओर पीठ है वह तो दूर हो गया और जिसकी ओर मुख किए हैं वह नजदीक है। तो ऐसे ही समझिये कि जब हमारा मुख मुक्तिकी ओर है याने मुक्तिकी ओर जब हम चल रहे है तो हमारे लिए तो वह मुक्ति निकट है, दूर कहा है। यह बात किसकी कही जा रही ? गपोडा मारने वालोकी नही कही जा रही किन्तु भीतरमे जिसके आत्मतत्त्वका निर्णय है, जो अन्त देखता है, समझता है उसकी बात कही जा रही है

अन्तस्तत्त्व दर्शीकी वृत्ति—अन्तस्तत्त्व दर्शीको स्पष्ट समझ है कि जो यहा बीत रहा है यह सब कर्मकी लीला है। मे तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा तो काम जाननमात्रका है। हुआ क्या ? कर्ममे तो कर्मकी लीला है और उस ही साथमे झलक और ज्ञान चल रहा है इसलिए ससार चल रहा है। देखो—तीन तरहके बिकारी जीव होते है। एकतो आशक्तिपूर्वक झलके हुए विकारको ग्रहण करने वाला दूसरा है अनाशक्त झलके विकारको ग्रहण

करने वाला और तीसरा विकारी है वह विकार की झलक तो है, पर ग्रहण नही करता। विकार तीनोमें है जो लोग ऐसा कहते है कि विकार ग्रहण करे तो विकार है और ग्रहण न करे तो विकार नही, सो बात नही। यह उपयोग स्वरूप है, जिस कालमे कर्मविकार आया वह विकार झलके बिना नही रह सकता। झलके, पर कोई उस झलकको, उस विकार को क्या अनाशक्ति से ग्रहण करता है ? वह तो बुद्धि पूर्वक उसमे लगता और उसको आशक्ति से लेता है तो यह समझ लीजिये कि आशक्ति से विकार को ग्रहण करने वाला तो हुआ। पहिला गुणस्थान, दूसरा गुणस्थान, तीसरा गुणस्थान वाला जीव, उसमे भी कमी बेसी लगेगी और अनाशक्ति से ग्रहण करने वाला है चौथा, ५वा, ६ठवा गुणस्थान वाला जीव वह भी ग्रहण करता है, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाये आती। अपने-अपने दर्जे मे तीव्र मन्द की बात जाने, पर ७वे गुणस्थान से लेकर १०वे गुणस्थान तक वहा तो विकार झलकता है, उपाधि है, विकार है, मगर उनको ग्रहण नही करता। वहा भी कुछ और भेद है यो भेद प्रभेद करेगे तो बहुत कक्षाये रखनी पडेगी। तो यहा यह समझ लो कि हम क्या गल्ती कर रहे। हम गल्ती यह कर रहे कि विकारो को ग्रहण कर रहे, अपना रहे। यह ही मैं हूँ ऐसा समझते। कषाय करते हुए समझते है कि मैं ऐसी कषाय न करू, लोभ न करूँ तो मेरा जीवन क्या ? तो इस तरह हम अपने आपमे देखें कि मेरा अपराध तो यह है कि मैं उस झलके हुये विकार को ग्रहण करता हूँ, अपनाता हूँ, उनको ग्रहण न करूँ, उन्हे न अपनाऊं, सिर्फ उनका जानन देखनहार रहूँ तो इसमे मेरी विजय होगी।

ध्रुव तत्त्वके आश्रयसे मनका स्थैर्य व विलय—हम चाहते है कि हमारा मन स्थिर हो लेकिन करते क्या है ? अस्थिर विषय का ध्यान। देखिये दोनो ओर से गल्ती हो गई। मन भी अस्थिर है और जिसका ध्यान किया गया वह भी अस्थिर है तो जहा दोनो ओरसे त्रुटि हो वहा मनकी स्थिरता की आशा कैसे की जा सकती है ? सर्वप्रथम जबकि मन की ओर भी अस्थिरता की त्रुटि नही बन रही तो कम से कम इतना तो करें कि विषय स्थिर तत्त्वको बनायें। मन भी स्थिर होगा और स्थिर तत्त्वका विषय करे तो सम्यक्त्व भी होगा। वास्तविक तत्त्व क्या है जो दृष्टि मे आये तो नियमसे सम्यक्त्व हो ? उसकी ओर किसी भव्य जीव की दृष्टि होती है। यो दिलको सुहावनी लगने वाली बाते दिलका रोग दूर नही कर सकती। दिल ही जहा शान्त हो जाये, ऐसी स्थिति, ऐसी तपश्चर्या मे कोई लगे तो उसे सन्तोष और शान्ति मिल सकेगी। जैसे रागके वचन रागको शान्त नही कर सकते ऐसे ही दिलपसद बाते दिलके रोगको नही मिटा सकती और करना क्या चाहिये, जो आत्मार्थी पुरुष है, जिसको केवल एक यह ही प्रयोजन रह गया कि मेरे आत्माका तो उद्धार हो,' मुक्ति हो,

जन्ममरण के सकटोसे छुटकारा हो उसको एक बहुत वडे तपश्चरणमे चलना होगा और वह तपश्चरण है दिल की आशा, दिलको लुभावनी बाते, इन सबकी बलि करनी होगी। कोई सोचे कि मेरेमे बुद्धि नही, प्रतिभा नही, हम नही समझ सकते है आत्मा के उस गम्भीर गहरे अतस्तत्त्व को तो उसका कहना एक प्रमाद भरा है जो आर्थिक कमाईके धधोमे वडी चतुराई रख सकता, जो दूसरो से छल करनेमे वडी—वडी कला बना सकता, उसमे क्या यह क्षयोपशम नही है कि वह अपने आत्माके सीधे सादे सरल भोले अतस्तत्त्वका दर्शन कर सके, पर रुचि नही ह। जब तक निकट भव्यता न हो, जिसका होनहार ठीक नही है उसे नही होती है आत्मतत्त्वकी रुचि, तो ऐसी रुचि जिसको नहीं है मत हो, पर स्वय एक अपनी—अपनी बात तो निश्चित बनाले कि मेरेको और कुछ न चाहिये। केवल यही चाहिये कि मेरा आत्मा आत्मा मे तृप्त हो, सन्तुष्ट हो और आत्माके असली उस आराम को मै अभी कभी—कभी पा सकू, उसके अतिरिक्त और जो कुछ है परिस्थिति वश लगना तो पडता है, लेकिन हैं सब उसके लिये बेकार। उनसे मेरे आत्मा का सुधार नही। तो ऐसे आत्मतत्व की परीक्षा के लिये अगर तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्यौछावर होता हो तो हो, मगर पाले आत्मा के अतस्तत्त्वको तो समझो कि मुफ्त ही पाया। कुछ खोया नही। विनाशीक चीज थी वह भी खोया नही गया। यहा न रहा और जगह रहा अथवा यो न वर्ता और तरह बर्ता, पर यह सब आन्तरिक लाभ मुफ्त ही तो प्राप्त हुआ। तो इससे तीव्र आस्था होना चाहिये कि मेरे को तो अपने आपका वास्तविक सहजस्वरूप ही ज्ञान मे लाऊं। अवश्य आयेगा ज्ञानमे। कुछ थोडा उद्यम करना होगा। जो ज्ञानी पुरुष हो आत्मार्थी हो उनका कुछ प्रसाद पाना होगा।

तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये आत्मविभवका सदुपयोग—जो वडे सतभी कुन्दकुन्दस्वामी भी उनके भक्त अमृत चन्द्र सूरि जहा यह बात बतलाते हैं कि आत्माका अधिकार पानेके लिए कुछ वैभव चाहिए ना ? तो वे वैभव चार किस्मके होते हैं एक तो वैभव है—शब्द ब्रह्मका बहुत ज्ञान हो, श्रद्धान हो। जिसके प्रथम बात मे ही गल्ती हो वह आगेके वैभवको नही प्राप्त कर सकता। जिसे वीतराग जिनेन्द्र देवकी वाणीमे सप्ततत्त्वका दिग्दर्शन युक्तिपूर्ण जचा जिसमे जराभी सन्देह नही ऐसे वाणी परम्परा से जो कुछ कहते चले आये स्वर्ग नरककी बात तिरेसठ शलाकाके पुरुषोके चारित्रकी बात, उन सबको झूठ बोलनेका प्रयोजन क्या था ? उन वीतराग ऋषीसतोको ? ज्ञानी पुरुष जिन्होने सप्ततत्त्वका वर्णन और अपने आपके भीतर सप्ततत्त्वका घटन, दिग्दर्शन किया है मेल खाता है जो प्रभुने बताया सो मुझमे आया, जो मुझमें अनुभूत हुआ वही इस ग्रन्थमे मिल रहा ऐसा जिन्होने मेल बना

नियं। उनके लिए जिनेन्द्र वाणीमे जितना जो कुछ कहा, गया है उनमें अनास्थाकी रंचभी गुंजाइश नही होती। जिनको सप्ततत्त्वकी श्रद्धा हुई है, वह प्रभुकी वाणीको असत्य कहनेके लिए जिह्वा नही उठाता। तो आत्माका अधिकार पानेके लिए पहिला वैभव है समस्त ब्रह्मकी उपासना, आगमज्ञान। दूसरा वैभव यह है कि ऐसी प्रतिभा जगेकि समस्त विपक्षकी युक्तियोको दूर कर सके, अर्थात् दार्शनिक शास्त्रका भी बहुत अधिक मथन किया गया हो। यह एक वैभव है आत्मापर सही अधिकार पानेका। तीसरा वैभव है-गुरूचरण सेवा इतनी की होकि उनके प्रसादसे उनके सकेतसे या सहज ही सेवा करतेमे एक उस तत्त्वज्ञानकी झलक बन जाय जिसे कहते है गुरुचरणप्रसाद पाया, और जो शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुशासन मिलता है एक वह। जैसे कोई आदमी अपने आप कुछ चीज सीखे और कोई उसी चीजको किसी गुरुसे सीखे तो उन दोनोकी शिक्षाओमे अन्तर देखते है इसीतरह अपने आप अध्ययन करके, अपने आप पढ़ करके, अपने आप बाँच बुंचकर जो ज्ञान पाया जाता है एक वह ज्ञान और दूसरा जो आगमवेत्ता है, जो युक्तियोसे परख चुका है, अनुभवसे समझ चुका है ऐसे गुरुकी परम्परासे पाये ज्ञान तो इन दोनो ज्ञानोमे ऐसाही अन्तर है। तो आत्माधिकार पाने वालेका तीसरा वैभव है गुरुचरण प्रसादसे पाया हुआ तत्त्वानुशासन और चौथा वैभव है अपने आपमे उसको ऐसा घटित करना, ऐसा अपने आपके भीतर समझना कि निरन्तर आनन्द झरे और उस आनन्दका जो सम्वेदन उस सम्वेदनसे है जो एक पुष्टता होती है वह वैभव अनुपम वैभव है। तो इस वैभवमे हम प्रवेश करे, इसके अधिकारी बने, ऐसा हमारा यत्न हो। जो बात जिस विधिसे होती है वह बात उस विधिसे हुआ करती है। ससारमे रुलनेका विधान है पर द्रव्यो की अपनायत करना तो मुक्तिका विधान है अपने सहज स्वरूपमे आत्माकी प्रतीति करना, यदि अनात्मतत्त्वमे आत्मश्रद्धा करनेसे संसार होता, जन्म-मरण होता और होना चाहिए तो सहज आत्मतत्त्वमे आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करने पर मुक्ति क्यो न होगी? होनी पड़ेगी

शुद्धनयके अवलम्बनसे उपलब्ध ध्रुव अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे उपयोगकी स्थिरता— ऐसा प्रयत्न करना ऐसे तत्त्वज्ञान की ऐसे उस तत्त्वको विषय लेनेकी कि जो स्थिर है, ध्रुव है और अपनेसे कभी अलग नही होता। जो ध्रुव हो और अपने आपमे सहज बना हुआ हो उसको उपयोगमें ले तो मनको स्थिर होना पडेगा। मनको स्थिर करना अतीव यह ऊची बात नही, पर मनका काम ही न रहे यह है ऊची बात। तो चित्तकी अस्थिरतासे अधिक महत्त्व है चित्तकी स्थिरता और चित्तकी स्थिरतासे अधिक महत्त्व है चित्तसे अलग हट जानेका। तो ऐसे उस तत्त्वमे दृष्टि जाय तो जैसे प्रभु प्रभु बन गए वैसे ही यहां

भी कर्म दूर होकर प्रभुता मिलेगी। वह तत्त्व क्या है ? उसको ही समझाया गया है शुद्धनय से। शुद्धनय कहते है ऐसे ज्ञानसे कि जिस ज्ञानमे केवल एक अभेद अखण्ड अवक्तव्य अवचनातीत अंतस्तत्त्व विषयमे हो। जिसके बारेमे अगर जोर लगाकर किसीको समझाये तो यह कहते बनता कि वह तो जो है सो है। इससे अधिक बात तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी नही कह सके। उन्होने यही कहाकि वह शुद्ध आत्मतत्त्व न तो प्रमत्त है न अप्रमत्त है किन्तु यह ज्ञायकभाव है। ऐसा अद्यपि जन कहते है। और, वह क्या है ? जो है सो है। जो ज्ञान हो सो है। ये शब्द कुन्दकुन्द प्रभुके है, क्योकि उसके बारेमे कुछभी कथन करना, कुछभी बात बोलना भेद किए बिना नही होता। और, भेदमे वह यथार्थ वस्तु आती नही। तो हम अपने बहुत-बहुत चीजे परखी, जानी, लेकिन ऐसा घनिष्ट, वचनातीत अपने आपमे अन्त प्रकाशमान सहज स्वरूपका परिचय नही किया और इसीलिए ससारमे भटक रहे हैं। तो ध्रुव अंतस्तत्त्वकी दृष्टिसे मन स्थिर होता है और यह मन भी ऊची स्थिति बनाकर स्वय भी विलीन हो जाता है।

निरानन्दतत्त्वका आश्रय न कर आनन्दस्वरूप अन्तस्तत्त्वके आश्रयमें आनन्दकी उपलब्धि—हम, चाहते हैं आनन्द, पर उपयोगमे लाते है हम आनन्द-रहित वस्तुको। जहाँ विषय आनन्दरहित वस्तु बन रहा हो वहा आनन्दकी आशा करना व्यर्थ है। जगतमे जितने भी पौद्गालिक अचेतन पदार्थ हैं वे सब आनन्दरहित है। उनको हम दिलमे बसाते, उपयोगमे रखते हैं और आशा करते है कि आनन्द मिले। गलत नही बताया गया, आनन्द-रहित वस्तुमे दृष्टि गडाकर कोई आनन्द पाले तो कोई तुक नही है इसका। तो जब हम आनन्द पानेके अभिलाषी हैं तो हमे परखना चाहिए आनन्दमय अन्तस्तत्त्वको। अपनी बात कठिन लगे और बेकार की बाग सरस लगे उसका सुभटपना अधिक समझा जायेगा, क्योकि ऐसा बल पाना तो भगवानके बशकी भी बात नही है। जो परपदार्थ है जो कभी अपना हो नही सकता उसको पाने की बात, उसको कमाने की बात, उसको भोगने की बात सरल लग रही हो और निज सहज ज्ञानतत्त्वकी बात जिसे कठिन जच रही हो यह तो अज्ञानी है, ज्ञानीकी बात कह रहे है यहा केवल। उसे तो समझना चाहिये। क्यो भगवान से बढकर चला जावे लोक मे कहावत है कि जो बहुत बढकर चलता है वह ठोकरे खाता है। जो प्रभुसे भी बढ़-बढ़कर बाते करता हो वह तो ठोकर ही खायेगा यह ही हाल हो रहा है मोही जीवका कि वह प्रभु की चालसे भी आगे-बढ़कर अपनी चाल बना रहा है। तो उसका फल यह ही है कि वह चतुर्गतिमे भटकेगा और दुखी होगा। अपनी आनन्दमय स्थिति पाना है, तो आनन्द-रहित वस्तुको हितरूप न माने किन्तु आनन्दमय जो निजतत्त्व है उसको ही हितरूप माने

तो इसे आनन्दकी स्थितिभी मिल सकती है। अपना सब कुछ हित, अपना सर्व कुछ कल्याण सामने रखा भीतर पडा है। केवल एक दृष्टि करनेकी बात है। सब कुछ दृष्टि द्वारा ही साध्य है, और उसकी दृष्टि के लिए विद्याभ्यास चाहिए और कुछ प्रकृति भी सुन्दर चाहिए। नम्रता हो, क्षमाशीलता हो, छल, कपटकी बात न सोचे, उदारता हो, और एक मुक्ति पानेका दृढ निर्णय किए हुए हो तो उसके लिए ये सब बाते सुगम हो जाती है। आत्मा तो एक कल्पवृक्षको तरह है। जो सोचे सो कर सकता है। जब यह खराब सोचता है तो खराब होता जाता है इसीसे यह अन्दाज बनाओ कि आत्मा कैसा परमेश्वर है कि जैसा चाहे वैसा बन सकता है। खोटा चाहता है तो खोटा बन लेता है। यह मनमे नही जान पाता कि मैं खोटा बनू, पर खोटा चाहे तो खोटा रहेगा, अच्छा चाहे तो अच्छा बन जायगा। सब दृष्टिके द्वारा ही साध्य है। अपनी दृष्टि निर्मल बनाये और भेदनयसे सब चीजे परख परखकर जो अभेद ज्ञान ज्योति है, जिसके कहनेके लिए शब्द नही हैं, किन्तु भीतरमे ही ऐसी दृष्टि बनायें, ऐसा ही प्रयोग करे, ऐसा ही अपने आपमे विश्राम पाकर सहज निरख बनाये तो किसी क्षण यह परमात्मतत्त्व दर्शन देता है। वह दर्शन जिसे मिले वह है, भाग्यवान, वह है अमीर, इस ही परमात्मस्वरूपके दर्शन बिना अगर बाहर की सम्पदा कुछ कुछ बात मिलती भी जाय तो उससे इसका कोई सुधार नही है।

आत्मतत्वकी परभावविविक्तता—अपने आपमे जो सारभूत तत्व है, जिसका आश्रय करनेसे ससारके समस्त सकट दूर होते है, तत्काल भी शान्ति है और आगे सदाकाल शान्ति रहे, एतदर्थ जो अनाद्यनन्त अन्त. प्रकाशमार्ग सहज ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा वह परम उपासनीय तत्व ऐसा वह भागवत्स्वरूप अपनें आपमे शाश्वत प्रकाश मान है उसकी बात कही जा रही है, उसे जो पर्यायमे निरखे कि वह प्रभुता मेरे पर्यायमे है सो बात नही है। जो मे हूँ सो सिद्ध हूँ ऐसा मैं नही, किन्तु मेरा स्वरूप सिद्धके समान है। वह स्वरूप अपने आपमे अन्तर्निहित है, उसकी बात चल रही है। तो उसका परिचय किस तरहसे होता है ? उसका परिचय होता है शुद्धनयसे और अनुभव होता है शुद्धनय, अशुद्धनय सभी नयोका परिहार करके, त्याग करके एक स्वय सहज होने वाली निर्विकल्प दशा से। [illegible] आत्मस्वभावकी बात देखिये-वह कैसा हूँ मैं ? परभावोसे भिन्न हूँ, मकान आदिक से भिन्न हूँ। शरीरसे भी भिन्न हूँ। यहा तक तो समझनेमें अधिक दिक्कत नही पडती। अब उसके अन्दर और चलते हैं तो ये कर्म भी मै नही हूँ। जहां यह विषय बनता है आगमद्वारा कुछ युक्ति द्वारा कि कर्म एक मेरेसे भिन्न पदार्थ है तो वह भी भिन्न है। अब उसके अन्दरमे और चले कि जो कषाय विषय इच्छाओके भाव उत्पन्न होते हैं, यह मै

आत्मतत्त्व उनसे भी निराला हूँ। यह समझने के लिए एक तो परमार्थ स्वभाव दृष्टिके परिचयकी जरूरत है। यहा ये विकार हैं विषय कषाय। दूसरे यह समझने की जरूरत है कि आत्मामे उठने वाले कषाय अज्ञानपरिणाम क्या है कि कर्मोदयमे आये, उनका विपाक हुआ, कर्ममे भी अनुभाग स्फुरण हुआ और उसी समय आतमामे झलका और ग्रहण हुआ अर्थात् कर्मविपाकका निमित्त पाकर जीवमे विकार अज्ञान परिणाम हुआ। किया इस जीव ने ही। अगर कर्म राग करे, जीवके ज्ञान परिणाम को कर्म अगर करे तो जो ईश्वरवादी है वे भी कहते हैं कि ईश्वर ही जगत को बनाता है, सुख दुख देता है और उनकी तकदीर बनाता है, फिर तो उनके कहनेमे और यहा इस कर्मवादीके कहनेमे कोई अन्तर न रहा, पर कर्म तो राग परिणामको नही करता, किन्तु कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवमे स्वय राग परिणाम करने की बात बनती है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है। तो इस योगको ध्यानमें लेकर जानना चाहिए कि कषायभाव जो है वह परभाव है। परम निमित्त पाकर हुआ है, इसलिए परभाव है। स्वभावसे यह विपरीत है अतएव परभाव है। मैं अन्तस्तत्व तो अपने आपके स्वभावरूप ही हूँ। यह निवद्ध नही है, बँधा हुआ नही है। अब बँधा है पहिले न था ऐसा मैं नही मगर रागादिक परिणाम तो निबद्ध है, न थे अब हुए। तो जो बात ऐसी हो कि स्वभावसे विपरीत हो और पहिले न था, अब हुआ हो तो वह नियमसे सहेतुक होता है, अनैमित्तिक नही होता है। यह निमित्त नैमित्तिक योग की बात है। वस्तुस्वातन्त्र्य तो समझ लीजिए वस्तुस्वरूपको देखकर। वह स्वयं उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है। उसमे स्वत अपने आप ही उत्पादव्यय होता जाता है, मगर विकार परिणाम जो होता है कभी भी किसी पदार्थमे वह तो स्वय उपादान और स्वय निमित्तसे ही बने तो शाश्वत हो जायगा, तो उसमे निमित्त पर उपाधि है, यह निमित्त उपाधि है, परभाव है, मेरा स्वरूप नही है। इन विषय कषायोंसे मैं निराला हूँ। और इसीके प्रसग मे और भी निरखिये विकल्प, विचार, बुद्धि तर्कणा ये सब भी मैं नही हूँ क्योकि ये भी नैमित्तिक है। कर्मका क्षयोपशम और उस जाति का राग ये सब जब आते है तब ये विकल्प विचारकी स्थितियां बनती हैं, उनसे भी मैं निराला हूँ।

निर्विकल्प आत्मस्वभावकी निरख—हा तो अब ध्यान मे आया कि परभावो से मैं भिन्न हूँ, तो कोई कह रहा—हाँ मैं खूब समझ गया। आप यह कहते हैं कि यह आत्मा रागद्वेषादिक विकारभावो से निराला है, तो फिर ये जो ज्ञान उठते हैं हमारे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक, तो उस रुप तो मैं होऊगा ? तो दूसरा विशेषण देते हैं, नही नही, इस रुप भी मै नही हूँ मैं तो परिपूर्ण हूँ। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो अधूरे ज्ञान हैं, इस रुप मैं वही

हूँ। ये मेरे स्वरुप नही है, किन्तु मैं तो पूर्ण हूँ। इसको सुनकर कोई दूसरा बोला, मैं समझ गया। आप कह रहे है कि मैं केवल ज्ञानस्वरुप हूँ। वही मेरा स्वरुप हुआ, वही स्वभाव हुआ। तो तीसरा विशेषण देकर आचार्यदेव कहते है कि नही नही, केवल ज्ञानस्वरुप भी मै नही हूँ। लक्षण की बात कह रहे है, स्वरुप और स्वभाव की बात कह रहे है। जो स्वरुप होता है, जो स्वरुप होता है उसका आदि, मध्य अन्त नही हुआ करता, याने पहिले न था, अब हुआ, ऐसा नही, अथवा है और मिट जायगा ऐसा नही। तो कहते है कि आद्यंतविमुक्त अर्थात आदि और अन्तसे रहित है ऐसा मै हूँ अन्तस्तत्व। केवल ज्ञानका अन्त तो न होगा प्रवाहरुपमे लेकिन आदि तो है। किसी दिन केवलज्ञान प्रकट हुआ है तो वह स्वभाव नही है। तो कोई चौथा श्रोता बोला, मै समझ गया। आप यह कह रहे हैं कि मैं एक ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरुप हूँ, सहज ज्ञानरुप हूँ। तो उसका उत्तर यह है कि हाँ भाई कुछ कुछ समझे तो हो कि मैं एक सहज ज्ञानस्वरुप हूँ। जो अनादि अनन्त है। जिसकी न आदि है न अन्त है, जो ध्रुव है, सनातन है, ऐसा यह मैं ज्ञानस्वरुप हूँ, आप यह कह रहे हैं। हाँ समझ तो गये कि यह कह रहे, लेकिन अभी ठीक नही समझे। अरे कैसे नही समझे ? यो नही समझे कि जब तक आप उस स्वभावको यो सामने रखकर बोलेंगे कि वह एक रुप है, एक स्वरुप है, एक है, तो जिसके विषयमे आपको एक कहने का विकल्प होगा आप उस समय उसका अनुभव नही कर पा रहे तो उस एक के विकल्पमें भी अनुभव नही होता और अनुभव मे जाना गया स्वभाव, आत्मस्वभाव परमार्थ यथार्थ है। तो अन्तमे निर्णय होता है कि सकल्प विकल्प मुक्त। वह आत्मस्वभाव तो संकल्प विकल्प से रहित है। एक है इतना भी जहाँ सकल्प विकल्प नही, किन्तु जब ज्ञानमे ज्ञानस्वभाव ज्ञेय होकर उस ही रुप उपयोगी बन गया है, वहाँ जाना गया कि यह है आत्मस्वभाव। ऐसा यह आत्मस्वभाव है, विलीन सकल्प विकल्प जाल है।

आत्मतत्वके जाननेके यत्नमें जो निस्सार की भटकलें—जिसके आश्रयसे मुक्ति मिलती उस तत्त्वको समझनेके लिए यह सब प्रयास चल रहा है। कैसे समझें उस तत्वको ? मोक्षमार्गका प्रयोजनभूत तत्त्व उसे समझाने के लिए व्यवहारनयसे विवरण करके बताया जा रहा है। तत्व ७ प्रकार के है-जीव, अजीव, आश्रव, बंध,सवर, निर्जरा और मोक्ष। अच्छा अब एक निर्विकल्प ज्ञानस्वरुप तत्त्वको समझानेके लिए इतना फैलाव क्यो किया जा रहा है ? यो किया जा रहा कि अनादि से जीव फैलाव मे ही तो पड़ा हुआ है। कषायभाव हो रहे, कितनी विडम्बनाये हैं। कितनी योनियो मे जन्म है। कितनी तरहके फैलाव हैं। ऐसे फैलावमे सन्तुष्ट रहने वाला ऐसे फैलावमे अपनी विधि बनाने की धुन रखने वाला यह जीव

कैसे समझे ? उसको समझने के लिए प्रयास चल रहा है। तो ये ७ तत्व हैं यह जाने। उनके समझने पर जान लीजिए यह है भूतार्थ परमार्थ ज्ञानस्वरुप। इन ७ के समझनेसे कैसे समझमे आता है ? तो पहिले समझें। जीव किसे कहते हैं ? जिसमे ज्ञान हो, चेतना हो, समझ हो उसे कहते है जीव। देखो पहिले तो अपने आपमे यह ही श्रद्धा होनी चाहिये कि मैं जीव हूँ। लोग सोचेंगे कि सभी लोग तो समझते है कि मैं जीव हूँ। सभी लोग कहते है कि मैं जीव हूँ। उसकी श्रद्धा तो बनी हुई है। कहा मिट्टी। नही नही, सबकी श्रद्धा नही हो रही है कि मैं जीव हूँ। कोई कहता है कि पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, ये चार तत्व मिल गए तो जीव बन गया। ऐसा कहने वाले पौराणिक दृष्टिसे तो चार्वाक कहलाते है, किन्तु ऐसा कहने वाले वहुत सख्यांमे जीव मिलेंगे। क्या है ? मिट्टी, जल, आग और हवा ये चार मिल गए तो जीव बन गया। ऐसा भी तो कहने वाले वहुत व्यक्यि है। तो कैसे समझे कि मैं जीव हूँ। जब यह समझो कि मे जीव नामका पदार्थ अलग स्वतत्र सत हूँ तब जीव की श्रद्धा कहलाती है। यो कहनेको तो कुछ भी कहिये, कहना पडेगा चारके समूहको-पृथ्वी, जल, अग्नि और हवा। ऐसा कहने मे उनको मदद किसने दी ? यहां भी देख रहे कि यह शरीर पृथ्वी की तरह है। इसे यो ही वेपरवाह छोड दिया जाय तो कुछ दिनोमे वह मिट्टी रुप बन जाता है बहुत सालकी बात है, एक दिनमे जा रहा था, सुबह शौचसे लौट रहा था तो वहा मैंने अपने मनमे विचारा कि देखो मास तो छूने लायक होता नही और मास कच्चा हो तो जीवोत्पति होती। और वह अगर सड जाये तो जीवोत्पत्ति होती अब यहा कितने ही मल मूत्रादिक के साथ मास लण्ड भी पडे हुए है, यह सब पृथ्वी अशुद्ध है, तो फिर मैं कौनसा डला लेकर हाथ धोऊं ? यह पृथ्वी सब अशुद्ध है। यहा तो पहिले मास पडा था, उसका पृथ्वी मे मिलाना हो गया। अनेक जगह टट्टी गोबर आदिक पडे हुए थे वे पृथ्वी बन गये, तो वे सब पडे हुए मिट्टी के डले मास ही तो हैं। मैं कैसे हाथ धोऊ तो धोना ही था, धोये बिना तो चलता नही। एक दो दिन बाद मुझे ऊसका समाधान मिला। जो पदार्थ है वे पडे रहे औरकालान्तर मे बहुत समथ बाद ये परिवर्तन करके जब मिट्टी रुप बन जाते हैं तो मिट्टी एक पृथ्वी कार्यक बन गई। स्थावरोमे मास होता नही तो उनमे मासकी गध आयगी कहा ? तो समझ मे आया तो बात क्या चल रही थी कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके पिण्डको जीव कहते हैं, इन्हे चार्वाक कहते है, जिनके गुरुका नाम वृहस्पति है, याने जो चार्वाक है उनके गुरुका नाम है वृहस्पति तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके पिण्डको जीव कहते हैं। जीव अलग नही है, इसीपर यह सिद्धान्त बना कि जब तक जियो सुखसे जियो, चाहे

कर्ज लेना पडे, उसकी परवाह न करो, पर जियो तो सुख से जियो इस जीवको मरने के बाद फिर आना कहा होता है ?.........

सर्वस्थितियोंमें आत्मश्रद्धासे लाभ की संम्भावना—एक बार ऐसेही गृहस्थावस्था मे छोटी उम्रमें कुछ मित्रजन एक चर्चा कर रहे थे । उनमे यह विवाद छिड गया कि सुख किसमें है ? जीवकी श्रद्धा करनेमे, धर्म करनेमे, व्रत उपवास आदि करनेमे सुख है या खूब खावो पियो, खूब भोग भोगो । खूब मौज करो, इसमे सुख है ? ये दो पक्ष चले । अब हमने तो यह पक्ष लिया कि जीवकी श्रद्धा करने से शान्ति मिलेगी । उसने यह पक्ष लिया खूब खाओ, पियो, मौज करो, भोग भोगो, खूब यश फैलावो, खूब आराम के साधन जोडनेसे सुख होता है । बहुत देर तक चर्चा चलते चलते अन्तमे हमने एक यह बात रखी कि देखो सभी जीव सुख शान्ति चाहते है, और कुछ नही चाहते । ऐश आराम के साधन भोगकर भी आखिर उनकी चाह क्या है ? सुख शान्ति । दूसरी कोई चाह तो नही है । अब यह विचार करलो कि २४ घन्टेकी चर्चा में भी देखलो, जिसने यह ख्याल बनाया है कि धन जोड ले, ऐश आराम के साधन जोडले, खूब अच्छा खानेपीने मे, कुटुम्ब आदिकका वर्द्धन करने मे सुखशान्ति है, वे भी यह देखलें कि ऐसा करते हुएमे उनको वास्तव मे कुछ चैन मिलता है या नही । सुखकी बात छोडदो, शान्ति, विश्राम, विराम कुछ मिलता है कि नही । जैसे शरीर थक जाय और शरीर को यो ही ढीलाढाला छोडकर पडजाय, एक विश्राम मिलता है ना, इसी तरह इनसब विषयप्रसंग की बातोंमे पडकर कभी किसीको विश्राम मिलता है क्या ? नही मिलता । चाहते है सुखशान्ति । अच्छा अब ध्यान दीजिए कि मैं जीव हूँ । सबसे निराला हूँ, केवल ज्ञानस्वरूप हूँ । सबसे निराला हूँ । केवल ज्ञानस्वरूप हूँ । मेरा काम केवल जाननेका है । इससे कुछ सम्बन्ध नही । यह शरीर न्यारा है । मैं जीव न्यारा हूँ । ऐसे जीवका जब उपयोग करे तो उस समय कुछ शान्ति मिलती है कि नही ? चाहे वह बात झूठहो, जैसे कि विपक्षी ने कहा कि जीव नामकी कोई चीज नही है, मानों जीवकी सत्ता मानले कि मिथ्या है, मिथ्या सही, लेकिन इस मिथ्यापर भी दृष्टि डालते है कि मै सबसे निराला हूँ, ऐसा कोई एक विलक्षण जीव हूँ ऐसी दृष्टि डालते है । जरा डालकर देखोतो सही कि कुछ चैन मिलती है कि नही ? उसने कहा ? हां कुछ मिलता तो है क्योंकि बाहरके बहुतसे विकल्प हटने से कुछ चैनतो मिलता है ना ? ठीक है । अच्छा मान लिया । मगर इन सासारिक सुखसाधनोंसे इस भवमे तो मौज मिलता है । ठीक है, इस भवका मोज लूटलिया मगर परभव निकल आया तो क्या करोगे ? तबतो फिर कुछ सुख न पासकोगे । इससे एक जीवतत्त्व की श्रद्धा करो । इस जीवतत्त्वकी श्रद्धा करनेसे इस भवमे भी सुखसाता रहेगी और परभव भी अच्छा रहेगा । इस

जीव के बारे मे तो सबका अनुभव है। जिसे कहते है अहँप्रत्ययवेद्य। याने हूँ हूँ इस प्रकार के ज्ञानके द्वारा सबको समझ है कि मैं हूँ। हूँ के बारेमे किसी को सन्देह नही। मैं हूँ। और बाहरमे भी लोग समझते हैं कि यह जीव है। जैसे कोई पुरुष किसी कुत्ता बिल्ली आदिक जानवर के लाठी मारे तो लोग उसे रोकते है भाई इस बेचारे को क्यो मारते हो ? और अगर कोई ईंट पत्थर वगैरह मे लाठी मारे तो उसे तो कोई नही रोकता। वह तो सीधे चला जाता हैं। कोई यह तो नही कहता कि भाई तुम इस भीट को क्यो मार रहे ? तो सबकी दृष्टिमे यह बात है कि यह जीव नही है और यह जीव है। यह सबको श्रद्धा है। तो इतनीभी श्रद्धासे कामन चलेगा। किन्तु एक विशुद्ध जीव याने स्वयं खुद अपने आप जितना है उतना ऐसा जीवस्वरूप ज्ञानमे आयेबिना धर्मके मार्गमे गति नही होती।

जीवविस्तार में सहजजीवस्वरूप की खोज—इतना जाने तो यहभी बहुत है कि यह जीव है, पशु जीव है। पक्षी जीव है, कीडा मकौडा जीव है। जान लिया कि जीव है। इसमे कुछ तो फायदा हुआ, कुछ तो दया का काम चला। कुछ तो तुम्हारा ठीक व्यवहारहुआ। लेकिन सदाके लिए ससार के सकटो से छूटना बने उसका प्रयोजन भूतजो जीवतत्त्वका श्रद्धान है वह अभी पूर्ण नही हुआ। कुछ और समझना होगा ये जो नरक तिर्यच, मनुत्य, देव आदिक जीव दिखते है ये जीव विशुद्ध जीव नही बर्थात् स्वय अपने आप अपनी सत्तासे स्वय जोकुछ होसकता है वह जीव नही। अच्छा जीवके बारेमे यहा जो कहा जा रहा है सो उस विशुद्ध जीवकी बात इन ७ तत्त्वो मे अभी नही रखी जा रही है। क्यो नही रखीजा रही हैं कि ऐसे विशुद्धतत्त्व को अगर इस जीवनामसे लें तो उसका बधभी नही, मोक्षभी नही। वहतो स्वभावमात्र है। उसजीवको इन तत्त्वो मे जो प्रतिपाद्य है उनको नही लिया, किन्तु पर्यायदृष्टि से भी जीव, अजीव, आश्रव, बंघ सवर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वोमे लिया गया है, किन्तु इन ७ मे द्रव्यदृष्टिसे निहारनेका पौरुष कराया जायगा, और अन्तमे जो एक निष्कर्ष तत्त्व मिलेग। वह हैं आश्रय के योग्य चीज, जिसके सहारे पुरुष मोक्षमार्गमे चलता है, यहा जीव तत्त्वकी बात कह रहे जीव पदार्थ यह स्वतंत्र सत् है। जैसे अणु-अणु सत् हैं इसीप्रकार जीव भी स्वय सत् हैं कही पृथ्वी आदिकके मिलनेसे नही बना। अगर मिट्टी आदिकके मेलसे यह जीव बना तो जीव नाम का कोई स्वतन्त्र सत् नही है, और मेल से यह जीव बना तो जीव नामका कोई स्वतत्र सत् नही है, और मेल से जीव बन जाय तब तो बड़ी गडबडी हो जायगी। बडी मुश्किल पड जायगी। कोई अगर मिट्टी की हांडी आग पर चढा दी जाय उसमे पानी भर दिया जाय, उसमे खूब आग जलाकर खिचडी पकाई जाय तो देखो वहा मिट्टी भी है, आग भी जल रही है, पानी भी भरा है, और हवा भी वहा

खूब भरी है। तभी तो देखो उस हाडी के ऊपर रखा हुआ ढक्कन उछलता है। तो देखो वहा ये चारो चीजे मौजूद हो गई फिर तो उस रसोईघर मे हाथी, घोडा, शेर, बाघ आदि अनेको प्रकारके जीव निकल पडने चाहिये। कोई कहेगा कि देखो जैसे एक कोदो नाम का अनाज होता, उस कोदो की रोटिया भी बनाकर खाई जाती है, उसके खाने पर तो कोई हानि नही होती पर उस कोदो की विधिपूर्वक शराब बनाली जाय तो उसमे तो बेहोशी पैदा कर देने की शक्ति आ जाती है। इसी तरह इस पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु मे भी एक ऐसी शक्ति है कि यदि वह इस तरह से मिल जाय तो वह जीव बन जाता है। यह दृष्टान्त देते है वे गुरु वृहस्पति। लेकिन वे यह तो बतलावे कि वैज्ञानिक भी जानते हैं कि जो मूलमें जिस जिस जाति का तत्त्व है उसमे कितना ही मेल मिलावट हो, कितना ही कुछ हो वह अपनी जातिको छोड सकता है क्या ? वह ती अपने स्वरुप मे है। तो जीव भी एक चेतता जातिको लिए हुए पदार्थ है। वे पदार्थ कही उन्हे मलिन भी बना सकेंगे क्या ? कोदो मे शक्ति चाहे वह व्यक्त हो गई, वह भी अचेतन है, वह भी उसी रुप है वह तो ठीक है कि हो गई शराब, पर वहाँ अचेतनसे अचेतन ही हुआ। किसी अचेतनसे चेतन बन जाय यह नही हो सकता, क्योकि जाति भी न्यारी न्यारी है। तो चेतन जाति एक जुदी चीज है । वह चेतना जिसमे पायी जाय उसे कहते है जीव। उस जीवका श्रद्धान करना चाहिए। मैं जीव हूँ। उस जीव का ही परिचय कराने के लिए गुणस्थान मार्गणाओ का बहुत वर्णन है। मार्गणाओ की दृष्टि से देखें तो जीव ५ प्रकारके मिलेगे। नारकी तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध। इन्द्रिय जाति की दृष्टि से बतायेंगे तो कहा जायगा कि जीव छ. तरहके मिलेंगे, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पन्चेन्द्रिय और इन्द्रियरहित। यो मार्गणावो द्वारा जीवका परिचयकराया गया है।

धर्मप्रियजनोंका मूल लक्ष्य ज्ञानभाव—उस अँतस्तत्वका परिचय करे जो कि सहज है, सनातन है, शाश्वत है, जिसे निरख करके वेदान्तियोंने एक वेदान्त बनाया। वेदान्त क्या है ? वेद का अन्त है जहाँ उसे कहते है वेदान्त। वेद मायने है ज्ञान, हमारा यह ज्ञान, यह विकल्प, यह विचार, वह कहलाता है वेद। ज्ञानका जहाँ अन्त हो गया, समाप्ति हो गई उसे कहते है वेदान्त। याने ऐसी एक निर्विकल्प स्थिति, ऐसा एक चैतन्य स्वरुप सत जहां विकल्प विचारका अन्त हो जाता, वह है वेदान्त। शब्द तो सबके अच्छे होते है। जितने भी मजहब है उनके जो जो भी शब्द है वे उत्तम है और तत्वको बताने वाले है। जैसे बौद्ध, याने ज्ञान स्वरुप, ज्ञानस्वरुप अँतस्तत्वको माने सो बौद्ध। वेदान्त, जिसमे विकल्प विचारोका अन्त हो जाय उसे कहते हैं वेदान्त और आज कलके शब्दोमे जैसे हिन्दू जो हिंसा से दूर रहे उसे

कहते हैं हिन्दु। मुसलमान जो ईमान (सच्चाई) पर कायम रहे सो मुसलमान। शब्द किसी के ऐसे नही है जो धर्म के विरुद्ध अर्थ बताते हो। लेकिन जब कभी कभी पक्ष हो जाय तो क्या उस शब्द के आधार पर कुछ भी दृष्टि जाती ? जैसे जैन—जैन कोई सम्प्रदाय है क्या ? अरे जो राग वेषको हटाये उसे कहते है जिन और जिनके द्वारा प्रणीत धर्मको जो माने उसे कहते हैं जैन। मायने रागद्वेषको मेटने के लिए जो सत्य मार्ग है उस पर जो चले उसे कहते हैं जैन। ये गाय बैल भैस वगैरह भी तो जैन हो सकते। सूकर, सर्प, बन्दर आदिक भी बहुत से जीव भी तो जैन ही गये थे। उन्हे सम्यग्दर्शन हो गया, वे वीतराग विज्ञानका अनुभव करते थे यथा यथा समय। तो सभी शब्द ले लो वैसादयाने जो लोक मे सर्वाधिक फैलने वाली वस्तु हो उसे कहते हैं विष्णु। वह है ज्ञान देखो सबसे अधिक फैलने वाला होता है ज्ञान। कैसे ? जरा यही बतलाओ—दो तरहकी चीजे सामने रख रहे, मोटी और पतली। मोटी बडेका नाम है और पतली सुक्ष्मका नाम है। एक बात सामने रख रहे कि बतलाओ मोटीमे पतला समाना है या पतलामे मोटा ? आप लोग तो सोचते होंगे कि क्या जवाब दे। तो इसका उत्तर हमी दे रहे, क्योंकि अधिक समय न लगे। देखो पतलेमे मोटा समा जाता है। जो सूक्ष्म है उसमे वादर समा जाता है। कैसे, तो जरा वैज्ञानिक हिसाब से भी देखो और अपने सिद्धान्तसे भी देखोजैसे जमीन और पानी, इतमे मोटी है जमीन जमीनको अब देखो पानीके बीच जमीन है या जमीनके बीच पानी है, तो आजकलके जो वैज्ञानिक लोग है वे भी बता देगे कि समुद्रके बीचमे ही तो पृथ्वी है, देखो पानी के बोच जमीन है, तो पानीमे जमीन समा गई। पानी पतला है जमीन मोटी है तो पानीमे जमीन समा गई। सिद्धान्तसे भी देखो—जम्बूद्वीपसे दुगुना है लवण समुद्र, कितना दुगुना है, दो लाख योजनाका है ? और दोनो तरफ ४ लाख योजन हो गया। उसका विस्तार देखिये—जिसे कहते हैं वर्ग। तो लवण समुन्द्रमे जम्बूद्वीप समाया हुआ है। सभीद्वीप लेलो तो अन्तमे जो स्वयभूरमणसमुद्र है उसमे कितना विस्तार है कि उसमे सब असख्याते द्वीप समा गए। तो पानी अधिक है कि जमीन ? पानी। अच्छा अब पानीको ले, जमीन छोड दे, जमीनका मुकदमा निपट गया। अब पानी और हवामे पतला कौन है ? हवा। तो हवा मे पानी समा गया। जहा पानी है वहा भी हवा है। और पानीके बाहरभी हवा न हो तो पानी कैसे ठहरे ? हवामे पानी समा गया। पानीका मुकदमा मिटा। अब हवाका मुकदमा लो। हवा और आकाश, दोको सामने रखे। हवा पतली है कि आकाश। आकाश तो इतना बडा है कि जहा हवा है वहा भी आकाश है और जहा नही वहा भी आकाश है। जिसे कहते हैं, अलोकाकाश जहा केवल आकाश ही आकाश हो—जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, और काल ये

कोई द्रव्य न हों उसे भी कहते है ना आकाश। तो देखो आकाश बडा है ना ? आकाशमे हवा समा गई, लो हवा का भी मुकदमा निपटा। अब आकाशका मुकदमा लो। आकाश और ज्ञानमे बतलाओ क्या पतला है ? ज्ञान। देखो अब यह विधि बन गई कि जो अधिक जगह फैलता हो वह पतला। तो ज्ञान कितना फैला हुआ है ? आकाशसे भी बडा ज्ञान है। कैसे कि ज्ञानने लोकको भी जाना। अलोकको भी जाना, समस्त आकाशसे जाना और उस ज्ञानमे अभी इतनी सामर्थ है कि ऐसे ऐसे असख्याते लोक और भी हो तो उनको भी जान ले, उतने उतने द्रव्य और भी हो तो उन्हे भी जाने। ज्ञानमे कभी नही आती, क्योकि ज्ञानका काम है कि जो सत् हो उसे जान जाय। सत् जितने है उतने जाननेमे आ ही जाते है शुद्ध ज्ञाताके। अब उतने ही और भी सत् होते तो उनके जाननेमे क्या ज्ञानमे ढील पड़ जाती कि ऐ सत् अब तुम हमारे ज्ञानमे मत आवो ? क्या ऐसी कोई बात आती है कि यहा जगह खाली नही है ? अरे कितने ही सत् आते, सब उस ज्ञानमे समा जाते। तो देखो सबसे सूक्ष्म हुआ ज्ञान इतना सूक्ष्म है विष्णु है, व्यापक है तो ऐसे विष्णु स्वरूप ज्ञानको माने उसे कहते है वैष्णव। और-और भी जो हो सबके अर्थ एक शुद्ध अतस्तत्त्वको झलकाने वाले ही मिलते है।

कानों-कान जाते-जाते मौलिकता का ह्रास—तर्कणा करो—जब बहुत पूर्वमें जब धर्मपरम्परा चली होगी तब उसमूलमे प्राय सब उस अतस्तत्त्व के नजदीक ही आये होगे। जैसे-जैसे वचन का विस्तार बढा वैसे ही-वैसे यह बात बढती गई। जैसे कहते है ना कभी-कभी अजी हमने सुनाकि आपने ऐसा कहा था। अरे तुमने सुना था तो भाई सुनी बाततो सच्ची नही होती जरा उसे देखकर बोलो। अजी बात ऐसी हैं कि हमने सुना है। अरे सुनी बात हम न मानेगे। जो देखीबात हो सो सच है। हम सुनी बात न मानेंगे, क्योंकि एकने एकसे कहा, उसने फिर किसी दूसरे से कहा, इतना बदल-बदलकर कहना होता जायेगा। तो १०० कानोके बाद उसपहुँची बातमे कितनी बदलहो जायेगी। तो हम सुनीबात नही मानते। हमतो देखी बात मानते है। कोई कहे अजी आप क्या कहते ? हमनेतो खुद आखो देखा। तो कोई यहभी कहेगा कि भाई देखी हुई बात भी तो सही नही है। हमतो देखी हुई बातभी झूठ समझते हैं। फिर कैसे सच समझे ? जो अनुभवमे उतराहो वह सच है। कैसे सुनीबात झूठ है इसके लिए तो कोई दृष्टात देनेकी जरूरत नही है, इसेतो सब मानते है मगर देखी हुई बातभी झूठहो सकती है क्या ? हा हो सकती है। एक दृष्टांत लोग एक राजाका पलंग सजानेवाला नौकर था। वह रोज राजाका पलग सजाया करता था। वह पलंग स्प्रिगदार था। उसपर हाथधरेतो झट वह दबजाये। रोज-रोज बिछाते हुए एकदिन उसनौकरके मनमें

आया कि देखोहमे यह पलग विछाते हुए वहुतदिन हो गए, परन्तु अभीतक हम यह न जान सके कि इसपलगमे सोने से कितना सुख मिलता है। मनमे आया कि जरा एक—दो मिनट इसपर लेटकर देखेतो सही। ज्योहि वह उसपर लेटातो ऊपरसे चद्दर डालली। हुआ क्या कि दो-चार मिनट मे ही उसे नीद्रा आ गई। सो गया। कुछदेर वादमे रानी आई तो वहभी रोजकी भाती उसी पलगपर सोगई। उसे पता न था कि यह नौकर सो रहा है। वहतो उसे राजाही समभरही थी। सो नौकर और रानी दोनो सो रहे थें, राजा आया तो यह दृष्यदेखकर क्रोधसे भरगया। सोचाकि यहकौन मेरी रानीके साथ सो रहा ? शायद मेरी रानी दुराचारिणी है। सोचाकि मैं तलवारसे इनदोनो का सिर अभी उडा दू । पर ध्यान आया कि अरे विद्वानो ने तो कहा है कि जल्दीमे कोईकार्य न करडालना चाहिए, उसके प्रति कुछ सोचना चाहिए। अव राजाने सर्वप्रथम रानीको जगाया। रानी ने अपने सामने राजाको देखा और पलगपर पडे हुए व्यक्ति देखातो वह आश्चर्य से भरगई और बताया कि मैंतो यही समभकर इसपलगपर सो गई थी कि आप सो रहे है। बादमे नौकरको जगायातो वह नौकर भी डरकेमारे कापरहा था। उसने साराहाल बताया। तव राजाको सहीज्ञान हुआ। तोदेखिये आँखोदेखी बातभी भूठरही। अनुभवकी बात सही होती है। जैसे एक वन्धया सौतने अपनी सौतके लडकेको लेनेके लिए मुकदमा किया, कहा यहमेरा लडका हैं जो पतिका सो मेरा। दौनो कहे मेरा मेरा। तव चतुर निर्णायकने कहा कि ठीक है दोनो का है सो इसके आधे आधे दो टुकडे तलवार से किए देते है सो एक-एक टुकडा लेलेना। तलवार वालेको वुलाया। तब पुत्रवती कहती है कि महाराज यह लडका मेरा नही, इसका है इसेही देदो। राजाने अनुभव से समभ लिया कि इस मना करने वाली का ही यह लडका है। खैरबात यह कह रहे कि कानो कान बात जाते जाते धर्मरूप भी कुछसेकुछ बन सकते। तो मूलमे धर्मआत्मा के सहज स्वभावरूप ही है।

पदार्थके विकृत होनेकी पद्धति—पदार्थ कैसे विकृत होता है और कैसेमुक्त होता है इसकी व्यवस्था सभीमे एकसमान है। जैसे चौकी गदी हुई तो वहाँ दोवाते ध्यानमे रखनी होगी कि एक चौकी और एक अचौकी। जो चौकी नही है वह सब अचौकी पदार्थ है। प्रकृत मे जो चौकीसे चिपट सकता है वह अचौकी है चौकीमें अचौकीका आना आश्रव है। चौकीमे अचौकीका बधना बध है। चौकीमे नईअचौकी न आयेसोसम्बर है और चौकीमे जो अचौकी आयी है बह भडे सो निर्जरा है और जब अचौकी बिल्कुल हट जाय, केवल वही चौकी रह जाय जो अपने सहज सत्त्व से है इसे कहते है मोक्ष प्रत्येक पदार्थमे विकार होनेकी पद्धति एक

ही है, कि वह किसी परसगको पाकर विकृत होता है। अपने आप हीं कोई निमित्त अपना ही लेकर विकृत हो जाय तो इसमे पदार्थका स्वरूप नही ठहरता, पदार्थका विकार स्वभाव बन जाता और कभी भी उस विकारसे मुक्त होनेका अवकाश नही हो सकता। विकार होनेकी यह ही पद्धति है कि उपादान खुद इस योग्य हो और अनुकूल निमित्ति सन्निधान हो विकार होता है। अनुकूल निमित्त सन्निधान होने पर विकार होता। ऐसा सुनकर यह अर्थ न लेना कि फिर वस्तु परिणमनेमे परतत्र हो गई। बात भली प्रकार समझना कि एक पदार्थ से अन्य वस्तुका सन्निधान मिला इतनी ही तो बात हुई। और उस कालमे उस पदार्थको तो परिणमना ही था। परिणमे विना कोई पदार्थ रहता तो है नही तो अब यह पदार्थ ऐसे ही योग्य उपादानमे था सो विकाररूप परिणम गया। जैसे दर्पण के सामने कोई लाल पीला पदार्थ आया और दर्पण लाल पीला प्रतिबिम्ब रूप हो गया तो दर्पणको लाल पीला रूप प्रतिबिम्ब रूप परिणमने मे परतत्रता नही है अर्थात् परिणमन मात्र उस तरहका जो वह परिणामा वह दर्पण अपने आपके बलसे अपनी शक्तिसे परिणमा पर इतनी बात अवश्य है कि अन्य पर उपाधिका सम्बध होने पर ही वह परिणमा, पर परिणमनेमे परतत्र नही है। योग ऐसा निमित्त नैमित्तिक है कि परसगमे ही विकाररूप परिणम सकता है। ऐसे आत्माकी बात यह जीव जो अजीवरूप परिणम रहा, क्रोध, मान, माया, लोभादिका रूप परिणम रहा तो यह ऐसे ही कर्मका सन्निधान पाकर परिणमता है। इस अन्त रहस्यको जिसने जाना वह एक साक्षात् उस तत्त्वका ज्ञाता बन गया।

उत्तम विवेकः—कौन पदार्थ किस रुप तक परिणम सकता है' इसका विवेक एक बहुत ऊँचा विवेक है। जैसे मिट्टीका घडा घडा रूप बना तो उससे निमित्त है कुम्हारका व्यापार, इसीप्रकार जब जीव, क्रोध रूप परिणमा तो वह क्रोध जीव निज गाठकी चीज है क्या? क्रोध रूप परिणमते हुए कर्म की झलक है। जीव तो ज्ञानमात्र है। वह जानन स्वरूप को रखता है। उसके जाननेमे ही विकार हुआ। जाननेमे ही वह रग आया। वह रग कर्मका है। कर्म अचेतन है। वह खुद अनुभव कर सकता नही, परन्तु अनुभाग जो भरा पडा हुआ था वह अनुभाग फूटा कि वह कर्म ही विकृत हुआ, और ऐसे विकार रूप परिणमते हुए कर्मकी झलक हुई जीवमे। इसने अपने आपमे उस रँगको अपना लिया। न अपनाये तो इसमे व्यक्त विकार रह जाता है। अपनाये, बुद्धिमे ले, उपयोगमे आये तो वह व्यक्त विकार बन गया। तो यह कर्म रंग है, यह मेरा स्वरूप नही है, उससे मेरेको कुछ पडा नही है, मैं तो विविक्त हूँ। निराला हूँ, अब भी निराला हूँ। जीव जीव स्वरूपमे है, कर्म कर्म स्वरूपमे है। पर ऐसा विपाक जब आया तो जीवके उपयोगमे वह रग बन गया। पानी

मे रंग घुल जाय और सारा पानी रंगीला हो जाय। उस रगे हुए पानीमे, जैसे लाल रग डाला तो पानी लाल हुआ, उस लाल पानीमे जैसे यह विवेक करना कठिन हो जाता कि पानी तो अपनी एक स्वच्छता मात्र है। इसमे जो रग है वह पर द्रव्यका रग है और जल एक ऐसी चीज है कि जिसमें वह रग इस प्रकार समा गया है। वही रग, वही पुडिया किन्ही और पदार्थोमे मिला दे तो वहा तो नही समाता ऐसे ही जीव एक तो स्वच्छता मात्र हैं कि यहा कर्मविपाक हो तो वह रग इसमे समा जाय। ऐसा रग कितना ही समा जाने पर भी आत्मा तो एक जाननमात्र है। उसका तो एक ज्ञान विकल्प बन गया। वह विकल्प भी रग के सम्बन्धसे बना। कैसी भेद विज्ञानकी सूक्ष्म प्रक्रिया है जिसे कहते हैं सूक्ष्मसधिमे एक विवेक छैनी को पटक दिया। यह कर्म राग है और यह जीवका एक चित्स्वरूप है, चित्–क्रिया है, ऐसा विवेक करने वाला ज्ञानी पुरुष समझ गया अपने आपके भीतरी स्वरूपको, अब उसे कोई भी बाह्य पदार्थ संक्लेशके हेतुभूत नही हो पाते। परिस्थितिवश कुछ भी हो, फिर भी अन्तरात्मा अंत निराकुल रहते हैं। जो गान गाया जाता है, सम्यग्दृष्टियोका कि रमते अनेक देवागनाओंके साथ फिर भी सम्यग्दृष्टि देव उससे हटा हुआ है। और कष्ट पा रहा है अनेक नारकियोके द्वारा सम्यग्दृष्टि नारकी फिर भी वह अन्त निराकुल है।

आत्मबोधका अलौकिक प्रताप:—आश्चर्य होता है कि सुकौशल सुकुमाल आदिक मुनीश्वर ऐसे बडे–बडे उपद्रवोंके बीच रहकर भी शुक्लध्यानमे आये और उन्होंने ऊर्द्धगति प्राप्त की। क्यो क्षोभ नही हुआ ? यहा तो एक चीटी भी काटे तो उपयोग उस ओर ही रहता। उसे हटाते है, चैन नही पडती और उन्हें स्यालनी खाये, सिंहनी खाये और एक आत्मस्वरूपमे ऐसा अविचलित रहे तो वह किसका प्रताप है ? यह सब इस भेद विज्ञानका प्रताप है। जिसको मान लिया कि यह मैं हूँ, मेरा है, उसको उसमे और मेरा मे के अलावा अन्य जो कुछ है उसपर कुछ बात पडे तो उसका क्लेश नही मानता। यहां भी तो अनेको लोग दूसरे का घर जल रहा हो तो कष्ट नही मानते, क्योकि जान रहे कि दूसरेका है। खुदके घरमे कोई बात बन रही हो ईंट भी खिसके तो ख्याल करते है कि अरे इसको ठीक करना है। यहाँ भी तो ऐसी ही आदत पडी है कि जिसेमान लिया कि यह पराया है, उसका कुछ भी बननेमे यह खेद नही मानता और जिसे मान लिया कि यह मेरा है उसमे बिगाड होनेपर खेद मानता है। जो बडे पुरुष होते हैं बडा विशाल जिनका प्रताप होता है, जो स्वय परमेश्वर स्वरूपताको रख रहे वे बिगडी हालतमे भी अपनी मूल बात को तो छोड़ते। यहा भी जो ज्ञानी हुआ उसने जाना कि जो चेतना है वह तो हैं मेरा तत्त्व, मेरा स्वरूप और जो कर्मरग है, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायें हैं, विकल्प हैं तरग हैं, ये मेरे

कुछभी नही हैं। मेरा बिगाड मेरेसे नही हो रहा। मेरा बिगाड उसपर विषयसे हो रहा। वह विषयमे ही तो आया। उसे। इस मोहीने दृढ़तासे अपनाया। ज्ञानी जानता है कि मैं तो एक चिन्मात्र हूँ थोडा अन्दाज करलो कि ऐसो कोई लक्ष्य रख रहा हो। और उसके घरमे कुछभी कठिन बाधाये आये, कोई गुजर गया, कोई वियोग हो गया तो उस स्थितिमे ज्ञान ज्ञान रखने वाला दु खी तो नही होता वह जानता है कि परद्रव्य हैं। परतत्त्व है, परसत्ता है, वह अपने सत्त्वसे अपने आपमे खुदमे है, मेरी उससे हानि कुछ नही है, और एक अज्ञानी मोही परपदार्थमे आत्मीयताकी इतनी बुद्धि किए हुए है कि किसी इष्टके गुजर जानेपर वह अपनेको महा दु खी कर लेता है। वह मानता है कि मेरे लिए तो दशो दिशायें सूनी हो गई। मैं तो नष्ट हो गया। बरबाद हो गया। ज्ञान और अज्ञानका कितना महान अन्तर है।

ज्ञानप्रकाशके प्रयत्नकी शान्तिसाधकता—शान्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिये ज्ञानप्रकाश पानेका। शान्ति का कोई दूसरा उपाय नही है। और ज्ञान प्रकाश भी क्या ? निजमे इस भेदविज्ञानके बल से केवल एक चित्तप्रकाश मात्र अपने आपको ग्रहण करले, पकड़ ले ऐसा चाहिए ज्ञानप्रकाश। इसीको कहते हैं बोधि-समाधि परिणामविशुद्धि, स्वात्मोपलब्धि। यह इस जीवने अब तक नही पाया। उसकी निशानी यह है कि यह अभी तक ससारमे रुलता फिर रहा है। भेद विज्ञान होने पर फिर रुलनेका कोई कारण न रहेगा। नि.शंक बात है। जैसे यहा आग पर कोई चीज हो तो जले, पानीमे कोई चीज पडे तो गल जाय। जैसा अनुकूल उपादान दीखता है वैसा वैसा होता है। यहा कोई शंका नही करता, रोटी बेला, तवे पर डाला, आग मे डाला, पक गई, वहाँ कोई वह शंका नही करता कि कल तो इस तरहसे रोटी बनी थी, पता नही आज उस तरह से बनेगी या नही। कल तो आग से रोटी सिकी थी, पता नही आज भी सिकेगी या नही। किसीको ऐसी शंका तो नही होती। आया समय, बना लिया, बन गई। जो बात जिस विधिसे होने की है उस विधिसे वह होती ही है, उसमें शंका नही। तो जिसकी दृष्टि, जिसका उपयोग इस खुद निज मे है, परमार्थशरण स्वभावको छूकर केवल एक अभेदस्वरुप को लेकर जो आत्मप्रतीति करेगा उसको अशान्ति न रहेगी उसे बाधाये न होगी, ससार मे वह न रुलेगा जन्म मरण से मुक्त हो जावेगा। जीव की सब अवस्थाओ में सार अवस्था है तो अपने एकत्वमे रत होने की अवस्था है। जो इसके लिए प्रेरणा दे वही मेरा पिता, वही मेरा बन्धु, वही मेरा शरण, और जो इस एकत्व मे हटाये, कही विकल्प में पहुँचाये ऐसा व्यवहार बनाये तो वह तो मेरा मित्र नही, बन्धु नही, पिता नही, रक्षक नही। वह तो सब एक ससारके खाते मे

ही लिया है। कम से कम इतना भी अनुभव हो, ख्यालमें आये कि हम अभी अपने असली कर्त्तव्य से बहुत दूर हैं, हम यहां केवल, सारभूत एक सम्यक्त्व रुप कर्तव्य की ही बात कह रहे। इस कर्तव्य को पालने पर बाकी सब कर्तव्य भेद विज्ञान मे आसान हो जाते हैं। जो वास्तविक हूं, जो खास मैं हूं, जो सहज हूं उस रुपका दर्शन होना, उसका अनुभव होना, उसकी प्रतीति होना, उसे ग्रहण कर लेना, यह मैं हूं। इस दृष्टिमें विपदाका काम नही है।

अत्यन्त निर्लेपतामें सम्यक्त्वका अभ्युदय—जैसे किसी गणितका उत्तर थोड़ी गल्ती, कर लेने पर माफ के योग्य नही होता, वह तो गलत ही हुआ, ऐसे ही अपने आपमें धर्म पालनकी दिशामें अपने आपको ले जानेके हिसाब मे थोड़ी भी गल्ती माफ नही होती। जैसे कोई सोचे कि घर में हम हैं, हमारी स्त्री है, दो हीं प्राणी हैं, खूब धन है, खूब मौज है। किराया आता है, किसीको सताते नही, किसी से बुरा बोलते नही, किसीका दिल दुखाते नही और हमको अन्य सबसे वैराग्य हो गया, किसी अन्य से हम व्यवहार करते नही तो उसमें तो बहुत राग छूट गया, किसी अन्यसे हम व्यवहार करते नही तोइसमेतो बहुत राग छूट गया। सबका ही राग छूट गया। सिवाय एक स्त्रीके हमारा और किसी से अनुराग नहीं, ऐसा सोचकर ऐसी कोई धारणा बनायें कि बस हमको तो ९९ प्रतिशत सम्यक्त्व हो गया, याने रुपये मे ९९ पैसा सम्यक्त्व हो गया और एक पैसा रह गया सम्यक्त्वमे बाधा देने वाला, क्योकि मुझे एक ही स्त्री से प्रीति है बाकि से नही, तो केवल रुपये मे पैसा भर कमी है, अरे ऐसा न होगा। चाहे एक स्त्रीमे प्रीति हो, चाहे उसमें हो चाहे बहुतमे हो, सम्यक्त्वका वहां अश नही है, व्यामोह जहां हो वहा सम्यक्त्व नही है। बल्कि यह सम्भव है कि आप अगर एक जीवमे मोह बनाये हैं तो वह मोह आपका प्रबल है अन्य सारे जीवोंको पर मानकर, एक अन्यको अपना माननेका क्या मतलब? उन्होंने स्वरुपसे अत्यन्त उपेक्षाकी ओर एक जीवकी पर्यायमे ही मुग्ध हो जाऐ सो और उल्टा प्रबल मोह पडता है। माफी नहीं है, यहा तो जैसे सम्यक्त्व की दशा आती हो उस प्रकारसे पूर्णरुपसे उद्यम हो, बात हो तब ही वह सम्यक्त्वकी ज्योति होती है, इतना निरन्तरका अभ्यास न होना ही एक खुद का प्रमाद, खुदका बैरी बन रहा है। जीव करते भी और कुछ नहीं है। हर जगह केवल ज्ञानका अभ्यास बनता रहता हैं ज्ञानमे कुछ न कुछ जानकारी बनी रहती है। हर जगह काम यही करते हैं। इसके अलावा दूसरा व्यापार नही करने कोई भी जीव कोई दुसरा व्यापार कर ही नही सकता। बस ज्ञानमे व्यापार बनाया, ज्ञानमे कल्पना, ज्ञान की ही बात। न कोई चीज बना सकते हैं न कोई किसी दूसरे का और कुछ कर सकता है। न सुख कर सकता है न दु.ख कर सकता है। कुछ भी करनेमे समर्थ नही है। केवल एक अपना ज्ञान विकल्प बनाते

है। तो हमारे हाथतो कुछ नही आता करोड भी कमा लिया हो तो भी वहां क्या हाथ आया ? इस जीवमें कौनसी समृद्धि बनी ? कौनसा एक उद्योत पाया ? शान्ति नही पाया, कुछ अभ्युदय नही भी है। अपनी बात कम आनेका ही नाम कमाना है। जैसे कहते है कि हमने खूब कमाया, तो उसका अर्थ है अपनी बात बहुत कम आई। कमाना तो एक हानि है, क्षति है। जैसे कोई अपनाबलनष्ट करते हुए खुशी माने तो समझता है वह समृद्धि है और हो रही है क्षति। इसी तरह परद्रव्यके सम्पर्कमें लाभमें, सग्रहमे यह जीव खुश होता है मगर हो रही इसकी हानि

तत्त्वदर्शीकी पावनता;—जिसने तत्त्व देखा उसको सर्वत्र दिखता, जिसने नही देखा उसे अनेक यत्न करने पर भी नही दिखता। कर्म कैसे हटते है, शान्ति कैसे मिलती है। सारी बात तत्त्वदर्शीको बिल्कुल आसान है क्योकि वह स्वाधीन है, अपने आपकी ही, अपनेमे बात है, स्वयके स्वरूप रूप है। तुमने तो यह उद्यम कियाकि सब जान गए। सच जाननेके सामने इसका शरण और वैभव कुछ है ही नही। सारी उन्नति, सार, अभ्युदय, सच समझ जानेमें है। और सारा नुकशान, संसारका रुलना एक असत्यको सत्य समझ लेनेमें है। भीतर के इस भेदविज्ञानकी महिमा भेदविज्ञान अथवा उस भेदविज्ञानके लायक पुरुषही समझ सकता है। जिस तत्त्वके समझने पर छल कपटका कोई काम नही रहता। मायाचार का भाव नही रहता। कहां मायाचार करना ? प्रसग ही नही रहता। चाहे क्रोध सताये और किसी समय मान कषाय भी सताये अथवा परिस्थितिवश लोभ भी करना पड़े लेकिन हर परिस्थितियोमें आन्तरिक माया ज्ञानीके नही रहती है। यही कारण है कि इस मायाको शल्य बताया गया है। सरल होओ सबके हितैषी होओ सबको क्षमा करनेका परिणाम रखो। किसीभी जीवसे अपने आपको बड़ा अनुभव मत करो। भले ही कोई पर्यायमे तुच्छ है, हो, हम उसकी पर्यायकी तुच्छताको दृष्टिमें लेकर अपना अनर्थ क्यो करें ? पड़ी है मुझे ? हम सर्वत्र द्रव्यदृष्टि करके, सब जीवोंमे परमात्मस्वरूप निरखकर अपने विचारमे, अपने उपयोगमे उस परमात्मस्वरूपकी आस्था बनायें। जो आत्मार्थी पुरुष है, जिसको आत्मकल्याणकी वाञ्छा है उसके गर्व नही रहता। किसके आगे गर्व करना ? जितने जीव है सब मेरे स्वरूप के समान हैं। कोई अगर तुच्छ पर्यायमें है, मनुष्य होकर भी कुछ एक हल्की दशामें है तो कर्मका रंग है वह तो हल्का नही है। कोई भी जीव हल्का नही है अपने चैतन्यस्वरूपमे। किसको गर्व दिखाना ? ज्ञानी पुरुषके मान कषायका भाव नही रहता। क्रोध करके किसका बिगाड़ करना ? कौन बिगाडके योग्य है ? मेरा कोई बिगाड़ करता ही नही। मेरा कोई बिगाड़ करने वाला ही नही, फिर किसपर क्रोध हो ? कोई करता हो कुछ प्रतिकूल क्रिया तो उसकी मूढ़तासे उसे खुदका बिगाड़ करने वाला समझे। भले ही चाहे वह दूसरा अभिप्राय

में खराब है, लेकिन वह अभिप्रायमें खराब है जो खुद अपने आपके लिए है। जैसा योग है वैसा परिणमन करता है। किसी भी परपदार्थका यत्न मेरा सुधार या बिगाड करनेके लिए नही होता है। ज्ञानी जीवको किसी पर क्रोध नही आता। लोभ कषाय भी वह नही रखता। है समीपमें, पुण्योदय है तो उसका उपयोग करनेसे नहीं चूकता। उसका कारण यह है कि उसे एक तो यह श्रद्धा है कि ये बाह्य पदार्थ हैं, मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूं, मेरे भावसे ये पदार्थ खिचकर नही आये। भले ही पूर्वमे भाव विशुद्ध किया। पुण्यका बंध होनेसे, उदयसे यह योग समागम मिला, फिर भी आत्मा तो केवल भावोका कर्ता है और वह केवल भावो के करनेमे ही समर्थ है। उसको किसीपर क्रोध नही होता। कही लोभ कषाय नही जगती। ऐसी जिसकी सब कषाये मंद हैं, निरन्तर धुन एक अपने एकत्वगत् चित्स्वरूप चित्क्रिया पर ही रहती है, और हर जगह विवेक करके अपने आपके स्वरूपको समझता रहता है वह पुरुष किसीपर एहसान नही कर रहा, है वह अपने आप दु.खोंसे मुक्त होनेका काम कर रहा है

सहजस्वरूपको अप्रतीघातरूपसे दृष्टिका कर्तव्यः—भैया! खुदमे ऐसी दृष्टि जगे, अपने आप ऐसी पकड बने कि जैसे एक्सरा लेने वाला यन्त्र केवल हड्डी की फोटो लेता, खून, मास, चाम वगेरह को छोड देता है ऐसे ही यह मैं उपयोग केवल अपने सहज ज्ञानज्योति स्वरूपकी पकड करू। बाकी सबको छोड दूं। सब अजीव है सब कर्म रंग है, सब बाह्य-पदार्थ हैं, सब बेकारकी चीजे हैं। मेरा तो एक चित्‌घन चैतन्यरूप चित् है मेरी ऋद्धि है, इस रूप ही मैं हूं, ऐसी जिसने अपने उपयोगमें पकड बनाया बस वही परमपुरुष है। यही एक कल्याणकी बात है। हम आप सब जो कोई भी ऐसी वृत्तिसे रहें और अपने आपके स्वरूप मात्रका ही ग्रहण करे, बाकी सब पदार्थोमें सत्यज्ञान रखें, विमुग्ध न हो, तो अपने कल्याणका पात्र है। और वह बुद्धिमान है। ऐसे ज्ञानस्वरूपकी आराधनाके लिए हमारा तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर हो। विनाशीक चीजका उपयोग करके अगर अविनाशी चीज प्राप्त कर ली तो यह कितना बडा भारी लाभ पाया? बाहरमे जितना जो कुछ होता है हो, उससे अपनेमे कोई विकल्पजाल न उठायें। खुदके लिए तो यह ही निर्णय है कि मैं अपने स्वरूप की ही धुनमे होऊं, पकडमे होऊं, शान्ति पाऊं, कर्म-मुक्त होऊं। वह ही आवश्यक मेरा काम है, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई कृतव्य नही है।

जीवकी ज्ञानमें ही कुछ परिणमनेकी शक्यताः—यह जीव ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञानका ही काम किया करता है। सर्वत्र यह जाननेका काम करता है, पर जानने की ही ऐसी

विशेषता होती है कि जिस प्रकारका विषय होता है जाननेमे, उस प्रकारका विकल्प उत्पन्न होता है। यह बात जैसे इन बाहरी पदार्थोंके लिए है कि जिस पदार्थको हम जानते है उस पदार्थमें का विकल्प उत्पन्न होता है, आकार बनता है। तो यहा तो बाहरी पदार्थोंके साथ एक उपाधिका सम्बध हैं, किन्तु जब यह ज्ञान अपने आपमें झलकी हुई कर्म परिणतियों को जानता हैं तो इसमे विभाव रग होता है और वह एक भाव्यभावक भावको संकरसे दूषित होता है। जानता है। यह सर्वत्र जाननेका ही काम करता है, वस्तुत: पर जाननेके साथ जो रंग आता है, राग होता है वह इतना लिपटा हुआ होता है, ज्ञान की ही एक अद्भुत लीला है कि ज्ञानका स्वरूप ही सारा रगीला हो जाता है। जैसे जलमे कोई रग पड़े तो जल रगीला हो जाता है, वहा भी भेद मालूम नही पड़ता। जो कि साक्षात् भेद है, स्पष्ट समझमें आता है, जलकी परिणति ही नही है। रग रग तो एक अलग चीज हैं जो पुड़ियामे रखा हुआ था वही बिखर गया, और जलका सम्बध पाकर इतना फैल गया कि वह रग जल की चीज ही नही, परिणति ही नही है, फिर भी जलका और रगका भेद जानना मुश्किल हो जाता है। तो यहां जब ज्ञान उस कर्मकी कृपायको जानता है, क्रोध, मान, माया, लोभ अनुभाग जब इसमे प्रतिफलित होता है तो यहा तो उस प्रतिविम्बरूप ज्ञान ही परिणम गया। यहां तो यह परिणति ज्ञानकी हो रही और जलमे रग आया है तो वह रंग परिणति जलकी नही हो रही। वहा इतना भेद है स्पष्ट, तो जहा इतना स्पष्ट भेद भी परखमे जिसके नही आया उसको अपना ज्ञानस्वभाव और ज्ञानमे आयी हुई रगीली परिणति इनके भेदको कोई क्या समझे? कैसा है यह विवेचक कि अपने आपमे अपने ज्ञानस्वभावको उसप्रकार प्रतीतिमे लिए है कि ज्ञानकी ही परिणति जो रंगीली है उस परिणतिसे ही भिन्न समझता है, इसके लिए उदाहरण जल और रंगका उतना उपयुक्त नही है, क्योंकि वहा स्पष्ट भेद है। दर्पणका दृष्टान्त अधिक उपयुक्त हैं। जैसे बाहरी पदार्थ सामने आया तो दर्पणमें प्रतिविम्ब आया। वह प्रतिबिम्ब बाहरी पदार्थकी परिणति नही हैं। वह दर्पणकी परिणति है। दर्पणकी परि-णति होते हुए भी विवेकी पुरुष स्पष्ट जानता है कि यह दर्पणकी परिणति तो भले ही है लेकिन यह प्रतिबिम्ब दर्पणका नही है। प्रतिबिम्ब तो बाहरी पदार्थका है और उस प्रतिवि-म्बको बाह्य पदार्थकी ओर ढकेलता है। जानने वाले पुरुष दर्पणको एक स्वच्छ ही अंगीकार करता है, ऐसेही परमार्थ ज्ञानी पुरुष अपने आपके उपयोगमें जो प्रतिविम्ब है, प्रतिफलन है, क्रोधका, मानका, मायाका, लोभका उससे अपने आपको स्पष्ट भिन्न निरखता है और वह यद्यपि प्रतिफलन जीवकी परिणति बनी है, जैसेकि प्रतिविम्ब दर्पणकी परिणति बनी है, ज्ञानने जो रूप रखा है, ज्ञानने जो विकल्प किया है, ज्ञानमें जो कुछ मलीमसता आयी है उस

रूप तो यह उपयोग परिणमा, ऐसी परिणति रहने पर भी ज्ञानी जीव जानता है कि यह मलीमसता ज्ञानकी गांठकी नही है, यह है कर्म उपाधि और वह उसको कर्मकी ओर ढकेलता है। जैसे समझदार पुरुषदर्पणमें आयी हुई छाया को बाह्य पदार्थकी ओर ढकेलते है, यह दर्पणका नही, यह तो उसका है। इसीतरह ज्ञानीपुरुष इस समस्त राग रंगको, इससमस्त कषाय परिणामको कर्मकी ओर ढकेलता हैं। यह तो सब उसका ठाठ है, मेरा नही हैं। निमित्त नैमित्तिक भावके परिचयका कितना सदुपयोग ज्ञानी पुरुष करता है कि उसको स्पष्ट विविक्त भिन्न स्वच्छता मात्र अपने आपका स्वरूप अनुभवमे आता है,

अन्त परिच्छेदसे ज्ञानित्वः—अन्तः स्वभाव व विभावमे जिसने भेद ज्ञात किया उसे ज्ञानी कहते है। लौकिक बातोमें चतुराई आ गई, कोई ढंग आ गया खानेका बोलनेका, व्यवहारका, इज्जतका, किसीप्रकार की चतुराई बन गई या बनाली तो वह ज्ञान नही। ज्ञान वही है जो भाग अपने ज्ञानस्वरूपको सबसे निराला अपने ज्ञानमे लें, रस ले, स्वाद लो ऐसा होनेके लिए कितना विरक्त होना चाहिए और कितनी तैयारी होनी चाहिए कि मानो अपना सब कुछ जाना पहिचाना समझा, कमाया, सब कुछ जावो, छिदो भिदो, ले जावो, कुछ भी हो, सब कुछ धूल मे मिले, सब कुछ कही भी जाव मैं तो अपने आपके अन्त ज्ञानस्वरूपमे ही सुरक्षित हूँ, ऐसी तैयारी होती है। मुक्षुकी। जो इस संसारसे सदाके लिए यात्रा कर जाने वाला है, उसको ससारकी किसीभी चीजमे मोह नही होता। बाहरी चीजमे तो व्यामोह करता ही कोई नही है। अपने आपके परिणाममे परिणमनमे, राग रगमे, अपनी समझमे, अपने विकल्पमे यह जीव व्यामोह किया करता है। परपदार्थमे न तो कोई मोह कर सकता, न राग द्वेष कर सकता, न कोई किसीको चाहता है, न चाह सकता है, न कोई किसीसे प्रेम कर सकता है। न द्वेष कर सकता है। बाह्य पदार्थपर तो इस जीवका कुछ वश चलता ही नही है। मोह करता है तो अपने विकल्पसे, राग करता है तो अपने विकल्कसे। द्वेष करके भी द्वेषसे राग तो कर ही रहा है, अन्यथा द्वेषसे अगर द्वेष हो जाता तो उसको फिर कोई उलझन, अशान्ति ही नही होती। यह द्वेषसे भी राग करता, रागसे भी राग करता। ऐसा व्यामोह इस जीवके पड़ा है कि अपने आपमे, जो इस उपयोग पर्देपर चित्रण हो सकता है उसको ही समझता है कि यह ही मैं सर्वस्व हूँ, उस चित्रणसे निराला अन्त प्रकाशमान ज्ञानस्वरूप कुछ है, इसका परिचय नही कर पाता। और, फल यह होता है कि सारा जीवन जो दुर्लभतासे मिला है सब अशान्तिमे खो दिया जाता है। यह भी एक कला है, पर उपदेश कुशलता होना, सभी मे है, पर इस कलासे तो खतरा है। अपने आपका लाभ नहीं। जो बोले, जो समझावे वह अपने आपको समझाता हुआ बोले। अपने आपमे अनुभव करते हुए

बोले । तो जैसे किसीको परोपदेशका व्यसन होता है तो किसीको सुननेका भी व्यसन होता है । सुनना भी सुनना वही है कि जहा इतनी तैयारी से सुना जाता हो कि जो बात सुनी जा रही है वह एक मार्ग है और उस मार्गसे अपने आपकी इस दृष्टिपगको चलाता है, यही चलाता है । बल्कि वक्ता की अपेक्षा श्रोताका दर्जा उत्तम है और उसे हितयत्नका अवकाश बहुत है । उसे अलगसे कुछ नही सोचना है, अलगसे कुछ नही पहिचानना है, एक शब्दतार के माध्यमसे अपने आपकी दृष्टिको ले जाना है । बडे आरामसे । जैसे कोई पाये हुए धनमे एक एक पाईका सदुपयोग करनेकी चाह रखता है ऐसे ही ज्ञानीके एक-एक शब्दको बोलें तो सुने तो उसके सदुपयोगकी धुन रहती है । सदुपयोग बिना मेरा बोलना न जाय, सदुपयोग बिना मेरा सुनना न जाय । और इसी लिए सुनना भी सीमित और बोलना भी सीमित है । उपयोग बने सही उसका ही इसको लाभ है और यथार्थ उपयोग इसमे ही है कि अपने आपके उस सहज भाव, पारिणामिक भाव, निरपेक्षभाव रूपमे अपने आपका परिचय हो ।

जीवकी अन्य से अशरणताकी बुद्धि से समताका प्रादुर्भाव:—इस जीव का मदद करने वाला दूसरा कोई नही है । और जिस पर कोई दृष्टि गडाता हो, यह पुत्र है, स्त्री है, मां है, कुटुम्ब है, अन्य लोग है, उनका उदय जैसा है वैसा होगा लेकिन उनकी दृष्टि करके तो यह अपनी बरबादी करता है और इस दृष्टिसे जिसको माना अपना वह कहलाता है बैरी । जहां एक परमार्थपथका निर्णय कर लिया गया है-मुझे तो परमार्थपथपर चलना है, उसके लिए यह बात स्पष्ट समझमे रहती है कि सब निराले हैं वैसे ही घरमे बसने वाले जीव भी निराले हें, बल्कि बाहरके निराले अच्छे हें । उनके कारण उनका विषय बनकर हमे कुछ मलीमसता तो नही होती, और जिनमे संग बना, संगम बना उनको विषय करके तो पद-पद पर मलीमसता होती है । यथार्थ बात पहिचानने के बाद गृहस्थ बहुत समय तक संगममे नही रह पाता, पर जब तक रहता है तब तक उसकी मलीमसता नही रहती । सब ज्ञानका प्रताप है । जहा विशुद्ध ज्ञान जगा वहा कुछ भी बर्ते, कैसे भी हो, उससे मलीमसता नही आती । उसको तो सबसे निराला केवल एक निज तत्त्व की ऐसी धुन रहती है कि सदा निर्णय है, किससे क्या सम्बन्ध बनाना ? किसको क्या प्रसन्न करना ? किसको क्या कुछ भी सताना ? जब सर्व जीवोमे एक परमार्थ स्वरूपकी दृष्टि जगी है, उसको अब अपनी इस बाहरी रूप, बाहरी परिणति, पर्याय शरीरके लिए कुछ भी वाञ्छा नही रहती । सुख दुःखको समान मान लेना यह सामान्य तपश्चरण नही प्रशसा निन्दाको समान समझ लेना यह सामान्य उद्यम नही । इस समतासे पहिले इस ज्ञानी की ऐसी प्रतीति परिस्थिति रहती है कि निन्दा की अपेक्षा प्रशसा अधिक भयानक है । अपमानकी अपेक्षा सम्मान अधिक भयानक

है। दुःखकी अपेक्षा सुख अधिक भयानक है। दुःखमें तो एक सत्य प्रसन्नता रहती है परन्तु सुखमें किसीके सत्य प्रसन्नता नही रहती है। यह बात अपने अनुभवसे भी परख सकते हैं। कष्ट आते हैं। शारीरिक या अन्य प्रकारके उस समयमे कितनी धीरता, कितनी शूरता, कितनी आत्माकी सम्हाल, कैसा प्रभुकी भक्ति, कैसा विशुद्ध ध्यान, ऐसा वैभव, ऐसा श्रृंगार क्या विषय सुखमे भी किसीको प्राप्त हो कक्ता है? जब किसीभी इन्द्रियका सुख भोगा जा रहा हो तो क्या उस समय उसके धीरता एव वीरता रहती है? उसका शुद्ध वात्सल्य, प्रभुभक्ति, आत्माकी सुध, ये सारी बाते ठहरती है क्या? आनन्द तो एक अपनी ज्ञानवृत्तिके अनुसार होता है। ज्ञानकी जैसी वृत्ति होती है उसप्रकारका उसको आनन्द होता है। बाहरी समागम, बाहरी बातोंसे आनन्दका निर्णय नही है। अपना भीतरी प्रकाश, भीतरी ज्ञान, भीतरीवृत्तिके अनुसार आनन्दका निर्णय है। ज्ञानकी विशुद्धता दुःखमे हो, निन्दा मे हो, अपमानमें हो, यह बहुत कुछ सम्भव है, पर सम्मानमे, प्रशंसामे अपने, आपकी सम्हाल रहे, यह कुछ विशेष शूरबीरोका ही काम है। ऐसे ही कुटुम्ब मित्र परिवारसे बिछुड गए, कुछभी कोई पुरुष अपने आपको सम्हाल करले, ज्ञानको सही बनाले, उसकी अपेक्षा उसको वीरता अधिक होती है। जो कुटुम्बके बीच रहकर भी उससे निर्लेप रहता है। सत्य ज्ञानका प्रकाश रहता है कि यह मेरे लिए कुछ नही है।

आत्महितमें अन्तस्तत्त्वके निर्णयकी आवश्यकता—मेरे लिए मात्र मैं हूँ, ऐसी परिणति, अनुभूति, प्रतीति उस सतके रहती है, जिसने परमार्थ तत्त्वकी निरख करली है। वह तत्त्व क्या? वह जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष इन सातोसे अलग है। ७ बिना नही है तो भी ७ से अलग है। और, इसी बातका प्रकाश दिया है सतोंने, आचार्योंने कि ये ७ तो हैं अभूतार्थ और वह आश्रय तत्त्व है भूतार्थ। सुनकर कुछ हैरानी हो सकती कि क्या मोक्ष भी अभूतार्थ है? क्या सम्बर और निर्जरा भी अभूतार्थ है? क्या जीव भी अभूतार्थ है? आश्रव बंधके बारेमे तो झट समझमे आता है कि यह तो भूतार्थ है, लेकिन जीव, मोक्ष ये भी अभूतार्थनयसे ही समझ मे आते हैं, यह समझनेमे कुछ थोडी हैरानी सी होती है, लेकिन यहा परखिये कि क्या अभूतार्थके विषयका आलम्बन करते समय किसीको सम्यक्त्व अनुभूति हुई? मोक्षको भी पहिचानें। मोक्ष सिद्धशिलामे है। वहा रहते है, सिद्धशिलासे कुछ ऊपर कर्मसे छूट गए है। यह ही तो मोक्ष कहलाता है। ऐसे मोक्षका भी कोई वर्णन करे, जानकारी करे, लोकके अन्तमे अपने दिमागको पहुचादें, ज्ञानको पहुचादे, ऐसी स्थितिमें भी निर्विकल्पता आती है क्या? जितने भी भेद हैं वे समस्त भेद सम्यक्त्व का कारण नही हैं, पर भेदसे समझे बिना हम उस अवक्तव्य परमार्थ तत्त्वका परिचय भी नही

पा सकते ऐसे ही एक समस्या है यह कि जैसे कोई पूछे कि सीढी पकडनेसे ऊपर चढ़ेंगे या सीढ़ी छोडनेसे ? तो उसका कोई उत्तर न बन पायगा। सीढी पकड़ने में कोई ऊपर नहीं नही चढ़ता और सीढी छोढनेसे भी कोई ऊपर नही चढता। सीढी पकडकर छोड़ने से ऊपर चढ़ता है। सीढ़ी पकडे बिना भी ऊपर न आयगा, सीढ़ी छोडे बिना भी ऊपर न आयगा। ऐसे ही इस परमार्थ पदका रहस्य व्यवहार पाये बिना भी न आयगा, व्यवहार छोड़े बिना भी न आयगा। और, इसमें दिमाग क्यो लगाया जाय ? जैसा होना होगा सो हो जायगा। क्या अनेक बातोंका निर्णय करना आवश्यक है ? श्रेणीके चढ़ने वाले ऋषी संतोको अप्रयत्न दशा-मे ८ वे ९ वे १० वे गुणस्थानमे रहने वाले संतोंको क्या कुछ निर्णय रहता ही है ? मैं इस परिणाममे हूँ, मेरे ये कर्म छिद रहे है, मेरी ऐसी स्थिति हो रही है। ये कर्म कट रहे है, क्या ऐसी उनकी जानकारी चलती है ? खूब अधिक जानकार हो कोई, श्रुतकेवली भी हो जो समस्त द्वादशांग रहस्यको सबको जानते है । क्षण--क्षणमे कर्मकी जो दशा होती है उनको समझते हुए भी, श्रेणीमे चढ़ते हुएमे तो विफल्प न करनेसे उनमें उपयोग नही उलझता। जानने मे आया तो भी ऐसा सामान्य जाननेमे आता कि वह जाननेका जो उपयोग है वहां नही विकल्पना बनती। जो जाननेका लो उपयोग चाहते है वह नही बनता। तो सभी चीजो का निर्णय करना आवश्यक नही, किन्तु तत्त्व क्या है, निरपेक्ष भाव क्या है ? पारिणामिक भाव क्या है, इसका निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक है। एक इस ही अंतस्तत्त्वका अनुभव किए बिना, जाने बिना सब कुछ जानना भी बेकार है। ऐसी अन्य बातोंके जाननेकी महिमा बतायी जाय, बनाई जाय, समझी जाय तो बहुत बडे--बड़े वैज्ञानिक लोकमें हैं, क्या हम यह कह सकते है कि वे सही मुक्तिके मार्गमे है। तो बात यहां यह समझना कि अनेक बातोकी जानकारी हमको आवश्यक नही, किन्तु अतस्तत्त्वको जाननेके लिए जो जो भी जानकारिया चाहिए वे सब आवश्यक हैं, और, ये सारी कलाये तो अपने पौरुषके बलपर जीव चाहे तो अपनेमें सहज पा सकता है।

अन्त. पवित्रताका लाभः—उपदेश सुनकर भी उपदेशसे कोई कुछ कर नही पाता। जो पाता है तो अपने आपमें अपनी ज्ञानवृत्तिसे सहज पाता है। कोई उपदेशका सहारा लिए बिना भी अपने आपमें ऐसा ज्ञान पौरुष बना सके तो वह भी पा सकता है। आखिर पायेंगे सब सहज ही। बाह्य कारण का तो नाम लेना और एक मार्गमे साधन बनता है, पर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति किसी भी बाह्य पदार्थसे नही होती। इसीतरह शान्ति भी किसी पदार्थसे नही होती, हो लेकिन कहते हैं कि जिसके पास जितना धन हो उसे उतनी ही आकुलता रहती है, तो ऐसे ही समझिये कि जिसके बाह्य पदार्थके विषयमें बहुत ही लगाव-व्यामोह का

रग होना बने वह उतना ही गरीब है। दीन है, कभी कभी परखमे भूल हो सकती है। जैसे कि लोग कहने लगते कि सीता के जाने पर राम इतना विह्वल हुए कि जितना विह्वल यहाँ कोई हो तो उसे पागल कहेगे, भरत चक्रवर्तीको इतना क्रोध आया था कि उससे बढकर प्रचड और कोई क्रोध नही हो सकता। लेकिन जो समर्थ हैं, ज्ञानी है उनके क्षोभ भी आये तो वह बहुत बडे व्यापार को बना देता है। जो असमर्थ हे वहाँ बहुत—बहुत सोच करके, तीव्र कषाय करके भी साधारण व्यापार कर पाता है। तो दूसरेकी परख से क्या पडी है। खुदमे खुदकी परखसे ही तो काम निकलेगा। कितना एक सयत मार्गसे चलनेकी आवश्यकता है कि जिसको सिवाय एक आत्महितके चित्तमे किसी प्रकारकी धुन नही होती। तो परखना है अपने आपमे बीती हुई बातको और ऐसा रास्ता निकालना है कि हम भीतरमे कैसा पौरुष बनायें कि हम उस मलीनता से दूर हटे और सदाके लिए पवित्र बन सकें।

बाह्यक्षेत्रस्थ पदार्थोंसे आत्माकी प्रकट भिन्नता—आत्माके भ्रमसे उत्पन्न हुआ दुख आत्माके भ्रमके नाशसे ही नष्ट होना सम्भव हो सकता है, उसका और कोई दूसरा उपाय नही है। वह भ्रम क्या है? जो आत्मा अभी अनात्मा हैं उसमे यह मैं हूँ इस प्रकार की जो प्रतीति है यही एक भ्रम है। जितने भी दुख है वे इस भ्रमके ऊपर लदे हुए हैं। भ्रम दूर हो जाय तो सारे दुख खतम हो जायेंगे। कितने भ्रम लगे हुए हैं, परखें और उन भ्रमोमे अपनेमे कोई बात जची हो तो उस पर खेद लाये, पछतावा करे और उस भ्रमका ध्वंस करने के लिए धुन बनायें। प्रथम तो व्यामोही जीवोको यह ही भ्रम लगा है कि ये मकान, घर मेरे हैं। यह कितना मोटा भ्रम है। ये जड है, अचेतन हैं, कोई सँबन्ध नही, परक्षेत्रमे हैं। मतलब क्या? कहा तो यह ज्ञानानन्दमय परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा और कहा अत्यन्त विपरीत ये बाह्य पदार्थ, किन्तु जिनको इतना तीव्र भ्रम रहता कि और किसका है? मेरा ही तो है यह मकान। और उसकी शोभा देखकर, उसका निर्माण देख कर खुश होना, यह सब बहुत मोटा भ्रम है। इसी तरह धन वैभवका भ्रम। और कुछ पास आये तो देखो कुटुम्बका भ्रम, पक्ष पार्टीका भ्रम, मित्रोका भ्रम, ये मेरे होते है, और किसके हैं? मेरे बहुत आज्ञाकारी है, विनयशील हैं और इनका मै ही तो जिम्मेदार हूँ। ये मेरे से ही तो लगे है। उनको निरख निरखकर एक अपने आत्मामे हर्ष होना, लगाव होना, आत्माकी सुध खो देना और उससे ही अपना महत्व आकना, मैं इन्हीसे ही तो महान हूँ। ये न हो तो मेरा महत्व क्या? फिर तो मैं कुछ नही हु। अपने आपके स्वरूपके कारण अपना महत्व नही आकते और इस चेतन परिग्रहके कारण, कुटुम्ब के कारण, मित्रो के कारण अपना महत्व आकना, इन्ही से तो मैं महान हूँ और उन्ही के लिए सारे श्रम किए जाते और श्रम करके अपनेमे गर्वका

भी अनुभव होता है। जैसे कोई साड़ किसी धूरेको सींगसे उछाले तो वह अपनी पीठपर ही तो फेकता है। और कुछ कूडा फेकनेके बाद चारो पैर पसारकर, पूछ उठाकर, सिर उठाकर अपनी आँखे उठाकर कैसा गर्वसे अपनी मुद्रा बनाता है। तो जैसे इन बैल साडोकी जरूरत है ऐसे ही यो ही मनुष्यकी करतूत है। बाहरी पदार्थोको अपनी कल्पनामे उडेरकर जोडकर संग्रह विग्रह करके एक गर्वसे अपने शरीर को तानकर या जो भी मुद्रा बन गई हो, अनेक मुद्रायें होती है, उनमे अपनेको गर्व का अनुभव करता है। पर आत्माकी सुध इन वृत्तियोंमे नही बनती। और कुछ अन्तः चले तो इसको शरीरमे आत्मबुद्धि है। शरीर दुर्बल है मै दुर्बल हूँ। शरीर मिटे तो मै मिटता हूँ। शरीर की परिस्थिति देखकर अपने आपकी परि-स्थितिका अनुभव करता है। अरे शरीर अत्यन्त कमजोर है तो रहो, पडा है, जहा है तहा है। इस शरीरसे मेरा क्या मतलब ? मैं तो इससे निराला एक चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा हूँ। वह जाय तो जाय इस चैतन्यरसका स्वाद लेता हुआ मरे तो वह मरना नही, और जो बाहरी पदार्थोके रसका स्वाद लेता हुआ जिन्दा रहे तो भी मरा हुआ है। तो ऐसे अपने एक अतस्तत्त्वमे एसी बुद्धि, ऐसी आत्मीयता होना चाहिए। देह प्रकट भिन्न है। जला दिया जाता है। और ज्यादह कुछ सोचना हो देहके बारेमे तो दो बाते सोचिये। प्रथम तो इसमे जो घिनावनापन है क्या वैसा घिनावनापन इस आत्मामे भी है ? अरे मै आत्मा तो अनन्त आनन्द वाला हूँ। ये नाक, आँख, थूक आदिक क्या मैं हूँ तो देहमे इतनी तीव्र आशक्ति हुई एक तो यह सोचिये कि जैसे तुमने अनेको शरीर अपने हाथसे जलाये होगे वहही दृश्य अपने आपके इस शरीरमे लगावो। यहभी किसी दिन ठठरी पर बधकर जायगा। जला दिया जायगा इस देहमे कोई दम है क्या ? इस देहमे कौन सी सार बात है जिससे मैं इस देहमे इतना आशक्त होऊं।

अन्तःस्थ परतत्त्वोंसे आत्माकी विविक्तता—देहसे और अन्त चले तो अन्त देखा कर्मविपाक। मुझ पर जो कुछ बीत रहा हैं, जो रग हो रहा है, जो मलीमसता आ रही है वह तो कर्मविपाककी है। यह मै नही हूँ। मैं तो इनसे निराला चित्तवृतिमात्र हूँ मैं एका चैतन्यस्वरुप हूँ। दर्पणमे प्रतिबिम्ब आया तो वह दर्पणकी चीज नही है। रगीला हो गय दर्पण, पर वह प्रतिबिम्ब दर्पणकी निजकी जेबकी चोज नही है। रग हो गया। मैं इनसे निराला चैतन्यवृत्ति मात्र हूँ। और, इससे भी अन्त चलेतो मेरेमें जो विचारआते है, कल्पनाये उठती है, तर्कणाये जगती है, ये तर्कणाये, ये ज्ञानवृत्तिया ये कर्मके उदयसे तो नही होती। लेकिन कर्मका जितना क्षयोपशम होता है उतना यह प्रकट होता है तो वहां भी इतनी मली-मसता है कि इन्द्रिय और मनके द्वारसे ही हो सकता है। इसका आत्मपन स्वयं अपने-आपमे

सहज ही होता । तो क्षयोपशम औरकुछ उदय से सभी मिलकर कारण बने है । क्षयोपशम मे स्वय उदय बसा हुआ है । क्षयोपशम मात्र क्षय और उपशसमें नही बनता किन्तु उदयाभावी क्षय, उपशम और उदय इनके मेलसे क्षयोपशम होता है । तो यद्यपि वह ज्ञानवृति जो प्रकट हुई है वह ज्ञानभावसे हुई, किन्तु उसके साथ उदय भी लगा है इस कारण विचार नैमित्तिक है इन्द्रिय, द्वारा और मन, इनके निमित्तसे प्रकट होता है यह ज्ञान । सो यह विचारात्मक ज्ञान भी पर समझलें, इनमे परतत्र होकर ही मुझमें बात होती है । ये विचार ये तर्क, ये शक्तिया इनमे भी लोग आतमबुद्धि करते हैं तब ही तो कोई कुछ समझा रहा हो, उसे दूसरा न मान सकता हो, उससे उल्टा होता हो तो कुछ दु.ख मानता है, वक्ता क्योकि उसके विकल्पमे आत्मबुद्धि है । ओह यह मेरी बात है, ये लोग मेरी बात क्यो नही मान जाते कैसे विकल्पमें आशक्ति बुद्धि बनाया है, वह भी शल्य है, भीतर दु:ख प्रदान करता है धर्म चर्चा करते-करते भी लोगोमे आपसमे लडाई हो जाती है, जैसे बच्चे लोग खेलते तो हैं बडे मेलके साथ मगर उनका खेल प्राय करके बद (पूरा) तब होता है जककि उनमे लडाई हो जाय और थोडी मारपीट हो जाय । तो ऐसे ही यह जीव कब छोड़ता है यह खेल जबकि इसको कोई चोट पहुंचती है । भीतरमे निरखिये ये तर्कणायें, ये विचार, ये विकल्प, ये जानकारी ये मेरे स्वरुप नही, मेरा स्वरुप तो इनसे निराला है ।

चित्स्वभावको पहुंचमें यथार्थ विश्राम—अब कहां तक पहुँचना है ? चेतनको जो सहजवृत्ति है, बिना इन्द्रियका सहारा लिए, बिना मनका आश्रय लिए, अपने आप जो इसमें जगती हुई वृत्ति है वह भी मैं नही, किन्तु है वह मेरी शुद्ध वृत्ति तथापि वह भी परिणति है, परिणति नित्य नही, मैं अध्रुव नही मैं तो एक ध्रुव शाश्वत चित्पदार्थ हूँ, यहाँ तक जो आ सके उसके लिए पवित्रताका अवसर आता है, पर इसका जो इच्छुक हो, इस अंतस्तत्त्वका जो अभिलाषी हो वह अपनी सब हठोको बलि दे देता है, अपनी सब कषायोकी बलि दे देता है । वह अपनेको लोक दृष्टिमे न कुछ मानता है । मैं कुछ नही हूँ । मेरेको तो यही एक अध्यात्मरस चाहिये । इस अंतस्तत्त्वके पाये बिना जगतके जीव अब तक ससारमें रुलते चले आये हैं । वही स्थिति हम आप सबकी चली आयी है । अब इससे किनारा करके निज अंतस्तत्वकी ओर अभिमुख होऊँ तो इसमे ही हम आपका भला है । बाकी सब हठो को त्याग दें, भीतरी विकल्प वासनाओको त्याग दें । भला बतलाओ, लोग चाहते है कि मेरा बहुत से जीवोंमे नाम फैले । तो भाई अच्छी बात है । अगर ऐसा हो जाय तब तो बड़ी ऊँची चीज है, लोक दृष्टिसे, मगर जीव तो अनन्तानन्त है । अगर कुछ हजार या लाख लोगोंने कुछ झूठी प्रशंसा करदी तो अभी तो अरबो आदमी तो और भी छूटे हुए है । उन अरबो आदमियोमे

भी लो अपना यश प्रकट करो। प्रकट ही नही कर सकते। और मानो कि आजका माना हुआ सारा विश्व भी आपको जान ले, ऐसा हो नही सकता। तो भी तो और भी जीव छूटे हुए है। पशु पक्षी ये तो मेरे को कुछ भी नही समझते। और बाकी जीव तो अनन्तानन्त छूटे। तो फिर इन थोड़ेसे लोगोंमें अपने यशकी अभिलाषा करके अपनेमे मलीमसता क्यों बनायी जा रही है ? जीव चहता है कि मेरा सदा काल यश रहे, अरे इस अनादि अनन्त कालके सामने जब अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकी भी कुछ गिनती नही है एक कल्पकालकी भी सारे कालके आगे एक बिन्दु बराबर भी गिनती नही है तो सारेकाल में जब यश नही हो सकता तो फिर न कुछ बातमें प्रशसाकी चाह करके अपने को मलीमस क्यो बनाया जाय ? तो इन्द्रिय और मनके विषयमें आशक्ति न हो। देहमे बधा हूँ, कसा हूँ इस नाते से जो कुछ करना पड़ता है सो करो, लेकिन धुन होनी चाहिए कि मेरेमे अपने अन्दर बसे हुए एक सार को एक मक्खनको, एक जिसकी कोई उपमा नही दी जा सकती ऐसे अलौकिक तत्त्वको निरखे और इसके निरखने मे ही मेरे क्षण व्यतीत हो, इस भावना और पौरूष के अतिरिक्त लोकमें सब कुछ बेकार है।

शान्तस्वरूप शाश्वत सहज अन्तस्तत्त्वके ध्यानकी परमार्थशरणरूपता—शान्तिका उपाय शान्तिस्वरूपका ध्यान करना है। अशान्त व्यक्तिसे लगाव रखना और वह लगाव मोह रागद्वेषपूरक हो तो उस लगावसे शान्तिकी आशा करना व्यर्थ है। शान्ति चाहते है तो शान्त स्वरूपका ही ध्यान करना होगा। अब बाहरमे शान्त स्वरूपका ध्यान हो तो वह कहलाता है व्यवहारशरण और निजमें अन्त. स्वरूपका ध्यान हो, निज शान्तस्वरूपका ध्यान हो तो वह कहलाता है परमार्थशरण पर जो स्वयँ शान्त नही, स्वय मुक्तिके मार्ग का जिसको परिचय नही ऐसे लोगोंसे आत्मीयताकी पद्धतिसे दृष्टि लगाना यह तो विपदाका मूल है। वह शान्त-स्वरूप क्या है ? निज अखण्ड चैतन्यस्वरूप। उसका ध्यान नही है तो है आश्रव बंध। उसका ध्यान है तो होता है सम्बर निर्जरा। कभी उसका ध्यान न भी हो और कभी किया हो ध्यान, उसकी प्रतीति हो तो भी ध्यानका अंश है। तो यह बनी है पर्याय, आश्रव, बध, संबर, निर्जरा मोक्ष, लेकिन पर्यायिका आश्रव करनेसे, पर्याय की उपासना करनेसे शान्ति अथवा मुक्ति प्राप्त नहीं होती जो निज द्रव्य स्वरूप है उसकी उपासना उपासनाका अर्थ है कि उस ही ज्ञान-स्वरूपमें अपने ज्ञानको मग्न कर लेना, वह है शान्तिका साधन। जब यह स्थिति नही होती तब क्या क्या गुजरता है इसीका विस्तार है आश्रवके प्रकार और बंधके प्रकार। कोई भी वस्तु हो वह अपने आप सहज स्वरूपमे होती है, अपनी सत्ताके कारण जो मेरा स्वरूप है वह मेरा असली रूप है। मैं भी एक सत् हूँ। तो मेरी सहज सत्ताके कारण जो मेरा स्वरूप

है वह मेरा रूप है, वह एकस्वरूप है। अब यह सब जाल कैसे फैला ? जब मूलमे एक रूप है। मूलमे मै एक चैतन्यमात्र हूँ, तो यह जाल कैसे फैला ? उसका कारण तो यही कहा जायगा कि अनादिसे अशुद्ध है, और विकल्प करता चला आया, पर यह हुआ किस ढगसे ?

अद्वैत अखंड निज आत्माकी विडम्बनामे मूल करतूत ज्ञान ज्ञेयका द्वैतीकरण—मूलमे यह मैं आत्मा एक हूँ, किन्तु इसकी प्रकृति है, इस चैतन्यका स्वभाव है कि सब कुछ इसके प्रतिभासमे आवे। यह कहा जाय ? प्रतिभासमे आया, जानने मे आया। जानता यह है। अब यहा होता क्या है कि जैसेही जाना तो जाननेके साथ ही ज्ञान और ज्ञेयमे विविधा हो गई। यह जाना, मैंने जाना। ये दो बातोके द्वन्द्व हो गए इसमे। काम जाननेका ही हो रहा है भगवानके भी, पर भगवानके द्वन्द्व नही होता। यहा हम वहा काम करते हैं और द्वन्द्व हो गया। इसका कारण अशुद्धता ही कही जाती है। पर जैसे किसीको किसी झगडेके जाननेकी इच्छा होती, इससे झगडा क्यो हो गया, क्या बात थी, ये तो बडे मेलसे रहते थे, पडोसी आदमी हैं, बड़ा हमदर्द था। ऐसा कोई आश्चर्य करते है ना ? क्या बात हो गई ? अरे झगडा जाननेकी बडी उत्सुकता हो जाती है। किसी दूसरेसे क्या लेन देन, कुछ मतलब नही, दूसरे गावके दूसरे मुहल्लेके, घर जाये विना चैन नही पडती, क्यो हो गया, झगडा ? तो दूसरेके झगडेमे जाये बिना चैन नही पडती। मगर खुदमे जो झगडा है उसे जाने बिना क्यो नही चैन ली गई ? मुझमे दद फद कल्पनाये करके विकल्प करते, जन्ममरण करते, परको अपनाते, परको अपना अपनाकर उनके पीछे विछोहके बडे क्लेश भी सहते जाते फिर भी अपने असली रास्तेपर नही आते। इसका द्वन्द्व किस तरह हो रहा और इतना बड़ा जन्म-मरण नाना देहोका अदलने बदलनेका यह व्यापार क्यो लग रहा इसमे ? तो इसको भली भाँति मूलसे समझना है। आखिर मूलमे पहिली बात क्या गुजरी ? बादमे जो बात निकलती है, जो निकटकी बात है उससे फैसला नही होता। जैसे किसी बच्चेने मार दिया किसीको, क्यो मारा ? इसने मुझे मारा।···क्यो इसने मारा ?···इसने गाली दी।···इसने गाली क्यो दी ?···अजी इसने उस इसतरह से अगुली और जीभ मटकाकर मुझे चिढाया।··· अच्छा तो मूलमे जो बात होती है उस परसे ही तो निर्णय होगा। तो मूलमे बात क्या थी ? क्यों झगड़ा हुआ ? उसके मूलसे चलो चाहे शाखाओंसे। मूलसे ही चलो। हुआ क्या कि इसके जाननेकी आदत है, यह स्वरूप तो कही जाता नही, पर यह भगवान इतना समर्थ है कि वह सब कुछ जानकार भी द्वन्द्व नही लाता। कितना विशुद्ध स्वरूप है इसका। इसीको कहते है परमात्मा। जिसका ऐसा विशुद्ध स्वरूप है कि सब कुछ जानकार भी द्वन्द्व नही होता। मैंने जाना, यह जाना ऐसा जहा द्वन्द्व नही, द्वैतन नही, भेद नही, उसे कहते हैं

प्रभु। जो बड़ा होता है उसमे कोई खास गुण भी तो होता है तब वह बडा है। तो परमात्मा तीनो लोकोका अधिपति, शतइन्द्र जिसकी वन्दना करे, गणधर, बडे-बडे मुनीन्द्र जिसका स्मरण करें उसमे विशेषता क्या है ? यह विशेशता है कि जाननेका तो स्वभाव है, जान गए सब। सो भैया सूक्ष्मतासे देखो तो यहा सब जाननेकी महिमा नही है क्योकि किसीने थोड़ा जाना, किसीने ज्यादह जाना, भगवानने सब जान लिया, तो जाननेकी महिमा अगर हो तब तो कहना चाहिये कि इनमे भी कुछ महिमा है, उनमे जरा बडी हो गई, क्या हो गया, पर महिमा उनकी असलियतमे यह है कि जानकर भी उनमे द्वैत नही उत्पन्न होता। सो मूलमें वात यह आयी कि हम जानते है समस्त परको और वहा द्वैत करते है-मैंने जाना, इसे जाना।

आत्मविडम्बामें द्वितीय करतूत परमें स्व पर का विकल्प—मैने जाना, इसे जाना जब ऐसा द्वैत बन गया तो जो कुछ जाननेमे आया ऐसी जो ५० चीजे हैं उनमे अब यह द्वैत करने लगा। अभी तो निजमे और परमे द्वैत किया अब यह कर रहा है परमे ही द्वैत। यह भला है, यह बुरा है, अभी जानने से ज्ञान ज्ञेयका भेद कनाया था अब पर ज्ञियो मे भेद डाल रहा है कि यह भला है और यह बुरा है कोई समझाये कि तुम्हे क्या पडी है ? परपदार्थ है। क्यो सोचते हो कि यह भला है, यह बुरा है ? अरे वेदोनो ही पर है, भिन्न हैं, समझाये भी अथवा न समझाये भी, यहतो अपनी उस हठपर है, उन्हे मानता है कि यह भला है, यह बुरा है ? अरे वे दोनो ही पर है, भिन्न है, सयझाये भी अथवा न समझाये भी, यह तो अपनी उस हठपर है। उन्हे मानता है कि यह भला है, यह बुरा है। अब जब वहाँ परमें स्व और परका भेद आ गया तब उनमे अन्तर जचने लगा। और, अन्तर जचा इतना कि एक इष्ट हुआ एक अनिष्ट हुआ।

द्वैतबुद्धि का फलः—ज्ञान ज्ञेयका द्वैत होना, परमे इतना जानना, स्वपरका द्वैत होना' इष्ट अनिष्टका द्वैत होना इतना भेद करना, इतना अन्तर डालना, इन सब बातोंका आखिर परिणाम क्या है ? तो जब इतनी बाते चल रही है तो वहां क्रिया कारककी बात इसके साथ हुई, इससे यो करना चाहा, मैं इसको यों करूँगा, इष्टमे और तरहका विकल्प, अनिष्टमें और तरहका विकल्प। तो अब जब इसके क्रिया कारक चलने लगे तो उन क्रिया कारकोसे बना इसका अध्यवसाय। अध्यवसाय ३ प्रकारके होते है, एक तो होता है अपनेको अहंरूप माननेका। मै मनुष्य हूँ, अमुक हूँ, कुलीन हूँ, गांवका मुख्य हूँ, त्यागी हूँ, ब्रती हूँ आदि, यो अनेक प्रकारकी बातें भीतरमे आने लगे यह कहलाता है धिपच्यमान अध्यवसान। दूसरा है क्रियागर्भ अध्यबसान मैं तो इसको यो कर दूँगा, और, तीसरा अध्यवसान वह होता है कि

जोकुछ जाने उसमें चतुराई मानना और उसमे आत्मबुद्धि करना, आत्मतत्त्वका विकल्पकरना जहा यह अध्यवसान हो वहा कर्मका आश्रव है। कर्मका बध है। और जो बधगया कर्म। जबउसका उदयआता है तो उसके अनुकूल दु.ख-सुख भोगनापडता है। जन्ममरण करना पडता है। जैसेकोई कही विपत्ति मे फस जायतो कुछ वहसोचता है—अरे विपत्तिमे फसगया, कोई मौकामिलेतो फिर इसके फन्देमे न जाऊंगा। तो यहाभी तो देखिए, हमआप कितनी विपत्ति मे पडे है, कितने फन्देमे पडे है तो इतना तो भावहोना चाहिए कि हमेतो इसफन्देमे पडना नही है। बाहरके फन्देमे पडना नही, ऐसातो बहुतसे लोग सोचसकते हैं। घरमे खडेहो वहाँभी सोच सकते, कहीं मननमिला वहाभी सोच सकते, इसफन्देमे नही पडना है। जरासा कुछभी बाहरमे काम हो, परोपकार वाला काम हो, उसमेंभी आपत्ति आती है और अपने भीतर जो फन्दे चलरहे है और बड़े सन्तोष के साथ जो बैठते है तो उनकेप्रति क्योनही भाव जगता कि मुझे तो फन्दे मे नही पडना है। फन्दा तो असली यह है। बाहरकी चीजतो जो होती है होने दो, जैसा होता है ठीक है मन, वचन, काय लगा है, उनकी प्रवृत्ति बिना रहा नही जाता, ऐसी वर्तमान स्थिति है बाहरकी बातोंसे लाभ हानि नही। लाभ हानि तो अन्तर के आशयसे है, विपरीत आशय हो तो वहा हानि है, अनुकूल आशय हो क्षायकभाव अन्तस्तत्त्वका, तो लाभ है। यह बात उपदेशसे नही बनता, सिखाने से नही बनता, बनावटसे नही बनता। जिसको बने उसको लाभ है, गुपचुप। वह अपने हितमे है। उसकी परख कुछ नही है। दूसरा क्या करे ? खुदकी बात खुद मे है। परख सो होती है, वह एक अदाज होता है। हित चाहिये हमैं तो हममे ऐसी अनुकूल परख हो कि जो मेरे स्वभावमे फिट बैठे। उससे हमारा हित है।

आस्रवका विधान—बात मूलमे दो आंयी जब हम प्रयोजन तत्त्वकी भूमिकामे चलते है। जीव और अजीव, जीव चेतन है, अजीव कर्म है, इन कर्मोका साक्षात् नाता कर्मसे है जीवसे नही। लेकिन जीव ऐसा यह बीचमे पडा है कि जीवके आदेश बिना ये कर्म दूसरे कर्म से नाता भी नही लगा पाते। नवीन कर्मका आश्रव होता है तो उसका आमंत्रण देने वाला उदयमे आया हुआ कर्म है जीव नही। जिसे कहते हैं निमित्त। लेकिन उदयमे आने वाले कर्ममे इतनी सामर्थ्य नही कि जीवके रागद्वेषका संकेत न मिले तो वह नवीन कर्मोको बुला-कर घरमे रख सके ऐसी सामर्थ्य उदय वाले कर्ममें नही है। नवीन कर्म आते हैं उदयमे आये हुए कर्मका निमित्त पाकर, लेकिन उदयमे आने वाले कर्म निमित्त बन जायें ऐसी सामर्थ्य उनको मिलती है रागद्वेषका निमित्त पाकर। शास्त्रोंमे ऐसा विश्लेषण करके वर्णन प्रायः आता नही हैं, और कही आता है तो वहा प्राय. पढ़ने वाला भी गौण रूपसे पढ़कर चल देता

है। और ऐसा विवरण देनेका कोई अधिक प्रयोजन भी न था, इसीलिए यह ही बात प्रसिद्ध है कि नवीन कर्मके आनेका निमित्त कारण जीवका रागद्वेषभाव है। सीधा यो ही कहा जायगा। अगर किसीने अपने पाल्तू कुत्ते को दूसरे आदमी पर सकेत कर दिया और कुत्तेने बढकर उस आदमीको काट लिया, तो इसमे कोई भी आदमी उस कुत्तेमे अपराध नही लगाता किन्तु उस आदमीपर लगाता जिसका पाल्तू कुत्ता है। जिसके सकेतपर कुत्तेने हमला किया जज भी निर्णय देता है तो कुत्तेको दण्ड नही देता किन्तु जिसका पाल्तू कुत्ता है उसे दण्ड देता है। इसलिए वह बात प्रसिद्ध है कि इस मनुष्यने उसपर हमला किया। वह तो बिचारा आदेश मानने वाला कुत्ता है, पशु है, उसपर अपराध नही मढा जाता। तो इसीप्रकार उदयमे आये हुए द्रव्यकर्म तो बेचारे पाल्तू थे, हुकुम मानने वाले। इस जीवने रागद्वेष मोहका छुटकारा दिया तो उन्होने नवीन कर्मका आश्रव किया। आश्रव हुआ और वे ठहर गए तो उसी को बध कहते है। यहा एक बहुत बडी विपत्तिकी घटना चल रही है, यह रात दिन चलती रहती है। निज स्वरूपका ध्यान हो तो वह विपत्ति भी मालूम पडे। अन्यका विपत्ति भोगते हुए भी विपत्ति मालूम नही करना। आश्रव हुआ, बध हुआ, अब बधके साथ ही, आश्रवके साथ ही उसमे उसी समय शक्ति निर्णीत हो गई और प्रकृति निर्णीत हो गई। उन परमाणुओंमे ऐसा तुरन्त बटवारा हो जाता निमित्तत्वका कार्मणवर्गणामें कि यह तो इस जीवका ज्ञान घातेंगे। ये कर्म जीवके दर्शनगुणको घातेंगे। ये शरीरबनानेमे काम करेंगे। ये ऊँच नीच व्यवहारमे काम देंगे, ये शरीरमे जीवको रोके रखेंगे। यह सब प्रकृति बन जाती है। जैसे कोई बेचारा एक आदमी ७–८ बैरियो के बीच पड गया हो या जब कोई भी बालक ७–८ बच्चो के बीच पड़ गया हो, जो इसका प्रतिपक्षी हो तो कोई बालक हाथ पकडता है, कोई कमर पकडता है, कोई आखे मीच लेता, कोई मुक्के मारता। यो ही कर्मोमे सब बांट हो गई और सब अपने–अपने हिसाबसे अपने-अपने प्रभावमे रहते है और जीव इन ८ कर्मोके बीच फसा हुआ दु.खी होता है, बन्धनको प्राप्त होता है। कब होता ? बध हुए बाद उनका तब उदय आया। जब बहुत दिनो तक किन्ही पुरुषोका द्वेषभाव चलता है, तो उनमे एक पुरुष अपनी पार्टीमे सलाह करता है कि देखो इस तरह पीटना है, इस तरह बरबाद करना है तो ऐसे ही उनमे निश्चित हुआ और जब उदयकाल आया तो यह जीव अकेला उन कर्मो के बीच पिटने लगा। पिटा और इसी समय यह जीव रागद्वेष मोह करने लगा, अकड गया, बुरे विचार बनने लगे तो और नवीन कर्म और और अधिक–अधिक बैरी बन बनकर इसके बन्धनको करने लगे। होता है सब निमित्त नैमित्तिक भावसे। करने वाला कोई किसी दूसरेका नही है। तो किस तरह होता है ? निमित्त नैमित्तिक भावसे। बस इस आपत्तिके बीच फसा है।

सब कर्मोंमे ऐसा बटवारा है। जन्म होना है, मरण होता है, आयु अपना काम करती है। नाम कर्म अपना काम करता है। दुःखी पडा हुआ है। जिस समय उसने अपना होश सम्हाला कि मूलमे यह गल्ती है जिसपर ये सब बाते लदी हे। ज्ञान ज्ञेयका द्वैत करना। मूलमे यह बात थी। तो ज्ञानी क्या करता ? ज्ञान ज्ञेयका द्वैत मिटाता।

मात्र सहजभाव लक्षित होनेमे धर्मपालनकी यथार्थता—ज्ञान ज्ञेयका द्वैत मिट जाना, यह बात जिस ध्यानमे बने उसे उत्तम ध्यान कहते हैं। जैसे ऐसी बात सम्हाली तो उस सम्हाल के प्रसगमे कमी भी रही आयी, लेकिन सम्हालका सकल्प है, सम्हालकी दृष्टि है। सम्हालका उद्यम है तो उसके बीचभी सम्बर, निर्जरा होती रहती है। होते होते जहा पूर्ण सम्हाल हुई वहा मुक्ति होती है। जीव इस तरह बन्धनमें जकडा और इसतरह बन्धनसे मुक्त होता, यह बात अपने भीतरकी जाने तो वह हमारे लिए बहुत बडे ज्ञानकी बात है। और, दुनिया की सारी बाते तो जाने पर अपने भीतरकी अनुभूतिकी बात न जाने तो वह दुनियावी ज्ञान कुछभी कार्यकारी नही है, अन्यया वह तो बच्चो जैसा ज्ञान है। जैसे बच्चोको दुनियाका ज्ञान कराया जाता है—अमेरिकामे अमुक अमुक नदी, रूसमे अमुक पहाड, चीनमे अमुक—अमुक जगल…यो दुनियाका सारा ज्ञान तो करा दिया गया, पर उनसे पूछा जायकि अच्छा यह बताओ कि तुम्हारे घरके पीछेसे जो नाला निकला है वह कहा से निकला है और कहा गिरा है तो वे बता नही सकते। तो इसीतरह हम बाहरी—बाहरी बातोंका बहुत ज्ञान कर लें और अपने निज तत्त्वकी बातकी रुचि न हो, धुन भी न हो, सुहाये भी नही, तो बस वह हमारा बाल ज्ञान है। तो बात अपनी मजबूत बनावे। यहा तो अपनी दुकानकी बात मजबूत बनाते, घर मजबूत बनाते, यो बाहरमे तो जो भी काम आप करते हैं वहा मजबूत और ठोस ही करनेका ध्यान रखते है पर अपने अन्दरमे अपने आपका ठोस मजबूत काम करनेका ध्यान भी नही रखते। जो बात चलते—चलते भी हो सकती। बैठे-बैठे भी हो सकती, पड़े पडे भी हो सकती। और बात करते—करते भी हो सकती। जो इतनी सहज है, स्वाधीन बात है उसकी तो रुचि न जगे और बाहर—बाहरकी अनेक बातोंके ज्ञानकी बात जगे तो हित का मार्ग तो न मिल पायगा। हितका मार्ग तो इसी उपाय से मिलेगा। उसीको आचार्योंने ७ तत्त्वोंके रूपमे बाघा है। करने का काम एक ही है, निज सहजस्वरूपकी दृष्टि और होनेके काम अनेक हैं। अनेक तो काम नही होते, लेकिन चूँकि अनेक गल्तीमें पडे हैं तो उन गल्तियोंको हटाने के काम भी अनेक हो जाते, लेकिन करनेका काम केवल एक है, ऐसी दृष्टि हो, ऐसा आशय हो, ऐसा ध्यान हो, जहा सहजभाव लक्षित हो। लोग बाहरकी बात जान समझकर वहां परख करते है कि यह इसतरह चलता है, यह धर्मात्मा है, यह इसतरह बैठता

है, यह ऐसा करता है वह धर्मात्मा है। यद्यपि धर्मात्मा की ऐसी बाह्य प्रवृत्ति चिन्ह तो है मगर वह चिन्ह तो गलत भी हो सकता, सही भी हो सकता। अन्दरमे जिसको अपने उस सहजस्वभावकी दृष्टि है। अन्य कुछ चाहता ही नही है, धर्मात्मापन तो वहा है। ऐसा धर्म परमात्मास्वरूप भगवान आत्मा है, जिसका सहजस्वभाव है ज्ञानवृत्ति। उसकी चाह हो, उसकी दृष्टि हो, उसका आलम्बन हो, आश्रव हो वही कहलाता है धर्मपालन। धर्म ही जीवका हितू है, और कुछ जीवका हितु नही है।

प्रयोजनभूत ज्ञात तत्त्वोंमें जीव और अजीवका अर्थ.—जिस तत्त्वसे निश्चित किए गए पदार्थोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते है वह तत्त्व क्या है ? उन तत्त्वोंके सम्बन्धमे यह चतुर्थ सूत्र चल रहा है। वे ७ तत्त्व है। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। पहिले इन सातोका सक्षेपमे स्वरूप सुनो। जीव किसे कहते है ? जिसमे चैतना हो उसे जीव कहते है। वहा पर्यायप्रधान्य रूपसे जीवको देखना है। यहां युद्ध जीव या भूतार्थ से परिचित किया गया जीव नही निरखना है, क्योकि उसके साथ तत्त्वका सम्बन्ध न बन सकेगा। वह तो एक रूप है, अखण्ड है, अविष्कार है, वन्ध मोक्षकी व्यवस्थासे रहित है इस-लिए यहां जीव कहा है जो सामान्य रूपसे समझनेमे सब जगह लागू हो जाय जीव, जिसमे चेतना हो उसे जीव कहते हैं। अजीव जिसमे चैतना न हो उसे अजीव कहते है। चेतनाका अर्थ क्या है ? जीव शब्दसे कुछ भी अनेक अर्थ लगाये जा सकते है। जो दश प्राणो से जीवे, सो जीव, लेकिन यह लक्षण ससारो जीवो मे ही घटित हो पायगा। मुक्तिमे नही, तब कहना जो पहिले जिया हैं, जी रहा अथवा जीयेगा वह सब जीवोमे साक्षात् घटित होते वह लक्षण है। मुख्यता चेतन प्राण करके जीवे सो जीव अर्थात् जिसमे चेतना होवे सब जीव। अजीव–जिसमे चेतना न ही ऊसे कहते है अजीव अजीव मे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पाचो आ गए, लेकिन प्रकृत मे मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवमे क्या लेना ? वे कर्म पौद्गालिक है, चेतना रहित है

जीव और अजीवके निमित्त नैमित्तिक योगका प्रभाव–कर्मका जीवके साथ कैसा निमित्त नैमित्तिक योग है और निमित्त नैमित्तिक योग होनेपर भी प्रत्येक वस्तु किस प्रकार स्वतत्र हैं, यह सब मर्म जब विदित्त हो जाता है तो मोह छूट जाता है, जितने भी प्रयास धर्मके लिए करते है उसमे उसकी सफलताकी निशानी यह है कि यह देखे कि मोह छूटा कि नही छूटा। मोह कहते किसे है ? परवस्तुमें लगाव रखना यह मैं हूँ, यह मेरा है, उससे हित समझना इस प्रकार परवस्तुके साथ जो अपना लगाव है उसे कहते है मोह। लोकमे दु.ख देने वाला कुछ है तो मोह ही है। सब आक्रन्दमे है। सब शान्त है, सब सुखी हैं, सब निर्वाध है। किसीको कोई प्रकारका कष्ट नही है, क्योकि सब जीव है, स्वतन्त्र है, सत् है, अपने आप सिद्ध है।

य ने निष्पन्न है, अपनी परिणति करते हैं, उसे कष्ट क्या ? उसमे किसी बाह्य वस्तुका प्रवेश ही नही है तो उपद्रव कहा से आयगा ? लेकिन जो उपयोगमे मोह समाया है, बाह्य वस्तुसे मान लिया कि यह मेरा है, बस इसके आधाप्पर कष्ट लगे हुए है। क्यों जी, यदि किसी भी परवस्तुको न माने कि यह मेरी है तो क्या प्राण नष्ट होते है ? क्या कोई नुकशान पडता है ? हा नुकशान पडेगा तो यह पडेगा कि दु खका नाश हो गया। जीव आनन्दमय है, सत् परिपूर्ण है, पर मोह जो बन गया कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, बस इससे दु.ख है। अब यह मोह कैसे बन गया ? तो इसके बारेमे एक वस्तुस्वातन्त्र्यका दर्शन कराने वाला निश्चयनयकी ओर का एकान्त करके यह कह देना कि जीवमे जब मोह आना था आ गया, जब राग आना था आ गया तो मात्र यह उत्तर एक सुधटित नही है। यह एकान्तसे उत्तर दिया है। अगर मोह ऐसे ही आ गया तो वह जीवका स्वभाव बन बैठेगा। आया तो वह जीवकी परिणतिसे है स्वतत्र है वस्तु, किसी अन्यकी परिणतिसे नही परिणमता है, लेकिन अपनी स्वतत्रता से ही यह परतत्र हो रहा है। अपनी स्वतत्रतासे ही यह विकार करात रहा है, पर स्वय निमित्त बनकर नही कर रहा है। अगर स्वय निमित्त बनकर यह जीव विकार करे तो सदाकाल विकार रहेगा। ये विकार परभाव है, यह कहने की गु जाइस न रहेगी। होता क्या है कि इस पुद्गलकर्म विपाकका निमित्त पाकर जीव अपने आपमे अपनी परिणतिसे, अपनी स्वतत्रतासे विकार करता है,

मोहकी अनर्थकारिता,—हा तो प्रकरणमे यह बात कही जा रही है कि मोह दु ख दायी चीज है। मोह जीवको बडा सुहावना लगता है। जब स्त्रीपुत्रादिकके प्रति रागभरी दृष्टि जाती है तो लगता कि ये पुत्र कैसे सुहावने है, यह स्त्री कैसा आज्ञाकारिणी है, उसे अपने मे गौरव अनुभव करता है। यह कितना महान अन्धकारहै। भगवान आत्मा जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका स्वभाव रखता है ऐसा यह भगवान आत्मा इस वेकार को कलककी चीजमे मस्त होकर अपने दुर्लभ मानव जीवनके क्षणोको गवा दे तो अन्तमे क्या हालत होगी ? मरना पडेगा, बुरी मौत मरेगे। यह जन्ममरणकी परम्परा रहेगी तो इस जीवका कोई भला नही है। जीवका कल्याग है इसमे कि मोहको जडसे मिटावे। उसमे रच गु जाइस न रखे कि मोह छोड देंगे तो घरमे न रह पायेंगे। घरमे न रहेगे तो भूख पियास आदिकका गुजारा कैसे चलेगा ? यह शका न रखे। मोहको मूलसे मिटाके मोहको मिटानेपर भी हमारे जैसा राग विद्यमान है उसके अनुसार घरमे रह लेंगे और अगर राग मिट जाय तो इसकी फिक्र क्यों पडी कि घर मिट जायगा ? घर छोडकर घरका विकल्प न आये तो घरका छोडना बुरा है क्या ? घरका छोडना तब विडम्बना है जब कि घर तो छूट

जाय, पर घरका विकल्प बना रहे । अगर यह स्थिति आये कि सब कुछ छूटे और विकल्प न रहे तो यह उत्तम चीज है, यह तो भगवान होनेका मार्ग है, लेकिन जब तक घर नही छूटता, राग रहता, तब तक घरमे रहना होगा, रहो । मोह छोडकर भी घरमे रह सकते। यह शका न रखो कि मोह छोड देंगे तो घर भी छूट जायगा । मोह मिट जानेपर इस जीवको जो आनन्द आता है वह अद्भुत और विलक्षण है । मोह केवल घरके मोहको मोह नही कहते, मोह कहते है अपना जो विकार भाव है उन विकार भावोको यह मै हूँ, इससे ही मेरा जीवन है । यह ही मेरा प्राण है । उन विकार भावोंको अपनानेका नाम मोह है । मोह मिटनेपर न घर छूटता, न घर रहता किन्तु क्या छूटता ? विकारभावका लगाव छूटता है । मोह छूटनेपर भी घर बना रहता है । सदा तो न रहेगा, मगर जब तक राग है तब तक घर रहता है, मोह छूटनेके मायने है, अपने विकार भावोमें लगाव छूट गया । तो विकारोका लगाव छोड कर भी ज्ञानी पुरुष घरमे रहता है । उसका तो घरमे रहना और ढगसे बनता है कि अकुलताभी नही है । सारे काम बन रहे है और घरमे रह रहे है । और देखो घरमे भी अच्छी तरह रह वह सकता है जिसके मोह नही है । आप सोचेंगे कि क्या बात कही जा रही है ? देखो जिस पुरुषको मोह है, अपने विकार विकल्पमे लगाव है उसमे मोह है और घरमे रह रहा है तो बात-बात पर उसके साथ झगडा ठन जायगा । क्योकि उसने विकारमें लगाव रखा ना ? तो अपनी कपायपर वह अडता रहेगा । उसके स्त्री है, पुत्र है, चाचा है, भाई है, सबकी कषाये तो अपनी-अपनी है । कभी प्रतिकूल भी होता है तो झगडा बना रहेगा । जीवन कष्ट मे जायगा । और लोग इसका आदर भी न कर पायेंगे, क्योकि यह मोही है । वह अपने आदर का पक्ष लेगा तो कुछसे कुछ बात करेगा जो दूसरेके प्रतिकूल बैठेगी, और निर्मोह गृहस्थ है तो चूँकि उसे अपनी कषायका आग्रह नही है, पकड नही है, और परिस्थिति-वश रह रहा है । रहना पडेगा, रहना चाहिए, क्योकि ऐसी परिस्थिति है तो सब बाते उसकी अपने आप सम्हल जायेगी । अनमुनी कर देगा, उपेक्षा कर देगा, ऐसा उदार चित्त होकर घरमे रहने वालेका आदर विशेष बढता है । तो घरमे रहनेकी भी सुन्दरकला है निर्मोह होकर घरमे रहना । जिसके मोह है वह घरमे रहकर भी आनन्द नही पाता । यह भ्रम है कि मोह छोडेंगे तो घर छूट जायगा । मोह और राग दोनो छूटे तो घर छूटता है । अगर ऐसा आपका सुन्दर भवितव्य होनेको हो कि सब छूटे तो उसमे भी पीछे क्यो हटते ? जब तक राग नही छूटा तब तक घरमे रहो, पर मोह छोडकर तो रहो । मोह छोडने के मायने राग छोडना नही । राग बात अलग है, मोह बात अलग है, मोह मे अधेरा है और रागमें प्रीति है ।

मोहके त्यागमें सर्वत्र हित—अधेरा रहते हुए जो प्रीति है उसको लोग राग कह

देते है, अथवा अंधेरा न रहकर भी जो राग है उसे लोग मोह कह देते है पर ये दोनो भिन्न-भिन्न चीजे है। मोह जुदा है, राग जुदा है। मोह क्या है ? जैसे कोई रोगी पुरुष बीमार हो गया तो उसे सुन्दर शय्यासे राग है, डाक्टरसे भी राग है, औषधिसे भी राग है, है कि नही है राग ? अगर समयपर औषधि नही मिलती तो उसे क्रोध आता कि नही ? क्रोध आता है, अगर समयपर डाक्टर नही आता तो उसे बुरा लगता-क्यो डाक्टर नही आया ? इसीसमय बुला लावो। तो डाक्टरसे प्रेम है कि नही उस रोगीको ? और औषधिसे भी प्रेम है कि नही ? और पलगसे भी प्रेम है कि नही ? आरामसे प्रेम है कि नही ? मगर यह तो बतलावो कि उस रोगी डाक्टरसे मोह भी है क्या ? मोह तब कहलाये जब यह श्रद्धा रहे कि ऐसी बात तो मेरे पास जिन्दगी भर रहे। क्या रोगी ऐसा सोचता है ? वह तो यही सोचता कि कब इसका आना टले, और इसका आना टल जाय इसीलिए वह डाक्टर बुला रहा, मुझे औषधि खानी न पडे इसके लिए वह औषधि खा रहा है, तो उसे आरोग्य मोह है क्या ? उस प्रसगसे उसे मोह है ? अगर पलगपर कोई बिनोला है, वह गडता है तो उसे भी वह हटवाता है। बहुत कोमल गद्दा चाहिये, पर उसे उस गद्देसे मोह है क्या ? अरे वह तो सोचता है कि कब मेरा यह गद्दा छूट जाय और मैं मील दो मीलकी दौड लगाऊँ। तो राग होने परभी मोह नही है। और भी दृष्टान्त देखिये-एक मुनीम जो किसी बडे सेठकी किसी फर्ममे काम करता है वह सेठकी सारी सम्पतिका सुन्दर हिसाब किताब रखता है। उस सम्पतिका उसको इतना पता रहता जितना कि मालिकोभी पता नहीं रहता। मालिककी सम्पत्तिको वह ग्राहकोसे मेरी मेरी भी कहता, मेरा तुमपर इतना गया, तुम्हारा हमपर इतना आया, यह भी कहता, फिर भी उसके चित्तमे यह बात बसी है कि यह मेरा कुछ नही। तो देखिये उस मुनीमको वहा राग है, पर मोह नही है। तो इसीतरह से समझियेकि मोह न रहने पर भी राग होता है, उस राग की प्रेरणासे यह घरका काम चलेगा। तो इस मोहको त्याग घरमे रहनेमे आपकी शोभा है, आपका आदर है, आपका शृगार है। तो निर्मोह बनकर घरमे रहते हुएमे आपकी घरमे भी शान है, घरका जो कुछ है सो हो रहा है और मोक्षमार्ग भी चल रहा है। निर्मोह होना अपने हाथका काम है, अपने उपयोगका काम है।

निर्मोह होनेके पौरुषका अनुरोध—निर्मोह होनेके लिए ही यह बात सोचना सीखना है कि निमित्त नैमित्तिक क्या है और वस्तु स्वातन्त्र्य क्या है ? ये दो बाते सीखनी है वे बेकार नही है वे बडे काम की है। मोह मेरा मिटे उसके लिए हमे इन दो बातोका निर्णय करना होगा। अब इन दो बातोमे कोई एक का एकान्त करले तो वह मोह नहो छोड सकता। वह इन दोबातो को सही समझे तो उसे मोह छोडनेकी अपने दिशा मिल जायगी अन्यथा क्या

दशा होती है ? जैसे कभी पूजा करते हुए भी लोग लडने लगते-तुम यहाँ क्यो खडे हो गए ? यहां तो हम रोज खडे होकर पूजा करते थे। लो लडाई हो गई। तो भाई जो धर्म करता हो, उसके साथ तो लडाई होती नही कभी। वह तो कभी लडेगा ही नही। उसके तो क्रोध न आना चाहिये। तो मालूम होता है कि वह शुद्ध भाव से पूजाके लिए नही खडा था। वह कुछ रुढ़ि से। कुछ कपायके आग्रहसे, मैं जैन हूँ, मैंने व्रत लिया है, मेरा कर्तव्य है, मेरा इसमें शृङ्गार है। उससे लोग मुझे धर्मात्मा कहते है। लोगोमे धर्मात्मपने की प्रसिद्धि है। न जाने कितनी तरह के विकल्प करके वह खडा हे तो जरा जरा सी बात मे उसके क्रोध उमड़ आता है। वह धैर्य नही कर सकता और एक सिर्फ ध्येयका पता होना कि मैं बडे कष्ट मे हूँ, ससारमे यह कर्मलीला है। मेरे ऊपर बडी आफत है। मैं अपने शुद्ध स्वभाव से च्युत हो जाता हूँ, विकल्पमे रहता हूँ। मैं उन विकल्पोसे छुटकारा पाने के लिए और एक ऐसा धैर्य पानेके लिए, कर्म लीला कैसे ही प्रकट हो उससे अधीर न होऊगा। मैं उसके कारण क्षुब्ध न होऊंगा। मैं ज्ञाताद्दष्टा रहूँगा। यह कर्मलीला है। यह मेरा स्वरुप नही, मेरा स्वभाव नही। मै तो एक उपयोगस्वरुप शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ। यह भाव करनेके लिए मैं मन्दिरमें आया हूँ और उपयोगकी स्वच्छताका विकास, ऐसा ही परिणाम, ऐसी ही परिस्थिति अरहंत प्रभु की है। तो उस स्वरुपको निरखकर और अपने आपमे उसको भा भा कर स्वभाव दृष्टि करके आत्महित करनेके लिए मैं यहा आया हूँ ऐसा उसका भाव होता तो उसको पद-पद पर लडाई की बात नही आती। यह तो पूजाकी बात है। और, धर्मचर्चा करते-करते क्रोध आ जाता है तो उसने भी धर्म नही किया, तब ही तो क्रोध आया। जो मैं कह रहा हूँ, तो सच है, इसने मेरी बात क्यो न मानी ? इस प्रकारका कषायमें आग्रह करने से वह खेदखिन्न होता है। जहा चल तो रही मीठी मीठी तत्वकी बात, लेकिन उस तत्वके विकल्प मे चूकि आग्रह है, मिथ्यात्व लगा हे, विकल्पका लगाव लगा है तो उसके खिलाफ कोई अगर बोलता है तो वह अनमना हो जाता है। क्यों अनमना हो जाता है। संसार के जीव बन्द रहे है। ज्ञाता द्रष्टा होनेका जहां यह उपदेश है कि तुम्हारे स्वय में, खुदमें होने वाली जो कर्मलीला है और कर्मलीला की झाकी है उनके भी ज्ञाता द्रष्टा रहो। उनमे भी लगाव मत रखो। लेकिन, मोह है ना सो उल्टे चल रहे है कि मेरा जो ख्याल है, मेरी जो बात है उसे क्यो नही मानते ? उसके विरुद्ध क्यो यह कहते ? ऐसा जो एक प्रकारका विषाद चित्तमे होता है उससे क्रोध जग जाता है तो समझो कि वहा अभी धर्मका मर्म नही समझा गया। कोई धर्म करे और दुखी हो ऐसा हो नही सकता।

धर्मका फल आनन्द—धर्म करने वाला कभी दुखी होता ही नही मरता, लेकिन जो

धर्म नही है उसको करते हुए मे यदि यह सन्तोष हो जाय कि मैं धर्म कर रहा हूँ तो समझो कि वह अभी धर्म मे आयाही नही है और इसीलिए उसे दुःखी होनापड़ता है। किसीके सतान नही है, किसीके धन अधिक नही है, लेकिन वह धर्मदृष्टि रखता है, धर्म पालरहा है तो उसे दुःख नही होता, वल्कि वहतो एक आराम मानरहा है कि मेरेपास अगर कुछ संतान होतेतो उनमे मैं फँसारहता। मुझे अधिकमौका न मिलता और मैं अपने इस आत्माके ध्यान मे चर्चामे अधिक मग्न न होपाता इसिलिए वहतो उसमे अपनेको और अच्छामान रहा है। दुःख कहा होता ? जो धर्म पाल रहा है वहअगर निर्धन है तो भी दुःख नही मानता। वहतो सोचता है कि क्यावात है ? खानेपीने की जितनीसुविधा है वहतो है खाएजा लगाकर दो-तीन रुपएका काम करलिया जायेगा। घरके दो-चार आदमियोके गुजारेके लिए काफी है। अगर धनका अधिक महत्व कोईदेतातो फिर धनके कमहोनेपर वहदुःखी होता। जवधनका वह महत्त्व ही नही देता तो फिर धनके रहनेमें वह दुःख ही क्यो मानेगा ? वल्कि वह तो यह समझता है कि अच्छा है कि सुगमतापूर्वक जो आय हुई उसीमे वह अपनी सारी व्यवस्था वनाकर चैनसे रहता है। आत्मध्यानका मौका भी मिलता है। वह दुःख नही मानता। तो क्या जिसके पास धन है, जो धर्मपालन कर रहा, क्या वह दुःख मानता है ? अरे वह भी दुःख नही मानता। उदयानुसार उसको आय होती है। कोई समस्या सामने आ गई। कोई धर्मका काम आ गया तो उसे देर नही लगती। हटाओ, छोडो, क्योकि उसे आग्रह नही है। वाह्य वस्तुमेतो वह दुःखकैसे मानेगा। दुःख तव होता है जब धनमे आग्रह हो। धनको जिसने समझा कि यही मेरा प्राण है। जैसे १० प्रकार के प्राण मानेगये है मगर ११वाँ प्राण धनको भी मानते हैं ना मोही। तो जो लोग इसधनको अपना प्राण समझते हैं वे धनके कमहोनेपर दुःखीतो होगे ही। और जो सहीमार्ग मे लगा है उसके लिए क्या है ? धनकम हो तो क्या ? अधिक हो तो क्या ? वहतो जानता है कि यहमेरीचीज नही है, यहतो विनाशीक चीज है, मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, उसके न रहनेपर मेरी क्याहानी है ? उसके उदारता रहती है। उदारता करनेसे कहीधनकम नही होजाता। वहतो उदयानुसार आता है, न जाने किस-किस उपायसे आता है। तो धनकम होनेमे भी दुःखी नही होता, सन्तानहीन होनेपरभी दुःखी नही होता धर्मपालक महात्मा। वाहरी वातोसे दुःख नहीहोता। दुःखतो होता है मोहसे, विकार को अपनाने से, विकारका लगावकरने से दुःख होता है। वाह्य वातोसे दुःख नही होता।

अपनी सम्भालमें आत्महित—देखो भैया! अपनी-अपनी सम्हाल करलो तो सबकी सम्हाल हो जायेगी औरयदि दूसरे-दूसरे की सम्हालमे ही लगेरहेतो किसीकी भी सम्हाल न होपायेगी जैसेकभी देखाहोगा कि रेलगाडीमे १०-२० बुढियोका जत्थाबनकर मथुरा वृन्दावनकी यात्राको

जाता है तो वेसभी बुढिया अपने-अपने पास एक-एक पोटलीरखती है। जब वे रेलगाडीसे उतरती है तो सबकीसब बुढिया अपनी-अपनी पोटलीकी सम्हाल रखती है। कही ऐसानही होता कि वे दूसरे-दूसरे की पोटलियोकी सम्हालमे रहे। यहीकारण है कि वे बुढिया अच्छी तरहसे यात्राकर आती है। उनकी समानकी कोई गडबडी नहीहोनेपाती। औरयदि उनमे उसजगह इतनी उदारता आजाय कि अपनी पोटलीकी तो कुछभी फिकर न करे और दूसरों की पोटलीकी बडी फिकर करेंतो इससेतो उनकी पोटलियोकी सम्हाल न होपायेगी। ठीकयही हालहोता है मिथ्यादृष्टि का। मिथ्यादृष्टि पुरुष अपने जत्थेमे कितनाथोता उदारनेता बनरहा है कि वहअपनीतो कुछ फिकरनही कररहा, पर दूसरोकी बडी फिकर रखरहा है। ये लडके ऐसे बनजाये, ये मित्र ऐसे होजाये, अगर ऐसी उदारता कहीउन मथुरा वृन्दाबन जानेवाली बुढियोमें आजाए तो नजाने उनका क्या-क्या खोजाय। मगर अपनी अपनी सम्हाल रखनेसे उनकीगठरी नहीखोती और वे ढंग से पहुँच जाती है इसीतरह धर्मके मामलेमे सबलोग अगर अपने-अपने स्वभावकी, अपने-अपने सामर्थ्यकी, अपने-अपने स्वरूपकी दृष्टिरखे तो समझोकि जितने है वेसब धर्मात्मा है। और दूसरे-दूसरे की दृष्टि रखेतो समझोकि कोई धर्मात्मा नही है। मानो १०० आदमी है। ऊनमेंसे अगर ९९ लोगोने यह सोचलिया कि ये ९९ आदमी ज्ञानसीखे पूजाकरे, धर्मात्मा बनेतो समझोकि उनमे एकही पुरुष धर्मात्मा बना क्या ? एकभी धर्मात्मा नही है। और उन १०० मेसे अगर दो लोगभी अपनी-अपनी बातसोचते हों तो नम्बर तो आया, दो तो है धर्मात्मा सम्भव है उन दो के सत्सगमे अन्यभी कोईधर्मी बनजावे तो जोयह आदत बनीहुई है कि दूसरे-दूसरे ज्ञानसीखे, ये धर्मंमे लगें, येभी लगे, ये ज्ञानमे लगें, ये ऐसा करे, यह आदत छोडकर स्वय धर्मकरने लगे, तो धीरे-धीरे वहभी धर्मंमे लगजायेगा और जोस्वयधर्म न करेगा वहकभी धर्मंमे न लगपायेगा। इसलिए अपनेआपकी सम्हालकरले दूसरोको धर्मंमे लगानेके लिए नही, किन्तुखुद ससारके सकटोंसे घिरेहुए है तो इनसकटो से मुक्तिपानेके लिए खुद अपने आपको धर्मंमे लगायें तो अपना कल्याण हो जायगा।

आत्मप्रयोग बिना सत्यहितकी असम्भवता—एकबार किसी राजाने अपनेमन्त्रीसे पूछा—मन्त्रिवर सचबताइए कि मेरीसारी प्रजामे सच्चेलोग कितने है ? तो मन्त्रिनेकहा,—महाराज देखनेमे तो आपकी प्रजाके सारेलोग सच्चे है मगर अन्तरङ्गमें बिरलेही दो-चार लोग सच्चे होंगे। बाकी सब झूठे है।......कैसे ? इसका मतलब समझाइगे। तो मन्त्रीने सारीप्रजामे यह घोषणाकरदी कि आजरातको महाराजको ४०-५० मन दूधकी जरूरत है, महाराजका यह आदेश है कि सारीप्रजा अपने-अपने घरसे एक-एक लोटा दूधलाकर राजमहल के अन्दर बने हुए होजपे छोडजाये। मँत्रीद्वारा महाराजका आदेश सुनकर सारीप्रजाके लोग

अपने-अपने घरमे विचार करनेलगे कि अब हमें इस अवसर पर क्या करना चाहिए तो प्रायः करके सभीने अपने-अपने घरोमे यही विचार किया कि सभी लोगतो दूधलेही जायेंगे एक हमदूध न ले गए, पानीही लिएगएतो उसमे क्या फर्क पडेगा। यहसोचकर सभीलोग अपने अपने घरसे पानीसे भराहुआ लोटा लेकर गए और उसहौजमे डालआये। कोई दो—चार लोग दूधभी डालआये। अबजब सबेराहुआ तो उसहौजमे क्या पाया गया कि उसमे साराकासारा पानी भराहुआ था। दूधतो नाममात्र का था मात्र दिखनेमे कुछसफेद रगका था। वह दृश्य देखकर राजाकी समझमे आगया कि मत्री ठीकही कहता था। तो ऐसेही समझिए कि प्राय करके ऐसेही चिन्तन विचारवाले लोग अधिक पाये जाते है, कि जो धर्मके नामपर बाहर-बाहर तो दृष्टि रखते हैं, ऐसा होनाचाहिए, यो व्यवस्था करें, ऐसेही यो करे।इसको यो करें, इस तरह प्रभावनाहोगी, इसतरह प्रताप होगा। मगरयहा जोविकार भावका लगाव बनाया है और उससे जो निरन्तर दु खी रहा करता है इस दु खको मेटनेके लिए लिए खुदभी खुदमें कोई प्रयोग किया जारहा है क्या ? जो खुदमे प्रयोगकरे वहहै धर्मात्मा, ज्ञानी। और जो बाहर—बाहरकी व्यवस्था मे ही धर्ममानकरके सन्तुष्ट रहे उसने धर्म नहीपाया। तो ऐसाधर्म ऐसा निर्मोह भाव आत्मामे आयेतो आत्माका कल्याण है।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्त नैमित्तिकयोगके परिचयकी मोहध्वंसक्षमता—कैसे मोह हटे, इसके लिए आपको निष्पक्ष सही निमित्त नैमित्तक योग और वस्तुस्वातत्रयकी व्यवस्था समझनी होगी। अच्छा पहले तो उनके एकान्तका स्वरूप देखिये वस्तु स्वातत्र्यका एकान्त करने का क्या रूपक है कि प्रत्येक पदार्थ सत् है, स्वयं परिणमनशील है। देखो बात सही है पर जैसे एक समुद्रभर पानीमे विषकी एक कणिका भी डाल दी जाय तो वह सारा जल विषैला बन जाता है तो ऐसे ही सही बात सही—सही होने परभी अगर एक भी बात विषभरी हो जाय तो उसका हम लाभ नही ले सकते। खैर मानलो कलश भर पानी है, वह लाभ लेने की चीज है मगर विषकी एक कणिका भी मिल जाय तो उससे हम लाभ नही उठा पाते। हाँ तो इसमे बात सब सही है। वस्तु स्वतंत्र है, सत् है, स्वतः सिद्ध है, परिणमनशील है, अपना उत्पाद अपनी करणशक्तिसे करता है, अपनी परिणमन शक्तिसे करता है, परिणमन करते हुए त्रिकाल रहता, है बात पूर्ण सत्य है। अब असत्यका हिस्सा ले। उसमे जब विकार का पर्याय आनेको होता है तो विकार आता है। इस तरह विकार चलता हुआ चलता जाता है। यह भी सत्य है। मगर वह विकार जब आनेको होता है, इसका जब हम विश्लेषण करने चलते हैं और वहाँ यह कहते है कि यह तो अपने आप हुआ। वहा सामने जो हाजिर हो उसे निमित्त कह देते है। यह भी ठीक है, किन्तु जब तक का विपरीत

प्रयोग उल्टा सिद्धान्त बना देता है। लो फिरतो विषकणिका आ गई। कैसे आ गई और कैसे इसका लाभ हटा सो सुनो—यहां तो जब जो विकार आनेको है सो आयेगा ही। जब सामने जो हाजिर हो वह भी कहनेकी क्या जरूरत है ? हाजिर हो तो न हो तो, वह तो विकार आयगा ही, स्वभाव है, हम उसे कैसे निवृत करे। उसमे यदि इतना तथ्य जोड दिया जाय कि वस्तु स्वतत्र सत् हैं, अपने परिणमनसे परिणमती हैं, परिणमनशक्ति है, अपनी करणशक्तिसे उत्पाद करती है, ऐसा उत्पाद करता हुआ यह जीव, ऐसा परिणमन करता हुआ यह जीव जब कर्म विपाकका सन्निधान पाता हैं तो यह अपनी स्वतंत्रतासे, अपने ही विकाससे, अपनीही परिणतिसे विकारभाव करता है। देखो समझनेमे कोई दिक्कत न आयगी। दर्पण सामने हैं और मानलो हाथ सामने है तो दर्पणमे छाया आयी है तो वह दर्पणकी परिणतिसे आयी है। वह दर्पणके प्रदेशमे आयी हैं, बात सही है, मगर यह कहना कि दर्पणमे जब छाया आती होती है तो उस समय जो सामने हो उसे निमित्त कहते है। यह केवल कहनेकी बात रही। निमित्त नैमित्तिकयोग समझमे नही आया। हा निमित्त सन्निधान आया, उस समय यद दर्पण अपने आपकी स्वतत्रतासे अपने आपकी परिणतिसे हाथ की परिणति ग्रहण न करके अपने आपमे छायारूप परिणम गई। स्वतन्त्रता कहां मिटी ? निमित्त नैमित्तिक योग सही रहा।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयका सदुपयोग—जब हम वस्तु स्वातंत्र्य देखते है तबतो हमे यह शिक्षा मिलती है कि वस्तुतो अकेला है, अपने आपमें अपना परिणमन करता है। एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे कुछ मतलव नही है। कुछ नही करता है। जो कुछ होता है वह इसके करनेसे इसमे अपने आपकी परिणतिसे होता है। निश्चयकी दृष्टिका लाभ हम कैसे उठाते ? इस एकको देखो, वहां निमित्तका ख्याल भी न करें। केवल एक द्रव्यको देखो और एक द्रव्यको ही निगाहमे रखे, पर लक्ष्य हट जायगा, निमित्त दृष्टि हट जायगी। स्वभावदृष्टिमें हम झट आवेंगे। यहतो हुआ एक निश्चयदृष्टिसे देखनेका लाभ, जोकि मोह मिटा देगा। अब निमित्त नैमित्तिक योगसे भी देखे, वहा भी मोह मिटानेकी शिक्षा मिलेगी। कैसे ? देखो यह बात यहां ऐसी घट रही हैं कि जीव अनादिसे अशुद्ध है ना ? और अनादिसे कर्म सम्बन्धभी चल रहा है ना ? यह सवतो एक सन्तान रूपमें चल रहा और जव यह खोटा भाव बना तो उससे ये नवीनकर्म बंधते है और बंधकर उनकी सत्ता हो जाती है तो उस बंधे हुए कर्ममे प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग ये चार चीजे आती है, किन्तु उसकी सत्ता पूरी होती है तो उसके अनुभाग खिलता हैं। कर्ममे ही अनुभागकी स्फुरण होती है कर्ममे कर्मका अनुभाग खुला क्रोध प्रकृति है। तो क्रोध प्रकृतिमे भी क्रोधदशा

उत्पन्न हो गई। अचेतन क्रोध है। वह पर पदार्थ है। उसके क्रोधका अनुभव जीवभी नही कर सकता, अचेतन कर्म तो करेगा क्या? तो अचेतन प्रकृतिमे जो क्रोध परिणाम आया, जो क्रोध अनुभाग आया तो वहां वे अपने आपमें अपने ढगसे खिल गये। वे एक क्षेत्रावगाह थे। निमित्त नैमित्तिक योग कैसे वनता है कि जैसे वह खिला वैसे ही उपयोगमे भी उसकी झाकी थी झाकी आये बिना नही रह सकती। झाकी आयी। दर्पणमे अन्धकारकी झाकी आयी तो वह अपनी स्वच्छता से चिग गया, इसी तरह यह जीव अपने शुद्ध स्वभावसे चिग गया और वह क्रोध, राग आदि विकारो को अपनाने लगा और वह क्रोधी वन गया। अव इसकी परम्परा वन गई कि नवीन कर्मका वन्ध हुआ। उसका जव उदय आयगा तो वहा फिर ऐसी स्थिति होगी। हम आपको आज भी क्षयोपशमलब्धि तो प्राप्त है ही, इसमे सन्देह नही। इतना ज्ञानावरणका क्षयोपशम है कि हम तत्वज्ञान करले, विचार करले, निर्णय करले और विशुद्धलब्धि भी बनायें तो हो सकती है। और नही तो क्षयोपशम प्राप्त होने पर भी विशुद्धि न लाये, लगे रहे रगडा मे, तो यो भी समय खोया जाता है, फिर विशुद्ध लब्धिका अवसर हम आप लोगो को प्राप्त है। वक्ताओ से सन्देह हो तो ये ग्रन्थ हैं। क्या इनसे बात नही सीखी जा सकती है? देशनालब्धि भी प्राप्त है। अब प्रायोगलब्धि की बात और करणलब्धि की हम कर नही पाते। इन तीन लब्धियोकी विशेषता के प्रतापसे ये भी प्राप्त होगी, मगर जितनी लब्धिया हमे प्राप्त हुई उनका लाभ तो उठा ही लेना चाहिए।

पांच पर्यायतत्त्वोंकी सिद्धिका आधारभूत जीव और अजीव—मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ तत्त्व हैं। प्रयोजनभूत याने कामके, जिसके समझे बिना काम न बने उसे प्रयोजनभूत कहते हैं। तो इन ७ का लक्षण समझनेपर यह समझ आवेगी ही कि वास्तवमे इन सात तत्वोका यथार्थ परिचय ससारमे रुलने वाले प्राणियोको मोक्षमार्गके लिए बडे कामका है। पहिला तत्त्व कहा गया है जीव-जिसमे चेतना पायी जाय उसे जीव कहते है। जीव हम आप सब हैं। हम आप सब इस समय दुर्दशामे है और चाहिए हमे कोई ऊँची दशा, इतनी तो बात सबके चित्तमे रहती ही है। तो जीव तत्व तो एक प्रधान बात है, जिसपर सब कुछ निर्भर है। दूसरा तत्व बताया गया है अजीव। अजीव ५ जातिके होते है—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यहा मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तत्वकी बात चल रही है, तो ऐसा ज्ञेय प्रयोजनभूत तत्व है कर्म, क्योकि हम आप जब चेतनामात्र है तब वजह क्या है कि नाना विकल्प सुख दुःख जन्ममरण दुर्दशा ये चल रही हैं। किसी एककी ओर से कभी खराबी नही होती हर जगह देखलो। एक

हो स्वय, जैसा अपने आप हो, तो एकमें, अकेलेमें कोई विकार नही होता। किसी भी वस्तुमे कोई विकार होता है तो यद्यपि विकार तो हुआ उसीमे उसकी परिणतिसे लेकिन किसी पर उपाधि के सन्निधान बिना हो नही सकता। तो कोई पर उपाधि लगी है जीवके साथ, उसका नाम है कर्म। तो कर्मके बारेमे भी पहिले कुछ समझनेकी जरूरत है। इसे ८ वें अध्यायमे बताया ही जायगा, पर साधारणतया यहां यह समझले कि कर्म एक बहुत सूक्ष्म जातिकी वर्गणाये है, जिसकी जाति उपजाति कर्मवर्गणा है, ये कर्मवर्गणाये जीवका दुर्भाव शुभ, अशुभ भावका सन्निधान पाकर, निमित्त पाकर, ये कर्मरूप परिणम जाते हैं। यह सब निमित्त नैमित्तिक योग है। जो बात प्रकृत चल रही है उसमें क्या और क्योका कोई प्रश्न नही उठना। स्वभाव तर्कके विषयभूत नही है। कोई स्थूल पदार्थ जीवके साथ चिपके तो वह नही हो सकता है विकारका कारण। स्थूल का, मोटेका प्रभाव निमित्त न हो सकेगा कि यह जीव विकार कर सके। जीवके साथ जीव चूंकि अति सूक्ष्म है, तो इसके साथ कोई उपाधि हो तो वह भी सूक्ष्म होगा कोई न कोई। जीव तो अमूर्त सूक्ष्म है, पर अमूर्त सूक्ष्म जीवके साथ लगे, सजातीय साथमे लगे तो उससे विकार नही हो सकता। जल जल इकट्ठा हो जाय तो उससे कही गर्मी नही आती, जलके विपरीत कोई चीज साथमें हो, अग्नि हो तब विकार आता है। इससे जीवके साथ जीवके विरुद्ध चेतनारहित कोई पदार्थ हो और हो वह सूक्ष्म, ऐसा जो कुछ है वह कार्माणवर्गणा है। तो यह कार्माणवर्गणा जीवके साथ लगी है उसे कहा यहां अजीव।

जीवगणना—थोडा कुछ विशेष एक प्रतिभास या पात्रता होनेके लिए इस जीव अजीवकी सख्यापर ध्यान दीजिए। जगतमे जीव कितने है? अनन्तानन्त हैं। देखते ही है। कही कीडाकीडी निकल आते है तो कितने निकल आते हैं। यह तो एक मोटीसी बात है। और देखो कही पानी बरस गया तो हरी घास कितना अपने आप हो जाती है। यह जीव ही तो है, कितनी तरहके बनस्पति हैं, जीव ही तो हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भी जीव ही तो हैं। और, एक होती है ऐसी बनस्पति जो हरी नही है, छूने, खानेमें नही आ सकती, उसे कहते है साधारण बनस्पति। वे अनन्तानन्त है। जैसे एक किसी दृष्टान्तमे देखो—एक आलूमें असंख्याते निगोद शरीरके पिण्ड रूप कोई जिसे पुलवी कहते है ऐसा बड़ा शरीर है, उसके भीतर असख्याते और शरीरी है, उनमे से एक शरीरके आधारमे अनन्त निगोद जीव है। अब समझलो कि एक आलूमे कितने निगोद जीव हैं। ऐसे अनन्त स्थावर होनेके कारण आलूको अभक्ष्य बताया है, ऐसे और भी वर्णन हैं पर अभक्ष्यकी बात अगर देखो तो आलूसे अधिक अभक्ष्य गोभी का फूल है। जलेबी, सडी भुसी बाजारकी दही, पुरानी रोटियां, ऐसी

अनेक चीजे है जिनमे आलूसे भी अधिक दोप है, पर प्रसिद्धि आलूकी अधिक है, उसकी आफत लोगोंने ज्यादह कर रखी है और उससे अधिक अभक्ष्य जो गोभीके फूल है, पुराना अचार है, बाजार का पुराना दही है, बाजारकी सडी गली जलेबियां है ये तो आलूसे भी अधिक अभक्ष्य है, क्योकि इनमे त्रस जीवका घात होता है, तो उसका दोष अनन्त स्थावर घासके दोषसे अधिक है, पर उसका प्रचार नही है। तो यहां बतला रहे हैं कि लोकमे जीव कितने हैं ? अनन्त तो एक आलूमे ही मिल गए । आलूके टुकडे टुकडे हो जायें तो एक-एक टुकड़ेमे भी अनन्त जीव है। तो ऐसे कितने जीव है ? अनन्तानन्त जीव है। उनको कुछ स्थूल रूपसे समझना हो तो सब जीवोमे मनुष्य गतिके जीव सबसे थोडे है। चारो गतियोमे मनुष्य गतिके जीव सबसे थोडे है, फिर भी वे अनगिनते हैं; सख्यासे परे हैं। जिनमे पर्याप्त मनुष्य तो २७ या २९ अकप्रमाण हैं, लब्ध्यपर्याप्त असंख्याते है। उससे असख्याते जीव नरक गतिमे है। उससे भी असख्याते जीव देवगतिमें हैं और उससे भी असख्याते जीव त्रस जीव हैं उससे भी अधिक असंख्याते जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति है, उनसे भी अधिक जीव अनन्तगुने निगोद जीव हैं। हां उनसबसे निगोदसे पहिले जितने कहे गये है उनसबसे अनन्तगुने जीव सिद्ध जीव है और सिद्ध जीवोंसे अनन्तगुने निगोद जीव हैं।

पुद्गल परमाणुगणना—अब यहा देखो पुद्गल कितने है। एक जीवके सहारे कितने पुद्गल है ? पहिले तो यह बात सोचना। एक जीव के आश्रयसे कितने है ? जो एक-एक शरीर में ही देख लो। जो शरीर बना हुआ है। इसमे अनन्त परमाणु हैं, फिर इनसे अनन्तगुने परमाणु है ऐसे शरीर परमाणु जो अभी शरीर तो नहीं बन पाये, पर शरीर बनने के उम्मीदवार रहते है, उन्हे कहते हैं विश्रसोपचय। जो शरीर बनगया उससेभी अधिक परमाणु हैं उस शरीरके कि जो अभी शरीर तो नही बना किन्तु शरीर बन सकेगा, शरीर योग्य परमाणु और इससे भी अनन्तगुने है तैजसके परमाणु। तैजस शरीर जिसके होनेसे शरीरमे तेज रहता है। और, उससे अनन्तगुणे हैं कर्मवर्गणाये, कर्मपरमाणु तैजस परमाणु से अनन्तगुणे है उनसे अनन्तगुणे हैं ऐसी कार्माणवर्गणायें जो अभी कर्मरुपतो नही हुए, किन्तु कर्म बँधनेके उम्मीदवार हैं। अब सोच लो कि एक जीवके सहारे कितने परमाणु हो गए। यह एक साधारण बात कही, किन्तु जो दो इन्द्रिय आदि जीव है उसके साथ भाषा वर्गणाके परमाणु और बढगए। जो सज्ञीजीव है उसकेसाथ मनोवर्गणाके परमाणु और बढगए, जिससे कि मन बनता है। ये तो एक जीवके सहारे वाले परमाणु हैं। और, जीवने जिन्हे छोड दिया है ऐसे परमाणु बहुत पडे हैं। और ऐसे भी परमाणु है जिन्हे जीव ग्रहण न कर सका, न कर सकेगा। तब समझ लीजिए कि अजीव पुद्गल परमाणुओकी सख्या कितनी है भैया।

कर्मकी बात प्रकृत है यहा। तो ये कर्म है। बहुत से लोग तो व्यवहारमें तकदीर, भाग्य, किस्मत यो अनेक शब्दोमे बोलते है, पर किन्हीसे भी पूछो कि तकदीर क्या चीज होती है। तकदीरमें क्या बात बनती है ? तो वे बतावेंगे ही नही। कहते हैं भाग्य है। कोई अधिकसे अधिक बढ़ गया तो यह कहेगा कि तकदीर एक भाग्यकी रेखा है। उसका कोई प्रमाण भी दे देंगे कि देखो कही मरघटमे किसे मरे हुए व्यक्तिकी खोपडी पडी हो तो उसमें कोई चीज हो ? रेखायेतो दीखही जाती है, यो उन्हे कह देते है कि ये देखो जो रेखाये दिख रही है ये तकदीर हैं इनको विधाताने लिख दिया है। यो अनेक प्रकारसे लोग बोलते हैं, पर तकदीर क्या है ? कर्म क्या है ? उसके रग-रगकी बात, निर्जरा की बात, कहा कितने परमाणु है, कैसे बँधते हैं, यह सब व्यवस्था जैन शासनमे आपको देखनेको मिल सकेगी। कर्मका बन्ध, कर्मका इतना परिचय अन्यत्र कही न मिल पायगा। और, कर्मसब लोग बोलते हैं। तो ऐसी ये कार्माणवर्गणायें जो कर्मरूप हो गई है उनका यह प्रकरण है।

आश्रवकी व्याख्या—आश्रव क्या है ? आश्रव कहते है आनेको। जीवमें अजीवका आना सो आश्रव है। इस तत्त्वका विशेष विवरण आगे कहेगे। अभीतो सक्षेपमें थोड़ा स्व-रूप कह रहे हैं, इसलिए कि यह कहनेका, बतानेका मौका मिले कि तत्त्व ७ ही क्यो कहे गये और इनको इसही क्रमसे क्यो रखा ? इतनी बात थोडा कहनेके लिए थोड़ा स्वरूप अभी कह रहे। विशेष आगे कहेगे—आश्रवका अर्थ है जीवमें अजीवका आना। अच्छा आश्रव शब्द ऐसे आनेको बताता है कि लोगोको पता न पडे और आ जाय। वैसे तो आनेको आग-मनभी कह देते, और भी धातु लगाते, पर आश्रवका क्या अर्थ है ? आ।समन्तात्स्रवणंइति-आश्रव याने जो चारो ओरने चू कर आये। जैसेकि पहाडोंसे पानी झरता है तो कही कहीतो यहभी पता नही पडता कि किधरसे आ रहा है। वहतो चारो ओरसे एक पसीनेके रूपमें चू चू कर आता रहता है। उसमे सही पता नही पडता कि यह कहासे आया है, किस विधि से आया है, बस चू गया, स्रवण हो गया, तो इसी प्रकार इस आत्मामे जीवमें सर्वप्रदेशोमे चारो ओरसे कर्मोका स्रवण होता है। चू आता है जिसको कहते है स्रवण। इस तरह कर्म आते है। एक आना ऐसा होता है कि बाहर है कोई और वहासे यहां आ गया, चलकर आ गया, कर्मका ऐसा आना नही होता है, किन्तु अभी जो बताया गया कि जितने जीवके साथ कर्म लगे है उसमे अनन्त गुने ऐसी कर्मवर्गणाये है कि जो अभी कर्मतो नही बनी, पर कर्म बननेकी उम्मीदवार है। विश्रसोपचय वहभी जीवकेसाथ ऐसा बन्धन को प्राप्त है कि मरनेके बाद जीव जायगा परभवमे तो जीवके साथ कर्मतो जातेही है पर वह विश्रसोपचय भी जीवके साथ जाता है, जो कर्म बननेके उम्मीदवार है, ऐसा जोवके साथ एक क्षेत्रावगाह हुआ। तो

मामलातो तैयार है। कोईकर्म बाहरसे नही आते हैं। उनमे भी तो विस्रसोपचयमे मिलकर आस्रवको प्राप्त होतो है। यहां जीवके शुभ अशुभ भाव हो तो उसका निमित्त पाकर वे कार्माणवर्गणाये जो उम्मीदवार है वे कर्मरूप परिणम जाती हैं, ऐसा स्रवण (चूना) होगया उसे कहते है आश्रव। कैसे आश्रव होता है यह बातभी आगे कहेंगे।

बन्धव्याख्या और संवर निर्जरा मोक्षका निर्देश—इस सूत्रमे तत्त्वोका बहुत वक्तव्य है वह कई दिवसो तक चल सकेगा। अब यहा बताते है कि ७ ही तत्व क्यो है? इनको इस क्रमसे क्यो रखा है? इसके लिए थोडासा उनका स्वरूप कह रहे है। बंध क्या है? जीवमे अजीवका बध जाना उसको कहते है बन्ध। आना और बधना इसमे अन्तर है। आनातो स्थिरताको सूचित नही करता। आनेका अर्थ है आया। दौडकरभी यहासे निकल जाय उसे भी तो आना ही कहेगे और ठहरना कहो या बधना कहो वहां बधनेमे कुछ समय लगता। कहनेमे समय नहीं लगता। बधनेमे समय नही लगता। तो जो एकही समयकी बात हो तो उसे आता है कहिए और कमसे कम दो समयकी बात हो तो ठहरता है कहिए जैसे एक रेखा खीच दी तो रेखा खीचनेमे एक यूनिट समय लगता है। उसको जितना काल समझलो और उस रेखाको मोडा जाय तो उसे दो यूनिट लग जायेंगे। ठहरना अवश्य पडेगा। ठहरे बिना मुडना नही हो सकता। कोई कहे कि अगर गोल गोल खींच दे तो? तो कैसा ही खीचदो मगर वह रेखा कहलायगी मोड न कहलायगी। जहा मोड आयगा वहा समय अवश्य अधिक लगेगा। तो रेखाकी तरहतो हो गया आना और मोडकी तरह हो गया बधना, एक बात। दूसरी बात यह समझिये कि आना पहले समयमे हुआ और बँधना वह भी पहले समयमे हुआ। अगर दूसरे समय तक रहे तो बधना कहलाता है। जैसे कोई आकर ठहर जाय तो यह भी कहा जायगा कि एक समयमे तो आया और इसके बाद ठहरा, आया, तब ठहरना कहलायगा। अगर वह दूसरे समय ठहरता है तो। तो इसी प्रकार बध और आश्रव होते, ये दोनो एक साथ है, मगर बध सज्ञा कब पडती है जबकि वह दूसरे समय ठहरे। यह एक दृष्टाँतमे कह रहे है। कोई कर्म ऐसा नही है जो दो समय को आये, तीन को आये, वह तो असख्योत समयको और अनन्त समयको आता है, पर बधकी बात बताई है कि दो समय कम से कम ठहरे तो उसे बध कहते है। कर्म आया, कर्म बधा, सम्बर क्या है कि अब नये कर्म न आये, रुक गये, और निर्जरा क्या कि जो पहिले से बधे हुए कर्म हैं उनका झगडना, निकलना सो निर्जरा है, और जबसारे कर्म निकलजाते है, झड जाते है, एकभी अणु नही रहते हैं तो उसका नाम है मोक्ष, यो ये ७ तत्त्व हैं।

प्रयोजनभूततत्त्वसंख्याका निर्णय—अब इन ७ तत्त्वोके बारेमे कुछ विचार कीजिए कि

७ ही तत्त्व क्यो कहे गए ? कम और ज्यादाह भी तो हो सकते है । तो इसके विषयमें कोई यदि यह उत्तर दे कि भाई देखो अगर बहुत कम कहते, जिसे कहते है संक्षेप (*Short*) कर दिया जाय तो एक भी कह लो । मैं जीव हूँ । प्रयोजन उसीसे है । उसी को देखने की बात है, वह ही तत्व है । तो क्या इतनेसे कुछ बाते समझी जा सकेंगी ? धर्मस्वरूपका नासमझ को कुछ समझ बन जायगी । इस कारण सक्षेपसे तो काम नही चल सकता । और विस्तार अगर कर देवे तो १०, २०, ५० लाख करोड और अरब भी तो तत्व बताये जा सकते, कि जिनको गिनने बैठे तो समय लगता ही चला जाय । तो क्या विस्तारसे वस्तुको बतानेमें भी काम चल सकेगा ? न चल सकेगा । इसलिएतो न संक्षेपमें हो न विस्तारमे हो, एक मध्यम सख्या लेली, कोई ऐसा कह दे तो यह भी जवाब अभी पूरा सही नही बैठा, क्योंकि मध्यममें ७ ही क्यो लिया ? ६ लें, ५ ले, वे ऐसे बनाये जा सकते है । जैसे मान लो जीव, अजीव और बन्ध और मोक्ष । और बढ़ाओ–जीव, अजीव, बन्ध, सम्बर, मोक्ष । बात आ जायगी किसी न किसी ढगसे पूर्ण । जीव अजीव, बंध बंध हेतु, मोक्ष, मोक्ष हेतु । यह बोल लो । कितनी प्रकारसे बोला जा सकता है ? ७ ही क्यों रखे गए ? तो इसके विवरणमें सब समाधान हो जायगा कि मोक्षमार्गमे जो जीव चलना चाहता है उसको ये ७ प्रकार के तत्त्वोकी श्रद्धा करनी आवश्यक होती है ।

अन्यप्रकाराभिमत तत्त्वसंख्यासे मोक्षमार्ग प्रयोजनताकी असिद्धि—प्रयोजनभूत तत्त्व संख्याके बारेमे और भी चर्चा चलेगी अभी, पर इससे पहिले एक बात और सुन लीजिए, जिसे अन्य दार्शनिक कह सकते है । यह तो अभी जैन सिद्धान्त की ही बात है, पर अन्य दार्शनिक यह कहते हैं कि भाई तत्त्व ७ नही है । कोई तत्त्व २५ मानते है, कोई तत्त्व ७ मानता है कोई तत्त्व दो ही मानता है इस तरह अनेक प्रकारकी सख्यामें तत्त्व मानने वाले अनेक दार्शनिक हैं । जैसे उदाहरणमें लो-एक सांख्य वे २५ तत्त्व मानते है और वे इस २५ संख्या को प्रदान करते है और इसी पर उनका नाम साख्य पड़ा है । जो संख्या से लगे रहें उन्हे कहते हैं सांख्य । तो २५ तत्त्व किस प्रकार हैं ? एक तो पुरुष, जिसे आत्मा कहो, ब्रह्म कहो, जीव कहो, चेतना कहो, चेतन कहो, एक तो हुआ पुरुष और इसके बाद प्रकृति जिससे कि महान, अहंकार और फिर ५ शरीरकी इन्द्रियां और ५ कर्मकी इन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां होती हे । ५ ज्ञानेन्द्रियां तो जानते ही है—स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु और कर्ण और ५ कर्मकी इन्द्रियोको, मन, वचन, काय, तब दो और । तो जहां मो शौच करते वह भी एक कर्मेन्द्रिय मान लीजिए, वहां भी तो कुछ फड़कन होती है, क्रिया होती है और एक जननेन्द्रिय । इसतरहसे ये ५ कर्मकी इन्द्रियां है, एक मन और ५ तन्मात्र । शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

गध याने जो इन्द्रिय द्वारा जाना जाय और फिर है आकाश और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चार महाभूत इसतरह २५ तत्त्व मानते है। देखो-तत्त्व तो कहते हैं प्रयोजनभूतको। पदार्थकी दृष्टिसे भी देखे तो पदार्थकी जाति उतनी छाटनी चाहिए कि जितनी कमसे कम जातिमे सारे पदार्थ आ जाये, कोई पदार्थ छूटे नही और कोई अव्युक्ति न बन जाय, दुबारा न बन जाय। पदार्थोकी जाति तो वहा लायी जा सकेगी। जैन सिद्धान्तमे पदार्थोकी जातिया ६ बताई गई है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। जीवका गुण, जीवका कार्य शेष ५ नही कर सकते, पुद्गलका कार्य शेष ५ नही कर सकते। धर्म जैसा कार्य, धर्म जैसा स्वरूप शेष ५ मे नही है। तब ही तो ६ जातिया है। और कोई छूटा नही है। किन्तु यहाँ आप विचार करेंगे तो कुछ छूटे मिल जायेंगे। काल द्रव्यका यहा वर्णन ही नही है। धर्म अधर्म द्रव्य जिसे आज वैज्ञानिक लोग भी कुछ उसका अदाज करने लगे हैं कि कोई एक ऐसी जातिकी तरंग है जो शब्द, वायु, किरण आदिकके चलनेमे सहायक होती है। न हो उस-तरहका कोई धर्म तो ये चल नही सकते। तो ऐसे धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य ये तो उसमे आ न सके और कई दुबारा बोले गए। पृथ्वी जल, ये पिण्डरूप है ना, रूप, रस गध, स्पर्शमय है ना। इनको दुबारा कहनेका क्या प्रयोजन ? स्पर्श, रूप, रस, गध, इनको अलगसे कहनेका क्या प्रयोजन ? जब पृथ्वी, जल, आदिक कहा तो इनमे कुछ तो अधिक हो गए और कुछ छूट गए। इस तरह से द्रव्य जातिमे बात नही आती। और प्रयोजन-भूतकी दृष्टिसे देखें तो देखो भाई दुनियामे पदार्थ बहुत है। प्रयोजन तो अपने आपको समझनेके लिये और पर जाननेका है तथा परसे हटाकर स्वको शुद्ध रखनेका है। इसकी सिद्धि इन सात तत्त्वोसे हो जाती है। जीव तो स्वय है, इसके साथ अजीव बँधा है अभी, यह भी निश्चित हो गया। जीवमे अजीव आया, आस्रव। जीवमे अजीव ठहरा, बध। जीवमे अजीव न आ सके, सवर। पहिले आये हुए अजीव जीवसे हटने लगें, निर्जरा। और, जीवसे अजीव, पूर्णतया हट जायें सो मोक्ष।

शान्तिधाममे पहूँचनेके लिए प्रयोजनभूत तत्त्वोंकी संख्याका समर्थन—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सबर, निर्जरा, मोक्ष ये ७ तत्व है, जिनका भली भातिसे निश्चय किया जाय तो मोह दूर होगा और सम्यक्त्वका लाभ होगा। इसीके विषयमे कुछ दार्शनिक चर्चा चल रही है कि ये तत्व ७ ही क्यो कहे गये। पहली बात तो यह देखिये कि अन्य दार्शनिकोंने नाना संख्याओ मे तत्व माना है, जैसेकि सँख्या मानते है २५ तत्व मीमाँसक मानते है ७ तत्व अथवा ६ तत्व,। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। उन मीमा-सकोंमें जो प्रभाकर है वे मानते है, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, परतन्त्रता, शक्ति और

नियोग यो ८ तत्व तथा जो और नवीन प्रभाकर है वे नियोगके स्थानपर संख्याको तत्व मानते है। परतन्त्रताकी जगह समवायको मानते है। यो नाना प्रकारके तत्वविवादी है। उनका समाधान हो इसलिए ७ तत्व कहे। बात ठीक है लेकिन ७ ही तत्व क्यो कहे गए। कम बेसी क्यो नही कहे गए ? एक बात यह सामने आती है। तो बात यह है कि इन ७ बातोके जाने बिना श्रद्धानका मार्ग नही मिलता। मैं जीव हूँ, मैं दु:खी हूँ। मुझे दु.ख दूर करना है, इतनी बात तो पहले आनी चाहिए ना। हा-मैं जीव हूँ, तो क्या मेरे स्वभावसे दु.ख लगा है ? अगर स्वभावसे दु.ख लगाहै तो उस दु:खमें राज़ी रहे। फिरतो वह दु.ख कभी छूट ही नहो सकता। तो यह दु ख स्वभावसे नही होता है। विभाव परिणतिसे होता है। दूसरेकी परिणतिसे भी नही हुआ अन्यथा दूसरेकी परिणति हुई तो दु.खतो वह दूसराही भोगेगा। मै क्यो भोगूगा ? तो परिणति मेरे आत्माकी मेरीही है। लेकिन किसी पर उपाधि का निमित्त पाकर यह मुझमे दु ख आया है। और, क्यो आयाहै कि किसी उपाधिके कारण उपाधि आयी है, उपाधि बध गई है, यह तो मेरी दुर्दशा है। और, यह दुर्दशा मिटे कैसे कि पहले उपाधिका आना दूर हो और पहले बधे हुए भी कर्म खिर जाये तो ये सब दु:ख दूर हो। दु.ख दूर होनेका नाम है मोक्ष। कैसी सही सीधी व्यवस्था है। इससे कम कहनेमे स्पष्टता नही आ सकती। इससे अधिक तत्व बढानेमे व्यवस्था नही बन सकती। फिर तो कोई कहे कि ७ की जगह ९ करले, १०० करले, हजार करले, लाख करले, यो कितनेही विकल्प बनाये जा सकते है। तो आचार्यदेव जो कुछ बताते हैं, जो उनके द्वारा रचना हुई है वह बडी दृढ हुई है, बिल्कुल सही हुई है, न कम बचन निकलते है न अधिक। तो ऐसे ही मध्यम उत्पत्तिमे इन ७ तत्वोका वर्णन किया है।

मुक्तिसंभवताकी श्रद्धाकी परमावश्यकता—देखिये सबसे पहले दु खसे छुटकारा पाने वाले पुरुषको मोक्षका तो श्रद्धान करना ही चाहिए कि हां मेरा मोक्ष हो सकता है। जिसको यह ही श्रद्धा नही कि मेरा मोक्ष हो सकता है वह फ़िर उपायमे लगेगा कैसे ? जो बात असम्भव समझी जाय यह तो कभी हो ही नही सकती, तो कैसे उसमे पार पाया जा सकता है ? एक छोटोसी घटना है कि मानो पहले जब महाभारत युद्ध हो रहा था तो उस समय धीर वीर पुरुष बडे उत्साह से, बडी वीरतासे घरसे निकलकर युद्धमे सामिल हो जाते थे, उस समय एक घर ऐसा था कि जिसका पुरुष घरवालीसे (स्त्री से) बडी वीरताकी बाते हाकता रहता था, और पुरुषोमे यह आदत होती है, दूसरी जगह कहा शूरवीरताकी बाते हाके ? और जगहतो वे बातें फैल हो जायेगी, पर स्त्री के सामने वे बातें बडी मुश्किलमे फैल हो पाती है। तो वीरताकी बाते वह पुरुष हाकता था। एक बार उसकी स्त्री ने कहा कि देखो इस

समय सब लोग देशहितके लिए युद्धमे शामिल हो रहे हैं, तुम वीर पुरुष हो, तुम भी ऐसा करो कि युद्धमें जाओ और अपना फर्ज अदा करो। तो वह पुरुष बोला कि युद्धमे हम जायेंग और वहा अगर मारे गये तो ? तो स्त्रीने क्या किया कि दरेती में उड़द, मूग या चने दल दिये। उसमें कुछ दानोकी दो दाले बन गई, कुछतो यो ही समूचे दाने निकल आये और कुछ चूरा बन गए। अब वह स्त्री कहने लगी देखो जैसे इस दालके दले जानेपर सभी दाल तो चूरा नही बनी, कुछ दाने भी तो निकल आये, इसी तरह युद्धमें सभी लोग तो नही मर जाते, कुछ रक्षित भी तो रहते हैं, बल्कि युद्ध मे बचकर आने वालो की सख्या बहुत रहती हैं, तो वह पुरुष बोला—अरे हम इन बचे हुए दानोमे से नही हैं, हम तो चूरा वाले नम्बर मे है। ऐसी श्रद्धा जो रखेगा वह क्या फतेह पायेगा ? जो माने कि मुक्तितो मुनि महाराजकी ही होती है, मुक्ति तो इन पडितो की ही होगी, ज्ञानियो की ही होगा, हम जैसोको मुक्ति कहाँ धरी ? हम कहा मुनिव्रत पाल सकेंगे, कहां चरित्र बनेगा। हमारे लिए ये ग्रन्थ नही है, ये दूसरेके लिए है। जो पहलेसे ही अपना कधा डालदे उसको मुक्तिका मार्ग कहासे हो ? अब जरा अन्तर्दृष्टि देकर विचार करें तो ऐसा लगेगा कि मुक्ति सामने है। जैसे कोई गाव जानेवाला पुरुष यह जानता है कि यह गांव तो नाक के आगे रखा है, वहा जाहर है। तो जिसने अन्तर्दृष्टिकी है उसेविदित होती है कि मुक्तितो यह है। तो भावका ही तो नाम मोक्ष है।

विकारके दुःख हेतु तत्वका निर्णय होनेपर कष्टका विध्वंस—ज्ञानीने यह निर्णय कर लिया कि मेरे ऊपर जो कुछ विकार बीत रहा है, जिन विकारोंसे हम परेशान होते हैं वे विकार इनसे मेरेको लेन देन क्या ? यहातो यह घटना बन रही है कि पहिले बाधे हुए कर्म अपने अनुभागमे खिले है और यहा झलकते है और फिर उनकी यह घटना बन रही है कि नवीन बधे और बाधे हुए कर्म अपने अनुभागमे खिले है और यहां झलके, फिर उनकी बुद्धिसे कुछ व्यवसाय किया, फिर उनका उपयोग किया और अपना लिया तो इसने यहा यह गलती की है मगर जो झलका है, झलकमें जो आया है, इसपर जो बीत रही है वह तो कर्मका नाच हैं, कर्मकी लीला है। मैं तो उससे निराला एक उपयोग स्वरूप शुद्ध ज्ञानस्रूप हूँ। यह तो कर्मलीला है, यह बाहरी बाते है, ये बेकार बाते हैं। ये भ्रममे रहने वाली, भटकाने वाली जन्म मरणकी परम्परामे रहने वाली बाते है। तो इस कर्मलीला मे क्यो अपनाऊ ? जिन्हे गैर मानते, जिन्हे दु खका कारण मानते उनसे कोई प्रीति करता है क्या ? यह झलक, यह लगाव, यह उपयोगका जुडाना जब मेरे दु खके लिए है तो मेरेको नही करना जुडान। कर्म विपाक आया, नैमित्तिक भाव होकर रहेगा। अब करना क्या है। कर्मविपाक झलका, अब

इसको ज्ञेय बनाकर ही हम रह सके, जाननेके लिए ही रह सके कि है यह, कर्मविपाक है, यह मुझमे झलका है। यह बरबादीका कारण है, अशुचि है, अपवित्र है, दुःखका हेतु हैं। इससे मेरा लेन देन क्या ? मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरा व्याप्य व्यापकभाव बनता रहता है तो इस झलक और जुडानके साथ बन रहा। उस अचेतन कर्मके साथ मेरा व्याप्यव्यापकभाव भी नही है तो उसमे मेरा कर्त्ताकर्मभाव भी नही है। मैं अपनेमे राजा हूँ, वह अपनेमे राजा है, पर निमित्त नैमित्तिक योग है, हो रहा है यह। हम जो आगे बढ़ते है सो दु.खी हो जाते हैं। दु खका हेतु जब समझ लिया, यह है दु खका कारण, बाहर कुछ दु.खका कारण नही, फिर तो कष्ट होना नही।

भ्रम करनेका बेवकूफीमें पद पदपर आपत्तियाँ:—भैया ! आनन्दस्वरूप होकर भी जीव परेशान होते है केवल इस भ्रम से कि बाहरसे मेरा कोई सम्बन्ध है। इस दुकानसे, इस फर्मसे, इस पार्टीसे, इस गोष्ठीसे, इस कुटुम्बसे मेरा कोई सम्बन्ध है, ऐसी बात भ्रममे रखते तो पद–पदपर दुःखी होना पडता है। कोई पुरुष स्त्री थे, तो पुरुषका नाम था बेवकूफ और उसकी स्त्रीका नाम था फजीहत। सो उन दोनोमे जब चाहे दिनमें लडाई हो जाती थी और सामको फिर उनमे सलाह हो जाती थी। एक दिन उनमे जरा ज्यादह लडाई हो गई तो फजीहत घर छोड़कर कही भाग गई। अब वह बेवकूफ अपने पडोसियोंसे पूछता फिरता– भैया तुमने कही मेरी फजीहत देखी ? तो वे तो झट समझ गए और तुरन्त साफ उत्तर दे दिया कि हमने तो नही देखा। अब उस पुरुषने एकबार किसी ऐसे आदमीसे भी पूछा जो कि अन्य गांवका था क्या तुमने मेरी फजीहत देखी ? सो वह तो कुछ अर्थ ही न समझ सका। वह पूछ बैठा–भाई आपका नाम क्या है ? तो उस पुरुषने बताया कि मेरा नाम है बेवकूफ।...अरे तुम बेवकूफ होकर फजीहत को कहां बाहर ढूढते फिरते हो ? बेवकूफके लिए तो हर जगह फजीहत हाजिर है। जहा उसने कुछ खोटे बोल बोल दिये, वस उसके लिए सब जगह लात घूँसे हाजिर है। बस यही दशा ससारी जीवोंकी हो रही है कि बेवकूफ बन र है। कैसे बेवकूफ कि ये बाहरी वैभव अत्यन्त भिन्न है। अत्यन्त भिन्न क्षेत्र मे है, उनको मानते कि ये मेरे हैं। देह जो दिख रहा है यह भी बाहरकी बात है, स्थूल है। अचेतन है, पाद्‌गालिक है, भिन्न है। उसे मान रहे कि यह मैं हु, यह मेरा है, और, तो जाने दो, जो कर्मोदय होता है, जो कर्मकी दशाये होती है वे भी बाहरकी चीजे है, पौद्‌गालिक है। उसके विपाककी झलक हुई कि तुरन्त कर्मविपाकको मान लिया कि यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह ही सब कुछ मेरा प्राण है, तो जो इतनी बेवकूफी कर रहा हो उसे तो पद-पदपर क्लेश है। लोग सोचते हैं कि मेरेको बड़ा क्लेश हो रहा। यह क्लेश कैसे दूर हो ? तो क्लेश दूर होनेकी क्या

यह विधि है कि बाह्य पदार्थमे हम निग्रह और अनुग्रह करे ? उसमे कुछ सुधार बिगाड करें, क्या यह उसकी रीति है ? अरे यह तो बेवकूफी की बात है। भ्रमसे दुःख हुआ और भ्रमको दूर कर दे तो सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। तो यह ही तो समझनेकी बात है, धर्मके लिए इस जीवनमे प्रारम्भसे लेकर अब तक बहुत-बहुत श्रम भी करे, काम भी करे, लगे भी रहते हैं, सब कुछ करते हैं फिर भी शान्ति नही मिली, तो भाई कुछ तो सोचो कि हमने वास्तवमे विधिपूर्वक ढगसे धर्म नही किया तब शान्ति नही मिली ?

सविधि धर्म होनेपर अशान्तिकी असम्भव:—यदि हमारी विधि सहित धर्मकी बात बनती तो अशान्तिके दिन हमे देखनेको न मिलते। तो वह विधि क्या है ? यह भेद विज्ञान ? पहिले यहां अन्तरमे भेदविज्ञान करें। दूध और पानी मिले हुए है, जिनके भेदविज्ञान होगा कि दूध यह कहलाता, दूधमे दूध है, पानीमे पानी है। दोनो जुदी जुदी चीजे है। कोई पुरुष विधिसे यत्र डालकर कुछ चीज डालकर दूधको अलगभी कर देगा और पानीको अलग कर देगा इसीतरह यह कर्मविपाक, यह कर्म और यह उपयोगकी वृत्ति ये दोनो एक जगह मिले हुए हैं। जो यह भेदविज्ञान करेगा यह तो है कर्मविपाक और यह है वृत्ति उसके उपयोगकी वृत्ति, चिद्वृत्ति, वही तो कर्मविपाकको हटाकर अपने स्वरूपको ग्रहण कर सकेगा। पहिला कार्य क्या ? एक इस भवमे, इस जीवनमे इस बातको मानले, ठानले कि मेरेको तो अतस्तत्त्वका ज्ञान करके ही रहना है। ये बाहरी बातें मेरे लिए कीचड हैं, विकार हैं। बाहरी वैभव मिला तो क्या और गरीब रहे तो क्या ? वैभवकी चिन्ता उसकी शल्य तो बहुतकी जरा गरीबीका आनन्द तो लूटो। क्या धनिकता मे ही आनन्द है ? गरीबीमे क्या आनन्द नहा है ? बाहरी पदार्थोंके, परिग्रह के न रहनेसे गरीबी कहे तो ऐसे सबसे बडे गरीब तो मुनि महाराज है, कोई परिग्रह नही है, कोई सग नही, निर्ग्रन्थ एकाकी है, उनका आनन्दका पद हैं। कितना विशाल आनन्द रहता है। अच्छा-बात यह कह रहे है कि सम्यग्ज्ञान साथ है, ज्ञान साथ हैं तो गरीबीमे भी आनन्द है, अब गृहस्थकी बात ले लो। गरीब है गृहस्थ, मकान अच्छा नही है, कही चू भी रहा है, कही नीचा ऊँचा भी है, रह रहा है, उठ रहा हैं, बैठ रहा है, यहां बैठा वहा बैठा, कुछ भी करे। जिसके यह ध्यान है, यह कर्मलीला हैं, मैं तो उपयोग स्वरूप ज्ञानमात्र हूँ। वह तो गरीबीमे भी आनन्दले रहा है। कोई भी स्थिति हो, धनी हो तो, गरीब हो तो, कुछ भेद मत समझें कि अन्तर हैं इन दोनोमे। अन्तर पडता है तो ज्ञान और अज्ञानसे ही अन्तर पडता है। सम्यग्ज्ञानको सम्हाले, अपनी बातोको ले और अपने आपका आनन्द लूटें। वैभव मिला है तो उपेक्षाकी कला सीखे, नही तो इस जीवन मे भी दुःख और परलोकमे भी दुःख। गरीबी है तो क्या हुआ ? धन वैभव तो एक पक

है, इस प्रकार की श्रद्धाकी कला सीखे। धर्मभाव होनेपर सब जगह आनन्द ही आनन्द है।

विकल्पों द्वारा दुःखोका आमन्त्रण—भैया ! भीतरी दृष्टि करे—किसीको भी कष्ट नही। जो भाई बैठे है, जो भी लोग हैं एकको भी दुःखनही है। अपनेको देखोकि मैं स्वतन्त्र अकेला हूँ। भार क्यों लादते हो ? घरमे अगर १० व्यक्ति हैं तो उनके पुण्यनही है क्या ? कोई जो ६ महीनेका बच्चा है उस बच्चेके आरामके लिए आपकितना उद्यमकरते है ? छोटी सी एक गाडीभी लेदेते, उस गाड़ीको चलाने केलिए नौकरभी रखलिया, अच्छी गद्दी भी लगा ली, खिलौनेभी रखदिये और कभी कभी उसबच्चेको हाथमे लेकर देखना चाहतेकि यह थोडा मुस्करातो जाय। जरा मैं इसकी मुस्कराहट देखतो लूँ, ऐसीआप प्रतीक्षाकरते हैं याने जिसके खुशहोनेकी मुद्रा देखनेके लिए आपयहा वडे उत्सुक होते है–हमेयह बतलावो कि पुण्य आपका बड़ा है या उसबच्चेका ? यहांही निर्णयकरके देखलो। जिसकी ओर मुखताकते रहते जिसकी बाटजोहते, जिसकी सेवाकेलिए नौकररखा, बुवा बुलाया, इस बच्चेको दु खनहोनेपावे, ऐसी औरभी बहुतसी चेष्टाये आप करते है तो ऐसीचेष्टा करने वाले बापका पुण्यअधिक है या उस ६ महीनेके बच्चेका पुण्य अधिक है ? अरे पुण्यतो उसबच्चेका ही अधिक है। तो जिसका पुण्य बडा है उसकीतो आप चिन्ता कर रहे और जिसका पुण्य घट गया ऐसे अपने आपकी कुछभीचिन्तानही कररहे। कहते हैं ना—"आये मुट्ठीबाध मनोहर, हाथ पसारेजाना। दो दिनका यह खेल तमासा, मिट्टी मे मिल जाना।" आये मुट्ठीबाध, इसकाअर्थ क्या है ? कि जब पैदा हुए थे तो पुण्य साथ लायें थे। और हाथ पसारे जायेंगे का अर्थ है, कि मानोसारा पुण्य वहाकर जायेंगे। तो उस बच्चेकी क्यो सेवाहोती कि उसके पहिले भव का पुण्य है। उसकी ज्यों-ज्यो उम्रबढती है, ज्यो-ज्यो उसमे मायाचार, छल-कपट आदिक विकार आतेजाते है, उनका प्रयोग करता है तो उसका वह पुण्य दूर होता है। तो नौवत आजाती है कि उसे हाथपसारे जानापड़ता है।

विभावसे उपयोग न जोड़कर स्वभावमें जुड़ान होनेपर मुक्तिका आश्वासन—भाई बात यह कह रहे है किअपनेको जरा भगवत्स्वरूपमे देखो। सबशल्य दूरकरो, सबचिन्ता दूरकरो, मैं हूँ, अपना जिम्मेदार हूँ, अपने आपमें हूँ, मेरा सबकुछ मेरेमे है मेरेसे बाहर कुछ नही है, सो येभी भले है। इनका इनके उदयसे काम चलता। मैं इनका कुछनही करता। होने दो, उपेक्षाभाव रखें और आत्मज्ञानसे, तत्त्वज्ञानसे, सम्यक्त्वबलाभसे इनसे प्रीतिजगावे, यह है करनेका काम। तो देखिए उसको मुक्ति ऐसीलग रही है कि यहतो है, नियमसे मुक्ति मिलनीही तो है। जहांयह भेदविज्ञान आगया और समझलिया कि मैंतो एक विशुद्ध ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र हूँ, चैतन्यकी वृत्ति जगरही है। अब भ्रमसे हटकर निजमें शुद्ध वृत्ति जगायी।

अब स्वय के स्वरूप मे उपयोग चल रहा है विशुद्ध वृत्ति जगरही है, उपयोगकी वृत्तितो अब नही रही। होजाय ऐसी सहज वृत्तितो वह कभी न मिटेगी, अब उपयोग जोडने की बातक्या रही ? ऐसी स्थिति पानेकेलिए ज्ञानीका अभ्यास चलरहा है भेद विज्ञान करता है। समझता है, सब स्पष्ट बात, जैसे दर्पण आगे हाथआया तो हाथका रग हाथमे है कि दर्पणमे ? हाथमे, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि दर्पणमे हाथके अनुरूप रग आ गया। अब दर्पण स्वच्छतासे हटगया। उसमे चेतना नही है, नहीतो उसछाया को अपनालेता। उससे अपना लगाव करलेता। अचेतन है, तो अचेतन होनेसे उतनीबात होगई जितनी कि आत्मामे बात हुई कि कर्म विपाक आयातो कर्ममे भी ऊधममचा। पहिले अनुभाग बँधा था, तो अब अनुभाग (विपाक) आया तो जैसे चूनाका डिगला जब तक अच्छा है स्थिति तब तकहै, ठीक है। बादम वह फूल ही तो गया। वह ही विपाक कहलाता है। तो जब तक अनुभाग खिला उस कालमे निमित्त नैमित्तिक योग है जो चल रहा है। यहा भी उपयोगमे वह बात आयी, वह रग आया, वह छाया आयी, किन्ही शब्दोसे कहो, अनर्थ क्या हुआ ? यहां तक ज्ञानी को कोई अनर्थ नही है। इसके आगेकी घटनाये पहिला अनर्थ होता कि उपयोग जुडा, दूसरा अनर्थ यह होता कि यह उसे अपना मान बैठता। तो भेदविज्ञानमे पुरुषके लाभ की बात देखें कि अब उसको परतत्त्व अपना नही रहा। सम्यक्त्व होनेपर भी कुछ काल जो कषाय जगती है बिषयमें उपयोग जोडनेकी बात है तो वह पुराना सस्कार जो बनाया ना सो ज्ञान होनेपर भी पूर्व भ्रम था और उसका संस्कार है, उसके कारण फिर रागमे लग जाता, याने उपयोगमे जुडता। उपयोगमें जुडनेका कारण है इसका पूर्व सस्कार

व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंके परिचयसे लाभ उठानेका स्मरण—भैया निमित्त नैमित्तिक योगमे जो अनिवार्य है वह तो होकर रहता। तब ही तो देखो—करणानुयोगमे बताया है कि उदयका जब समय आता उस समय उसे नही टाला जा सकता। उदयक्षणसे एक समय पहिले टाल ले जिसको सक्रमण कहते और उससे पहिले जोड़लें अपने विशुद्ध परिणाम को तो परिवर्तन हो जाता जिसे कहेते हैं अपकर्षण अथवा निर्जरणा करता तो आत्मा केवल भाव ही है, इससे आगे और कुछ नही करता। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नही, कर्ता कर्म सम्बन्ध नही, पर निमित्त नैमित्तिक योग प्रत्यक्ष दिखता है। स्वच्छ ज्ञानसे हमे लाभ मिल रहा है। यह कर्मविपाक जो मेरी भूमिकामे आया यह कर्मलीला है, यह मेरा स्वरूप नही, ये नैमित्तिक भाव हैं, मेरा स्वरूप तो ज्ञानमात्र है, चेतनामात्र है। मैं जनता हूँ, चेतमा र , बस यही मात्र मेरा स्वरूप है। उससे स्वभाव-दर्शनका लाभ भी मिला। जिसका प्रयोग मोहियोंने अधिकधिक किया है, ये पोद्‌गलिक है।

मेरे स्वभाव नही, मेरे स्वरुप नही, पुद्गल परिणामसे निष्पन्न हैं। मैं तो एक ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ। चाहिये क्या ? स्वभावदर्शन। जिसके बिना उद्धार नही हो सकता। प्रतीति मात्र, यह मैं ज्ञानमात्र हूँ। ऐसी ही प्रतीति, अनुभवन, आचरण, यह ही तो बात चाहिए, तो इस बातके लिए हमे उस व्यवहारसे भी रास्ता मिल रहा, निश्चयनयसे भी रास्ता मिल रहा। दोनों नय हमे रास्ता दिखाते है। निश्चयनय असत्य नही, व्यवहारनय असत्य नही। असत्य तो उपचार होता है। तो जब उपचारकी भाषामे व्यवहारनयको ढाल कर बोलते है तो उस व्यवहारको भी हम असत्य कहते है पर व्यवहारका जो सत्य विषय है वह असत्य नही है, पर उपचारकथन है वह असत्य है। व्यवहारका जो शुद्ध रूप है उस भाषामें बोले तो क्या असत्य है ? कर्मविपाकका निमित्त पाकर जीवमे उपयोगवृत्ति ऐसी जगी तो उस उपयोगवृत्तिका तो जीवके साथ व्याप्यव्यापकभाव है और उस कर्ममे होने वाले कर्मविपाकका उसके साथ व्याप्य व्यापक भाव है। व्यवहारनय तो एक बडा विश्लेषण कराता है। एक का ही ध्यान दिलावे वह तो कहलाता है निश्चय, और जो सब तरहका विश्लेषण करे, स्पष्टीकरण करे उसे कहते हैं व्यवहारनय हाँ इस बातको जब हम इस भाषामे बोलने लगेकि कर्मने किया तो यह उपचार कथन हो गया, यह मिथ्या हो गया, एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ व्याप्यव्यापक सम्बन्धनही, कर्त्ताकर्म—सम्बन्ध नही। उसको बताने वाली भाषा मे बोले तो असत्य हुआ, पर सम्यक् श्रुतज्ञानके अंश है ना दोनो। उपचार नही है सम्यक् श्रुतज्ञानका अंश। वह तो एक व्यवहार और रूढ़ि, बात और आदत के अनुसार कथन है। उसके बिना तो काम चलता न तो निश्चय और व्यवहार दोनो श्रुतज्ञान के अंश है। इसलिए दोनो ही सत्य है। असत्य तो वह उपचारकथन है। जैसे देखो-यह मकान मेरा है, यह बात सत्य है कि झूठ ? झूठ है, और, इस मकानको विषय बनाकर मैं ममताभाव कर रहा हूँ, यह बात असत्य है कि सत्य ? यह तो सत्य घटना है, ऐसा ही तो हो रहा है। झूठकी क्या बात है। आपके हितकी बात नही है। अगर यह कहा जाय कि मकान मेरा है, तो यह सच ही तो, है अरे भाई सच तो वह है जो भगवान जानते है। भगवान यह नही जानते कि यह मकान अमुकका है। यदि भगवान इस तरह जान जायें कि यह मकान अमुकका है तो फिर वह मकान उससे कभी छूट ही नही सकता। उसकी तो फिर पक्की रजिष्ट्री हो जायगी। चाहे आपकी तहसीलकी रजिष्ट्री फैल हो जाय या दिल्लीसे कोई रजिष्ट्री होती हो वह भी फैल हो जाय, परन्तु भगवान जान जायें तो फिर वह तो पक्की रजिष्ट्री हो जायगी ? वह फिर कभी फैल नही हो सकती। तो भैया प्रभुवत् थोड़ा थोडा सही सही तो जानो, कल्याण हो जायगा।

टंकोत्कीर्णवत् निश्चल अन्तस्तत्त्वका आश्रय करनेका अनुरोध—भाई आज बड़ी

दुर्लभतासे यह मानव जीवन पाया है तो इसमें पाये हुए साधनोसे लाभ उठा लेना चाहिए। लाभ उठाना क्या ? स्वभावदर्शन । टकोत्कीर्णवत् निश्चल ज्ञायक स्वभावका दर्शन । टंकोत्कीर्णवत् निश्चल, वह जो है सो ही है, वह कभी चलित नही होता । जैसे टाकीसे उकेरी गई प्रतिमा जो है सो है, वह कभी चलित नही होती, गोवरका, या मिट्टीका या मोमका जो देवता बनाया जाता है वह निश्चल तो नही रह पाता । उसे तो जिस चाहे जगहसे मोडा जा सकता है, पर टांकीसे उकेरी गई पाषाणकी प्रतिमा निश्चल होती है, वह तो जो है सो है। तो इसीतरह निश्चल है यह मेरा शाश्वत ज्ञायक-स्वरूप । दूसरी बात देखो-टंकोत्कीर्णवत् प्रतिमा की दृष्टिसे हमे क्या बात विदित होती है कि जैसे टाकीसे उकेरी गई प्रतिमाको कारीगरने बनाया नही, यहा वहांसे कोई चीज लाकर उसमे कुछ जोडा नही। जो मूर्ति कारीगरने प्रकट की है वह तो पहिलेभी उस पाषाणके अन्दर मौजूद थी। उसे कारीगरने बनाया नही है बल्कि उसने तो हटाने हटानेका ही काम किया है। उस मूर्तिका आवरण करने वाले जो पाषाण खण्ड थे उनको हटाने हटानेका ही काम किया है। वहा कुछ लगानेकी जरूरत नही, क्योकि वह मूर्ति अपने आप परिपूर्ण है। अच्छा अब उन पाषाण खण्डोको हटानेकी भी विधि देखो सबसे पहिले बडे छेनी हथोड़ेसे बडे बड़े पाषाण खण्डोको कारीगरने हटाया। वहां अधिक सावधानी रखनेकी जरूरत न थी। सावधानी तो रखनी ही थी क्योकि असावधानी करनेसे तो वह पाषाण टूट जाता, पर विशेष सावधानी रखनेकी जरूरत न थी। उसके बाद उससे छोटे छेनी हथौडे से उस मूर्तिके आवरक छोटे छोटे पाषाण खण्डो को कुछ अधिक सावधानीसे हटाया। सबसे अन्तमे अत्यन्त छोटे छेनी हथौडेसे अत्यन्त बारीकीसे अत्यन्त बारीक पाषाण खण्डोका हटानेका काम कारीगर ने किया। दिन भरमे कोई तोला दो तोला ही पाषाणचूर निकलेगा, जिसे देखकर लोग यह भी कह सकते कि आज तो इस कारीगरने कुछ भी काम नही किया। व्यर्थ ही १५) दिनभरके लिया। पर बात ऐसी नही है। यह काम तो बडा कुशल कारीगर ही कर सकता था। मोटे आवरण हटानेका काम तो कोईभी साधारण कारीगर कर सकता था। तो ऐसे ही यहा भी समझ लीजिए कि परमात्मा बनना है तो जैसे पत्थरमे मूर्ति प्रकट हुई ऐसे ही हमे अपने मे परमात्मस्वरूप निकालना है तो परमात्मस्वरूप निकालनेके लिए उसमे कुछ जोडना पडेगा क्या ? अरे उसमें कुछभी जोडनेकी जरूरत नही, क्योकि वह परमात्मतत्त्व तो परिपूर्ण है। जोडनेकी क्या आवश्यकता ? अच्छा, तो परिपूर्ण है तो उसे निकालें कैसे ? जरा भेद विज्ञानका छेनी हथौडा ले लो और जो इस परमात्मस्वरूपका आवरण करने वाले हैं उनको हटाओ। लो विवेक किया। ओह ज्ञानकी छेनी, ज्ञानकी हथौडी, ज्ञान ही मारने वाला, इस भेदविज्ञान से पहिले तो बाहरकी चीजें

हटायी, धन, वैभव, पुत्र, मित्र, शरीर आदिक ये बाहरी चीजे ही तो है। जैसे पहिले प्रोग्राममें बडे पत्थर हटाये गए थे वैसे ही ये बाहरमें मोटेरूपसे दिखने वाली चीजें हटायी गई। अब और भेदविज्ञान करे, कर्मविपाक उससे भेदविज्ञान करे, कर्मका विपाक कर्मका कर्म में है। जो कर्मका विपाक कर्ममे स्वय खिल रहा है उसका व्याप्यव्यापकभाव कर्म में है, मेरेमे नही, यहां भेदविज्ञान हुआ। और, जो कर्म झलके और मुक्ति आगमसे विज्ञात उस कर्मविपाक में उसके नोकर्ममे उपयोगन जुडे तो वहां भी समझो जिसकी उपेक्षा की, समझो कर्मविपाकको छोड़ दिया। भेदविज्ञान होता है प्रकृत दो तत्त्वोमे सो उसे भी छोड़ दिया। यद्यपि कर्मविपाक उपयोगमे यों स्थित होता कि ज्ञान विकल्परूप हुआ, मगर इन दोनोमे एक को ले लिया उस उपयोगकी वृत्तिको, जिसके साथ व्याप्यव्यापक भाव चल रहा है, उस चेतना वृत्तिको, उस झलक को जो एक में है टकोत्कीर्णवत् निश्चल शाश्वत प्रकाशमान, ज्ञायकस्वरूप। अन्तरमे है विकल्प तो भी यह मेरा स्वरूप नही, यह कादाचित्क है। नैमित्तिक है, यह मै नही, हटाये उसे। अच्छा अब जरा इसका अभ्यास बनायें तो सही कि मे ज्ञानमात्र हूँ। अभ्यास बनाये तो व्यवहार और झूठ हट जाता हैं। अरे रागसस्कार बहुत है। घरमे रह रहे, दूकान भी है, बच्चे भी है, कामकाज भी करते है, कितने संस्कार लगे है ? ये बाधक है, इन्हे हटावो। गृहस्थीको हटाया लो मुनिव्रत हुआ। अब वह किस धुनमे हुआ कि वह जो मेरा टकोत्कीर्णवत् निश्चल स्वरूप है, जिसकी श्रद्धा करनेसे मुक्ति होती है, उसकी उपासना करने मे जो बाधक है उन्हे हटाया हटाया ही गया, ऐसा निर्ग्रन्थ रहे कि शल्यका मौका ही न आये। फिर एक धुनसे हम उस कामको सिद्ध कर सकते,। वहां भी बहुत बाधाये आती। शिष्य है, उपदेश दे रहे पूजा बदना होती है, जो कि बाधक हैं, सहज ही उनके फिर अप्रमत्त दशा होती है। यह बाधा भी हटे। उस आवरणको भी हटाया और वह परमात्मस्वरूप निकल आया। व्यक्त हो गया। यह विधि है उस परमात्मतत्त्वको पानेके लिए, परमात्मस्वरूपको पाने के लिए।

तत्त्वके सही प्रयोगमें सन्मार्गका लाभ —जीवादिक ७ तत्त्वोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। ये ही ७ तत्त्व है जिनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यह बात ७ तत्त्वोके नाम देनेसे स्पष्ट होती है और अन्य प्रकारसे माने गए तत्त्वोंका निराकरण होता है। चाहते तो सभी दार्शनिक सुख शान्ति है, पर कुछ तो शान्तिके स्वरूपका निर्णयभी न कर सके और कुछ उनके उपायका निर्णय न कर सके। जैसे नैयायिकजन द्रव्यादिक अनेक पदार्थोको कहकर संयोग, विभाग, पृथक्त्व आकि अनेक जैसा समझमे आया झट उस तत्वमे डाल-डालकर यहो तक कह देते है कि छल निग्रह जाति भी तत्व है। छल निग्रह जातिका अर्थ क्या है कि जैसे

किसीसे बादविवाद कर रहे और बादविवाद मे जैसे राजनीति और कूटनीति चलती है ऐसे ही वादीको कोई छल करके कुछसे कुछ अर्थ बताकर उसे चुपकर देवे, ऐसी कला खेलनेका नाम छल आदि तत्त्व है, ऐसा नैयायिक मानते है। जैसे कोई नया कम्बल ओढकर आया हो और कोई यह कहे कि नवकम्बलोयं याने यह नवीन कम्बल वाला है। तो दूसरा कह बैठे कि तुम बडे झूठे हो। तुम तो कहते हो कि यह ९ कम्बल वाला है। अरे यह तो एक ही कम्बल वाला है। चूँकि नव के अर्थ दो हैं नया और नौ तो उसने कहा नयेके नामसे और इसने कहा मजाकके रूपमे कहते कि ९ कम्बल वाला कहा आया, यह तो एक ही कम्बल वाला आया। तो ऐसे ही बात-बातमे वहा जिस किसी भी प्रकार हो, चुपकर देना एकमात्र ध्येय हो तो वहा भी छल ही समझो। ऐसा इस शासनके आधुनिक सिद्धान्त दर्शनसे अनभिज्ञोमे अनेक जगह घटित होता है। जैसे वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्त नैमित्तिक भाव दोनोका यथार्थ श्रद्धान करने वाला ही तो एक मोह मिटाने का रास्ता पा सकता है। अगर उनमे एक एकान्त करले, निमित्त नैमित्तिकका एकान्त करले कि भाई जो कुछ है वह सब निमित्त ने किया। जीवने राग किया यो निमित्तने किया। तो अब बतलाओ मोह मिटानेका कैसे अवसर मिले ? जैसे और लोग मानते—ईश्वरने किया तो कुछ लोगोने मान लिया कि कर्मने किया। हम विवश हैं। जब कर्मकी कृपा होगी तब हमे सहुलियत मिलेगी। तो इस निमित्त नैमित्तिक भावके एकान्तमे रास्ता तो नही मिला। कोई वस्तुस्वरूपका एकान्त खीच ले कि वस्तुमे जब जो पर्याय होती है वह अपने आप होती है। बाहरमे तो निमित्त वैसे ही कह डालते हैं मुफ्त मे। जो सामने हाजिर हो उसे कह देते है। सो भैया ! निमित्त सन्निधान बिना हो गया राग तो वह स्वभाव हो गया, कैसे छूटे फिर। उसमे भी मोह दूर करनेका ढग नही रहा तो किसी एकान्तमे कोई रास्ता नही मिलता और यथार्थ प्रमाणभूत ज्ञान हो कि वस्तु स्वतंत्र सत् है, प्रत्येक पदार्थ अपने आपकी करणशक्तिसे उत्पाद करता रहता है बस उसका तो यह ही काम है कि उत्पाद करता रहे। अब जहा ऐसा निमित्त योग मिला, उपाधि सन्निधानको पाकर यह जीव चूँकि अशुद्ध पहिलेसे था तो योग्य उपाधिको पाकर यह विकाररूप बन गया। जैसे दृष्टान्तमे ले लो कि दर्पणके आगे हाथ किया और उसमे छाया आ गई, वहा कोई यह एकान्त करे कि यह तो हाथकी छाया है, हाथने ही किया, तो जैसे इसमे सही तत्त्वका दर्शन नही होता, तो कोई कहता कि दर्पणमे जब छाया आनेको होती है तो हाथ हाजिर हो तो इसमे क्या कह डाला कि दर्पणकी छाया है वहा निमित्त का क्या काम जब छाया होनेको होती है तो हाथ हाजिर हुआ है इसमे २ प्रसंग आते हैं एक तो छाया स्वाभाविकहो जायगी, दूसरे छाया के बनेगी निमित्त हाथकी हाजिरी होगी। नैमित्तिक यो उल्टी बात हो जाती

है। तो एकान्तमे कोई सिद्धि नही होती।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिकयोगकी यथार्थता:—तत्त्व तो यह है-निमित्त-प्राप्योपादान स्वप्रभाववत् "याने पर उपाधिका निमित्त पाकर (सन्निधानमे) उपादान अपने ही प्रभाव वाला होता है। वह प्रभाव निमित्तका नही है। निमित्तकी कोई भी बात निमित्तके प्रदेशसे बाहर नही जा सकती है। द्रव्य हो, क्षेत्र हो, काल हो, भाव हो, प्रभाव हो, कुछ हो, नही जा सकता अब देखो यथार्थ बात माननेमे दोनो तरीकोंसे मोह मिटानेका रास्ता मिल जाता है। निश्चयदृष्टि जब की जाय व्यवहारको गौण करे, निश्चयको गौण करे, गौणके मायने यह है कि उस समय दृष्टिमे न लाये मगर सही समझ बनायें हो, और भाई निश्चयदृष्टिसे देखो तो निश्चयदृष्टिसे एकका ही तो देखना होता है। एकका एकमें ही देखना होता है। दूसरेकी न विधि कर सकते, दूसरेका न निषेधकर सकते। दूसरेका तो ख्याल ही नही कर सकते। अगर दूसरेका ख्याल किया तो वह निश्चयनय से हट गया। तो जहां एक दृष्टिमे ही चल रहे हो वहां परका ध्यान न होनेसे, उसको आश्रय न मिलनेसे रागादिक भाव दूर हो सकते है, उसे स्वभावदर्शन हो जायगा, और जहा निमित्त नैमित्तिक भाव से देखें, यह विकार है, यह कर्मलीला है, पौद्गलिक है, ये सारे भाव, ये सारे विकार पुद्गलकर्मका उदय पाकर उत्पन्न हुए। पुद्गलका विपाक पुद्गलमे पाया जाता, पर चूंकि एक क्षेत्रावगाह है ना तो उपयोगमे झाकी आये बिना रहेगा नही। झाकी हुई सो उसी समय यह शुद्ध स्व-भाव से च्युत हुआ उसी समय यह उसमे जुट गया। उसी समय मोही हुआ तो उसे अपना लिया। ऐसा बिल्कुल स्पष्ट जो सकेत है उसके अनुसार देखे तो यह भावना करनेका खूब अवसर मिला कि यह कर्मलीला है, कर्मविपाक है, इसमें मेरा कुछ नही है। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, अपने उस ज्ञानमात्र स्वभावमे यह ग्रहण करता है।

प्रयोजनको न भूलकर तत्त्व दर्शनमें लाभः—तत्त्वकी बात चल रही थी कि मोक्ष-मार्गका प्रयोजनभूत तत्त्व तो वही हो सकता है जिसमे मोह मिटे, शान्ति मिले। मगर छल निग्रह आदिक करनेमे तो नही मिलता। जैसे किसीने कोई निमित्त नैमित्तिक की बात कही तो ऐसा मानने वाले भी भली भाति श्रद्धा किए हुए है कि एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमे कर्तृ कर्मभाव त्रिकाल भी नही होता। एकका दूसरेमे कुछ प्रवेश ही नही है। तो ना कर्तृ कर्म भाव है, न व्याप्य व्यापक भाव है, और न कुछ लेन देन है, पर है निमित्त नैमित्तिक योग जैसे कि व्यवहारमे रोज-रोज देखते है उसी प्रकारकर्म उदयका निमित्त पाकर जीवनें अपने रागादिक भाव परिणाममे किया। ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग बताया तो कह बैठे—तो क्या कर्त्ता है कुछ? या निमित्तका कह दिया यह कहते हो? तो जाति निग्रहके दोष ऐसे ही तो है। कोई

कहे कि वस्तु अपने आपकी शक्तिसे परिणमती है, अन्यकी शक्ति लेकर नही परिणमती है, ऐसा कोई वस्तुस्वातत्र्यका वर्णन करे तो ऐसा जानने वाले पुरुष जो निमित्त नैमित्तिक योग की बात देखता है वह एक दृष्टिका वर्णन कर रहा तो उसे कहा तो क्या यह अपने आप यो ही हो गया। वह स्वभाव बन बैठा। अरे हम श्रद्धामें तो लिए हैं कि स्वभाव न बनेगा, क्योकि उसमे जो कर्मविपाकको झाकी है यहां तक तो यह सहज भी हुआ। अब उपयोग जुडा यहा से चली बुद्धि पूर्वकता की बात, बुद्धिपूर्वक उपयोग जुडा, अपनाया तब बन्धन है मा। तो किसीप्रकार कुछसे कुछ बात कहना ये नैयायिकोके तत्व हैं। तो बतलावो-जैसे लोगोने यह कह दिया कि जो मेरे बेदको माने सो आस्तिक और न माने सो नास्तिक। जो मेरे इस्लाम को माने सो सही और न माने सो काफिर। ऐसे छल निग्रह का दोष बताने वाले सिद्धान्तने मानो यही तो स्पष्ट किया कि जो हमारी बात माने वह सही है और न माने तो वर गलत है। उसे छल करके निग्रह करके किसी भी प्रकारसे चुप कर देना उसीमे नैयायिक सिद्धान्त अपनी विजय मानता है और समझता है कि हम धर्ममे चल रहे हैं, ऐसे ऐसे दर्शन अनेक दार्शनिकोने माना है, भला बतलाओ-जीवादिक ७ तत्वोका उपदेश करना हमारी वीतराग परम्परासे जो है वह कितना निर्दोष है, और, और जो पदार्द है क्या ? द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव, ये कोई ६ चीजें हैं ? एक ही चीज है। द्रव्य-इस द्रव्यमे ही जो शक्ति है उसीका नाम गुण है। द्रव्यकी जो अवस्था है उसका नाम कर्म है। द्रव्यमे सामान्यदृष्टिसे जो निरखे सो सामान्य, विशेष दृष्टिसे निरखे सो विशेष और चूंकि ये गुण कर्मये सब कुछ समझमे आ रहे है और उस समझके अनुसार उनकी भेददृष्टि बन गई है तो अब यह नौबत आ गई कि द्र-य तो भिन्न है, गुण तो भिन्न है, कर्म तो भिन्न है, फिर काम कैसे बनेगा ? ये एक साथ कैसे रहेगे ? उसके लिए मानना पडा समवाय यो विशेष बढाते जावो विकल्पही बढेंगे।

मोक्षतत्त्वकी श्रद्धामें मोक्षकी प्रतीक्षा—भैया ? ऐसे प्रसारसे क्या ? कोई मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्वकी वात खोजली। वह खोज इस तरह है सीधी कि सब जीवोंको मोक्ष तो बहुत इष्ट हे स्कूलमे पढने वाले बच्चोकी जब छुट्टी होती है, तो देखो अपना बस्ता लेकर कैसा उछलते कूदने हुए अपने घरको भगते हैं। उस समय मानो उन्हे इतनी खुशी होती है कि जितनी खुशी लड्डु खानेमें भी नही होती। लड्डु खानेमे क्या है ? आया और खडे खडे खा लिया चल दिया, उसमे उसे कोई विशेष खुशी नही मालूम होती, पर स्कूलमे छुट्टी की घंटी बजते समय विशेष खुशी मालूम होती है। कोई व्यक्ति ऐसे भी होते कि मानो कभी शास्त्र-सभामे आ गए और वहां बैठे हुए काफी देर हो गई तो वहां वह सोचता है कि अब मैं कैसे

उठकर जाऊं ? लोग क्या कहेंगे ? कदाचित व्याख्याताने अपने विषयको कुछ और बढ़ा दिया तो वह श्रोता दुःखी होता है। और जब व्याख्यान पूरा हो गया तो उसे कितनी खुशी होती है। यह बात उस व्यक्तिके लिए कहा जो यह सोचता है कि मैं कहां आज शास्त्र सभामें फस गया ? कब छुट्टी मिले। तो ऐसे ही कोई ज्ञानी पुरुष है और वह घरमें फसा है। पूजामे जाना है, स्वाध्यायमे जाना है। घरमें स्त्री ने बच्चो ने कोई झंझट लगा दिया तो वह बडा दुःखी होता है। वह खूब परिश्रमसे बड़ी जल्दी उनसे घुट्टी लेता है, स्वाध्याय करने जाता है तो जिस समय वह छुट्टी पाता है उस समय वह कितना खुशी मानता है। सो छुट्टीमे प्रसन्नता है। तो भला बतबावो जिसे संसारके संकटोंसे सदाके लिए छुट्टी मिलती हो तो उसकी प्रसन्नताका तो कहना ही क्या है ? कुछ चित्तमें यह बात आयी कि हमें तो इससे छुट्टी पाना है और कुछ ध्यानमे आने लगा कि अब तो कुछ घुट्टी पानेका मौका सा मिल रहा है तो छुट्टी पानेसे पहिले भी उस आनन्दका लोग अनुभव करते हैं। तो मुक्ति सबको इष्ट है। जो मूर्ख है वह भी छुट्टी चाहता है। अब किससे छुट्टी चाहता है उसका ही फर्क है। तो मोक्ष जो है वह दुःखोसे मुक्ति पाने के इच्छुक को अवश्य श्रद्धानके योग्य है। कोई अगर मोक्षकी श्रद्धा नही कर रहा तो वर्तमान में कर्मोसे बधे हुए अपनेको मोक्षकी अभिलाषा करना बन न सकेगा। वह मोक्षकी बाट कैसे जोहेगा। छहढालामे एक छोटासा तो छन्द कहा मगर वह कितना तर्क पूर्ण है मोक्षके विषयमे उल्टी श्रद्धा। शिवरुप निराकुलता न जोय, मोक्षका स्वरुप, निराकुल स्वरुप, उस मोक्ष की बाट नही जोहता। मिथ्या दृष्टि। देखो ज्ञानकी बात कितनी स्पष्ट आ गई। ऐसा मोह है कि वह बाट जोहेगा अगर कोई लडका किसी कामसे बाजार गया उसको वहां से लौटकर आनेमें कुछ देर हो गई तो वह मोही पुरुष उसकी बाट जोहता है, अरे अभी वह क्यो नही आया ? मानो किसीको अपने घर आना है तो यह मोही पुरुष उसकी बाट जोहता है कि अरे अभी तक वह क्यो नही आया ? तो जैसे मोही पुरुष इस तरहकी बाट जोहते है इसी तरह ज्ञानी जीव मोक्षकी बाट जोहता है। मुझे मोक्ष (छुटकारा) कब मिले, बस उसी मोक्षकी ओर ही उसकी धुन लगी रहती है।

मुक्तिप्रोग्राममें होनहारकी उमंग—सावर दूर सिमरिया नीरी, संसार पीठ पीछे हो गया क्योंकि उसने मुख कर लिया है मुक्ति की ओर। तो पहिली बात तो यही है कि मोक्षकी श्रद्धा होती है, ज्ञानी पुरुषको मोक्षकी बाट जोहने की बात लगी रहती है। मेरेको मुक्ति मिले "मुझे न है परका पतियारा, मुक्तिका प्रोग्राम हमारा।" एक भजन मे लिखा है। तो चल रहा है, जैसे कोई छेडता है हाथ पकड़ कर कि अरे ठहरो तो सही

नहीं, नहीं, मेरा दूसरा प्रोग्राम है। इसी तरह से घरमें बालबच्चोंका समागम छेडता है तो यह कहता है कि मुझे न है पर का पतियारा, मुक्तिका प्रोगाम हमारा। चला जा रहा है मेरा तो मोक्षका प्रोग्राम है, मुझे मत छेडो। और छेडनेसे तुम्हारा हित भी कुछ नही होता। तुम्हारे बीचमे हम रहेगे तो न हमारा ही लाभ होगा और न तुम्हारा ही लाभ होगा। लाभ तो दोनो की राजीमे है। अब ज्ञानी और अज्ञानी, इन दोका सग कैसे निभेगा ? एक जुवामें ऊंट और बकरा जोडे जाये तो वे कैसे चल सकेगे ? सोचते होगे कोई भाई ज्ञानी पुरुष घरमे रह रहा है तो उसे तो वहा कुछ भी मौज नही है, उसे कुछ सुख नही है, सुख तो मोही लोगोंको है। बच्चे को जब गोदमे लेकर खिलाते है तो खूब उडकर उससे प्रेम करते हैं, खूब उछाल उछालकर छातीसे लगाकर बडा मौज लूटते है, मगर यह सम्यग्दृष्टि पुरुष भले ही बच्चेको अपनी गोदमे लिए है, घरमे बच्चे है तो उन्हे खिलायेगा तो है ही, उन्हे प्यारसे भी रखेगा, पर वह सोचता यही है कि ये बच्चे, ये परिजन मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं, इनके कर्म न्यारे, इनकी कर्म न्यारे, इनकी परिणति न्यारी। इस कारण ज्ञानी पुरुष उनमे मुग्ध नही होता, उनसे विरक्तचित्त रहता है। अब जरा अन्तर तो विचारो कि घरमे रहने वाले ज्ञानी को आनन्द है कि अज्ञानीको। अब सच्चे ढगसे विचारो। भीतरी प्रसन्नता तो विचारो। ज्ञानी पुरुष को आनन्द है। अच्छे ढंगसे तो ज्ञानी पुरुष ही रह सकता है, उससे किसीसे कभी लडाई भी न होगी। वह उपेक्षा कर जायगा। हाँ चलो बाबा, ऐसा ही ठीक। तुम कह रहे सो ठीक। यो ज्ञानी पुरुष सबको वहा स्याद्वादसे घटाता है। पर अज्ञानी जीव को उसकी हठमे जरा भी बाधा हुई तो वह अपनी बातमे अड़ जायगा।

दूसरोसे हठ करनेमें समयका दुरुपयोग—एक पंचायत बैठी थी। सभी लोग कोई घटनाका हिसाब लगा रहे थे—३० और ३०=६०, होते है, तो वहां एक किसान बोला, ३० और ३०=८० होते हैं। वहा बहुत बहुत समझाते परभी उस किसानको ऐसी हठ हो गई कि अगर ३० और ३० मिलकर ८० न होते हो तो हम अपनी ४-६ भैंसे दूध देती है वे सब दे देंगे, अब तो सभी पच्च लोग खुश हुए कि अब तो भैंसे मिल ही जायेगी। यह बात उस किसानकी स्त्रीने भी सुन ली। जब किसान घर पहुँचा तो वहा स्त्रीको उदास देखकर पूछा कि तुम क्यों उदास हो ? तो स्त्रीने कहा-तुम तो बोल आये हो पचोंमे कि अगर ३० और ३० मिलकर ८० न होते होगे तो हम अपनी सभी भैंस दे देंगे सो अब हमे इस बातका दुख है कि हमारी सभी भैसे चली जायेंगी। तो वह भाई बोला—अरी तू तो बडी बेवकूफ है। जब हम अपने मुखसे यह कहे कि ३० और ३० मिलकर ६० होते

हैं तभी तो भैंसे जायेगी । यो तो कोई नही ले सकता ? तो भाई हठमें, मोहकी हठमे और आग्रहमे तो चूँकि हठ है, उसकी बात उसके साथ है, मगर बाह्य वस्तुमे क्या आग्रह करना ? कोई धर्मका प्रसंग है, धर्मकी बात चलती है ठीक है, चलने दो । एक ही भाव रखो, जिस तरह हो यह धर्मका काम आगे बढे, धर्मकी बात, धर्मकी प्रभावना आगे बढे, उस प्रसगमे कभी यह बात चित्तमे न आनी चाहिए कि चूँकि मैंने कहा इसलिए ऐसा होगा । कोई हठ न करना चाहिए । हमारी अनेकों हठ हो तो भी उन्हे धुला मिला सकते धर्मकी प्रभावनाके आगे । धर्मकी प्रभावना हो यह बडी चीज है । यहां हठ करके हमे किसे क्या दिखाना ? यहां मुझे पहिचानने वाला कौन है ? मुझे कोई जानने वाला भी नही है । मेरा पहिचाननेहार दूसरा न कोई रे, ज्ञाताकी दृष्टि भली, बुरी नही होय रे । जो ज्ञाता है वह सोचता है कि मेरा पहिचानने वाला यहा कोई दूसरा नही है । अच्छा रेलगाडीमे जा रहे और वहां जान पहिचान वाले लोग मिलते नही हैं, किसीने आपको वहां गाली दे दिया या कुछ भला बुरा कह दिया तौ वहां तो आप बुरा नही मानते । वहां तो आप उसके बडे नम्र बन जाते है और यहां समाजमे या घरमे कोई जरासी बात कह दे तो वह कितना तेज हो जाता । तो यह फर्क किस बातका आया ? समाजके बीचमे अगर किसीने भला बुरा कह दिया तो वहा ऐसा अनुभव करते कि मेरा तो इसने सब कुछ बिगाड दिया । यह भ्रम है ।

धर्मके प्रवाहमें अपनेको समाकर पावन कर लेनेमें विद्वताका सदुपयोग.—धर्म तो अमिट है । व्यवहार की बात कह रहे कि यह जो धर्मप्रवाह चल रहा है यह क्या मेरा है कुछ ? सब जीवोंको शान्त सुखी होनेका एक प्रवाह चल रहा, परम्परा चल रही । तुम भी उसीमे रह जावो । देखो एक ने बताया अपनी बातचीतमे कि विद्वताका पचाना बहुत कठिन होता है । ऐसा कह रहे तो इससे उसका अर्थ पूछो तो कहा कि अर्थ यह है कि जिसने विद्वता पायी वह धर्म की परम्परामे और आचार्योंके स्वरोंमे अपनी बात रखकर एक अपने अस्तित्वको अलग न जतानेकी बात रहती किसीके चितमे तो उसे कहते है विद्वताका पचाना । नही तो बड़ा मुश्किल होता । थोडी भी जानकारी पाये तो ऐसा कहेगे कि दूसरों को कुछ अटपटी सी बात लगे, कुछ आकर्षण सा हो, फिर उसे नामवरीके लिये अलगसी बात बना देवे । ऐसे ऐसे ही तो होते चले आये हैं । तो देखो विद्वताके पचानेमें उसका खुदका बड़ा लाभ होता । उसे मायाचार न करना पड़ेगा । समझदारका मायाचार ऐसा होता है कि दुनिया जानती है कि यह बड़ा सरल है, कठिन मायाचार ऐसा होता है कि उस मायाचारको कोई पहिचान न सके, पर ऐसा होता नही । कोई न कोई पहिचानने वाला जरूर होता है । पास रहने वाले पहिले पहिचान लेते हैं बात छिपती नही है लेकिन मायाचार वह

कि जिसकी बात सर्वसाधारण न समझ सकें। तो क्या है ? अरे भाई अनन्त भवोमे जन्म-मरण करते-करते आज बडी दुर्लभतासे मनुष्यभव पाया है। किसे क्या बताना है कि यह भी कोई है। मत जाने मुझे कोई। मैं तो उसी धर्म परम्परा मे उसीमें सम्वत होकर उसीमे रच पचकर, उसीमे एक रस होकर अपनी गुप्त विधिसे गुप्त कल्याण हासिल हो जाय, वही मेरे लिए सर्वसिद्धि है।

कषाय व अहङ्कारको दूरकरनेपर ही धर्मपात्रता:—देखो शिवमय धर्मके पंथपर चलना बहुत कठिन है। अथवा कठिन नही है, बहुत सरल है, मगर कितना कठिन बना दिया। सर्व कषायोंमे कठिन एक मान कषाय है कषायोंके हिसाबसे बताया कि नरकगतिमे क्रोध कषायकी प्रबलता है, तिर्यञ्चोमे मायाकी, देवोमे लोभकी और मनुष्योमे मानकी प्रबलता है। आप कहेगे कि देवोंमे लौभ कषायकी तीवृता कैसे ? उनके पास तो अटूट वैभव है। ऊन्हे कमानेकी व्यापार वगैरह करनेकी कोई जरूरत नही है, फिर लौभ कैसे ? तो देखो वे अपने से अधिक ऋद्धिधारी देवको देखकर मन ही मनमे कुढ़ते रहते है, जलते रहते हैं तो यह लोभकषाय ही तो हुई। और, मनुष्योमे देखो, लग तो ऐसा रहा कि मनुष्योंमे लोभ कषाय बडी तेज है क्योकि वे भी बहुत-बहुत परिग्रह जोडते हैं। और लोभकरते हैं, धन जोडने के लिए करते है या अपने परिवारको बहुत अच्छा बनाना चाहते हैं, जो कुछभी करते हैं ऊस सबके नीचे मान कषायकी आग धधक रही है, जिस दिन उसे जच जायकि बहुत बडा धनी होनेमे भी मान नही है तो उसे लौभ न सतायगा। खुब देख ले-जो कुछभी करना चाहता यह जीव वह मानकषायके वश होकर करता है। आत्महत्या भी कर डालता है मानके बश मे बड़ी विपत्तियोंके बीच फसते है तो इस मानके बश होकर फसते हैं। तो भाई कुछ बतान, समझाने, जतानेसे कोई बात स्पष्ट नही होती। वह तो उसका उसके साथ है। नही तो जैसे कि उर्दू सभ्यतामे कोई संस्कृति आती है व्यवहार करनेकी. कैसे शब्द बोलते हैं कि उनमे विनय ही विनय टपकता है। कुछ शब्द भी अच्छे हैं और कुछ उनकी बोलचाल भी बड विनयको सिद्ध करती हैं, साथ ही हाथ, मुहं, कमरकी मुद्रा भी सुहावनी रहती है, पर क्या वहां यह निर्णय कर सकते है कि वह. विनय है ही? कहो वह उस प्रकारके विनय युक्त शब्द बोलने वाला यह समझ रहा हो कि इस प्रकारका विनय बर्ताव करनेसे महत्व बढ़ता है, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, तो वह विनय भी मानका साधन बन गयी। उसने तो ऊस विनय का माध्यम बनाकर अपने चित्तमें गौरवका महत्त्व दिया। जैसे कोई किसीपर बडा क्रोध कर रहा हो तो उसे कोई समझता कि भाई क्यो क्रोध करते हो ? इतना नाराज न होओ ? तो वह कहता-अजी हम तो बडे चैनसे रहते, हमारे कोई कषाय नही है, वह अपने घरमे

सुखसे रहे, हमे क्या मतलब ? और बोल रहा गुस्सामें होता है ना ऐसा, तो बतलावो उस शान्ति वाले बचनसे आप क्या निर्णय कर लेंगे कि इसके चित्तमे क्रोध नही है ? वह तो जिम्मेदारी उनकी उनके साथ है । उनके क्रोध हो भी सकता है । ऐसी ही मायाचारकी बात है । मायाचारमें भी बड़ी सरलता दिखायेंगे । और, ऐसो दिखायेंगे कि यह तो बच्चेकी तरह है । कुछ जानता नही है । मगर सारा ढाँचा, सारी करतूत सब खेलता तो रहता है मगर ऐसा वचन निकलेगा कि लोग जानेंगे कि बहुत सरल है । लोभ कषायकी बात देख लो। लोभ कषाय में मान लो कही कोई बोली हो रही है, कोई बड़ा सम्मान हो रहा है तो वहा झट कह बैठते कि हमारा एक लाख रूपया । देखिये एक लाख रूपयेका त्याग तो कर दिया, मगर चित्तमें यह बात बैठी है कि लोग मेरा सम्मान करेंगे । मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । अब बताइये वहां लोभ छूटा क्या ? नही छूटा, धन तो त्यागा, किन्तु एवजमे मानकषाय है और यशका लोभ है अगर किसो ऐसी जगह धर्मके काममे थोडा खर्च किया जा रहा हो, जिसमें कि अधिक नाम जाहिर नही होता, एक गुप्तसा काम है जैसे गरीब परिवारका स्थितिकरण करना, गुप्तभडार देना स्कूलके बच्चोको इनाम बांटनेका काम समझलो जहा नाम जहिर न हो ऐसा काम, तो वहा कुछ भी धन खर्च करनेका भाव नही होता, वहा कुछभी उदारता नही बर्तती तो क्या कहा जा सकता है कि उसके लोभ कषाय नही है ? तो मतलब यह है कि मनुष्य मान के लिये सब कुछ करना । अहकार छोड तो धर्मपात्रता आवे ।

पर्यायकी कीर्तिका विकल्प छोड़कर आत्मस्वरूपकी उपलब्धिके यत्नका अनुरोध:—भैया हित अपने हाथकी बात है । क्यो सोचते हो कि दुनिया हमपर खुश हो जाय ? एक भी उदाहरण ऐसा बतलावो जिसपर सारी दुनिया खुश हुई हो ? तीर्थंकर देवपर भो उनके समयमे सारी दुनिया खुश नही हुई । भले अल्पाश फर्क पड़ जाय मगर ऐसा हो नही सकता कि दुनियाके सभी लोग आपपर खुश हो जाये । बच्चोकी किताबमे एक कहानी लिखी है कि कोई बाप बेटा एक घोड़ा लिए हुए किसी गावको जा रहे थे । बाप तो घोडेपर बैठा था और बेटा पैदल जा रहा था । वे एक गांवसे निकले तो उस गांवके लोगो ने कहा देखो यह आदमी कितना बेवकूफ है । हट्टा कट्टा । बाप तो घोडेपर बैठा है और बेटेको पैदल चला रहा है । बापने अपने बेटेसे कहा-बेटे तुम घोडेपर बैठ जावो, हम पैदल चलेंगे, क्योकि लोग हमारा नाम धरते है । वह बेटा घोडेपर बैठ गया और बाप पैदल चलने लगा । जब दूसरे गावमे पहुचे तो वहा भी लोगोने नाम धरना शुरु किया ।...यह देखो जवान, हट्टा कट्टा बेटा घोडेपर बेठा है और अपने बापको पैदल चला रहा है । अब तो उन दोनोने बाप बेटाने । सोचा कि ऐसे भी लोग नाम धरते हैं, चलो दोनो ही बैठकर चले । जब दोनो ही घोड़ेपर

बैठकर जा रहे थे तो तीसरा गाव मिला वहां लोगोंने कहा कि मालूम होता है कि यह घोडा मागे का है। तभी तो ये दोनो हट्टे कट्टे घोडेपर लदे हैं। जब फिर भी नाम धरातो दोनो पैदल चलने लगे। अब दोनो उस घोडेको लगाम पकडकर पैदल चले जा रहे थे। आगे जब चौथा गाव मिला तो उस गावके लोग कहने लगे कि ये दोनो कितना बेवकुफ हैं। अरे जब इन्हे पेदल ही जाना था तो साथ मे घोडा लेकर चलनेकी क्या जरूरत थी ? अब बताओ इसके बाद वे दोने क्या करते ? हां यही कर सकते थे कि उस घोडेके चारो पेरोको बाधकर उसके बीच लाठी डालकर उसे कंधेमे लादकर ले जाते सो करना मुश्किल भी था। तो सबको प्रसन्न कर सकनेका कोई उपाय है क्या ? अपनी ऐसी धुन बनाये कि मेरा आत्मा प्रसन्न हो। और आत्माकी निर्मलता इसीमे है कि बाहरमे जो आश्रयभूत पदार्थ है उन पदार्थोका व्यामोहे छोडे। ये सब बेकार है, हमारो बरबादीके साधन है। इनसे मेरा हित नही होनेका मेरा जो सहज निरपेक्ष अन्त प्रकाश मान ज्ञानस्वरूप है उसको अपनी ज्ञान योग्यताके माफिक बिचारनेकी कोशिश करे और उसका अनुभव करे कि मैं तो यह हूँ और कुछ नही हूँ, ऐसा सोचनेमे मेरा हित है। बाकी बाहरकी दृष्टिमे कुछ भी लाभ नही मिल सकता।

वर्तमानबन्धनकी और उससे मुक्त हो सकनेकी श्रद्धा—जिनका मुक्त हानेकी अभिलाषा है उनके चित्तमे दो प्रकारकी बाते तो आनी ही चाहिए कि मैं अभी तो बँधा हूँ किन्तु प्रयत्न पौरुष करके मुक्त हो सकता हूँ। मैं बँधा हूँ इसका निर्णय तो आसानी से हो सकता है, कितना मोहमे बँधा हूँ, किस किस रागमे बँधा हूँ, किन-किन चिन्ताओंमे रहा हूँ। ये काई बाहरी चीजे साथ जाती नही, मेरी शान्तिमे कारण बनती नही अत्यन्त भिन्न है, अहितरूप है, फिर भी इनमे कैसा मोह लगा है कैसा राग लगा है, जैसे कहते है ना-चोर चोर मोसेरे भाई। इसीतरह जब जगतमे सब मोही जीव बस रहे हैं तो सबका ऐसा सच दिख रहा है दि यह ठीक ही तो है। खूब धन कमाया तो यह ठीक ही तो है, ऐसे मौज से रहे तो ठीक ही तो है, पर मूलमे किसीने नही सोचा। किसी बिरले ही पुरूषने सोचा कि इनमे बडा दुख है। जो बाह्य पदार्थोकी ओर ख्याल, रुचि, मोह जाता है इससे यहा भीतर कितनी अशान्ति, कितनी बेचेनी हो जाती है। यह ता एक बहुत बडो विपत्ति है, बन्धन है। और, जो जरा १०—५ दिनकी पढाई करके ऐसा सोचेकि मैं तो मुक्त हूँ, मैं ता शुद्ध हूँ, मेरे को क्या रखा है। यह तो शरीर ही बदमाशी करता है इसतरह का जो भाव बना हुआ है, जिसका अपने बन्धनकी श्रद्धा नही है कि मैं अभी बँधा हूँ, मैं कष्टमे हूँ, तो वह सकटोंसे मुक्त ही क्या होगा ? वह तो जान रहा है कि मे सिद्ध हूँ। चौथे गुणस्थानमे बताया है कि अनुभूति होती है। बात तो सच है, स्वानुभूति बिना सम्यक्त्व पैदा ही हो सकता किन्तु कोई

कोई यही सोचले कि जो स्वानुभव सिद्धमे है वही हममें है, जरा भी यह न सोचे कि सिद्ध का स्वानुभव कितना उत्कृष्ट है। यहां तो हम आपके रागचल रहा है, अबुद्धि पूर्वक है, वे हमारे उपयोगमे नही आते। वह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बध है। कर्मविपाक हुआ कि यह झाकी हुई। झांकी हुई कि वहा अबुद्धिपूर्वक राग परिणमन हुआ ? स्वानुभूति में यह विशेषता है कि उपयोग रागको नही ग्रहण करता, झांकी को ग्रहण नही करता और अपने विशुद्ध ज्ञानस्वभावको ज्ञानमे लेता है पर अनुभूति तो वह कही जायगी जितना सारा एक यह द्रव्य है, उस द्रव्य मे जो गुजर रहा है इस अनुभूतिका नाम अनुभूति है। ज्ञानानुभूतिसे तो यह ज्ञानमें ज्ञानकी अनुभूति कर रहा है। स्वानुभव वाले जो यह कहो कि सिद्धसमान अनुभूति है सो वात नही है। आत्मानुभूति भी कहो, ज्ञानाभूति भी कहो मगर सिद्ध समान अनुभूति नही कहा जा सकता। सिद्ध तो राग संस्कार से रहित हैं। वहा तो झांकी तक नही है। "सिद्धमे जैसीनिर्मल अनुभूति है, वैसे हममें है अनुभूतिमे अन्तर नही है हां यह एक समयको होती है वह अनुभव सदाकाल रहता है। अनुभूतिमे अन्तर नही है, ऐसा कहकर अपने आपका मन क्यों खुश किया जा रहा है? चतुर्थ गुणस्थानमे जैसी अनुभूति होती है उसमे क्या बल नही है? ऐसा उत्त्कृष्ट बल है वहा ऐसा उत्कृष्ट बल है कि भवभवके बांधे हुए कर्म क्षण मात्रमे खिरा सकते है ? सही बात, तथ्यकी बात समझने से मोक्ष मार्ग निर्वाध रहती है। तो पहिले तो यह समझें कि मेरेको बन्धन लगा है और यह निर्णय बनायें कि इस बन्धनसे मै मुक्त भी हो सकता हूँ।

बन्ध की निबद्धता—देखो बन्धन क्या है ? इस जीव को बन्धन किसी बाह्य पदार्थ से नही हैं, यह उपचारसे बोलते है, मिथ्या बोलते है कि मेरे मकान से, मेरी स्त्री पुत्रादिक से मेरा बन्धन है, जैसा बोला वैसा यहा हो नही रहा है। यहा तो यह हो रहा है कि कर्मविपाकका निमित्त पाकर मुझमे हुआ प्रतिफलन, उसके साथ हुआ शुद्ध स्वभावसे हटना, उसके साथ ही हुआ उसका ग्रहण तो उसके साथ ही हुआ उसका ग्रहण तो उसके साथ ही किया विकल्पमे, ज्ञानमें अपनाने की समझ। बस यह वध हूँ तो अपने विचारोंसे अपने अपने विकल्पोंसे बधा हूँ। अन्य किसी बाह्य पदार्थसे नही। निमित्त नैमित्तिक सम्वध है तो इतना ही है कि कर्म विपाक उदयमे आया है और उसका निमित्त पाकर जो कर्ममे रागादिक है, कर्ममे जो प्रकृति है उसकी झाकी हुई और इसमे उसे ग्रहण किया और अपनाया, यह उसने गल्ती की। देखो एक मोटीसी वात है जो अनेक वार ध्यानमें लाना है। जीवके विकारके प्रसंगमे तीन प्रकारके कारण होते है (१) उपादानकरण (२) निमित्त कारण (३) आश्रयभूत कारण। उपादान करण तो यह अशुद्ध जीव है। विकारोका यह

उपादान है। कर्मको उपादान कारण नही कहा। जीवके विभावका उपादान कारण कर्म नहीं हैं, किन्तु जीव स्वयं है। राग होता है दो जगह जैसे दर्पणमे लालरंग का चित्रण आया तो लालिमा दो जगह है, कपड़ेमे भी लालिमा है और दर्पणमे भी लालिमा है। तो चूकि लालिमा दोनो मे है इसलिए भ्रम हो जाता है कि लालिमा तो दर्पण मे ही है, कपड़ेमे लालिमा नही है। या कपडेमे लालिमा है, दर्पणमे नही है, परन्तु ऐसा नही है। देखो-लाल रंग दो जगह साफ नजर आयगा, कपटा भी लाल है, और दर्पण भी लाल है। कैसे हुआ? तो कोई यो कहता कि दर्पणको जब लाल होना था तो लाल कपड़ा हाजिर हो गया और वात क्या हुई कि जिस समय लाल कपडेका सन्निधान पाया, चाहे लाल कपड़ा के सामने दर्पणको लाकर सन्निधान हुआ हो या पहिले से रखा हुआ दर्पण के सामने लाल कपड़ा लाया गया हो कुछ भी किया गया, मगर वात यह है कि उस लाल कपडेका सन्निधान पाकर दर्पण अपने आपकी परिणतिसे अपने आपमे लाल वना। तो देखो लाल दो जगह है कि नही? है। तो इसी तरह क्रोधादिक विकार कर्ममे भी है और जीवमे भी। अब वतलाओ जैसे कपडेमे लालिमा है? अरे दर्पणमे तो स्वच्छता है, पर विकाररूप लाल है। इसीतरह कर्ममे जो क्रोधमे जो, क्रोध, मान, माया, लोभादिक होते हैं वे ही क्या जीवमे भी होते है?…नही। वे तो अचेतन है, जड है। जैसा अनुभाग वाधा था उस प्रकारसे हैं। इस तरहका नही है तो किस तरहका है? उपयोगमे ज्ञानस्वरूप, ज्ञेयरूप, जाननरूप, समझरूप, विकल्परूप इसतरहका है। इसतरहका विकार कर्ममे नही है, कर्ममें अचेतन के ढंगका है क्रोध, मान, माया, लोभ, किन्तु जीवमे चेतनके ढगका है क्रोध, मान, माया, लोभ। तब ही तो उस जीवके क्रोध, मान, माया, लोभादिकको चिदाभास कहा है, चेतन नही कहा, जड भी नही कहा

धर्मपरम्परामे अपनेको विलीन रखकर हितसंपादनकरनेको संदेशः—देखिये वस्तु-स्वरूपका कितना स्पष्ट कथन है और कैसा मोहको नाश करनेका इसमे मार्ग मिलता है। सीधीसादी बात और उसको फिर तोड मरोडकर रखना यह एक कोई महान अज्ञानभरा सकल्प उठा रखा हो, उसके बिना नही हो सकता। अगर सीधे सादे आत्महितकी भावना हो तो उसे एक नवीन बात उत्पन्न करनेकी आवश्यकता नही है। जिस परम्परामे समतभद्र अकलक देव तथा विद्यानन्द आदिक आचार्य हुए है, और जिन्होने अपने नाम का कोई प्रचार नही किया, कोई अलग बात नही रखी, दुनियाकी दृष्टिमे मैं कुछ अलगसे अपनी बात रखकर दुनियामे अपना बड़प्पन जनाऊँ, ऐसी बात उनके चित्त मे न थी, इसे ही तो कहते है विद्वताका पचाना। तो अब यहा देखो-कर्मविपाक हुआ वह तो है निमित्त और नैमित्तिक

भावमें क्या हुआ ? वह झलका, झाकी हुई, और झांकी हुई तब उसमे तीव्र अनुभाग और तीव्र विपाक आया । अपने शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ, इसका प्रदेश परिस्पद हुआ, योग हुआ । तो जीव योग उपयोगका कर्ता है, कर्मका कर्ता नही । जीव तो अपने प्रदेश परिस्पद और उपयोग का कर्ता है, बाह्यका कर्ता नही, इसीतरह कर्म तो अपने आपके विपाकका कर्ता है, जीवकी झांकीका कर्ता नही, पर ऐसानिमित्त नैमित्तिक योग है कि वह झाकी आयी और उसे ग्रहण किया । देखो आपके ज्ञानमे कितने पदार्थ आ गए । आपका ज्ञान बन रहा है, आप उन सबको जान रहे है तो आपका जानना क्या इन पदार्थोंने उत्पन्न किया ? नही किया । और, यह सब जाननेमे आ रहा है तो इसका ज्ञेयपना क्या आपके ज्ञानने उत्पन्न किया ? नही किया, मगर बात साफ तो दिख रही है कि ये पदार्थ विषयभूत हो रहे है और यह मैं जान रहा हूँ तो इसके जाननेमे ये सब पदार्थ आश्रयभूत है, विषय भूत हो रहे है । जो देखिये असत है वे क्यो वही ज्ञानमे आते । जो जगतमे है ही नही उसका ज्ञान क्यो नही होता ? आप कहेगे कि अच्छा हम उसका भी ज्ञान करेगे लो आकाशका फूल, खरगोश के सीग, देखो ये असत है उसे भी हम जान गए । अरे सर्वथा असत बात ज्ञानमे नही आ रही, खरगोश भी कोई चीज है ओर सीग भी कोई चीज है तब विकल्प बन रहा कि खरगोशके सीग, आकाशके फूल, अगर सीग नामकी चीज दुनियामे कुछ न होती तो शब्द ही न बनता, सीग शब्दका ही ज्ञान न होता । आकाश भी चीज और फूल भी चीज है । तभी तो ये शब्द है ।

आत्मस्वातन्त्र्य होनेपर भी औपाधिकभावोंमें परसंगनिमित्तत्व—प्रत्येक पदार्थ अनादि कालसे स्वतंत्र है वे अपना-अपना परिणमन करते चले जा रहे है, किसीकी सत्ता किसी दूसरेके कारण नही है, मगर इस जीवमे जो रागादिक विकार हो रहे है उनके कारण यह जीव बड़ा दुःखी है, हम आप बड़े दु.खी है । और, जब यह मान लें कि राग तो बिना निमित्त के होता है मेरी करतूत से होता है, इसमे दूसरा कोई निमित्त नही है, तब फिर रागको छोड़नेका उत्साह हम कहासे जगाये ? जब राग होना होगा तब हो जायगा, जब मोक्ष होना होगा तब हो जायगा । अरे यहा निमित्त नैमित्तिक बात देखिये-राग हमारी वस्तु नही है, राग एक विकार भाव है । यह यो ही नही है कि अपने आप बन गया हो है अवश्य केवल जीवकी परिणति, किन्तु स्वयं निमित्त भी हो विकारका सो नही है । पुद्गलकर्मका सन्निधान हुआ विकारकी झांकीहुई और इसने अपना उपयोग बनाया । तुम्हारी रक्षा किसमे है ? कर्मविपाक होता है तो उपयोगसे उसे पकड़े नही अपनाये नहीं कि यह मै हूँ तो इसमे तुम्हारी जीत है । अगर कहो कि मेरेमे राग होता ही नहीं है, या किसी निमित्तसे होता

ही नही हे, वह राग मेरे ही कारणसे हुआ, इसमें दूसरे का कोई निमित्त नही है तो बात न बनेगी ? और जो थोडी बहुत निमित्त की कोई बात छेड दे, क्योकि ग्रन्थोंमे खूब लिखा है। कर्मकाण्ड मे इसका बहुत-बहुत वर्णन है, तब यह कहना पड़ता है कि जिस समय विकार आना है उस समय निमित्त सामने खडा हो जाता है। जिस समय रोटी सिकनी होगी उस समय आग खडी हो जायगी। यो कह बैठेंगे। इसका अर्थ भी क्या है, इसको कहने वाले भी नही समझ रहे। तथ्य की बात यह है कि आगका सन्निधान पाकर रोटी पक जायगी। रोटीको आगने नही पकाया याने रोटीमे घुसकर नही पकाया, आग आगकी जगह हैं। देखो-मानलो एक मन बूँदी बेसनकी आपने घाट ली। बूँदी बन गई। आगका सन्निधान पाकर कडाहीका सन्निधान पाकर तेल या घी गरम हुआ। उस तैल या घी का सन्निधान पाकर बेसन की छोटी छोटी बूँदिया पकी, पर देखो आग कडाहीमे नही घुसी, आग बूँदीमे नही घुसी। तो कडाहीमे घुसकर आग कर्ता नही बनी, प्रवेश करके आग कर्ता नही बनी। कर्ता कर्मभाव एक दूसरेका कतई नही है, फिर भी यह तो देखा ही जा रहा हैं कि आगका निमित्त पाकर यह बूँदी पकी। इसमे क्या कोई सन्देह है ? या ऐसा है कि जब बूँदी पकना हुआ तो आग खडे हुई ? अरे निमित्त नैमित्तिक योग होने पर भी वस्तुस्वातत्र्य नही मिटता। तो उससे यह शिक्षा मिलती है कि ये रागद्वेषादिक भाव मेरे नही हैं ये कर्मका सन्निधान पाकर होते है। जैसे दर्पणमें लाल कपडा सामने रखने पर उसमे लालिमा होती है तो लाल तो वह कपडा है और दर्पणमें आयी हुई लालिमा दर्पणकी स्वच्छताका विकार हैं। वह लालिमा हट जायगी। किन्तु किसी दर्पणके भीतर खराबी होनेसे उसमे कुछ सफेदी जैसी हो जाती, कुछ सफेदी जैसी हो जाती, उसमें कोई भद्दापन सा आ जाता तो वह तो उसके उपादनमे है, वह कैसे हटेगा। तो यो ही अगर उपादानमे रागादिक विकार इसके ही कारण आ गए हों वह विकार और उसमे कोई पर उपाधि निमित्त नही है। तो वह किसी प्रकार हट नही सकता।

स्पष्ट कथनोंको तोड़ मरोड़कर दूसह बनानेवाले प्रियंवदोका चलन कलयुगका वरदानः—समयसारमें निमित्त नैमित्तिक योगकी बात बहुत बहुत समझाया और रास्ता सही बता दिया कि ये सब पौद्गलिक हैं याने जीब का रंच मात्र भी लेश नही रखा, यह क्या निमित्त उपादान की बात नही है। इसमे यह शिक्षा दी है कि ये सब चीजें पौद्गलिक हैं क्योंकि पुद्गल कर्मसे निस्पन्न है। इतना कहकर स्पष्ट मार्ग दिखाया कि है आत्मन् ? तू निशक होकर ऐसा अनुभव कर कि में तो ज्ञानमात्र हूँ। मैं तो उपयोग स्वरूप हूँ। मैं इनका करने वाला नही। मैं करता हूँ तो रागको ही अपनाता हु। यही मेरा कर्तापन है। राग

क्या है ? योग और उपयोगकी ही ए.. स्थिति । सो यह ससारी योग और उपयोगका ही तो कर्ता बना, पर पदार्थका कर्ता न ि बनता ? तो परपदार्थ का भी अज्ञानमें कर्ता रहा, परिणमन करने वाला रहा । जहां स्पष्ट भेदविज्ञान है कि मै तो ज्ञानमात्र हूँ, यह तो कर्मका नाच है । देखो दर्पण के आगे अगर हाथ तेज हिलावे तो कह सकते कि यह तो हाथका नाच है । दर्पणमे भी हाथ हिल रहा है पर बादमे स्पष्ट बोध होता है कि यह तो हाथका नाच है, दर्पणका नही, लेकिन नाच दोनों जगह हो रहा, दर्पण मे भी नाच हो रहा और हाथमे भी नाच हो रहा मगर दर्पणके नाचका कर्ता दर्पण नही । निमित्त नैमित्तिकयोग ऐसा स्पष्ट है कि हाथका सन्निधान पाये तो दर्पणमे भी ऐसे नाचकी परिणति होती है । कहाँ विवाद है ? इतना स्पष्ट वस्तु स्वातंत्र्य, इतना स्पष्ट निमित्त नैमित्तिकभाव जिसकी स्पष्ट समझ करलें तो मुक्तिमे सन्देह नही, इतनी समझ हो जाय तो कुछ ही भवोमे मुक्ति हो जायगी । इतना तो स्पष्ट कथन है, पर समाजमे हालत ऐसी हो रही है कि जैसे कोई सोत, (नवीन स्त्री) घरमे आ जाय तो पहिली स्त्रीके बच्चोंकी आफत हो जाती है । उस स्त्रीको उन बच्चोमे करुणा नही होती है । तो जैसे सोतको अपने कुटुम्बके पहिली स्त्रीके बच्चे नही सुहाते है ऐसे ही समझिये कि कोई दि० जैन शासनका अश प्रकट कर दि० जैन समाजमें आजाय और पूर्व संस्कारवश दि० जैन साधु सत न सुहाये । जैन समाज सुहावे नही, कितनी बरबादी हो जाये, कितने टुकडे हो जाय, कितना नगा नाच हो जाय तिस परभी सन्तोप नही हो और हृदयमें करुणा नही आती कि चलो बहुत बरबादी करली, अब तो खुश हो जायें, मगर सन्तोप नही हो तो यह एक दुर्भाग्य ही समझे जो सिद्धान्तमें किसी प्रकार के विवादकी बात नही है। रही थोडी बात । गाय अगर अच्छा दूध देती है और लात मारने वाली बन गई वह गाय तो उस दूधके लोभ से या कोई बात के लोभसे या समझ लो कि कुछ ऐसे भी लोग हैं कि मुफ्त आनन्दके लोभसे कुछ त्याग न करना पडे और समाज मे मैं धर्मात्मा कहलाऊं इस लोभसे लातभी सहते जाते और निकट भी बने रहेगे । किन्तु सोचो तो अगर गाय दूध भी दे, सीधी बन जाय, लात न मारे तो बताओ गायका कुछ बिगाड़ होता है क्या ? बल्कि उससे तो गायकी प्रशँसा ही बढेगी । ऐसी ही स्थिति हम आपकी है । कितना निर्विवाद विषय है, निमित्त उपादान का कितना स्पष्ट कथन है । आचार्यजन जिन शब्दोमें बोलते आये उन शब्दोमें बोल बोलकर बात करिये । जैसी नदी में पूर्व (बाढ) का आना यह नैमित्तिक है ना और पानी बरस जाना निमित्त है, वहां कोई मदारी जैसा खेल करे, कहे कि जिस समय नदीमें पूर आता है उस तेज वर्षा होती है । तो कोई भी बताये क्या समझे सीधा बोलो कि जिस समय तेज वर्षा होती है उस समय

नदीमे पूर आ जाता है। इसमें क्या जीभ घिसती है मगर सीधी वात वोलनेसे अपना गौरव कैसे रहेगा ? गौरव तव रहता है जब कोई अनोखो वात हो। अगर सव जैसा ही खेल मदारी दिखाये तो उसके पास कोन जाय ? उसे तो कोई अद्‌भुत वात दिखाना चाहिए तभी तो लोग जुडेंगे। तो देखो कितना स्पष्ट कथन है, आचार्यदेवकी कितनी परम करुणा है। किसी आचार्यको अपनी विद्वताका प्रसार करते हुए भी गर्व रचन था, एवजमे किसी की बरबादी नही चाही। आज तो वह गभीरता कहा।

आश्रयभूतकारणका आश्रयनकर विकारको व्यक्त न बनानेमें लाभ—यहां एक बात बतला रहे थे–विकारके प्रसँगमें कारण ३ है-उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। उपादान वह है कि जो विकाररूप परिणम रहा है। रागद्वेषादिकका उपादान जीव है, निमित्त है कर्मविपाक, जिसका निमित्तपाकर जीव विकारपरिणाम करता है। और आश्रयभूत हैं ये बाह्य पदार्थ। कर्मको छोडकर जितने भी पदार्थ है सब आश्रयभूत है। क्रोध प्रकृतिका उदय हुआ, जीवने बाहरमे नोकर, स्त्री, पुत्रादिकका आश्रय लिया और क्रोध करने लगा, तो, ये बाह्य पदार्थ निमित्तकारण नही। जैसे कल बताया था कि नैयायिको ने तत्त्व माना है छल, निग्रह, जाती, इनको भी तत्व माना है। किसी भी प्रकार दूसरे को चुप कर दिया जाय, इससे धर्म मिलता है, यह नैयायिको का कथन है, तो इसीतरह आश्रयभूत तो निमित्त कारण है नही, मगर उनका निमित्त कारण का नाम दे देकर और यो चुप करना कि देखो भगवान के दर्शन तो किया, पर सम्यक्त्व तो नही जगा, इसलिए निमित्त कुछ नही होता। अरे भाई भगवान के दर्शन सम्यक्त्वका निमित्त नही है। सम्यक्त्वका निमित्त तो प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है। ग्रन्थो मे देखो जहां निमित्त कहा हो उसका अर्थ वाह्य साधन है। जिन विम्बदर्शन सम्यन्दर्शन का निमित्त नही है। अच्छा जैसे कल यह बात बतलाया था ना कि एक ने कहा नवकम्वल, उसका अर्थ था नये कम्बल वाला, मगर दूसरा कहने लगा, अरे तुम बिल्कुल झूठ कहते हो। कहा ९ कम्बल वाला है ? वह तो एक कम्बल वाला है। इसे कहते है छल। ये बाह्य पदार्थ आश्रयभूत कारण है, ये निमित्त कारण नही है। अब इनका निमित्त नाम धर कर देखो जिन बिम्ब दर्शन किया मगर सम्यक्त्व नही हुआ। तो निमित्त कुछ नही है। तो कहते हैं छल। जैसाकि नैयायिको ने माना है। तो बात यह कह रहे हैं भैया स्पष्ट कि निमित्त उपदान मे कुछ करता नही है, फिर भी विकार भाव नितित्तका सन्निधान पाये बिना न कभी हुआ, न होता है, न हो सकेगा। और तबही हमारीजीत है कि हम रागद्वेष कोदूर करसकते। अगर ये रागद्वेषादिक भाव स्वभाव से उत्पन्न होते तो इन्हे दूर न कर सकते थे।

एकान्त हठ को छोड़कर मध्यस्थ बनकर पक्षातिक्रान्त होने से लाभ—आज कल के वातावरण में व्यवहार का पक्ष और निश्चयका पक्ष चलता है। व्यवहारपक्ष तो यों चलता है कि देखो कर्म ने ही राग किया। वे दो पदार्थ न्यारे न्यारे है, सत्ता न्यारी न्यारी हैं। किस की क्रिया कहाँ होती है कौन करता है ? उसका व्यवहार पक्ष ने ध्यान नही रखा। और निश्चयपक्ष यह कहता है कि जब दूसरे लोग हैरान करते है तो निमित्त की बात कहनी पडी, नही तो निमित्त नाम लेनेकी क्या जरूरत ? जीव मे जब जो होना है वह होता है, जब मिटना होता है तव मिटता है। दूसरा कुछ नही करता। हां वात ठीक है, कुछ नही करता, पर निमित्त अवश्य है, निमित्त सन्निधान बिना विकार भावकी उत्पत्ति नहीं होती है। कितना स्पष्ट विवेचन है। अच्छा तो व्यवहार पक्ष वाले को जब निश्चयपक्षने वहुत चिढाया तो वे और बढकर चले और निश्चयपक्ष वालेको व्यवहारनयने चिढाया तो वे और चिढे, ऐसे समयमे अगर कोई मध्यस्थ पुरुष हो और निष्पक्ष ज्ञानकी वात वताता हो, आफत तो उसकी है। न व्यवहारपक्ष वाला उसके प्रति आदर रखेगा और न निश्चयपक्ष वाला। उसको कौन पूछने वाला है ? लेकिन यह जाने कि अगर कोई मध्यस्थ हो, सही कहने वाला हो, वह समस्त जीवोका माताके समान उपकारी हो सकता है। जैसे मां के चार पूत है और मानो २ पूत कुमार्गमे चले गए, दो पूत ऐसे है कि वे जानते है कि हमारे घरके ही हैं, क्या परवाह है, सो दो तो गए उस माता के लापरवाह और दो हो गए कुपूत तो अब उस मा पर चारोकी आफत आयगी। तो मध्यस्थको कौन पूछे ? लेकिन कैसा ही कुपूत हो ? मा का प्रेम चारोपर एक समान है। कितने ही खराब होनेपर भी सदा करुणा रहती है। अच्छा इसका उपाय बनाती है। तो ऐसे ही आजकल कोई मध्यस्थ रहे, तथ्यकी वात बताये तो दो पूत तो यह कहेगे कि यह तो हमारे घरमे है, क्या परवाह है ? क्या वात अधिक समझना क्या अधिक वात होना। दो मानो अपने एकान्त हठमे चले गए तो वे एक प्रवर्तेंगे क्यो ? आजकी दशा वहुत शोचनीय है, वहुत भयंकर स्थितिमे आज दिगम्बर जैन समाज पडा हुआ है, ऐसे समयमे जो उचित वात हो उसपर लोगोंका चुनाव नही होता और उसके मनमे नही आता कि यह वात ठीक यह निष्पक्ष वात ठीक यह ही सत्य है। चलो। व्यवहारनय से दोनोको जानकर जो व्यवहारमे मध्यस्थ होता है सो ही सम्यक्त्वका लाभ लेता है। कोई एकान्त मे लाभ नही ले सकता तो वतलाया था कि आश्रयभूत कारण का नैमित्तिक कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक नही है, उसे निमित्त कारण मत कहो। निमित्त कारण तो कर्म ही होता है। कर्मका उदय विकारका निमित्त, कर्मका उपशम, क्षय, क्षयोपशम आत्माका [illegible] निमित्त जीव के विकारमे निमित्त कर्म ही हो सकता, दूसरा और

कोई पदार्थ किसी निमित्त नही होता, वह आश्रयभूत है। जब हम उन्हे पकडना चाहते, उन्हे ग्रहण करते है, उन्हे उपयोगमे लेते है तब विकार की व्यक्त मुद्रा बनती है। तो यो समझ लिया, निमित्त नैमित्तिक भाव होते हुए भी वस्तु स्वतन्त्र है। आप तो अपना हित निकाल लो, अपना काम निकाल लो। वस्तुस्वातन्त्र्य की दृष्टिसे, विमित्त नैमित्तिक योगकी समझसे जो बात आपके भलेके तिए आयी हो वह आपकर लीजिए। भला केवल एक हैं-स्वभावदर्शन ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वको अपने आप समझना, दूसरी बातमे आत्महित नहीं है।

बन्ध तत्त्वकी चिन्तना—यहा ७ तत्वोके प्रकरणमे यह बात चल रही है कि बधतत्व का भी बिश्वास होना चाहिए। जैसे मोक्षतत्वका विश्वास न हो तो मोक्षमार्गमे कैसे लगा जायगा ? इसीतरह बधतत्वका विश्वास न हो तो मोक्षमार्गमे कैसे लगा जायगा ? मै तो शुद्ध हूँ, निरञ्जन हूँ, सिद्ध समान हूँ। सिद्ध भगवान अनन्तकाल तक स्वभावमे टिके रहते है और हम एक समयको टिक पाये, यह एक कमी रही, बाकी तो सिद्ध जैसा हमारा मामला हो गया। कमी कुछ रही। अरे भाई यह जो अनुभूति हो रही है वह ज्ञानानुभूति हो रही। और सिद्धभगवानमे जो अनुभूति हो रही है वह विरागानुभूति और यहाकी ज्ञानानुभूति मे अन्तर है। जो रागभाव हमारे आ रहे हैं झाकीमे, जिनका कि स्वानुभूतिके समय उपयोग नही करते वे तो हो ही गए। और एक बात और बिल्कुल छोटी बताये। अगर सिद्ध समान अनुभूति होनी एक समयको भी तो एक समयका कर्मबन्ध रुक जाना चाहिए था, पर एक समय भी कर्मबन्ध रुक रहा है क्या ? एक समयको यहा अनुभूति होती नही। जब भी अनुभूति होती हैं अन्तर्मुहुर्तको होती है, इसका लोगोको पता नही, इसलिए लोग एक-एक समय चिल्लाते है। उपयोग जब भी किसी चीजको ग्रहण करेगा तो वह अन्तर्मुहुर्त से कममे ग्रहण नही करेगा, अन्तर्मुहुर्त आधी चुटकी बराबर भी है। अन्तर्मुहुर्त एक सेकेण्डका हजारवा लाखवा भाग भी है। उपयोग छद्मस्थ अवस्थामे किसी भी पदार्थको एक समयमे ग्रहण नही कर सकता। यह जैन सिद्धान्तका नियम है। करणानुयोगका जब कुछभी परिचय नही है तो एक एक समय सुन लिया तो वह एक समय एक हुआ। वह बात सामने आयी, अर्न्तमूहूर्तसे कम स्वानुभूति नही होती। अर्न्तमूहूर्तसे कममे आप इस भींटको भी नही जान सकते। एक आवलीमे ही असख्याते समय होते है। नीचे पलक गिराते हैं और झट ऊपर ले जाते है तो इसमे कितने समय लगते है ? अनगिनते समय। उनमेसे एक समयकी बात कोई अनुभूतिमे आती है, तो मतलब यह है कि उसीसमय अनुभूति हो रही है, उस समय अगर सिद्ध भगवानकी तरह अनुभूति चलती हो तो उससमय कर्मबन्ध रूकना चाहिए, लेकिन कर्मबन्ध जीवके निरन्तर रहता है। अन्तर जरूर हो जाता है, कर्मबन्ध वहां बिल्कुल

कम हो जाता है। जिस समय स्वानुभूति कर रहा है ज्ञानी पुरुप।

आत्मबोध बिना परबोधका मूल्य क्या।—भैया ऐसा समझो कि जैसे किसी स्कूलमें मास्टर ने विद्यार्थियोको दुनियाका खूब ज्ञान करा दिया, चीन, जापान, जर्मनी, अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस आदि के पहाड, जंगल, नदिया वगैरहका वहुत-वहुत ज्ञान करा दिया। अव इन्सपेक्टर आया विद्यार्थियोकी परीक्षा लेने तो पूछा वताओ, तुम्हारे गावके पाससे जो नाला निकला है वह कहासे निकला है और कहा गिरा है ? लो सभी विद्यार्थी चुप रह गए। उन्हें यह बात पढ़ाई ही न गई थी। तो इसीतरह आपको सिद्ध पढ़ा दिया, अरहंत पढ़ा दिया, और सब पढा दिया मगर स्वको (अपने आपको) न पढ़ाया कि वह स्व क्या है ? स्व-रूप क्या है। जो सुन रखा है वही जानते है और आत्माकी वातमे चले तो ऐसे कही ज्ञान होता है क्या ? अपना सही सही स्वरूप जाने, वस्तुका स्वातन्त्र्य पहिचाने और विकारोको जाने कि ये नैमित्तिक है। निमित्त नैमित्तिक भाव और वस्तुस्वातंत्र्य इन दोनोका सही निर्णय किएबिना कोई मार्गपर चलनही सकता। तो बंधतत्त्वका श्रद्धान करना जरूरी होगया इसलिए बंधतत्त्वका भी नाम दिया। अभी तक दो चीजें वतायी है ७ तत्त्वोमे कि मोक्षका क्यो नाम दिया और बन्धका क्यो नाम दिया ? मोक्षका नाम यो दिया कि मोक्षकी श्रद्धा न हो तो फिर मोक्ष लेगा कौन ? बन्धका नाम यो दिया कि बन्धकी श्रद्धा न हो तो उससे छुटकारा पानेके मार्गमे लगा क्यो जायगा। यो दो तत्त्वोकी सिद्धि अव तक हुई।

बन्ध तत्त्वके श्रद्धानकी आवश्यकताका उपसंहार:—यह ससार सारा दु.खमय है। यहाकी किसी भी स्थितिमे विकल्पोसे विराम पानेका अवसर नही मिलता। विकल्पोसे दुःख है। दु.ख की स्थिति अपवित्रता है। अतएव दु खोंसे छुटकारा हो जानेकी स्थिति अवश्य ही उत्कृष्ट है, पर उस मोक्षको पानेके लिए हमे और क्या क्या श्रद्धान रखना चाहिए जिससे कि मोक्षमार्ग मिले ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मे हमारी प्रगति बने, उनका ज्ञान करना भी आवश्यक है। ये ही ७ तत्त्व यहा कहे जा रहे है। मोक्षकी श्रद्धा करने वाले पुरुपको बन्धकी भी श्रद्धा होना आवश्यक है कि जिससे हम छूटना चाहते हैं। तो बन्ध के बिपयमें वर्णन हो चुका, अब बन्धसे अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी क्या जरूरत है ? उसके विपयमे कुछ प्रतिपादन चलेगा। बन्धका अर्थ तो इतना ही रहा ना कि यह जीव बन्ध गया, परतन्त्र हो गया, बन्धन मे आ गया, अब बन्धनसे मुक्ति कैसे पाये ? एक मोटा सा समाधान है कि बन्धन जिन बातो से हुआ है उन बातोको न करें। जैसे कोई पुरुप किसीका कर्जदार है तो चाहता तो है कि मैं कर्जसे मुक्त हो जाऊ, पर कर्जा चढता रहे रोज रोज तो क्या वह कर्जसे मुक्त हो जायगा ? नही, इसीतरह बन्धनसे मुक्ति तो चाहे कोई और बन्धनके

कारणो को करते रहे तो बन्धन तो न मिट सकेगा। तो यह बताना बहुत आवश्यक है कि बन्धका कारण क्या है। बन्ध होता क्यो है। इस जीवको ?

आस्रव तत्त्वके श्रद्धानकी आवश्यकता—बन्धका जो हेतु है उस ही का नाम आश्रव है। कैसे आते है कर्म ? कैसे बन्धते है उनकी बात आश्रव तत्त्वमे बतायी गई है। आश्रव तत्त्वकी सक्षेपमे बात यह जाने कि जब यह जीव मन वचन, कायका योग करके मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप भाव होता है तो कर्मका आश्रव होता है, बन्ध होता है। बुरे चालसे चले कोई तो उसकी गिरफ्तारी होती है और कोई अच्छी चालसे चले तो उसके बन्धन तो नही होता। बुरे भावसे कोई चले तो कर्मका बन्धन जरूर होगा और शुद्ध भावसे चलें तो बन्धन क्यो होगा ? तो वे अशुद्ध भाव, वे खोटे भाव कौन कौन से है ? इसे सक्षेपमे कहो रागद्वेष मोह परिणाम। राग कैसे कि किसी भी परवस्तुमे प्रीति उमड जाती, किसी भी परवस्तु के बाबत उमग उपज जाती। यह भला है, यह अच्छा है, यह मेरेको हितकारी हैं और देखो यह यही बैठे बैठे अपने ही प्रदेशोमे रहता रहता यह आत्मा अपने भाव भर बनाता है। कर कुछ नही सकता बाहर। यही तो अज्ञान अन्धकार है कि मेरा किसी बाहरी पदार्थसे सम्बन्ध नही, लेनदेन नही कुछ बात नही, न कुछ साथ आया, न कुछ साथ जायगा, न इससे कोई मतलब सधता। बाह्य पदार्थ है, इन्हे क्यो अपना कुटुम्ब समझे ? क्यो अपना धन समझे ? सब बाहरी पदार्थ हैं, और बाहरी पदार्थोंके प्रति उपयोग का लगाना यह महान विपत्ति है। कोई विपत्तिमे पडनेका काम करे और घबडाये तो उसका विपत्तिसे छुटकारा कैसे हो ? वह श्रद्धान लावो कि मुझे तो सर्व विपत्तियोसे परे आत्मीय आनन्दस्वरूपका दर्शन करना है। कोई व्यक्ति नीरस कटुक चीज को खाता रहता हो तो वह उस चीज को तभी तो छोडेगा जब कि उससे बढिया रसवाली कोई चीजका स्वाद ले। अन्यथा कैसे छोडेगा ? तो ये ससारके समागम नीरस है, इनमे हमारा उपयोग जाता है तो हमे दु ख होता है। उन्हे छोडनेकी बात कही जा रही है मगर छोड तब सकेंगे जब कुछ उससे विलक्षण स्वाद वाले आत्मीय आनन्दका दर्शन हो, अनुभव हो, जानकारी हो। जैसे कोई भिखारी कई दिनोकी बासी रोटिया अपनी झोलीमे रखे हुए घूमता है, रोटिया मागता है। उससे कोई कहे कि अरे भिखारी तू इन बासी रोटियोको फेक दे, मैं तुझे ताजी पूडिया लड्डू दूंगा तो वह नही फेकता। एक तो उसे विश्वास नही कि पूडिया मिलेगी, दूसरे उसने पूडी व मिठाई कभी खाया नही तो उसे उनकेलिए उमग कैसे जगे ? तो ऐसेही इस जीवने विषय कषायो का परिचय, अनुभव, सबकुछ खूबकिया, पर किसीभी प्रकार पूर्णरूपसे नही, कुछ-कुछ अन्दाजरूप से ही आत्मीय आनन्दकी बात परिचयमे न आयीतो कैसे उन विषय कषायकी

बासी रोटियो को फेक सकेगा ? है ये सब विपत्तियो के साधन । कभीभी ज्ञान हो जायकि हा ये सब विपत्ति हैं विडम्बना है तो भी उमगउठेगी आत्मीय सम्पदाको जाननेकी। वह छूट सकेगा नही ।

बाह्य परिकर की असारता के निर्णय का उपकार—भैया ! और अधिक नहीतो इतना तो समझ ले कि हम जिस परभव से आये है उसमे बडे सम्राट भी हुएहो तो भी वहा का सुख आज काम आ रहा है क्या ? कुछभी तो कामनही आरहा । और यहासे मरकर भी किसी अन्य भवमे जाओगे तो यहा का कुछभी भोग साधन आपके किसी काम आयेगा क्या ? अच्छाअब इसही भवकीबात देखलो आपकहेगे कि इसजीवनमे १०-२०-५० वर्ष जबतक जिन्दा रहेगे तबतकतो मौजलूट लेंगे । तोभाई ऐसासोचना आपका गलत है अरे इसथोड़ेसे जीवनका बाततो आप सोचरहे पर आगेका जो अनन्तका लपडाहुआ है उसकेलिए कुछभी नही सोचते । अरे इस १०–२० वर्ष के जीवन के लिए कल्पित मौज के प्रसगोमे रहना यहतो आपके लिए कलक है और उस समागम के मौजकी भी बात देखिए कुछ भी मिलता है क्या ? बालबच्चो की करतूतो से आप परेशान हो जाते । और फिरकोई बच्चा जरासुहा गया तो उसे खिलाना पिलाना या उसे समर्थनदेना अन्य बातोंके लिए जो आपका मन भीतर-ही-भीतर बहुत घूमता रहता है तो उस मन के घूमनेमे आपको तकलीफ होती कि नही ? मन नही मानता, पर जो इतना मनका घूमना है इसमे कष्ट होता कि नही ? आज इस समागम में कौनसा मौज मिल रहा है इसका भी तो निर्णय कर लो । तो बन्ध के हेतु तो ये रागद्वेष मोहभाव है भलाराग हो तो, बुरा राग हो तो, बन्ध के सब कारण है ।

कर्मकी गिरफ्तारी में आने का कारण मोह राग द्वेष—देखो हाथीको पकडने वाले लोग जगलमे जहां हाथी रहते है वहा एकबडा गड्ढा खोदते है और उसकेऊपर पतली-पतली बॉस की खपचे बिछाते है और उसपर जमीन जैसे रगका कागज बिछाते हैं और उसके ऊपर हथिनी जैसे रंगमे कागजकी एक हथिनी बनाते है और कोई १००–५० हाथकी दूरीपर एक हाथी बनाते हैं जो हथिनीकी तरफ मुखकिए तेजीसे चलने जैसी सकलका बनाते है । वहा उस जगलका हाथी आता है पहिलेतो वह उस हथिनीको दूरसे देखता है उसमे उसे रागहोता है, फिर उस दूर बने हुए हाथी को देखकर उससे द्वेष उत्पन्न होता है—अरे यहमेरी इष्ट हथिनी के लिए आ रहा है । यह सोचकर वह जगलका हाथी और भी तेजीसे आता है । उस हाथी को न तो गड्ढेका ज्ञानहोता और न उस झूटी हथिनी का । फलयह होता है कि वह हाथी उस गड्ढेमें गिरजाता है । शिकारियों के बन्धनमे आ जाता है । फिरक्या करते है यहबात उनकी आगेकी है, जैसे उसे कईदिन भूखा रखकर अशक्त बनादेना, अंकुशसे उसे

वश करके बाहर निकाल लेना आदि, पर बात यह बतला रहे कि वह हाथी जो बन्धन मे आया सो तीन वातो के कारण आया है पहिले तो उसे अज्ञान था, मोह था, पता ही न था कि यहां गड्ढा है और कुछ थोडा वहुत दिमाग लगाता तो जानलेता। देखिये हाथी बडा समझदार जानवर होता है। एक जगह की बात है कि किसी तालाब के किनारे खडा हुआ एक हाथी पानी पी रहा था, तो पीछे से किसी मोटर वाले ने जान बूझकर हाथी के धक्का मार दिया। तो उस हाथी को वहां ऐसा गुस्सा आया कि उसने झट ड्राइवर को पकडना चाहा। ड्राइवर तो झट भागकर निकल गया, फिर उस हाथी ने मोटर के आगे जो एक सफेद डंडासा लगा रहता है उसे सूंढ़ से पकडकर उठा कर उलट दिया। तो देखिये हाथी जानता तो बहुत कुछ है। तो वह जंगल का हाथी कुछ जानना चाहता तो जान सकता था कि यहां जंगल मे गड्ढा है, धोखा है, वह धोखेकी हथिनी है, इसमें मैं बँध जाऊँगा, पर मोह था तीव्र इस कारण वह उस और दृष्टि भी न कर सकता था। तो अज्ञान भी है, और तीसरे उस हाथी से द्वेष भी है। तो जैसे रागद्वेष मोह के कारण हाथी बँधा ऐसे ही रागद्वेष मोह के कारण यह जीव बँधा फिरता है। यहां एक बात और समझ लीजिए। द्वेष नाम किसका है ? जिसको हमने यह समझा कि मेरे इन्द्रिय और मनके विषय मे यह बाधा डाल रहा है उसी से द्वेष हो जाता है। जैसे हाथी ने यह समझा कि मेरी हथिनी के समागम मे यह हाथी बाधा डालेगा, वह भी झूठ ही था लेकिन समझ तो यह रहा था सच्चा। तो विषय मे जो बाधा डाले उससे हो जाता है जीव को द्वेष। तो विषय मे सब आ गए ५ इन्द्रिय और मन। तो विषयो मे बाधा डाली ऐसी जो कल्पना लगी उससे द्वेष हुआ वस्तुत. कोई भी जीव किसी का विरोधी नही है। अपने जीवन मे एक बात की परीक्षा करके देख लो, जिसको आप विरोधी समझ रहे हो, जरा उसके पास थोडा बैठ जाओ, थोडी बात करो तो वह विरोधी भी आपका उतना घनिष्ट मित्र हो जायगा कि जो मित्र से भी बढकर हो जायगा यह सोचना भ्रम है कि यह मेरा विरोधी है। अरे जीव-जीव सब एक समान है। यहा तो अपने मन के विषय मे बाधक समझा। जिसे एक विरोधी मान लिया।

प्रशस्त कार्य के करने में उमंग की प्रशस्यता:—अच्छा तो यह है कि जो काम करने योग्य है, सब जीवो के भले के लिए जो कुछ बातें करने योग्य है उन्हे करे। जो व्यर्थ की बातें हो याने जिनमे कुछ नुकशान होता हो उन्हे न करना चाहिये। जिनसे कुछ आप का बिगडता नही उन्हे भी न करना चाहिये। बताओ जिसे आपने अपना विरोधी माना उसके पास कषाय छोड कर बैठ जाने मे आपका कुछ बिगडता है क्या ? अरे बिगडने की

तो कुछ बात नही, लेकिन कषाय की ऐसी वेदना है कि ऐसी हठ करकेआये है कि उस कषाय को छोडना नही चाहते । भला बतलाओ कषाय को छोडना नही चाहते और चाहते है कि मुझे शान्ति मिले तो कैसे शान्ति मिलेगी ? बडा तो वही है जो कषाय के छोड़ने मे विलम्ब न करे । हठ छोड़ने मे विलम्ब न करे । जिसमे सबका भला हो, अपना भला हो ऐसी बात विचारने मे करने मे विलम्ब न करें । चाहे खुद का विगाड हो जाय । एक बार की ऐसी घटना है कि किसी गाव मे कभी ऐसा रिवाज था कि जब कभी कोई पगत की जाती थी तो वहा स्त्रिया भी पगत मे भोजन करती थी और भोजन करने के बाद वे अपने–अपने लोटे मे एक दो लड्डू पेडे रख ले जाया करती थी वहा के मुखियाने एक बार पचायत किया और कहा कि देखो अब ऐसा नियम बना दिया गया है सबके लिए कि पंगत में भोजन करने के बाद कोई भी स्त्री अपने लोटेमे लड्डू पेडे न चुरा कर ले जावे । जो स्त्री चुरा ले जायगी उससे उचित जुर्माना लिया जायेगा । अब नियम तो बन गया गाव में पर कोई स्त्री विना चुराये माने नही । तो एक बार उस मुखियाने स्वयं अपनी स्त्रीसे कहा–देखो तुम एक काम करो । क्या ? एक लौटेमे दो तीन लड्डू पेडे रख लावो । रख लायी वह स्त्री । अब उस मुखियाने फिर पँचायतकी और कहाकि देखो यह मेरी स्त्री किसी पंगतसे लड्डू पेडे चुराकर लायी है इसलिए इसपर ११) जुर्माना किए जा रहे हैं । अब जो भी इस तरह से चोरी करते पकड़ी जायगी उससे ११) जुर्माना लिए जायेंगे देखिये–एक भले कार्यके लिए उसने अपनी स्त्री पर भी जुर्माना लगाना बुरा नही समझा । उससे तो और सारी स्त्रियोका सुधार हो गया । तो भाई भले कामके लिए ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषाये छोडे । अच्छे काम करें ,जिनमे भला हो । और अच्छे काम करके प्रसन्न रहें । तो बन्धके कारण तो ये ही रागद्वेप मोह हैं, इनको ही आश्रव कहते हैं, और इन रागद्वेष मोह भावोंके होनेपर नवीन कर्मोका आश्रव होता है और बन्ध होता है । आश्रब किस तरह होता है, इसको बडी एक सूक्ष्म दृष्टिसे कभी कहेंगे । कुछ समय बाद इस विषयमे प्रकाश डालेंगे इस सूत्रके विवेचनके बीचमे कि वह आश्रव चीज क्या है ? क्यो होता है, कैसे होता है ? अभी तो यह समझिये कि बन्धका कारण आश्रव है इसलिए बन्ध हेतुका दिखाना जरूरी है किउन आश्रवों को न करें तो वन्ध न होगा । इसतरह बन्धका हेतु आश्रवभाव कहा । तो कितने तत्त्व हुए ? आश्रव,बन्ध और मोक्ष । ठीक है । बन्धका कारण है आश्रव

संवर तत्त्वकी श्रद्धाकी आवश्यकता— मोक्षके कारण भी तो बताने चाहिए कि जिन उपायोंसे चलकर हम मोक्षको प्राप्त करे, क्योकि आवश्यक है ना ? जब हमे मोक्ष चाहिए तो मोक्षके उपाय समझना आवश्यक है कि नही ? तो मोक्षके भी उपाय क्या हैं जिन उपायो

पर चलकर हम मोक्ष पा सकें ? तो मोक्षके उपाय क्या हैं ? एक साधारण सी बात है। कोई कर्जमे बहुत दब गया, बंध गया तो कर्जसे छूटनेका उपाय क्या है ? उपाय उसके दो हैं—(१) नया कर्जा लेना नही (२) पुराने कर्जे को थोडा-थोडा चुकाते रहना। वह कर्जसे छूट जायगा ना। ठीक यही बात बन्धनकी है। नया बन्ध करना नही और जो पहिले बन्ध किए हुए है उसको थोड़ा थोड़ा झड़ाते भी जायें, मोक्ष हो जायेगा। कोई नाव तालाबमे चल रही है। नावमे कोई छेद हो गया, उस छेदसे पानी आने लगा और पानी आनेसे वह नाव वजनदार हुई और डूबने वाली हुई उस नावको डूबनेसे बचानेका क्या उपाय है ? उसमें जो पानी आया उसको मात्र उछाल उछालकर बाहर फेकनेसे काम न चलेगा। पहिले तो उस छिद्रको बन्द करना होगा जिससे पानी आता है। उसमे नया पानी आये नही और फिर जो पानी उस नावसे आ गया है उसे उछालकर निकाल दें, इस तरहसे नाव डूबनेसे बच जायगी। तो इसीतरह जो बन्धके कारण आने मत दें, इसको कहते हैं सम्बर और जो पहिले बाधे हुए कर्म है उनको थोडा-थोडा झडा दें इसको कहते हैं निर्जरा। इस तरह जो कोई सम्बर करे, निर्जरा करे उसको मोक्ष होगा ना अवश्य होगा। सम्बर क्या कहलाता है ? इसका विवेचन इसी मोक्षशास्त्रके ९ वे अध्याय मे किया जायगा, निर्जराका भी वर्णन इसी अध्यायमे विशेष रूपसे किया जायगा। सक्षेपमे यह समझ लीजिए कि राग-द्वेष मोह परिणाम न करना सो सम्बर। रागद्वेष मोह परिणाम न होनेसे जो कर्मोका आस्रवण नष्ठ होता है उसको कहते हैं सम्बर

निर्जरा तत्त्वकी ज्ञातव्यता व श्रद्धेयता:—पहिले बाधे हुए जो कर्म हैं उनका जो झड़ना होता है उसे कहते है निर्जरा। पुद्‌गल कर्म एक ऐसी फिलास्फी है और उसका ऐसा एक सत्य वर्णन है जैन सिद्धान्तमे कि उसकी समय-समय पर जो हालत होती है वह बताई गयी है, जो लोग ऐसा कहते कि कर्म तो एक उपचार निमित्त है, कहदेवेपर बुद्धि पर आवरण है जरा कर्मकाण्ड तो पढो, जैन सिद्धान्त का आधा हिस्सा तो है कर्मकाण्ड और आधेमें है बाकी सारा सिद्धान्त। इतनी बडी तो है कर्म—फिलास्फी। महाधवल पूरा है, जयधवल पूरा है। तो जिसका इतना बडा सिद्धान्त, उसका जानना चूँकि कठिन है, बडी बुद्धि लगानी पड़ती है। तो जब समझमे नही आता तो जैसे लोमडी अगर अंगूर पेडसे पानेमे न आये तो वह इसीसे सन्तोष करतो है कि चलो खट्टे हैं अगूर इसीतरह कर्मोंकी बात, कर्मकाण्डकी वात उदय उदीरण, सत्ता संक्रमण, उत्कर्ष अपकर्ष, स्थापना निक्षेप, कैसे कैसे होते हैं, कैसी स्थिति कैसा अनुभाग, बहुत बड़ा विषय है। विद्वता तो इसीमे है। छोटी-छोटी बातें कहनेमे कोई विद्वता नही। जो कर्म फिलास्फीको बहुत ढगसे समझ चुका है विद्वता तो वहां है, पर कठिन

है इसलिए कह दिया कि वहां कुछ नही है । वह तो परद्रव्य है, अरे ठीक तो है पर जिससे छुटकारा पाना है उसकी विशेष—विशेष बात जाने तो श्रद्धामे मजबूती आयगी । यहां पर द्रव्य तो ये रोटी दाल चावल वगैरह भी है । इन्हे आप क्यो नही छोड़ देते । नये-नये सिद्धान्त बनाते कि देखो सम्यग्दर्शन होनेके लिए मास छोडने की भी जरूरत नही, तो ये परद्रव्य न रहे और कर्म परद्रव्य रहे जो कि आचार्योका बहुत बड़ा सिद्धान्त है । अरे नही समझमे आता तो श्रद्धान तो करो कि कोई तत्त्व तो है । इस विषयमे अधिक बोलना अभी यो प्रासगिक नही कि उसके लिए तैयारी चाहिये सुननेकी और उसको सुननेके लिए कमसे कम और नही तो ५ वर्षका अभ्यास चाहिए अध्ययनमे, पढ़नेमे जब इसकी बात बहुत कुछ समझमें नही आती है तो इतनी बात तो जानो कि ऐसे आत्म परिणाम और कर्मदशामे निमित्त नैमित्तिक भाव सम्बन्ध है कि आत्मामे विशुद्धि बढ़े तो बन्धे हुए कर्म जो आगेकी स्थिति वाले हैं उनमे से कितना पहिली स्थिति वालेमे मिल जाये, कितना अगली स्थितिमे मिल जाये । ऐसा उनका स्थिति घात होता, ऐसा उनकी शक्तिका घात होता, ये सारी बाते निर्जराके प्रकरणमे आती है । तो मोक्षके उपायमे सम्बर और निर्जरा ये दो उपाय है इसलिए इनका कथन करना बहुत आवश्यक है ।

पञ्च तत्त्वोंका आधार—उक्त प्रकारसे समझा होगा कि आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष इन ५ तत्त्वोका जानना कितना आवश्यक है, किसको आवश्यक है ? जीवको, तो उसे जीव भी तो समझना चाहिए । तो क्या जीवसे अलग ही ये आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष हो गए ? नही । किसका आश्रव ? अजीवका आश्रव । उस अजीवको भी जानना चाहिए किसका बध ? अजीव का बन्ध । किसका सम्बर ? अजीवका सम्बर ? अजीवका सम्बर, किसकी निर्जरा ? अजीवकी निर्जरा । किसका मोक्ष ? अजीवका मोक्ष । तो अजीवका मोक्ष हुआ, ईसे कैसे छोडे ? मोक्ष किसका हुआ ? जीवका अरे तो क्या कर्मका नही हुआ ? जीव और कर्म दोनो छूट गए तो छुटकारा तो दोनोका हो गया । सम्बर, निर्जरा आदिक सभी दोनोमे हुए । फर्क यह हुआ कि कर्मका निर्जरा होनेपर उस जीवको कोई मजा नही आता । दूसरे-इन कर्मोका यदि मोक्ष हो जाय तो फिर भी वे कर्म बन्ध जाते है, क्योकि कर्मका एक जीवसे तो छुटकारा हो गया । अब कर्ममें स्निग्ध रूक्ष गुण है । कर्मोका बन्ध स्निग्ध रूक्ष गुणसे होता है । एक परमाणु हो फिर भी उस गुणके कारण वे कर्म बन्ध जायेगे । जीवका मोक्ष हो गया तो रागद्वेष मोह मिट गए । अब पुनः बन्धन नही हो गया, तो रागद्वेष मोह भी न होगे । ये रागद्वेष जीवके गुण तो हैं नही इसलिए वे मिटते है तो सदाके लिए मिट जाते है, वे फिर दुबारा नही आ सकते इसलिए

जीवका सदाके लिए मोक्ष है, पर कर्मके लिए मोक्ष नही होता। कर्मोंका छुटकारा हुआ कि वे ससारमे रह रहे है, किसी दूसरे जीवके साथ चिपक जायेंगे। यो सम्बर. निर्जरा, मोक्षका उपाय-ये सब बाते जीव, अजीवके सम्बन्धमे होती हैं इसलिए इन ७ तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहा गया है।

सात तत्त्वोका प्रधान—अब इन ७ मे से क्रमसे स्वरूप वर्णनकी ओर चलें। जीव तत्त्व। देखो जीवको दो दृष्टियोसे निहारना (१) निश्चयदृष्टिसे (२) व्यवहारदृष्टि से। निश्चयदृष्टिसे तो यह जीव टँकोत्कीर्णवत् निश्चल एक ज्ञायक स्वभाव, अनादि अनन्त अहेतुक चित्प्रतिभास मात्र है ब्रह्मस्वरूप है, अखण्ड है, अभेद है, जिसको समझानेके लिए कोई वचन नही है फिर भी बोलते तो है ना इन शब्दोंसे, जिसकी समझ अनुभव कराता है, वचन नही करा सकते। उपदेश नही करा सकते। ठीक समझे. पूरे समझे कि हा अब हम समझ गए। जैसे मिठाई की समझ तो चखना करायगा, उपदेश न करा सकेगा। ये रसगुल्ले है, छेनाके बने है, इनमे अमुक अमुक चीज पडी है, ये बडे मीठे है, यो कोई कितना ही बोलता जाय, कुछ समझ तो जरूर रहा है तभी तो मुखमे पानी आ जाता है, मगर बढिया समझ तब बनती है जब कि रसगुल्ले मुखमे रखले। ऐसे ही इस अन्तस्तत्त्वकी समझ कब बनेगी जब कि सारे विकल्प छूटकर अपने ही ज्ञानमे उस ज्ञानमात्रका अनुभव जगता है, वहा समझमे आता। जब समझमे आता तब बोल नही सकते, और जब बोल रहे हैं तब समझमे नही है। बताओ कठिनाई आ गई कि नही जैसे लोग कहते है ना कि जो बहुत गर्जता है वह बरसता नही। इसे लोग यो भी कहते कि जो बहुत बढ बढकर बाते करता है वह कर कुछ नही सकता। केवल बोलना बोलना है। तो वचन पद्धति तो ऐसी है कि बोलते जावो, उसमे समझ नही बैठी है। असली समझ वहां बैठी जब उसका दर्शन हो, अनुभूति हो। तो उसके लिए सकल्प बने, उसके लिए कमर कसकर चले तो समझ मे क्यो न आयगा ? देखो जो फर्म चलाने उसकी व्यवस्था करने आदि की बडी कठिन बाते हैं उनको आप आसानी से निपाट ही लेते हैं .फिर जो अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान करनेका काम है उसमे कोन सी कठिनाई है। वह तो बहुत सरल है, मगर क्या वजह है कि कठिन बात तो सरल बन रही, यह तो उसके बाये हाथका खेल और सरल बात कठिन बन रही है, क्यो ऐसा करते ? अरे बाह्य पदार्थोंके प्रति तो यह चिन्तन करे कि किसी भी पर पदार्थ पर मेरा रच भी अधिकार नही, मेरा तो मात्र मैं ही हूँ। जरा पुण्यका योग है और मनचाही बात थोडी होती रहती है तो उउमे हम समझ लेते हैं कि हा यह मेरे वशकी बात है। इसे मैं करता हूँ। और अन्दरमे तो देखो जरा कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप अपने आपके प्रदेशोमें ही

अपना परिणमन करने वाला क्या कर पाता है ? अपना ज्ञान बनाया, अपना आनन्द बनाया, इसके अतिरिक्त बाहर जगतमे कुछ करनेमे समर्थ है क्या ? जैसे ५० मन बोझसे लदी गाडी को दो बैल खीच रहे। उसके पीछे दो तीन बच्चे गाडी ढकेलते । अब वे यह अभिमान करते है कि मैं इस गाड़ीको चलाता हूँ। जरा गाड़ी कही फस गई तो वे बच्चे बड़ा जोर लगाते, हैरान होते, दुःखी होते—अरे गाडी क्यो नही चल रही ? अरे क्यों दु.खी होते बच्चो ? जब गाडी चल रही थी तब भी तो तुम नही चल रहे थे। और जब गाडी खडी हो गई तब भी तुम नही चला सकते। तो इसीतरह जगतमे जितने योगायोग है, जो कुछ आ रहा है हव आपका पूर्वकृत पुण्यका उदय है, वैसा समागम मिल गया है, बन रहा क्रोध, चल रहा क्रोध, चल रही कषायें। आप तो केवल अपने आत्मप्रदेश मे विकल्पके करने वाले है।

विनश्वर अहित भिन्न वैभवकी उपेक्षामें ही लाभ:—भैया ऐसा एक निर्णय बनाये कि मैं अपने आपमे अपनी ही समस्या बनाता रहता हूँ, अपनेको उलझाता रहता हूँ और मैं अपने आपमें अपने आपकोही सुलझा सकूंगा। इन बाहरी पदार्थोके प्रति उदासीनता लावे। मिला है तो क्या ? और, जितना हमे मिला है यह व्यर्थ है जरूरतसे कई गुना ज्यादह मिला है। ऐसा जरा मनमें सोचोतो सहीकि जरूरतसे ज्यादा मिला है कि नही। अगर भली प्रकार सोचे तब तो मालूम पड जाय और ऊपरी-ऊपरी सोचोतब तो लगेगा कि जरूरत से ज्यादह कहां मिला ? अभी तो इसमें बहुत कमी है। पर ऐसी बात नही है। इसकी अगर परख करना हो तो उन लोगो पर दृष्टि डाल लो जिनके पास आपसे १०० गुना कम है। उनका भी तो जीवन आखिर अच्छी तरह से बीत रहा है। तो जरूरत से ज्यादह है। अब आप यह सोच सोचकर अपने आपको हैरान करते रहते कि अभी तो इतना ही है, अब इतना हो जाय, फिर इतना हो जाय, फिर इतना हो जाय। अरे अपने दिलको इतना हैरान करके फायदा क्या पावेंगे यहो से एक दिन चल बसोगे। और अन्तमे आपको मिलना कुछ है नही। तो यह जो इतनी हैरानी बनाया, इतना जो सक्लेश किया उसके फलमे आपको व्यर्थ ही दु ख भोगना पड़ा। हाथ कुछ भी न आया। जैसे एक दृष्टान्त मे बताया है कि एक चोर राजाके घुड़सालसे एक घोडा चुरा लाया, उसे एक बाजार मे ले जाकर खड़ा कर दिया। ग्राहक आये पूछा— घोडा बेचोगे ?…कितनेमे दोगे ? ६००) मे।…अरे इसमे ६००) की क्या बात ?…अजी इसकी चाल बहुत बढ़िया है। अब था तो कोई ३००) का मगर ६००) कहा तो कौन खरीदे ६००) मे सो बहुत से ग्राहक लौट गये। मानलो १० ग्राहक लौट गये। अब एक ११ वां ग्राहक आया। वह भी एक बड़ा पुराना चतुर चोर था। उसने पूछा—भाई घोड़ा बेचोगे ? …हां हा बेचेगे।…कितनेमे दोगे ?…६००) मे। बस आवाज से परख लिया कि यह तो

घोडा चोरीका मालूम होता है। सो कहा'''भाई इसमे ९००) की क्या बात है ?'''अजी इसकी चाल बडी सुन्दर है।'''अच्छा मेरा यह हुक्का पकड़ो। मैं इस घोड़ेपर बैठकर इसकी चाल देखूँगा। यदि इसकी चाल पसद आ गयी तो मैं तुम्हे ९००) ही दूँगा। सो उसने तो मिट्टीका हुक्का अपने हाथमे पकड लिया, वह था कोई चवन्नीका (४ आनेका) और वह बूढ़ा ग्राहक घोडेपर बैठकर उसे कही का कही उडा ले गया। वह घोड़े वाला जहां का तहा आवाक सा खडा रह गया। उधरसे वही ग्राहक निकले जो पहिले आये थे। पूछा-भाई तुम्हारा घोडा बिक गया क्या ?'''हाँ बिक गया।'''कितनेमे बिक गया ?'''जितनेमे लाये थे उतनेमे बिक गया। (याने चोरीमे लाये थे और चोरीमे चला गया।'''मुनाफा क्या मिला ?'''मुनाफामें मिला यह चार आनेका मिट्टीका हुक्का। तो भाई इन बाहरी चीजोंसे लगाव करके उनके पीछे हैरान मत हो। उनसे लाभ कुछ भी न मिलेगा। बल्कि उनके फलमे अन्तमे पाप कर्मका बन्ध ही होगा, जिसके कारण ससारकी असह्य यातनायें सहनी पडेंगी।

सप्त तत्त्वके कर्मका विलास.—मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस विषयमे यह जाननेकी इच्छा हुई कि तत्त्व कौन है ? इस चतुर्थ सूत्रका अवतरण हुआ। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ ही क्यो हैं ? इसका विवरण भली प्रकार हो गया, जिसे संक्षेप मे यो कह सकते कि हम जीव है इसलिए जीव का सही श्रद्धान करना तो जरूरी है। इसका ही तो मोक्ष होना है। जिसको छुटकारा देना है उसका श्रद्धान होना तो आवश्यक है। अच्छा, किससे छुटकारा लेना है ? जिससे छुटकारा लेना है उसका भी ज्ञान चाहिए। वह है अजीव। अच्छा, छुटकारा क्यो लेना है ? हम बँधे हुए हैं, दु खकी स्थिति है। अपवित्र बात है, कष्टकी चीज है इसलिए बधसे छुटकारा लेना। तो बन्ध जानना चाहिए। वह बन्ध होता कैसे ? जब बन्धके निदान जाने जायेंगेतब ही तो चिकित्सा बन सकेगी। जैसे कोई वैद्य किसी रोगीकी चिकित्सा करता है तो उसे यह जानना आवश्यक हो जाता है कि राग क्यो हुआ ? निदान क्या है ? फिर उस निदानको वह बन्द कराता और चिकित्सा करता। तो पहिले निदान जानना भी आवश्यक है, यह हुआ आश्रव। उस निदानकी बातको रोके और फिर पहिले बने हुए रोगको दूर करनेकी औषधि करे तब ही तो रोगसे मुक्ति बन सकेगा। जैसे करते ही है बात कि जो अभक्ष्यकी चीज है उसे मत खावो, यह तो हो गया सम्बर, और जो औषधि है, पहिलेका जो पेटमे अजीर्ण पडा है उसको गलानेके लिए औषधि दी जाती। तो निदान तो हुयी औषधि और सम्बर हुआ अभक्ष्य-परिहार। इसतरह इस जीवको इस ससाररोग से मुक्ति

मिलती है। इसतरह ७ तत्त्वोका क्रम बताकर अब जरा इसके स्वरूप पर विचार करे।

जीव—परिचय—जीव क्या है ? तो देखो जीवका परिचय निश्चयनय और व्यवहारनय दोनोसे होगा ? निश्चयनयसे तो जीव है एक ज्ञायकस्वरूप अखण्ड चिन्मात्र. जिसको कहनेके लिए शब्द नही हैं, फिर भी शब्दोद्वारा कहा जाता है। शब्द द्वारा कौन समझेगा ? जिसे कुछ अदाजा है। तो वह तो है निश्चयनय का विषय, अखण्ड, एक चित्स्वरूप, ब्रह्ममात्र और व्यवहारनयका विषय क्या है कि उस ही अखण्ड जीव तत्त्वको भेद करके समझाना सो भी व्यवहार है। देखो व्यवहारकी संतान बहुत बडी है और यह समझो कि निश्चय तो बिना संतानका रहता है। जो वास्तविक निश्चय है, परम शुद्ध निश्चय है, अखण्ड है वह तो नि.संतान, अकेला है, और क्यो जी, बताओ सतान वाला होना अच्छा है कि नि.संतान होना अच्छा है ? तो यह तो अपनी-अपनी अलग—अलग बात है। नि.सँतान एक अखण्ड अवक्तव्य, जिसका भेद नही है। इस प्रकरणमे तो भाई निश्चयनयका आश्रय करके ही सम्यक्त्व बनेगा। व्यवहारनय साधन है और निश्चयनय साक्षात् साधन है। व्यवहारनय साधन है। व्यवहारनय है निश्चयका साधन और निश्चयनय है अनुभूतिको साधन। यह अन्तर आया। इसमे विवादकी कही जरूरत नही है। व्यवहारनय बिना निश्चयनयके विषय का परिज्ञान न कर पायेंगे। निश्चयनयके विषय का ज्ञान करके, निश्चयनयका आश्रय करके रहियेगा। वह तो सम्यक्त्वका साधन बनेगा। भूतार्थनयसे जाने गए जीवादिक ७ तत्त्व सम्यक्त्व के कारण होते हैं, निश्चयसे जानना यह सम्यक्त्व नही, किन्तु सम्यक्त्वका कारण है। तो निश्चय से क्या समझा ? एक अखण्ड अभेद ज्ञानस्वरूप अब ऐसे ही कहते रहें निश्चय निश्चय की ही बात बराबर दुहराते रहे तो किसीके कुछ समझ बनेगी क्या ? कुछ समझ न आयगी, कुछ धर्मकी प्रवृत्ति चलेगी क्या ? नही चल सकती। तब व्यवहारनयसे जब भेद करके बताया कि जीवादिक ७ तत्त्व हैं। देखो निश्चय और व्यवहार से अनेक जगह आपेक्षित हो जाते है। तब इसकी दो बातें रखी। अखण्ड ज्ञानस्वरूप और जीवादिक ७ तत्त्व। तो इसमे निश्चय कौन है ? अखण्ड ज्ञानस्वरूप। व्यवहारका क्या विषय है ? जीवादिक ७ तत्त्व। क्योकि वह भेद करके कहा है। तो जीवादिक ७ तत्त्वोंको जाननेपर ही तो जीव तत्त्वका बोध हो पायगा। जो परमार्थका विषयभूत है, जो ७ तत्त्वोमें रहता हो वह अपनी अखण्डताको नही छोड़ता। वह है शुद्ध जीवतत्त्व कहते हैं कि व्यवहार हेय है। अरे व्यवहार हेय है तो निश्चय भी हेय है। अच्छा, तो निश्चय की बात, परमार्थकी बात, अनुभूतिके लिए उद्यम करनेमे निश्चय ही उपादेय है।

व्यवहारका अविरोध करके निश्चयका अवलम्बन कर अखण्ड तत्त्वके परिचय की

गाति—निश्चयकी बात समझनेके लिए व्यवहार भी उपादेय है। यह सब तथ्य है। एकान्त ही गडबड करता है। जैसे मन्दिर पर चढ़ेंगे जहां मानो १२ सीढियां है, तो उस मन्दिरमे आप किस तरह चढ़ पाते हैं सो तो बताओ ? सीढियां पकड़कर चढ़े कि छोड़कर ? मन्दिरके ऊपर आप पहुँचेंगे तो सीढ़ी पकडकर या छोडकर किसीने कहा—छौड़कर।...अच्छा ठीक है, लेकिन एक आदमी नीचे खड़ा है और वह कहता है कि सीढ़ी छोड़कर ऊपर चढ़ सकते है तो फिर हम तो पहिले से ही छोड रहेगे, चढ जायेंगे, तो वह चढ जायगा क्या ? नही चढ़ सकता। तो एकान्त से यह उत्तर देना कि सीढी छोडकर ही चढेंगे तो यह उत्तर सही न रहा। तो फिर कोई कोई कहे कि यह सही न रहा तो फिर यह कह लो कि सीढी पकड कर ही चढ़ेंगे तो कोई पहिली ही सीढी पर चढे और उसे ही पकडकर वह रह जाय तो क्या वह चढ पायगा ? नही चढ़ सकता। तो एकान्तमे वह सफलतामे नही बढ़ सकता। तो कैसे चढेगा ? पकडकर छोडना, ग्रहण करके छोडना, इसतरह से चढेंगे तो ऊपर चढ़ जायेंगे। पहिली सीढ़ीका ग्रहण किया, उसपर चढें, फिर दूसरी सीढीको ग्रहण किया, उसे छोडा, फिर तीसरी सीढ़ीको ग्रहण किया उसे छोडा, इसतरह हर सीढी को ग्रहण करे फिर छोडे इसतरह से वह ऊपर चढ़ जायगा। तो ऐसे ही समझिये कि जो लोग यह कहते कि व्यवहार तो हेय है, हम तो पहिले से ही छोडकर रहेगे, तो क्या वह पार पा सकेगा ? और कोई कहे कि व्यवहार से ही पार होता है तो हम तो व्यवहारको पकडकर ही रह जायेंगे। हम तो इस व्यवहारको न छोडेगे, तो क्या वह मुक्ति पा लेगा ? नही पा सकता। तो उसकी पद्धति यह हैं कि व्यवहारको ग्रहण करके छोडना, उसे छोडेंगे तो मिलेगा निश्चयनय, और निश्चयनयको पकडकर छोडेंगे तो मिलेगी अनुभूति। उसके प्रसादसे मुक्ति प्राप्त होती है। तो जीवादिक ७ तत्त्व कहे गए है व्यवहारसे और निश्चयसे एक ही तत्त्व है, अखण्ड, एक, अभेद, अवक्तव्य। एक शुद्ध ज्ञायक स्वभाव।

व्यवहारबिना परमार्थकी भी अगम्यता—देखो किसी भी चीजको अगर कहेगे तो कहनेके साथ ही उसमे भेद हो जाते हैं। करें क्या ? अच्छा उस अखण्ड निश्चयनयके विषय से बतलाओ तो सही, ज्ञायकभाव, अरे तो ज्ञायकभावका क्या अर्थ है ? ज्ञायक मायने जानने वाला, तो यह इसके ज्ञानको ही तो कहा, फिर कैसे वह अखण्ड हो गया ? आत्मा अनन्त गुणात्मक है। उनमें से हमने एक ज्ञानको लिया तो अखण्ड कैसे लिया ? तो भाई कोई चारा नही है व्यवहारको छोडकर निश्चय को बतानेका कोई साधन नहीं है। कुछ तो मुख से बोलना ही पडेगा। कुछ बोला तो चलो वह एक धातुका शब्द है, वह एक अर्थको हीं बतायेगा और हैं अनेक अर्थ, अनेक स्वरूप, अनेक गुण। तो व्यवहारसे भले ही एक शब्द द्वारा

कहा है मगर यह तो सब इस ज्ञानीकी कला है। अपने अभिप्रायमे समग्र वस्तुको लावो। देखिये अभिप्रायकी बडी कीमत होती है लोकव्यवहारमे भी अगर मां किसी कारणसे अपने बच्चे को कुछ भला बुरा भी कह दे, पीट दे तो भी उसका अभिप्राय निर्मल ही रहता है। मानों बच्चा छत की मुरेडी पर दौड रहा हो जहा से जरा भी पैर फिसले तो गिर कर मर जाय। तो उसे वह मा गुस्सा में आकर थप्पड़ भी मारती है और भला बुरा भी कहती है। अब उस मां का अभिप्राय तो उस बच्चे के हितका ही है इसलिए उस मा को कोई बुरा तो नही कहता ? अगर कोई दूसरा उस बच्चो के साथ वैसा ही व्यवहार करदे तो लोग उसे बुरा कहेगे। तो इस अभिप्राय की बड़ी कीमत है तो जिसका प्रमाण का अभिप्राय है वह निश्चयनय की बात को ही एकदम बोले इसमे दोष नही है और जिसका प्रमाणका अभिप्राय नही वह निश्चयनय की बात बोले तो वहां दोष है। इसीलिए प्रवचनसार मे लिखा है कि जो पुरुष परद्रव्यका प्रतिपादन करने वाले व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ हो और निश्चयका आलम्बन लेकर मोहको दूर करे वह पुरूष उस शुद्ध आत्माको प्राप्त कर सकता है। कितना नपे तुले शब्द है एक आध्यात्मिक महर्षि के।

शुद्ध जीवत्व—इस समय ७ तत्वो को बताने वाले व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होकर आज निश्चयनयकी बात को सुनो। देखिये–भूतार्थका आश्रय करने वाले जीव ही सम्यक्त्व पाते है, और भूतार्थ से ही इन ७ तत्वो को जाने तो सम्यक्त्व प्राप्त होता है। ७ तत्वों को जाने अनेक प्रकार से जाने और जानकर उनका मोड ऐसा बनाये कि भूतार्थका आश्रय हो जाय। जैसे जब जीव को जाना, ये नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, कीडे मकोडे ये जीव हैं, व्यवहार से जाना परद्रव्व उपाधि और उसका सन्निधान पाकर औपाधिक भाव के रूप मे समझा, जाना। अब इस ही जीवतत्वको भूतार्थ मे ढालकर तो देखिये ये सब जीव क्या है मूल मे ? एक ज्ञानस्वरूप अखण्ड, एक ज्ञायकस्वरूप। वह ही मूल है। और सब पर्यायो मे चलकर भी अपने उस एक मूल चैतन्यभाव को कोई भी नही छोड़ सकता। तो इन सबमे भूतार्थ से देखे तो एक ही शुद्ध ज्ञानमात्र शाश्वत अन्तः प्रकाशमान वह जीव है, यह जीवका स्वरूप कह रहे है। देखो वह जीव न तो कषायसहित है और न कषायरहित है। जीवका स्वरूप क्या ? जीवन कषायसहित है और न कषायरहित है, किन्तु ज्ञानमात्र, इसमें भी भेद पड गया तो यो सोचो, जो जाना गया सो ही है वह इस समय आपकी जिज्ञासा हो रही हो कि जीव कषायसहित नही है, जीवका स्वरूप कषायसहित होना नही, यह बात तो ध्यान मे आ रही होगी, क्योकि कषाय अशुचि है, अपवित्र है, और नैमित्तिक है वह स्वरूप नही है जीवका। कषायसहित होना जीवका स्वरूप नही।

पर यह कैसे कहा गया कि कषायरहित होना जीवका स्वरूप नही, चि त मे बात आरहा होगी। एक बात आपसे यही पूछते है – बताओ यह चौकी जिसपर कूड़ा पडा है, बीट पड़ी है, इसका स्वरूप क्या है ? बीटसहित होना चौकी का स्वरूप है या बीटरहित होना चौकी का स्वरूप है ? कचडासहित होना जीवका स्वरूप है या कचड़ा रहित होना जीवका स्वरूप है ? यह बात तो जल्दी कही जा सकती कि बीटसहित होना चौकी का स्वरूप नही, लेकिन कचडारहित होना भी जीवका स्वरूप नही। बीटरहित होना भी चौकी का स्वरूप नही बोटरहित कहकर तो आपने चौकी की कोई बात बतायी क्या ? चौकी की निजकी बात तो कुछ नही कही। यह ही तो कहा कि बीट से रहित। चौकी की निजकी मूल कार की बात तो इस मे कुछ नही आयी, तो कहा बना चौकी का स्वरूप ? एक बात अब जरा यहा देखिये—कषायसहित होना जीवका स्वरूप नही। इसको समझने के लिए ज्यादह कहने की आवश्यकता नहीं पडती। पर कषायरहित होना चौकी का स्वरूप है तो कषाय-रहित कहकर आपने जीवकी गाँठकी, मूल की कोई चीज कहा क्या ? जीवकी मूलकी, गाठ की कोई चोज आपने नही कहा। आपने तो एक परभाव, कषाय, उससे रहित, यह ही बात कहा, तो जीवका स्वरूप तो बना। पहिली बात तो यह है। दूसरी बात जो शुद्ध तत्व के देखने का अनुरागी है, शुद्ध जीवतत्व के मायने पर्याय की शुद्धिकी बात नही कह रहे, किन्तु पर से रहित और निज मे तन्मय, उसे कहते है शुद्ध (आजका विषय ध्यान से सुनो, जितना बने ध्यान लगाओ) हम उस शुद्ध जीवकी बात कह रहे कि जैसे आप किसी को शुद्ध दूध कहते है। किसको ? चाहे जूता पहिनकर दूध दुहा गया हो, चाहे बिना नहाये दुहा गया हो, चाहे बछडे के चूसे थनो के बिना धोये दुहा गया हो, जिसमे पानी की एक बूंद भी न मिली हो उस दूध को शुद्ध दूध कहते हैं। हम यहा व्रतियो के शुद्ध दूध की बात नही कह रहे, हम कह रहे पदार्थ की शुद्धि की बात। पदार्थ मे कुछ जोडा जाय, कुछ तोड़ा जाय, जोड तोड से रहित का वर्णन शुद्ध वर्णन है। अगर उस दूध मे पानी मिल जाय तो वह अशुद्ध हो गया। (द्रव्यदृष्टि से शुद्धि की बात कह रहे हैं)। उस दूध का क्रीम, मक्खन मशीन से निकाल दिया जाय तो वह भी दूध अशुद्ध है क्योकि उस दूध में पानी जुडा अशुद्ध, सार निकाल लिया तो अशुद्ध, ऐसे शुद्धकी बात कह रहे हैं, ऐसे शुद्ध जीवको परखना चाहिए। मगर कुछ नादान लोग जरासी बात सोचकर कहने लगते कि मैं सिद्ध शुद्ध हो गया देखते है कि कौन सी शुद्धि है। जैसा चाहे काम करना, उसमे बाधा आये ऐसा शुद्ध मानते है तो कहते है कि मैं तो सिद्ध समान शुद्ध हूँ। अरे सिद्ध समान शुद्ध हो, मगर उस सिद्धमे जो पर्याय शुद्ध हुई उसके समान शुद्ध नही, किन्तु उस सिद्ध मे

पर्याय शुद्ध हुई उसके समान शुद्ध नही, किन्तु उस सिद्ध मे जो जीवत्वभाव है द्रव्यदृष्टिकी,
उसके माफिक शुद्ध है । तो दृष्टिसे निरखनेकी बात अलग है

निज अन्त.स्वभाव (शुद्ध स्वभाव) के आश्रय से शुद्धताका विकास:—अब एक सम-
स्या आ जाती है कि अशुद्ध पर्यायका आलम्बन लेनेसे तो शुद्धि प्रकट नही हो सकती ।
अशुद्ध पर्याय, रागद्वेषादिक भावोका सहारा लेनेसे, उसको दृष्टिमे रखनेसे तो शुद्ध पर्याय
प्रकट नही होती, इतना तो शुद्ध पर्याय प्रकट नही होती, इतना तो ठीक है, और शुद्ध अभी
हम है नही, और जो शुद्ध है सिद्ध भगवान, अरहत भगवान, वह है परद्रव्य । वह बहुत दूर
रहते है, अपने प्रदेशोमे रहते है, उनका आश्रय हमकर सकते नही तो शुद्ध होनेका और उपाय
क्या रहा ? देखिये तीन बाते सामने आती है, मैं वर्तमानमें अशुद्ध हूँ । रागद्वेषादिक होते है
तो अशुद्धका सहारा लेनेसे शुद्धता न प्रकट होगी । शुद्धमे अभी हुआ नही, और, जो शुद्ध
है अरहंत सिद्ध वे हैं परद्रव्य । जैसे आप हमसे अलग है, मैं आपसे अलग हूँ नारी एक चीज
तो न होगी एक द्रव्य तो नही है, ऐसे ही अरहत सिद्ध भी परजीव है, परद्रव्य है, उनका
आश्रय नही लिया जा सकता, क्योकि एक वस्तु परवस्तु का न कर्ता है और न व्याप्यव्यापक
भाव है, उससे कोई सम्बध नही बनता । तो कैसे शुद्धि मिले ? यो शुद्धि मिले कि अपने आप
मे जो द्रव्यदृष्टिकी शुद्धि है उसको ज्ञानमे लेनेका अधिक प्रयास करें । उसके लक्ष्यसे, उसकी
दृष्टिसे, उसके आश्रयसे ही शुद्धि प्रकट हो जाती है । उस द्रव्यशुद्धिकी बात कह रहे हैं ।
वह शुद्ध द्रव्य देखना है । ७ तत्त्वोकी बात जानो, इन ७ तत्त्वो के परिचयसे बहुत सहारा
मिलता, हमे उस शुद्ध भूतार्थ तक ये परिचय पहुचाते हैं ।

निश्चयनय व व्यवहारनयका उपकार जीवोमें सार जीवत्व का प्रकाश.—अच्छा देखिये
निश्चयनयके आश्रयका महान उपकार है । है, पर उस व्यवहारनयका उपकार तो समझिये
जरा । जैसे कोई मां अपने बच्चेको जिन्दा रखकर खुद मरकर अगर कोई बच्चा जिन्दा
रहता है तो मां अपने प्राण दे दे तो मां का उपकार है कि नही ? तो व्यवहारनय ऐसी ही
मा है कि निश्चयका मार्ग दिखा कर निश्चयके विषयको जताकर यह व्यवहारनय खुद मर
जाता है, तो जो अपना नाश करके और निश्चय और अनुभूतिका मार्ग साफ करा दे उस
मर मिटने वाले व्यवहारनयसे कुछ बात नही है क्या ? व्यवहारनय सब कुछ काम कराकर
निश्चयनय की और ज्ञान कराकर खुद मर मिटता है, फिर रह जाता है निश्चयनय । और,
यह निश्चयनय भी जब अनुभूतिका योग्य पात्र बन गया और अनुभूतिमे आने लगा तो निश-
चयनय भी मर जाता है । दोनो नयोसे छुट्टी होती है उस समयसार तत्त्वकी अनुभूतिमें तो
क्या कह रहे थे ? हा जीवको देखे, जीवमे जीव याने व्यवहारसे समझे गए जो अनेक प्रकार

के जीव समास, गति इन्द्रिय आदिकसे जो हमने जाना उन जीवोमे भी जीव तो यह है एक अखण्ड ज्ञायकस्वरूप।

अजीवमें जीवत्वका प्रकाश—परखिये अजीवमें जीव। अजीव बाहरी चीज हैं ना, अजीव कर्म है ना ? है। और कर्मका निमित्त पाकर जो झांकी हुई है विपाकको, वह भी तो अजीव है। जीवकी परिणति है, मगर भूतार्थका आश्रय कर रहे हैं, वह अजीव, रागद्वेष उठते हैं वे भी अजीव, जो आपके विषय हैं, विवेक उठ रहे हैं, युक्ति चल रही है। तर्क उठ रहे है, ये अजीव है। अरे तो जीव क्या है ? अरे इस अजीव मे भी जीव देखें तो सही। यह जीव नही। जीव तो स्वय वह है जो स्वयं अपने आपका सत्त्व रखता है। ये विचार विकल्प तर्क युक्तियां, ये हमारे ज्ञान, ये स्वतन्त्र निरपेक्ष अपना सत्त्व रख पाते हैं क्या ? ज्ञानावरणका क्षयोपशम निमित्त है, अन्य-अन्य बातोंका उदय निमित्त हैं। कुछ देखे तो सही, इस अजीवमे भी जीव। अच्छा एक चीज और भी निरख सकते। देखो जिस बातके समझनेसे, निरखनेसे अपनेको कोई हानिकी बात प्राप्त होती हो, वह सब निरखी जा सकती है, एकीभाव स्तोत्रमे यह बताया गया है कि हे भगवन ! हम आपका स्तवन कर रहें हैं और स्तवन करते हुए मानो यह मालूम हो रहा कि मै तुममे ही प्रविष्ठ हो रहा हूँ। सो यद्यपि यह बात मिथ्या है, मैं तुममे प्रविष्ठ नही होता मगर जिस समय मेरा यह भाव बनता है कि मैं तुममे ही प्रविष्ट हो गया हूँ उस समय मेरा हित हो जाता है। तो मिथ्या होने परभी हमारे कल्याणके काम तो आ गई हमारी बात। यद्यपि ऐसा नही होता, लेकिन आपमे मैं प्रविष्ट होता हूँ ऐसा जो परिणाम हुआ यह परिणाम एक बडा सन्तोष उत्पन्न करता है और एक शान्ति देने वाला है। अच्छा, जरा देखो तो अजीवमे जीव। अब यह दूसरी बात एक इससे पृथक कह रहे। कर्म अजीव हैं ना ? तो उसमे अनुभाग पडा है ना ? हा पड़ा है। और जब वे कर्म उदयकाल आता है और उसका अनुभाग खिरता है उस समय ऐसा लगता है कि मानो इस अजीवमे भी जान आ गई। तो यह सब जान उसका है। यह सब खाता जो जीवमे झलका है क्रोध, मान, माया, लोभ, विकार, कषायें वे सब अजीवकी है। कर्मकी है। वहां ले जावो उनको, वहा छोडो। और अपने आपमे विशुद्धि लावो। देखो जीवकी इन सब व्यवहारजीवोंमे रहने वालो शाश्वत एक जीवत्व भाव ज्ञानमात्र ज्ञायकभाव। अखण्डभाव देखो बड़ा फर्क पडता है। भेददृष्टिके व अभेददृष्टिके परिणाममे जिससमय आप मानो हलुवा खा रहे है तो उससमय आप यदि यह ज्ञान कर रहे है कि इसमे इतनी शक्कर पडी है, इतना घी पडा है, खूब सिका है...आदि नाना प्रकारके विकल्प करते है तो उससमय आपको विशेष स्वाद नही मालूम होता, और जिससमय आप अपनी आखे मीचकर उसके प्रति बिना किसी

प्रकारके विकल्प किए जब आप एक चित्त होकर डटकर खाते है तो उससवय आपको विशेष स्वाद मालूम होता है। तो ऐसी ही बात इस जीव तत्त्व की है। जब हम इस जीव तत्त्वके बारेमें गुणभेद करके, पर्यायभेद करके देखते है तब हमे उस जीव तत्त्वका यथार्थ स्वाद नही आ पाता। वह अनुभूति नहीं जगती, और जब भेद गुण पर्याय, सबके विकल्प छोड़कर एक सहज भावसे अपने आपमे जो एक शान्ति होती है, परिणति होती है, उसमे उस अखण्ड तत्त्वका पूरा स्वाद कहो, अनुभूति कहो, परिचय कहो, वह सब कुछ हो जाता है। तो उस जीव तत्त्वकी बात कह रहे। जीवमे जीव, अजीवमे जीव, और आंश्रवमे जीव। आजका विषय कुछ कठिन पड रहा होगा और कठिन भी नही है। क्योकि बात तो खुदकी है।

निज अन्तस्तत्त्वके सिवाय अन्य सब भावोकी अशरण्यतां—यहा प्रयोजन इतना लेना है कि हमने सबको देखा, सबका सहारा लिया, सबको शरण माना, सबका आश्रय लिया, मगर बाहरमे सबका आश्रय लेनेमे हमको धोखा ही धोखा रहा। पहिले सोचा था कि यह मेरा छोटा बच्चा जो गोदमे है, जिसका मुख देखकर खुश हो रहे थे, सोचा था कि यह बड़ा होगा तो यह मुझे सुख देगा, मुझे बुढापा मे यह काम देगा और जब वह बड़ा होगया तो इच्छा कषाय तो सबकी अपनी—अपनी है ना, उसे अपनी फिकर रहेगी कि दूसरेकी। गुरू जी एक घटना सुनाते थे कि एक नदीके किनारे किसी पेडपर एक बांदरी (बंदरिया) अपने बच्चेको लिए हुए बैठी थी। नदीमे एकाएक ही ऐसी बाढ़ आयी कि वह पेड भी पानीसे घिर गया। धीरे—धीरे वह पेडभी डूबने लगा। वह बांदरी अपने बच्चेको अपने पेटमे चिपकाये हुए थी। देखो दृष्टान्तामे सबसे अधिक मोह बांदरीका दिया जाता है। उसे अपने बच्चेसे इतना मोह होता है कि मरे हुए बच्चेको भी काफी दिनो तक अपने पेटमे चिपकाए रहती हैं। तो उस बांदरीकी बात कह रहे है। नदीमे पानी इतना बढ गया कि बचनेकी कुछ आशा न रही। तो अपने प्राणोकी रक्षाके लिए उस बादरीने क्या किया कि अपने बच्चेके उस जगह रखकर उसके ऊपर स्वय खडी हो गई। तो यही बात सबके लिए समझो सबको अपनी—अपनी पडी है, दूसरेकी किसे पडी ? जब वह बेटा मा की मदद नही करता तो वह आशा करने वाली माँ बहुत दु खी होती। हाय मैंने व्यर्थ ही जिन्दगी गुजारा, अब क्या हो रहा ? उसे ज्ञान हो गया कि हमने तो अपने मोहमे जिन्दगी गुजारा, अपने विकल्प किया, अपने राग किया, अपना मोह किया, अपनेको बरबाद किया। इस बच्चेके पुण्यका उदय था। हम न मिलते तो इसकी सेवाको लिए और कोई मिलता। किसका कौन पालन हार है। मैं तो अपनी ही परिणतियोको बनाता जाता हूँ। मे दूसरेका कोई एहसान नहीं कर पाता। विकार करता हूँ तो अपना, उपकार हूँ तो अपना ही करता, धर्मध्यान करता हुँ तो अपना ही

करता। दूसरेके लिए मै कुछ नही करता। ऐसा जो कोई सोचे उसका दुःख दूर हो जायगा। अनेक परका सहारा लिया मगर किसीभी सहारेने अपने आपको कोई शान्ति प्राप्त नही हुई। तब क्या करना ? अरे उस अरहत का सहारा लें, उस अपने आपमे बसने वाले, भगवान आत्माका सहारा ले, सहज लेनेसे कर्मकलक सदाके लिए मिट जायेंगे, मुक्तिका लाभ होगा। तो भाई परमार्थ निश्चयका सहारा लेने वाला तो जरूर ही जगसे पार हो जाता है। अगर निश्चयका सहारा लेने योग्य बने तो उस निश्चयका सहारा लेने योग्य बनने के लिए यह व्यवहारनय काम करता है। तो व्यवहारनयसे कहे गए इन जीवादिक ७ तत्त्वोमे से पर-मार्थ तथा जीव तत्वको परखनेकी बात है, उसका आश्रय लो। देखो गप्पमे तो कुछ मिलेगा नही, याने बोलने वाला ही गप्पी हो सो बात नही, सुनने वाले भी गप्पी हैं। यह ख्याल न करे कि सिर्फ कहने वाला ही गप्पी है, सुनने वालाभी गप्पी है। तो गप्पमे तो कुछ काम बनेगा नही। साहस बनाना होगा कि जब मेरेको मेरा शरीर भी कुछ नही है तो अन्य वस्तु मेरेको मेरी क्या है ? कुछ भी नही है। उस ओरकी उमंग छोडे। गृहस्थ हो तो जो सहज होता है अपना कर्त्तव्य करो मगर उसमे मुग्ध मत होवो।

आस्रव तत्त्वका परिचय—भूतार्थ विधिसे ७ तत्त्वोका निरखना सम्यक्त्वका कारण होता है। इन सात तत्त्वोमे से भूतार्थ विधिको जीव और अजीवके सम्बन्धमे कहा गया था, आज आश्रवके सम्बन्धमे सुनो। चर्चा चाहे थोडी लगे, मगर जितना दिमागी बल है एक चिन्तनका बल, सबको जोडकरके इस बातको सुनो। यह बडे कामकी बात है। यह जीव कष्ट सहता फिर रहा है। एक बार भी कष्ट से छूटनेकी विधि जान ले, उसकी श्रद्धा हो जाय, फिर इसपर कोई जोर न पडेगा। सब बाते सहज आसानीसे होती चली जायेगी। पर एक बार मार्ग तो देखलें। आश्रव तत्त्व है बन्धका उपाय, लेकिन बन्धके उपायको सही तौर से अगर जाने तो मोक्षके उपायका मार्ग मिल जाता हैं। आश्रवके मायने है कर्मका आना, कर्मका प्रकट होना। जहा था वही कर्मत्वकी झाकी हो गई, दर्शन हो गया, चूकर आ गया, उसका नाम हे आश्रव। आश्रवको हम तीन विधियोमें देखे। (१) भावश्राव, (२) द्रव्याश्रव (३) उभयाश्रव। भावाश्रवके मायने यह है कि जीव स्वय तो है स्वच्छ ज्ञानस्वरूप, ज्ञाना-नन्दमय पवित्र, ऐसी शक्ति वाला है। उस स्वभाव मे विभाव के आनेको भावाश्रव कहते हैं। जब भावाश्रव लदा हुआ है तो हमे स्वभावकी सुध या मग्नता नही हो पाती। यो समझिये एक दृष्टात लो कि दर्पणके सामने लाल कपड़ा किया तो वहा कहनेमें ३ बाते आयी (१) कपडेमे लालिमा आयी (२) दर्पणमे लालिमा आयी और (३) थोडा यह भी कह सकेंगे कि [illegible] कपडोकी लालिमा आयी। यद्यपि यह बात अधिक नही फबती, क्योकि एक क्षेत्रा—

वगाह नही है यह अन्तर है इस दृष्टान्तमें, मगर तीन बातें समझने को मिल रही है। कपडे की लाली, दर्पणकी लाली, और दर्पणमें कपडेकी लाली। तीसरी बात पूर्ण व्यक्त दृष्टान्तमे न आयगा। उसका कारण है जीव और कर्मका एक क्षेत्रावगाह और दर्पणका और कपडेका एक क्षेत्रावगाह नही है, पर एक अन्दाज के लिए दृष्टान्त दिया है। इसी तरह आत्मा मे देखो एक तो आत्मा मे राग हुआ और एक कर्म मे राग आया और एक जीवमें कर्म-राग आया। तो जीवमे कर्मराग आया यह तो एक क्षेत्रावगाह बन्धन व निमित्तनैमित्तिक भाव व विपर्यावपयोभाव की अपेक्षा बात है। कही जीवके स्वरूपमे कर्मका प्रवेश न होगा। स्वरूप मे प्रवेश होनेका अर्थ तादात्म्व है और प्रदेश मे आ जानेका अर्थ एक क्षेत्रावगाह है। जैसे एक कनस्तर राख धरी है और उसमे पानी डाल दिया तो पानी राखका प्रवेश हो गया, मायने राखके प्रदेश के आजू बाजू प्रवेश हो गया मगर राख के स्वरूपमे पानी का प्रवेश नही, तो इसी प्रकार जीवके स्वरूप मे कर्मका प्रवेश नही है। कर्म अपने स्वरूपमे है, जीव अपने स्वरूपमें है, मगर प्रदेशमे प्रदेश है, मायने एक क्षेत्रावगाह है। जिस स्थानपर जीव है उसी स्थानपर कर्म है, यह एक क्षेत्रावगाह है। वहां प्रदेश में भी प्रदेश नही है मगर जिस आकाश-प्रदेश में जीव है उसी आकाशप्रदेशमें जीवके साथ कर्म भी चलते हैं। तो जीवमे रागद्वेष भाव के आने का नाम भावाश्रम और कर्म मे रागद्वेष प्रकृति अनुभाग आने का नाम द्रव्याश्रव और जीव मे कर्मके आनेका नाम है उभयाश्रव। तो जीवमें रागद्वेप आये।

भूतार्थविधि से आस्रव की निरख—अब भूतार्थ विधि से निरखते है, जीवमें रागद्वेष भाव आया, वह रागद्वेप जीवकी परिणतिमे आया, इस परिणतिका स्रोत क्या है? क्या यह परिणति कर्म से आयी है? जीवकी जो रागपरिणति है क्या वह कर्म से आयी है? नही। कहा से आयी? जीवसे ही आयी, जीवसे ही वह निकली। तो देखते-देखते जो निकले उसे गौण कर दो, जहा से निकले उसे मुख्य बनालो। इसे कहते हैं भूतार्थ विधि निकला क्या? रागद्वेष वह हुआ गौण। कहां से निकला? जीव से। वह कर दो मुख्य। और फिर उसके जीवमे भी यह विचारे कि यहां वह वास्तविक मूल जीव क्या है? यो भूतार्थ विधि से स्वभाव को भी देखते है तो स्वभावदृष्टिका मौका मिल जाता है। कर्म मे कर्मका कर्मत्व आना आश्रव है। वह आस्रव जीव से नही आया, कर्म से आया, तो वह कर्म क्या है? किसी लडके का जब आप परिचय करते है तो पूछते है कि भाई आपका नाम क्या है?.........अमुकचन्द...... ......आप किसके लडके हैं? ऐसा पूछने मे "किसके यह शब्द मुख्य हो जायगा और "लड़के" शब्द गौण हो जायगा। आपका नाम दीपचन्द, और आप किसके लडके? प्रकाशचन्द के। तो प्रकाशचन्द उसकी दृष्टिमे मुख्य

बना ना, तो इसी तरह आश्रव राग आया। किससे आया ? जीवसे आया, कर्म से नही आया। तो जीव मुख्य हो गया। देखो—भूतार्थ विधि से पर्यायो को भी देखा जायगा तो पर्याय गौण हो जायगी और द्रव्य मुख्य हो जायगा। फिर उस द्रव्य मे भी स्वभाव की निरख होगी। शब्द तो वही हैं जो आप रोज सुनते हैं। शब्द कठिन नही हैं, और बात भी खूब आत्माकी, आपके निजके घरकी चल रही है। लोक मे तो यह कहते कि आपको मेरे घर से क्या मतलब ? आप और बात करेंगे। आपको मेरे घरकी बात करने का क्या अधिकार ? लेकिन कोई दूसरे के घर की बात करता ही नही, जब करेगा तो अपने घरकी करेगा। जब घरकी खोटी बात करता है तब दु.खी होता है और जब घरकी अच्छी बात करता है तब सुखी होता है। यह आत्मा जो कुछ कर सकेगा वह अपने घरकी कर सकेगा। घर अपना कौन ? अपना जीवस्वरूप, अपना धाम, जो कुछ कर सकेगा अपने धामका कर सकेगा। पर धामका कुछ नही कर सकता। अब अपने धामका काम कोई खोटा करे, रागद्वेष मोह आये, उसमें चिपट गए, उनमे ही उपयोगरमालिया तो उसकी बरबादी हो गई, और जो विभाव हैं, परतत्व है, नैमित्तिक हैं उनको गौण किया, उनसे उपेक्षा की, स्वभावदृष्टि किया, अपने स्वभावदर्शनसे प्रसन्नता पायी, यह सब कुछ आनन्द ही आनन्द हो जायगा। इस लोक मे भी तो जब बडी अव्यवस्था हो जाती है तो कहते हैं अजी अपने-अपने घर को सम्हाल लो। तो वही बात यहा भी करलो, अभी अपने-अपने धामको सम्हाल लो।

ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित अन्तस्तत्त्वका ज्ञानप्रकाशमें प्रकाश:—देखो इस चमड़े की आखो से जो दिखता है, उसपर ही तो आकर्षित हो जायगा उसकी भव भव में मिट्टी पलीत है, और ज्ञाननेत्रसे अपने आपका जो दर्शन हुआ ज्ञानस्वरूपका, उसकी प्रतीति रहे, उसका विश्वास रखे तो भला हो जायगा देखने वाला कौन ? आख। जो देखने वाला है उसे तो देखो जरा। ये इन्द्रियो तो ऐसी एक अटपट सी है कि देखो आंख-आख को नही देख सकती। जीभ—जीभका रस नही ले पाती। हाथ-हाथ की गर्मी नही जान सकते। बुखार चढा हो तो अपने एक हाथ से दूसरा हाथ छूवे तब गर्मी मालूम होती है। अरे तुम्हे बुखार गर्मी है तो हाथ पैर फैलाये सीधे पडे रहो, दूसरे हाथ से न देखो तो क्या बुखार जान सकोगे ? नही जान सकते। ऐसी इसमे अशक्ति है। यह तो इस तरह है कि जैसे कोई हाल है, उस हाल मे पुरुष खडा है, उसमे खूब खिड़कियां है तो वह उन खिडकियोंसे बाहर की वस्तु देख लेगा। अब बताइये वहा देखने वाली खिडकिया हैं कि पुरुष ? पुरुष। उन खिडकियो के माध्यमसे पुरुष बाहर की चीजें देख लेता है। जैसे हालके अन्दर की चीजें

देखनेके लिए इन खिडकियो की जरूरत नही, इसीतरह यह शरीर एक हाल है, और इसके भीतर देखने वाला पुरुष आत्मा है और इस हालमे ५ खिडकिया है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। इस शरीररूपी हालके अन्दर रहने वाला पुरुष इन खिडकियोसे बाहरकी चीजे देख सकेगा। या अन्दरकी ? बाहरकी। अन्दरकी चीज देखनेके लिए तो इन खिड़कियों की क्या जरूरत ? अपने ही ज्ञानसे, अपने ही भावसे अपने आप मे खोज करे तो आपा दिख जायगा। अच्छा यह तो बात हुई अपनी खुदकी। और, क्योजी, अगर इस मकान की भीट ढा जाय तो फिर खिडकियो से देखनेकी जरूरत पडेगी क्या ? अरे वहा जब कोई आवरण ही नही तब तो फिर चारो तरफ पूरी तौरसे दीखेगा। तो इसीतरह भीतरका जो शरीर है वह विघट जायगा तो चौडा यह आत्मा चारो तरफ सर्व प्रदेशोसे बाहरका भी ज्ञान करेगा और अन्दरको भी ज्ञान करेगा। इतनी अद्भुत शक्ति है हम आपमे अपने प्रभुपर दृष्टि नही करते और यहाकी गली सडी चीजोमे चित्त लगाकर लडाई ठानते रहते है। और अपनी प्रभुताका ध्यान नही रखते है। मन्दिर किसलिए बनाया जाताकि दर्शन करने वाले लोग अपनी प्रभुताकी सुध करले। इसके अतिरिक्त और क्या ? प्रयोजन ? प्रभुमूर्ति का दर्शन करके अपनी प्रभुताकी सुध लावे कि ऐसी ही प्रभुता मेरेमे है। स्वरूपसे क्या अन्तर है ? जब कोई बिरादरीका जीवनवार (पगत) होता है तो उसमे चाहे कोई लखपती हो, चाहे कोई खोचा फेरने वाला गरीब हो, सब एक समान रहते है। वहां ऐसा नही होता कि परोसने वाला व्यक्ति धनिकको तो चार लड्डू परोसे और गरीबको एक। और, यदि कोई परोसने वाला व्यक्ति ऐसा करे तो वह सबकी निगाहसे गिर जाता है। जो व्यक्ति धनिक के ही समान गरीबका भी आदर करेगा वह लोगोकी दृष्टिमें प्रशंसनीय होगा। यह बहुत सज्जन है, इसके लिए सब लोग एक समान है। तो ऐसे ही सिद्धभगवानकी प्रभुता और अपने आपकी प्रभुता द्रव्यदृष्टि से समान है। उसका दर्शन करने के लिए मन्दिर है। कोई पुरुष तो लड़ झगड़ कर प्रतिमाके पास पहुँचता और कोई पुरुष धीरेसे दूरही खड़ा हुआ मूर्तिके दर्शन करके नमस्कार कर लेता तो यह बतलावो विशेष लाभ किसने उठाया ? जो पीछे ही रहा। भक्ति उसकी श्रद्धा उसकी अनुपम है। और जो लडझगड़कर बहुत भीतर जावे, मान भी करे, उसमे कलह या कषाय है तो उसमे तो धर्म होता ही नही है

धर्माधार तत्त्व:—धर्म है शान्ति, समता। अपने प्रभुस्वरूपकी सुध लें। बेकार जो फंस गया यह जीव मोहमे उस मोह बन्धनको छेद देना, यह बात बनेगी कैसे कि जो मोहादिक विकाररहित अविकारी ज्ञानस्वरूप है उसकी दृष्टि होना। जो परमात्मआरती आप लोग पढ़ते हैं—"ॐ जय-जय अविकारी, इसके प्रत्येक छन्दका अर्थ दोनो जगह घटित है—

वहा पचपरमेष्ठियोमे और यहा आत्मस्वभावमे, दोनो जगह घटित होता है, इस आरतीमे आत्मा उपासना और प्रभुउपासना दोनो ही एक साथ होती चलती हैं। क्या अन्तर है ? मैं यह हूँ जो है भगवान, जो मै हूँ वह है भगयमान। द्रव्यदृष्टिसे देखा। लेकिन कोई सर्वथा ही मानले कि हम तो भगवान ही हो गए तो वह तो गिरेगा। उसकी सावधानीके लिए आगे का पद—"अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।" लेकिन प्रभु, यह अन्तर ऊपरी है। यह जो आश्रव आया है, हमपर जो यह लद गया है यह ऊपरसे लदा है। स्व-रूपमे नही है। स्वरूपमे होता तो कभी निकाला ही न जा सकता था। ये आश्रव निज घर के नही हैं, ये परके फुसलाये आये हैं। इन्हे दूर किया जा सकता है। तो जब भूतार्थ विधि से देखते हैं तो पर्याय गौण हो जाती है, द्रव्य मुख्य हो जाता है, और फिर और आगे चले तो द्रव्यमे भेदवाली बात गौण हो जाती है और स्वभाव मुख्य हो जाता है।

क्रमिक सर्व उपायपूर्वक भी स्वभावदर्शनके लानेको पौरूषके शूरता—धर्मके लिए केवल एक ही काम किया जाना है। क्या ? अपने सहजस्वरूपका दर्शन करना, लेकिन जहा अनादिकाल से बुरी वासना लग रही है ऐसे पुरुषको इस स्वभाव दर्शनमे कैसे लगाया जाय, उसके लिए यह सब व्यवहार धर्म है। यो चलो, यो चलो। आज आप लोग इतने बडे हो गए, समझने वाले बन गए। निश्चयधर्म की भी समझ आ गई तो अब यह कहना कि व्यव-हार धर्म अत्यन्त हेय है, यह बात कैसे सगत बैठेगी ? देखो जब तुम लोग बच्चे थे, अपनी मा के साथ मन्दिरमे प्रभुके दर्शन करने आते थे। मा धोक देती थी तो तुम भी धोक देते थे। सोखे तो तुम वहा से हो प्रारम्भसे कोई कहे कि हम डाक्टर हो गए, ये जो प्रारम्भिक कक्षाये हैं ये सब हेय हैं, अरे हेय तो हैं ही, मगर प्रारम्भसे हो चलते रहे तभी तो धीरे धीरे आप एम ए मे पहुचे और डाक्टर बन गए। हेय तो है मगर हेय है ऐसा कहकर तो तुमने दूसरोका बिगाडकर दिया। खुद तो अच्छे हो गए, खुदके लिए तो हेय है, मगर उसका सामान्य जनोके लिए उपदेश करना-देखो पाठशालामे भर्ती होना हेय है और सबसे कहे भर्ती मत हो, भर्ती मत हो, यह हेय है, हमने अच्छी तरह समझ लिया है,…तो यह तो उनका बिगाड करना हुआ। तो वह निश्चयधर्म मेरेको प्रकट हो, इसके उपायमे व्यवहारधर्म है, तब ही कहा है "हेतु नियतको होई" व्यवहार नियतका हेतु होता है। पहुँचना कहा हैं अपने घर। मानलो किसीको यहा आपको अहमदाबादसे दिल्ली जाना है, तो जिस ट्रेनमें बैठते हैं उसे पहिले से ही तो नही छोड देते। जब दिल्ली स्टेशन पर आ जाते हैं तब उसे छोड देते है। फिर तो उस ट्रेनकी तरफ झाकते भ नही। अब अहमदाबाद वालेको दिल्ली पहुच जाने वाला यदि यह उपदेश दे कि अरेवह ट्रेन तो हेय है, हमने भली प्रकार समझ

लिया है तो जो दिल्ली पहुंच गया उसके लिए तो हेय है मगर जो यहां अहमदाबादमे पडे है उनका तो बिगाड कर दिया। तो निश्चय उपादेय है। निश्चय मोक्षमार्ग क्या है ? स्वभावदर्शन, स्वभावज्ञान और स्वभावरमण। और, व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है ? ७ तत्व का श्रद्धान, ज्ञान, संयम, आचरण, त्याग, व्रत।

भूतार्थविधिसे आस्रवतत्वका ज्ञान करनेमे एकत्वका प्रकाश— निश्चयविधिसे देखिये कि आस्रवका भूतार्थ पद्धतिसे ज्ञान करते करते कहाँ आया, स्वभाव पर। यही ही बात द्रव्यास्रवमे है। और उभयाश्रव जो है वह तो दो की कथनी वाली चीज है। उसमे भी एक एक की बात देखना होगा। तो भावाश्रव, द्रव्याश्रव भूतार्थविधिसे करे एक-एक हो जायेगे। फिर उनका विचार करना है। तो देखो—भूतार्थनयसे आश्रवतत्वका ज्ञान होना सम्यक्त्वका कारण है। देखो भाई, भीतरमे एक यह उपयोग जैसे एक कोई खाली छोटा लट्टू है, उसके साथ रूप वगैरह कुछ न हो, जैसे बैट्रीमे बल्ब लगाते है, उसको अगर यो मोड दिया जाय तो इस तरफ उजेला और अगर बाहरकी तरफ मुख कर दिया जाय तो बाहरकी तरफ उजेला। भीतर कुछ नही है, तो ऐसे ही यह उपयोग ज्योति है जाज्वल्यमान बल्ब है, प्रदीप है। इस उपभोगका मुख बाहरकी ओर करदे तो भीतर कुल अंधेरा और बाहरका आकर्षण। इस उपयोगको भीतर करले, बाहरकी बेमुखी और भीतर को सावधानी है, प्रकाश है, इससे यह निर्णय करले कि जब बाहरकी कोई चीज मेरे साथ रहेगी नही, कोई वस्तु मेरे साथ जायगी नही। वर्तमानमे भी शान्तिका साधन नही तो उस ओर ही आकर्षित क्यो रहते ?

मन, कर्ण, नेत्र इन्द्रियका दुरुपयोग न करनेकी सम्मति—बडा दुर्लभ नरजन्म है यह अगर यहां इस इन्द्रियका दुरुपयोग किया तो बुरी हालत होगी। जैसे मन मिला तो अच्छी बात चिन्तन के लिए मिला है, हित अहितका विवेक करनेके लिए मिला है। मनका लाभ भी यही है कि जो शिक्षा उपदेश ग्रहण कर सके। लेकिन इस मनुष्यके द्वारा विषयोमे लगाना बुरी बातोमे फसना, अगर यह काम किया, ऐसा अगर कोई निर्णय करने वाला हो तो ये कर्म कहेंगे—बेटा तुम्हे मनकी जरुरत नही है, क्योकि तुम्हे मन दिया, उसका दुरुपयोग किया इसलिए तुम्हे अब मन न मिलेगा तो अब क्या बन गए ? असज्ञीपञ्चेन्द्रिय बन गए। कान मिले थे सुनने के लिए-जिनवाणी सुने, उपदेश सुने, भक्तिके गीत सुने, भगवानकी स्तुति सुने, इसके लिए कान मिले हैं, अगर इन कानोको सनीमाके गीत या रागरागनी के शब्द सुननेमे ही अगर लगा दिया तो कानोका दुरुपयोग हुआ। तो कर्म तो यही कहेगे कि बेटे तुम्हे कानोकी जरुरत नही है इसलिए तुम्हें कानकी जरुरत नही है इसलिए तुम्हें कान न मिलेंगे। तो अब वह क्या बन गया ? चार इन्द्रिय जीव। आखे मिली इसके लिए कि तुम प्रभुदर्शन करो, स्वाध्याय करो, सज्जन पुरुषोके दर्शन करो, अच्छी-अच्छी चीजे देख

करो, मगर इसने सब बुरा ही बुरा देखा । रागका शरीर, सनीमाके गदे चित्र, और भी खोटी खातें देखी, तो निर्णय क्या हो जायेग। कि अब तुम्हे आखो की भी जरूरत नही मालूम पडती । इसलिए आखे न मिलेगी । तो अब क्या हो गये ? तीन इन्द्रिय जीव बन गए ।

नासिका रसना इन्द्रियका दुरुपयोगन करनेका संदेश—अब नाक की बात देखो । इसका तो हमे कोई खास समाधान नही मिला, यह तो हमे एक बेकार सी चीज मालूम होती है । हा इससे प्राणायामका काम करलो नासादृष्टि करलो या और भी कोई नाकका सदुपयोग हो सकता हो सो तुम जानो । मगर इस नाकका उपयोग गध सुगधमे न करें । लोग तो जरा जरा सी बातमे नाक भौंह सिकोडने लगते हैं, पर यह आदत ठीक नही है । यह नाक ऐसी बेकारकी चीज है कि यह लडाई भी करा देती है । अपने आप को विपत्तिमे डाले तो यह नाक डाले । और प्रभु दर्शनमे अगर बाधा देती है तो यह नाक बाधा देती है । नाकके मायने है अहकार अभिमान । खैर नाक मिली है तो उससे प्राणायाम करो और नाकसे घृणा की आदत छोडदो । जरासी कोई खराब चीज दिखी तो झट नाक सिकोडा और थूक दिया । अरे वह चीज तो बहुत दूर पडी है, उसे देखकर थूक क्यो आ जाता है? उसके प्रति ग्लानि क्यो आ जाती है ? तो जैसे उन गदी चीजोंके प्रति घृणा न करने तथा धीरतापूर्वक हटाने की बात कहा ऐसे ही धर्मात्मा, मुनिजन, त्यागीजन, उनकी सेवा करते हुए घृणा न लाना । जिसमे रूचि होती है उसमे कुछ घृणा तो नही होती । अगर कोई छोटा बच्चा जिसे गोदमे लिए हुए हो, सुन्दर बस्त्र पहिने हो, और वह ऊपर टट्टी करदे तो उससे कोई घृणा तो नही करता ? वह तो उसे उठाता, साफ करता । वह घृणा इसीलिए तो नही करता कि उसे उस बच्चेसे प्रेम है । तो ऐसे ही जिसे धर्मसे प्रेम है उसमे धर्मात्मा से प्रेम हुए बिना न रहेगा । जैसे मा अपने बच्चे की सेवा करते हुए घृणा नही करती ऐसे ही धर्मात्मापुरूष धर्मात्मापुरूषकी सेवा करते हुए घृणा नही करता । घृणाकी चीज बच्चेमे भी है और धर्मात्माके शरीरमे भी है । समान ही तो है, तब फिर जहा रूचि है, प्रेम है वहां घृणा नही होती । इस तरह बाहरी पदार्थोको देख लिया, उपेक्षा हो गई, कोई बात नही, वहाँ भी घृणा जैसी बात न लावे । क्योकि उपयोग बहुत बदलेगा । इसलिए वहाँ भी आत्माकी सुध लेनेका समय कम मिलेगा । रसना इन्द्रिय मिली है तो प्रभुके गुणगान के लिए मिली है । हम आपको अच्छी जिह्वा मिली है । दुनिया के अन्य जीवो पर दृष्टि डालकर देख लो, हम आप आज कितनी उच्च स्थितिमे हैं । पन्चेन्द्रिय भी हो गये, गाय,बैल भैस वगैरह हो गए तो उस लठ जैसी मोटी जीभ से कुछ बात कर सकते क्या ? वे वचन

बोल सकते क्या ? ये शास्त्रो के भावो को बोल सकते क्या ? याने कितनी ऊची स्थिति मे हम आप है। जगत के इन जीवो पर दृष्टि डालकर देखो और ऐसी ऊची स्थिति मे आकर हम इस आत्माभगवान पर ही हमला करने लगे, विषयो मे लीन होना, व्यसनो में फसना, यह अपने आपके भगवान पर ही तो हमला है।

निज आत्मदेव पर विषयाक्रमणका फल दुर्गति:—यो आपने आप पर ही हमला करने लगे तो उसका क्या फल होगा ? यह ही फल होगा कि अनादि से जिस गति मे थे वही फिर जायेंगे। निगोदमे थे निगोद फिर जायेगे। फिर क्या हाल होगा ? आज यह दुर्लभ मनुष्यभव पाया है तो यहा बहुत सम्हलकर चलने की जरूरत है, नही तो फिर वही दशा होगी जैसी कि एक चूहे की। कोई एक चूहा किसी साधु के पास रहता था। एक बार उस चूहे पर बिलाव झपटा, साधुने चूहे को आशीर्वाद दिया, बिडालोभव, अर्थात् तू भी बिलाव बनजा। तो वह बिलाव बनगया। उसेअब बिलावका डरन रहा। एकदिनउस बिलावपर कुत्ता झपटातो साधुने पुन आशीर्वाद दिया-स्वानोभव, अर्थात् तुभी कुत्ता बनजा, तो वहभी कुत्ता बन गया। एक दिन उस कुत्ते पर झपटा शेर, तो साधु ने आशीर्वाद दिया-सिंहोभव अर्थात् तूभी शेर बनजा। लो वह भी शेर बन गया। एक दिन उस शेर को बडी भूख लगी। सोचा कि यहां कोई है नही, किसे खाऊ, इस साधु को ही क्यो न खा जाऊ ? साधु ने जब शेरकी मनकी बात पहिचाना तो श्राप दिया-पुन मूषकोभव, अर्थात तू फिर से चूहा बन जा। लो वह फिर चूहा बन गया। तो हम आपकी भी तो यही दशा है। हम आप निगोद से निकल कर आगे बढ़ बढ कर आज मनुष्य हुए हैं। निगोद से निकले तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक बनस्पति हुए, वहा से निकले तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय हुए, असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय हुए, देव हुए,। और बडी दुर्लभता से आज मनुष्यहुए। इतना दुर्लभ मानव जीवन को यो ही व्यर्थ खो रहे है। अरे करना तो यह चाहिये कि कोई अलौकिक काम कर जाने का उमग रखे, जिससे मेरे को आत्मप्रकाश हो और सदाके लिए सकटो से छुटकारा हो।

स्नेह मे बन्धन की प्राकृतिकता—यह आत्मा अपने स्वरूप से स्वय निरपेक्ष रहकर आनन्दमय है, इसमे किसी प्रकार का कष्ट नही, किन्तु पर उपाधिका सन्निधान पाकर अशुद्ध उपादान हुआ। यह जीव रागद्वेष मोह भाव को करता है, इस कारण इसपर सारे सकट छा जाते है। यही दशा जीवकी अनादि काल से चली आ रही है। क्या होता है कि जीव रागद्वेष मोह करता है और नवीन कर्मवर्गणाये कर्मरूप बन जाती हैं। यहा एक कभी कभी कोई शंका कर लेता है कि कर्म तो पौद्गलिक हैं, उन पौदगलिक कर्मोका इस अमूर्त आत्मा के साथ बन्ध कैसे हो गया ? तो इस विषय मे सुनो। दो बातें कही जायेगी। पहिली

बात तो यह कि नवीन कार्माणवर्गणाओ मे जो कर्मत्व आता यह ही कहलाता है आस्रव, सो उस नवीन कर्म का, आश्रवका कारण है उदय मे आया हुआ कर्म और उदयसे आये हुए कर्मो मे नवीन कर्मो के आश्रवका निमित्त पना आ जाय, इसका निमित्त होता है रागद्वेष-मोह भाव। तो मूल मे बात तो रागद्वेष मोह की ही पक्की रही। रागद्वेष मोह होने से ही तो पुद्गलकर्म जो उदय मे आ रहे है उनमे ऐसा निमित्तपना होता है कि नवीन कर्मो के आस्रवको करले। तो देखो बन्ध परस्पर मे किस किसका हुआ ? निमित्त तो उदयागत कर्म है पर उदयागत कर्म सदा तो नही रहते। वे तो कुछ समय बाद खिर जायेगे। अर्थात् पहिले बाधे हुए जो कर्म सत्ता मे है उनके साथ नवीन कर्मोका बन्धन हुआ। और, चूकि स्वागत किया इस जीव ने। रागद्वेष मोह भाव करने के मायने यह है कि नवीन कर्मो के आने का स्वागत करना। तो भला जब स्वागत होता हो किसी का तो फिर उसके आने ठहरने मे क्या शक ? यह जीव स्वागत तो करता है रागद्वेष मोह भावोका। इसीके मायने है नवीन कर्मो के आनेका स्वागत करना। वेलकम।

जीव और कर्म की सासारिक मैत्री:—एक प्रकरण दिया है सर्वविशुद्ध अधिकारमे कि चेयाउ पयडीयठ्ठ उप्पज्जइ विणस्साइ, पयडीय चेइयठ्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ। एवबधोउ दोण्हपि अण्णोण्णप्पच्चया हव, अप्पणो पयडी येव ससारो तेण जाइए। देखिये इसके दो अर्थ हो गए और दोनो अर्थोमे तत्वकी बात निकलेगी, सीधा अर्थ तो यह है कि जीव प्रकृति के लिये उत्पन्न होताहै और नष्ट होताहै और प्रकृति जीवके लिएउत्पन्न होताहै और नष्ट होता है। प्रकृतिके मायने है कर्म प्रकृति। तो प्रकृतिके जीवके लिए उत्पन्न हुई और नष्ट हुई। इसके मायने यह है कि प्रकृतिकी जीवकी इतनी गहरी दोस्ती हो गई जैसे एक दोस्त दूसरे के लिए है, मिटता है, उत्पन्न होता है। इस तरह हो रहा है ना। यह प्रकृति जीवके भले के लिए दोस्ती नही करती, बल्कि बुरेके लिए हैं। ससार मे जो दूसरेकी बरबादीका कारण हो उसे कहते है मित्र। और जो बरबादीका निमित्त कारण बने वह तो कहलाता ही है शत्रु और मित्र दोनोही उस पुरूषकी बरबादीके हेतु हैं। लडको लडको मे दोस्ती हो जाय तो वे अच्छे बनेंगे कि बुरे ? वे तो प्राय करके बुरे ही बनते हैं। कही सनीमा देखने जायेंगे, कही लोफरपार्टीमे रहेंगे, व्यर्थ की गप्प सप्प मे रहेगे। कुशील सेवन आदिके खोटे प्रसगो मे रहेगे तो जैसे वह दोस्ती उनकी बरबादीका कारण है ऐसे ही जीव के साथ जो कर्मो की दोस्ती है वह भी इस जीव के बिगाड के लिये है। कर्म ही आते हैं, कर्म ही मिटते है और यह जीव उन कर्मो के लिए मरता मिटता है। कर्म इस जीवके लिए स्वय की बरबादी कर हैं। दूसरा अर्थ साफ है कि जीव प्रकृतिका निमित्त पाकर उत्पन्न होता, नष्ट होता याने

विकार जीवमे आता और प्रकृति जीवके परिणामका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, ठीक है। तो जब इस जीवने नवीन कर्मोका स्वागत किया, देखो जो बहुत ऊँचे हृदयसे स्वागत करने वाले लोग होते है वे काम करते हैं। मुखसे नही बोलते कि आइये। जो बनावटी स्वागत करता है वह कहता है कि अजी आइये, आपका स्वागत है। कभी देखा होगा, पति पत्नीकी कितनी घनिष्टता होती है पर जब वह पति कही बाहरसे आता है तो स्त्री मुखसे यह तो नही कहती कि आइये, आपका स्वागत है। वह तो पानी लायगी, खाना बनाकर खिलायेगी, सारे काम करेगी, उसकी स्वागत करने वाली मुद्रा होती है। तो जो स्वागतकी बात कहकर स्वागत करे उसमे हार्दिक स्वागतकी झलक नही होती। ऐसे ही यह जीव रागद्वेष मोह करके बहुत हार्दिक स्वागत कर रहा है नवीन कर्मोके आने का नवीनकर्म आये और सत्तामे बन्ध गए चूँकि स्वागत करने वाला जीव है तो वे बन्ध गए। जम गए। आप किसी महिमानका बडा स्वागत करेंगे तो वह तो वहाँ अच्छी तरहसे जम जायगा। और कोई स्वागत न करे तो वह महिमान कहा ठहरेगा? तो ये कर्म तो महिमान है। इस जीवने इस कर्म महिमानका स्वागत किया और ये कर्म महिमान इस जोवके घरमे बन्धकर रह गए। अब पडी इस जीवको आफत। सो उस आफतमे भी कुछ ऐसी बुद्धि बन जाती है कि उससे यह ही कहते बनता कि अब तुमसे कहते कि यहा से जावो? रहो तो फिर भी स्वागत ही स्वागत करता रहता है?

कर्मबन्धन का रूप.—अब यहा देखिये—बन्धन किसका साक्षात् है और निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध किसका किसके साथ है? गाय जगलसे चरकर जब अपने स्थानपर आती है तो उसे लोग किस तरह बाधते? क्या रस्सीके छोर से गायका गला बाधते है? अरे गला बाध दे तो गाय तो मर जायगी। वह गला नही बाधा जाता किन्तु रस्सीके एक छोरसे रस्सी का दूसरा छोर बाध दिया जाता है। पर वहा ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भावका सम्बन्ध है कि वहा गाय बँध गई। परतन्त्र हो गई। बस ऐसे हो जीव व कर्मका राग द्वेष मोहके कारण परस्पर मे निमित्त नैमित्तिक बन्धन हो गया। यह है आश्रवकी बात। अब इस आश्रव भूतार्थ पद्धतिसे हम कैसे देखेकि हमे स्वभाव दर्शनका मार्ग मिले? इस सम्बन्धमे कल कहा गया था, पुन एक बात और विचार कीजिए कि हम आश्रव का जो रात दिन स्वागत करते रहते है यह हमारी कितनी बडी भारी भूल है, इसपर कुछ चिन्तन करें। बाह्य पदार्थो को आश्रय बनाकर जो हम विकल्प रागद्वेषके परिणाम करते हैं वहां हम किसका घात करते? खुदका। दूसरेका घात नही करते।

विशुद्धभावोका प्रसाद—गुरुजी सुनाते थे कि दशलक्षणवर्षके दिनोमे एक घटना

हुई थी कि कोई दो सेठ थे। एक था बडा सेठ और दूसरा था छोटा सेठ। उन दोनोमे परस्परमे बडा विरोध था। और, इतना विरोध था कि वे एक दूसरेको देखना तक न पसद करते थे। एक वार क्या हुआ कि वे दोनो ही एक स्थानपर धर्मोपदेश सुन रहे थे। वहा यह वर्णन चल रहा था कि किसीसे विरोध रखना, विषाद रखना, विकल्प मचाना यह तो खुद की बरबादीके लिए है। कर्मबन्ध होता, उससे खोटे सस्कार बनते, जन्ममरणकी परम्परा बढती। पार्श्वनाथका जीव जो पहिले मरुभूति था। मरुभूति और कमण्ठये दो भाई थे। वहा मरुभूतिका कुछ कसूर न था, सारा कसूर कमठ का था। कमठका कसूर क्या था कि जब उसका भाई मरुभूति कही बाहर गया हुआ था तो कमठ ने उसकी स्त्रीके प्रति लालच किया था। यह खबर जब राजाको हुई तो राजाने कमठको राज्यसे बाहर निकाल दिया था। जब मरुभूति घर आया, समाचार सुना तो वह अपने भाईके पास पहुँचा। वहा कमठने तब तक पचाखितपका रूप रख लिया था। वह अपने सिरपर मन भरका पत्थर रखे हुए तपस्या कर रहा था। मरुभूति बडी नम्रतासे उस भाई के पास गया, चरणोंने लोट गया, यहाँ कमठ क्रोधमे आकर गिडगिडाया और वही पत्थर मरुभूतिके ऊपर पटक दिया। मरुभूति मर गया। कमठका यह वैर ८—६ भवोतक चला। ऐसी विचित्र घटना किसी भी तीर्थंकरको नही हुई। जब मरुभूतिका जीव पार्श्वनाथके रूपमे था तो वहा भी ध्यान करते हुएमे कमठने उपसर्ग किया था। तो किसीके प्रति रचमात्र भी विरोध रखना यह खुदके नुकशानके लिए है। यह पापके उदयका बुलावा देता है। तो बात यह कह रहे थे कि वे दोनो सेठ इस धर्मोपदेशको सुन रहे थे। वहां उन दोनो का चित्त एकदम पलट गया। दोनो ने अपने मनमे एक दूसरेका विरोघ खतम कर दिया। दोनोके मनमे आया कि हम जिसे अपना विरोधी मान रहे थे प्रवचन वाद उसके घर जाकर उससे माफी मागे सो वडा सेठ तो अपनी कारसे बैठकर चला और छोटा सेठ अपनी बग्धीमे बैठकर चला। रास्तेमें दोनो एक दूसरेको मिल गए और बिना कुछ बातचीत किए दोनोही एक दूसरेके गलेसे मिले। देखिये एक आत्मा का दुसरे आत्माके साथ कैसा बेतारका तार मिला कि दोनोके परिणाम एक साथ विशुद्ध हुए। देखिये—हम आपने दुर्लभ मानव जीवन पाया है तो इसमे हमे करना क्या है? भलाई, शान्ति, वास्तविक शान्ति प्राप्त हो। वह वास्तविक शान्ति कैसे प्राप्त हो? तो उसका उपाय आचार्य देव ने बताया है कि कषाय छोडो और अपना जो निजस्वरूप है, ज्ञानमात्रस्वरूप, उसकी ओर दृष्टि दो। अब गृहस्थीमे है तो करे क्या? सब कुछ करना पडता। सब कुछ करते हुए भी भीतरमे भावश्रद्धा निर्मल रहे। मेरा कोई विरोधी नही

विशुद्ध परिणाममे अन्यकी विपत्तिकी अभावना—देखिये—श्रीराम जब गृहस्थावस्थामे

थे तो उनको सीताके कारण ही तो रावणसे युद्ध करना पडा था। तो जब रावण शान्तिनाथ मन्दिरमे बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा था तो वहां श्रीरामके सैनिकोंसे पता पडा उन्होंने श्रीरामसे बताया कि रावण इससमय शान्तिनाथ चैत्यालयमे बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यदि उसकी विद्या सिद्ध हो गई तो उसपर विजय पाना आपको मुश्किल हो जायगा इस–लिए आप हमे आज्ञा दे। हम लोग उसकी साधनामें भग करे, विघ्न डाले ताकि वह विद्या सिद्ध न कर सके। तो वहा श्रीराम ने यही कहा था कि अरे भाई वह पार्श्वनाथ चैत्यालयमे अपना ध्यान कर रहा है तो उसके ध्यानमे विघ्न डालना ठीक नही। फिर आगे क्या हुआ सो बात आगे की है। देखिये आजकलकी राजनीति तो यही कहती है कि जिस चाहे तरहसे दुश्मनको मारो, साम, दाम, दण्ड भेद से छल से बलसे जैसे बने वैसे दुश्मन को मारो, पर श्रीरामके मनमे यह बात न थी। आखिर कुछ मनचले लोगोने रावणकी साधना मे विघ्न भी डालना चाहा पर न डाल सके, कारण कि वहा जहा पानी था वहा जमीन जैसा मालूम पडता था और जहां जमीन थी वहा पानी जैसा मालूम पडता था। आखिर वहा उन विघ्न डालने वालोको बडी विडम्बना ही हुई और रावणपर विघ्न न डाल सके। जब रावणकी साधनामे विघ्न डाला जा रहा था उससमय भी रावण अपनी साधनामे रच भी न चिगा था। ऋषियोने तो बताया है कि ऐसा ध्यान अगर मोक्षके बारेमे होता तो उसे मोक्ष अवश्य प्राप्त हो जाता। तो बात यह कह रहे हैं कि हम आप अनादिकालसे कैसी—कैसी योनियोमे भटकते आये, निगोद थे, स्थावर हुए, त्रस हुए, कीडा मकोडा हुए और आज बडी दुर्लभतासे मनुष्य हुए। तो यहा मेरेको कौन जानता और यहाके किसको जानता ? यह तो एक सनी-माका जैसा चित्र है। जैसे सनीमा के पर्देपर छाया आती है तो वहा कुछ है तो नही, सिर्फ छाया है, वहा किसीका किसीसे कुछ परिचय तो नही है इसीतरह हम आप सब भी इस संसाररूपी सनीमागृहमे एक फोटोरूप (छायारूप) है। किसका कौन ?

शुद्ध तत्त्वानुरागीको अशुद्धताकी असहिष्णुता—यहा जीवोकी जितनी भी परिणतिया हो रही है वे सब जीवकी परिणतियां है, लेकिन चूंकि वे नैमित्तिक है, औपाधिक है इसलिए अजीव कहा। तो यहा भी अजीव अजीवसे मिले, यो कहो। परमार्थ जीव तो भैया ? जो एक शुद्ध शाश्वत चैतन्य स्वरूप है। ऐसी बात सुनकर यह न समझना कि तब तो फिर यहा अजीवकी अजीवसे बात हो रही है, फिर तो जो होता है होने दो। अरे वहा बरबादी तो जीवकी हो रही है। यह तो भेदविज्ञानकी बात कह रहे कि जो क्रिया है, जो कुछ चीज है वह निरपेक्ष शुद्ध तत्त्व नही है इसलिए वह अजीव है। जैसे कोई स्वर्णकी पहिचान करने वाला सर्राफ जिसे शुद्ध स्वर्णसे प्रीति है उसके सामने मानोकोई ऐसी स्वर्णकी डली लावे

जिसमे रूपयेमे १५ आनेभर स्वर्ण हो और १ आनेभर खोट हो तो उसे भी देखकर वह यही कहता है कि क्या पीतल ले आये, क्या कूडा ले आये ? उसे जरा सी खोटके कारण कूडा जचता है, ऐसे ही जिस अध्यात्मप्रेमी ज्ञानी सतके एक शुद्ध अतस्तत्त्वकी रुचि है वह विकल्प, विचार, बुद्धि इनको देखकर कहेगा कि ये तो जीव नही है। ये तो अचेतन हैं। है वह चिदाभास, अचेतन नही है, और शुद्ध चैतन्य भी नही है। चिदाभास कहा है।

स्वयंके दु खमे स्वयका ही अपराध.—यहां यह ध्यानमे लावो कि हम जितना भी दु.खी हो रहे, जितना भी परेशान हो रहे, दूसरेकी गल्तीसे हम परेशान नही होते, बात यह सत्य है। यह बात अभी ध्यानमे आये तो अब भला है, जब ध्यानमे आये तब भला है। मगर बात यह पूर्ण सत्य है कि जगत के जीव जो भी दु खी हो रहे है वे अपने अपराध से दु खी होते हैं, दूसरेके अपराधसे कोई कभी दु खी हो ही नही सकता. क्योकि जीव द्रव्य तो न्यारे-न्यारे है। एक का दूसरेमे कोई प्रवेश नही, एक दूसरेमे कुछ सम्बन्ध रखता नही, तो दूसरेके अपराधसे कोई दूसरा कैसे दु खी हो ? कोई लोग कहने लगते अरे हम तो आपके सुखमें सुखी हैं और आपके दु खमे दु खी हैं। तो बतलाओ वे सच कहते है कि झूठ ? बिल्कुल झूठ बोलते है। तीन कालमे भी ऐसा नही हो सकता कि आपके सुखमे हम सुखी हो सकें और आपके दु खमे हम दु खी हो सके। आप कहेगे वाह देखनेमे तो आता है कि मानो कोई बडा प्रेमी रिस्तेदार गुजर गया। तो वहा तो वे घर वाले लोग दु खी हो ही रहे थे, अब वहा जाकर यह रिस्तेदार भी दूसरा अथिति भी दुखी हुआ, तो वह जो दुखी हुआ तो क्या उन घरवालोके दु खसे दु खी हुआ ? अरे उसको भी राग है, उसके भी उस तरहका विकल्प है, यह अपने विकल्पसे दु खी होरहे और फेरा करने वाले रिस्तेदार सैकडो आते हैं। उनमे यह भी पता नही पडता कि वास्तवमे दु खी कितने हैं। और, दु खी होनेका रूपक सभी बनाते है। बहुतसे रिस्तेदार तो ऐसे भी होते है जो ट्रेनमे खूब हसते हुए, तास खेलते हुए, आते हैं और जहा आपके अहमदाबाद स्टेशनमे उतरे, उस दु खी परिवारके घरके निकट आये कि रोने जैसी सकल बना लेते हैं। उनकी भी एक कला है। याने रोना न आये फिर भी रोकर दिखा दे यह भी तो एक कला की बात है। अरे कौन किसके दु खसे दु खी होता है ? जो भी दु खी होता है वह अपने दु खसे दु खी होता है। कोई कल्पना बनी, कोई चित्तमे बात सोचा बस उसके कारण दु खी हो रहा, कोई किसीके दु.खसे दु.खी नही हो रहा, कोई किसी के अपराधसे दु खी नही हो रहा, खुद खुदके अपराधसे दु खी हो रहा। आप कहेगे, वाह कोई मनुष्य बडा सज्जन है, किसीसे कुछ बोलता नही, फिर भी कोई दुष्ट पुरुष जब उसे छेड़ता है तो उससमय वह बडा दु खी होता है। तो देखो उसने तो कोई अपराध नही किया और

वह दुःखी हो गया, तो वह अपने अपराधसे कहां दुःखी हुआ ? उसे तो दूसरेने दुःखी किया सो भाई ऐसी भी बात नही है। जो वह दुःखी हुआ है सो अपनेही अपराधसे हुआ है। कैसे ? उसने अपनेमे यह विकल्प किया कि इसने मुझे गाली दी, यह विकल्प किया, यह अपराध है कि नही ? आत्माका स्वरूप तो है शुद्ध ज्ञानमात्र, उस स्वभाव में तृप्त हो, यह तो है इसकी सच्ची गैल, पर इसके अतिरिक्त जहां परतत्वमे लगाव लगाया, इसने मुझे यो कहा, विकल्प किया तो यह अपराध हुआ ना। तो अपने अपराधसे दुःखी होता। चाहे आप यह कहे कि कोई मुनि महाराज हैं और वे ऐसा विकल्प भी नही करते, कोई गाली देता, मारता पीटता, फिर भी विकल्प नही करते, फिर भी उन्हे परेशानी होती हैं, तो देखो दूसरेके दुःख देनेसे ही तो मुनि महाराज परेशान हुए। अगर मुनि महाराज परेशान हो रहे हैं तो वे भी अपने अपराध से परेशान हो रहे, दूसरेके अपराधसे नही। कैसे ? अरे कुछ प्रकारका उनके विचार बने तब तो दुःख महसूस करेगे। विचार ही न बनाये और विशुद्ध आत्मा ध्यानमे रहे तो वह कष्ट न महसूस होगा, और फिर उन्होने तो वह कष्ट न महसूस होगा, और फिर उन्होने पूर्वकालमें विकल्प बनाया है, ऐसा ही कर्मबन्धन हुआ कि उदयमे आया सो दुःखी हुआ। तो कहनेका अर्थ यह है कि जो भी पुरुष दुःखी होता है वह अपने ही अपराधसे दुःखी होता है, किसी दूसरेके अपराधसे कोई दुःखी नही होता।

अपनी स्वच्छतामें प्रयोगमें ही बुद्धिमानी—देखो बुद्धिमानी इसमे है कि अपने आपको स्वच्छ बना ले, अपने आपकी सम्हाल करले, अपने आपकी गदगी मिटा ले तो इसमे अपनी भलाई है, और जो दूसरो दूसरो का ही सब कुछ सोचे और अपने आपके कल्याणका कुछभी न सोचे तो उसका वह सोचना बेकार है उसमे वह ताकत भी नही है कि दूसरेका भला हो जाय, और खुदका तो भला हो ही नही रहा, इससे जरा अपना श्रद्धान निर्मल बना लो। क्यो परेशान होते ? यहीके विचारसे यही की सत्य श्रद्धासे, यहीके निर्णयसे अपने आपके ज्ञानप्रकाशसे सारे दुःख मिट सकते हैं। पहिला ज्ञानप्रकाश तो यह लावे कि मैं एक शुद्ध ज्ञानमात्र जीव तत्त्व हूँ। मै मनुष्य भी नही हूँ क्योकि मैं तो एक जीव हूँ, आत्मा हूँ। आज मनुष्यके नाटकमे आया हूँ, मिट जाऊंगा, और फिर दूसरे नाटकमे चला जाऊँगा, मैं मनुष्य नही हूँ, मैं तो आत्मा हूँ, और फिर बिरादरीमे लगाओ मैं अमुक बिरादरीका नही हूँ, मैं अग्रवाल, खण्डेलवाल आदिक नही, यह तो नाटक है, कर्मका ही खेल है, इस समाजमें मैं आ गया हूँ, पर यह मैं नही हूँ। मै तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, इसका क्या ? अरे मरकर किसी और जगह उत्पन्न हो गए या और जातिमें उत्पन्न हो गए, वहा यह भ्रम करना कि यह मैं हूँ, यह ही तो भ्रम लग रहा है। एक दृष्टान्त दिया है कि एक सूद्रीके दो बच्चे पैदा हुए तो

वह उन दोनो बच्चोको कपडेमे लपेटकर किसी पेडके नीचे चौहट्टे मे फेंक आयी । कुछ बात होगी, जो कुछ हो । अब पहिले तो उस पेडके नीचे गया एक शुद्र मानो चाण्डाल, उसे वे बच्चे पसद आये तो वह एक बच्चेको अपने घर ले गया । कुछ देर बाद वहा एक ब्राह्मण आया, उसने बच्चेको पडा हुआ देखा । बच्चा सुन्दर था । उसके कोई बच्चा भी न था सो वह उस बच्चेको अपने घर उठा ले गया । वे दोनो बच्चे पलपुष कर बडे हुए । एक तो पला था चाण्डालके घरमे और एक पला ब्राह्मणके घरमे पला हुआ बच्चा तो यह अभिमान रखता था कि मैं तो ब्राह्मण हूँ, मैं तो अच्छे कुलका हूँ, मेरेको शराब वगैरह गदी चीजे छूनी भी न चाहिए । उसका तो ऐसा संस्कार बना और चाण्डालके घरमे पलापुषा बालक यह अभिमान करे कि मुझे तो शराबका अधिकाधिक सेवन करना चाहिए, यहा तक कि शराबसे नहानाभी चाहिए । अब देखिये-एक ही मा के बच्चे थे, पर अलग-अलग पलने पुसनेसे अलग-अलग सस्कार बने, अलग—अलग अभिमान बना । तो यही दशा सब जीवोकी है । सभी जीवोका स्वरूप तो एक समान है, स्वरूपसे रँचभी भेद नही है । जो भगवानका स्वरूप है वही कीडा मकोडाके शरीरमे रहने वाले जीवका स्वरूप है, मगर कर्मोदयसे जो जहां पैदा हो गया, जो जहा पलापुषा, जिसको जो वातावरण मिला, उसने अपना अहकार बना लिया कि मैं तो हूँ ।

प्राप्त औपाधिकपर्यायमे सर्वश्रेष्ठताका अभिमान—अभी किसी ४—५ वर्षकी बच्चीसे कहो कि तू तो लडका है तो वह तो घृणा करके कहेगी-अरे मै क्यो लडका होता ? मैं तो लडकी हूँ । तो उसकी दृष्टिमे यह बात है कि लडकी होना अच्छा है । और, किसी छोटे लडके से कहो कि तू लडकी है तो वह भी यही कहेगा कि मै क्यो लडकी हूँ ? मैं तो लडका हूँ तो उसके मनमे है कि लडका होना भला है । एक शाहपुर ग्राम है मध्यप्रदेशमे, वहासे हम पैदल के रास्तेसे नैनागिरि जा रहे थे, साथमे और भी भाई थे । वहा एक चर्मकार (मोची) भी साथ हो गया । तो रास्तेमे चले जा रहे थे परस्परमे बातचीत करते हुए, ताकि रास्ता कटता चला जाय । अब तो उस चर्मकारका भी दिल खुल गयो सो हमसे वह खूब बाते करने लगा । वह भी खूब बाते कहे और हम भी । होते-होते हमने एक बात छेड दी कि भाई यह तो बताओ कि इन ब्राह्मण ठाकुर, बनिया, चमार, मेहतर आदिक भी जातियोमे सबसे बडा कौन है ? गप्पें ही तो हो रही थी । गप्पोमें ही मैंने उससे पूछा, तो वह सबकी बात काट-काटकर अपनी बात रखता जाय, और अन्तमे उसने यही कहाकि सबसे बडी जात तो चर्मकार (मोची) है । अच्छा देखो अब भी आप लोग सब जैन जैन हैं, अग्रवाल, खण्डेलवाल, जायसवाल, परवाल, गोलालारे, गोलसिंगारे आदिक जितने जितने भी जैन हैं वे सब एक समान

ही तो है, उनमे कोई अन्तर तो नही है, पर हम तो ऐसी सम्भावना कर रहे है कि इनमे हर एक कोई अपनी अपनी दृष्टिमे यही रखता होगा कि बस सबसे ठीक तो हम है। मान लो कोई शादी विवाहकी बातआ जाय खण्डेलवाल आदि किसी से कहेकि भाई हमारे यहा शादी करलो, तो वे आश्चर्य भरे शब्दो मे कहेगे—अरे इन भाइयोके यहा ? हम तो न करेगे तो बात यह बतला रहे कि जो जीव जिस कुलमे, जिस जातिमे जिस योनिमे उत्पन्न हो जाता है उसका अपने देहमे अभिमान हो जाता है कि यह मै हूँ। पर यह मै कुछ नही हूँ। बहुत नीचे डुबकी लगानी पडेगी और भीतर समझना पडेगा कि मै क्या हूँ। एक परमार्थ शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मतत्त्व। यह तो कीचड है, यह तो झंझट है, यह तो मायाजाल है, इससे तो ससारमे रुलना होता है। अपने अन्त प्रकाशमान उस कारण परमात्मतत्त्वको समझो, उससे नेह लगाओ उससे रुचि करो, यह हूँ मैं जीव, तो भला हो, जायगा। देखो भलाई के मार्ग पर कोई मिल जुलकर नही चला जा सकता। अकेले अकेलेमे विचार करके, चिन्तन करके अकेलेमे प्रकाश बनाकर यह चल पायगा, तो सूल बात यह है कि आश्रवरहित जो आत्माका परमात्मस्वरुप है चैतन्यमात्र, उसकी प्रतीति बनना चाहिए कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। यह शरीर मैं नही, मै मनुष्य नही, मैं अन्य-अन्य कुछ 'भी नही'। मै तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। ऐसी प्रतीति हो तो आश्रवका स्वागत न होगा। और जिसका स्वागत न होगा वह काहेको आयगा ? कर्मका हम स्वागत कर रहे हैं, कर्मके धनिष्ट बनते है और ससारमे फिर हमको रुलना पडता है इसलिए सावधानी रखे, रागद्वेष मोहका परित्याग करे और सब जीवोको एक समान समझे और एक निर्णय बनावे कि मै अगर बुरा विचार करता हूँ, बुरी कल्पनाये करता हूँ, विरोधकी बात करता हूँ, द्वेषकी बात करता हूँ, अहकार जताता हूँ या किसी के साथ छल करता हूँ तो इसमे मेरा ही बुरा होगा अन्य किसी दूसरेके अपराधसे मेरा बुरा न होगा। मै ही ससारसे बँध जाऊगा और हमे ही ससार मे कीडा मकोडा जैसी दुर्गतियोमे भ्रमण करना पडेगा।

मुक्तिके प्रोग्राममे ही हितका लाभ—इस ससारमे प्रत्येक जीव अकेला ही जन्मता है, मरता है, सुख दु ख भोगता है। हम आप सब लोगोकी ऐसी ही स्थिति है। किसी भी बाहरी पदार्थको देखकर मकान है, फर्म है, दूकान है, प्रतिष्ठा है, इज्जत है, सुन्दर शरीर है, बडे आरामके साधन है, इन सबको देखकर मनमे रच भी सतोष न लावे। इससे क्या होता है ? ये कुछ समयके लिए है, बादमे छोडकर जाना पडेगा। और जितने समयके लिए है उतने समय भी उसके आश्रयसे हम अपने उपयोगको उस ओर लगाते है, सो बेचैन होते रहते हैं। इनमें सारका नाम नही है। ऐसा जानकर एक ही निर्णय रखे कि बाहरी पदार्थो

मे हमे सन्तोषकी कोई चीज नही है। अब अपने आपको क्या करना चाहिए ? बाहरी पदार्थों से तो हमारा पूरा पडेगा नही। बाहरी परभावोके प्रसगमे तो मेरा गुजारा होगा नही, सब छोड़ना पडेगा। तब हमको अपनी शान्तिके लिए क्या करना चाहिए ? बहुत ध्यानसे एक भव मे एक यह निर्णय तो बनाले और उसपर चलनेके लिए कमर कस लें। बाहरी पदार्थोसे बिल्कुल उपेक्षा करे। जो होता है उसके जाननहार रहो। यहासे घटनासेकी अपने समान अपमान का निर्णय न करो। सम्मान अपमानका निर्णय इसमे करो कि मेरा आत्मा परमात्मस्वरूपकी ओर रहे और उसमे सन्तुष्ट रहे, तो वह है मेरा वास्तविक सम्मान, और अपने स्वभाव से चिगकर बाहरी पदार्थोमे रागद्वेष करके अपनेको अधेरे मे रखनो इसे कहते है अपमान। जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था बस परमात्मा होनेकी है। परमात्माका स्वरूप क्या कि ऐसा आत्मा स्वयँ जो कुछ है वही मात्र रह जाय, इसके साथ रागद्वेषका कीचड नरहे। आत्मा केवल जानन देखनहार रहे, विकल्पसे छूट जाय ऐसी एक निर्मल अवस्थाको कहते हैं परमात्मदशा हम आप इस परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर सकते है। सोचते हैं ना जैसे जीवन मे कि हमको अमुक काम करने को पडा है, अरे वह मेरा कोई लक्ष्य नही है। वह तो एक जीवन चलाना है इसलिए एक उपलक्ष्य है, मेरा लक्ष्य तो यह है कि मै कब परमात्मा होऊ कब रागद्वेष मोह भावसे मुक्त हो जाऊ।

सर्व जीवोसे अपनी विवक्तता निरखने वालेमे धर्मपात्रता—भैया आपका ससारके इन जीवोसे कोई सम्बध है क्या ? आज जो घरमे आ गए उनसे कोई लेन देनका सम्बध है क्या ? उनके आत्मामे कोई नाम खुदा है क्या कि ये मेरे अमुक हैं ? अरे जैसे सडकोपर चलते हुए आदमी एक चौहट्टे पर मिलते है तो वे कितनी देरको मिलते है? वे बिछुड जाते हैं, इसी प्रकार यह एक चौहट्टा है, मिल गए फिर बिछुड जायेगे। तो इतने समागममे या इससे थोड़े बहुत दूरके समागममे अपना सारा उपयोग उस तरफ लगा देनेसे बिगाड कितना है ? जिसकी कोई म्याद नही। कहो अनन्त काल तक भी ससारमे जन्म मरण करते रहे। देखते है कि कुत्ता बिल्ली कीडा मकोडा वगैरह कैसे कैसे दुखी जीव है, उनको देखकर यही तो ख्याल करना चाहिए कि यदि हम रत्नमय धर्मका पालन न कर पायेगे तो यही दशा हम आपको मिलेगी। तो क्या करना चाहिए ? पहिले यह निर्णय बनालो कि घर, परिवार, कुटुम्ब, इज्जत, सम्मान, ये सब मेरे लिए कुछ चीज नही हैं, इनसे मेरे जीवका कुछ हित नही है। पहिले तो एक यह निर्णय बनाये। अगर यह निर्णय न बन पाया और चित्तमे यह बात समायी हो कि मेरा ही तो घर है, मेरा ही तो कुटुम्ब है, यह अनोखा कितना है तो बस उसीके रह जायेगे। कुछ समय तक सयोग है। बादमे ससारका यह परिभ्रमण है। कुछ तो

चेतो। इन दुखों को पाकर ऊब तो गए ही होगे। अब तो इनसे मुख मोडो। और इन दुखोसे ऊबे हो तब एक निर्णय बनाओ कि मेरे लिए यह सब कुछ नही है। मेरे लिए तो मेरे पास मेरा धर्म है।

धर्मकी संवररूपता—धर्म क्या है उसकी बात कही जा रही है, लेकिन बहुत आसानीसे समझ जाये इसके लिए धर्मको १० प्रकारोमे विभक्त करके आचार्योंने बताया है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तत्त्य, त्याग, अकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य। और, ऐसी एक पद्धति भी सुझावमे दी कि भाईजिन दिनोमे कोई रोजिगारमे भी व्यस्तता नही है, विवाह शादीमे भी व्यस्तता नही है, ऐसे भादोके महीनेमे इनको करे, यद्यपि सालमे ३ बार कहापर्यू-पण गया है मगर भाद्रके महीनेमे ऐसा अवसर होता है कि कोई व्यवस्तता नही होती। रोजि-गार आदिकमे ही अगर उपयोग लगाये रहे तो भला बतलावो इस पर्वका लाभ क्या उठाया ? कुछ आरम्भ कम करे और धर्मकी उपासनामे अधिकाधिक रहे। धर्म नाम किसका है कि जो आत्माको दुखोसे छुड़ाकर उत्तम सुखमे पहुचा दे। तो क्या है वह धर्म ? जो आत्माका स्वभाव है वह आत्माका धर्म है। स्वभाव क्या है ? बस जानना देखना। रागद्वेष मोह करना स्वभाव नही, ये तो अधर्म है, और केवल जाननहार रहना, ज्ञाताद्रष्टा रहना यह धर्म है। धर्मपालन है ज्ञाता दृष्टा रहनेमे और अधर्म है मोह करनेमे। अपनी जिन्दगीका हिसाब भी लगाना चाहिए। रोज-रोज लगाओ तो बडा अच्छा है। उसीके लिए तो जाप देनेका समय रिजर्व किया गया है कि रोज जाप दो और उसमें अपना नफा टोटेका हिसाब लगाओ। मैंने रागद्वेष मोहमे कितना समय गुजारा और रागद्वेष न करके ज्ञाताद्दष्टा रहनेमे कितना समय गुजारा, इसका हिसाब लगाओ। रोज न लगाओ तो सालमें इन १० दिनोमे तोलगालो कि हमने साल भरमे कितना तो अधर्म किया और कितना धर्मकी ओर रहे। धर्म है बस ज्ञाता द्रष्टा रहो। लेकिन बाहरकी बातोमे क्रियाकाण्डोमे धर्मका पूरा रूपश्रद्धामे लेना है। लोग उसके पीछे लडते झगडते है। अरे वह तो धर्ममार्गमे लगनेके लिए एक साधनमात्र था। वह साक्षात् धर्म न था। साक्षात् धर्म तो आत्मामे ज्ञानका प्रकाश है। जानन देखन-हार रहो, रागद्वेष न करो, इसे कहते हैं धर्म। धर्म होगा तो सम्वर तत्त्व होगा। मोक्षशास्त्र के इस चतुर्थ सूत्रमे सम्वर तत्त्वका वर्णन चल रहा है। सम्वर हो तो धर्म बन गया और सवर नही है तो धर्म नही बनसकता। सम्वर कहते हैं विभावोको रोकना, याने नवीन कर्म न आने देना। उनके आश्रवका निरोध करना इसे कहते है सम्बर। वह सम्वर गुप्ति समिति धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहविजय, चारित्र इनके द्वारा होता है। ये भी एक साधन है। सम्वर तो एक सबसे निराली दशाकी अनुभूतिसे होता है। तो परखना है अपने आपमे कि अपना

शुद्ध स्वरूप क्या है ? शुद्ध स्वरूप है एक ज्ञानमात्र। पहिले मिथ्यात्वको छोड़े तब सम्वर होगा। मिथ्यात्वके मायने देहको मानना कि यह मै हूँ। बाह्य वैभवोको मानना कि ये मैं हूँ। हां देखो धर्मकी बात सही-सही सुननेमे, सही, सही बोलनेमे खुद अपने आपके स्वरूपकी ओर झुकाव करना पडता है। अगर स्वरूपकी ओर झुकाव न हो और चित्त कही बाहर ही बाहर डोल रहा हो तो धर्मकी बातका प्रवेश नही होता, इसलिए बाहरी बातोकी कल्पनाये तजकर जरा अपने आपके अन्दरमे तो देखो, शरीरमे नही हूँ। शरीरमे रहने वाला पिण्ड मैं नही हूँ, कर्म मैं नही हूँ, विषय कषायके परिणाम मैं नही हूँ। एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ। उस ज्ञानतत्त्वको निहारो, उसका अनुभव करो तो उससे सम्वर तत्त्व प्राप्त होता है। देखो जीवका लक्षण उपयोग बताया गया है। उपयोग एक जानन देखनकी परिणति है। जो जानता है, समझता है इसको कहते है उपयोग। तो उपयोग तो मेरा स्वरूप है। परन्तु उपयोगमें जो और झाकी उठती है, रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय कषाय इच्छा जो कर्मविपाक है वह कर्मकी झाकी होती है, वह मैं नही हूँ।

संवरतत्त्वकी धर्मरूपता—अब यहा दो बातोका निर्णय बनावे उपयोगमे उपयोग है और क्रोधादिक कषायो मे कषायें है, जो ज्ञानकी वृत्ति है, यहाँ जो उपयोगकी स्थिति है उसमे क्रोध नही पाया जाता। क्रोधमे क्रोध पाया जाता, ज्ञानमे ज्ञान पाया जाता। मैं तो ज्ञान-मात्र हूँ। मेरेमें क्रोधका प्रवेश नही, यद्यपि अभीइस आतमामे क्रोध है। हा तो देख लो। पानी और दूध मिल गया, पानीमे दूध नही, दूधमे पानी नही। स्पष्ट समझमे आ रहा होगा और ऐसा मिला हुआ है कि हम उसे अलग देख नही सकते, पर ज्ञान द्वारा समझ सकतेकि पानी मे पानी है और दूधमे दूध है। तो हमारे ज्ञानमे हमारे उपयोगमे कर्मविपाक की झांकिया चल रही है, प्रतिभास हो रहा है हम उसकी ओर जितना अधिक आकर्षित होते है उतना ही कर्मोकी बात बनती जाती है, उनकी सन्तान चलती रहती है, लेकिन उस कर्मविपाक मे मै ज्ञानस्वरूप नहीं हु। मुझ ज्ञानस्वरूपमे कर्म विपाक नही है। अलग करना बडा कठिन काम है। मगर समझ लेना सरल बात है। आटा गूनकर, रखकर, पानी मे वे सब आटा के कण भिग गए मगर वहा पानीमे पानी है, आटामे आटा हैं। कोई कहे कि अलग करके दिखाओ, तो कहाँ से दिखायेगे ? ज्ञानसे समझें तो समझ जायेंगे। ऐसे ही इस उपयोगका, इस कर्मविपाकका ऐसा सम्बन्ध बन रहा है कि वे एक ही प्रदेशमें है, परिणति भी एकसी हो रही। आटा और पानीसे भी अधिक सम्बन्ध हो रहा हे। परिणति मानों एक हो रही है फिरभी ज्ञानद्वारा समझले। कि ज्ञानमें ज्ञान है और कर्मविपाकमे कर्मविपाक है। ऐसेविपाकसे निराला अपने आपके स्वरूपको परख लेवें। यह एक इतना बडा वैभव है कि जिस वैभव

का फल है (३) लोक का अधिपति होना। यह सम्बर तत्त्वकी बात चल रही है। जब तक सम्बर नही होता तब तक मोक्षमार्ग नही, धर्म नही, मुक्तिके रास्तेमें लग नही सकते। तो अब इन बाहरी बातोंकी उपेक्षा रखकर अपने अन्दर यह चिन्तन करें कि बस मेरा स्वरुप मेरी दृष्टि, मेरा स्वरुप, इसका आश्रय, यह ही मेरे लिए शरण है।

अनधिकार चेष्टाका परिणाम असार संसरण—देखो भैया ! जो बात अपने अधिकारकी नही उसपर तो बुद्धि लगाये फिरते हैं और जो अपने अधिकारकी बात है उसकी ओर बुद्धि नही लगाते। अब अनाधिकार कोई हस्तक्षेप करे तो लोग उसका नाम धरते हैं। अरे यहां अनाधिकार यह हस्तक्षेप करने जा रहे इसपर कुछ भी संकोच नही करते। इन परवस्तुओंपर, इस देहपर, कुटुम्बके लोगोंपर, इनपर मेरा क्या अधिकार ? वे जीव हैं, स्वयं हैं। अपने आपकी सत्ता लिए हुए हैं। जैसे हम रुलते हैं वैसे ही वे रुलते हैं। स्वतन्त्र हैं। कोई अधिकार नही, तो उस कमाई पर, पैसेपर, वैभवपर यह दृष्टि लगाये हैं कि यह ही मेरे लिए सब कुछ है। और देखिये अपने आत्माके स्वरुपपर अपना अधिकार है। हम हैं, सदा रहेंगे, अमर हैं, कष्टहीन हैं, तकलीफका कोई काम नही है। अन्तर्दृष्टि करके देखो भैया, तो इस जीवको कष्टका कोई काम नही। सब सुखी हैं, सब शान्त हैं। सबमें अनन्त आनन्दके अभ्युदयकी शक्ति है। कोई दुःखी नही है। दुःख तो यों हो गया कि हम अपने कुलके काम से हट गए। जैसे कोई बडे उच्च कुलका आदमी हो और नीच काम करने लगे तो उसे लोग नाम धरते हैं, देखो तुम अपने कुलसे हट गए और खोटे काममें आ गए। तो यह ही बात यहाँ हो रही। हम अपने कुलसे हट गए। मेरा कुल है चैतन्य, चेतना, ज्ञाता दृष्टा रहना। इस कुलकी यह रीति है कि जानन देखनहार रहो, आगे मत जावो। जैसे अजायबघरमें दर्शक लोग देखने जाते हैं तो वहां यह नियम रहता है कि बस तुम देख लो, किसी चीजमें हाथ मत लगाओ। अगर हाथ लगाओगे तो गिरफ्तार हो जावोगे। इसीतरह यह जगतका सब अजायबघर है। अजायबघरमें सफेद मोर, बडा अजगर, बडे बडे शेर वगैरह ये कहां से आये? यह संसारका अजायबघर ही तो है। उस बडे अजायबघरसे पकडकर छोटे अजायबघर में रख लिया। तो इस छोटे अजायबघरको देखनेके लिए तुम क्यों उत्सुक हो? देखो यह कैसा बडा अजायबघर है, इसमें कैसे कैसे लोग हैं, कैसे कैसे जीव हैं, देख लो, इनको छुओ मत, इनमें राग मत करो, अपने मनको डुबाओ मत। पृथक् रहो। जहाँ राग किया तो इसका पहरेदार कर्म है, यह गिरफ्तार करेगा। राग करोगे, तो बंध जावोगे, विरागता करोगे तो छूट जावोगे, यह ही तो जिन आगमका संक्षेप है। रागद्वेष छोडो और अपने धर्मको सम्हालो। देखो जो पुरुष धर्ममार्गमें लगता है वह क्षमाशील होता है। उसके अन्दर क्षमाका गुण

प्रकट होता है। कोई तुरन्त अपराध करे तो या पहिले अपराव किया हो तो, अपराधीपर यह क्षमाभाव रखता है। जैसे कोई वडा काम करनेको पडा हो ना तो उस वडे कामको सम्हालनेके प्रसगमे कोई लोग अगर कुछ अपराध भी कर डालें, कुछ विघ्न भी करते हो तो उन अपराधोको भी वह क्षमा कर डालता है। आप लोग कोई वडा काम अगर करते हैं तो कोई विघ्न भी आये, कोई अपराध भी करे, कोई उसमे दुष्टता भी करे तो भी आप क्षमा करते जाते हैं, क्योकि आपको एक वडा काम पार पाडना है। तो इसीतरहसे ससारके सकटोंसे सदाके लिए छूट जाना, इसको आप कितना वडा काम समझते ? जगतमे कोई इससे भी बडा काम है क्या ? इतना वडा काम करने कोई चले तो यहा कितने भी विघ्न आये, कितने भी कोई अपराध करे, कितनी भी कोई वाधा डाले मगर उन सबके अपराधो को यह ज्ञानी पुरुष क्षमा करता जाता है, क्योकि उसकी एक धुन है कि मुझे मोक्ष जाना है, मेरेको परमातम स्वरूप पाना है। यह क्या है ? यह तो मामूली सी वात है।

सर्वाधिक प्रियतम सहज ज्ञानस्वभावकी आराधनकी श्रेयस्करता—हमको क्या करना है ? देखो आदत है राग करनेकी। तो इस प्रसग मे हम आपसे एक वात कहते हैं कि आप लोग कार करो, प्रेम करो, राग करो, खूब करो मगर एक शर्त आपको देते हैं जो दुनियामे सबसे अधिक प्यारा हो उससे प्यार करो, मगर ऐसी आदत न बनाओ कि प्यार किया फिर उसे बिगाड दिया, फिर प्यार किया, फिरउसे बिगाड दिया। तो ऐसा छोडने वाला काम न करो। जिसपर प्यार करो तो प्यार करते ही रहो और ऐसा आप तव ही कर सकते हो कि जो दुनियामे सबसे अधिक प्यारा हो उससे प्यार करो तो वह प्यार निभेगा और जो छोटे वडे प्यार होते उनमे यह वात न निभ पायगी। तो छटनी बनाओ कि दुनियामे सबसे अधिक प्यारा क्या है ? जरा खोज करो, अपने मनमे सोचो जिसे जो अधिक प्यारा हो सोच लो, फिर हम आपको वतायेंगे कि सबसे अधिक प्यारा क्या है ? देखो सर्वाधिक प्रिय वस्तुकी यह परिभाषा है कि जिससे बढकर और कोई प्यारा कभी भी न लगे उसे कहते है सर्वाधिक प्यारा। देखो-६—७ महीनेका या साल भर का जो बच्चा होता है उसे सबसे अधिक प्यारा क्या है ? अपनी मा की गोद। देखो यह वात सभीकी कह रहे हैं, हम आपभी तो कभी बच्चे थे। तो उस बच्चे को मा की गोद से बढकर प्यारी चीज और कुछ नही है। उसे कुछ भी सकट आये तो झट मा की गोद मे छिपकर अपनेको सकटरहित अनुभव करता है। तो उस बच्चे को सर्वाधिक प्रिय हुई अपनी मा की गोद। वही बच्चा बढकर जब ४-५ वर्षका हो जाता है तो अब उसे मा की गोद प्रिय नही रहती। उसे तो खेल खिलौने प्रिय हो जाते हैं। मां उसे पकड कर अपनी गोदमे बैठाना चाहती है पर वह बालक अपनी मा

मे छूटकर बाहर भागता है। खेल खेलने में उसकी रूचि हो गई। तो अब उसे खेल खिलौने प्रिय हो गए, माकी गोद प्रियक रहेगी तो जिसका प्यार बदल जाय उसे प्रिय वस्तु कह सकते क्या ? जो सर्वाधिक प्रिय चीज हो उसकी कभी बदल नही हो सकती। जो माने हुए प्यार हैं उनकी बदल हुआ करती है। वही बालक जब १०—१५ वर्ष का हो जाता है तो उसे खेल खिलौने प्रिय नही रहते। उसे पढाई प्रिय हो जाती है। जब स्कूल मे गणित सीखता है, जोड बाकीलगाता है तो उसे कितनी खुशी होती है। कभी किसी बालक से पूछा जाय कि बताओ ८ ८ बराबर कितने होते है। तो जब तक वह हिसाब लगा नही पाता तब तक दुखी रहता है, जिसे कहावत मे कहते हैं नानी मर गई, और जब वह हिसाब लगा लेता है ८ ८—६४, तो कितना प्रसन्न होता है। उतनी प्रसन्नता तो उसे लड्डू पेडा खाने पर भी नही होती। तो अब उस बालक को विद्या प्रिय हो गई। विद्या पढ़ने सीखने मे उसका मन लगता। वही बालक जब १८–२० वर्ष का हो जाता है तो उसे विद्या भी प्रिय नही रहती। उसको डिग्रीप्रिय हो जाती है। चाहे पढ़े चाहे चूल्हे मे जाय, पर पास होना चाहिए। सर्टीफिकेट मिलनी चाहिए, डिग्री मिलनी चाहिए। परीक्षा होने पर वह पता लगाता है कि कहां किसके पास कापिया गई, वह नम्बर बढ़वाने की कोशिश करता है। तो देखिये वहां उसे विद्या तो प्रिय न रही, डिग्री हो गई। वह जिस चाहे तरह से प्रयत्न करके डिग्री प्राप्त करता है। जब कुछ और बड़ा होता है, मानो २५ वर्ष का हो गया तो उसे स्त्रीप्रिय हो जाती है। वह विवाह करता है, और उस स्त्री से इतना अधिक प्यार होता है कि यदि कभी सास बहू मे झगडा हो जाय तो वह अपनी स्त्रीका ही पक्ष लेता है। तो अब उसे ही डी. लिट वगैरह की उपाधियों से प्यार हट गया। जब कुछ और बडा हुआ, कुछ बच्चे हो गए तो उसे सबसे अधिक प्रिय बच्चे हो जाते हैं, उसे अब स्त्री भी प्रिय नही रहती। कदाचित किसी बच्चे को स्त्री पीट दे तो वह स्त्रीपर नाराज होता है। अब उसका स्त्री से भी प्यार हट गया, बच्चों से प्यार हुआ। कुछ और बड़ा होने पर जब बहुत बच्चे हो जाते है तो उसे धन से प्यार हो जाता है, अब बच्चे भी उसे प्रिय नही रहते। ये सब बाते आपकी समझमे खूब आ रही होंगी क्योकि आप बीत रही हैं। अच्छा धन भी बढ गया। मानो वह बाबू जी आफिस में बैठे हुए हों, वहां घरसे फोन आया कि घर में आग लग गई, जल्दी आओ। अब वह बाबूजी बडी जल्दी–जल्दी दौडकर घर पहुचे। और दिन तो घर लौटते समय रास्ते मे रूककर किसीसे कुछ ही बातचीत भी कर लिया करते थे, उस दिन बिना कही रूके दौडते हुए गए वहां पहुचकर देखा तो सचमुच घरमें आग लगी थी वहा जाकर सब बच्चो को निकाला, सारा धन निकाला, पर आग अधिक तेज बढती

गई। एक बच्चा घरके अन्दर ही रह गया। वह न निकल सका। तो वह बाबूजी पास
खड़े हुए लोगो से कहते हैं भैया हम १०,०००) देंगे, कोई हमारा बच्चा घर से निकाल दो।
देखिए वहा बाबूजीको धन भी प्रिय न रहा। उन्हे प्रिय हो गई अपनी जान, अपने प्राण।
कदाचित उसी घटना मे उन बाबूजी को जाग जाय वैराग्य, दीक्षा ले ले, और अध्यात्म
साधना करते समय अगर कोई शेर वगैरह जंगली जानवर या कोई शत्रु हमला करदे, जान
लेले तो भी वह ज्ञानी प्राण जाने की परवाह नही करता। वह तो समाधि में, ज्ञानकी
साधनामे लीन रहता है। तो बताओ उसे सबसे प्यारा क्या रहा ? उसे सबसे प्यारा रहा
अपना ज्ञान। अब ज्ञान तक तो हम ले आये, इससे आगे बढकर अगर और कोई जानता
हो तो हमें बतावे। हम तो इतना तक समझ सके कि सबसे अधिक प्रिय चीज है ज्ञान।
इससे बढकर और कुछ प्रिय नही। जब ज्ञान मे दृष्टि जाती है तो फिर इसकी बदल
नही होती।

क्षमाशील होकर ज्ञानरक्षण करनेमे कृतार्थता—जो ज्ञान ज्ञानमे रमता है। तो वह
ज्ञान कही बाहर नही है उस ज्ञानकी मूर्ति तो आप लोग है। अपने ज्ञानको सम्हाल, बाहरके
रागद्वेष मोह भावको हटाओ तो वह ज्ञानका लाभ अपने आपमे स्वयं मिल जायगा। उसमे
किसी प्रकारकी कठिनाई नही है। देखो यह दुर्लभ मनुष्यजीवन मिला है, इसमे एक अपने
आपकी सम्हाल बना लेवे तो सब सम्हाल जाय। आजके दिनमे यह धारणा बनाये कि हम
क्षमाशील रहेगे। अगर कोई बात करे जो बलमे बडा हो, या धनमे बडा हो या इज्जतमे
बडा हो या किसी तरह बिगाड करनेमे समर्थ हो उसके प्रति तो सभी क्षमा रखते है। वहा
भी क्षमा नही है (मनमे कहते है) और कोई अपनेसे निर्बल हो उसके भी अपराधकी क्षमा
करदे तो उत्तम क्षमा है वीरका भूषण। ऐसी क्षमाकी बात चित्तमे आये तब तो समझो कि हम-
ने आज जीवनमे कोई बात प्राप्त की। तो सम्वरके उपायोमे एक बहुत आवश्यक सुगम
उपाय है यह उत्तम क्षमा। सम्यग्दर्शनके साथ-साथ क्षमा भी प्राप्त हो। ऐसी उत्तम क्षमा
भव भवके कर्मबन्धनोको काटनेमें समर्थ है नवीन कर्मोके आनेके रोकनेमे समर्थ है और
अपने को तृप्त करनेमे समर्थ है। कषाय करके कोई आनन्द न पा सकेगा। जो भी आनन्द
पा सकेगा वह कषाय छोडकर ही पा सकेगा। तो ऐसे कषाय भावोको दूर करके और अपने
आपके स्वभावकी सुध ले करके अपने आपमे आप तृप्त रहना, यह काम अगर इस जीवनमे
बन सके तो भैया समझो कि हमने कोई अलौकिक कार्य किया और यह न बन सका तो
संसारका जीवन तो सभी लोग पाते है सभीका जीवन है। उस जीवनसे क्या लाभ है ? जीवन तो जीवका जीवमे
भ्रमण है, रुलना है। उस जीवनसे इसका कोई लाभ नही है।

विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको लिए हुए हूँ। यह श्रद्धा करना आवश्यक है। तो ऐसा ही उपयोग निरन्तर बनाये, क्योकि वह उपयोन अगर यहा नही रमता है और उपयोग बाहरी पदार्थोंमे रमता है तो वहा सिवाय क्लेशके और कुछ नही है। जहा क्लेश है वहा कर्मबन्धन है, जहाँ आनन्द है वहा कर्मबन्धन नही है

आनन्दकी सुखदु.खातीतता—भैया ऐसा भी कहे तो कोई हर्ज नही ससारके सुखमे भी क्लेश ससारके दु खमे भो क्लेश, इसलिए सासारिक सुख को भी क्लेश और दु खको भी क्लेशके खातेमे जमा करं। सासरिक सुखको आनन्द खातेमे जमा मत करे। वह आनन्द नही आनन्द तो आत्मदर्शन, आत्मानुभव आत्मस्वभाव और आत्मरमणमे यहा जो कुछ एक परम सहज आल्हाद उत्पन्न होता है उत्कृष्ट विलक्षण, किसीके पूर्ण है किसीके कम है, वह कहलाता है आनन्द। उस आनन्द से कर्म झडते है। कष्टसे कर्म नही झडते। जैसे लोगोकी यह दृष्टि बन गई कि व्रत तप करनेमे कष्ट है और बेकार चीज है, उससे लाभ नही है, अरे जो व्रत तप करते हुए कष्टका अनुभव करता हो बात सही है, उससे लाभ नही है किन्तु व्रत तप करते हुएमे जो अपने भीतर आनन्द मानता हो, ज्ञानदृष्टिकी तृप्ति मानता हो वह आनन्द तो कर्मनिर्जराका कारण होता है। उपवासका क्या महत्त्व है, इस बातको वह ही तो समझ सकेगा जो ज्ञानपूर्वक उपवास रखता है उसका ऐसा चित्त होता है, ऐसा मन होता है कि जिमे उससमय एक बहुत अच्छा वातावरण मिलता है। व्रत, तय आदिक सम्यक्त्व बिना भी करे कोई तो भी पाप बन्ध बराबर तो न होगा। पापसे जो हानि है उससे तो बच जायगा, और, सम्यक्त्वसहित व्रत, तय, सयम बने तो वह मोक्षमार्ग पर चलेगा, उसमे मुक्तिका मार्ग बनेगा। तो देखिये बात है अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करनेकी मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरेमे इच्छा नही, इच्छा मेरा स्वरूप नही, इच्छा ही, परिग्रह है इच्छा ही बन्धका कारण है। मेरेकिसी भी बाह्य पदार्थमे इच्छा नही है। यह बात तब बनती है ना जब यह ज्ञानमे आ जाय कि मेरा परसे सम्बन्ध नही, पर परमे है, मैं मुझमे हूँ, परका मैं कर्ता नही, परका मैं भोक्ता नही। मैं तो अपने आपकी वस्तुमे परिणमन करता रहता हूँ। इसके सिवाय दूसरी बात है ही नही यहा पर, ऐसी जिसकी श्रद्धा हो वह ही इच्छापर विजय प्राप्त कर सकता है। तो जिसको ऐसा अपने भीतरका परिचय है कितना ही उसपर कर्मोका उदय आये मगर वह कर्मसे लिप्त नही होता। भला सुकुमाल मुनिका शरीर स्यालिनियोने चौथा, खून निकल आया, मासकी लोथडे प्रकट हो गई, इतना होनेपर भी उपयोग निर्मल रहे, इस ज्ञानस्वभावमे ही उपयोग मग्न रहे, यह बात दूसरोको कठिन दिखती है, लेकिन जिसने इस ज्ञानस्वभावको ही आत्मीय आनन्द रूपमे अनुभव किया, शरीर तो यो है जैसे कि और शरीर ऐसे ही परद्रव्य जिसने

शरीर को मान लिया भीतरमे, जिसका इतना दृढ श्रद्धान है उसको उस समयमे कोई बाधा नही होती और कोई विलक्षण ही आनन्दका अनुभव वह करता रहता है।

आत्मीय आनन्दके उपभोगसे कर्मका प्रक्षय—वह देखो सुकुमाल मुनि, किसके प्रतापसे उन्होने उर्द्ध गति पायी। उन सुकौशल मुनिको सिहनीने खाया, उनका वक्षस्थल बिगाडा, उनके मस्तक को नोचा, इतने पर भी वे अपनी आत्मसाधना से रच भी नही चिगे, वे भी तो आनदमय हुए ? अरे कष्ट तो वहा था ही नही । सहन करने की बात तब ही तो आये कि जब कष्ट हो, कष्ट तो उस उपयोग मे था ही नही, शरीर की वात शरीरमे हो रही, वह अपने आत्मस्वरुपको अपने आत्मामे मग्न करता रहा है। ज्ञानका यही उपयोग चल रहा हैं। कष्टका अनुभव भी नही है। उस अनुभवके प्रतापसे ससार से मुक्ति होती है। तथ्य तो भाई यही कि यह निर्णय बनावे कि बाहरमे आनन्द नही है। किसी भी बाह्य पदार्थसे मेरे को आनन्द न मिलेगा। आनन्द मिलेगा तो मेरेको मेरे आत्मप्रदेशमे ही मिलेगा अन्य वस्तुमे आनन्द नही है, झझट है, यह राग आग है। किसी भी पर जीव के प्रति राग करे तो आगकी तरह जलन करती है। श्रद्धा बनाये, परिस्थितिवश बोलना पडे तो बस बोललें परिस्थितिवश तो जिस चाहे से प्रेम से बोलते है। दूकान मे, घरमे रहते है, पेट पालन करते है, परिस्थिति ऐसी है तो आपको कुटुम्ब से बोलना पडता है तो बोल ले, पर श्रद्धा यह बतावें कि यह मेरा कुछ नही है। मै तो इन सब से निराला ज्ञानमात्र हूँ।

ज्ञानाराधनामें ही शान्तिकी संभवता—शान्तिका काम आजसे न लो आपकी मर्जी किन्तु अगर शान्त हो सकें, मुक्ति पा सके तो यह ही उपाय करेगे तब पा सकेगे, दूसरा कोई उपाय नही है। तो ऐसे अपने ज्ञानस्वरूपमे निहारकर इन विभावोसे उपेक्षा करना उपभोगसे उपेक्षा करना और एक ज्ञानस्वरूपकी आराधनामे रहना, बस इसीसे सम्वर होता है, इसीमें दस धर्म आ गए। सब कुछ अपने आप आ जाता है। एक ज्ञानमात्र स्वरुप की बात है वह सब इसमे अपने आप आ जायेगा। क्रोध न करना, घमड न करना, मायाचार न करना, छल कपट न करना, एक अपने आप पर करुणा करले, दया करले, दूसरा जीव कोई मददगार नही किसके पीछे अपने आत्मा को खराब करना कौन मेरा प्रभु है, कौन ईश्वर है, कौन साथी है ? किसके लिए अपने आत्माको बरबाद करना और जन्म मरणका रास्ता लेना क्या जरुरत पडी है ? किसी प्रकारका छल करनेकी क्या जरुरत पडी है कि लोभ कषायको मनमे रखें। परिस्थिति है तो वहा आप अपना वजट वनायें, एक घर है, आपकी एक संस्था है, आप उसमे सस्थाके एक मेम्बर की भाति रहो। राग न करो।

सदस्य (मेम्बर) भी तो किसी सस्था मे करनेके लिए तत्पर रहता है, उत्साहित रहता है मगर उसकी श्रद्धामे इतना व्यामोह नही है इसके ही सहारे मेरा जीवन है। वह तो सब कुछ हैं। जैसे मोही मानव फर्मको तो मानते हैं कि वह मेरे जीवनका एक सहारा है, इसी तरह ज्ञानी पुरुष मानता है कि मेरे ज्ञानस्वरूपकी जो आराधना हैं यही मेरा प्राण है, यही मेरा सहारा है, बाकी तो सब परिस्थितिवश करना पडता है। परिवार भी तो एक सस्था है। मैं तो उसका एक मेम्बर हूँ। जो बडा पुरुष है वह अपने परिवार मे प्रेसीडेन्टका (प्रधान) का काम कर रहा है। मगर उसमें आपका है क्या? आप तो अपने आत्माके अधिकारी हैं, इतरेकी आत्माके अधिकारी नही है।

उपयोगका स्वभावमे संयमन व प्रतपनका प्रताप—जब क्रोध, मान, माया, लोभ कषाये दूर हो जाती हैं तो आत्मामें ऐसी पवित्रता जगती है कि वहां सब सच्चाई प्रकट हो जाती है। अब वहा असत्यका काम न रहा। जहा सच्चाई प्रकट हुई कि वहा वास्तविक संयम बनने लगेगा और फिर सयम होने से, वह सच्चाई के होने से आत्मामें एक तपश्चरण होगा, प्रतपन होगा जिसके फल से यहांके रागद्वेष मोह सब दूर होते चले जाते है, और यह प्रकट अकिञ्चन बन जाता है। ब्रह्ममें लीन होनेका यह ही तो उपाय है। देखो जैसे एक आतसी काच आता है उस आतसी काचके पीछे कुछ कागजके टुकडे या रुई रख दी जाय और उसमे सूर्यकी किरणे केन्द्रित करके सूर्यका प्रकाश डाला जाय तो वह कागज या रुई जल जाता है। तो वहा हुआ क्या? काच तो एक साफ होना चाहिए निर्मल होना चाहिये पहली बात। और फिर सूर्यकी किरणे केन्द्रित हो जानी चाहिएं, दूसरी बात। फिर नीचे तपन हो जायगी। रूई पर वे किरणें पडी तो वहा प्रतपन हो जायगा, फिर वह रूई जलने लगेगी। फिर वहा क्या रह जायगा? फोक, अकिञ्चन रह जायगा, यानि कुछ नहीं रहा। तो क्या फिर रहा? जो है सो ही रह गया। तो इसीतरह क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक का त्याग होनेसे पवित्रता जगी, सच्चाई जगी, स्वच्छता हुई, अब अपने उपयोगकी किरणोका केन्द्रित किया। जो उपभोग यहा वहा भागता था सबको केन्द्रित कर दिया, संयत हो गया। उपयोगके सयत होने से यह प्रतपन हुआ, इस चैतन्य आत्मामें एक प्रताप जगा जिसके कारण रागद्वेष मोह जितने भी हो रहे थे वे सब दूर होते चले गए। तब यह आत्मा अकिञ्चन रहा, उस समय यह अपने स्वरूपमे लीन होता है, यह उसका ब्रह्मचर्य है। यह एक वैज्ञानिक पद्धति है कि कैसे हम मुक्त हो सकते हैं। जहा हम कर्मबन्धनमे इतना फसे हैं तो क्या उपाय है कि हम मुक्त हो सकें? ये १० धर्म एक वैज्ञानिक ढग से हैं। यह उपाय करले तो मुक्ति अवश्य पा लेगे। तो ऐसे इन दश धर्मों का सहारा लें और अपने मूलमे अभेद दृष्टिसे

ज्ञानमात्र का सहारा ले तो ऐसा तपश्चरण चलेगा, प्रतपन बनेगा कि कर्म दूर हो जायेंगे, मुक्ति प्राप्त होगी। देखिये—सम्यग्दर्शनके लिए प्रयोजनभूत ये ७ तत्त्व ठीक रहेगा, इनमे से कौन से तत्त्वकी श्रद्धाकी जायकि मुक्तिका मार्ग मिले। दो तो मानने ही पडेंगे, जीव और अजीव, जिनका कि झगडा युद्ध चल रहा है अब तक बरबाद हो रहा है यह आत्मा भगवान जिस अजीव के प्रसगमे उपाधिके सम्बन्धसे और उस ओर उपयोग लगानेसे उस अजीव के सपर्कसे यह भगवान आत्मा बरबाद हो रहा है। तो इतनी बात तो मानना पडे-गा कि जीव और अजीव दो का यह सम्पर्क है, उसमे यह झगडा चल रहा है। तो यह झ-गडा मिटाने को क्या करे ? झगडा मिट गया, इसके मायने है मोक्ष। झगडा मिटनेके लिए क्या काम करना ? जिससे झगडा हो वह काम न करे और जिससे झगडा मिटे वह काम करे। तो झगडेका कारण है आश्रव बन्ध। बन्ध स्वय झगडा है। झगडेका कारण है आश्र-व। आश्रव न करे तो सम्बर हो गया।

संवरपूर्वक निर्जरासे आत्माकी निर्भारता—अब सम्वर तो हो गया, आगामी कर्म तो मानो रुक गए और नवीन और पुराने कर्म अभी इतने बन्धे है कि अगर इतना ही हिसाब कोई लगाये कि नये कर्म न आये, पुराने कर्मको क्षमा करदे, उनको समयसे पहिले न खपावे और नवीन कर्म न आये, इतनी ही काम रखें तो कितनी देर लगेगी मोक्ष होनेमे। इसजीव के साथ इतने कर्म बन्धे है कि आजके बाधे याने एक क्षणके हुए कर्मका उदय कबतब आय-गा ? ७० कोडा कोडी सागर व्यतीत हो जाय। जिसके सम्वर होता है उसके इतने कर्म तो नही रहते अत कोडा कोडी रहते है मगर कोडा कोडी से समझिये कर्म कितने देर तक इस जीवके पास रहते है यह एक क्षणमे बाधे हुए कर्मकी वात कह रहे है, फिर तो जो रात दिन कर्म बाधे जा रहे है उसका अदाज लगा लेना। एक क्षण मे बाधे हुए कर्म अज्ञानी मिथ्यादृ-ष्टि मोही जीवके ७० कोडा कोड़ी सागर तकके लिए कर्म बन्ध जाते हैं। अब जरा कोडा कोडी सागरका अर्थ समझिये वह बडा भारी काल है। वह गिनतीसे न वताया जा सकेगा। उसको उपमासे बताया जायगा। इसे कहते है उपमाप्रमाण। मान लो कोई २००० कोश का लम्बा, चौड़ा, गहरा, एक गड्ढा है और उसमे कोमलसे कोमल बालके इतने सूक्ष्मसे टुक-किए जाये कि जिनको किसीभी प्रकारसे दूसरा टुकड़ा न हो सके उन बालाशोको उस गड्ढेमे ठसाठस भर दिये जॉय और उसपर हाथी भी फिरा दिया जाय ताकि वे बालके टुक-ड़े खूब दब जाये। अब उन टुकडोमे से १०० १०० वर्षमे एक एक टुकडा निकाला जाय, तो इस क्रमसे सारे टुकडे निकलनेमे जितना समय लग जाय उतने समयका नाम हैं व्यवहारप-ल्य और उससे अनत गिनते गुणा काल लगे तो उसे कहेगे उद्धार पल्य और उससे ,अनगिनते

गुणा काल लगे उसे कहते हैं अद्धापल्य और एक करोड अद्धापल्यमे एक करोड अद्धापल्लका गुणा करनेपर जो लब्ध हो उतने समयको कहते हैं एक कोड़ा कोडी अद्धापल्य, ऐसे १० कोडा कोड़ी अद्धापल्यका नाम है एक सागर ऐसे एक करोड़ सागरमे एक करोड सागरका गुणा किया जाय तो उतने समयका नाम है एक कोड़ा कोडी सागर ऐसे ७० कोडा कोडो सागर तक का कर्म बन्ध हो गया उदयकालमे आयेंगे, आवाधा कालके वाद आते रहेगे, इतने काल तक रहेगे। आना एक तो ऐसा होता ही नही। जिस शुद्ध परिणामके कारण कर्मका सम्बर होता है उसीशुद्ध परिणामके निमित्तसे कर्मनिर्जरा भी होती है, फिरभी कल्पनामे मानलो बन्धन समझनेके लिये कि अगर कोई कल्पना करके मान ले कि सम्बर ही सम्बर होता, निर्जरा नही होती, तो वह कितना वडा समय है। वह समय भी कम हो जाता है ज्ञान व वैराग्यके कारण सवरपूर्वक यह निर्जरा आत्मापर से बोझ दूर कर देती है। इस तरह सम्बर और निर्जरा इन दो तत्त्वो पूर्वक जीवका मोक्ष होता है। यो यह मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्व है

ज्ञानद्वारा ज्ञानमे ज्ञानको रमानेके अनुग्रहमे कृतार्थता—अब देखिये-इतना तो सबको अदाज है कि जब सारे समागमको भूल जाते है और एक केवल ज्ञानस्वरुप आत्मा भगवान ही ज्ञानमे रहता है उस समय पूर्ण आनन्द हो जाता है। 'करि उपाय देख हुमन माही मूदहु आंख कितउ कछु नाही।' जिस समय इन्द्रिय व्यापार रूक जाये, मनकी कल्पनाओकी दौड रुक जाय उस कालमे जो एक स्थिरता होती है, धीरता होती है, ज्ञानमे ज्ञानस्वरुपका परिचय होता है, अनुभव होता है, बस मेरी वही है सम्पत्ति, वही है सम्पन्नता, यह ही मेरे को काम देगी, बाहरकी कोई चीज इस आत्माके काम न आयगी। देखिये अनादिकालसे रुलते–रुलते आज हम कुछ बडे हुए याने मनुष्य हुए। मन अच्छा मिला, ज्ञान की तर्कणा पायी। तो बडी दुर्लभतासे तो आप हम लोग एक महान पर्यायको प्राप्त हुए, महत्वशाली पर्यायको को पाया। अब ऐसे समयमे अगर इस पर्यायका दुरुपयोग किया, विषय कषायोमे अगर इसको लगाया, तो जब इतनी बडी पर्याय का हम दुरुपयोग करने लगे तो इस पर्यायको फिर पा सकनेकी आशा है क्या ? और जब यह पर्याय न मिलेगी, मिल गई गदी पर्याय तो उसमे फिर क्या बीतेगी ? अभी तो हर बातका हठ बनाते है कि मुझे यह चीज चाहिए। कभी कभी तो भोजन करने वालाभी हठ कर लेता है कि मुझे तो यह ही चीज खाना चाहिए। एक बारकी बात है कि एक नीमखेडा ग्रामसे हमारा किसान आया। जब हम घर रहते थे उस समय की बात है, तो वह किसान दुपहरबाद असमयमे आया तो हमने घरमे कहाकि इसे रोटी बनाओ और खिलावो। तो मना किया। जब मना कर दिया तो हमारे गुस्सा आयी और हमने घरके

भीतर जाकर चूल्हा फोड दिया। हमे गुस्सा इस बात पर आयी कि देखो बेचारा गरीब आदमी द्वार आया है, उसे खाना बनाकर खिलवानेको कहा और घरमे मना कर दिया। तो चूल्हा फूट जाने पर हुआ क्या कि काफी समय तक हम भी भूखे बैठे रहे और वह भी बैठा रहा। और बहुत देरमे अन्य साधनो पर किसी तरह बनाकर तब खिलाया गया। तो कोई थोडी भी हठ करे तो उसमे कुछ लाभ नही है। चाहे वह घरमे हठ हो चाहे परिजन मे हठ हो, चाहे समाजमे हो, चाहे अपने आतमा मे हठ हो, किसी का हठ कोई दूसरा नही करता है। जो भी हठ करता है वह अपने आपमे करता है, जो विकल्प हुआ, जो कषाय जगी, जो इच्छा जगी, जो तर्कण उठी उस विकल्प और तर्कणामें यह हठ कर लिया कि यह ही ठीक है। यह ही मै हूँ। इसके सिवाय मेरो कुछ नही है। यह ही मेरा पूरा वैभव है वस अपने आपकी पर्यायिमे, परिणमन मे भावोमे यह हठ बनाये है, बस इस हठ का परिणाम थोथा है। हठ बनावे तो जो सहज ज्ञानस्वरुप है उसका हठ करे यह ही हूँ मै। तथा जो यहा ऐसा भेद करेगा कि जो यह उदय आ रहा, जो ये रागद्वेष झलक रहे, सो ये कर्मविपाक हो रहा, यह कर्मोकी चीज है, यह मैं नही हूँ। मै इनमे न लगूं, मैं इनसे हटकर अपने ज्ञानस्वरुपमे ही रहूँगा। इस तरहका आप हठ करे तो करे। सत्यका आग्रह करे। भैया आजदी हासिल करनेके दो ही तो उपाय है। जैसे यहां देशका मुक्ति आन्दोलन चला था न भाई, तो वहां क्या उपाय बनाया था। सत्याग्रह और असहयोग। खूब सोचलो जिसके पास हथियार नही, लड नही सकते, ऐसी प्रजा अपनी मुक्ति चाहे गुलामी से तो वह कैसे पेश पा सकती है ? बतलाओ जरा। तो दो ही तो बात कियो था (१) सत्याग्रह और असहयोग। सत्याग्रह तो यह था कि जो हमारे देश की वस्तु है उस पर हमारा अधिका है। जैसे नमक वनाने पर बडा भारी वार लगा रखा था। तो उनका यह था सत्याग्रह कि हमारे भारत की वस्तु पर हमारा देशवासियोका अधिकार है, यह था उनका सत्याग्रह और अहयोग क्या था कि जो भी विदेशी वस्तुये थी कपड़ा या और और चीजें, तो उनका बहिष्कार करना, उनकी सहयोग न देना, जैसे फैल्ट केप का बहिष्कार किया था। ये दो हुए सत्याग्रह और असहयोग तो जब यह विभाव कर्म सरकार हमारे ऊपर बडा जुल्म ढ़ा रहा है, हम गुलामीमे हैं, बन्धनमे पडे हैं, बन्धन दशामे आ गए है तो हम क्या करे सो उपाय बताओ जिससे कि आजाद हो सके और उन कर्मबन्धनो से मुक्ति पा सके। उसका उपाय है सत्याग्रह और असहयोग। सत्याग्रह बनाओ जरा, सत्य क्या है ? मेरा जो मेरे सत्‌मे अपने आप निरपेक्षतया स्वतँत्रतया जो आज हो वह सत्य है। वह सत्य क्या है ? ऐसा यह आत्मा। दर्पणमे सत्य क्या है ? दर्पणमें दर्पणकी सत्ताके कोरण दर्पणकी ओर से दर्पण

मे जो स्वच्छता है वही तो दर्पणका सत्त्व है , या दर्पणके सामने लाल कपडा कर दिया, दर्पणमे छाया आ गई तो क्या वह दर्पण का सत्व है ? नही । आप स्पष्ट समझ रहे है कि वह दर्पणमे बाहरकी उपाधि है । कोई छाया आयी, कोई छाया आयी, कोई प्रतिबिम्ब आया तो वह दर्पणका सत्व नही है । दर्पणका सत्व तो दर्पणकी निजी स्वच्छता है । तो मेरेमे जो कर्मउपाधिका निमित्त पाकर जो यह रागद्वेषादिक प्रतिफलन उठती है, ये परिणाम उत्पन्न होते है, विकल्प होते है, क्षोभ होता है, क्या यह मेरा सत्व है ? यह भी सत्व नही है मेरा सत्व तो मेरा निरपेक्ष पारिणामिक ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान सिवाय मेरा और कुछ नही है । सत्याग्रह रखो और असहयोग करो । जो मेरी चीज नही है, मुझ पर लादी जा रही है ? ये रागद्वेष, अहकार व्यामोह, विषय कषाय, इच्छा, कर्मविपाक ये सब मुझपरलादे जा रहे है। ये मेरी वस्तु नही है । मुझे इनका सहयोग न चाहिए, ये हटे, इनसे मेरी उपेक्षा है । मै तो अपने आपके सत्य स्वभावका ही आग्रह करुगा, और मै इसमे ही मुक्त होऊ, इसमे ही मै आनन्दमग्न होऊ । मुझे बाह्य वस्तुका सहयोग न चाहिए। इनमे असहयोग करो । तो अपने आपके स्वरूप का आग्रह करना यह है सत्याग्रह और जो बाहरी मेल है, जो बाहरकी वस्तुओको उपाधियोको लगाया है उनसे असहयोग करो तो देखो कैसे मुक्ति न प्राप्त होगी। यह ही तो मुक्तिका उपाय है

सुख दु ख दोनो विषोके त्यागकर सहजानन्दामृतपानकी सम्मत्ति—भैया ? सत्यके आग्रह और परभावके असहयोग ही ये सब सम्वर निर्जरा गर्भित हो जाते है । इसतरह सम्वर तत्त्व और निर्जरा तत्त्व ये उपादेय तत्त्व मेरेमे प्रकट होओ, इनकी मेरेमे उपासना बने तो मुक्ति अवश्य होगी । परमात्मा तो पूर्ण आनन्दमग्न है तब ही तो हम आप उनकी उपासना करने आते है, और अन्तरात्मा ज्ञानी पुरुष ये भी कुछ आनन्दमग्न है मगर कुछ-कुछ उनको कष्ट भी है, और ये बहिरात्मा तो सदा कष्टमे है, उनको तो आनन्दका नाम ही नही है । अज्ञानी पुरुषको तो चाहे बहुत सतान हो जाये, चाहे वह बडा धनिक बन जाय, चाहे बडा राजपाट भी मिल जाय, मगर मिथ्यात्व होनेके कारण उसे निरन्तर कष्ट है । वह एक क्षणको भी आनन्द नही पा सकता । कष्टकी दशाय होती है भाई कोई होता है मीठा विष और कोई होता है कडवा विष । अब कडवा विष पिये तो भी मरे और मीठा विष पिये तो भी मरे । बल्कि एक बार तो ऐसा भी हो सकता कि कडवा विष पिये तो उससे अलग भी हो सकता, क्योकि उसके कडवापनके कारण अरुचि करेगा । मुझे नही पीना है, यह ठीक नही है । एक बार उसे मौका मिल सकता है कडवे विषसे हटने का भी मगर मीठा विष तो चू कि तुरन्त पीनेमे मीठा लगता है, अच्छा लगता है इसलिए उससे हट

का बहुत कम अवसर है। तो यहा समझिये कि यह ससारका सुख मीठा विष है और ससार का दुख कडवा विष है। देखो जब कोई दुख आता है तो उससमय लोग प्रभुका स्मरण भी करते है मगर सुख हो, ठाठ हो, बडा मान हो तो उसमे प्रभुका स्मरण करना बडा कठिन हो जाता हूँ, क्योकि वह मीठा विष है। कडवे विषमे तो उपेक्षाकी जा सकती है मगर मीठे विषकी भी उपेक्षा करना चाहिए, किन्तु उस मीठे विषकी उपेक्षा करना कठिन पड जाता है। यही बात सासारिक सुखोमे है। इनसे प्रीति न करे देखिये इस सारे जीवनमे अनेको वर्ष तो धर्मकी उपासनाकी, पर्यूषण पर्वमनाये सब कुछ किया, मगर कमसे कम एक निर्णय तो बना लो कि यह ससारका सुख एक मीठा विष है और बाकी प्रतिकूल बाते, कष्टकी बाते ये सब कडवे विष है। दो तरहके ये विष है, इनके पीनेसे हमारी बरबादी है, भव भवमे हमे मरण करना पडता है। ऐसी सहज आनन्दके अनुभवमे सर्वप्रकार अनाकुलता व पवित्रता है ऐसी श्रद्धा बनावे। अगर सत्य श्रद्धा हो जायगी अपने आपकी तो जन्म मरणसे रहित हो जायेगे।

सद्भक्तिकी अव्यर्थता—एक कोई भक्त था। उसने अपने घरमे एक चैत्यालय बनवा रखा था। वह बडा गरीब घर था। रोज—रोज वह भगवानकी पूजा करता, अभिसेक करता, आरती करता और प्रभुकी भक्तिमे वह अपना अधिकाधिक समय गुजारता, आनन्दमे रहता इसतरहसे उसके १५—२० वर्ष गुजर गए। उस प्रभुभक्तिके प्रसादसे वह मालोमाल भी हो गया। एक बार क्या हुआ कि चार डाकू उसके घरमे घुसे और कहा कि देखो जितना तुम्हारा धन है निकालकर रख दो, तुम्हारा सब धन भी लेगे और साथ ही जान (प्राण) भी लेगे। तो वह भक्त बोला—लीजिए यह चाबी, सारा धन भी निकाल लीजिए और यह जान भी आपके सामने हाजिर है। मरने का मुझे कुछ डर नही, मगर एक बात सुनो तो सुन लो। मैने जिस प्रभुकी बीसो वर्षोतक भक्तिकी उनको अगर आप कुछ अवकाश दे तो मैं नदीमे सिरा आऊ और फिर वहा से वापिस आने पर आप हमारी जान भी ले लेना। चारो डाकुने सलाह की कि ठीक है। अपन चारोमे से दो डाकू इसके साथ चले जावे और दो यही रहे। अब दो डाकुओ सहित वह भक्त प्रभुकी मूर्तिको पासकी नदीमे सिराने ले गया। जब वह कुछ गहराईमे पहुचा और प्रभुकी मूर्तिको सिराने चला उससमय वह भक्त बडी करुणा भरे शब्दोमे कहता है कि हे प्रभो? जिन हाथोमे मैंने आपकी सेवा की उन्ही हाथोसे आजमै आपको नदीमे सिरा रहा हू। इस बात का तो मुझे कुछ विषाद नही कि मेरी मृत्यु हो रही है। मृत्यु खूब हो, इसकी मुझे परवाह नही, पर दूसरी बात मेरी समझमे यह बनती है कि प्रजाके लोग क्या कहेगे कि खूब तो भक्ति की, खूब तो धर्म किया, मगर उसका फल क्या मिला कि धन भी गया और जान भी गई। तो ऐसा धर्म करनेसे मुझे क्या लाभ है?

इसतरह से धर्मकी अप्रभावना होगी, इसका मुझे कुछ क्लेश है। इस भक्तकी करुणा भी आवाज सुनकर आकाशसे ऐसी आवाश आयी कि तुम किसी कि बातका खेद मत करो, तुम्हारी भक्ति निष्फल न जायगी, अप्रभावनाकी भी कुछबात न होने पायगी। देखो ये जो डाकू आये है तो इन चारो डाकुओ को तुमने पूर्वभवमे मारा था इसलिए तुमको इनके द्वारा चार बार मरना चाहिये था याने चार भवोमे तुम्हारी मृत्यु इनके द्वारा होनी चाहिये थी लेकिन तुमने जो १०—२० वर्ष प्रभुकी भक्ति की है तो उसके प्रसादसे तुम्हारी तीन मौत कट चुकी है, ये चारो के चारो तुम्हे एक साथ मारनेके लिए आये हैं तो तुम्हारा एक ही तो मरण रह गया। तीन मरण तो तुम्हारे मिट गए, यह प्रभु भक्तिका प्रसाद है। जब डाकुओं ने इस तरहकी आकाशवाणी सुना तो वे बोले ठहरो ठहरो अभी इस मूर्तिको मत सिरवाओ, यहासे लौटकर चलो, हम चारो डाकू मिलकर जो आदेश देंगे सो करना। सो वे डाकू उस भक्तको मूर्ति सहित वापिस लौटा ले गए। वहा उन दोनो डाकुओने अपने साथ वाले दोनो डाकुओंसे आकाशवाणीकी बात सुनाया। तो वहा उन चारो डाकुओने यही निर्णय दिया कि जब एक प्रभुभक्तिके प्रसादसे इसकी तीन मौत कट गई तो क्या हम चार लोग मिलकर इसकी एक मौट नही काट सकते। उन डाकुओका दिल बदल गया और भक्तिसे कहा कि तुम अब किसी बातकी चिन्ता न करो, तुम आनन्दसे रहो। न तुम्हारा धन लेंगे और न तुम्हारी जान। यह कहकर डाकू चले गए। तो श्रद्धा थी ना, भक्ति थी ना, एक धुन थी, इसलिए उसे प्राण जानेकी भी परवाह न थी।

जीवन और मरण सर्वत्र समाधिके पौरुषका कर्त्तव्य—यहां अपनी बात देखिये हम आपने अब तक अनन्ते बार जन्ममरण किए, अगर इस भवके प्राण चले जायें तो इसमे आपका क्या नुकसान ? जो बहुत—बहुत सोचता है, बहुत—बहुत विचार करता हैं, ऐसा कैसे होगा, कैसे मेरी बात बनेगी ? कैसे मेरा गुजारा होगा, कैसे क्या होगा ? और, जब मरण हो गया तो क्या होगा। अरे यहा क्या मरणसे भय करते ? दो ही तो चीजें हैं हा, जन्म और (२) मरण। इनमे विवेकपूर्वक छटनी तों करलो कि जन्म खोटी चीज हैं कि मरण ? देखिये जन्म के बाद किसोकी मुक्ति नही होती, और मरणके बाद मुक्ति मिलती हैं। भगवान अरहतका जोमरण होता है उसका नाम है पडित पडित मरण उसे निर्वाण बोलते हैं आखिर वह भी एक मरण है। तो केवली भगवानका जो पडित मरण है उसीके बाद मुक्ति हो जाती है, और जन्मके बाद किसीको मुक्ति हुई क्या ? जन्मसे मुक्ति नही मिलती, मरणके बाद मुक्ति मिल सकती है। मरण समयमे विशुद्ध परिणाम हो, निर्मल भाव हो तो आपका यह भव भी बहुत समृद्धिसे गुजरेगा मरण तो इतनी उपकारी चीज है। लोग तो मरण के

समय उस मरण करने वाले से चिपट कर रोते है उसके मोह पैदा करते है और उसका मरण बिगाड़ देते हैं। जिन्दगी भर भी उसे सताया मगर मरण समय मे ऐसा सतायेंगे कि उसे परभव मे भी चैन न मिले। अरे मरण समय तो लोगो को उत्सव मनाना चाहिए था, खुशी मनाना चाहिये था, इसपर तो दृष्टि नही देते, लोग उस समय शोक मनाते, उसमे मोह पैदा करके उसका जीवन विगाडते। तो भाई अपना जन्म मरण सुधारो। अपना नाम यहा के मोही अज्ञानी प्राणियो की लिस्ट मे न लिखाओ बलिक सिद्ध भगवानकी लिस्टमे अपना नाम लिखाओ।

सहज विशुद्ध ज्ञानस्वभावके आश्रयमें ही सर्व श्रेय.—सम्बर तत्त्वमे यह बताया जा रहा है कि जब ज्ञानी पुरुष को अपने आपके स्वरूपका यथावत् निर्णय हो जाता है कि मै सनातन अहेतुक चैतन्यमात्र हूँ, तब इसमे कष्टका कोई काम नही रहता। ज्ञान ही अपना परमार्थ पिता है अपने ज्ञान की विशुद्ध कलापर ही अपनी उन्नति की विशुद्ध कलापर ही अपनी उन्नति निर्भर है। शान्ति केवल एक अपने ज्ञानकी शुद्ध कलापर निर्भर है। बाहरमे किसी भी पदार्थपर निर्भर नही हैं। जहा यह ज्ञानी समझता है कि मै यह आत्मा विशुद्ध ज्ञान ज्योतिमात्र हूँ, शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, और धारावाही ज्ञानसे अपने आपको शुद्ध ही पाता रहता है, निरखता रहता है। उसके कर्मका लेप नही होता और जहाँ उस शुद्ध ज्ञानस्वरूप-की श्रद्धासे हटे और बाहरमे बाह्य पदार्थ मे अपना लगाव लगाया बस वही कर्मबन्ध होता है। अब यह सोच लो कि इन २४ घटो मे कितना समय तो अपने आपके स्वभाव के लगाव मे रहता है और कितना समय परके लगाव मे रहता है, जितना परका लगाव है उतना जीवन को निष्फल खोना है, जितना अपने आपके स्वरूपकी उन्मुखता है उतना ही यह सच्चा जीवन है, जिस पुरुषने अपने आपके विविक्त ज्योति स्वरूपका परिचय किया है उसके सहज बैराग्य रहता है। जिसको अपने आत्मस्वरूपके अनुभवमे आनन्द आया उसको विषय सुखो मे प्रीति करेगा? जिसको अनुपम आत्मीय आनन्दका अनुभव नही जगा वही विषय सुखको ललचायगा, लेकिन जिसको अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप का परिचय हो गया वह तो न तो किसी पर द्रव्य मे आकर्षित होता और न अपने सुख दुःख भाव मे आकर्षित होता तो इसमे मौज की कौन सी बात आ पडती है? यह सब उसके लिए उपद्रव है। मैं परमात्माकी भांति एक शुद्ध शाश्वत आनन्द ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानमे इतना बल होता है कि आते हुए कर्म-रूक जाते है और पहिलेके बधे हुए कर्म झड़ जाते है। ज्ञानकी कलामे अदभुत है। यहा लोकमे भी तो देखने मे आता। एक तान्त्रिक पुरुप हो, वैद्य हो जो साँपके विषको अपने मत्र बल से उतारता है देख लो सही, ज्ञानबलका प्रताप उसीमे हो रहा, मगर कैसे बड़े-बड़े

सकट भी दूर हो जाते है। अथवा तान्त्रिक पुरुप विषको खाता हुआ न्ही मरता, क्योंकि उसने ऐसी सिद्धि प्राप्त की अथवा विषवैद्य हो और विपको भष्म करके खाये तो वह नही मरता। यह ज्ञानकी ही तो कला है। ऐसे ही जो ज्ञानी है वह भोगोपभोग भी भोगता है लेकिन समस्त भोगो से वह अपने को निराला देखता है। मैं हूँ एक ज्ञानज्योतिस्वरूप राग-रहित अपनी प्रतीति बनाये। रागम सारे ऐब बसे हुए है, तो ऐसा जो विराग पुरुप है वह कर्मसे नही बधता। कर्मका उसका सम्बर होता है, ऐसे इस सम्वर तत्त्वकी बहुत बडी महिमा है।

परिपूर्ण ज्ञाननन्दस्वभाव अन्तस्तत्त्वके दृष्टाकी निर्मद परिणतिः—इस ज्ञानी पुरुषने अन्त देखा कि मैं क्रोध, मान, माया, लोभआदिकपायोसे रहित हूँ। मान किस बातका? मान के ८ आश्रय होते है—किसी के ज्ञान विशेप हो जाय तो वह भी मानमे बढ सकता है, किसी की पूजा प्रतिष्ठा हो वह भी मान मे वढ सकता है, किसीका ऊच्च कुल हो, किसी की उच्च कुल की मा हो, किसीका बल, ऐश्वर्य, शरीर, तपश्चरण आदिक मे कुछ विशेपता हो तो उसके भी मान कपाय बढ सकती है। मगर ये सब चीजे क्या है? आत्मासे निराली चीजे है। ज्ञानका क्या मद करना? अरे केवल ज्ञान के सामने मन पर्ययज्ञान भी क्या चीज है? अवधि ज्ञान भी क्या चीज है? फिर हम आपको ज्ञान कितना सा मिला? थोडा सा मिला, लेकिन उसी ज्ञानमे यह समझते है कि हमने बहुत कुछ पाया। ज्ञानका मद करते, कोई पूजा प्रतिष्ठा मिले यश सम्मान मिले तो उसका घमड करता है अरे चक्रवर्ती भी जब विजय करके वृषभाचल पर्वत पर नाम खोदने जाता है तो उसको भी अपना नाम लिखने के लिए खाली जगह नही मिलती। नामोसे भरा हुआ था वह सारा पर्वत। वहा अहकार दूर होता है—ओह मेरे जैसे चक्रवर्ती यहाँ अनगिनते हो गए, वहा मान भग होता है। जिसकी पूजा रही, किसका कुल रहा कुल भी उच्च कैसे? अरे यह कुल भी क्या है? यह तो एक कर्मविपाक है। हम आपका कुल तो वास्तव मे चैतन्यवश है, देखो पुत्र किसे कहते हैं? जो वशको पवित्र करे उसे पुत्र कहते—वंश पुनाति इति पुत्र, और सुत किसे कहते? जो पैदा हो सो सुत। तो अब यहा देखो? हमारा पुत्र कोण है जो मेरे वशको पवित्र कर सके, मेरे वशको स्वच्छ बना सके, वह मेरा पुत्र है। आपका वश है चेतना। जिसके साथ आप रहते थे, रहेगे, जिस वंशको आप छोड नही सकते उस चैतन्यवशको पवित्र करने वाला कौन? एक यह शुद्ध निर्मल ज्ञानपरिणाम। बस यह ही अनुभूति, यह अनुभव, यह ज्ञान परिचय यह ही वास्तविक पुत्र है। आपका पिता कौन? पिता कहते किसे है? पाति इति पिता, जो रक्षा करे उसे पिता कहते हैं आपकी रक्षा करने वाला कौन? आपका

यह विशुद्ध निर्मल ज्ञान, यह ही आपकी रक्षा कर सकता है, दूसरा और कोई रक्षा करने मे समथ नही है अत अन्यकी आशा व अहकार छोड स्वमे आवो।

सज्ज्ञानमें सर्वसिद्धि.—सारा कुटुम्ब, सारा वैभव सब कुछ एक अपने आपमें ही है। जैसा चाहे अपनेको बना ले। एक बालकने मुट्ठीमे कुछ चीज ली, वह चीज क्या थी यह आप पीछे जान जायेगे। वह बच्चोसे पूछता है—बोलो बच्चो मेरी मुट्ठीमे क्या चीज है ? कुछ बच्चे तो यो ही चुप रह गए, कुछ बताने लगे। तो वह बच्चा बोला—नही, नही मेरी मुट्ठीमे तो सारी दुनिया है, तीनो लोक है, भगवान है, सारे द्वीप समुद्र है, सारे देश है, मेरी मुट्ठीमे सब कुछ है। तो सभी बच्चोने कहा-अच्छा मुट्टीखोल कर दिखाओ। जब मुट्ठी खोला तो उसमे निकली एक स्याहीकी टिकिया।......अरे तुम तो कहते थे कि इसमे सारी दुनिया है।...हा हा सारी दुनिया है,...कैसे ?...इसे घोल कर इससे हम जो चाहे बना दे, दुनियाका सारा नक्शा बनादे, तीनो लोक अलोकका नक्शा बनादे, जो कहो सो बनादे, हमारे हाथमे सब कुछ है ऐसे ही हम आपके पास सब कुछ है।......अरे सब कुछ क्या ? न धन है, न कोई बाहरी चीज है।......अरे आपके पास ज्ञान है बस वही सब कुछ है। सोना चादी हीरा रत्न आदिमे भी कीमत नही बसी वह आपके ज्ञानमे बसी है। बाहरी पदार्थों मे भेद नही पडा, भेद तो आपके उपयोगमे पडा है। बाह्य वैभव क्या चीज है ? कुछ नही। एक साधुमहाराज जगलमे बैठे हुए तपश्चरणमे रत रहा करते थे। एक दिन वहा से एक राजा निकला तो राजाने उस साधुकी तरफ देखा भी नही। वह तो बडे अभिमानमे था। तो किसी तरह साधूने उसे अपने पास बिठाया और कहा—अरे राजन तुम किस बात पर अभिमान करते हो ? तुम यदि राजा हो तो हम भी उपासना किए गए महान बुद्धिधनसे उन्नत है। तुम यदि वैभवसे प्रसिद्ध हो तो हम लोगो के यशोंको कवि लोग चारो दिशाओ मे विस्तृत कर रहे है, इस प्रकार गौरवकी दृष्टिसे भी हम तुम दोनो मे बहुत अन्तर है। यदि तुम हमसे परान्मुख होते हो तो हम भी एकान्तत हठपूर्वक तुम सबसे निष्पृह है। और भी सुनो राजन् ! तुम यदि अर्थ (धन) को चाहते हो तो हम भी वाणीके अर्थ को चाह रहे हैं, बडे–बडे आगम वेद वाक्योके अर्थसे हम सम्पन्न है और उन अर्थो के विलासमे हम बने रहा करते है। तुम तब तक ही तो शूर हो जब तक कि तुम्हारेपास धन (अर्थ) वैभव है। तो हम इस प्रकारसे शूर हैं कि वादियोके घमडको उपशमन (शान्त) करनेमे समर्थ है, उसमे हम लोगोके अक्षय चतुरता है। तुम्हारी यदि धनिक लोग सेवा करते है तो हमको भी सुननेकी इच्छा करने वाले अनेक श्रोताजन अपने दोषोके विनाशके लिये सेवा करते है। यदि तुम्हे मुझमे आस्था नही है तो हमारी तुममे बिल्कुल ही आस्था नही है। और भी

देखो राजन् ! तुम यदि रेशमी वस्त्रोसे सन्तुष्ट हो तो हम यहा बल्कलोंसे सन्तुष्ट रहते है । तो बाह्य सन्तोषकी दृष्टिमे तो हम तुम दोनो समान है, पर विशेष बात एक यह है कि दरिद्र पुरुष वह है जिसके बहुत बडी तृष्णा लगी है । यदि मन सन्तुष्ट हो जाय तब फिर कौन धनी है और कौन दरिद्र है ? तृप्ति साधुको है राजाको तृप्ति नही ।

परमे लगाव करनेमे बुद्धिमानी समझनेकी विडम्बना:—अब सत्य समझलो कि बाहरकी जितनी बाते हैं वे सब बेकार है, भिन्न हैं, असार है, उनके लगावसे आत्माका हित नही है । आत्माकी भलाई है तो आत्मस्वभावकी दृष्टिसे है । यही बैठे-बैठे अन्दाजा करलो, जरा विकल्प छोड दो, इस देहके विकल्पको भी छोड दो फिर अशाति नही रहती । विकल्प तो शल्यकी तरह आत्माको दुखी करता है । जिसकी दृष्टिमे आत्मापर दृष्टि नहीं रहती पर्यायको ही आपा समझता है । मैं अमुक जातिका हूँ, अमुक पद्धतिका हूँ, अमुक फर्म वाला हूँ, अमुक रिस्तेदार हूँ, आदि अनेक बाते इसके साथ लगी है जो सब कीचड हैं, इस आत्मकल्याणमे बाधक है, इस देहसे भी अपनेको निराला समझकर जरा अपने आपके अन्त प्रवेश तो करे, मैं तो एक ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान-ज्ञान मात्र हूँ, ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नही हूँ । जहा ज्ञान ज्ञानस्वभावको ग्रहण कर रहा होगा, वह एक ऐसा कठिन दुर्ग है कि वहा कर्म-का प्रवेश नही हो सकता । लोग चिन्तवन करते हैं तो व्यर्थकी चीजो का करते है और उसीमे अपनी बुद्धिमानी भी समझते है । वे रागद्वेष मोहके विषयभूत पदार्थका ही चिन्तन करते और वहा ही अपनी बातें बनाते । जैसी कषाय है वैसी ही अपनी बुद्धि घुमाते और उसमे समझते है कि हम बडे चतुर है । एक सेठ अपनी हवेली के आगे चबूतरे पर बैठकर प्रतिदिन दातून किया करता था । यह बहुत प्राचीन पद्धति है । देखिये दातून करने का रिवाज बुन्देलखण्डमे भी बहुत है और इधर आपके गुजरातमे भी । मगर दातून करने मे कोई आधा एक घंटेका समय बेकार गवा देते हैं । तो वह सेठ प्रतिदिन अपनी हवेलीके चबूतरे पर बैठकर करीब आधा घटे तक दातून किया करता था । उसी जगहसे सामने से ही प्रति-दिन कुछ गाय, भैंस आदि जानवर निकला करते थे । सेठ उन्हे दातून करते समय प्रतिदिन देखा करता था । उन सभी जानवरोमे एक भैंस ऐसी थी कि जिसके सीग सेठको बहुत अच्छे लगते थे । जैसे पजाबकी भैंस सुहावनी लगती है उनके सीग छोटे घेरमे गोलमटोल रहते हैं ऐसे ही सेठको उस भैंसके सीग बडी सुहावनी लगते थे । प्रतिदिन देखते-देखते एक दिन उसके मनमें आया कि यदि इस भैंसकी जैसी सीगे मेरे सिरमे लगी होती तो मैं भी इसी की तरह बड़ा सुन्दर लगता । इसी तरहका विचार करीब ६ माह तक उसके रोज बना करता था । ६ माह पश्चात् एक दिन उससे न रहा गया, वह चबूतरेसे कूदकर अपने

सिरको उस भैंसके सिरसे भिडा दिया इसलिए कि इस भैंसके दोनो सीग मेरे सिरमे लग जावे। अब वहा भैंस विचकी, दोनो लोहू लुहान हो गए, एक ओर वह सेठ गिर पडा और दूसरी ओर भैंस बडी दूर जाकर खडी हो गई। इतनेमे लोग जुडे, तो लोगोने कहा—अजी तुमने बिना विचारे क्या कर डाला। तो सेठ बोला-अरे मैंने बिना विचारे कुछभी नही किया, मैंने तो ६ माह तक खूब विचार किया कि जैसे इस भैंसके सीग हैं वैसे ही मेरे भी लग जायें तो मैं कितना सुहावना लगता ? तो लोगोने कहा—ठीक है, तुमने बिना बिचारे तो नही किया, लेकिन जो उपाय किया वह तो गलत रहा। तो ऐसे ही सब लोगोकी बात चल रही है। हम आत्मस्वरूपके बारेमे तो चिन्तन नही करते। पालतू चिन्तन करते रहते हैं

धर्मका ज्ञात आन्तरिक आश्रय—भैया। कभी सुबुद्धि जगती तो हम धर्म करनेकी बात कभी कभी करते तो हैं कि धर्म करो, धर्म करो, धर्म पर्व आया, पर्यूषण आया, धर्म करो, और धर्म कितना होता है, क्या होता है, इसपर बिचार भी नही करतेकि यह धर्मपर्व है या नगीना पर्व है, जितने स्त्रियोंके नगीना हो, जैसे कानके ततैया, नाककी मकडी, सिरके बिच्छू, कमरके साप आदि जितने भी नगीना (आभूषण) हैं उन सबको पहिननेका मौका इन पर्वो मे ही मिलता है और पुरुषोको जरा—जरासी बातोंमे लडाई ठन जाना, मनके प्रतिकूल बात होने पर जगह-जगह दु खी होना आदिका अवसर इन पर्वके मौकोपर अधिकाधिक आता है, अरे धर्म तो हमारा अपने आपके अन्दर है। प्रभुमूर्तिके दर्शन तो इसलिए किए जाते है कि हमको अपनी सुध आये कि मैं वह हूँ जो हैं भगवान। धर्म तो भाई मोह और क्षोभसे रहित जो आत्माका स्वभाव है उसका नाम धर्म हैं। सो धर्म करे तो पद्धतिसे करे। कोई भी काम हो जब उसे विधिपूर्वक करेगे तभी उसमे सफलता होगी नही तो सफलता न होगी। धर्मकी विधि है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। बाहरी वातोकी हठ मत करे। हठ कभी भी सफलता नही मिलती। हठसे तुरन्त अपने आपके मनमे कलुषता आती है। हठमे कहो या अभिमान कहो, एक ही बात है। तो हठको त्यागकर अभिमान छोडकर अहंकार से हटकर अपने आपमे निर्मान, अकषाय जो आत्म परिणाम है, स्वभाव है उस स्वभावकी सुध लें। अब तक परभावकी-बहुत सुधली मगर अपने अकषायभावकी, अपने इस निर्विकार ज्ञान-स्वरूपकी सुध नही ली। बड़ा कष्ट भोगा।

सांसारिक समागमकी अशरण्यता—राजा भोजकी सभामें कवि लोग बैठे हुए थे, तो कवियोमे एक कविका बाप भी बैठा था, वह पढ़ा लिखा न था। कही यह नियम तो नही कि कविका पिता कवि ही हो, वकीलका पिता वकील ही हो, तो उस कविका पिता बहुत सीधा सादा था, तो राजा ने उसी कविके पितासे कहाकि आप एक समस्याकी पूर्ति करे—क्या

समस्या थी ? क्व याम कि कुर्म हरिणशिशुरेव बिलपति, यो एक चरण बोल दिया, छन्दमे चार चरण होते है तो राजाने कविके पितासे कहा कि तुम इस छन्दको पूरा करो। तो पिता वो जानता न था। वही पासमे उसका लडका बैठा था जो विद्वान कवि था। तो पिता कहता है अपने बेटेसे पुरा रे बापा, (बापा कही कही लडके को भी कहते हैं) याने अपने लडकेसे कहा कि बैटे तुम इसे पूरा करो। तो लडका चू कि विद्वान कवि था उसने अपने पिताके कहे हुए शब्दोसे ही छन्द तैयार कर दिया इसलिए कि राजा यह न समझ सके कि इस कविका बाप मूर्ख है। तो वह छद इस प्रकार बना-पुरा रेवापारे गिरिरतिदुरारोहशिखरे, गिरौ सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकरे, धनु पाणि पश्चान्मृगयुशतक धावति भृश। क्व याम कि कुरुम हरिणशिशुरेव बिलपति। देखिये—उस बापने कहा था-पुरा रे बापा, तो उस कवि ने उसमे रे लगाकर क्या शुरू किया ? पुरा रेवापारे, देखिये शब्द तो उसने वही रखा, आगे रे और जोड दिया अर्थ—आगे रेवानदीके तटपर देखो बहुत गहरा जल है, और दोनो तरफ जगलमे आग लगी है और पीछेसे संकडो शिकारी धनुष वाण लिए एक हिरणके बच्चेके पीछे लगे हुए हैं, तो ऐसी स्थितिमे हिरणका बच्चा विलाप करता है, उस समय वह कहता है—कहां जाऊ, क्या करू ? आगे जाऊ तो नदी के तीव्र प्रवाहमे प्राण नही बच सकते, दायें बाये और जगलोमे भयकर अग्नि जल रही है, उधर भी मेरे प्राण नही बच सकते, पीछे लौटू तो शिकारियो द्वारा प्राण नही बच सकते, अब कहां जाऊ ? क्या करू। यह सोच सोचकर वह हिरणका बच्चा घबडाता है। ठीक यही हाल तो हम आपकी है। न जाने कितने कितते उपद्रव चारो ओरसे छा रहे हैं ऐसी भयकर स्थिति है हम आपकी क्या ? कि कर्मका विपाक, कर्मका उपद्रव कर्ममे चल रहा पर यह चेतन है ना, बाह्यमे झाकी हुई उसको पकडा, उसमे लगाव रखा तो सारे उपद्रव आ गए। कुटुम्बके झगडे जुदे, देश के झगडे जुदे, सरकारके झगडे जुदे, यो चारो ओरसे सब उपद्रव ही उपद्रव आ रहे। और कुछ नही तो बैठे—बैठे यही सोचकर चिन्तित रहते कि न जाने सरकारके कैसे कानून बन जाये, रात दिन शल्यमे सब रहते कि नही, चिन्तामे रहते, कितने, उपद्रव आ पडे ? और भीतरमे देखो तो कर्मविपाकके उपद्रव हैं। ऐसी स्थितिमे जब कि हमारे चारो ओर उपद्रव छाये हुए है ऐसी स्थितिमे क्या करू ? कहा जाऊ ? ऐसी स्थिति है, लेकिन यहा समाधान है अपने आपके अन्तः विराजमान जो कारणसयसार है तत्त्व है परमपारिणामिक भाव, है शुद्ध ज्ञानस्वरूप निरपेक्ष तत्त्व है उसकी ओर दृष्टि दे, उसका सहारा लें। सहारा ले किसका रहे ? बाहरमे जिस चाहेको मित्र समझते। अरे परमार्थ मित्र तो पंचपरमेष्ठी है। दूसरा और कोई मित्र नही, उसके अलावा वे ज्ञानी पुरुष भी मित्र हैं जो विषयोसे हटाकर धर्मके

मार्गमे लगाते हो ऐसा मित्र कौन है वास्तवमे ? तो ऐसे अपने आपके स्वरूपपर विचार करे। ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चारो कषायोंसे जितना दूर रहनेका प्रयत्न करे उतना भला होगा। यहा तो लोग छोटी सी विभूतिमे तरस जाते है उसके पीछे क्रोध, मान, माया लोभ आदिक कषाये करते है, और मद कषाय करते रहे, दूसरेको क्षमा करके रहे। अधर्म से दूर रहे, ऐसा अगर निष्पाप जीवन विताये तो इससे करोडो गुना विभूति एक समय बाद मिल जायगी। वास्तविकता तो यह है कि समस्त लोक की विभूति हो तो भी उसे जीर्ण-तृणवत समझो। क्या रखा है। तो अपने आपके स्वरूप की ओर आवो। बाहरी पदार्थो से अब मुख मोडो और अपने आपके भीतर आवो।

मोहप्रकृतिविलासकी सभ्य प्रकृति—गुरु जी सुनाते थे कि कोई एक घुडसवार कही जा रहा था, उसे कही जाते हुए १००—५० आदमी दिखे। उसने पूछा—भाई आप लोग कहा जा रहे है ? तो उन लोगोने बताया कि हम लोग एक मण्डपमे जा रहे हैं···किसलिए ? ···भाई वहाँ कोई कथा होती है तो उसे सुनने जा रहे है। वह बात सुनकर उस घुड़सवारने अपना घोडा वही किसी जगह छोड दिया और खुद भी उसी कथा मण्डपमे चला गया। वहां कथा सुना। उस दिन ससार, शरीर और भोगो की अरुचिताका वर्णन चल रहा था। उस कथाको सुनकर उसे वही वैराग्य हो गया और घोडेको वही छोडकर जंगल गया, साधु महाराजसे दीक्षा ले ली। जगलमे ही रहने लगा। १०—५ वर्ष बाद फिर वह उसी शहरमे आया, देखाकि उसी मण्डपकी ओर काफी लोग जा रहे थे। पूछाकि भाई आप लोग कहां जा रहे है ? तो उन्होंने बताया कि हम लोग कथा मण्डपमे कथा सुनने जा रहे है।···कबसे जा रहे ? तो किसीने कहा २० वर्षसे किसीने कहा ३० वर्ष से और किसीने कहा ४० वर्ष से। लो वह साधु बोला अरे वीर तो तुम लोग हो। मैं तो एक दिन ही कथा सुनने गया तो उसकी चोट न सह सका सो इस साधुरूपमे हो गया, तुम लोग इतने—इतने वर्षसे कथाकी चोट रोज—रोज सह रहे हो तो वीर तो तुम लोग हो। देखो बात जरा सी है, दृष्टिके जरा से फेरसे प्रकाश और अधकारकी बात चलती है। जैसे छोटे बल्बके जरासे फेरमे अन्धकार और प्रकाशका वातावरण बन जाता है। जिधर बल्ब का मुख है उधर प्रकाश और जिधर से मुख मोड दिया उधर अधकार। ऐसे ही अपना उपयोग है। बल्बकी मोड़में तो फिर भी कुछ क्षेत्रका अन्तर आ जायगा, मगर उपयोगकी मोडमे तो क्षेत्रका भी अन्तर नही आता। यह उपयोग बाह्य पदार्थोकी ओर मुख किए हुए है कि यहां विभाव हैं, अन्धेरा है, विपत्ति है, विडम्बना है और जरा सी देरमे अपने आपके उन्मुख हो गए वहां अन्त. प्रकाश है, सर्व विडम्बनाओका विनाश है। एक जरा सी कलाकर जरा अपना सब कुछ बिगाड़ और सुधार निर्भ-

र है फिरभी हम उसे न करना चाहे ऐसा एक अलौकिक समागम पाकर तो फिर बतलाओ कि फिर और करनेके दिन कब होंगे ? सब जीवोको समझो कि मेरे ही समान सब हैं। वह स्वरूप विज्ञान है चैतन्यमात्र, सब जीव एक है। ये परभाव क्यो लग बैठे कि यह अमुक है, यह गैर है. और मैं यह हूँ, यह मेरा कुटुम्ब है, यह दूसरेका है। अरे तेरा जब शरीर तक नही है और श्रद्धा में तू ऐसा विष पी रहा है, तो देख यहा का विष पीनेसे एक बारही मरण होगा मगर यहा मिथ्यात्वका विष पीनेसे अनेक जन्मोमे जन्ममरण होते जायेगे इससे तो अच्छा यहाका हालाहल विष पी लेना है। अज्ञानीको तो अज्ञानका विष लगा ही है लेकिन मिथ्यात्वका विष इतना तेज है कि न जाने कितने भवोतक बना रहे। तो इस बातको नही सोचते।

अन्त परमात्मतत्त्वका ज्ञाननेत्रसे दर्शन—शरण परमात्मतत्त्वका भीतरसे दर्शन होगा, विकल्पोसे न होगा, क्षोभ से न होगा। धीरतासे होगा, और धीरता भी तब आती है जब यह निर्णय हो जाता है कि मैं किसी पदार्थका कुछ करनेमे समर्थ नही। होता है, निमित्त नैमित्तिक योगसे होता रहता है। देखो कोई लडका किसी लडकेसे २० हाथ दूर खडा हो, खडे-खडे वह अपनी अगुली मटकी रहा हो, जीभ निकाल रहा हो तो २० हाथ दूर खडा वह दूसरा यह सोचकर दुखी होता है कि देखो यह मुझे चिढा रहा है, अरे वह चिढाता कुछ नही जैसे कहते है कि दूसरेके आखकी जरा भी फुली हो तो वह जल्दी दिख जाय और अपनी आखमे बड़ा टेटा हो तो भी नही दिखता। दूसरेमे जरा भी गलती हो तो झट नजर आ जाती है कि यह कैसा मोहकर रहा है, यह पागल हो रहा है। जाना तो कुछ साथ है नहीं। घर तो इसका है नही फिर क्यो मोह कर रहा ? दूसरेको तो यो नजर आता और खुदकी गल्ती कुछ नहीं देखता। जैसे जगल मे कोई आदमी चला जा रहा था तो देखा कि वहा अचानक ही आग लग गई। चारो तरफ आग फैल गई अब वह पेडपर चढकर खडे होकर अपनी जान बचानेके लिए पेडपर आराम करने लगा। थोडी देरमे आग बढ़ती हुई बिल्कुल निकट आ गई, वहा उसे कुछ मौज आने लगी थी, वह देखो हिरण मरा खरगोश जला, अरे वह देखो हाथी भी अग्निसे जलकर छटपटा रहा ?…पर उसे यह पता नही कि जिस पेड पर मैं बैठा हूँ वह भी जल जायगा और मे भी जल जाऊगा। तो ऐसे ही यहा देख लो दूसरोकी विपत्ति तो आखोके सामने है पर अपनी विपत्तिपर कुछ नजर नही है। आप लोग रोज सुबह नहाते हो, यहा मदिर आते हो, दो दो चार चार फर्लांग चलकर आते हो। इतनी तकलीफ करके यहा प्रभुदर्शन करने आते तो क्यो आते ? अरे इसलिए आते कि मुझे मेरा स्वरूप प्राप्त हो जाय और ये सारी प्रवृतिया, ये सारे नटखट मुझे न करने पेड जब तक कि ससारदशा है

और मै ऐसी अवस्था पाऊ कि हमे ये कोई कष्ट ही न करने पड मै तो अपने ज्ञानस्वरूपमे ही रत रहा करू, आनन्दमग्न रहा करू, ऐसा मार्ग बनानेके लिए यहा मन्दिरमे आते है, भगवानके स्वरूप को देखते है इसलिए कि मेरे ये झझट संकट सदाके लिये छूट जाये और मै स्वय परमात्मस्वरूपमे मग्न ऐसा जिसे मिले अन्त परमात्मत्त्व, जो कषायोसे विवित आत्माका स्वरूप है उसे अपनाये और भीतरमे ऐसा विश्वास बनाये कि मुझे ज्ञाताद्दष्टा रहना है, ऐसा चैतन्यमे प्रतपन हो मै तो ऐसा करके ही रहूँगा।

कषायके आश्रयमें आत्मविनाश और अकषाये अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे आत्मविलास—भैया! कषायकी पकड मे खुदका विनाश होता है, दूसरे का कुछ नही कर सकता कषायकी पकड मे बुरा खुदका है, दूसरेका नही, यह निर्णय बनावे और एक आरामसे अपने आपके कषायको दूर करे। जब शरीरसे थक जाते है परिश्रम करके तो पडकर आप आराम लेते कि नही ? तो जब मनुष्य थक गया विकल्प कर करके, तो अब तो जरा मनको आराम दें। सभी कषायोमे कठिन कषाय है लोभ। प्रकृति नही छूटती यह द्वैत भाव मचा रखा कि यह मेरा है और यह दूसरे का है, यह बडा कठिन अधकार है। श्रद्धामे अगर परमाणुमात्र भी राग रहता है तो वह आत्माका ज्ञाता नही होता, और आत्माका ज्ञान नहीं तो फिर उसने न जीव जाना न अजीव। जब अपने आत्माका ज्ञान होगा तो वहा फिर ये कोई प्रकारके विकार भाव न रह जायेगे, वह फिर काहे को रोष करेगा, काहेको घमड करेगा, काहे को मायाचार करेगा ? मायाचार भी किसलिए करता ? साफ साफ बात है, भाई गुजारा करना है ? आपको दो बातो से मतलब है। एक तो आजीवकामे फर्क न आये और दूसरे धर्मपालन का कार्य चलता रहे। धर्म के प्रसगमे आना बडा कठिन है और गप्प सप्प के प्रसंगमे आनेमे क्या देर लगे ? गप्पशालायें तो बड़ी जल्दी खुल जाती है। अगर अपने आपमे तत्व ज्ञान वाले धर्म का प्रवेश हो, भेदविज्ञानकी बात आये यह बात बड़ी कठिन है। अपने स्वरूपकी सम्हाल, आपको सम्हाला तो सब सम्हला, वो चारोकषायो से रहित, विकल्प जालसे रहित,अपने आपकी परिणतिसे परिणमने वाले आत्मवस्तुकी स्वतन्त्रता देखो, आत्मदर्शन करो मैं चिदानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व हूँ। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् जो सत् है उसमे निरन्तर उत्पाद व्यय चलता रहता है, यह वस्तुका स्वभाव है। मैं अपने आपके उत्पाद से परिणमता रहता हूँ और फिर भी बना रहता हूँ, मेरा दूसरे से कोई लेन देन नही कोई मेरी परिणति नही बनाता मैं दूसरे की परिणति नही बनाता। जगतमें बाहर मेरे करने योग्य कुछ काम नही है। कर ही नही सकते। निमित्त नैमित्तिक योगसे होना होगा हो जायगा, पर मैं किसी भी बाह्य पदार्थ मे कुछ नही करता हूँ ऐसी स्थिति मे क्या है, वह

क्यो क्रोध करेगा ? किस पर मान, माया, लोभ करेगा ? अपने को विश्राम मे रखेगा। भाई पवित्र जो जैन शासन पाया है, उसका आभार प्रकट करनेमे निष्पक्षको कोई सकोच नही होता।

पुण्य पाप नामक दो तत्त्व बढ़ाकर ९ तत्त्व कहनेकी एक प्रसंगोचितशका—मोक्षका उपाय बताने वाले इस मोक्ष शास्त्र मे सर्व प्रथम यह कहा गया कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षमार्ग है। द्वितीय सूत्र मे बताया कि सम्यग्दर्शन क्या है ? प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोका श्रद्धान करना, जो पदार्थ जिस स्वरूप अवस्थित है उस रूपसे ही पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है ? तो वह होता है निसर्ग और अधिगम से। यो दो सूत्र कहने के पश्चात् यह बताना आवश्यक हो गया कि वे तत्त्व है कितने ? तो चतुर्थ सूत्रका इस प्रश्नके उत्तर मे अवतरण हुआ है। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष यह ७ तत्व है। ये ही तत्व सब श्रद्धान किये जाने योग्य है अन्यथा मोक्षका उपाय न बन सकेगा। इस विषयमे बहुत कुछ कहा गया। फिर थोडा सा कुछ इस पर भी विचार किया गया कि ७ ही तत्व क्यो है ? कम ज्यादह क्यो नही कहे ? इस प्रसग मे एक यह आशका हो सकती है कि पुण्य और पाप भी तो पदार्थ है। और कही कही ९ तत्व कहे भी गए हैं। तो यहा भी ७ की जगह ९ तत्व कहना चाहिए। पुण्य और पाप और बढा देने चाहिए। क्यो बढाना चाहिए कि आखिर पुण्य ज्यो, बाधते हैं। उनका उदय होता है तब उनका फल भी भोगा जाता है। या पुण्य पाप बन्धके फलभी है, तो इन दो हेतुओसे चू कि पुन्य पाप बँधने योग्य हैं और बन्धके फल हैं अत पुण्य पाप की उपेक्षा नही करना चाहिए। दो और बढाकर ९ तत्व कहना चाहिए। क्योकि पुण्य पाप इन दोनोके श्रद्धानन हो तो बन्धका श्रद्धान सही नही बन सकता पुण्य पाप की श्रद्धा नही है तो पुण्य पाप रूप ही तो बध है सो बध की श्रद्धा न हो सकेगी। और फिर कोई फल भी बधका न कहलायगा, अगर पुण्य पापकी बात न कहे तो कैसे लोग जाने कि बध से नुकशान है और बध का यह फल है ? इसके कारण पुण्य और पाप दो पदार्थ और माने जाना चाहिए। तो यह एक शकाकारकी आशंका है।

पुण्य पापका आस्रव व बन्धमे गर्भितपना होने से पुण्य पापको अलग से कहने की अनावश्यकता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शकाके समाधान मे कुछ सोचे। पुण्य पाप बढाये जाना आवश्यक है या नही तो देखो-पुण्य पाप बध ये दोनो ही आश्रव से अलग वस्तु नही है। जो बध है उसीके ही दो भेद है पुण्य और पाप। आश्रव है उसी के दो भेद हैं पुण्याश्रव और पापाश्रव। तो इन्हें अलग से कहना चाहिए। अगर

पुण्य पापको अलगसे कहनेकी हठ बनायी जाय तब तो वहुत-बहुत दोप आयेगे। कोई कहेगा गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा ये भी कहने चाहिए, ये भी तत्त्व है, जिसतरह गुप्ति आदिक नही कहे गए कि वे सम्वरके भेद हैं इसीतरह पुण्य पाप भी नही कहे गए कि ये आश्रव के भेद है। यह तो एक समाधान पटतरका समाधान है। अब युक्ति देखो शकाकारने जो दो भेद दिये थे, कि पुण्य पाप को अलग कहना चाहिए, क्योकि ये वधने योग्य है और बधके ये फल है, अब तो इन दो युक्तियोपर विचार करे। जरा ध्यानसे सुननेसे भैया सब समझमे आयगा। बात सही सही कही जा रही है। ७ तत्त्व तो हर एक कोई बोलता है। ७ की जगह ९ क्यो नही कहे गए ? यह एक आशका है। वैसे प्रयोजनके लिए कही कही पुण्य पाप भी कह दिये हो तो भी कोई अनुचित बात नही। जैसे समयसारमे जो अधिकार गाथा है उसमे ९ तत्त्व भी बताये गए, वहा कोई हर्ज नही, लेकिन जहा सूत्र रचना हो रही हो वहा इस बातका ध्यान दिया जाता है कि कमसे कम बात कहे, गुजारा चले, बात स्पष्ट हो उतनी बात कहना चाहिए। यह सूत्रकारोकी पद्धति होती है। तो पुण्य पापके बिना भी तत्त्व श्रद्धावी योग्य बात कही जा सकती। पुण्य पापके विकल्प आश्रव है, फिर भी विचार कर शकाकारने यह कहा था कि चू कि पुण्य पाप वधने योग्य है इस कारण इनका भी नाम लेना चाहिए सो जरा शंकाकारकी इस प्रथम युक्तिपर विचार करे। पुण्य पाप क्या बधने योग्य है ? अगर बधने योग्य मानते तो यह मानना पडेगा कि बधनेसे पहिले भी वहाँ पुण्य पाप का नाम पडा है, लेकिन ऐसा तो नही है। जब बन्धते है उसी समय उनमे पुण्य पाप का भेद पडता है। जीवने शुभ या अशुभ कर्मबन्ध किया, कर्मबन्धनके साथ ही उनमे पुण्य पाप की प्रकृति पडती है। जैसे कर्मबन्धनसे पहिले कर्म वर्गणा कहलाती है ऐसे ही बन्धनसे पहिले पुण्य पाप कहलाये ऐसा नही। है पुण्य पाप तो तब कहलाते है जब बन्धते है। बन्धनसे पहिले वहां भेद नही पडा कि ये कर्म पुण्य परमाणु के है और ये पाप परमाणुके है। बन्धकालमे शुभ अशुभ भावके अनुसार पुण्य बन जाता और पाप बन जाता तो बन्धय जो हेतु दिया था वह युक्त नही बैठता

शकाकार द्वारा कथित बन्धव्य व बधकाल हेतु पर विचार—अब शकाकारकी दूसरी बातपर विचार करे इस प्रसगमे पुण्य पाप बधके फल होते है, यह हेतु शकाकारने दिया था, यह भी ठीक नही। पुण्य पाप वधके फल नही, है किन्तु वे स्वय आश्रव है, वंध है। बन्धके फल तो सुख दु ख साता असाता, याने निर्जरा है बन्धका फल। बन्ध है तो उसका फल क्या हैं ? अलग हो जायगा, यह उसका फल है। कर्म बन्धे है तो उनकी आखिरी होगी। क्या ? कि मिट जायगा जैसे जीवन पाया है तो उसकी आखिरी होगी ? क्या कि मरण

होगा ऐसे ही बन्ध गए है कर्म तो उनकी आखिरी होगी, निर्जरा होगी, चाहे फल देकर निर्जरा हो चाहे बिना फल दिए निर्जरा हो। बन्धका फल निर्जरा है, पुण्य पाप नही, इसलिए पुण्य पापको अलगसे कहनेकी आवश्यकता नही। ये बन्ध और आश्रवके भेद कहलाते है। तो इस तरह तत्त्व ७ है यह बात युक्तिसगत बैठती है। पुण्य पाप तो बन्धके भेद हैं, क्योकि बन्ध दो प्रकारका कहा गया है (१) पुण्यबन्ध (२) पापबन्ध। बन्धसे पहिले पुण्य पाप नही है, जैसे कर्मबन्धसे पहिले कर्मपरमाणुओमे कार्माण वर्गणाओका नाम है और वे बधती है, ऐसे ही बन्धसे पहिले पुण्य पाप नाम नही होता। बन्ध गये, उनमे पुण्य और पाप का रस पड गया। जैसे पानी बरसा और बादमे गिरा ना पानी, तो कोई पानी नीमके पेडमे आया कोई आमके पेडमे आया और कोई अगूरके पेडमे आया तो जो नीमके पेडमे पानी आया जडने सो वे जल परमाणु तो कडवे बन जाते हैं और जो पानी अगूर आम आदिके पेडोके जडमे आया वे जल परमाणु मीठे रसके बन जाते हे। तो यह भेद तो नही है कि नीम और अगूरपर आनेसे पहिले इस पानीमे दो भेद पडे हों कि यह पानी तो मीठा बनेगा और यह कडवा। उन पेडोकी जडमे आनेसे पहिले पानी एकरूप है वहां दो भेद नही हें, पर पेडमे जब आया पानी जब बधा तो उसमे दो फाटे पडे। इसीतरह कर्मके बधनेसे पहिले दो रूप नही है कि कोई परमाणु पुण्यरूप हो और कोई पापरूप हो लेकिन जब बंधते है तो कषायभावका निमित्त पाकर बधने हे। तो जैसा कपायमे अनुभाग है, शुभ अशुभपना है उस तरहका वहा पुण्य पापका भेद पडता है। पुण्य पाप तो बधके विकल्प है, आश्रवके विकल्प हे। ये कोई अलगसे तत्त्व न मानना चाहिए, इन ७ से अतिरिक्त तत्त्व माननेकी आवश्यकता नही, यह बात समझनेके लिए सोच ले कि कोई कारणसे किसी प्रयोजनसे अगर ७ तत्त्वोसे अतिरिक्त मान लिए जाते हे कोई तत्त्व तो यो तो फिर कोई व्यवस्था न रहेगी। निर्जरा भी एक क्यो मानते, दो माने। सोपक्रम और निरुपक्रम याने फल देकर झडने वाली निर्जरा और बिना फल दिए झडने वाली निर्जरा। सम्बर के भी कई भेद है उन्हे भी अलग अलग तत्त्व मान लिया जावे फिर तो कहा भी व्यवस्था नही बन सकेगी, अत जीवादिक ७ तत्त्व मोक्षके प्रयोजनभूत है ऐसा जो कहा गया है वह युक्ति सगत बात है।

बन्ध और मोक्षके परिचयका महत्त्व—देखिये—बँध और मोक्ष इन दो का भले प्रकार स्वरूप समझने वाला पुरुप स्पष्ट और नि.शक रहता है। बध है, यही दु.ख है। यही क्लेश है। ससार मे कही भी सुख शान्ति, नही है। यह बात भली भाति सब परखा होगा। भ्रम एक ऐसा कठोर विप है कि जिस भ्रमसे मूर्छित होकर यह जीव महान विपत्ति भोगता है। जब स्वरूप तो हमारा आपका परमात्मस्वरूपकी तरह शुद्ध अनन्तज्ञान, अनन्त

दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका स्वभाव रखने वाला है। कष्टका यहा नाम नही लेकिन जब स्वय हो ऊधम मचा रहे है, बाह्य पदार्थोंको अपना मान रहे है, जो नही है, जो अनोखा है उसे कभी करना चाहे तो उसको तो क्लेश होगा ही, याने यह मोही जीव भगवान से भी बढकर बनना चाहता है, कैसे कि भगवान तो सर्व पदार्थोंको जैसे हैं वैसे जान रहे, आत्माको आत्मारूपसे जाना, पर पदार्थ पररूपसे जान गए। भगवानके ज्ञानमे तो इस तरह आया, लेकिन यह मोही परपदार्थोंको आत्मारूप बनाना चाहता है देखो इसमे कितनी हिम्मत है, कितना दु साहस है कि यह भगवानसे भी बढ़कर चलता है, तो एक कहावत है कि जो वडेसे भी बडा बननेको चलेगा तो उसकी खैर नही होती। यह मोही जीव भगवानसे बडा बननेकी चाह कर रहा है तो यह स्वत दु खी तो होगा ही। जैसे भगवान तो सीधे सादे जो जैसा है उसे वैसा जान रहे, सब पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे परिणमते है, किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थमे लेन देन नही है। निमित्तनैमित्तिक भेद है यहतो है एक तथ्यकी बात। इतना होनेपर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थकी परिणति करता नही है। सब स्वय सत् हैं, स्वतत्र है, ऐसा निरख रहे है ना भगवान, लेकिन ये मोही पुरूष उससे बढकर निरख रहे हैं। परकोआत्मारूप से मानने की यह हुज्जत कर रहा है, मेरा ही तो सब है, तो उसे पद पद पर क्लेश है। जो यह जानता है कि ससारमे सुख मिल सकता है उसको पद-पद पर क्लेश होगा और जो समझता है कि ससारमे तो सुखका नाम नही है। जैसे कोई एक सेठ था वह किसी अपराधमे गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। अब वहा तो चक्की पीसनेका काम भी उसे करना पडता, रस्सी बनानेका काम भी उसे करना पडता। जो काम उसने जीवनमे कभी न किया था वे वहा करने पड रहे थे। तो वह सेठ वहा बडा दु.खी रहा करता था। तो जेलमे भी तो ऐसा होता है कि कैदी कैदी परस्परमे मित्र बन जाते है। तो वहा उस सेठके एक कैदी मित्रने, सेठ के दु.खका यह कारण जान लिया। एक दिन उसने पूछा—बताइये सेठ जी आप इस समय जेल मे हैं कि ससुराल मे ? जेलमे। तो जेल मे ऐसा करना ही पडता है। यह कोई ससुराल थोडे ही है जो आरामसे पडे रहो। तो सेठ की समझमे आ गया कि अरे यहा तो ऐसा करना ही पडेगा, लो उसका दु ख कम हो गया। तो जो यह सोचे कि मै तो इतना बड़ा हूँ, मेरे पर इतने कष्ट क्यो आये ? यह तो मेरे पर अनहोनी हो गई, उसे तो बडा कष्ट होगा, और जो यह सोचले कि अरे यह तो संसार है, दु खका घर है, यहा सुखका नाम नही, यहाँ तो अनहोना कुछ होता नही, यहां तो ऐसा ही होता है, लो इतनी बात सोच लेनेसे उसके दु खमे काफी अन्तर आ जायगा।

विशुद्ध ज्ञानकी शरण्यता—विशुद्ध ज्ञान ही हम आपका शरण है। जगतमें कोई भी

जीव आप के लिए शरण नही है। भगवानका यही उपदेश है कि अपने आपको समझो। अपने आपको ही अपना शरण मानो। किसी दूसरेको यदि अपना शरण मानोगे तो झझटो से नही बच सकते। लोग सुख शान्तिके लिए अनेकानेक उपाय किया करते है, बडे बडे कष्ट सहते हैं, मगर बाहरसे कही सुख शान्ति प्राप्त नही होती। अगर अपने आपके भीतर ही अपने ज्ञानका काम कर लिया जाये, यथावत जान लिया जाय, जो जैसा है उसे वैसा जान लिया तो फिर तकलीफकी कोई बात नही है। वहा सुख शान्तिकी प्राप्ति होगी। इस लोकमे सुखी, शान्त, आनन्दमय, अनाकुल कौन है बतलाओ ? है केवल एक भगवान। अरहत भगवान, सिद्ध भगवान, सशरीर परमात्मा, ये ही अनाकुल है। इससे नीचे तो निराकुलता न कहेगे। और सर्वाधिक दु खी कौन है ? वहिरात्मा, मोही, मिथ्यादृष्टि, जो बीचमे रहने वाले जीव है, मायने सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, सम्यग्दृष्टि मुनि ये कुछ कष्ट पाते हैं और कुछ आनन्द पाते है। कोई कम आनन्द पाता कोई अधिक, पर आनन्द पाने के वे सभी अधिकारी है। तो यह समझो कि भगवान है पूर्ण सुखी, सम्यग्दृष्टि है कुछ कम सुखी और मिथ्यादृष्टि हैं नितान्त दु खी। जैसे देखा होगा कि बरसातके दिनोमे मेढक बहुत खुश रहते है। तो एक बार एक मेढक के ऊपर दूसरा तथा दूसरेके ऊपर तीसरा, यो तीन एकपर एक बैठे हुए थे। तो उनमें से सबसे ऊपर वाला मेढक बोलता है। हमें तो बडा सुख, हेच न गम याने हम तो बडे आरामसे बैठे है, तो बीच वाला मेढक बोलता है—कुछ कुछ कम-याने हम कुछ कम आराममे बेठे है और सबसे नीचे वाला मेढक कहता है मरे तो हम। यही दशा यहा भी समझिये। परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा मे भी यही बात देखिये परमात्मा कुछ कहता तो नही है, पर अलकारमे समझलो। परमात्माकी यही पुकार है कि हमे तो हेचन गम। अन्तरात्माकी पुकार है कि कुछ कुछ कम, और वहिरात्माकी यह पुकार है कि मरे तो हम देखिये हम आप चतुर्गतियोके भ्रमण करते नाना तरहके विकल्प मचाते। ये सब दु खरूप है। कदाचित् आज कुछ पुण्यका उदय है। सुख साधन मिले हुए है तो इन्हे महा विषैले समझो इनके सेवनसे घोर दु ख उठाना पडेगा। यहा जो लोग देख देखकर खुश हो रहे है कि यह मेरा घर, ये मेरे बच्चे, ये मेरे परिजन आदि, तो इन सबके प्रति मोह किए जानेका फल क्या होगा ? बस कष्ट ही कष्ट भोगना पडेगा। तो ससारकी इस क्षणिक सुख सामग्रीको पाकर इनमे मुग्ध मत होओ। ये भी जीवके कर्मविपाक है।

ज्ञानप्रकाशमे आकुलताका अनवकाश—कोई एक ज्ञानी सेठ था। तो उसके कई मुनीम थे। तो जो हेड मुनीम था वह सेठको देखकर बडा आश्चर्य किया करता था कि देखो यह तो कितना बडा धनिक पुरुष है लेकिन इसे रच भी अभिमान नहीं होता, कभी कोई छल

कपट आदि नही करता, **और** देखो कितनी इसकी उदार वृत्ति है कि कभी कोई कुछ मांगता तो उसे झट दे डालता एक बार क्या हुआ कि एक जगह से तार आया कि सेठ जी की अमुक फर्ममे ५ लाखका टोटा पड गया । तो इस समाचारको मुनीमने सेठ को दिया तो सेठने वहा यही कहा कि हा हो गया होगा टोटा ठीक है। वहा मुनीमने देखा कि सेठको रचभी विषाद (शोक) न हुआ तो वह मुनीम बड आश्चर्यमे पड़ गया। कुछ समय बाद फिर किसी दूसरी जगहसे खबर आयी कि दूसरी जगह के किसी काम मे जब हिसाब देखा गया तो उसमे २५ लाख का फायदा हो गया । यह भी समाचार मुनीमने सेठ को सुनाया, तो वहा भी सेठने यही कहा कि हा हो गया होगा फायदा, ठीक है मुनीम ने वहा भी यही पाया कि सेठको रच फी हर्ष न हुआ तो वह आश्चर्य से भर गया. पूछा— सेठ जी आपने न तो फायदा होनेपर कुछ हर्ष माना और न टोटा होनेपर कुछ बिपाद माना, तो इसका क्या कारण है ? तो वहा सेठने यही उत्तर दिया कि देखो ये सब बाहरी बाते है, इनसे मेरे आत्माका क्या सम्बन्ध, आया तो ठीक न आया तो ठीक। वे सब बाहरी परिणतिया है, वैसा हुआ तो ठीक न हुआ तो ठीक इसमे मेरे आत्माका क्या लगता है ? फिर काहे के लिए हर्ष और काहेके लिए विषाद ? देखो जैसे कहते है ना तिलकी ओट पहाड याने आख के तिलके आगे कोई तिल बराबर कागज या कोई चीज लगा ली जाय तो सारा पहाड ढक जाता है, बस यही बात यहा है। यहाँ अपने आत्म प्रदेशोमे जहा पर पदार्थ सबधी विकल्प लगाया वहा समझिये कि सारा अन्धकार छा गया। यहा का प्रकाश परखो, यही परमात्मस्वरूपका दर्शन है। बाहरी पदार्थोमे ममत्व मत रखो। जो है सो ठीक है। यह कुछ चीज नही है। ये कामकी चीज नही है, बल्कि मेरा बिगाड करने वाली है ।

लालचमे संतजनोके प्रति भी संशय कर जानेके पापकी नौवत—एक बार एक मुनि महाराजने किसी नगरमे चातुर्मास किया। तो शहरसे बाहर एक पेडके नीचे उन्होने अपना निवास स्थान बनाया। तो वहा का जो एक प्रमुख सेठ था उसके मनमे आया कि हम भी मुनिराजके साथ चातुर्मासभर रहकर धर्मसाधना करेगे। उसका लडका था कूपूत सो उस सेठ ने अपने घरमे रखे हुए हीरे, जवाहारात, रत्न एक हाडीमे भरकर उसी पेड़के नीचे जहा कि उसे मुनिराजके साथ रहना था वही एक गड्ढा खोद कर गाड दिया। अब वह सेठ निशल्य होकर धर्मसाधना करने लगा। अब उस चातुर्मासके ही बीचमें सेठके कूपूत लडकेको किसी तरह मालूल पड गया तो मौका पाकर एक दिन वह उस हाडीको निकाल ले गया। सेटको कुछ पता न पड़ा। मुनिराज तो चातुर्मास पूरा होनेके पश्चात् किसी अन्य

नगरको विहार कर गए, इधर सेठने जब अपना अर्सफियो का हंडा खोदा तो गायव । सेठके मनमे आया कि देखो यहा हम और मुनिराज दोही व्यक्ति रहते थे । कोई तीसरा व्यक्ति तो यहाँ आता न था । फिर और कौन ले जा सके ? मालूम होता है कि इसमे मुनि महा-राजका कुछ हाथ है । सो वह सेठ उन मुनिराजके पास पहुँचा । उनसे सीधा यह तो न कह सकता था कि तुमने हमारा अर्सफियोका हडा चुराया, क्योकि वह ज्ञानी पुरुष थे । समाजमे उनकी बडी प्रतिष्ठा थी । तो सेठने वहा पर कुछ ऐसी ऐसी कहानिया कही जिनसे यह स्पष्ट मालूम होता था कि देखो हमने चार महीने तक मुनि महाराजकी सेवा सुश्रूषा की फिर भी हमारा धन उठा लाये इस तरहकी ८ कहानिया सेठने कही, और ८ कहानिया मुनिराजने भी कही । मुनिराजके भी कहने का आशय यही था कि अरे सेठ तू व्यर्थ ही मेरे ऊपर भ्रम कर रहा है, मैंने नही चुराया । भले ही उन कहानियोका मर्म अन्य लोग न समझ सकते थे मगर सेठ तो जानता ही था । और तो मुनि महाराज ने जो ८ कहानियाँ कही थी उनमे से एक कहानी हम आपको सुनाते हे—देखो सेठ जी, एक ब्राह्मणके घर नेव-ला पला था । वह घरमे सब सुध रखता था कि कोई नुकशान न हो जाय । तो एक बार वह ब्राह्मणी अपने छोटेसे बच्चेको पालनेमे सुलाकर खुद कूवेंमे पानी भरने चली गई कुवा तो घरसे बाहर कुछ दूर था । देहातोमे तो बड़े—बडे घरोंकी स्त्रिया भी कूवेमे पानी भरने जाती हैं । तो ब्राह्मणी कुवे मे पानी भरने चली गई । इधर क्या हुआ कि घरमे उस पालने के पास एक जहरीला काला सर्प निकला और बच्चे को डसने के लिए पालनेकी ओर बढा नेवलेने सर्पको देख लिया और उसे पकड कर उसके टुकडे टुकडे कर दिए, ब्राह्मणीके बच्चे की रक्षा करदी । और मारे खुशीके वह झट दरवाजेपर आगया अपनी मालकिन को खबर देनेके लिए । उसका मुख तो खून से भिगा ही था सो उसे देखकर ब्राह्मणीने सोचा कि अरे आज तो इसने मेरे बच्चेका काट डाला । सो मारे क्रोधके उसने पानीसे भरा हुआ घडा उस नेवलेपर पटक दिया । नेवला मर गया । जब ब्राह्मणी घरके भीतर गई तो क्या देखा कि बच्चा खेल रहा था और पास ही सर्पके टुकडे टुकडे पडे थे । ब्राह्मणी सारी बात समझ गई और वहाँ अपना माथा धुनने लगी । हाय व्यर्थ ही मैंने भ्रममे आकर निरपराध नेवलेकी हत्याकर दी । यो कथा तो मुनि महाराज ऐसी कहते जाते थे, इससे आगे कुछ नही बोलते थे । वे सारी कथायें सेठका वह कुपूतभी सुन रहा था उसने सारी कथाओका मर्म भलीभाति समझ लिया । उससे अधिक और समझ ही कौन सकता था ? तो वहां उस कुपूत ने कहा पिताजी आप व्यर्थ ही मुनिराजपर भ्रम कर रहे हैं । आपका अर्सफियोका हडा तो मैंने चुरा-या था । वह घरमे अमुम जगह रखा है आप यह लीजिए चाभी और घर जाकर अपना

धन लीजिए, मै तो अब घर न जाऊंगा, यहां मुनिमहाराजके पास दीक्षा लेकर धर्मसाधना करूंगा। सो वह कुपूत वही साधु हो गया। तो भाई बाह्य पदार्थोके प्रति जो इतना लगाव लगाया जा रहा है यह तो तिलकी ओट है, इससे सारा अन्धकार छा जाता है।

संसारको दुःखमय जानकर व अन्तस्तत्त्वको दुःख रहित जानकर संतोष धारण करने का अनुरोध—भैया एक यहा भीतर ही इस आवरण को हटा दीजिए ताकि और परिचय हो जाय कि मै तो सबसे निराला विशुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। इस तत्त्वका बोध हो जाय तो बस सारी समस्या सुलझ जाय मुक्ति का पात्र हो जाय, अन्यथा तो संसार मे भटकना ही पडेगा। कोई चारा नही है। ससारको तो ऐसा मानो कि यह जेलखाना है। जैसे जेल खाने मे आराम नही है। चाहे जेलमे कुछ आराम मिल भी जाय, पर ससार मे तो रच भी आराम नही है जेल कही ससारसे अलग नही है, पर एक दृष्टान्त की बात कहा है। ससारमे सुखका नाम नही। लोग कहते भी हैं कि यहा सुख तो राई बराबर है और दुख है पर्वत बराबर। और असलमे तो इस ससारमे सुख शान्ति तो रचमात्र भी नही है। सारा दुख ही दुख है। यहां सुखका नाम भी नही है। ऐसा जानो और किसी भी सुख सामग्री मे फूलो मत, हर्षित मत हो। उसमे बहुत पाप का बध होता है। दुख मे दुखी होनेसे भी पाप बध होता और सुखमे मग्न होने से भी पापका बध होता है। और पापका फल बुरा होता है। इससे अपने आपकी सम्हाल बनाना चाहिए। सुखमे होकर मग्न न फूलो, दुखमे कभी न घबड़ाये। ज्ञाता दृष्टा रहे, जान ले, यह ऐसा है यह ऐसा है। लोग किसी भी विपत्तिको एक बहुत बडी विपत्तिका रुप दे देते है, मेरेको तो बडी विपदा है और यह नही देखते कि सँसारमे जो हमसे भी अनगिनते गुने दुखी है वे कितना दुःखी है। उनके सामने मेरा क्या दु.ख ? इस बात पर दृष्टि नही जाती। और मोही पुरुष मानते हैं कि मेरे को सबसे बडा भारी दुख है। क्या दुख है ? अगर लडकेने कुछ पिताके मनके प्रतिकूल बात कहदी तो पिता सोचता है कि मेरे समान कोई दुख नही। अरे क्या दुख है ? जगतके और दु.ख तो देखो उनके सामने क्या दुख है ? कभी मानलो आपका १०-५ हजार का नुकशान हो गया तो आप उसका बडा दुख मानते। पर यह तो बताओ कि क्या इससे अधिक आपका नुकशान हो न सकता था ? अरे जब कभी काटा लगता है तो वहा बुद्धिमान पुरुप सोचता है कि आज तो वास्तव मे हमको शूली लगनेका दिन था पर काटा लग गया इससे सस्ते ही निपट गए। उसका मन कभी ऐसा व्यग्र नही होता कि मेरे ऊपर विपदाओका पहाड आ पडा। अरे यह ससार तो दु.खोका घर है। यहा क्या छटनी करना कि इसमे हमको सुख होगा। अरे जीव जब कषाय करता है, सुखमे राजी होता है, दुखमे घबडाहट करता है।

कर्मबन्ध न होनेके लिए सावधानीकी महती आवश्यकता—जिस समय यह जीव क्रोध करता है उस वक्तमे बहुत पाप कर्मबन्ध हो जाता है। तो जो कर्मबन्ध हो गया उससे छुटकारा नही होता। कोई विशिष्ट तत्वज्ञान जगे तो भले ही उसकी निर्जरा पहिले हो जाय, सक्रमण करके निर्जरा हो जाय। कहते है न कि बिनाफल दिए कर्म झडते हैं। एक सिद्धान्त ऐसा है कि जिसने यह कहा है कि न्युमुक्तभोग्यते कर्मोचाते बिना भोग कर्म क्षीण नही हो सकते। यह है नैयायिको का सिद्धान्त, पर इससे मिला जुला जैन सिद्धान्त भी यही कहता है कि बिना भोगे कर्म क्षीण न होगे। भोगने की व्याख्या जुदी है। कभी वह पूरा फल देकर झड जाय। विशुद्ध परिणाम हो जाय तो वही पहिली स्थिति मे मिल जाय, ऐसी प्रकृतिरुप हो जाय और उसका फल मिले देखो हम आप सब जीव जो भी यहा बैठे है उनमे बहुत कुछ यह सम्भव है कि चारो गतियो का बध किया हो-नरक, नियच, मनुष्य और देव। और इस समय हम आप मनुष्य हे। उदय तो एक का है मनुष्य आयुका मगर जो कभी हुई चारो गतिया है वे चारो गतिया उदयमे आ रही। अब यहा आप असमजसमे पड जायेगे कि जब हम मनुष्य हैं तो यहा चारो गतियोके उदयका क्या काम, मनुष्यगतिका ही उदय होना चाहिए। मनुष्य जैसे ही भाव हो रहे है। तो भाई जो पहिले और गति बाँधी और उनके जो कर्मपरमाणु है वे आत्मामे से खिरेगे तो जरुर ही। बस उसके खिरने का ही नाम फल है। वहा इतनी बात हो जाती है कि जिसके कारण बाकी तीन गतियोका उदय आजाय, सामने आयगा। मानलो कि ८ बजकर १० वे समय पर उदय आयगा तो होता क्या है कि ९ ही समयमे वे तीन गतिया मनुष्यगतिरुप बध जाती है और फल तो हुआ ना। पर वह मनुष्यगतिके रुपमे उसका फल हुआ। इस तरह अगर सोच विचार करे तो उनका कैसा उदय है कि बिना भोगे कर्म नष्ट नही होते। अच्छा और बात विचारो। जब व्रत तप सयम आदिक साधन करते है, ज्ञान स्वभावकी अनुभूति बनाते है उस काल मे तो बिना फूल दिये कर्म झड जाते हे फिर वहा कैसे लागू होगा कि विना भोगे कर्म नही झडते। तो वहा भी स्थिति परखो। जो कर्म हजार वर्ष बाद उदयमे आते उन्हे तो १०० वर्षमे ही सामिल कर दिया और वहा भी प्रकृति परिवर्तन कर दिया। ये सब होते रहते। प्रकृति परिवर्तन, स्थिति अनुभाग आदिक मोक्षमार्ग मे चलते है तो उसके परिणामका निमित्त पाकर तो कर्मपरमाणु तो उतने ही रहेना, वे उदय से पहिले निर्जराको प्राप्त हो गए। उदय काल मे निर्जरा, को प्राप्त हो गए। उदय वैसा फल दिये बिना झड गए। कम फल देकर झड गए। कैसी ही पचासो तरह की स्थितिया हो आखिर वे सब विपाक कहलाती है। तब

ही तो दो प्रकारके भेद किए गए। सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा। जो अपने आपके ढगसे फल न दे, और और ढंगमे आकर खिर जाय उसे कहते है व्यवहार अविपाक निर्जरा। तो कर्मबन्ध न होनेके उपाय पर बहुत ध्यान दीजिए।

सात तत्त्वोंकी संख्याके कम किये जानेकी शंकाका प्रकरण—जीवादिक ७ तत्वो के विषयमें यह प्रकरण चल रहा है कि ७ ही तत्व क्यो कहे? कम या अधिक क्यों नही कहे गए? इस विषयमे कुछ तो वर्णन हुआ। यहां यह शका की जा रही है कि ७ तत्वके बजाय कम या ज्यादह क्यो नही कहे गए? प्रसंग यह है कि आश्रव, सम्वर, निर्जरा, न कहकर बध हेतु मोक्ष हेतु यो कह दिया जाय। उसमे सव आ जाता है। समाधान यह है कि बन्ध हेतु कहने से तो सख्या कम होने का लाभ तो कुछ होता नही इसलिए बध हेतु की जगह आश्रव कहना ही युक्त है, वह स्पष्ट हो जाता है अब केवल मोक्षके सम्बधका विवाद है। मोक्षके कारण है सम्बर और निर्जरा याने नवीन कर्मका न आने देना और निर्जरा याने नवीन कर्मका न आने देना और पहिले बाधे हुए कर्मका विनाश करना। ये दो तत्त्व मोक्षके हेतु माने गए है। अब दो न कह कर केवल मोक्ष हेतु कहा। तो इसमे लोगोंको विवाद हो जाता है। क्षणिकवादी कहते है कि केवल सम्वर ही मोक्षका हेतु है, अथवा यह ही मोक्षका कारण है। बधे हुए कर्मोके नष्ट करनेका कोई उपाय नही करना पड़ता। प्रत्येक वस्तुका विनाश अपने आप स्वयं होता है। क्षणिकवाद ही तो ठहरा और इस सन्बंधमें एक बात तो यह है कि वह बन्धन ही उनके यहा घटित नही है, क्योकि क्षण-क्षण में नया–नया आत्मा पैदा होता है। जो सुबह ८ बजे है, वह ८ बजकर एक सेकेण्ड पर वह आत्मा नही है, वहां दूसरा आत्मा है, तीसरे सेकेन्ड मे फिर तीसरा आत्मा है। ऐसे ही, सेकेन्ड तो बहुत बड़ा है प्रत्येक समय मे नया–नया आत्मा पैदा होता है। बन्धन किसका और मोक्ष भी किसका?

संवर निर्जरा तत्त्वोमें से केवल एकको माने जाने में मार्गलाभ—जब उक्त आपत्ति प्रदर्शित होती तो उनका कहना यह है कि आत्मा तो न बंधता है न उसका मोक्ष है, लेकिन जो नये-नये आत्मा पैदा होते रहते हैं तो पहिला आत्मा जब नष्ट होता है तो अपना संस्कार नये आत्मा को सौप देता है और जब तीसरा आत्मा पैदा हुआ वो दूसरा आत्मा तीसरे को अपना संस्कार सौप देता है, इस तरह उस संस्कारके कारण बंध है। और जब जीव को यह मालूम पड़ जाय कि आत्मा कुछ नही है वह तो क्षण भरकी एक ज्योति है, सो क्षण भरके लिए आत्माको स्वीकार न करें तो उसका मोक्ष हो जाता है क्योकि आत्मा अगर मानोगे तो वह बंधेगा और आत्मा ही न मानोगे नया नया आत्मा होता है तो बन्धन किसका? तो उनका

तत्वज्ञान उतना ही है कि यह भ्रम छोड दें कि मैं आत्मा अमर हूँ, मै आत्मा सदा रहूँगा हूँ, यह भ्रम छोड दें तो मोक्ष हो जायगा। मानलो कि आत्मा एक समय तक रहता है अगले समय होता हो नही और दृष्टान्त भी देखो कितना सुन्दर बताया अपनी बुद्धिमाफिक जैसे दीपक जल रहा है मिट्टीके तेलका अथवा सरसोंके तेलका, तो जो दीपक है वह तो एक बूंदका दीपक है, फिर दूसरा बूंद आया फिर तीसरा बूंद आया ऐसी एक-एक बूंद उस दीपकके पास आती रहती है और वह ऐसा लगता है कि एक दीपक जल रहा है। तो जैसे यह भ्रम हुआ कि दीपक एक है इसी तरहसे आत्मामे भी लोगोंको भ्रम हो गया कि आत्मा एक है। यह भ्रम हो गया कि आत्मा सदा रहता है। उनकी युक्ति है। ऐसा नाशको अहेतुक मानने वाले निर्जरा तत्वको न मानकर केवल सवरको मोक्षहेतु मानते हैं। किन्तु ऐसा न हो सकेगा कि निर्जराका निग्रह करदें और नास हो जाय अहेतुक। जो कारण उत्पादका है वही कारण व्ययका है याने घड़ा फूटा उसका कारण न हो और खपरिया बनी उसका कारण हो, ऐसा नही होता। व्यय भी सहेतुक है और उत्पादभी सहेतुक है। और भी देखो क्षण-क्षणमे एक नया-नया आत्मा है तो फिर मोक्षकी क्यों फिकर पड़ी कि उपाय तो हम करें, तप करें, संयम करें। अनेक प्रकारके तपश्चरण करें और मोक्ष हो किसी दूसरे आत्मा का। तो ऐसे मोक्ष की क्या जरुरत ? तो क्षणिक मानने पर यह मोक्षकी व्यवस्था नही बन सकती। आत्मा है, सदा है, वही है, एक है। अब नये कर्म भी नही आये यह तो हुआ सम्बर और उपाय बनायें। भेद विज्ञानसे ज्ञात स्वभावके, आश्रयका सयम दीक्षा आदिकका उपाय बनायें तो कर्म निर्जरा होती है, मोक्ष होता है। तो जिसने अलग केवल सम्बरको माना है तो वहां आत्मतत्त्व न आ सकेगा, जिसकी श्रद्धा बिना मोक्षका उपाय नहीं बनता। तो कोई लोग यह कहते है कि केवल निर्जरा ही मोक्षका कारण है। जो कर्म आये है उन्हें झड़ादें उनकी भी बात ठीक यो नही बनती कि कर्म तो झड़ानेका काम करें और नये कर्म आते रहे तो कैसे मुक्ति हो सकती है। एक बात। दूसरी बात यह है कि जहा सम्बर है वहां खाली सम्बर नही है। निर्जरा साथ लगी है। जहां निर्जरा है वहां केवल निर्जरा नही है, सम्बर साथ है। गुप्ति समिति आदिक जो सम्बर के कारण है वे ही निर्जरा के कारण हैं। वे दोनों एक साथ चलते हैं इसलिए सम्बर निर्जरा दोनो एक साथ कहने आवश्यक है। ६ संख्या बनाने से भी काम नही चलता। इस तरह जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जर, मोक्ष ये ७ तत्व बनाये गए हैं।

जीव अजीव न कहकर शेष पांच तत्त्वोंके कहनेको अप्रयोजकता—कोई कहे कि तुम्हारा हठ है, संवर निर्जरा कहनेका तो ५ ही तत्त्व मान लो आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष

अरे जब जीव नही मानते तो फिर मोक्ष किसका कराना प्रथम तो जो क्षणिक वाद भी जीवन मानने की तरह है, फिर चार्वाक लोग तो जीवको मानते ही नहीं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका संयोग हुआ कि जीव तत्त्व पैदा हो जाता है। वहां न कोई परलोक है, न कोई नरक है न कोई स्वर्ग है और उनका कहना ऐसा है जैसे प्रायः आजकल भी कहते हैं कि अच्छी ठाठ है वह तो है स्वर्ग और जहा दरिद्रता हो उसे कहते हैं नरक। ऐसा कहने वाले लोग भी बहुत हैं, तो जो न लोक मानते न परलोक मानते ऐसे जो लोग हैं उनके यहां आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष आदिककी व्यवस्था ही नही है। तो जीवका कहना आवश्यक है और जीव एक ही अकेला हो तो उससे तो आश्रव बन्ध नही हो सकता। जैसे एक से लड़ाई नही छिडती, कोई अकेला हो, उसका प्रतिपक्षी न हो तो वह क्या लडेगा? और, प्रतिपक्षी हैं तब ही लड़ाई शान्त है, केवल एकमें बन्ध मोक्ष नहीं है। अब देखो इस प्रसंगसे द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे निश्चयनयकी दृष्टिमें जीवतत्त्व माना जाता है। ज्ञायकस्वभाव, अपरिणामी, शाश्वत एकस्वरूप अखण्ड अभेद, अरे एक ही तो माना तो उस एक में बन्ध मोक्ष नही है। जीवके बन्ध मोक्ष नही है, ऐसा न समझना, किन्तु जब कोई इस दृष्टि से निहारे, द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखे कि यह तो एक अखण्ड चैतन्य प्रतिभासमात्र है, इतना ही स्वरूप जब देख रहे हैं तो ऐसे स्वरूपमे बन्ध मोक्ष नही है। उसका अर्थ यह हैं इसका अर्थ यह नही है कि जीव सत्य है और उसका बन्ध मोक्ष नहीं है। जब द्रव्यदृष्टिसे जीवको देखा जा रहा है, उसमें जो स्वरूप नजरमे आया वह स्वरूप बंध मोक्षकी व्यवस्थासे रहित है और जब पर्यायद्रष्टिको लेते है तो वहां बन्ध मोक्षकी व्यवस्था बिल्कुल सही है उसमे सत्य असत्यकी जो बात कर रखी है कि पर्यायार्थिकनय असत्य है, द्रव्यार्थिकनय सत्य है तो इस तरह सत्य असत्यकी बात नही है। दोनो ही बातें सत्य हैं, लेकिन जब द्रव्यार्थिक दृष्टिसे स्वरूप निहारते हैं, इस पर्यायको कोई बात ही नही है, वहां वह दृष्टिमे ही नही है जैसे एक मकानकी चार भीट होती हैं आमने सामने दो भीट हैं। जब हम सामनेकी भीट देख रहे हैं तो इस दृष्टिसे पीछेकी भीट का सत्व है क्या? जब हम केवल सामनेकी भीट निरख रहे तो पीठ पीछेकी दीवालका सत्व दृष्टिमें नही है, लेकिन यह कहता कि बात यह ही है केवल एक ही भीट है, दूसरी भीट नही है, तो यह कहना गलत है।

सीमातोड़ हटकी अयुक्तता:—देखिये हठकी बात तो अलग है। अगर कोई कहे कि हां हमारे कमरेमें एक ही भीट है। एक भीटमें दोनो तरफ छज्जे निकालकर कमरेका रूप दे दे तो वह बात अलग है। हम ऐसे तर्ककी बात नही कह रहे। यो तो भाई एक बार कोई वकील कहीं घूमने जा रहा था। उसने देखा कि एक जगह एक तेलीका बैल कोल्हू पेल रहा

था। उसके गलेमे एक घंटी बन्धी हुई थी। तथा आंखोंमे पट्टी। जब तक वह घंटी बजती रहती तब तक वह तेली समझता रहता कि बैल ठीक ठीक चल रहा है और वह अपना कोई दूसरा काम किया करता था। जब घंटी बजना बन्द हो जाता था तो तेली समझ लेता था कि बैल खडा हो गया और वह आकर बैलको खेद देता था। तो वहां जब वकील ने बैलके गलेमे घंटी बंधी हुई देखा तो तेलीसे पूछा—भाई इसके गलेमे घंटी क्यों बांध रखी है? तो तेलीने बताया कि जब तक यह घंटी बजती रहती है तब तक हम और काम करते रहते हैं और जब घंटी बजना बन्द हो जाता तो हम समझ लेते कि बैल खड़ा हो गाता और आकर उसे खेद जाते हैं, तो इसलिए हमने घंटी बांध रखी है। वकील ने कहा यदि यह बैल खडे खडे ही घंटी हिलाता रहे तब तो तुम धोखेमे पड जावोगे ना? तो तेली बोला जिस दिन हमारा बैल वकील बन जायगा उस दिन हम कोई और उपाय बना लेंगे। तो यह एक सामान्यतया बात है कि जब कमरा है तो उसमे दो भीट होना आवश्यक है। जब हम सामनेकी भीट लक्ष्यमेले रहे उतने समय दृष्टिमे दूसरी भीट्का अस्तित्व नही है। तो इसके मायने यह नही है कि दूसरी भीट नही है। इसीतरह जब हम द्रव्यदृष्टिसे आत्मतत्त्वको देखते हैं उस समयमे स्वरूपमे क्योकि निश्चयनयका विषय अखण्ड है, अभेद है। तो वहा बन्ध मोक्षकी व्यवस्था नहीं होती है। साथ ही यह भी समझ लीजिए कि उस अखण्ड अभेद निश्चयनयके विषयका आश्रय करनेसे सम्यक्त्व होता है। इतना महत्त्वका विषय है। महत्त्वका विषय होनेपर भी यह बात झूठ नही है कि जीवका बन्ध है, जीवमे रागादिक होते हैं, जीवके साथ कर्मबन्धन है, यह बात असत्य हो, असत्य कुछ नही है, मगर उस द्रव्यदृष्टिमे उस लक्ष्यमे बन्धन नही हैं, बन्ध भी क्या, मोक्ष भी नही है, क्योकि उसकी दृष्टि एक विशुद्ध तत्त्व पर है,

सहजस्वरूपमे बन्धन मोक्षकी अदृष्टि—भैया निज विशुद्ध तत्त्व को, देखा जाय और उसका मोक्ष माने तो वह भी उसके लिए गालीकी तरह है। जैसे कोई यह बात सुनता है कि मोक्ष होना अच्छी बात है तो उस छुट्टीकी प्रशंसा करे और कहे कि आपके पिता तो जेलसे मुक्त हो गए हैं तो क्या वह भला मानेगा? अरे बुरा क्यो मानते हो? मुक्तिकी ही तो बात कह रहे है कि आपके पिता जेलसे मुक्त हैं। लेकिन ऐसा कोई किसीको कहे तो वह बुरा मानता। क्योंकि उस माननेमे यह बात शामिल हो गई कि यह पहिले कैदमे थे अब मुक्त हो गए। तो कैदमे थे यह बात सुनना पसद नही है। इसीतरह इस जीव तत्त्वको जो निश्चय का विषय है उसके लिए यह कहना कि मोक्ष होता है यह भी गाली है। बंध होता है यह तो प्रकट गाली है। जीवके बंध होता है इसका कारण है कि जीव बंध अवस्था मे है, लेकिन

निश्चय अवस्थामें जहां एक अखण्ड को निहारा जा रहा हैं वहां न बंधकी व्यवस्था है न मोक्षकी इसका तात्पर्य यह हुआ कि बंधकी मोक्षकी व्यवस्था नहीं है यह मात्र एक दृष्टिकी बात कही जा रही है। तो जीव माने बिना तो मोक्ष मार्गके तत्त्वकी श्रद्धा नही आ सकती और अजीव माने बिना भी तत्त्व नही आता। जीवपर अजीव लदा बंधा है, यह ही आश्रव बंध है और जीवसे अजीव अलग हो जाय, यह ही इसका मोक्ष है और ऐसा होनेका जो उपाय है उसको कहते है सम्बर तथा पहिले के अजीव झड़े वह कहलाती है निर्जरा। अब इस प्रसंगमे कोई ज्ञानी पुरुष कही भी बंध मोक्षकी व्यवस्था देखे वहां उसको ये ७ बातें आयेंगी। यह हुई जीव और कर्मके बाबत मे तत्त्व–व्यवस्था।

जीवमें ही सात तत्त्वकी व्यवस्थाका दर्शन—अब जरा जीव और विभाव इन दो को दो तत्त्व मानकर, जीवस्वभाव एक ५ तत्व और रागदिविकार भी एक तत्त्व है इन दोनो तत्त्वोको सामने रखकर जब आश्रव बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष निरखा जाता है तो देखिये वह ही पद्धति। यहा जीव है स्वभाव और अजीव है विभाव, जीवमे अजीवका आना आश्रव, मायने स्वभावपर विभावका बंध जाना, संस्कार हो जाना सो बध, स्वभावमे विभावको न आने देना सो सम्वर और विभावके सस्कारका क्षय करना निर्जरा और इस स्वभावमें विभाव बिल्कुल न रहे तो इसका नाम है मोक्ष। कही भी बात रख लो, पद्धति यह ही आयगी। कोई सोचे कि यह जीव तो ज्ञान स्वरूप है, जाननहार है, इसको कष्ट क्या है कि इसमे बाह्य पदार्थ ज्ञेय होते है। तो इस प्रसग मे अब दो तत्त्व सामने आये ज्ञान, और भीतरमें जो झलक हुई, ज्ञेय हुआ। जिसे ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार कहो। ज्ञान और ज्ञेय ? चाहे ज्ञायक कहो और ज्ञेयकहो। ज्ञायक है सो जीव ज्ञेय है सो अजीव। जो प्रतिपक्षीमें रखे वह अजीव कहलाता है। उस ज्ञानमे ज्ञेयका आना आश्रव, ज्ञानमें ज्ञेयका बंध जाना बध और ज्ञानमें ज्ञेयका न आना यह हुआ सम्वर और वस्तुके त्यागका जो सस्कार बना सो ज्ञानाकारपर दृष्टि देकर उस संस्कारको नष्ट करना निर्जरा और जब परवस्तुका कोई ज्ञेय नही आये, ज्ञान है ऐसा ज्ञानाकार मिलसे इसका नाम है मोक्ष। जब कभी दो तत्त्व आमने सामने रखेंगे तो पद्धति उसी तरह बनेगी। यद्यपि ऐसा नही होता कि कोई भी ज्ञान ज्ञेयाकार बिना रह जाय। अब कुछ भी ज्ञानमे न आयगा ऐसा नही हो सकता, ज्ञान ही ज्ञानमें आये तो वह स्व भी ज्ञेय। जहा केवल ज्ञान हुआ वहा विवश होकर लोक अलोकके समग्र तत्वोको आना ही पडता है, देखना ही पडता है। तो ध्यानमे जो बाह्य वस्तुके रोकनेकी बात कही जाती वैसा यहा ही कहा जा रहा है। जैसे मोक्षमार्गप्रकाशमे दृष्टान्त दिया है कि घरमे आने वाली नई बहूको लोग समझाते हैं कि यहां वहा न जावो, परघरमे न जावो, बाजारमे न

जावो, परघरकी बुढ़ियाको तो कोई नही रोकता कि इधर उधर मत जावो। वह तो सब जगह फिरती है, तो ऐसे ही समझो कि केवल ज्ञान तो एक बुढ़िया हो गई, उनमें तो तीनो लोकालोकका सारा ज्ञान आ गया, उसे तो कोई नही रोकता कि ऐ केवली भगवान तुम तीनो लोकालोकका ज्ञान न बनाओ। वह तो विवश होकर होता है, लेकिन यहां संसारी जीवोको रोका जाता है कि तुम ज्ञेयमे मत जावो, तुम किसीभी परवस्तुको मत ग्रहण करो, इस तरह रोका जाता है, क्योकि इसके रागका संस्कार लगा है। तो यहां जो परद्रव्योको ध्यानमे मत लो, यह उपदेश है वह हम आपके लिए है और जहां केवल ज्ञान प्रकट हो गया वहा इस रुकावटको भी जरुरत नही पडती। तो यो जीव, अजीव, आश्रव, बंघ, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ तत्त्व हैं। इन तत्त्वोंके रूपसे निश्चित किए गए पदार्थका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है।

मोहसे पृथक् रहनेमें कल्याण—अब इस प्रसंगमें अपने आपके कर्तव्यके सम्बंधमे कुछ चिन्तन करें। हमें क्या सोचना है? किस ढंगसे चलना है कि हमारा कल्याण हो? देखिये पहिला निर्णय तो यह बनावें कि जितना भी हमको समागम मिला है यह सब समागम मायारूप है, विकार है मिल गया है, इससे मेरा कोई सम्बध नही है, केवल इस समागमके सम्बधसे मेरेको आकुलता ही हुआ करती है। इस संसारमे सुख रंच मात्र भी नहीं हैं। यों तो भाई जो शराबियोकी गोष्ठी होती हैं वे भी मतवाले बनकर खूब हंसते हैं, मौज लेते हैं, वे भी अपनेको सुखी समझते हैं मगर जिन्होने शराब नही पिया वे तो ठीक ठीक समझते हैं कि देखो यह बेचारा कैसा बेहोश है, कैसा इसे कष्ट है। इसी तरह जिसने मोह की शराब पी लिया है वह ससारके सुखोमे चैन मानता है, खूब हसता है, मौज मानता है, मगर जैसे शराब पीने वालेकी वेवकूफीको कोई दूसरा शराबी नही समझ पाता, वह तो उसे ठीक ही समझता है, उसकी बेवकूफी तो वही समझता है जिसने शराब न पिया हो जिसकी बुद्धि ठीक हो वही समझ पाता है कि यह दु:खी है। तो मामला यह पड गया कि मोही जीवोकी संख्या बडी है। माने मोह की शराब सब पिये हैं तो सभी लोग इस समागम मे खुश हो रहे हैं। शराब पीने वालों ने अर्थात् मोहियोने यहां नगरपालिका बनाली है। रजिस्ट्रेशन कायम कर लिया है। यहां तो लिख देते हैं कि यह चीज अमुक की है। यह अमुककी है पर यह तो सब मोहियोकी बात है। मोही लोग तो इसे ठीक ही मानते हैं लेकिन सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष जानता है कि ये मुग्धजन तो अपना-अपना माननेमें लग रहे हैं। मगर इसका है कुछ नहीं यह तो केवल ज्ञानस्वरूप है ज्ञानमात्र अन्तरतत्त्व के अतिरिक्त इसका कुछ नहीं

इस बात को तो कोई ज्ञानी पुरुष हो, जिसे मोहकी परख हुई हो वह समझ लेता है।

मोहयुक्तोंको हितविभागमें वोट देनेका अनधिकार—अब रही वोटकी बात। अगर किसी बात बातकी सलाह ली जाय यहा संसारमे तो ज्ञानीकी विजय होगी कि मोहियों की? आप कोई भी बात रखेंगे तो मोही तो हैं अनन्तानन्त और ज्ञानियोंकी संख्या है असख्यात। अब यहां वोट मिलेगी मोही जीवोकी। कोई मानो १८–२० वर्षका नवयुवक है विवाह करने लायक हो गया, पर वह मन्दिरमें पूजापाठ मे अधिक समय देता, त्यागी वृत्तियोकी सेवा सुश्रूषा में अधिक रहता, गृहस्थीमें वह फसना नही चाहता ऐसे नवयुवकके लिए अगर कोई लोगोंसे सलाह ले कि इसके लिए हमे क्या करना चाहिए तो यह तो है मोहियोका समूह। यहां तो मोहमे डालनेकी ही राय मिलेगी। अजी इसका विवाह करदो ताकि यह घरमे रहे, काम धाममे ठीक-ठीक रुचि रखे। तो यहांकि इन संसारी मोही प्राणियोंसे वोट लेनेसे काम न चलेगा। छहढालामे बताया है कि मोह महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत वादि।" येसमस्त ससारी जीव अनादिसे मोहरूपी मदिराका पान किए हुए है। ये अपने आपके आत्म स्वरूपको भूलकर ससारमे भटक रहे हैं, रुलते फिर रहे हैं। तो इन संसारी मोही प्राणियोंसे अपने हितके लिए वोट न लें। अपना यह प्रतिबोध रखें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ जो ज्ञानकी स्वच्छता है सो मेरा स्वरूप है, इसीमें कल्याण है, इसीमे तृष्णा लगाना चाहिए इसीमें संतुष्ट रहना चाहिए। यह बात सबके मनमें आनी चाहिये कि देखो भाई छोड़ना तो सबको सब कुछ पडेगा यह बात तो बिल्कुल निश्चित है, इसमे रच भी सन्देह नही। मगर कोई अपने इस जीवनकालमें ही सही ज्ञान बढ़ाकर इन बाह्य पदार्थोंका त्याग करें तो इसमें जीवन सफलता है।

मोहकी विडम्बना—:जागदीशी टीका है उसमें एक कथा दी हैं कि एक भंगिन मलका टोकरा लिए हुए किसी बाजारसे जा रही थी। वहां जाते हुए अनेक लोगोंको तकलीफ हुई। तो एक सज्जनने सोचा कि इससे तो हमारे जैसे अनेको लोगोंको तकलीफ होगी सो उसने एक बडा ही सुन्दर तौलिया उस मलसे भरे टोकनेको ढाकनेके लिए दिया। वह भंगिन जब सुन्दर तौलिया से ढाके हुए जा रही थी तो उसके पीछे तीन पुरुष लग गए। भंगिनने उनसे पूछा—भाई तुम लोग हमारे पीछे क्यो लगे हो? तो उन्होने कहा कि हम जानना चाहते हैं कि तुम्हारे टोकने मे क्या है। हमे तो मालूम होता है कि इसमे कोई बहुत ही सुन्दर चीज है। भंगिनने कहा इसमे तो मल ही भरा है। सो इतनी बात सुनते ही एक पुरुष लौट गया। दो पुरुष अभी भी उसके पीछे लगे रहे। फिर भंगिनने पूछा-भाई क्यो हमारे पीछे लगे हो? अरे हमे तो खोलकर बतादो, जब हम देख लेगें तब विश्वास करेंगे। भंगिनने तौलिया खोलकर दिखा दिया

तो उसे देखकर दूसरा पुरुषभी लौट गया। एक पुरुष अभी भी उसके पीछे लगा रहा। फिर भंगिन ने पूछा-भाई तुम हमारे पीछे क्यो लगे हो ? अजी हम तो इस तरह से न मानेंगे। हमे तो अच्छी तरहसे देखभाल कर परीक्षा कर लेने दो तब हम मनेंगे। भंगिन ने तीलिया खोला उस पुरुषने अच्छी तरह से सूंघ सांघकर परीक्षा किया। जब जान लिया कि सचमुच यह मल है तब वह वहाँ से लौटा। तो भाई ऐसे ही समझो कि यहांके जितने भी समागम हैं वे सब अवश्यं छोड़ने पड़ेगे। अब उन्हे चाहे कोई सही ज्ञान बनाकर बिना भोगे पहिले से ही छोड दे चाहे उनको भोगकर उनमे रचपचकर उनकी असारता लखकर छोड़, पर सारे प्राप्त समागम नियमसे छोड़ने पडेंगे। मानो कोई इस जीवनमे जीते जी न भी छोड सके पर अन्त में मरण होने पर तो सब कुछ छूट ही जायगा। तो अपना एक यह निर्णय बनाये कि जितने भी समागम मिले है वे सब एक अधेरा हैं। इनसे मेरे जीवनका पार न पडेगा। यो बात तथा की कही जा रही है इसमे असत्य रचभी नही है

उतनफनोका कारण परसम्पर्क—भैया जितने भी समागम हैं वे सब मात्र क्लेश के ही कारण है। वे शान्तिके कारण न कभी हुए और न कभी हो सकते हैं। आज कुछ पुण्य का उदय है इसलिए ऐसा लगरहा कि बहुत कुछ ठीक। घरमे किसीके गुजर जानेपर जो बड़ा दुखी होता है वह दु ख और है किस बातका। कोई लेन देन नही, कोई सम्बन्ध नही सत्ता न्यारी न्यारी है, कुछ बात ही नही है मगर भीतर मे यह विकल्प बना रखा है कि यह मेरा है, यह मेरा है बस इस विकल्प से परेशान होकर दुखी होना पडता है यदि ममता का त्याग हो जाय, अहकारका त्याग हो जाय तो इस जीवको किसी भी समय कष्ट नही हैं। ये जीव दुखी हो रहे है तो अपने आपके ऊधमसे दु खी हो रहे है। सच-सच मानलो, कोई अपने दुःख नही। जहां असत्यका आग्रह है बस क्लेश तो उसी जगह है। तो अपना पहिले यह निर्णय बनाये कि जो भी समागम मिले हैं वे मेरे लिए क्लेशकारी हैं, मेरी उन्नतिके हेतु नही है। उन्नतिका हेतु है सदाचार भला विचार, सच्चा श्रद्धान, आत्माकी परख जिसमे तुरन्त भी शान्ति मिलती है और भविष्यमे भी सदाकाल इसे शान्ति मिलेगी है तो सार शरण यही तत्व बाकी जितने समागम हैं उनमे ललचाना नही, इनको पाकर मुग्ध मत होना, क्योंकि यह सब धोखा है। जैसे बच्चे लोग कभी कभी मजाकमें क्या खेल खेलते हैं कि चार पाया पलंग जो रस्सी या निवाडसे बुना हुआ नही हो उसको कुछ कच्चे धागोंसे फांस देते हैं और उसपर अच्छी चादर बिछा देते हैं। कहते हैं आइये साहब पधारिये, बैठिये तो जब वह पुरुष अथवा बालक उस पलगपर बैठता है तो धड़ामसे नीचे गिर जाता है मानो वह स्वयं अपने पैरोमे सिर रखकर छूने सा लगता है याने उसके सिर पैर एक हो जाते हैं। तो जैसे वह पलग

धोखा है, देखनेमे भला लग रहा है मगर उसका सहारा ले तो वह गिरता है, इसी तरह ससारके ये समागम, ये सुन्दररूप, ये सुन्दर शृंगार, ये सुन्दर आभूषण ये भी धोखा है। इनमे जो फसाव रखता है वह निरन्तर कर्मबन्धन करता है और निरन्तर आकुलित रहता है। यो तो अपनेको कोई मानले कि मै बडा सुखी हूँ, बडा आनन्द है, पर कल्पना होनेसे होता क्या है। वास्तविक सुख तो केवल मुक्तिमे है। अर्थात् केवल ज्ञानभावकी दशामे, ज्ञानभावकी श्रद्धामे, ज्ञाताद्रष्टा रहनेमें है।

परके रागमें संकटोंका वरदान—भैया जानने देखनेसे आगे बढे तो वह नियमसे फसा जैसे कहते है ना बोले सो बिधूचे। यह कहावत बनी कैसे कि एक राजा जंगलमे पहुंचा तो वहा एक सयासी मिला। राजा सयासीके पास बैठ गया। थोडी देर बाद साधु बोला राजन् क्या चाहते हो ? तो राजा बोला -महाराज मेरे पास कोई सन्तान नही है, सो कृपा करके आप एक सन्तानका मुझे अशीर्वाद दे दीजिए। साधुने कहा–एव अस्तु याने–ऐसा ही होगा। अब राजा तो प्रसन्नतापूर्वक घर गया। वहां सारी रानियोको सारा हाल कहा सुनाया। राजदरबारमें आनन्द छा गया। जब १०-१२ महीने व्यतीत हो गए तो सयासी ने अपने ज्ञानसे देखा कि यदि जगतमे कोई जीव मर रहा हो तो वे उसे रानीके पेटमे भेजें, पर कोई जीव ऐसा न दिखा तो वह स्वय ही मरकर रानीके गर्भमे पहूँच गया। वहा तो वह बडे कष्ट सह रहा था। सोचा ओह–मैने राजासे जगलमे बोला था इसलिए फसा अच्छा अब मै बाहर आनेपर कभी न बोलूगा। वह बच्चा पैदा हो गया, सयाना हो गया पर बोले नही। राजदरबारमे बालकके पैदा होनेका तो हर्ष था पर साथ ही उसके गूगा होनेका शोक भी था। सो राजाने अपने राज्यमे यह घोषणा करा दिया कि मेरे बेटेको जो बोलना सिखा देगा या बोलता बता देगा उसे बहुत सा इनाम दिया जायेगा। एक दिन क्या घटना घटी कि वह बालक अपने पासके बगीचेमे खेल रहा था। वहा उसने देखा कि एक चिडीमार जाल बिछाये हुए चिडिया पकड रहा था। जब एक भी चिडिया वहा न दिखी तो चिडीमार अपना जाल लपेटने लगा। बगीचेसे चल देनेके लिये इतनेमे एक पक्षी जो डालीपर कही छिपा बैठा था ची ची कर बोल उठा। चिडीमारने समझ लिया कि अभी कोई पक्षी बैठा है सो झट लौट आया, जाल फैलाया, कुछ यहाँ वहा दाने बिखेर दिये और थोडी ही देरमे वह पक्षी आकर फस गया। उस पक्षीको फसता हुआ देख राजकुमारको अपनी पुरानी घटना याद आयी और सहसा बोल उठा अरे जो बोले सो फसे। राजकुमार के इन शब्दोंको सुन लिया चिडीमारने, सो वह जाल फेककर झट राजाके पास पहूँचा और राजाको बताया महाराज आपका कुमार बोलने लगा। बोलने लगा ? अच्छा तुम्हे राज्यकी ओरसे

५ गाँवपुरस्कार मे दिए जाते है। जब राजकुमार पास आया, राजाने उसे बहुत-बहुत बुलाया पर न बोला —तो राजाको चिडीमार पर क्रोध आया, देखो चिडीमार भी मेरी हसी करने लगे है। मेरा पुत्र बोलता नही, पर झूठ मूठ कह कर मेरी हसी करता है कि यह बोलता है। अच्छा चिडीमारको फासी दी जायगी। जब चिडीमारको राजाने फासीका हुक्म दिया, फासीके तख्तपर चढा दिया तो राजा पूछने लगा-ऐ चिडीमार! बोल, तुझे क्या चाहिए ? क्या खाना चाहता है ? किससे मिलना चाहता है ? सो चिडीमार बोला-राजन् मैं और कुछ नही चाहता, सिर्फ आप अपने कुमारसे मुझे दो मिनटके लिए मिला दीजिए। मिला दिया गया राजकुमार। वहा चिडीमार राजकुमारसे कहता है कि ऐ राजकुमार मुझे मरनेका गम नही, पर इस बातका गम हो रहा है कि दुनिया कहेगी कि चिडीमारने राजासे झूठ बोला था, इसलिए उसे फाँसी दी गई थी। सो कृपा करके आप उतने ही शब्द बोल दीजिए जो आपने बाटिकामे बोले थे। फिर क्या था। राजकुमारने कहा कि देखो जो बोले सो फसे। पहिले मैं साधु था, जगल मे तपस्या करता था। वहा मैंने राजासे बोला था तो मे फसा था, चिडिया बोल गई सो वह फस गई, और यह चिडीमार साहब राजासे बोल गए सो वह भी फस गए। तो भाई यह तो ससारकी रीति है कि यहा जो राग करेगा, बोलेगा वह नियमसे फसेगा।

सात तत्वोमे प्रथम जीव रखा जानेका कारण--जीवाजीवाश्रवसवन्ध सम्वरनिर्जरामोक्षास्तत्त्व, इस सूत्रके सम्बन्धमे अव तक दो बाते कही गई हैं। पहिली बात तो यह है कि जीव तत्वकी सख्या ७ ही क्यो रखी गई ? कम या अधिक क्यो नही रखी गई, दूसरी बात फिर यह कही गई कि इन ७ तत्वोकी ही जब कुछ और कम सख्यामे बात मिल सकती थी तो इन ही ७ मे और सकोच क्यो नही किया गया ? इन दो बातो का समाधान भली प्रकार दिया गया है। अब यह बात कही जा रही है कि इन ७ तत्वोका नाम इस क्रमसे क्यो रखा गया है ? देखो भाई एक घडेमे अगर चने, गेहूँ आदिक कई चीजें भर दी जाये और उस घडेको हिलाया जाय तो एक सहज बात होती है ना कि कोई चीज़ नीचे रहती है कोई चीज मध्यमे रहती है और कोई ऊपर आ जाती है, तो जब एक सूत्रमे ७ चीजे भरी गई तो ये ७ चीजे एक साथ कैसे आयेगी ? कोई नीचे रहेगी कोई ऊपर। इस सूत्रमे इन ७ तत्वोको भरकर हिलाओ जरा सोच विचारकर युक्ति से सोचो तो अपने आप यह बात जाहिर हो जायगी कि हा पहिले जीव कहना ठीक फिर अजीव फिट बैठ जायगा। ध्यानसे सुनिये आज इसको दार्शनिक शैलीमे कहा जायगा। कठिन बात भी तो कभी सरल बनाना चाहिए। अगर कठिन बात कठिन ही बनी रहे तो हम कुछ बढ तो न सके और ध्यानसे सुननेसे तत्वको अनेक

बार समझनेसे कठिनसे भी कठिन बात सरल वन जाती है। आज यह बात कही जा रही है कि यह ७ तत्त्वोका क्रम क्यो रखा ? यह सब बात जीवके लिए कही जा रही है। मोक्षका उपदेश जीवके लिए, सुख शान्तिका उपदेश जीवके लिए याने हम आपके लिए, तो जिसके लिए सारा उपक्रम किया जा रहा उसका नाम तो पहिले रखना चाहिए। यही कारण है कि ७ पदार्थोमे जीवका नाम पहिले रखा गया, क्योकि जितना भी जो कुछ वक्तव्य है और जो कुछ कर्तव्य है, जो भी प्रयोग कराया जाता है वह सब जीवके लिए है। तो फिर होता ही है कोई न कोई कारण जिससे हर एक बातका क्रम बना करता है। समाजमे रहो तो, रेल का टिकट बाटना हो तो, हर एक काममे कोई न कोई ऐसी पद्धति होती है कि जिसमे क्रम हुआ करता है। तो क्रम रखनेकी बात तो आवश्यक है। आप भोजन करते है तो उसमे भी यह क्रम पडा रहता है कि किस भोजनका कौन सा अश क्या बनेगा। कितने अशमे वह मल मूत्ररूप बनेगा, कितने अशमे पसीना रूप बनेगा, कितने अशमे खून रूप बनेगा, कितने अश मे हड्डी रूप बनेगा, तथा कितने अशमे वीर्यरूप बनेगा, इस प्रकारका क्रम उस भोजनमे भी बनता है। तो क्रम रखनेकी कोई पद्धति तो होती है, यहा ७ तत्त्वोंके क्रमकी पद्धतिका यहाँ जिक्र किया जा रहा है।

सप्त तत्वों के नाम क्रमका संक्षिप्त दिग्दर्शन—अब जीवके प्रतिपक्षमे भी विचार करें। पहिले ७ तत्त्वोकी बात एक सक्षेपमे कह दूं। जीवके लिए वर्णन है तो जीवका नाम पहिले और जीवके उपद्रवका कारण अजीब है याने जो बात कही जायगी उस सबका सम्बन्ध अजीबसे लगायेगे तब ही तो बनेगा, इसलिए जीवके बाद अजीब कहा और जीव और अजीबके आश्रय होता है जो सबका एक मूल है उन ५ पर्यायोमे वह है आश्रव। आश्रव न हो तो बाध कहा से हो। आश्रव की बात ही न समझो तो सम्बर किसका किया जाना समझोगे ? झडे क्या ? मुक्ति किसकी हो ? मुक्ति क्यो दिलाई जाय ? इन ५ परिणामो का जो एक प्रारम्भ करने वाला है वह है एक आश्रव तत्त्व। और आश्रव होनेपर बन्ध होता इसलिए इसके बाद बन्ध बताया है और आश्रव बन्धका प्रारम्भक है, सम्बर मोक्षका प्रारभक कारण है, सो सम्वर कहा। सम्वरके होनेपर निर्जरा होती है, सो सम्वर के बाद निर्जरा कहा और अन्तमें मोक्ष होता है इस तरह इसका क्रम रखा गया है।

प्रकृतिके लिए उपदेश न होकर बन्ध मोक्षके आश्रयभूत जीवके लिए उपदेश होनेसे जीव तत्त्वका प्रथम विन्यास—अब जरा सात तत्त्वोके नामके क्रमके विरोधमे कुछ दार्शनिक लोग अपनी-अपनी बात रख रहे है। पहिली बात क्या कही गई कि हितका उपदेश' ज्ञानका उपदेश कल्याणकी बात जीवके लिए की गई है इसलिए जीवका नाम पहिले रखा ?

तो यहां साख्य कहते है कि यह बात हमे खोटी लग रही है। उपदेश जितने भी होते हैं वे प्रकृतिके लिए होते है जीवके लिए नही होते, क्योंकि प्रकृतिमे ही ज्ञान होता, प्रकृतिमे ही घमन्ड होता, प्रकृतिसे ही ये शरीर आदिक बनते है और प्रकृतिका ही यह सब जाल है। जीव तो अपरिणामी शुद्ध चैतन्यमात्र ब्रह्म है इसलिए जीवके लिए यह उपदेश नही। यह सारा उपदेश प्रकिकृनिके लिए है। जरा जीव और प्रकृतिकी बात और बतला दें। कहते तो सभी लोग है यह तो प्राकृतिक दृश्य है। यह तो प्रकृति है, कुदरत है। सभी लोग प्रकृतिकी बात कहते है तो प्रकृति क्या चोज है। कहने को तो सभी कहते है। कोई पहाडका दृश्य देखा, नदी बह रही है, पत्थर है। उनकी लोग फोटो उतारते है और कहते हैं कि ये सब 'प्राकृतिक दृश्य है, तो वह प्रकृति क्या चीज है? साख्य सिद्धान्तमे तो प्रकृनि एक कोई अचेतन तत्त्व है और यह सारा समागम, यह सारा दृश्मान जगत प्रधानका विकार है। जैन सिद्धान्तके अनुसार प्रकृति नाम है कर्मका। मूलमे प्रकृतिया है ८ और उत्तर प्रकृतियाँ हैं १४८ तो जितने ये सब दृश्य है वह सब इन प्रकृतियोका है। फूल फूल रहे हैं तो वह भी प्रकृतिका उदय है जल बह रहा है तो वह भी प्रकृतिका उदय है। कही सुन्दर जानवर विचर रहे है तो वह भीप्रकृतिका उदय है। पहाड कोई कैसा ही है, तो प्रकृतिका उदय है, यह सब प्रकृतिका खेल है और हम आप जो बैठे है यह भी क्या है? प्रकृति, प्रकृतिके ही उदय की तो चीज है। जीव तो एक चैतन्यस्वरूप है। प्रकृतिका उदय पाकर यह जीव भी विकृत होता है, इसप्रकारयह सब प्रकृति है। यहा साख्य कहते है कि ज्ञान होता है तो प्रकृतिमे होता है। उपदेश हुआ तो प्रकृतिसे हुआ प्रधानसे हुआ और जीवमे केवल परम ब्रह्म चलेगा। जो एकमात्र अद्वैत चित्स्वरूप है। देखिये—इस प्रसगमे ऐसा कहने वाले ये दार्शनिक बिल्कुल तो अजान नही और एक साधारण भी नही। कोई दृष्टिसे ऐसी एक दृष्टिसे हट गए जिससे यह सिद्धान्त बना। वह बात ठीक है ना। जीव द्रव्यार्थिक दृष्टिसे परम ब्रह्म स्वरूप है। वहा बंध मोक्षकी बात नही है, लेकिन पदार्थ केवल द्रव्यदृष्टिसे देखा गया तन्मात्र भी तो नही है। प्रत्येक पदार्थ पर्यायमय है। उस पर्यायकी बात भी तो कहना चाहिए। बस पर्यायको तो छोड दिया और द्रव्यार्थिकका जो विषय है उसको ग्रहण किया उसमे बना है ब्रह्माद्वैतवाद। देखो अगर प्रकृति के लिए उपदेश किया जाय तो प्रकृनिको तो अचेतन माना है चेतन नही माना है। तो यहा भी कितने ही तत्त्व बता दिए जाये क्या उनके लिये आदेशका उपयोग हो सकता है? नही हो सकता। ये भीट खम्भा आदिक जो खडे हैं इनसे अगर कोई कहे किऐ भीट, ऐ खम्भे तुम यहा आ जावो तो क्या वे आ सकते है? नही आ

सकने। तो अचेतन तत्त्वके लिए कोई उपदेश नही है, उपदेशतो चेतनतत्त्वके लिए होता है इसलिए जीवका नाम प्रथम रखा गया है। सक्षेपसे यह एक प्रतिपक्षीकी बात कही गई।

क्षणिकवादसम्मत संतानके लिये उपदेश न होकर जीवतत्त्वके लिये उपदेश होनेसे जीवतत्त्वका प्रथम विन्यास—इतनेमे कोई क्षणिक वादी आया जिसका सिद्धान्त है कि आत्मा क्षण-क्षणमे नष्ट होता है, नया-नया बनता है, लेकिन लगातार बनते रहने वाले आत्माकी जो एक सतान है बस उस सतानके लिए यह उपदेश दिया जाता। तो इस सिद्धान्तका कहना है कि जीवके लिए उपदेश नही दिया गया किन्तु सतान के लिए उपदेश दिया गया, क्योकि जीव तो क्षण-क्षणमे उत्पन्न होता। कोई समय व्याख्यान दिया तो सुनने वाला तुरन्त मिट गया। सुनने वाला और हो और सुनकर उसको चित्तमे धारण करने वाला और हो तो जीवके लिए क्या उपदेश है। उपदेश तो सतानके लिए है, सगति के लिए है, ऐसा कहा है लेकिन यह बात भी अयुक्त है, क्योकि सततिको अवास्तविक माना है क्षणिकवादियो ने, वास्तविक तत्त्व तो क्षण-क्षणमे होने वाला आत्मा है। तो जो अवस्तु है उसका अनुग्रह कैसे किया जा सकता है। तो वह भी बात ठीक नही प्रतीत होती कि सतानके लिए उपदेश होता जीवके लिए नही होता। देखो भाई एक बात यह ज्ञानमे आनी चाहिए कि मैं जीव हूँ, सदा रहता हूँ, इसलिए मुझे तत्त्वोपदेश सुनना चाहिए। तत्वोपदेशको लाभ उठाना चाहिए, कल्याण करना चाहिए। एक बात, दूसरी बात यह समझिये कि मैं जीव हूँ सो प्रतिक्षण बदलता रहता हूँ इसलिए अपनी ज्ञानदशाको बदल करके हमे ज्ञान अवस्थामे आना चाहिए। अगर अपनेको सर्वथा नित्य माना जाय तो कल्याण नही हो सकता, सर्वथा अनित्य माना जाय तो कल्याण नही हो सकता, यह बात सामने रखना है और इन दो बातोका खुलासा होता है शकाकारके इस प्रसगसे। तो जिसका यह कहना है कि जीवके लिए मोक्षमार्गका उपदेश नही किन्तु सतानके लिए तत्वोपदेश है, यह बात युक्त न रही, क्योकि सतान अवस्तु है। सतान कोई चीज नही है क्योकि आत्मा नये-नये पैदा होते रहते है, तो उनमे एक दृष्टि बना ले कि लगातार ये चल रहे है, तो लगातारकी दृष्टि दृष्टि ही तो रही, कोई वहा वस्तु तो न रही।

क्षणिकवादसम्मत निरन्वय क्षणिकचित्तके लिए उपदेशकी असभवता—अब इस विषयमे क्षणिकवादी बोलते है कि सतानके लिए न सही, किन्तु जो नया-नया जीव बनता रहता है उसके लिए उपदेश कह लीजिए। तो निरन्वयक्षणिक चित्त उनके जीवका नाम है, निरन्वय क्षणिकचित्त माना वहा आत्मा, वह है जीव, क्षण-क्षणमे नष्ट होता है, मायने वे अत्यन्त भिन्न-भिन्न जुदे-जुदे जीव हैं, ऐसे जीवके लिए उपदेश मान लिया जाय तो यह

बात भी ठीक नही बैठती, क्योकि उसमे तो बड़ा घुटाला हो जायगा। ऐसा जीव जो क्षण-क्षणको आया और दूसरे क्षण न रहा, अब उपदेशदेने वाला जब उपदेशके शब्द निकालेगा तो उसके शब्द पूरे न निकलेंगे और वहा १०—५ जीव नयेनये पैदा हो जायंगे, किसको उपदेश दिया बतलाओ ? औरफिर किसीने एक शब्द सुना, किसीने आगेका शब्द, सुना, तोलो वह पूरा वाक्य कोई भी एक जीव नही सुन सकता, क्योकि क्षण—क्षणमे नया-नया आत्मा माना। सुनने वाला कोई और है, धारणा करने वाला कोई और बन गया तो वहा किसके लिए तत्वपदेश है ? तो समझना चाहिए कि निरन्वयक्षणिकचित्त के लिए भी तत्वोपदेश नही किया गया, क्योकि वहा तो तत्काल ग्रहण नही बन सकता सो क्षणिक जीवकी प्रयोजकता वहा जरा भी सम्भव नही है क्योकि सकेतग्रहणकालभी वह रहे और व्यवहारकाल भी वह रहे इतनी बात तो होना ही चाहिए तब तो तत्वोपदेश आ सकेगा। क्षणिक जीवमे तत्काल ग्रहण काल और व्यवहारकाल हो ही नही सकता। जैसेक्षणिक आत्ममे, सकेत तो पहिले कराया और उपदेश कभी ग्रहण करे और उसका उपयोग करे कभी तो उसका कल्याण कैसे हो सकता है ? तो यह भी बात नही कही जा सकती। यहा तक तीन बातें कही गई, प्रधानके लिए उपदेश नही, सतान के लिए उपदेश नही और क्षण-क्षण मे होने वाले आत्माके लिए भी उपदेश नही ।

शरीरके लिये उपदेशकी असम्भवता और अप्रयोजकता अब एक चौथा दार्शनिक यह कहता है कि जो चैतन्यसे विशिष्ट शरीरहै उसके लिए तत्वका उपदेश है, अब यहा चार्वाकआया चेतन से सहित जो काय है वह तत्वोपदेश ग्रहण करता है और उसकी ही मुक्ति होती है तो यह बात भी विचार करनेपर ठीक नही बैठती, थोडा-थोडा ठीक तो बैठती है, क्योकि जैसे शरीरमे जीव है ऐसे जीवसहित शरीरके लिए ही तो उपदेश है। जैसे सिद्ध भगवान है लो उनके लिए क्या उपदेश किया जाय ? जैसे कोई मुर्दा शरीर हो तो उसके लिए क्या उपदेश दिया जाय ? तो बात तो कुछ ठीक रखी कि चैतन्यसहित जो शरीर है उसके लिए सारा उपदेश दिया जाता है, लेकिन यह निर्णय उनका बनता नही है। इस शकाकारने चेतन कोई पदार्थ अलग नही माना है कि कोई स्वतत्र सत् है जीव। वे शरीरको ही भौतिक पदार्थ के सयोगकी एक वस्तु मानते है कि चेतन है। उस चेतन सेसहित जो शरीर है उसके लिए यह उपदेश है, इसमे जरा और विचार करें। शकाकारने दो बात कही— चेतन और शरीर। चेतन सहित शरीर। तो शकाकार जरा यह बतलाये कि वह चेतन शरीरसे जुदा तत्व है या शरीरका ही नाम चेतन है ? दो बातें इसमे पूछी जाना चाहिए। यदि यह कहो कि शरीर से जुदा पदार्थ है चेतन और इस चेतनसे विशिष्ट शरीरके लिए

उपदेश है तो इसमे बहुत कुछ बात सिद्धसाधनपने की आती है। ठीक है। यह व्यवहारनय-से कथन समझना चाहिए। चेतनसे सहित शरीरके लिए उपदेश है मायने नरक, तिर्यञ्च मनुष्य, देव, इन सबके लिए उपदेश किया जाता है। यहा तक तो बात ठीक है। पर वहा भी निश्चयसे देखा जाय तो उपदेश सुननेमे दो का स्थान नही है कि चेतन और शरीर दो मिलकर मोक्ष मार्ग को करेंगे, यहा पर भी एक जानने वाला समझने वाला चेतन है और इस चेतनके लिए ही उपदेश है। जो चेतन ऐसी परिस्थितिमे आवे समझो उस जीवके लिए उपदेश है। वह जोव निर्लेप नही है। अत कुछ शब्दोमे बात रखी जाना ही चाहिए। इस तरह से निश्चय और व्यवहारनय दोनोका प्रयोजन सगत हो जायगा। तब यह सिद्ध हो गया कि चेतनके लिए उपदेश है, जीवके लिए उपदेश है। चेतनारहित शरीरको कौन उपदेश करता। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो। क्या कहा जा रहा कि चेतन शरीरसे न्यारा नही है, किन्तु शरीर ही चेतन है। कोई जुदा तत्त्वान्तर नही है, यह विकल्प जब लेते है तो यह विषय बिल्कुल ही असगत है। अजीवके लिए कौन उपदेश देता। इस समय इस बात-पर विचार चल रहा है कि चैतन्यविशिष्ट कायके लिए उपदेशकी बात जो कही जा रही है उसमे ये चार्वाक यह समझ रहे है कि शरीर निराला नही है चेतन और शरीर एक चीज है। अगर एक ही चीज है तो इसके मायने है कायके लिए उपदेश हो रहा है। जब कायसे निराला चेतन नही माना जा रहा, तो कायके लिए उपदेश करना व्यर्थ है, क्योकि कायके लिये कितना ही उपदेश दे, शरीरका उपग्रह नही होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि तत्त्वोपदेश जीवके लिए ही होता है।

सात तत्त्वोमे जीवतत्त्वको प्रथम रखनेके कारणका उपसंहार—एक बात यह यहा सगत की गई है कि जीवाजीवाश्रवसवरनिर्जरा मोक्षा इन ७ तत्त्वोमे जीवका नाम प्रथम क्यो ग्रहण किया ? उत्तर सक्षेपमे यह रहा कि जितनी जो कुछ बात कही जा रही है वह सब जीव के लिए कही जा रही है। और भी देखो-जगतमे सारे पदार्थ ६ प्रकार के है ना, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। एक कल्पना करो कि ५ तो द्रव्य रहे ये परन्तु इनमेसे एक जीव सत्त्व न माना जाय, पुद्गल खूब रहे, धर्म अधर्म, आकाश और काल खूब रहे, तो इसमे क्या हानि है ? तो अब हानि देख लो। जीव नही है और सब है पुद्गल धर्म अधर्म आकाश, काल सो जीव को तो यहा माना नही जा रहा, बाकी ५ द्रव्य है इनका कोई जानने वाला नही तो ये रहे न रहे बराबर है फिर पुद्गलमे जो इतनी चीजे दिख रही है, जो भी पुद्गल है यह सब जीवके सम्बन्ध से दिखने योग्य हुआ, अगर जीवका सम्बन्ध न हुआ हो तो यह दिखना कभी न बन सकता था। जैसे यह भीट है, कलई है, चूना है, पेड़

है, मल है, मूत्र है, पृथ्वी है आदिक ये सब जीवका सम्पर्क होनेसे ही देखे गए है जीवका सम्बन्ध न हो तो ये चीजे कभी दिखनेमें आ सकेगी क्या ? आप बतलाओ जीवका सम्बन्ध आया तो यह वनस्पतिकाय जीव हुआ शरीर बना, शरीरमें पुष्टि आयी अब जीव न रहे तब तो ये बातें शरीरमे नही हो सकती। अगर जीवको न माने तो फिर पुद्गल ठहरेगा कहाँ और मानों ठहर भी जाये मानो सूक्ष्म परमाणु है तो उनका प्रयोजन क्या, जानने वाले बिना क्या ? जीव तत्व तो समस्त द्रव्योमे एक राजा, प्रधान, सारभूत तत्व हैं, सब समयोमे सार समय मायने पदार्थ, सब पदार्थोंमि सार पदार्थ है जीव सो समय सार हुआ जीव, इस समयसारमे भी सार है द्रव्यदृष्टिसे परखा गया ज्ञानस्वभावी अतस्तत्व। देखिये समयसार नामपर एक सार और धर दिया और उसमे भी सार परखा तो कोई सार जब बोलेगा तो एक ही सारसे काम चलेगा। यह समयसार। तो जीवका नाम पहिले रखा गया, इसका कारण यह है कि जीवके लिए ही तत्वोपदेश है इसलिए जीवका सूत्रमे प्रथम नाम है।

अजीव तत्वको द्वितीय नवरपर रखनेका कारण—अब जीवके बाद अजीवकी बात देखिये दूसरे नम्बर पर तत्व कौन रखा गया ? अजीव जो कि जीवके विकारका कारण है। धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल आदिक जो अजीवके विशेप है वें जीवकी गतिमे कारण, स्थिति मे कारण, अवगाहनामे कारण शरीर आदिक बनानेमे कारण है जीव तो अकेला एक है ना, अब जीवके साथ यह शरीर बन गया तो यह किसका उपकार है ? पुद्गलका विकार है, इसउपकार को इस तरह न देखना कि भाई जिसका उपकार है उसका तो कृतज्ञ होना चाहिए और उसकी खूब सेवा करनी चाहिए, क्योकि यह शरीर पुद्गलका उपकार है, धन्यतो पुद्गल तुम्हारी वजह से शरीर मिला ऐसी कृतज्ञताकी बात नही, किन्तु उपकारका अर्थ है काम होना इसमे कारण है सूक्ष्म कर्म और शरीर साथ हैं। तो जीव अभी किस तरह चल रहा है, यह बात तो प्रकट दिख रही है। बडे बन्धनमे है इसका कारण अजीव प्रसग है। आपसे कहे कि भाई जरा आप इस शरीर विस्तारको तो वही पडा रहने दो आर आप ही अकेले कृपा करके एक हाथ आगे आ जावो तो क्या आप इस तरहसे आ सकते है ? नही आ सकते। यह जो पिण्डोला लगा है, जिसके भीतर हम घुसे हुए है जहा जायगा साथ जायगा, ऐसा एक क्षेत्रावगाह हो रहा है, निमित्तनैमित्तिक बन्धन चल रहा है, वास्तविक है वह असत्य नही कहा जा सकता लेकिन ये कल्याणमार्गकी दिशामे कुछ विधन करें मैं तो शरीरको तो ऐसी दृष्टिसे छोड देना होगा कि मानों शरीर है ही नही। दृष्टिमे केवल एक जीवको ले। ज्ञानभावको ले तो यह भूतार्थका आश्रय, कहलायगा और यह ही सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण है। तो बात यह कही जा रही है कि ७ तत्वोकी व्यवस्थामे जीव के बाद अजीब क्यो कहा कि यह जीवके

उपग्रहका कारण है। इससे यह क्रम बताया गया जीव और अजीव। देखिये-भाई मित्रता, दोस्ती, बन्धन, मोह ये सब इस जीवको कल्याण मे बाधा देने वाले है। मूलको देख लो– इस जीवके साथ अजीव न लगा होता तो आज हम आपकी ऐसी दयनीय दशा क्यो होती। किसी भी समय हम अपना सच्चा आराम नही कर सकते सहज निजवाँ गांवका आनन्द नही ले सकते, और जरा–जरा सी बातमे क्षमा हम करते है।

सम्यग्ज्ञान हुए बिना विकारोसे पृथक् हो सकनेकी असंभवता:—यह सब सिद्ध करता है कि जीवके साथ कोई विपरीत उपाधि है। कभो कभी कोई माता आहार देनेके बाद हमसे कहने लगती है कि महाराज हमारा लडका कभी–कभी बडी गुस्सा करने लगता है उसको आप यह नियम दिला दो कि वह कभी गुस्सा न करे। अब हमे कोई भाई सम–झादे कि इस गुस्साका भी किसीसे त्याग कराया जा सकता है क्या ? कोई बाहर भी चीज हो तो कह भी दिया जाय कि भाई गोभीका फूल अभक्ष्य है उसे छोड दो, पर उसे क्रोध का त्याग कैसे करायी जाय ? वह तो एक अन्दर की विकृत चीज है। खैर वह तो छोटे लडको की बात है, आप सब जो बडे बडे जवान लोग बैठे हुए है, वे ही भला गुस्साका त्याग करके दिखा दे। कोई कहे कि इसके विकल्पका त्याग करा दो। विकल्प में बडा क्षोभ है, दु.खी होना पडता है, तो इसके विकल्पका नियम दिला दो कि न करे विकल्प, तो बताओ कोई विकल्पका त्याग कैसे करायेगा ? कोई दूसरेको विकल्पोका त्याग कराना क्या ? पहिले खुद भी तो विकल्पोका त्याग करके दिखाये। यह बातयो न निभेगी। वह तो निभेगी सम्यग्यज्ञानसे। खुद ही खुदका निभाव बना सकता है। अपना सम्यग्ज्ञान जगे, अपने भीतरका स्वरूप समझमे आ जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरा घर है, ज्ञानके शिवाय मैं कुछ नही, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है, ऐसा अपने आपकी दृष्टिमे आये तो भाई भला होगा। देखो अपनी दया करलो, अपने मनको समझा लो। कोई प्रसग आये दु खका तो अपना मन दु खी हो रहा है ठीक है, लेकिन कोई वचन व्यवहार ऐसा न करे कि जिससे दूसरे को दु ख पैदा हो। अगर आपको कोई दु ख है तो दो मिनटमे आप स्वय उसे दूर कर सकने है। सब दु ख अपने ओपपर झेल ले मगर दूसरेसे वचन व्यवहार ऐसा न करे कि जो दूसरे के मर्मको भेद दे, क्योकि ऐसा बचनव्यव–हार हो जायगा तो फिर कोई उपाय नही है कि आप उसके दु खको दूर कर सके। अपना दु ख थोडे समयको हो गया तो आप अपनेमे समझालेगे, आप उस दु खको स्वयं पचालेंगे, उससे कोई वातावरण न विगडेगा। एक शान्तिका वातावरण बनानेमे लाभ ही लाभ है। तो कैसे दूसरेको नियम दिलाया जा सकता। खुद ही ज्ञानप्रकाश पाये और अपने आपके

आत्माको समझे, अहो कितना बड़ा अज्ञान था, उस अपने ज्ञानस्वभाव को न ग्रहण करके विषय आया शरीर, दूसरा जीव, उसको ही अपना करके अपने को अभी तक अनादिसे सकट ही सकट मे रखा। अब मैं इन सकटोको नही सह सकता। ये सकट तब समझमे आयेंगे कि सकट है जब मैं इनको न सूंगा। जब इन सकटोको मैं संकट ही न समझता था तब तक सकट भी सह रहा था, सकटो का बहिष्कार भी कर रहा था लेकिन प्राप्त परिचय हुआ कि ज्ञानाद्दष्टा रहने के अतिरिक्त जो कुछ भी विकल्प होता है वह सब सकट है, उसे मैं अब न करूंगा।

अजीवके उपग्रहकी विडम्बना—देखिये यहां उपकारकी बात कोई भलेकी नही कह रहे, मगर जो काम हो रहा है, जो जीवकी विभिन्न दशा चल रही है उसका कारण है अजीब यों अजीवसे उपग्रह चल रहा है इसलिए जीवके बाद अजीब तत्वका नाम लिखा गया है। देखो यह अजीवके सम्बन्धका उपकार, यह अजीवके साथ दोस्ती बनानेका काम कितना खतरनाक बन रहा है। हम मन्दिर मे आकर सिद्धभगवान की पूजा करते है हे भगवान् प्रसन्न हो ओ। सिद्ध की भक्ति करने आते हैं, पर पुण्य करके बहुत से लोग सोचते है कि मेरा परिवार सुखी रहे, मेरे धन बढे। अरे पूजा करते हुए जब यह दृष्टि न रहे कि सिद्ध भगवान जैसे हैं वैसा मैं भी हूँ मेरा भी स्वभाव एकत्वको लिए हुए है, ऐसा यह ज्ञानमात्र आत्मा है ऐसा भीतरमे बोध न करे और मैं भी इस अवस्थाको प्राप्त कर सकता हूँ ऐसा विश्वास न करें तो उस भक्ति से क्या फायदा? एक गरीब भाई किसी धनिककी सेवा करे और वह मनमे कुछ उद्देश्य न रखे कि मे भी ऐसा हो जाऊ या मेरेको भी कुछ सुविधा मिले यह उद्देश्य न बनाये और केवल यह धनी है इसलिए हमे सेवा करना चाहिए, ऐसा सोचकर कोई सेवा करे तो उसे कोई लोग बुद्धिमान कहेगे क्या? वह तो एक कायरता भी हो सकती है। इसीतरह सिद्ध भगवान की हम भक्ति उपासना करने आये और हमारी यह श्रद्धा न बने कि जैसा सिद्धका स्वरूप है, वैसा ही मै हो सकता हूँ। वैसा होना चाहिए नही तो ससारके सकट नही छूट सकते। यहा तो एक विपत्ति की सम्हाल करते हैं तो दूसरी विपत्ति सामने आ खडी होती है। घर-घर मे यही बात चल रही है कि अभी एक समस्या नही सुलझा पाये, दूसरी समस्या सामने खडी हो जाती है। यह ससार दुःखका घर है। यहा से तो हमे विदा होने मे ही लाभ है, और देखो जो यहा से विदा होते है उनका कितना बडा विदा समारोह मनाया जाता है। तो फिर जो इस ससारसे विदा होते हैं उनका बडा ऊँचा समारोह होता है, उस समारोह को मानने के लिए साधारण प्राणी समर्थ नही होते, उसे तो तीनो लोको के इन्द्र मानते हैं।

जब यह जीव सदाके लिए संसार से मुक्त होता है ।, सिद्ध भगवान बनता है उस समयका समारोह क्या कहलाता ? मोक्षकल्याण । बडा समारोह होता है । तो समझ लीजिए कि यहाँ तो लोग जरा जरा सी बात मे कीर्तिकी चाह करते है मगर बहुत बडी कीर्ति चाहिए और बहुत बडा समारोह चाहिए तो आप ससारसे सदाके लिए छूटनेका प्रोग्राम रचें तब यह मौका मिलता है, ससारसे सदाके लिए छूटनेका मौका मिलेगा, आप कुछ न चाहेगे मगर तीनो लोको के इन्द्र आपका विदाई समारोह करेंगे।

साँसारिक सुखकी विडरूपता—भाई देखो ऐसे सुखसे क्या लाभ है जो थोडी देरको मिला फिर वियोग उसकी कसर निकाले और, देखो किसीका बच्चा बचपन में ही मर जाय तो माँ कहती है कि इससे तो अच्छा था कि वह पैदा ही न होता । अगर उस बच्चेका मुख न देखते तो उससे राग विकार होनेका मौका ही क्यो आता ? तो जो ये ससार के सुख आये है थोडी देरके लिए, बादमे कठिन दु ख नियमसे आयगा । जो ससारके सुखोमें मग्न होगा वह नियमसे संसारके कठिन दु.ख पायगा । ससारका सुख जो जितना चाहेगा उसको उससे कई गुणा दु ख नियमसे आयगा । इससे सबसे पहिले तत्व निर्णय बनायें कि सांसारिक सुख दु खसे भी बुरे है दुखमे तो प्रभुकी याद भी आजाती है दु खमे प्रभुभक्ति का स्वाध्याय व। सेवाका कुछ समय भी निकल आता है मगर जब सुख अधिक होता है तो वहां इसके लिए समय अधिक नही निकलता जिस सुखमे हम प्रभुका स्मरण करने लायक भी न रहें उसे हम क्या समझें ? सुखसे तो दु ख अच्छा है जहां सावधानी बनी रहती है । देखो विषय भोगोको भोगने वाला सम्यग्यदर्शन नही प्राप्त कर सकता है । पर ७ वे नरक का नारकी प्राप्त कर सक्ता है । भले ही उसे बहुत कठिन दु ख है मगर उसकी वेदना उसे प्रभुकी याद दिलाने का साधन बनेगी और ये सासारिक सुख ये भोग प्रसग इस जीवके कल्याणके बाधक बन जायेगे । इस कारण भाई इस संसारके सुखोमे ललचाना नही और ससारके दु खोमे घबडाना नही । लोग सोचते हैं कि हमे तो बडा दु ख है, पर वास्तविकता यह है कि दु ख किसी को भी नही है, क्योकि जो हम आप सब है वे एक—एक अकेले अकेले जीव हैं । जितने भी परिपूर्ण है, जो कुछ भी सत् है उसमे दु खका क्या काम ? वैसे दु ख होगा, इसको दु.ख कहा से आयेंगे ? दु खकी गुजाइस ही नही है । किसी भी परवस्तु से मेरेमे कर आये यह हो नही सकता एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी परिणमन नही कर सकता । वह तो निमित्तनैमित्तिक योग है कि इसका निमित्त पाकर यह वस्तु इस प्रकार परिणम गई । पर वास्तविकता यह है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थका परिणमन करने मे समर्थ नही है । एक का दूसरे के साथ कर्त्ताकर्म भाव नही है । लेकिन कोई इस तरह माने कि जीवमे

अपने आप जो होना है होता है सामने जो हो उसमे निमित्त हो जाता है, इसमें निमित्त नैमित्तिक की व्यवस्था नही आयी और इसमे कल्याण ढुढने का मार्ग भी नही मिलता। जब जो होना है होता है। तो भाई निमित्त कहो या ना कहो बात सामने है। तथा निमित्ता पेक्षविकार है तो वह स्वभाव बन वैठेगा तो नित्यकर्त्ताका प्रसग आ जायगा। तो आत्मा सबसे निराला है। जितना भी विपय कषायोका भाव है वह मेरी चेतना का परिणाम नही है, किन्तु यह कर्मविपाक है। कर्मविपाककी झाकी हुई एक बार अपनी और उसमे इस तरह भी बात चल उठी तो इसे पौद्गलिक मामने मे कुछ हर्ज नही, जिसके सम्बन्धमे कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वय कहा है कि यह सब जो है वह पौद्गलिक भाव है परभाव है।

आस्रवका स्वरूप न अजीवके बाद रखनेके क्रमका कारण—अब तक दो तत्वो के बारे मे क्रम के निर्णयपूर्वक वर्णन किया गया आज आश्रव तत्वके सम्बन्धमे कहा जा रहा है, जीव अजीवके बाद आश्रवका नाम क्यो रखा गया है ? तो यहां यह ध्यानमे रखियेगा कि आश्रव होते है तो दो प्रकार के (१) द्रव्याश्रव और (२) भावाश्रव। जो शरीर परमाणु और कर्म परमाणु है इनके आनेक नाम हैं द्रव्याश्रव और जीवमे इस योग्य विभाव के आनेका नाम भावाश्रव है देखिये यद्यपि आश्रव के बाद से कर्म और शरीर परमाणु दोनो आ सकते है, किन्तु प्रधान है कर्मपरमाणु, क्योकि शरीर परमाणु आनेका कारण है कर्म परमाणु, इसलिए मुख्यता कर्मकी है। तो यहा आश्रवका अर्थ माना है जीवमे अजीवका आना सो आश्रवसे होता है इसलिए दो तत्त्वोके बाद आश्रव तत्वका वर्णन किया जा रहा है। आश्रवके होनेपर ही बधकी उत्पत्ति होती है इस कारण आश्रव के बाद बंध कहा है। आश्रव का अर्थ है आना और बन्धका अर्थ हे बधना। कर्म आये और तुरन्त चले, जाये, ठहरे ही नही। जैसे कोई बच्चा दौडकर मडपमे ले जाकर मडपसे बाहर निकल गया इस तरह कर्म आये और तुरन्त ही निकल जाये आत्मामे ठहरे ही नही यह तो हुआ आनेका स्वरूप और ठहर जायें यह हुआ बंधका स्वरूप। तो ऐसे आश्रबमे आये और जो ठहरे नही तो ऐसा आश्रव तो वीनराग आत्माके होता है। ११ वे, १३ वे गुणस्थान तक ईर्यापथ आश्रव होता है और १४ वें गुणस्थानमे ईर्यापथ आश्रव भी नही होता है। यद्यपि आश्रवका अर्थ ठहराना नही है लेकिन हम आप सब लोगोके जो आश्रव होता रहता है सो स्वरूप तो वही हे जो आश्रवका स्वरूप है, मगर यहा कोई आश्रव ऐसा नही कि आकर तुरन्त चला जाय। यो आश्रवकी बात है।

आस्रवके बाद बन्धतत्त्की क्रममे रखनेका कारण.—बन्धके बारेमे समझें बन्ध कहते है बन्धनको। तो आप यह बतलावो कि आया जिस समयमे उस समयमे बन्ध कहलायगा

कि नही, देखिये कहलायगा भी और नही भी कहलायगा। दूसरे समयमे ठहरे तो, पहिले से ही बन्ध सज्ञा है। अगर दूसरे समयमे न ठहरा तो पहिले समयमे भी ठहरा न कहलायगा ठहरने से पर पहिले समयमे भी कहलायगा कि उसी समयमे आश्रव है, उसी समयमे बन्ध है, लेकिन समझनेके लिए यह वात आयगी कि ठहरना होनेपर बन्ध होता है याने आश्रवके समयमे भी बन्धकी सज्ञा होनेका कारण है दूसरे समयका ठहरना । इसे कहते है बन्धन। तो आश्रवके होनेपर ही बन्धन होता है, इस कारणसे आश्रव के बाद बधका होना क्रममें रखा गया है। यहा तक क्रम समझमे आया। जीव, अजीव, आश्रव, बध। बात क्या कही जा रही कि जीव तो हम आप खुद है पर इसमे कर्म जो धरे है वे अजीवमे आ जायेंगे। जीवमे कर्म आये तो आश्रव जीवमे कर्म बँधे सो बन्ध।

आश्रव बन्धके बाद निर्जरातत्त्वको क्रममे रखनेका कारण.—बधके बाद सम्बर कहा है, उसका कारण यह है कि आश्रव और बधका प्रतिपक्षी है सम्बर जहां सम्बर है वहा न आश्रव है न बध है। देखो—सम्यग्दृष्टि श्रावक मुनिके सम्बर भी हो रहा, आश्रव बध भी हो रहा निर्जरा भी हो रही। चारो बाते एक साथ होती है, चारो बाते होनेका कारणभूत परिणाम भी एक है । एक समयके परिणामसे, उस अन्तर्मुहूर्तके परिणामके निमित्तसे आश्रव भी हो रहा बध भी हो रहा सम्बर भी हो रहा निर्जरा भी हो रही, परिणाम एक है किन्तु उस परिणाममे जो रागांश है वह आश्रव बंधका कारण है और उस परिणाममे जो वैराग्यकी झलक है वह सम्बर निर्जरा का कारण है । एक ही परिणाममे राग और वैराग्य दोनो भरे हुए है। उसको यो समझ लीजिए—जैसे जमीनपर तो १०० डिग्रीका राग समझिये और जरा कुछ और ऊपर १ डिग्रीका राग समझिये, याने जीव जैसे जैसे परिणाममें ऊपर चढेगा उसके रागकी डिग्री कम होगी। मानो ४० अशकी डिग्री का राग है, जमीनसे भी बहुत ऊँचा उठ रहा है तो उस समयका जो ४० अश वाला रागका परिणाम है उसे यही तो कहेगे कि ६० अश न रहा वह हुआ वैराग्य और जितने अशमे राग है वह है राग। जो वैराग्य शक्ति हुई उससे तो होता है सम्बर निर्जरा और जो रागाश होता है उससे होता है आश्रव बध। एक ही समयमे चारो होते हैं, किन्तु कुछ सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करने पर निमित्तकरणका जुदा जुदा विदित हो जाता है तो आश्रव और बधका प्रतिपक्षी है सम्बर अत आश्रव और बधके बाद सम्बर का नाम दिया।

संवरके बाद निर्जरातत्वका क्रम रखनेका कारण—सम्बर होने पर ही मोक्ष हेतु भूत निर्जरा होती है इसलिए सम्बरके बाद निर्जराका सम्बर दिया गया है। क्योकि सम्वरके होनेपर ही परम निर्जरा होती है और परम निर्जरा के होनेपर ही मोक्ष होता है।

निर्जरा और परम निर्जराका भाव क्या ? कुछ कुछ निर्जरा हो गई, निर्जरा की एक विशेष दृष्टि नही चल रही वह तो निर्जरा है और जहा बहुत अधिक निर्जरा होती है और जहां बन्ध और आश्रव नही चलता है, ऐसी स्थिति को कहते हैं परम निर्जरा और परम निर्जरा होती है १४ वें गुणस्थानमे । जहा परम निर्जरा हुई वहां अन्तमे मोक्ष होता है । निर्जरा, परम निर्जरा और मोक्ष ये तीन बाते समझना है। निर्जरा तो जो सम्वर पूर्वक निर्जरा है यह चलती रहती है चतुर्थ गुणास्थान से १२ वे गुणास्थान तक । १३ वे गुणास्थानमें और विशेषता हुई और १४ वे गूणास्थानमे परम-निर्जरा हुई । उसके बाद मोक्ष होती है । यहां एक आशका की जा सकती है कि परम निर्जरा और मोक्षमे क्या अन्तर है ? जो परम निर्जरा हुई, पूरे कर्म खिर गए उसीका नाम तो मोक्ष है । मोक्ष और परमनिर्जरामे क्या भेद है ? कुछ भी तो अन्तर नही । इसे मोटे रूपसे देखते हैं तो शकाकार की बात कुछ भली जचती है लेकिन कुछ सूक्ष्मतासे विचारें तो परम निर्जरा तो है १४ वे गुणस्थानमे और मोक्ष है गुणस्थान से अतीत स्थितिमे । जहा गुणस्थान नहीं है वह है मोक्ष, जहा तक गुणस्थान है वहा तक है मोक्षसे पहिलेकी स्थिति । यद्यपि १३ वे १४ वे गुणास्थान को भी मुक्ति कहते हैं पर वह है जीवनमुक्त । यो तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानो पुरुषको भी मुक्त जीवन कहते हैं, अभिप्राय जुदा जुदा है । शब्द पर अधिक विवाद न करना चाहिए । अभिप्राय देखना चाहिये कि क्या है आशयको छोडने से विवाद है जैसे कि एक स्वरूपाचरण की बात चर्चाका विषय बना हुआ है

वचनके आशयसे निर्णयकी व्यवस्था—कोई कहते हैं कि स्वरूपाचरण चौथे गुणा-स्थानमे होता है कि नही ७ वे गुणास्थान से होगा । ५ व या ६ठे से नही किसीका यह मतव्य है और कोई कहते है कि स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थानसे होता है, भाई स्वरूपाचरणका नाम लेकर विवाद मत करो । तुम तो यह बात बताओ कि स्वरूपाचरणका अर्थ तुम क्या कर रहे हो ? जब यहा भेद बतायगा कोई तो विवाद हो जायगा । स्वरूपाचरणका अर्थ यदि यह लिया जाता कि अपने आत्माके स्वरूपमे मग्न हो जाना तो यह स्वरूपाचरण प्रभुता प्रकट होनेसे पहिले नहीं है । श्रद्धा की अपेक्षा तो चौथे ५ वे छठवे गृणस्थान मे भी ऐसा ही मानते है जो चौथे गूणस्थान से स्वरूपाचरण मानते हैं । साधारणतया स्वरूपाचरण का अर्थ यदि स्वरूपमे मग्न होना लिया जाय तो स्वरूपाचरण तो सदा रहता है, अनुभूतिके समय स्वरूपाचरण हो और अनुभूति न हो तब न हो ऐसा नही है, अनुभूति तो कभी होती है लेकिन स्वरूपाचरण निरन्तर बना रहता है ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के । जब स्वरूपाचरणका अर्थ यह किया जाय कि स्वरूपकी ओरका आचरण, चाहे थोडा हो अधिक हो या पूर्ण हो । तो आत्माका शुद्ध निरपेक्षस्वरूपज्ञायक भावकी जो दृष्टि है उसकी धुन बनती है, उसकी ओर

उपयोग रहता है वह भी स्वरूपाचरणकी पंक्तिका आचरण है और उसके अपने आप मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य इनकी प्रवृत्ति दूर हो जाती है, प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदिक का व्यवहार हो जाता है । व्यवहारमे तो यह है और अन्त: एक उस निरपेक्ष ज्ञायकस्वभाव की सुध रहती है ऐसा एक आचरण बन जाता है इसे कहते हैं स्वरूपाचरण । तो इसे चौथे गुणस्थानमें भी माननेमे कोई विपत्ति नही । शब्दोमे विवाद होनेपर बहुत बडा झगड़ा खडा हो जाता है । भाव तो कोई नही देखता । एक बार सहारनपुर मे हुआ है ऐसा कि जब हिन्दू मुस्लिम दगा चला करता था उस समयकी बात है कि एक लड़के के पास थी एक खोटी चवन्नी । वह चलती न थी । तो एक हलवाई की दूकान पर २ आनेकी मिठाई लिया, वही चवन्नी दी, हलवाईने २ आने वापिस कर दिये । वह लडका बडा खुश हुआ, और मारे खुशीके उछलता कूदता दौडा और साथ ही यह भी कहता गया कि चल गई चल गई चल गई उसका यहा आशय तो यह था कि मेरी चवन्नी चल गई । पर वहां जब दूकानदारोने सुना तो उन्होने सोचा कि शायद हिन्दू मुस्लिममे लडाई चल गई, सो सभी दूकानदार अपनी अपनी दूकाने बन्द करके अपने अपने घरमे घुस गए । तो शब्दो पर ही कोई दृष्टि दे, उसके आशयको न समझे तो वही विवाद खड़ा हो जाता है और कोई शब्दके भावो पर दृष्टि दे तो वहां कोई विवाद नही होता है,

मोक्ष तत्त्वको अन्तमें रखनेका कारण:—देखिये परम निर्जरा १४ वे गुणस्थानमे है और मोक्ष गुणस्थानसे अतीत हो जाने मे है । कोई यह सोच सकता कि जो कर्मके विनाशका समय है वही तो मोक्षका समय है, फिर कैसे परमनिर्जराके बाद मोक्षकी कल्पना हो सकती है ? ध्यानसे देखिये—समस्त कर्मोका विनाश जहां है वह है १४ वे गुणस्थानके अन्तमे और १४ वें गुणस्थानका जहा अन्त हुआ उसके बाद का जो प्रथम समय है वही लोकके अग्रभागपर विराजमान हो जानेका है । एक समयमे ७ राजू ऊचे केवलीका जीव पहुंच जाता है उसे कहते है मुक्त दशा । तो अयोगकेवलीका जो चरम समय है वह गुणस्थानमे है और मोक्षकी जो स्थिति है वह गुणस्थान से अतीत है, लोकके अग्रभागमे जहा पहुच जाता है उसे अतीत गुणस्थान कहते हैं । यो ही परमनिर्जरा और मोक्षमे अन्तर होता है । इसलिए अन्तमे मोक्षतत्वका शब्द रखा है । इस तरह संख्याका वर्णन हुआ और क्रमका भी वर्णन हुआ ।

सूत्रमें तत्त्व एकवचाशान्त शब्दका मर्म:—अब तत्त्व इस शब्द पर दृष्टि दीजिए तत्त्व का क्या कहा जाता है ? तस्यभाव. तत्त्वं तस्य मायने उसका, उसका मायने सद्का । वस्तुका जो भाव है उसे तत्त्व कहते है । एक तत्त्वसूत्र पुस्तक बनाया है

उसमे बहुत छोटे छोटे सूत्र है, जिसमे पहिला सूत्र है ॐ, दूसरा तत् और तीसरा सत् इनको मिलाकर बोले तो ॐ तत् सत्, । यह बात अन्य मतावलम्वियोमे बहुत प्रसिद्ध है, और यह बात जैनसिद्धान्तमे भी है, ॐ तत् सत् । इसका सीधा अर्थ तो यह है कि ॐ मे तो पंचपरमेष्ठी गर्भित हैं । अब और दृष्टिसे तत्त्वको ग्रहण करिये तो ॐ तो है सत्यका प्रतिनिधि, तत् है ज्ञानका प्रतिनिधि और सत् है समस्त अर्थका प्रतिनिधि । ॐ तत् सत् बताया था कि तीन रूपमे परखो—शब्द, ज्ञान और अर्थ, इनमे सब कुछ आ गया । जो ७ नय कहे गए हैं—नैगम नय, सग्रह नम, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूत नय, इनमे से नैगम तो ज्ञाननय है, और सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय ये है अर्थनय और शब्दनय और समभिरूढनय यह है शब्दनय । सब चीजोमे ये तीन बाते परख लीजिए । यहा यह बात बतलायी जा रही है कि तत् शब्दसे समस्त अर्थो का बोध होता है । तो यह शब्द अर्थनयका आश्रय करनेवाला है । और जीवादिक हैं, सो तत्त्वशब्द सबके लिए लगेगा । यहा एक बात और समझना है कि देखो वहा तो दिया है बहुबचनजीवाजीवाश्रवबधसम्बरनिर्जरामोक्षा । और तत्त्व कहा एक वचन । यह भी बहुत अर्थ रखता है । ससयसारमे जैसे कहते हैं नवतत्त्वगतत्वेपि यदेकत्व न मुञ्चति वह समयसार, वह आत्मस्वरूप ६ तत्त्वोमे गत होने पर भी अपनी एकताको नही छोडता । यह ध्वनि इस सूत्रसे निकल रही है । तत्त्वशब्द एक बचन दिया है उस सामर्थ से यह बात ज्ञात हो रही है । उन सबमे रहकर भी जो वह है तत्व एकस्वरूप है ।

परमार्थ लक्ष्यके अपरिचयमे उपयोगका परिखोडन.—देखिये जब तक लक्ष्य का परिचय नही होता अपना लक्ष्य बिन्दु जब तक नही बनता तब तक इस उपयोगका आसपास भटकना होता रहता है,यह तोजगह जगह भटकता है । और लोग कहते भी है कि जब सामायिकमे बैठते हैं, जाप करने बैठते हैं तो यह उपयोग इतना अधिक भटकता है जितना और काम करके नही भटकता । तो क्या करे यह उपयोग ? जब तक लक्ष्य बिन्दु नही मिला अपने आत्माका लक्ष्य न जाना जा सका तो वह उपयोग तो बाहर डोलेगा आसपास झलकेगा । बस यही पद्धति है, यह उपयोग जो जगहज्जगह डोल रहा है ऐसी ही विडम्बना है और जब यह उपयोग अपने आपके इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वको करेगा जब यहा ही वह अपना लक्ष्य रखेगा तो उसे शान्ति मिलेगी । एक निर्णय है शान्ति और अशान्तिका । जब तक अज्ञान है, मिथ्यात्व है, मोह है, उपयोग बाहर भटक रहा है तब तक अशान्ति है । और, जब उपयोग अपने आपमे आ जाता है तब उसे शान्ति होती है । देखिये बाहर उपयोग रखनेमे कितनी ही

विपत्ति है, और है वास्तव मे विपत्ति है यही कि बाहरमे उपयोग कर लिया। तो देखे ये अनेक विपत्तियां सब एक साथ शान्त हो जाती है अपने आपके भीतरी समयसार अन्तस्तत्वका परिचय होता है। जैसे एक जमुना नदीमे कछुवा रहता था वह पानीके नीचे नीचे तैरता रहता था। एक बार उसके मन मे आया कि मैं जरा पानी के ऊपर अपनी चोंच उठाकर घूम आऊँ। ज्यो ही वह अपनी चोच पानीसे बाहर निकालकर डोलने लगा त्यो ही चारो ओर से अनेक पक्षी आ आ कर उसकी चोचको चोटने लगे। वह वेचारा कछुवा अपनी चोचको इधर उधर चारो ओर घुमा घुमाकर हैरान होने लगा। बडा दुःखी होने लगा। उसे कोई समझादे कि रे कछुवे तू व्यर्थ ही दुःखी हो रहा है, तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिसको खेलले तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जाये। क्या है वह कला ? अरे जरा एक विलस्त पानी मे अपनी चोचको डुबाले फिर तो ये १०—२० पक्षी ही क्या, सैकडो पक्षी भी तेरा कुछ बिगाड नही कर सकते। इसी प्रकार यह आत्मा अपने इस ज्ञानस्वरूप मे जारहा है, लेकिन अनादि से यह स्थिति है कि इस ज्ञानसरोवरके ऊपर ही यह ठहरता है। उस कछुवेसे इसकी भिन्न स्थिति है दृष्टान्त जितने अशमे दिया है सो देखना है यह उपयोग अपने इस ज्ञानसरोवर से ऊपर रहता है और अपमे ध्येय अर्थात् उपयोगमे बाहर-बाहर घूमता रहता है कभी घर देखा, कभी परिवार देखा कभी इज्जत देखा, कभी पार्टी को देखा। उपयोग मे बाहर ही बाहर यह अपनी दृष्टि बनाये रहता है, ऐसी स्थिति मे चारो ओर से उपद्रव आते है। भाई बधु के जुदे उपद्रव, हिस्सा बाटके जुदे उपद्रव, मित्रजनो के जुदे उपद्रव, सरकारके जुदे उपद्रव, यो उपद्रवो की कोई गिनती हो तो गिनायी जाय हजार लाख की तो बात क्या, अनगिनते उपद्रव हैं, उन सब कष्टो से दुःखी हुए इस जीवको कोई समझा तो दे जरा कि हे आत्मन्! तू क्यो दुःखी हो रहा ? देख तेरे मे तो ऐसी एक कला है कि जिसका प्रयोग तू करेगा तो तेरे ऊपर आने वाले सारे उपद्रव समाप्त हो जायेंगे। "अरे भाई वह कला क्या है ? वह कला यही है कि जिस ज्ञानसरोवर के ऊपर तुम रह रहकर भ्रमवश थोडा कुछ मजा सा जान रहे हो तो अब ऊपरका सारा उपयोग छोड़कर जरा ज्ञानसरोवरको भीतर तो समा जावो, अपने उपयोगको ज्ञानभाव मे ले आओ जहां ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप ज्ञेय हो जायगा, वह ज्ञानस्वरूप जहाँ व्यापक हो जायगा, ज्ञान ज्ञेयकी एकता हो जायगी उस कालमें बाहर वाह्य पदार्थमे कितने ही प्रकार के उपद्रव हों, अतः कोई कष्ट नही हो सकते। आखिर करना भी तो यही है सुकुमाल सुकौशल आदि ने जिन्होंने अपने ज्ञानमे अपने ज्ञेयको निरखा वहा बाहरी उपद्रवसे उनका कोई बाल बांका न हुआ रंच भी उपयोग चलित न हुआ और फल हुआ कि सर्वार्थ सिद्धि गए, मोक्ष

गए।

अभूतार्थ नयसें विज्ञान सात तत्त्वोको भूतार्थविधिसें परखनेका प्रभाव—यहा उस ही तत्त्वकी बात कही जा रही है जिस तत्त्वपर दृष्टि जाने से सदाके लिए हम आपका भला हो जायगा। वह तत्त्व क्या है ? वह तत्त्व है एक ज्ञायकस्वरूप, एक चित्स्वरुप, सहजनिरपेक्ष पारिणामिक भावकी समझसे समझमे आने वाला परिपूर्ण आत्मा, स्वभावमे परिपूर्ण आत्मा, वह है तत्त्व और उसका ही आश्रय करने से, उसको ही दृष्टिमे लेनेसें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है, पर वह तत्त्व जाना कैसे जाय ? सीखो इन ७ तत्त्वोकी बात और इन ७ तत्वोमे भूतार्थ विधिसे परखे कि क्या है इसमे अतस्तत्व, तो समझमे आ जायगा। देखो एक दृष्टान्त है कि एक बार कोई संस्कृतका भारी विद्वान राजाको आशीर्वाद देने गया। राजा तो था मानो अंग्रेज अंग्रेजी भाषाके सिवाय वह और कुछ जानता न था और वह संस्कृतका विद्वान केवल संस्कृत जानता था। अंग्रेजी बिल्कुल न जानता था। तो वहा उस विद्वान ने राजाको आशीर्वाद दिया स्वस्ति, अब वह क्या समझे ? बल्कि वह आखे निकाल कर अचम्भेके साथ देखने लगा यह क्या कह रहा है। कुछ समझमे न आया। अब बतलावो राजाको उस विषकी बात समझमे आ जाय इसका क्या उपाय है ? हॉ उपाय है, ऐसा कोई पुरुष जो संस्कृत भी जानता हो और अंग्रेजी भी जानता हो वह संस्कृत भाषाकी बात समझकर अंग्रेजी भाषामे बता दे कि आपको यह कहा जा रहा है कि तेरा अविनाश हो, तेरेको परम आनन्द हो, May be blessed अर्थात् तेरेको सहज आनन्द प्राप्त हो, यो जब अंग्रेजी भाषा मे बोल दिया तो उस राजाको बडा आनन्द होता है—ओह यह तो बडा अच्छा पुरुष है, उसका वह सत्कार भी करता है, ऐसे ही तत्त्व की बात, आत्माकी बात निश्चयका विषयभूत जो एक भूतार्थ अखण्ड शुद्ध विषय हे सहज भाव, अगर आत्मा आत्मा, अखण्ड, अखण्ड चिल्लाते रहे तो साधारण लोग जो इससे अनभिज्ञ है वे क्या जानेंगे कि क्या बात कही जा रही है ? वे अचरजमे बोलेगे कि क्या बात कही जा रही है, किस तत्वकी बात सुनाई जा रही है। तो बहुत से लोग तो ऐसे बैठे रहते होगे कि जिनकी समझमे कुछ नही आता। अब बताओ किसी तरह समझमे आ भी सकता क्या ? आ सकता है किस तरह ? जो जीव निश्चयनय और व्यवहारनय दोनो पथ पर चलता हो और जिसने परिचय पाया हो यह व्यवहारनयकी भाषामे निश्चयनयकी बात समझाये तो समझ जायगा। आत्मा आत्मा इसमे यह कहा जा रहा है कि जो जाने सो आत्मा जो निरन्तर जानता रहे उसें आत्मा कहते है--अतति गच्छति सतत जानातिइति आत्मा यह आदित्य भी उसी से बना आदित्य उसे कहते है जो निरन्तर चलता रहे। और

सो आत्मा। कोई क्रोध करे चाहे मान करे, चाहे क्षोभ करे चाहे शान्ति से रहे, चाहे निगोद मे रहे चाहे त्रसपर्याय मे रहे, हर स्थितियोमे जानना चलता रहता है, इसलिए इसका नाम रखा गया है आत्मा। देखो जो जाने सो आत्मा, जो दर्शन करे, देखे, प्रतिभास करे सो आत्मा, जो आनन्द पावे सो आत्मा। ऐसे व्यवहारनय के जुदे-जुदे गुणभेद करके समझाया जाय तो वह आत्म तत्त्व को समझ सकता है तो देखो भैया! व्यवहारनय कितना उपकारी हुआ इस जीवको।

स्वयके स्वयंकी परमें खोज करनेकी विकट उन्मत्तता—देखो जो निश्चयनय-के विषय को समझानेका एक परम साधन हो, जो उस तत्वकी बात कही जा रही है। वह तत्व बाहर नही, भीतर है, मगर ऐसी दशा हो गई जैसेकि एक कहावत है कि काखमे लडका गाव मे टेर। याने लडका तो लिए है अपनी काखमे और खोजते पूछते फिरते है कि मेरा लडका कहा गया, इधर उधर बाहरमे ढूढते फिरते है! जैसे कभी आपने देखा होगा कि चश्मा या कोई चीज अपने हाथमे ही लिए है, पर उसकी सुध न होनेसे उसे बाहरमे ढूढते फिरते है, और, जब समझमे आ गया कि अरे यह है मेरा चश्मा, तो झट प्रसन्न हो जाते है। देखिये वह चश्मा कही बाहर से तो नही आया। यही था। जब समझमे आया तब मिला, और जब समझ न थी तब न मिला। ऐसा तो नही है कि पहिले हाथ से अलग था चश्मा अब हाथमे आ गया जब हाथमे उस समयकी स्थिति कह रहे है। इसीतरह यह भगवान आत्मा परमात्मतत्व यह कैसे मिलता है। है सही काख मे लडका गावमे टेर। है यही अन्तरमे आत्मा बाहरमे खोज की जा रही है। ज्ञान व आनन्द बाहर देखना ही तो बाहरमे खोजते है। पर आत्माकी समझ नही है सो उपलब्धि नही है। जब समझमे आ गया कि अरे यह मै आत्मा तो वह आत्मा कही इस तरह नही कि कही बाहर बैठा हो और उसके पास जाये फिर मिलले। अरे आत्मन् तुम बहुत दिनोसे बिछुडे हुए थे, अब मिले, इस तरहका मिलना और बिछुडना नही है। वह तो यही है, अन्त. प्रकाशमान है, शीश्वत है, उसकी सुध नही है, परिचय नही है तो मेरेको मिला नही है। और जिस कालमे परिचय हुआ उस कालमे मिला हुआ कहलाया है तब ही तो जब पहिले पहिले उपदेश किया गया कि आत्माको उपासना करो, आत्माकी आराधना करो तो कोई प्रश्न कर सकता है कि क्या बोलते हो? अरे आत्मा कही दूर हो तो आराधना करे, सेवा करे उपासना करे जब यह आत्मा स्वय है तो आराधनाका मतलब क्या? तो उसका समाधान यही तो है तो स्वयं आत्मा, है स्वय ज्ञानस्वरूप, मगर सुध नही है इसलिए ज्ञान नही हो रहा. वह मिला नही है उसकी दृष्टि करना यह ज्ञानकी आराधना कहलाती है, तो भाई

यह ही अमृत है अमृत दूसरा नही है जिसे पीकर अमर हो गए—वह है यह ज्ञानदृष्टि दूसरा अमृत दुनियामे कोई रस या फल रूप नही है वे तो सब गढी कथाये है जिनमे अमृतको फल या रस रूपमे कहा। अरे जब अमृत फल भोगा गया तो बेचारा स्वय ही कचूमर बन गया। जब वह अमृत फल स्वय की ही रक्षा न कर सका तो फिर दूसरेकी रक्षा क्या कर सकेगा ? है क्या बाहरमे कोई ऐसा अमृत कि जिसे खाले तो अमर हो जाये ? वह अमृत है निज सहज ज्ञायकस्वरूपकी दृष्टि। तो वह अमर होने का भी मर्म देखिये—अमर है आत्मा, इसका बिनाश भी नही होता, पर अपने अमरत्वकी सुध नही है सो बाहरमे ऐसा ख्याल करते कि हाय मे मरा। तो बस यह ख्याल करना यह ही इसका मरण है। कल्पनामे यह बात लाये कि मे मरा, बह गया, इसीके मायने है मरण। आत्मा का मरण और कुछ नही। आत्मा तो अनादि अनन्त अहेतुक शाश्वत प्रकाशमान है, उसका कभी मरण नही होता, तो ऐसे इस आत्मस्वरूपकी जो सुध लेता है उसे कहते हैं भूतार्थका उसने आश्रय किया और वह है सम्यक्त्वका उपाय पर यह उसका तत्व है, निश्चयका विषय भूत है, और जीवा जीव अवबध सम्बर निर्जरा मोक्षा ऐसा जो पद है व्यवहारनयका विषयभूत, उस पदका साधन है यह ७ तत्व। जैसे कहते है ना कि हेतु नियतको हुई इस तरह व्यवहारसम्यक्त्व तो ७ तत्त्वोका श्रद्धान है और उसकी श्रद्धाके उपायमे जो इन ७ तत्त्वोको भूतार्थ विधिसे देखने पर जो एक सहज ज्ञानस्वरुप लक्ष्यमे रहता है वह कहलाया निश्चयसम्यक्त्व इस तरह सम्यक्त्व प्राप्त हो तो ससारके समस्त क्लेश इसके शान्त हो जायेंगे।

अभेददृष्टिकी परखमे अलौकिक जागरण—तत् और तत्त्व इस सम्बन्धमे थोडी सी बात सुन लीजिए जो इस से सम्बधित है। देखिये तत्व जो ७ है तो वे कोई अलग अलग चीज नही है इन्सान और इन्सानियत ये कोई अलग अलग नही हैं। इसानियत यहा मदिर मे हो और इन्सान और कही बैठा हो ऐसी बात नही है। इसानमे ही इसानियत है। इसी तरह ये जो ७ तत्व कहे गए—आत्मा ही तत्व है, प्रत्येक मे तत्व है। और, यो जीवमे जो तत्व है उसका नाम है जीवत्व। अजीवत्वमे जो तत्व है उसका नाम है अजीवत्व। अजीवत्वमे जो तत्व है उसका नाम है अजीवत्व। ऐसे ही आश्रवत्व, बधत्व, सम्बरत्व, निर्जरत्व और मोक्षत्व। फिर जब और विशेष भूतार्थ पद्धतिसे निखरते हैं तो सबसे हटकर किसी एक अखन्ड तत्व पर अड जाते हैं वह है भूतार्थनयका विषय। उसकी आराधना करना यह है सम्यक्त्वका कारण। अब जरा इन सब बातोको सक्षेपमें बतलाते हैं जो आपके कामकी बात है और जिसे आप कर सकते है। यहा बैठकर, घरमे बेठकर उसे आप

निहार सकते है। वह क्या है ? देखो अपने आपको ऐसा ध्यानमे रखें कि में ज्ञानमात्र हूँ, मे केवल ज्ञान ही ज्ञान हूँ, जो ज्ञान है जानन है सबका सहारा छोड़ दीजिए, अब उस ज्ञानके भावपर जावें, जानन, प्रतिभास, समझ चेतना, बस यही मेरा स्वरूप है, ज्ञान मेरा स्वरूप है। ज्ञान ही ज्ञानसे हो, ज्ञान सिवाय और कुछमै हूँ नही, ज्ञानकी जो वृत्तियां होती है उनका ही मे कर सकने वाला हूँ। ज्ञानकी जो अनुभूति है उसीका मैं भोगने वाला हूँ। ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मात्र मै हूँ। ज्ञान सिवाय मै और कुछ नही हूँ। ऐसा चिन्तन रखे जीवन भर रोज रोज चाहे घरमे बैठकर करे दूकान वगेरहमें बेठकर करे, होग। क्या कि ऐसे भावका चिन्तन होनेसे एक अलौकिक जागरण होगा, सम्यक्त्वका लाभ होगा। अब कोई यह कहे कि हमे तो यह भी कठिन लग रहा। इससे और बताया जाय तो इससे सरल और कुछ भी नही कहा जा सकता। एक बड़ा पहलवान था वह किसी दगलमे बोला कि हमसे जो कोई भी लडना चाहे वह लड सकता है। वहां किसी कि हिम्मत न पडी, पर एक कोई बहुत ही दुबला पतला आदमी उठा और बोला—हम लडेगे इससे। हम तो इसे तुरन्त ही अखाड़ेमे पछाड देंगे मगर एक सर्त है—क्या कि जब वह अखाडेमे पहुचे, और जिस समय मेरेसे लडनेके लिए खडा हो उसी समय वह जमीन मे गिर जाय, बस हमारी निश्चित रूपसे विजय होगी। तो भला बताओ इससे सरल और क्या बताया जाय ? कोई कहे कि ज्ञानमात्र अपने आपको जानूँ समझूँ, जरा यह भी आप कर देना, तो यह बात दूसरे से नही की जा सकती, खुद कर सकता और इससे सरल कोई उपाय भी न मिलेगा। आप घरमे बैठे हो, दूकानमे बैठे हो, कही भी बैठे हो, बस नेत्र बद करके अपने भीतरमे यह चिन्तन करे कि मै ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञान ही ज्ञान हूँ, ज्ञानके सिवाय मैं अन्य कुछ नही हूँ, ऐसी दृष्टि बनाये और भीतरमे यह निहारनेका यत्न कीजिए। ज्ञानसे मतलब क्या ? वह जानन कैसे होता है ? जानना क्या कहलाता है, वह प्रतिभास जिसमे रागद्वेष नही, विकल्प नही, ऐसा जानन किस रुप है, आपको एक सामान्य ज्योतिके दर्शन होंगे, ऐसा प्रयत्न करके भीतर देखेंगे तो बस सब कुछ कल्याण हो जायगा।

जीवतत्वकी सिद्धिमें अजीव तत्त्वकी सिद्धि की भी अनिवार्यता—जीवतत्त्वके प्रसगमे यहा एक आशका की जा रही है कि जीव ही मात्र एक तत्वार्थ है, दूसरा कुछभी पदार्थ नही है सर्ववैखल्विदब्रह्म याने जितना जो कुछ समस्त समागम है वह सबका सब सारा लोक अन्य कुछ नही है केवल एक ब्रह्ममात्र है, ऐसा ब्रह्मद्वैत सिद्धान्तमे आया है, देखिये ध्यानसे उन्होने सिद्धान्त कोई एकदम मिथ्या नही गढ़ा। जब हम द्रव्य दृष्टिसे

निहारते है तो यह विदित होता है कि एक ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वभाव ही कोई वास्तविक तत्व है सारभूत है, समयसार है यह जो एक अपने आपके बारेमे वात हुई और जितनी बाहरकी चीज है तो जो जीव हैं उनमे भी यह अवकाश होता है कि सब ज्ञानस्वरूप हैं। अब यह तो अन्य जीवोकी बात हुई, अब बाकी रहे जोअजीव है अर्थात् जितने देखने वाले जीव है वे सब पुद्गल अपने आप ही वैसे न बन सके। उनमे पहिले जीवका सम्बन्ध था तब बडे हुए अकुर, पृथ्वी भी जीव, जल भी जीव अग्नि भी जोध, वायु भी जीव और जो कुछ यह सूखी बनस्पति दिख रही है बह भी जीव थी लेकिन कटनेके बाद, अलग होनेके बाद ये अजीव हो गए। तो जितने ये प्रत्यक्ष दिख रहे हैं ये सब भी जीवके आश्रयसे ही इनका निर्माण हुआ है। इसतरह से सारा लोक जो कुछ दिखता हैं उसमे जीवका सम्बन्ध है और जीव—जीव सब द्रव्य दृष्टिसे सामान्यदृष्टिसे देखा जाता है तो एक जीवस्वरूप ज्ञानस्वरूप विदित होता है, जब स्वरूपदृप्टि की जाती है तो लो इस दृष्टिसे ब्रह्म सिद्धान्त की उत्पत्ति हुई, पर ब्रह्याद्वैत मानने वालोने इस और दृटि न दी कि कि जगत मे जो भी सत् होता है वह पर्यायसहित होता है, पर्यायशून्य नही होता। और पर्यायरहित हो कोई ब्रह्म तो अब समझिये वह क्या है। बात ही बात रह जायगी, कुछ दिमागमे न आयगा न प्रयोगमे आयगा, तो क्या है वह ब्रह्म, जिसकी कोई अवस्था ही नही, जिसका कोई परिणमन ही नही तो पर्यायका निषेध कर देनेसे यह द्रव्यार्थिक का विषयभूत सिद्धान्त गलत हो गया। अव जरा विचार करो। कोई कहता है कि जीव तत्त्वार्थ है, अजीव कुछ चीज नही है तो अब जरा इस आशका के विषयमे कुछ आलोडन विलोडन कीजिए। जीव है, अजीव कुछ नही है तो भला बतलाओ जीव को आप समझायेगे कैसे ? जगतमे केवल एक ब्रह्म ही हैं, जीव ही है इस आग्रहमे यह बतलाओ कि आप हमे समझायेगे कैसे ? दूसरेको समझायेगे कैसे ? बचनोसे बताओगे ना लो वचन तो अजीव है तो अजीव की सिद्धि हो गई अजीव के बिना तो जीव है एक है, ब्रह्म है इस बात को समझानेका कोई उपाय नही है। वचनोसे ही तो बतावोगे और वचन है पौद्गालिक, अन्य प्रकारसे, तो समझाया जा सकता, नही तो कैसे यह कहा जा सकेगा कि जीव है और यह सब अजीव कुछ नही। अजीव है अब अनुमान प्रमाण से सिद्ध कीजिए अजीव है क्योकि एक जीवको सिद्ध करना अंयथा बन नही सकता। अगर अजीव न हो तो दूसरेके लिए जीवकी सिद्धि नही की जा सकती बचनोसे ही तो समझते है और ऐसा हो नही सकता कि दूसरे के लिए जीव सिद्धि के साधन तो बन जाय और अजीव न रहे यह बन नही सकता। जो साधन है दूसरेको समझानेका वह वचन है अजीव। किसी भी दूसरेको वचन सहारा लिए

बिना समझाना नही बनाया जा सकता अगर कोई केवल यह कहे कि अपने आपसे अपना जीव समझा जायगा तो अब तक क्यो नही समझा, कारण क्या है और अब समझा रहा तो कारण क्या है। अजीव के माने बिना जीव तत्वकी सिद्धि हो नही सकती

जीव और जीवत्व के समझकी झाकी—जीव है, देखिये इस सिद्धान्त पर जितना अधिक ऊहलोह किया जायगा, मार्गमे बडी स्पष्टता आ जायगी, क्योकि देखो मोक्षमार्गमे चलनेके लिए एक चैतन्यभावके आश्रयकी बात बहुत आवश्यक है। अखण्ड अभेद एक चित्स्वरूप का आश्रय करके मोक्षमार्गके लिए बहुत आवश्यक चीज है। लेकिन वह जो एक चैतन्यब्रह्म है सो मेरेमे मेरा चैतन्यब्रह्म आपमे अपना तत्त्व है, लेकिन जैसे गेहुवोका ढेर लगा है तो उसमे गेहूँके दाने अरबो खरबो है लेकिन कोई एक ढेर देखकर यह कोई नही बोलता कि इन सारे गेहुवोको आप किस भावमे देगे ? जो भी पूछना है वह यही कहता है कि यह गेहूँ किस भावका है ? यद्यपि अरबो खरबो गेहूँ है मगर कोई बहुवचन कहकर कहता है क्यों ? वे सब एक समान है इसलिए अनेक कहनेकी आवश्यकता नही, केवल एक वचन बोला जाता है, इसीतरह जगतमे जितने अनन्तानन्त जीव है वे सब जीव मूलमे एक समान है, इस कारण से बहुवचन के रूपमे प्रयोग नही किया जाता। भूतार्थ दृष्टिमे जीव एक ब्रह्मस्वरूप है, लेकिन ऐसा क्यो समझते ? यो समझते कि मेरेमे जो अज्ञानका अँधेरा है, मेरेमे जो नाना प्रकारकी आपत्तिया है वे दूर हो इसके लिए इस जीवस्वरूपको समझनेकी बात आती है। उसकी सिद्धि हो गई ना ? अब हम बन्धनमे है और बन्धनसे हमको मुक्ति होनी है। बन्धन कभी एकमे एकके द्वारा नही होता। एक एक से बन्धे क्या ? एक अकेला है केवल है, दूसरा कुछ है ही नही तो फिर बन्धेगा कैसे ? जब दो का सम्बन्ध हो जाय तब बधे। अगर एक ही तत्व हो जीवमात्र परम ब्रह्मस्वरुप तो उसका बन्धन क्या ? वह बध नही सकता। और जब बधन नही तो मोक्ष नही तो फिर शास्त्र क्यो, ग्रन्थ क्यो, सभा क्यो जोडना, गुरुसे शिष्यको क्यो समझाना ? तो अजीवका निषेध करनेपर भी तीर्थप्रवृत्ति नही चल सकती।

नाना जीवोकी प्रमाणसिद्धता—अब यहा यदि अद्वैतवादी यह सिद्ध करे कि जीवही पहिले नही फिर कोई गुरु हो, कोई शिष्य हो, समझने वाला हो ऐसा कुछ नही है, यह भ्रममे ऐसा मालूम पडता है कि जीव नाना है। जैसे स्वप्नमे जब देखता है कोई तो उसे बहुत मालूम पडते है इस कारण ये सब क्यो भ्रम है कि नाना जीव है। जीव ब्रह्म केवल एक है ऐसा अद्वैतवादियोंका यह कथन चल रहा है। यह एक ही परमात्मा है। जो अनेक रुपसे प्रतिभासमे आ रहा कि यह प्रतिपाद्य है, यह प्रतिपादक है। वह सब विद्याकालीन अविद्याके

कारण आ रहा है, जीव बहुत नही हैं। भ्रान्तिमे मालूम पड़ रहा है। जैसे स्वप्नमे देखते हैं ऐसे ये नाना जीव पारमार्थिक नही है, मिथ्या हैं, बहुतका ज्ञान होना एक बात रखी है मगर इसके एवजमे कोई यह नही कह सकता कि अगर कोई यह सोच रहा है कि जगतमे जीव केवल एक है तो वह भी भ्रम हैं। स्वप्नमे क्या कभी ऐसा एक पना निरखा जा सकता है। तो जीव जैसे नाना है यहा स्वप्नका दृष्टान्त देकर मिथ्या बताते हो तो जीव एक है यह भी स्वप्नका दृष्टान्त देकर मिथ्या बताया जा सकता है। किन्तु सबको अपना अपना आत्मा स्वसम्वेदन सिद्ध है, प्रत्येक जीव अपने आपमे अपना अपना जुदा जुदा अनुभव लिए हुए है। मोटी बात है कि अगर ब्रह्म एक होता तो एक जीव अगर सुखी हो रहा तो सब जीवो को सुखी हो जाना चाहिए, क्योंकि तुम सब तो एक हो, एक दुखी हो तो सबको दुःखी हो जाना चाहिए था मगर यहाँ प्रत्यक्ष देखनेमे आ रहा कि आपका विचार आपके साथ है, मेरा विचा- मेरे साथ है। अनुभव ही सिद्ध करता है कि जीव नाना है। हा जीवमे जीवका जो स्वरूप है वह स्वरूप भिन्न—भिन्न प्रकार का नही, वह एक स्वरूप है। जैसे हजार मनुष्योमे मनु- ष्यत्व (मनुष्यपना) एक है हजार नही हो सकते, इसी प्रकार जितने भी जीव है वे सब स्व- रूपमे समान है, स्वभाव एक है जब जीव है तो सिद्धान्त यह है कि जीव तो नाना है मगर जीवमे स्वरूप सबका एक समान है। स्वरूपमे जरा भी अन्तर नही है। देखो इतना हो जाने पर भी किस जीवके मोक्ष जानेकी शक्ति है, किसी जीवके नही है, ऐसा भव्य और अभव्य का भेद किया जाने पर भी सब जीवोमे स्वरूप एक समान है। स्वरूप दृष्टिसे भव्य अभव्य सिद्ध भगवान निगोद किसीमे कोई भी अन्तर नही है। जो अन्तर पाया जायगा वह पर्याय शक्ति प्रकट हो गई उस पर्यायमे अन्तर आयगा। स्वरूप दृष्टिसे कभी अन्तर न द्रव्यदृष्टिसे निहारें तो वह एक परम ब्रह्म स्वरूप है पर सर्वथा नही।

आत्मवत् सबका महत्त्व आकनेका महत्त्व—अब यहा एक बात और रखी जा सकती है कि हमको तो ऐसा लगता है कि मेरे सिवाय और कोई जीव नही। बस मै ही हूँ ऐसा अद्वैतवादी मानते भी हैं। सो भैया यह बात तो ऐसी हुई कि न मैं रहा और न कोई रहा। मैंने यह समझा कि मेरे सिवाय दूसरा कोई नही है। मेरा स्वरूप वही एकमात्र मैं हूँ। तो दूसरे यह कहेगे कि मेरे सिवाय दूसरा कोई नही। दूसरेमे भी तो मैं आ गया तो मैं भी न रहा और न अन्य कोई केवल एक रहे दूसरा न रहे इस तरह की हठमे एक भी आत्मा न रहा। कुछ परिणति ऐसी पडी हुई है लोगोके विचारमे, प्राय प्रत्येकका जीवको अपने स्वरूपके बारेमे अपने अस्तित्वके बारेमे कि मैं तो वास्तवमे हूँ और

दूसरे के अस्तित्व कुछ ऐसे लगते है कि यह सब तो बिना काम हो गया अस्तित्व तथा तब जैसे कोई जीव जब सुखी रहता है तो उसे सारा जगत सुखी नजर आता है और जो स्वयं दुःखी है उसे सारे मनुष्य दुःखी नजर आते है। मानो कोई कोई बारात किसी जगह आयी हो, बडी-बडी खुशिया मनाई जा रही हो, पर जो दुःखी है उसे तो ऐसा लगेगा कि ये सब ऊपरी-ऊपरी प्रसन्न दीख रहे है, अन्तर मे ये भी दुःखी ही है। जिस पर जैसी बीत रही है उसकी वैसी ही निगाह बननाप्राकृतिक बात है। एक बार किसी बादशाहके यहां कोई एक खवास (नाई) हजामत बनाने जाया करता था। तो ये खवास लोग हजामत बनाते समय बहुत-बहुत बाते किया करते है। तो वहा हजामत बनाते समय खबास बादशाहसे भी बडी गप्पे मारता था। एक दिन बादशहाने खवास से पूछा-खवास जी आप यह बतलाइये कि हमारी प्रजाके लोग सुखी है कि दुःखी है ? तो वह खवास बोला महाराज आपकी प्रजा बडा सुख पा रही है, घर घरमे खूब घी दूधकी नदिया बह रही है, आपकी प्रजा बडे मौजमे है। बात क्या थी कि उस नाई के घरमे १०-१५ भैसे थी, उसके यहा बडा मौज था तो उसे सब जगह मौज ही मौज (सुख ही सुख) दीखता था। बादशाहने पूछा कि तुम्हारे पास कितनी भैसे है ? पन्द्रह। बस समझ लिया बादशाह ने कि यह खवास सुखी है इसलिए इसे सब जगह सुख ही सुख नजर आ रहा है। एक दिन बादशाह ने अपने किसी सिपाही या किसी बड़े अफसर से कह दिया कि इस खवासपर कोई जुर्म लगाकर इसकी सब भैंसे ले आवो। अब उन्हे जुर्म लगानेमे क्या देर थी। कोई जुर्म लगाकर सब भैसे ले आये। एक दिन वही खवास से फिर बादशाह ने पूछा—खवास जी बताइये कि मेरी प्रजा सुखमे है या नही ? तो खवास बोला—महाराज आपके राज्य मे प्रजामे बडा दुःख छाया हुआ है, सुख का नाम नही, वहा घी दूध के तो किसीको दर्शन भी नही होते। तो एक दृष्टान्त दिया है कि जिसके विकल्पमे जो समाया हुआ है वह लग रहा सच्चा और वैसा ही यह जीव दूसरी जगह देखता है आप। परन्तु देखो जितना बडा जीव आप अपने को मानते हो उतना ही महत्त्व वाला, अस्तित्व वाला आप दूसरे को मानो।

सर्वमें स्वरूपसमता—अद्वैतवादियो को एकान्तत ऐसी प्रकृति पड जाती है कि वे अपनी प्रकृतिके अनुसार बोलते है कि बस जीव तो एक ही है, दूसरा कुछ नही है, एक ही ब्रह्मस्वरूप है। लेकिन, ऐसे अद्वैतवाद मे तो मोक्ष की व्यवस्था नही बन सकती भले ही सोचे कोई कि जैसे किसीके यहा एक ही लड़का हो तो उसे क्या चिन्ता अपने पास जो कुछ हुआ, सारो का सारा पिता ने उसे दे दिया। और यदि कई लड़के हो गए तो उसमे पितको

अलग–अलग धन देने की बडी परेशानी रहती है। यो एक ब्रह्म मान लो तो कोई खटपट न रहेगी यह तो एक ध्यवहार की बात कहा। इसी तरह से समझलो कि अगर एक ही है दूसरा नही है तो फिर बन्धन क्या? जीव हो वह तो ठीक है मगर अजीव भी है। तो ऐसा ध्यानमे लावो कि मेरे सिवाय अन्य कुछ नही है इसलिए सब एक ही है यह प्रमाणयुक्त बात नही है। सबको लगता है यो जब धन मे अधिक थे, परिवार मे अधिक थे तो मानते थे कि अच्छे तो हम है। बडे तो हम है, ये तो बडे छोटे लोग हैं, मेरे में जो स्वरूप है सो ही सत्व है, बाहरमे कुछ सत्व नही। अरे बात तो यह ठीक कहा मगर इसका अर्थ यह नही कि अपनेको तो बहुत बडा समझलो और दूसरोको तुच्छ समझलो। अरे यहां कौन छोटा और कौन बडा? स्वरूप दृष्टिसे देखो तो सब जीव एक समान हैं। जो अपनेको तो बडा समझे और दूसरेको तुच्छ समझे उसे सही मार्ग नही मिल सकता। कौन छोटा और कौन बडा? बच्चोंकी पुस्तको मे एक छोटीसी कहानी आयी है कि एक जगह कोई सिंह सो रहा था, उसी जगह एक चूहा रहता था। वह चूहा बार-बार सिंह की पीठ पर चढ जाता था। तो सिंह को गुदगुदाहट लगनेसे बार-बार जग जाता। उसे निद्रा न आने पाती थी। सो उस सिह को गुस्सा आया, चूहेको पकड लिया मारना चाहा, पर वह चूहा बोला—ऐ बनराज! तुम मुझे मत मारो, हम भी कभी तुम्हारे काम आयेंगे। तो सिंह ने सोचा कि यह छोटा सा चूहा मेरे काम कैसे आ सकता, पर उसे तुच्छ समझकर छोड दिया। एक बार सिह ने देखा कि किसी जगह कुछ मासके टुकडे पडे हुए थे। ज्यो ही उन्हे चलकर उन्हे खानेकी कोशिश की त्यो ही वह जालमे फस गया। ज्यो–ज्यो वह उससे निकलने की कोशिश करे त्यो त्यो वह उसमे फसता गया। वहा वही चूहा पहुचा, सिह को जालमे फसा देखकर सोचा कि देखो इस सिहने मुझे प्राणदान दिया था। अब मुझे भी इसके प्राण बचाने चाहिए। यह सोच कर चूहे ने अपने दोतो से जाल काट दिया। जाल के कटते ही सिंह जालसे बाहर हो गया। प्राण बच गए। तो भाई यहा किसीको छोटा मत समझो। सबको समानसमझो बडा आनन्द आएगा। और हमको तो इसीमें आनन्द जचता कि सबके समान रहे, सबके बराबर बैठे। कौन ऊँचा, कौन नीचा? सबके बराबर बैठनेमे बड़ा आराम मिलता हैं, एक शान्ति मिलती है, बढकर बैठनेमे शान्ति नही मिलती। पर परिस्थिति हो बढ कर बैठाओ तो वह भी उसके लिए एक विपत्ति है, शान्ति मिलेगी, सन्तोष मिलेगा तो समता मे मिलेगा, ताकि उसे कोई विकल्प ही न करना पडे। सब जीवोमे वही एक समान भाव है। सब एक प्रकार के है। सबका एक महत्व है। किसीसे मैं बडा नही हुँ, और छोटाभी नही हुँ, सब जीव एक समान है, ऐसी दृष्टि रहेगी तो वहा मोक्षका मार्ग

मिलेगा, और उसे अगर कोई यह कहे कि बस जीव तो एक है, दूसरा कुछ है ही नही जब दूसरा कुछ है ही नही तो फिर तीर्थ प्रवृत्ति बिल्कुल मिथ्या हो जायगी, इसलिए जीव तत्त्व भी है और अजीव तत्त्व भी हूँ ,

निज एकत्त्वकी दृष्टिकी उपादेयता—देखो इन सब बातोमे जो ब्रह्माद्वैतके सिद्धांत से मिलती जुलती बात है वह बात बतलाते है कि जिसको उपयोगमे लेनेसे हम आपको कल्याणका मार्ग मिलता है। देखो मैं एक हु, अरे दूसरेको तुम दृष्टिमे मत डालो। दूसरा कोई तुम्हे दिखेगा ही नही, दूसरा है मगर दूसरा तुम्हारे विकल्पमे रहे, दृष्टिमे रहे तो आपको शान्तिका मार्ग नही मिल सकता। इसलिए बाह्य विकल्पको छोडनेकी बात कही। प्रकट बाह्य तो छूट रहा यह खुद विकल्प और छोड दो। अब खुद छूटकर कहा जायगा ? इसका तो अभाव हो नही सकता। अभाव दूसरेका भी नही मगर उपयोग तो किसी न किसीका आश्रय लेकर ही चलेगा। जब उपयोग है, जब ज्ञानवृत्ति है तो इस ज्ञानमे कोई न कोई ज्ञेय निरन्तर बना ही रहता है। ज्ञेय कुछ न रहा ऐसे ज्ञानकी कभी कोई स्थिति नही रह सकती। ज्ञानीने किसी बाह्य पदार्थका तो त्याग कर लिया उसका उपयोग नही कर रहा तो स्वयको छोडकर जायगा कहां। वह विषम होकर आत्मतत्वका विषयभूत बनेगा। वह भली बात है। ऐसी स्थितिमे यह मै एक हूँ, अच्छा यह तो एक हो गया मगर उस एक मे भी जो नाना घुसे हुए है उनके भी अपने से अलग हटाना है। यह मैं सारा आत्मा एक हूँ मगर इस आत्मामें रागद्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ आदिका प्रवेश नही है। जो नाना तरगें चल रही है वे भी यह मैं नही हुँ। तो मेरेमे और जो नाना बातें है उनसे भी अपने को निराला बनाना है, ये क्रोधादिक कषाये मै नही हूँ। मै तो एक चैतन्यस्वरूप हूँ अब उस जाननमे भी नानापन हटाया गया। और नानापनको हटाकर अपने को एक देखा जाननमे भी मतिज्ञानको जाना, श्रुतज्ञान को जाना, यह ज्ञेय हुआ, भिन्न भिन्न प्रकारके ये ज्ञान बनते है। ये ज्ञान नाना हैं, इन रूप मैं नही हूँ किन्तु मैं एक जानन सामान्यमात्र हूँ। जो विशेष विशेप ज्ञान उठते हैं उन रूप मै नही किन्तु मै एक सामान्य ज्ञानमात्र हूँ। चाहिए सामान्य ज्ञानमात्र मुझमे सब पर्यायें सामान्य मत देखे किन्तु एक शाश्वत अन्त प्रकाशमान द्रव्यदृष्टिका विषयभूत वह एक ज्ञानभावको देखे। यह हूँ मै, जब अपनेको ढूढने चले तो वह मैं साहब यह मै नवाब इन सबके बीच, कहा यह मै गुप्त हूँ, यह मै मिला, बाकी तो सब विकल्पकी बाते हैं। उस अपने आपके एक का परिचय करना है और उस ही मे अपने आत्माका अनुभव करना है कि यह हूँ मैं। अन्य कुछ मैं नही हूं। अगर यह दृष्टि आती है तो आपने सर्वसमृद्धिपाली

कीचड की उलझन—भैया यह बाहरी सम्पदा, यह धन वैभव ये लोग, ये बाहरी बाते ये सब कीचड हे । बरबादीके हेतुभूत है । ये मेरेसे अत्यन्त भिन्न हैं । उनके लगावसे कुछ सिद्धि नही मिलने की । होता है ना एक गोरख धन्धा । तारोका उसमे एक ऐसा छल्ला रहता है कि वह अधर फस जाय तो निकलता नही है और अगर निकल जाय तो फसता नही है । मानो किसी तरह छल्ला फस गया अब उससे कहा गया कि भाई इसे उसी तरह फसावो तो वह बहुत—बहुत हैरान होता हे पर वह नही फसता है, बल्कि ज्यो ज्यो उसे फसाया जाय त्यो त्यो वह उलझता जाता है, ऐसा यह गोरखधन्धा है । तो अपनी जिन्दगीमे सभी लोग अपनी अपनी बात सोच ले । कभी सोचा था कि बस १५—२० वर्षकी और बात रह गई, जहा इन लडकियोकी शादी कर दी बस मै स्वतत्र हो जाऊँगा, फिर मै खूब धमसाधनामे लगू गा पर होता क्या है कि एक समस्या सुलझ नही पाती कि दूसरी समस्या सामने खडी हो जाती है । कभी सोचा था कि विवाह करले फिर तो हमे बनी बनाई रोटियां मिलेगी, हमे कोई बातकी चिन्ता न रहेगी, पर होता क्या है कि बाल बच्चे हो जाते है तो उनकी चिन्ता लद जाती है अपनेको वे और भी फसा हुआ अनुभव करते हे । वहा कषाय करनेके अनेक प्र सग आते है । जब परिवारके बीच है । अनेक लोगो के बीच है तो वहाँ तो लडाई होनेके अधिक मौके आते है । भला बतलाओ चाहते तो थे कि मैं स्वतत्रा हो जाऊ पर हुआ क्या कि फसाव और भी अधिक बढ गया । तो भाई ठीक है । स्वतन्त्र होना चाहे तो स्वतत्र हो सकते हैं मगर स्वतत्र होना है तो अपने आपके आधीन रह जाइये ? कैसे ? सबका ख्याल छोड दो, सबका आश्रय छोड दो । तो आप कहेगे कि तब तो मुनि बने तब ही बात बनेगी । हा तब ही तो बनेगी । तो फिर वह स्वतन्त्र कहा, वह तो हो गया परतत्र । श्रावकोके आधीन हो गया । तो भाई साधु परतन्त्र कहा है ? वह तो अपनी साधना कर रहा, स्वाधीन रह रहा । जब कभी क्षुधाकी वेदना हुई तो चर्चाके लिए निकल पडे जहा सुयोग बन गया अब वहा से आहार करके चले आये । वहो श्रावकोके आधीन कैसे कहा जाय ? अब अगर श्रावक लोग साधुको आहार दान देने के लिए सोचे, इन्तजाम करें तो उससे तो उन्हे पुण्यका बध होगा । वह तो एक भली बात हुई । यदि यह बात न होती तो फिर लडके बच्चोकी सेबा करते या और भीर भी अनेक नटखट करते, फिर क्या पुण्य कमा लेते ? उस निर्गुन्थ अवस्थामे स्वतन्त्रता है, पराधीनता नही । उनका किसीसे कुछ लेनदेन नही । वे तो अपने आत्माकी आराधनामे रहते हैं । अगर आत्माकी आराधना नही करते, यहा वहाकी बातोमे फस जाते हैं, अपना कर्तव्य नही निभा पाते है तो यह तो उनकी कमी है । वे तो फिर परतन्त्र ही कहे जायेंगें, मगर उसका अर्थ

यह नही कि मार्ग खराब है। अपने कल्याणका मार्ग यही है, तिरनेका मार्ग यही है।

ऊंचा लक्ष्य होनेपर सफलताकी आशा—कुछ लोग तो सोचते है कि जब मोक्ष है नही इस कालमे तो मुनि क्यो होते है, मगर आप एक बात रखिये—जब आप कोई काम करते तो आप बहुत ऊचा भाव रखते है और बहुत श्रम करनेकी उमग रखते है तब प्रयास के बाद कुछ अनुरूप सफलता पाते है। आप और भी देखलो। आपकी कोई बडी बात कब बनेगी, उस अनुभूति के लायक आपके भाव कब बनेगे ? जब बहुत बडी उम्मीद लेकर चलेंगे। प्रकृति भी आप अपने आपकी देखलो। आप कोई बहुत बडा धर्मका प्रोग्राम रखते है तो कही धर्म की कणिका पा लेते है। बात यह कह रहे है कि हम आपको अनादिकाल से ऐसी वासना लगी है कि हम चाहते है कि खूव धर्म करे। वहुत चाहते है कि खूब धर्म करे। बहुत चाहते है तब थोडा कर पाते है। हम आप सभी लोग चाहते कि नही कि हम जाप मे बैठे तो एकदम सबका ख्याल छोडकर अपने आपमे एकदम मग्न हो जाये मगर होता क्या है कि जापमे बैठे नही कि थोडी ही देरमे मन चलित हो जाता है। कही थोडा सा आनन्दमग्न हो पाते है। जब कोई बडा काम करना विचारे तब कही छोटी बात पा सकेगे और अगर पहिले से ही छोटी बात करना विचारें तो फिर उससे बहुत ही छोटी वात पा सकेंगे। आप जितना बडा लक्ष्य बनायेगे उससे कई हजारवा हिस्सा कम आप कर पायेगे। इसलिए हमे लक्ष्य ऊच ही बनाना चाहिए और अपनी प्रवृप्रि बड़ी ऊंची करनी चाहिए। और ऊचे ढगसे घर्मसाधनकी बात बनेगी तो उसमे प्रयत्न करनेपर हम आप सफल हो सकते है। बात यह कही जा रही है कि हमे अपना लक्ष्य ऊचा ही बनाना है, छोटा लक्ष्य बनाकर धर्ममार्गमे मत लगे। ऊचा लक्ष्य क्याकि मेरेमे जो अन्तः प्रकाश मान शाश्वत मेरा जो ज्ञानभाव है वही मैं हूँ। मुझे वही रहना है, मुझे अन्य बात न चाहिए, ऐसा अपना एक सकल्प और प्रयत्न बनाये। ऐसा लक्ष्य बननेपर हम कुछ धर्ममार्गका प्रयोग भी कर सकेंगे। पूरा प्रयोग तो न कर पायेगे क्योकि अनादि वासना ऐसी लगी है, मगर लक्ष्य बनायेगे तो आप उसे थोडा प्रयोग कर सकेगे। जैसे व्यापार करने वाले व्यक्ति का बडा लक्ष्य होता कि नही कि हमे तो इतनी बडी दूकान वनाना है। वह बडे साधन वनाता है, बडे बडे यत्न करता है पर वह थोडा सफल हो पाता है। यहा ही देखलो जो कोई थोडा काम करना विचारता है वह कुछ भी नही कर पाता। ऐसी आदत है हम आपकी। तो हमे धर्म मार्गमे पूरा लक्ष्य बनाना चाहिए, फिर लक्ष्य करके उसपर चले तो हम थोडा सफल है। तो अनेकान्तसे च्युत होनेके कारण वह पदार्थ कुछ नही मिला, हौवा मिल गया। वह ब्रह्मस्वरूप एक है, अखण्ड है, सवमे भरा है। पर्यायरहित माननेपर उससे

समझे क्या जैसे हौवा होता है, बच्चेको चुप करनेके लिए माँ कहती है—अरे चुप रहो देखो होवा आ गया ? अब वह हौवा क्या है ? अब वह हौवा क्या है ? किसीने आज तक हौवा देखा है क्या ? कैसा होता है हौवा ? उसको न किसी ने देखा, न कोई उसका क्षेत्र, न कोई प्रयोगमे ही चीज, मगर होवाका बडा भारी डर बैठ गया । वह बच्चा उस हौवाका नाम सुनते ही रोना बन्द कर देता है, चलो वह भी अच्छा है कोई अद्वैत ब्रह्म मानकर ब्रह्माद्वैतके धर्ममार्गमे बुद्धि बनाकर पापोसे बचे तो चलो यह भी कि मगर वे सोचते है कि ब्रह्म तो खुद बनता नही है ब्रह्म सोचता ही है तो स्याद्वादसे गिर जाने पर हम अपने पापकी दृष्टिमे सफल नही हो पाते ।

सर्वात्मक एक आत्ममात्र सिद्ध करनेका साहस—जीवतत्त्वके बारेमे कुछ आलोडन चल रहा है, अद्वैतवादी कहते है कि जीव एक है, परमब्रह्मस्वरूप है, उसमे कभी परिणमन नही होता । केवल चैतन्यस्वरूप है इसमे वृत्तिया नही उठती जो वृत्तिया उठती है वे सब प्रकृतिकी चीज है । यो जीवको अद्वैतब्रह्म सिद्ध करनेके लिए एक हेतु यह दिया करते है कि देखो भाई प्रत्यक्ष प्रमाणसे केवल विधि जानी जाती है, निषेध नही जाना जाता, याने हम आखोसे देखेंगे तो सत्त्व दिखेगा, अभाव न दिखेगा । प्रत्यक्ष अभावका विषय नही करता, प्रत्यक्ष किसी का निषेध नही कर सकता, विधि तो बना सकता । देखिये वे क्या कहते हैं कि हम आखे खोलकर देखते है तो हमे विधि दिखती है या निषेध ? विधि दिखती है विधि के मायने है अस्तित्व । हम अस्तित्व देखते हैं । जो है वह दिखता है और जो नही है वह नही दिखता है । हम विधि ही देखते है, निषेध नही देखते । निषेध नही दिखता तो सब जगह विधि ही ज्ञात होगी । और, वह सब विधि विध्यात्मक है इसलिए एक ब्रह्म है दूसरा नही । उनही अद्वैतवादियोका यह कहना है कि हम जो पचासो चीजे समझते हैं कि ये ५० चीजे रखी है तो हम यह कब समझेंगे जब यह जानेंगे कि मे जो एक है वह ४९ नही है' यह दूसरा भी ४९ नही है, इस तरह जब हमे निषेधकाज्ञान होगा तब कहेगे कि ये चीजें बहुत हैं । देखिये, किसकी चर्चा चल रही है ? अपने आत्माकी । यह चर्चा थोडी कठिन लगेगी, पर ये १० मिनट गुजार दे फिर सरल हो जायगी । और १० मिनट भी ध्यान पूर्वक सुनो-क्या कहता है कोई अद्वैतदार्शनिक उसकामतव्य है कि दुनियामे केवल एक ही चीज है ब्रह्ममात्र, और कोई दूसरी चीज नही है । दूसरी कुछ चीज है ऐसा जो बोध होता है वह भ्रमसे होता है, जैसे स्वप्नमे नाना चीजें दिखती है तो वे भ्रमकी चीजें है इसी प्रकार यहा जो नाना चीजे दिखती हैं वे सबभी भ्रमकी चीजें है । चीज तो एक है ब्रह्म । ऐसा ब्रह्माद्वैतवादियोका कथन है और इसकी घोषणा की गई थी कि देखो भाई नाना बाते तो तब

बनेंगी जब यह समझें कि यह तो यही है और कुछ नही है और निषेधका जानने वाला तो कोई प्रमाण नही होना। प्रत्यक्ष तो केवल विधिको जानता है, निषेधको नही जानता। बात तो सुननेमे बहुत भली लगेगी और ऐसा रह कर यह सिद्ध करना चाहते है कि केवल एक ब्रह्म है लेकिन यह नही सोचा कि जिसे हम यह कह रहे कि प्रत्यक्षसे केवल विधिजानी जाती है तो भले ही विधि जानी जाय मगर एक है इतना ही तो नही जाना अनेक जीव है परमाण है मेज है, कुर्सी है, दरी है, लोग, यह भी तो ज्ञान हो रहा है कैसे निषेध कर सकते कि दुनियामे दूसरी चीज कुछ नही है। केवल एक अद्वैतब्रह्म है।

अद्वैत अनस्तत्त्वके परिचयके संदर्भमें—देखिये—७ तत्वोके श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते है। उसमे से जीव तत्वकी बात फिर उठ रही है। जीव नाना नही है, किन्तु जीव एक है, परम ब्रह्मस्वरूप है, क्योकि प्रत्यक्ष से विधि नजर आती है। तो समाधान यह है कि विधि तो नजर आती है मगर जैसे अपके लिए आप एक अकेला ज्ञाता होता है और दूसरेके लिए वह खुद भी अकेला ज्ञाता होता है ऐसे ही अनन्त जीव है, उनको अपना अपना अद्वैत ज्ञात होता है। देखिये वास्तविकता तो यह है कि यह जीव अपने आपमे अद्वैत है इसमे किसी दूसरे का प्रवेश नही, दूसरे का प्रवेश नही दूसरे का सम्बन्ध नही, अपने आप की सत्ता एक करके अकेला है। इसका दूसरेसे ताल्लुक नही, ऐसा अद्वैत तो है मगर सारा ससार, सारे चेतन अचेतन पदार्थ ये सब मिलकर एक अद्वैत हो ऐसा अद्वैत नही है। हा देखिये जब अपने आपको कल्याणकी विधि अपनानी होती है तो वहा अद्वैतका ही दर्शन किया जाता है और बताया गया है कि जिसकी द्वैत दृष्टि है वह ससार मे रूलता है और जिसकी अद्वैतपर दृष्टि है वह मुक्ति पाता है। यह तो जैन सिद्धान्तका भी कहना है लेकिन बात सोचना चाहिए। अद्वैत नही है, तो दूसरी चीज नही है, ऐसा मान करके नही सोचना है, द्वैत है, सब कुछ है मगर किसी दूसरी चीजकी दृष्टि करने से आत्माका हित नही है। यह बात वहा कही गई है लेकिन ये अद्वैतवादी तो यह कहते है कि दूसरी कुछ चीज है ही नही, तो देखो जो द्वैतका निषेध करता वह अद्वैतकी भी सिद्ध नही कर सकता दूसरा कुछ है ही नही, तो अद्वैतकी दृष्टि तुम कहा से लाये ? इसमे द्वैत शब्द ही तो पडा है कि द्वैत नही, अद्वैत बिल्कुल ही नही है तो उसे मना कैसे किया जा सकता। असत् वस्तु का तो कोई नाम भी नही ले पाता है। तो अद्वैत एक ब्रह्म ही नही, किन्तु अपने आपको देखिये तो पता पड जायगा अपने स्वरूपका। देखो कई बाते होती है केवल एक जाननमात्रा को समझने मे, लेकिन यह मैं स्वय आत्मा मात्र जाननेसे समझमे न आऊँगा, किन्तु प्रयोग किया जायगा, जाननेमे उस ज्ञानस्वरूपको रखा जायगा तो यह समझमे आयेगा।

जैसे मिश्रीका स्वाद बचनोसे नही आता किन्तु मुखमे मिश्री की डली रखे तो स्वाद आता है, इसीतरह आत्माका स्पष्ट ज्ञान बचनो से न होगा और ऊपरी जाननेसे भी न होगा, किन्तु अपने आपमे प्रयोग करे तो ज्ञानमे आयगा। प्रयोग क्या करना, अपने आपपर करुणा करके किसी समय तो यह प्रयोग करो कि मै ज्ञानमात्र हूँ मेरा दूसरी वस्तुमे कोई सम्बन्ध नहीं, दूसरी वस्तुसे मेरा सम्बन्ध है उससे मेरा हित है ऐसा मानते जाये और चाहे कि आत्मानुभूति बने तो यह कभी नही बन सकता।

अनुभव और आर्षोपदेशके समन्वयमे याथातथ्यका निर्णय—देखो भीतरमे जब सत्य ज्ञानप्रकाश होता है तो सारी बात स्पष्ट होती है। जैसे यहा जिसने कभी बाहुबलि स्वामी के दर्शन नही किया वह चाहे यहा घरमे ही रहकर उस मूर्तिके प्रति बहुत बहुत ज्ञान भी करले फिर भी उतनी स्पष्टता न आयगी जितनी कि वहा श्रवणबेल गोलमे जाकर साक्षात् दर्शन करके आयगी। वहा साक्षात् दर्शन करके जब अनुभव होता है और वे सब बातें ठीक समझमे आती है ओह मै अभी तक जो चर्चा सुन रहा था सचमुच वैसा ही है तो ऐसे ही जब इस आत्माको अपने प्रयोगमे लेकर अपना अनुभव होता है उसके बाद यह समझता है कि अरे बीसो वर्षोंसे जो हम शास्त्रोमे पढ रहे थे कि यह ज्ञानमात्र है, यह परम आल्हादमे है वह सब सच है। देखो पहिले तो किया पुस्तकोमे ग्रन्थोमे जो कुछ लिखा उसके आधारपर आत्माका विश्वास और जब अनुभव हो गया तो आगमपर ऐसा दृढ विश्वास हुआ कि जिनेन्द्र देवने जो कुछ कहा वह बिल्कुल सत्य अनुभवमे आया। तब ही तो सच्चाई जगी और इस डरके मारे कि जिन-वाणी ठीक है कैसे जाना? वह एक प्रमाणके साथ नही बोला गया। जब भीतरमे अनुभवमे बात उतर जाती है, वह ज्ञानमात्रस्वरूप जब भीतर अनुभवमे आ जाता है तब सच्चाई आती है। ओह जिनेन्द्र देवने जो कुछ कहा है वह सच है। ऐसा जानकर आत्माको जानने लगे तो फायदा मिला और जाननेपर जिनवाणीमे इसकी दृढता हुई। आत्माकी बात परस्-पर बोलते है। जैसे बतलाओ अच्छा विषयोका त्याग करना पहिले चहिए या तत्त्वसँवेदन करना पहिले चाहिए? हर एक का उत्तर जुदा-जुदा होगा। अगर विषयोको भोगते-भोगते कोई ज्ञानकर सका क्या? विषयोमे आसक्ति रख रखकर कोई ज्ञानकर सकेगा क्या? नही कर सकता। तो जो ज्ञान करने के लिए उद्यमी होगा का उसे विषयोका त्याग करना होगा विषयोका त्याग होनेसे ज्ञानका प्रकाश होगा और जैसे ज्ञान का प्रकाशबढा वैसे ही विषयो का त्याग बढा, इससे एकान्त रूपसे कोई यह नही कह सकता कि पहिले ज्ञान करे फिर विषय छोडे या पहिले विषय छोडे फिर ज्ञान करे? अरे जब जैसा मौका मिले वैसा कर डालो। जैसे जिन

चीजके प्रति आपकी धुन होती है उसके लिए तो आप अनेक प्रकारके उद्यम करके उसे प्राप्त करते है ऐसे ही आत्माके पाने के लिए भी आप क्यो नही उद्यम करते ?

आत्महितके लियें सदाचार तत्वज्ञान भक्ति आदि सभी सदुपयोगमें पूर्वापर श्रेय-कुछ लोग सोच विचार करते कि पहिले ज्ञान करँ या विषय प्रसग छोड़े ? अरे यथाशक्ति सब करें। ज्ञानप्रकाश आयगा तो वह सब सही हो जायगा। लोग कहा करते है कि कजूसधनी बेकार है। वह निर्धनसे भी खराब है। अच्छा बतलावो-क्या यह बात एकान्त से सच है ? मान लो कोई धनी है मगर वह है कजूस तो क्या वह गरीब से भी खराब है ? अरे किसी समय उसकी बुदि बदल जाय तत्त्व समझमे आ जाय तो लोगोके उपकारमे वह धन लगा देगा, और, गरीबकी समझमे आ भी जाय तो वह कहा से लगा सकेगा ? तो इसीतरह जो विषयोका त्याग करे, अभक्ष्यका त्याग करे और ज्ञान नही है तो उसे समझलो कजूसधनी की तरह है, लेकिन वह बिल्कुल बेकार तो नही है। जिससमय ज्ञानप्रकाश किया उसी समय जो साधना की थी ज्ञानके अभावमे ज्ञान प्रकाश होनेपर अब उससे बहुत कुछ सहूलियत आ जायगी। ऐसे आत्मस्वरूपको, परमात्म स्वरूपको पानेकी धुन है तो हर प्रकारके उपायसे उसे प्राप्त करलो। जैसे जिस चीज पर आपको आशक्ति है उसे आप सामदान दण्ड भेद आदि सभी उपायोसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते है, तो यहा भी पानेका प्रयत्न करो। और, देखिये—अगर प्रारम्भसे मन्दिर न आते मा के साथ, जब बच्चे थे तब मा के साथ मन्दिर आते थे और मा ने नमस्कार किया तो आप भी बच्चे थे तो नमस्कार करते थे ना। चाहे ऐसा भी नमस्कार कर डालते थे कि भगवानकी तरफ तो पीठ कर ली और दूसरी तरफ सिर नवा दिया, ऐसा भी किया मगर कुछ श्रद्धा तो थी कि मेरी मा करती है सो मुझे भी करना चाहिए, इससे हमको लाभ है। देखो श्रद्धासे चलते आये, कुछ और बात हुई, कुछ पढा, कुछ स्वाध्याय किया, कुछ पुराण बांचा। सब कुछ करते हुए किसी दिन ऐसा योग हुआ कि तत्त्वज्ञानके लिए उमग उठी और द्रव्य, गुण, पर्याय, वस्तुकी स्वतन्त्रता, साधारण गुण, असाधारण गुण सबके प्रकाशक। असर आया, एक तत्वज्ञानका प्रकाश पाया, उसके प्रति किसी समय कहने लगे कि सब बेकार है। जब तक सम्यक्त्व न हो तब तक हम अभक्ष्यका त्याग न करे, क्या यह कहना ठीक है ? अरे करे सब मगर कोशिश करे आत्मतत्त्वके परिचय की। यह समझते रहें कि इसमें जो कषाय मंद होती है तो इसमे लाभ है, मगर मोक्षमार्ग की बात तत्वज्ञानसे मिलेगी, सम्यक्त्वकी प्राप्ति मिलेगी उसकी बात चल रही है।

मोक्षमार्गका मार्ग पानेके लिये मै के निर्णयकी नितान्त आवश्यकता-भैया। मै को निर्णय किये बिना सम्यक्त्व नही होता। बाहरके सब निर्णय कर लिया मगर अपने स्वरूप

का जब तक निर्णय नही है तब तक सम्यग्दर्शन नही उत्पन्न होता। मैं क्या हूँ इसे समझने का उपाय है अहप्रत्यय वेद्यता। भीतरमें जो मै ऐसा जिसके सम्बन्धमे ज्ञान हो रहा है वही तो मैं हूँ। अगर कोई कहे कि भाई मैं नही हूँ तो भाई जी मैं नही हूँ ऐसा जो ज्ञान कर रहा है वही तो मै हूँ, निषेध कौन कर सकता है ? जो ज्ञानमय पदार्थ हो वहा मै हूँ किसी परवस्तुके आधीन मेरी सत्ता नही है। मै अनादिसे स्वय सिद्ध अपने आप सत् हूँ और सत् हूँ तो अपने आप परिणमता रहता हूँ। देखो जैसे रेलगाडी चल रही है अपनी पूरी स्पीडसे और नीचे है पटरी तो देखो रेलगाडी को वह पटरी तो नही चलाती। वह तो अपने कारण कलापसे अपने चक्र से, अपने परिणमनसे प्रत्येक पुर्जेमे अपना परिणमन है, एक पुर्जेको दूसरा पुर्जा भी नही चलाता, वे चल रहे है, गाडी चल रही है। और कही स्टेशनके नजदीक जाते हैं तो इन्जन तो अपने आपकी शक्तिसे चल रहा है, मगर पेटमेन द्वारा किये पटरीके बदल का निमित्त पाकर इ जनका मुख दूसरी ओर हो जाता और इस तरह उधर चला गया। जैसे मोटरको ड्राइवर भीतर बैठकर उसे मोड लेता है ऐसे अपने आपके यन्त्र पुर्जेसे कोई ड्राइवर रेल इन्जन नही मोडता इन्जन तो अपनी रफ्तारसे चलता रहता है मगर पेटमैन ने लेन बदल दी तो इ जन तो जैसा चल रहा था चलता गया वह अपने रगमे है लेकिन बदली हुई पटरीका निमित्त पाकर यह इ जन तिर्छी चलने लगा। वहा कोई कहे कि यह इंजन इसतरह चल दिया तो वह इ जनकी चाल पराधीन हो गयी, अरे नही, इ जनकी चाल पराधीन नही है, वह तो जो, उसकी शक्ति है उसके आधीन है। रेलगाडीने कोई उद्यम नही किया कि मेरी पटरी बदल जाय। लेकिन जैसा सहज भोग मिल गया उधर को मुड गई इ जिनकी पद्धति रफ्तार ज्योकी त्यो रही ऐसे ही आत्मा सत् है, स्वय सिद्ध है, इसका उत्पाद व्यय करनेमे कोई दूसरा समर्थ नही है। जो सत् है वह स्वयॅ अपने आप उत्पाद व्ययध्रौव्य वाला है। तो आत्मास्वतन्त्रतासे अपनी कलासे चू कि प्रत्येक सत् का ऐसा ही स्वरूप है सो अपने ही स्वरूपके कारण निरन्तर उत्पाद व्यय करता चला जाता है। प्रत्येक पदार्थका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उसका अपने आपमे होता है बीचमे एक सहज योग ऐसा आया कि कर्मविपाक आया, जो पूर्वबद्ध कर्म है उनका उदय आया, कर्मविपाक हुआ तो यह विकाररूप परिणमन करने लगा। अब वहा कोई कहे कि कर्मका निमित्त पाकर विकाररूप परिणमन किया जीवने तो जीवका परिणमन परतन्त्र हो गया क्या ? अरे यह तो अपने उत्पाद व्ययकी धुन लिए हुए था प्रत्येक पदार्थ अपना अपना ही उत्पाद व्यय करता जाता है। अब सहज योग भी जैसा मिलता है वैसा उत्पाद व्यय की मुद्रा बदलती रहती है, यह सहज योग की बात है फिर भी दृष्टि इस ओर देना है कि यह मैं आत्मा स्वय सत् हूँ,

और स्वय अपना उत्पाद व्यय करता चला जाता हूँ, रात्रि को कल आपने धार्मिक सनीमा देखा था । उस पर्दे पर नाना प्रकारके चित्र आये तो वे जो चित्र आये थे वे क्या मशीनने उत्पन्न किये थे, मशीन तो बाहर थी और जो उसमे फोटो आयी वे भी बाहरी चीज थी । जिस वस्तु के जितने प्रदेश है उस वस्तुके उन प्रदेशो मे परिणमन है । मशीनसे चित्र नही आये, वह तो चल रही थी मगर सामने फोटो आक्स का ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध था कि वह पर्दा स्वय अपने आपका रग बदल रहा था । कैसा जल्दी–जल्दी वह कपडा रंग बदल रहा था इतना तेज बदलना हो रहा था उस पर्दे में मगर उसमे निमित्त था वह फोटो आक्स । तो निमित्त नैमितिक सम्बन्ध स्पष्ट दिखता है, और स्वतन्त्रता भी अतीव स्पष्ट है ।

अपने कर्तव्यसे न चूकनेका अनुरोधः—जो जीव है वह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है, अनादि से अकेला है अनन्तकाल तक अकेला रहेगा । वर्तमानमे उसकी जो विकृत अवस्था है । वह सब औपाधिक है । तथा अपने आपकी ओरसे देखो तो मात्र कल्यनाकी बात है । एक नीद की बात है । जैसे दु.खी दु खी तीन चार जीव एक साथ है तो वे आपसमे अपनी ऐसी चर्चा व सलाह बना लेते है, अपने उपयोगकी बात करने लगते है कि घरमे सभी दु खी हो जाते है । वस्तुत सब अपने–अपने मे दु खी है । उन दु.खोको निपटाने के लिए एक तरह की सस्था है, इसके आगे उसका कोई महत्व नही, जैसे संस्थामे रहकर कोई काम ही तो करता है ज्ञानप्रभावनाका, धर्मप्रभावना का, परोपकारका कुछ काम ही तो करता है इसी प्रकार गृह सस्था मे रहकर सब अपनी-अपना काम करते रहते है। जिसका जैसा भाव है उसके अनुसार वह अपना अपना परिणमन करता । मगर इस तथ्यको भूल कर जो परसम्पर्क जोडता है वह दु खी होता है । तो अपने आपके लिए बिचारो कि मै हूँ और सदा रहूँगा । अब कहा रहूँगा आगे ? इतना तो देखते है सामने कि यह शरीर छोडना पडेगा । इस शरीरको लोग जला डालेगे, फिर भी मैं आगे रहूँगा । जो भी सत् है उसका मूलत कभी नाश नही होता । जब मैं आगे भी रहूँगा तब कुछ दयाकी वात चित्त मे लाना चाहिए । मैं कैसा रहूगा आगे ? क्या कुत्ता, विल्ली आदिक जैसा जीवन बिताना ठीक रहेगा ? नही । कोई उत्तम जीवन होना चाहिए, धार्मिक प्रसंग मिलना चाहिए ! देखो बाहर के वैभव कितने ही मिल जाये उससे शान्ति नही मिलती और धार्मिक वातावरण मिल जाय तो उसमे उद्धार होनेका अवसर है और उस धर्मका आचरण करके मुक्तिमार्ग मे आगे बढने का मौका मिलता है । चाहिए तो यह था कि मैं इसी भवसे मुक्त हो ॐ, मगर नही हो सकते, कारण कि हीन संहनन है । जो सहनन हम आपको मिला है

उससे मुक्ति नही मिलती। मुक्ति तो उसे मिल सकती है जिसे वज्रवृषभनाराचसह मिले जो बडे-बडे उपसर्गोको सह सकता है, वहा आत्मा का ज्ञान बने, और आत्म रास्ता मिले अपने आपमें रमण करे तो उसे मुक्ति मिलती हैं इस समय तो मुक्ति न मिल सकती। आगे हमे जन्म लेना पडेगा। कहा जन्म लेना पड़ेगा इसकी ओर वहु ध्यान देना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितिमे ही धर्ममार्ग बना लेनेमें कुशलता:—देखिये पहिले तो सो था कि मैं इतनी व्यवस्था और करलूँ, इसके बादमे धर्मसाधनामें ही रहकर अ जीवन बिताऊँगा, मगर वहा होता क्या है कि उतना समय बीतनेपर कोई न क समस्या और सामने खडी करली जाती हे। यों कभी भी जीवन मे शान्ति पानेका अव सर नही मिल पाता। जीवन मे अभी तक बडे बडे प्रयत्न कर डाले पर कभी न पाया। तो अब तो कुछ विवेक बनाओ। थोडे दिनो तक प्रयत्न करे और ब दिनो तक आनन्द पाये, बुद्धिमानी तो इसमे है। और इसमे कोई बुद्धिमानी नही कि दो साल तो मौज लूटा और फिर पचासो वर्ष कष्ट कष्टमे ही बीते। अब तो क्या कि आगे के लिए अनन्त काल तक आनन्दभवन रहने के लिए? एक इस ही भवको आत्म-चिन्तनमे, ज्ञान और वैराग्यके काममे लगावे, इसमे हम आपकी बुद्धिमानी है। बाहरमे जहा जो कुछ होता हो होने दो, उसकी कुछ परवाह न करो। खुद सावधान है तो सब सावधानी है और खुद ही अगर सावधान नही तो कोई सावधानी नही है, अपने आपपर दया कीजिए और अपने आपमे शान्तिलाभ अभी से प्राप्त कीजिये। उसके लिये समय लम्बा न करे। जैसे एक बार किसी साल अकाल पडगया पानी न बरषा, तो कोई पडौसी थे। उनमे से एक के घरमे तो ११ माह तकके लिए खाने को अनाज रखा था और एक के घर कुल १ माह तक खानेके लिए अनाज रखा था। तो जिसके घर ११ महीने तक खानेके लिए अनाज था उसने सोचा कि मे एक महीने तो पहिले बिना खाये ही गुजार दू, बाद मे फिर ११ महीने बड आरामसे खाऊँगा और उधर दूसरे पडोसीने सोचा कि हमारे पास कुल एक माह तक के लिए खानेका सामान है, सो अभी तो एक माह तक खूब खाये, बादमे फिर जैसा होगा सो देखा जायगा। अब जिसके घर ११ माह तकके लिए अनाज रखा था उसने १०—१५ दिन ही भूखे रहकर बिता पाया कि वह तो चल बसा और जिसने एक माहमे ही सब खा पी डाला वह फिर ११ माह तक उस आनाज से गुजारा करने लगा। हम आप यहा थोडेसे समयके लिए हैं तो यही जो बन सके शन्तिका उपाय सो कर ले तभी शन्ति रहेगे. आगेका अनन्तकाल कष्टमे न जायगा। अगर अपनी असली शान्तिके लिए एक इस भवको लगा

दिया तव तो फिर अनन्त काल तकके लिए अपनी शान्ति मिल सकती है। अपनी एक ऐसी प्रकृति बनाये अपने आपके अन्दर समस्त बाह्य पदार्थोंके प्रति उपेक्षाकी वृत्ति रहे, यहां की हर बातमे अपनी उदारता दिखावे, यदि यह प्रकति हो गई कि फिर अपने भीतरमे धीरता गम्भीरता आदि सबका स्वागत रहेगा।

स्वहितके पौरूषमें बड़प्पन—एक बार किसी राज्यमे वहां का राजा गुजर गया तो मन्त्रियोने अपना निर्णय बनायो कि प्रात.काल होते ही सब लोग इस किलेका फाटक खोलेगे, वहा फाटकपर जो सोता हुआ सबसे पहिले मिलेगा उसको यहाका राजा बनाया जायगा। ठीक है। तो प्रा.तकाल होते ही सभी मन्त्रियोने किलेका फाटक खोला तो देखा कि फाटक पर एक फकीर जो लगोटी पहिने हुए था वह सो रहा था। उससे सभी मन्त्रियोने कहा—चलो तुम्हें हम लोग राजा बनायेगे हम सबने ऐसा निर्णय किया है। तो फकीर बोला—हमे नही राजा फाजा बनना है हमे तो ऐसे ही ठीक है। " अरे नही तुम्हे तो बनना ही पडेगा। यह कहकर किलेके अन्दर उस फकीरको घसीट ले गए। वहाँ वह फकीर बोला—अच्छा हम राजा तो बन जायेगे पर हमारी एक शर्त मन्जूर करे ' क्या ? ' हमसे राज्य पाटकी कोई सलाह मत लेना, तुम सब लोग मिलकर अपना काम करना। ' अच्छी बात। बहुत से मन्त्री तो ऐसा चाहते ही थे कि नाममात्र का राजा बन रहे, बाकी काम सब हम कर लें उस फकीर ने अपनी लंगोटी तो एक पेटीमे रख दी और मन्त्रियोने उसे राजसी वस्त्राभूपण पहिनाकर सिंहासन पर बैठा दिया। वह राजा बन गया। कुछ ही समय बीता था कि उस राज्यमे किसी दूसरे राजाने चढाई कर दी। मन्त्रियोने राजाके पास आकर कहा महाराज आपके राज्य पर अमुक राजाने हमला कर दिया है। वे बहुत निकट आ गए है। अब अपन लोगोको क्या करना चाहिये ? तो वह राजा बोला—जरा वह पेटी उठाना। आ गई पेटी अब फकीरने अपने राजसी वस्त्र उतारे लगोटी पहिनी और कहा कि अपने रामको तो यह करना चाहिए और लोग जो जाने सो करे। यह कहकर चल दिया। तो भाई अपने चित्तमे भी यह बात आये कि अपने रामको तो यह करना है—क्या ? अपनी श्रद्धा अर्थात् अपना ज्ञान बनावै और अपने आपकी धुन बनावे, अपने आपको तो यह करना है अब दूसरो को जो करना है वे जाने। इतनी बात हम आप सबको करना चाहिए। आप कहे कि हम तो गृहस्थ है। कहा करे अरे गृहस्थ हो तो कुछ समय तो ऐसा चिन्तन कर सकते। प्रतीति तो ऐसी बना सकते, भीतरमे श्रद्धा तो यह रख सकते कि जगतमे मेरा कही कुछ नही है। मात्र मेरा ज्ञानस्वरुप ही मेरा वैभव है। इतनी बात चित्तमे तो बना सकते हो और फिर परिस्थितिवश बच्चोसे भी बोलोगे, उन्हे खिलाओगे भी, दूकान आदिकके कामभी करोगे,

अपना धनार्जनका कामभी करोगे मगर अपनी प्रतीति न छोडो। जैसे पतग भले ही आकाश मे चढ जाय मगर उसकी डोर यदि हाथमे रहेगी तो वह आपके आधीन है, अगर उस की डोर आप छोड देगे तो वह पतग कहीके कही पहुचेगी। जिस पतग की डोर टूट जाती है वह कही बहुत दूर जाकर गिरती है। उसके गिरते ही बच्चे लोग उस पतगपर टूट पड़ते है और उसके धज्जे धज्जे निकालते है। इसीतरह हम आपका यह उपयोग अगर बाहर गया और इस उपयोगकी जो डोर है सम्यक्त्व, प्रतीति ज्ञान है। अगर प्रतीति न रखे तो क्या। हालत होती जैसी स्थिति को कोई चाहता नही हमे चाहिए अपने आपके विश्रामकी स्थिति ऐसा निर्णय बनाये, तो भाई आपका वडप्पन है। बडे कुल मे पैदा हुए, धन सम्पदा भी यथोचित है और बडे अच्छे शासनमे भी रहते है। धर्ममार्गमे भी लग रहे हैं अहिंसाका वातावरण है, पर्वमे भी अहिंसा, क्षत्रमे भी अहिसा, घरमे भी अहिंसा ऐसा तो सुन्दर वाता-वरण है, इतना बडप्पन मिला है तो इसको बेकार न खोओ। अगर इस वडप्पनकी महिमा न आकी जो कि सयम तप, आदिक से महिमा है, अगर इस बडप्पनकी महिमा न आकी तो फिर निश्चित है कि यह वडप्पन फिर न मिलेगा।

मात्र अजीव हो अजीव माननेमे विडम्बना—सम्यग्दर्शके विपयभूत मोक्षमार्गके प्रयो-जनभूत तत्त्व ७ है जीव, अजीव, आश्रव, बध सम्बर निर्जरा और मोक्ष। उसमे से जीव तत्त्वके बारेमे बात चल रही है। ब्रह्माद्वैतवादी कहते है कि जीव तो एक ही है ससारमे और इसीकारण सब कुछ जीव ही है, अजीव कुछ नही है, ऐसा ब्रह्माद्वैतवादियोका कहना था। वहा यह सिद्ध किया गया कि अजीव न हो तो जीवकी सिद्धि नही की जा सकनी, क्योकि दूसरेको तुम जीवकी बात बताओगे तो वचनोसे बताओगे और वचन अजीव है, इसके अतिरिक्त शास्त्र है, अक्षर है सकेत है और हाथका हिलाना है यह सब भी समझनेमे कारण पडता है। तो यह अजीव अगर नही है तो फिर जीवकी बात कैसे समझाओगे। यह बात सुनकर अब चार्वाक बोलते है, सब कुछ अजीव ही है। जीव कुछ नही है। जैसे आज कल बहुत से लोगोका यह भाव होता है कि जीव कोई चीज नही है। बस ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारका सयोग हो गया, शरीर बन गया, तो इन चारके सयोगमे एक चेतना पेदा हो जाती है। चेतना कोई अलगसे पदार्थ नही है। तो इस सम्बन्धमे बहुत कुछ बताया गया था। इस समय इतना ही समझना ठीक है कि अगर जीव न हो तो अजीव को समझनेका कोई साधन नही है। जो लोग मानते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार ही चीजें है जीव कुछ नही है तो भला दूसरेको आप समझा कैसे सकेगे? जो समझ है जो ज्ञान है सो चेतना है, चेतनाके बिना समझनेकी बात नही बन सकती। अगर कोई यह कहे कि

जो चेतना सामान्य माना है वह भी अजीव ही है। तो जब सब अजीव अजीव ही है तब तो फिर सब शून्य हो जायगा। समझनेकी बात ही न आयगी। और, देखो बड़े आश्चर्यकी बात है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार चीजे एकमे सामिल हो सकती है सो तो उसे बनाते है चार और चेतना इन चारोमे सामिल नही हो सकती सो उसका नाम भी नही लेते। कितने आश्चर्यकी बात है पृथ्वी कभी जल बन सकती है कि नही ? बन सकती है। जल कभी पृथ्वी बन सकता। जल कभी पृथ्वी बन सकता, जल, अग्नि वायु ये सब परस्परमें एक दूसरे रूप बन सकते है। देखो चन्द्रकान्त मणिमे विविध पृथ्वी जातिके स्कध जिनका कि जल बन जायगा। और जलका पृथ्वी बन जाता जलके अणु पेड बन गए ना तो पेडको पृथ्वी माना है तो देखो पृथ्वी बन गए। तो यहां परस्परमे एक दूसरे रूप बन सकता है इसलिए चार कहनेकी जरूरत न थी। एक पुद्‌गल ही कह देते। भूत ही कह देते, जैसाकि प्रसिद्ध शब्द बनाते है तो उनको तो चार कह रहे और चेतन का किसीमे अन्तर्भाव नही हो सकता है, क्योकि उसका एक विलक्षण स्वरूप है। सो उस चेतन का अस्तित्त्व ही नही मान सकते। चेतन अचेतन नही हो सकता और अचेतन चेतन नही हो सकता। तो जीव है, अजीव ही मात्र नही है जीव भी है और अजीव भी है यहा तक जीव तत्त्वकी बात कही गई थी अब अजीव तत्वकी बात कही गई।

आस्रव तत्त्व व उसके निमित्तभूत योगकी सिद्धि—अब आश्रव तत्त्वकी बात सुनो आश्रव क्या है ? मन, वचन, कायका परिस्पद होनेका निमित्त पाकर जीवमे प्रदेश परिस्पंद हुआ, उससे होता है कर्मोका आना। वह योग है। वही आश्रव कहलाता है। ऐसी बात सुनकर कुछ दार्शनिक बोलते है कि जीव तो अपरिणामी है, उसमे प्रदेश परिस्पद की गु जाइस नही, तब आश्रव तत्त्व कोई चीज नही। आत्मा तो क्रियारहित है। जब आत्मामे कोई क्रिया ही नही बनती तो आस्रव कैसे हो सकता है ? जैसे कि आकाशकी क्रिया तो नही बनती। यह आकाश उठाकर कही धरे या आकाश चलकर कही पहुच जाय यह क्या सम्भव है ? नही, इसीतरह आत्मा भी कही चले या कही पहूँचे, यह बात सम्भव नही है, ऐसा कुछ दार्शनिक कहते है लेकिन यह बात सत्य नही है, क्योकि आत्मा क्रियावान है आत्मा क्रियावान है उसका हेतु यह है कि आत्मा सर्वत्र अवेला है व अव्यापक है। देखिये—आपका आत्मा आपके शरीरमे है, मेरा आत्मा मेरे शरीरमे है। तो यह आत्मा सब जगह नही व्यापक हो रहा तो उसमे क्रिया सम्भव है, जो व्यापक है उसकी क्रिया सम्भव नही। आकाश व्यापक है उसकी क्रिया नही हो सकती। धर्म अधर्म द्रव्य आकाशमे लोकाकाशमें व्यापक है उनमे भी क्रिया नही हो सकती, किन्तु यहा तो अनुभव हो रहा है आपका आत्मा

आपके शरीर मे मेरा आत्मा मेरे शरीर मे तो अव्यापक है ना। सब जगह फैला तो नही है इसलिए इसकी क्रिया हो सकती और क्रिया है सो तो यह आश्रव भी बन गया तो यहा दार्शनिक वैशेषिक यह कह सकते है कि सभी आत्मा व्यापक है आत्मा दो तरहके होते है व्यापक मानने वाले एक तो ऐसा मानते हे कि एक ही आत्मा है और सर्वव्यापक है और कुछ एसा मानते हे आत्मा तो अनेक है लेकिन वे सभी के सभी व्यापक है। जैसे सिद्ध भगवान एक मे एक समाये हुए है ऐसा यह आत्मा पूरी दुनियामे सब समाया हुआ है। तो जब सब व्यापक हैं आत्मा तो उनमे क्रिया नही बन सकती। जैसे अमूर्त आकाशमे क्रिया नही बनती तो उनका यह कहना भी सम्भव नही, क्योंकि ये लोग कालद्रव्यको व्यापक मानते है जो कि अनेक द्रव्योंके परिणमन का कारण है और क्रियावान है ना तो आत्मा भी क्रियावान है।

आश्रव क्रिया व क्लेश हेतुता—देखो इस प्रसगमे बहुत सीधी सी बात है। दो तरह की बात है। एक तो आत्माको कोई व्यापक मानता है कोई अव्यापक लेकिन स्व सम्वेदनसे आप समझ लेंगे कि मेरा आत्मा तो केवल मेरे मे ही है। मेरा आत्मा व्यापक नही। सुख दुखका अनुभव शरीरके अन्दर रहने वाले आत्मप्रदेशमे ही होना है कि शरीरसे बाहरके प्रदेशमे भी होता है ? सो तो बतलाओ ? शरीरके बाहर सुख दुखका अनुभव नही होता। शरीरके अन्दर आत्मा के प्रदेशोमे ही सुख दुखका अनुभव होता है इससे सिद्ध है कि मेरा आत्मा मेरे मे ही है। मेरेसे बाहर नही। और, देखिये आत्मामे क्रिया भी होती है, सोच विचार किया, रागद्वेप किया, जो कुछभी बात हुई सो भी आत्माके प्रदेशमे हुई। आत्माके प्रदेशसे बाहर कुछ नही होता, आत्मा स्वप्रदेशोसे ही कुछ करता है यह है एक ऐसा ज्ञानामृत कि इतनी बात समझमे आ जायतो उसकी ममता टूट जावेगी, विपत्ति नष्ट हो जायगी। जगतमे जितना क्लेश है वह सब ममता का क्लेश है। वस्तुत कोई भाई दुखी नही है किसीको भी कष्ट नही कष्ट तो ममता करके बना रखा है, पर ममता करने वालोकी सख्या ज्यादह है ओर मोही मोहीकी परस्परमे बात होती है तो इस ओर दृष्टि नही दी जा रही है। इसको जितना दुख हो रहा सो ममता से हो रहा। कष्ट केवल ममता का है। ममता न करे तो कष्ट न आयगा। आपही बताओ। जिसमे आपकी ममता है अगर यह ममता न हो तो आपका क्या बिगाड है ? बल्कि शान्ति हैं, सुधार हैं आनन्द है। तो जो यही बैठे अपने हाथकी बात है उसे करनेमे तो पामर (कायर) होते है और जो अधिकारसे बाहर की बात है इन बाहरी पदार्थोमे, परभावोमे, परतत्त्वोमे, पर पदार्थो मे निग्रह अनुग्रह, सुधार बिगाडकी हठ किए हुए हैं तो कैसे काम बने ? एक समझ बनावें कि मुझे जितने भी क्लेश हैं वे इस ममताके कारण है, और ममता करना यह झूठ

चीज है । कोई हो अपना, तो माने कि मेरा है, कोई भी तो अपना नही ।

आस्रवकी विपत्तिमयता—इस जीव पर सबसे बडी भारी विपदा है मोहकी मोह रागद्वेषका जो आत्मपरिणाम होता है बस वही आस्रव है, विपदा है, दूसरी कोई विपदा नही । दूसरेसे मेरेमे कोई आपत्ति नही आती । मै ही अपनेमे सोचता हु और विपन्न् बन जाता हूँ । यो किसी की समझमे आ जाय यह बात भली प्रकार बस उसका आत्मध्यवहार बन जाता है । कई लोग ज्ञानी बनकर बाल ब्रह्मचारी हो जाते है । हुए है, उनके चित्तमे रंच मात्र भी बाहरी बात चिलित नही होती, क्योकि समझ रखा है कि अनादि से अब तक भोगा तो हैं सब कुछ पर उसका सार क्या निकला ? कष्ट ही कष्ट निकला देखो भैया । आज यहां हैं तो यहां के समागममे मोह किया जा रहा और मरकर दूसरी जगह जायेंगे तो यहाके समागमकी क्या सुध रहेगी ? फिर रहेगा आपका कुछ क्या ? वहां जाकर दूसरा मोह बना लेंगे । फिर तीसरी जगह मोह बना लेगा । क्या बच्चों जैसा खेल मचा रखा है । बच्चोके खेलमे यही कुछ कुछ बात है । लेकिन बच्चोसे भी गयो बीता खेल कर रहे है बच्चेभी, बूढे भी नादान भी, कैसा एक झंझट का खेल मचा रखा है ? इससे मिलता जुलता कुछ नही' लेनदेन कुछ नही, सम्बन्ध रंच भी नही, लेकिन ममता ऐसी बना रखी है कि ऐसा लग रहा कि यह ही मेरा सारा सर्वस्व है जब किसीकी स्त्री गुजर जाती तो वह सोचता है कि सारा सूना है । किसी स्त्रीका पति गुजर जाता तो वह सोचती कि सब सूना है, इस जगतमें कुछ नही है । अब मै कुछ रहा ही नहीं । पुत्र गुजर गया तो पिता समझता है कि मेरा तो अब जीवन ही नही है मेरे कुलका दीपक न रहा पिता गुजर जाय तो पुत्र सोचता है कि हम तो असहाय हो गए । कैसा ममता का खेल मच रहा है । अरे जो बात है उसीमे अपना समाधान निकाल लो । परिस्थिति है राग करना पडता ठीक है, पर वियोग होने पर उसकी रटन क्यो लगायी जाती ? यह अज्ञानताकी सूचना देता है ।

मोहमे विनष्ट अलब्ध वस्तुकी ओर आशा होनेसे निकट प्राप्त समागमसे भी संतोष पानेकी अशक्यता—एक बुढिया थी उसके ७ लडके थे, उनमे से एक लडका गुजर गया, रह गये ६ लडके वह बुढ़िया बहुत बुरी तरहसे रोई, तो वे ६ लडके समझाये—मां देखो हम तुम्हारे ६ लडके तो अभी है हम लोगोको देखकर तुम खुश रहो, सन्तोष करो, इतना विषाद मत करो । हमको भी दुःख होता है तो मां कहती है बेटा बात तो सही है, तुम हमारे ६ तो हो मगर जो गुजर गया हमारी दृष्टि तो उसकी ओर रात दिन रहती है । तो ६ लडके बोले मां इतना मत रोवो । इतना रोवोगी तो हम लोगो मे से कोई गुजर जायगा । तो बुढिया कहती है बेटा ऐसी असगुनकी बात मत-

कहो, तुम ६ जरूर हो, पर क्या करे हमारी दृष्टि तो उसीकी ओर लगी है जो नही है। अब उन ६ मे से एक और गुजर गया। ५ रह गय अब उन ५ ने समझाया, अम्मा रोवो मत तो बोली बेटा यह तो ठीक है, पर हमारी दृष्टि तो उन के गुजरे हुए दोनो बेटोपर ही रहती है। क्या करू रोने लगी। इसतरह एक बेटा और गुजर गया, सबने समझाया पर उसने यही कहा बेटा हमे तो उन तीनोका ही ध्यान बना रहता है, क्या करू। इसी तरह से चौथा मरा, फिर ५ वा मरा और मान लो छठा भी मर गया, जो भी बालक मरे बस उसे वही बालक ध्यानमे बना रहे। इसतरह रोते रोते ही उसका सारा जीवन बीत गया। तो यहीअज्ञानता की निशानी है। अज्ञानता के कारण कष्ट ही मिलता है बल्कि वर्तमानमे जो चीज प्राप्त है उसमे भी अपना निभाव नही करना चाहते। यही धन कमाने वालोकी बात है। मान लो किसीके पास एक लाख का धन है, उसमे से यदि एक हजार का टोटा पड गया तो उसकी दृष्टिमे वह एक हजार ही बना रहता है, उसके पीछे वह बडा क्लेश मानता है। यद्यपि अभी उसके पास ९९ हजार का धन है फिर भी अज्ञानतावश उसका सुख भी वह नही लूट पाता। जो पासमे है उसकी और दृष्टि नही रहती जो नही है उसकी ओर दृष्टि रहती है। तृष्णामे यही हाल होता है। तो जो नही है ऐसी चीज पर दृष्टि रखेगा तो उसका क्या पूरा पडेगा ? आपके पास तो बहुत सी चीजें नही है, और जो है भी आपकी चीज नही उसके प्रति आपने कल्पना कर रखी है कि यह चीज मेरी है। कल्पनासे ही तो मान रहे कि यह मेरी है। जब कल्पनासे ही अपनो मान रहे तो फिर सभी मनुष्योंके पास जितना जो कुछ धन है उसे मान लो कि यह मेरा है और आनन्द ले लो। क्योकि जो इसके पास है इसका भी कुछ उठेगा नही और जो दुनियाके पास है उसका भी कुछ उठेगा नही। परिस्थिति कराती है। अरे प्रयोजन तो दो रोटो दो कपडेका है, इन दो के अलावा और च्या प्रयोजन उठाते सो तो बताओ।

धर्मभावनासे ही जीवनकी सफलता.—भगवान की भक्ति हो, ज्ञानकी प्रभावना हो, अपनें आत्माके स्वरूपका ध्यान जगे, आत्मतृप्ति हो, मोक्षमार्ग मिले, यह था लाभ उठाने की वात। तो उसे ओर तो सुध नही। बस जैसे एक भजनसा बना है ना नमामि पैसा ? उसनें पैसा को नमस्कार किया है। तो आप यह समझो कि कितना अपनेको हैरान करते हो ? अपने को परेशान और दुखी क्यो बनाये हो ? तृष्णाकी बात छोडो क्या चाहिए क्या न चाहिए ? यो बनू यो बनू इस धुन को छोडो। कर्मों के अनुसार जो कुछ आता है, जो कुछ मिला है। बस उसीमे ही अपना रास्ता निकालो और तृप्त रहो

रास्ता तो सब निकल आता है। जिसके पास जितना धन है जरुरत से कई गुना उसके पास ज्यादह है, जब गरीबोकी और द्रष्टि दो तो मालूम पड़ेगा कि इसके पास मुझसे सौवा हिस्सा वैभव है और ये सब भी जिन्दा है कोई दुःखी नही तो देखो है न प्राय. सबके पास जरुरत से ज्याह है। इतने भी धनकी जरुरत न थी। तो सन्तोष बनाये और देखो कुछ कर भी नही सकते। जितना उदय है उसके अनुसार होता है। उससे ज्यादह कुछ नही होता एक बार एक साधु महारोज किसी श्रावकके घर आहार करने आये और आहार करके आगनमे बैठ गए। कुछ उपदेश हुआ। इतने मे सेठकी बहू जो करीब ३५ वर्षकी उम्रकी थी बोली महाराज आप इतना सबेरे क्यो आ गए ? तो महाराज ने उत्तर दिया बेटी समय की खबर न थी। लोग सुनकर बड़े परेशान हुए कि देखो कितना तो दिन चढ आया, १० बज रहे है और फिर भी यह बहू भी गडबड बोल रही और मुनि महाराज भी गडबड बोल रहे। इसके बाद मुनि महाराज ने एक बात पूछा बेटी तुम्हारी उम्र कितनी है ? महा–राज मेरी उम्र ५ वर्षकी है। अब तो लोग और भी बड़े आश्चर्य मे पड गए। देखो यह है तो कोई ३५ वर्षकी मगर अपने को ५ वर्षकी बता रही है। फिर मुनिराज ने पूछा–तुम्हारे पतिकी उम्र कितनी है ? ५ महीने की। तुम्हारे स्वसुरकी उम्र कितनी ? महाराज स्वसुर तो अभी पैदा ही नही हुए। अच्छा यह बताओ बेटी कि तुम ताजा खाती हो कि बासी ? महाराज हम तो सदा बासी ही बासी खा रहे है, ताजा कहां रखा ? इतनी बात हुई और मुनि महाराज तो अपने निवास स्थान पर चले गये यहा सेठ अपनी बहूसे लडने लगा, अरी बहूँ आज तो तूने हमारी नाक कटाली। मै इस नगर का सबसे बडा सेठ हूँ कहलाता हूँ और तूने इतने लोगो के बीच अटपट बाते कही तो सुनने वाले लोग क्या कहते होगे ? तो उस बहू ने कहा कि आप मेरे ऊपर नाराज मत हो, उन्ही मुनि महाराज के पास चलकर सारी बात समझलो। वे दोनो गए मुनिराजके पास। उन मुनिराजकी उम्र २० वर्ष की थी। बहूने यह पूछा था कि तुम इतने सबेरे क्यो आ गए मायने इतनी छोटी उम्रमे तुम साधुपद मे क्यो आगए ? तो मुनि महाराज का उत्तर ठीक था ना कि बेटी समय की खबर नही, याने कितने दिन हमे जीना है,कब मर जाना है, बच्चे भी मर जाते, तो समयकी खबर न थी इसलिए जल्दी ही मैं इस पदमे आ गया। दोनो का जबाब सही मिल गया तो सेठ समझ गया कि ठीक कहा। सेठ ने कहा—महाराज यह तो ठीक है मगर आपका जबाब सवाल बडा गडबड मालुम होता है। यह बहू तो ३५ वर्ष की है और अपने को ५ वर्ष का बताती है, सो कैसे ? तो बहूने बताया कि महाराज मुझको ५ वर्षसे धर्म की श्रद्धा हुई है इसलिए हम तो अपनी आयु ५ वर्ष की मानती हैं।

धर्मकी श्रद्धा बिना जीना कोई जीना नही। अगर धर्म के बिना जीने को भी आप आयु मे शुमार करे तो हम आप तो अनादिकाल से जी रहे हैं। तब तो यह कहना चाहिये कि हम तो अनन्तकाल के बूढे है। सब हैं अनन्तकाल के बूढे। तो धर्म बिना जीवनको हम जीवन नही समझते, इसलिए हमारी जिन्दगी तो ५वषकी है। और पतिकी उम्र कितनी पतिदेव की ५ महीने से इस तत्त्वज्ञानकी ओर दृष्टि हुई है, अपने आत्मकल्याणकी सुध हुई है इसलिए उनकी आयु ५ महीने की है। और स्वासूर बोले-महाराज हम तो ६० सालके बूढे है, बाल भी सफेद हो गए फिर भी यह कह रही कि अभी स्वसुर साहब तो पैदा ही नही हुए, तो इसका मतलब क्या? तो बहू ने कहा—महाराज, अगर किसी को आत्मज्ञानका प्रकाश न जगा हो तो कैसे हम उसे पैदा हुआ समझे। देखो स्वसुर साहब अभी भी नही समझे, उल्टा लडते है तो कैसे हम इन्हे पैदा हुआ समझे? इसे भी सेठ समझ गया। अब फिर सेठ बोला—महाराज मेरे घर मे प्रतिदिन तीन बार ताजा भोजन बनता है, यह बहू ताजा खाना रोज रोज खाती है फिर भी यह क्यो कहती कि हमतो रोज बासी ही खा रहे हे? तो वहाँ फिर बहू बोली—देखिये महाराज सेठजी ने पूर्वभवमे दान पुण्य किया था, धर्म किया था, जिसके फलमे इन्हे सब कुछ मिला हुआ है पर आज इस जीवन मे कोई नई कमाई कर नही रहे तो हम कैसे समझें कि ताजा खा रहे? वह तो बासी ही कहा जयगा। तो बात इतनी समझना है कि अपना जीवन माने ज्ञान-प्रकाश होनेपर। अगर मेरे को मेरे आत्माका ज्ञानप्रकाश हुआ है तो समझो कि मैंने जीवन पाया और एक ज्ञान प्रकाश नही है तो मेरा कोई जीवन नही है तो यह ही मोक्षमार्गके प्रयोजन भूत ७ तत्त्वको बात कही जा रही है।

रागकी चिकनाई मे कर्मरजका आस्रव—यहां आश्रव तत्त्वकी सिद्धि कर रहे है, आश्रव है क्योकि इस आत्मामे भी क्रिया प्रदेश-परिस्पन्द होता है, उसका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मका आश्रव होता है। देखो भाई इन बूढे आदमियोको ये छोटे—छोटे बच्चे नाती पोते बडा हैरान किया करते है, और अब उन बच्चोको भी मजा सा मिलता है, वे उस बूढेके पास पहुँचते है, कही मूछ मरोडते, कही हाथ झकझोरते, कही सिरपर चढते, बडा हैरान करते, अब वह बूढा बडा दुखी होता है, रोता है। कभी वह बूढा रोषभी करता है तो बच्चोको यह इच्छा होती है कि मै इसका क्रोधभी देखता रहूँ। तो वे और भी हैरान करते है तो यह तो बतलाओ कि उस बूढेको जो हैरानी आयी तो उसकी खुदकी गल्तीसे आयी या उन बच्चोकी गल्तीसे? अरे वह बूढ़ा यदि उन बच्चोसें राग न करें उन्हे पुचकारे

नही, उनको बुलावे नही तो वे उसके पास आयेंगे ही क्यो ? और फिर उस बूढ़ेकी सकल भी इस ढगकी हो जाती है कि बच्चे लोग उसके पास जानेमे डरते है पर वह स्वयं ही उनसे राग करके अपने को हैरानीमे डाल लेता है । अगर वह बूढ़ा दु.खी न होना चाहे तो क्या करे कि उन बच्चोसे राग करना छोड दे, इसी तरह हम आप भी जो हैरान हो रहे है वह क्यो हो रहे ? हम अपनेमे कल्पनाये करते और हैरान होते । हमे ऐसा बनना है, यह इस तरह क्यो चलता है, यह काम मेरा नही बनता, इसने मेरे काममे बाधा डाल दी । अरे तुम बाह्य पदार्थोमे राग करते हो इसलिए दु खी होते है । बाह्य पदार्थोका राग छूट जाय फिर दु.खका कोई काम नही । देखो जिस भगवानके दर्शन करने आप मन्दिरमे आते वे भगवान एकाकी है, अकेले है, शरीर भी कुछ नही है सिद्धमे । विषय कषाय तो रंचमात्र भी नही है । अरहतमे भी ऐसा एक अकेलापन है । अकेलेमे ही आनन्द है । किसी बाह्य पदार्थ के लगावमे आनन्द नही है । भ्रमकी गुत्थी सुलझ जाना एक सबसे बडा धर्म है । भ्रम लगा है तो जैसे समझ लोजिए एक चिकना घडा है, उस पर पानी की बूँद डालते है तो वह ढलक जाता है, रुकता नही, ठीक ऐसे ही बात रागकी चिकनाईमे लगी है, जहाँ रागकी चिकनाई लगी है वहा धर्म की बात शान्तिकी बात ठहर नही सकती, बह जाती है । यह सब सारा जजाल है, सारा दु ख है । हमे अपने आपको आनन्दमे लगाना है तो रागद्वेष मोहसे अलग होना चाहिये । इसके लिए यह शस्त्र है सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयधर्म । इसका पालन करे तो क्लेश दूर होगे, सब सकट मिटेंगे । घरमे रहनेको हम मनाकी बात नही कह रहे किन्तु सत्यज्ञान प्रकाश चित्तमें लाओ । घरमे रहेंगे तो शान्त रहेगे और घर छोडकर रहेगे तो शान्त रहेंगे, अगर यह सम्यक्त्व प्रकाश नही है तो घर छोडकर भी यह शान्त नही रह सकता, और, सम्यक्त्व प्रकाश है तो घर रहकर भी पूरा शान्त तो नही रह सकते, मगर बहुत कुछ शान्तिका लाभ ले सकते । अगर सच्चा बोध नही है चित्तमे सहाय कोई नही, ठीक ज्ञान बने तो आपको आप सहाय है, आपको कोई दूसरा सहाय नही हो सकता । तो सही सत्यज्ञान भेदविज्ञानसे बनता । जीव अजीवमे भेदविज्ञान करना है उसके लिए पहिले समझ तो लीजिये कि हमने भेदविज्ञान नही किया, भ्रम बनाये रहे तो हमपर आपत्ति आयगी ही । आपत्ति ही आश्रव और बन्ध तत्त्वमे मिलेगा जीवके मोहभाव उठता है प्रदेशोमे परिस्पद होता है कर्मोका आश्रव होता है फिर यह आश्रव इसके दु:खका कारण बनता है ।

अपनी कल्पनाओसे स्वयंको बरबाद करनेका प्रयास—कोई कषायी बकरा लिए जा रहा था कषायी खानेमे । रास्तेमे एक वृक्षके नीचे वे बैठ गए । तो बकरोंकी कुत्तोंकी

ऐसी आदत होती है कि जिस जगह बैठते उस जगह पैरोमे जमीनको खरोच देते । तो बकरे ने वहा जमीन खरोच दी । वहा एक पैनी नई चाकू निकल आयी । रख गया होगा कोई । अब वह छुरी तो कषायी खानेमे थी इसीलिए वहा लिए जा रहा था, दूर रखी थी, लेकिन बकरेने वही छुरी निकाल दी तो अब उस कषायीको क्या देर थी वही उस बकरेका ढेर कर दिया । तो बकरेने अपने आप अपनी हत्याका साधन निकाल दिया । तो यो बकरेकी तरह हम आप सब ससारी प्राणी अपने आप अपनी हत्याका साधन निरन्तर बनाये रहते है । मोह रागद्वेषके परिणाम होनेके मायने है अपने आत्मा भगवानकी हत्या करना । जिस आत्मा भगवानके प्रसाद से निगोदमे निकलकर नाना योनियोको पार करके एक मनुष्य हुए हैं तो मनुष्य बनकर बडी कला से यह आत्मा भगवान पर प्रहार कर रहा है । देखो पशु, गाय, भैस, बैल, घोडा आदिक ये जब विपय भोगते हैं तो न ये महफिल बनाते हैं न गाना सुनते है न नाच देखना चाहते है, न रागरागनी सुनना चाहते हैं । उनके वेदना हुई तो वे अपनी प्रवृत्ति करने लगते है और प्रवृत्तिके बाद ६ ६ महीने तकको शान्त हो जाते है । मगर यह मनुष्य गाना भी चाहता सगीत भी चाहता और स्त्री भी ऐसी ढूढते है विवाह के समयमे कि यह नृत्य करना जानती कि नही । अच्छा देखे तो सही कि इसका हावभाव बढिया है कि नही । देखते है किसलिए अरे ये कान पाये थे जिनवाणी की कथा सुनने के लिए और अपना मन पवित्र बनानेक लिए मगर इनका दुरुपयोग किया । विषय साधनोमे इनका उपयोग किया । कविता बनायेगे साहित्यरचना करेगे तो ऐसा गायेगे कि उसमे विपयोका जोश उमडे, कलाओ से ही यह अपने विषय कषायोकी बात कर रहा है । यह तो यह आत्मा भगवान पर प्रहार है कि नही इस प्रहारका क्या फल होगा ।

प्रभुसे बढकर चलनेके प्रयासकी विडम्बना—बडा भयकर देखो जो बडे से बढकर चलेगा वह तो गिरेगा किसी बडेकी होड करेगा ना ? भाई उस सेठ के पास तो इतनी कार हें, हमे भी कार लेना । उसके पास इतने साधन है, हम तो उससे बढकर चलेगे । तो वहा क्या करेंगे ? कही चोरी करेंगे, किसी तरह से धन लेगे या लोगोको सतायेगे ? तो वह तो उसे गिरायगा जो बडेसे होड करके चलेगा वह तो गिरेगा लेकिन ये संसारके मोही प्राणी भगवानसे भी बढकर चलना चाहते है । अब इसका क्या फल होगा ? आप कहेगे कि ये ससारी मोही प्राणी भगवानसे भी बढकर कैसे चलना चाह रहे ? जरा समझाओ तो सुनो भगवान कैसा जानते है ? जो जैसा है उसे वैसा जानते हैं । एक एक अणु एक एक जीव जिसकी जो पर्याय है जिसका जो गुण, जिसका जैसा

अस्तित्व वैसा जान रहे है और ये मोही प्राणी उससे बढकर और आगे बढ़ रहे है। जो जैसा नही है वैसा जानना चाहता। मकान किसीका है क्या ? नही, लेकिन यह जानता है कि मकान मेरा है। और सारी बाते समझलो इज्जत, यश, कीर्ति लोग ये सब कुछ मेरे नही भगवान तो ऐसा जाननेमे असमर्थ है। भगवानमे इतनी ताकत नही है कि वे समझ जाये कि यह मकान इसका है, लेकिन इन ससारी लोगोमे इतती बडी ताकत है कि जो ताकत भगवानमे नही है। उस ताकतका अभिमान है। मकान मेरा है, इज्जत मेरी है, तो भगवान से बढकर जो चलेगा उसकी तो दुर्गति होगी। अरे जैसे भगवान चल रहे है, जो जैसा हे वैसा जान रहे है, एक पदार्थका दूसरा पदार्थ मालिक नही, एकका दूसरा भोगनहार भी नही, यह सब जान रहे है, ऐसा तुम भी जान लो तो तीन लोकके अधिपति हो जावोगे। अरे यह तो एक लज्जाकारक बात कही है। भगवान से बढ़कर कौन हो सकता। है ? तो सत्य ज्ञानका जो महत्व है बस वही एक वैभव है सत्य ज्ञान। सत्य ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है। बाहरी पदार्थ मेरा सर्वस्व है। बाहरी पदार्थ मेरा कुछ नही है। ऐसी समझलावो और इस तत्वज्ञानके मार्गमे आगे बढो तो अपूर्व ज्ञानप्रकाश मिलेगा और यह जीवन भी शान्तिमे जायगा और अगले जो भव शेष है वे भी शान्तिमे जायेगे और अन्तमे परम शान्ति प्राप्त होगी।

आस्त्रवकी योगनिमित्तका दिग्दर्शन—जीवादिक ७ तत्त्वो के श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहते है। बार बार अनेक दृष्टियो से इन ७ तत्त्वो पर विचार किया जा रहा, हैं। जीव अनेक है। जो पदार्थ अनेक होते है उनमे क्रिया देखी जा रही है। जो क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होते दिख रहे है उनमे क्रिया स्पष्ट है। क्रिया है तब आश्रव है। यदि प्रदेश परिस्पदन हो तो कर्मोका आश्रव नही हो सकता। वह आश्रव होता है मन, वचन, कायके प्रदेश परिस्पद होने का निमित्त पाकर। आत्माके प्रदेश परिस्पद होने को योग कहते है। यह ही आश्रव कहलाता है। जो लोग जीवको व्यापक मानते है, समस्त ससारमे व्यापक है ऐसा जो मानते है उनके सिद्धान्तमे जीवमें परिस्पद नही हो सकता, और आश्रव नही हो सकता। जीव असर्वगत है। व्यापक नही है, क्योकि परस्पर विरुद्ध नाना क्रियाका वह कारण है, वह अनेक है। जीव एक नही है। क्योकि सम्वेदनसे एसा ही सिद्ध होना है और अनेक द्रव्य कार्य देखे जा रहे है, आप सुखी है, हम दुखी हैं, आप ज्यादह ज्ञानवान है, हम कम ज्ञानवान है, ऐसा जीवोमे जो परस्पर विरोध पाया जाता उससे ही यह सिद्ध है कि जीव सर्वव्यापक नही, किन्तु अपने अपने पाये हुए देहके प्रमाण है, देखो जीव शरीर प्रमाण

है, चीटीका जीव चीटी के शरीर प्रमाण मे फैला है, उसे सुख दु खका अनुभव उतने मे ही होता है, हाथीका जीव हाथीके शरीर प्रमाण फैला है, जीव तो सब एक समान हैं और वह एक असख्यात प्रदेशी है, लेकिन जैसे दीपकको किसी धडेमे रख दिया जाय तो उसको प्रकाश घडेके आकार प्रमाण फैलता है और यदि उसे किसी कमरेमे रख दिया जाय तो कमरेके आकार बराबर प्रकाश है, इसी प्रकार यह जीव जिस देहमे पहुचता है उस देह के आकार हो जाता है।

वेदनासमुद्घा, कषायसमुद्घात, तैजस समुद्घात व मारणन्तिक समुद्घात मे जीवप्रदेशोकी क्रिया—कुछ स्थितिया ऐसी होती है कि जिन स्थितियो मे इस देहके बाहर भी आत्म प्रदेश जाते है। जैसे कोई बडा तेज क्रोध करे तो वह ऐसा तमतमा जाता है कि उसके आत्मा के प्रदेश कुछ शरीर से बाहर भी निकल जाते है। तो लोग कह भी बैठते हे अजी आप आपेसे बाहर क्यो हो रहे ? तो आत्मा जो देह प्रमाण है उससे भी ज्यादह जीवके प्रदेश फैल गए तो हो गया ना समुद्घात। कभी वेदना तेज होती हैं, बडा तीव्र बुखार चढा है, तपतपी लग रही है, कठिन वेदना है, उस समय भी आत्मा के प्रदेश शरीर से कुछ बाहर जाते हे। देखो बहुत दूर नही जा पाते, केवल शरीर से तिगुने प्रमाण बाहर जा सकते। कषायमे तिगुने प्रमाण जा सकते। विक्रिया समुद्घात, जैसे विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया हुई थी तो देहसे बाहर भी उनके प्रदेश चले गये। तैजस समुद्घात जब मुनि के दाहिने कधेसे तैजस निकलता है और उसका प्रसार जहा तक होता है वहा तक किसी जीव को रोग नही रह सकता दुर्भिक्ष नही रह सकता, आधि व्याधि कोई नही टिक सकता है। सब जगह आनन्द आ जाता हैं और जब मुनिके कोई सक्लेश परिणाम होता है तो उनके बाये कधे से तैजस निकलता है वहा तकका सब कुछ भस्म हो जाता है। तो अशुभ तैजस निकलने पर फिर वह मुनि मुनि नही रहता, वह अज्ञानी मिथ्या दृष्टि हो जाता है। बात यह बतला रहे कि तैजस समुद्घातमे भी कुछ प्रदेश बाहर निकल जाते। ऐसा ही एक मारणान्तिक समुद्घात होता है। किसी किसी जीव मे होता है कि मरने पर आत्माके प्रदेश जन्मस्थान तक छू आते है, फिर वहा से वापिस आकर देहमे समा जाते हैं, फिर इकट्ठे सब निकलते हैं वह मरण है, लो कुछ स्थितिया है ऐसी कि जिन स्थितियोमे ये आतमप्रदेश इस शरीरसे बाहर भी निकल जाते हैं।

केवली समुद्घातमे जीव प्रदेशोकी क्रिया—एक समुद्घात है केवली समुद्घात। केवली समुद्घातमे सशरीर भगवान की जब आयुकर्म तो थोडा रह गया हो और बाकी तीन कर्म मे नाम कर्म जो शरीरका कारण है, गोत्र कर्म जो गोत्रका कारण है वेदनीय कर्म जो साता

असाताका कारण है इन तीन कर्मोंकी स्थिति ज्यादह रह गयी हो। तो देखो मोक्ष जब होता है तो सारे कर्म एक साथ समाप्त होते तब मुक्ति है। उन चार कर्मोंमे ऐसा नही है कि कोई कर्म पहिले खिरे, कोई बादमे खिरे। चारों घातियां कर्म एक साथ खिरते है। आयु किसीकी मानो आध घटे की है और बाकी तीन कर्मो की स्थिति हजारो वर्षकी है तो कैसे आयुके बराबर होती ? सो सुनिये यह तो होगा नही कि आयु भी उनके बराबर हजार वर्षकी हो जायगी ऐसी उल्टी गगा न बहेगी। बाकी तीन कर्म आयुके बराबर होगे। जैसे अरहत भगवान कायोत्सर्ग सहित है तो शरीरके बराबर प्रदेश मोटे फैलकर नीचे से उपर तक फैल जाते है। वातलनय कर्म १४ राजू फैल जायेंगे। नरकसे नीचेकी जगह से- लेकर और सिद्ध लोककी जगह तक फैल जायेगे सिद्धलोकमे अभी न फैलेंगे। जहाँ तक बात बलय है उसके पहिले तक फैल जायेगे। एक समय में। दूसरे समयमें अगल बगल फैलेंगे। जहा तक बातबलय मिलती है, तीसरे समय मे आगे पीछे फैल गया जहां तक बात बलय रहती है और चौथे समयमे बातवलयके प्रदेशो तक पहूँच जायगा इसे कहते है लोक पूरण समुद्घात। इस स्थितिमे सशरीर केवली अरहंत भगवान सारे लोकमे व्यापक होते केवल एक समयके लिए। फिर ५ वे समयमें जो प्रतरकी स्थिति थी याने उससे पहले जो स्थिति थी उतना ही फेल पायेगे याने सकोच हो जायेगा, फिर पूरे समय में कपाटाकार अगल बगल जो फैले थे वे रह जायेगे। और ७ वे समयमे डंडाकार जैसे सबसे पहिले फैला था सो रह जावेगा। और ८ वे समयमे शरीर प्रमाण रह जायगा। उतनी क्रिया होनेके अन्दर ही वे बाकी तीन कर्म प्राय: आयुके बराबर हो जाते है। जो थोडा बहुत अन्तर रह जायगा सो इसके बाद अपने आप यह मिट जाता है फिर एक साथ मुक्त होता है।

आहारककाययोग व सुगम जन्मजाति में जीव प्रदेशों की क्रिया —एक आहारक समुद्घात होता है। आहारक ऋद्धिधारी मुनिश्वरके कोई तत्वकी शका हो तो उनके मस्तकसे एक हाथका आहारक शरीर निकलता है और जहाँ तीर्थंकर केवली के दर्शन हो वहा तक जाता है, दर्शन होते ही वह वापिस लौट आता है। इतनेमें उनकी शंकाका समाधान हो जाता है। देखो यह आहारक शरीर पवित्र है, ऋद्धिधारी मुनिश्वर के निकलता है, पर थोडा थोडा अंदाज करलो, जब कोई सन्देह हो जाता है कि इसके बाद कौन सा श्लोक है तो आप कुछ विचारमे आते है ना, या मानलो बम्बई की खबर आ गई तो आपको ऐसा लगता है कि हमारा दिमाग बम्बई पहूँच गया, और बादमे जब काम निपट गया, बम्वईका काम समाप्त हुआ वो यहा फिर आ जाता है। यह तो यहा की बात है। जाता कुछ नही, दिमाग पर लगता है ऐसा, लेकिन वहा आहारक शरीर बराबर जाता है, तो कुछ स्थितियोमे आत्मा के प्रदेश शरीरसे बाहर भी हो जाते है पर अन्य सभी समयों

मेआत्माके प्रदेश शरीर प्रमाण रहते है। एक स्थिति है। जब किसी प्राणीका मरण होता है और दूसरी जगह इसका जन्म होता है और वह जन्मकी जगह बिल्कुल सीध मे हो, ऊपर हो या पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि किसी दिशामे हो या नीचे हो मगर बिल्कुल सीध मे वह जन्म स्थान पडता है तो उसके प्रदेश एक साथ इतना फैल जाते है कि मरण स्थान से जन्म स्थान तक पूरे व्याप जाते है और तुरन्त सिकुड कर जन्म स्थान पर पहुच जाते है। एक स्थिति ऐसी होती है कि जो शरीरसे वाहर प्रदेश फैले हुए होते है। शरीर प्रमाण भी नही रहते। सिद्ध प्रभुके आत्म प्रदेश जिस शरीरसे मुक्त होते है उस शरीरके प्रमाण रहते है। कारण क्या है कि आत्माके प्रदेश ज्यादह फैलें या सिकुडकर थोडे रह जाये इसका कारण है कर्मका उदय। जब कर्म सब नष्ट हो चुके तो वे प्रदेश अब न ज्यादह फैल सकते और न सिकुड़ सकते है। तो आकार मे प्रदेश है निर्वाणके समयमे उतने ही प्रदेश सिद्ध भगवानके होते है और अनन्तकाल तक ऐसी स्थिति होती है। इसे कहते है स्वभाव द्रव्य व्यवजन पर्याय यो जीव नाना है, क्रियावान है, उनके प्रदेश मे परिस्पद होता है, योग होता है वही आश्रव है।

कर्माश्रवणके प्रोग्रामकी अहितकारिता—आस्रव एक द्वारा है कर्मोके आनेका। आश्रवको द्वार कहते हैं। जैसे पानीमे नाव है और उसमे छेद हो तो पानीके आनेका द्वार है। क्या होगा वह द्वार खुला रह गया, पानी आता रहेगा तो नाव डूब जायगी, ऐसे ही हम आपके आश्रवके द्वार हैं तो कर्म आते रहते हैं और हम डूडे डूबे हुए हैं। अगर कर्मोका बोझ न होता इस पर तो उर्द्ध गति स्वभाव से यह तो सिद्ध लोकमे विराजमान रहता और वहासे चलायामन नही होता इसका स्वभाव है अर्द्ध गगनका। जैसे तूभी मे कीचड मिट्टी भर दी जाय और उसको पानी मे डाल दिया जाय तो वह नीचे बैठ जाती है पर धीरे धीरे कीचड पानीके मेलसे धुलता जाता है और वह तूभी ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार हम आपके आत्मामे बडा कीचड़ लगा हुआ है इसलिए इस ससार समुद्र मे हम नीचे डुबे पडे हुए हैं। जिस दिन यह कीचड़ निकल जायगा, जैसे भगवान सिद्धके कीचड नही है। कीचड जब कर्मका समाप्त हो जायगा तब यह जीव सिद्ध प्रभु हो जायगा। या सब कोई अपना प्रोग्राम बनाये रहते हैं। मुझको जिन्दगीमे यह काम करना है। सबके निराले—निराले प्रोग्राम है। मुझको इतने फर्म वाला बनना है, इतने कारखाने खोलकर रहना है, मुझे लडको को पढाकर ऐसा योग्य बना देना है। मुझे सोसाइटीमे नगरपालिकामे अपनी इज्जत पाना है यो कुछ न कुछ प्रोग्राम बनाये रहते है, मगर वे सब प्रोग्राम गडबड हैं, खोटे है, उन पर अधिकार ही नही है कि जैसा जीव नें सोचा वैसा हो जाय, क्योकि वे सब परभाव है, पर तत्त्व है, पर–

पदार्थ है। किसी भी पदार्थका दूसरे पदार्थ पर अधिकार नही होता परिणमते है सब। अपने आपसे परिणमते है। भले ही विकार होते है तो अन्य निमित्त पाकर होते है मगर परिणमन तो निमित्त ने नही दिया। प्रत्येक पदार्थ अपना स्वतन्त्र स्वरूप रखते है। हा तो अधिकार तो नही मगर प्रोग्राम जुदा—जुदा सबके चित्तमे बसे हुए है।

निजस्वरूपकी सम्हाल करके दुःखरहित होनेंका अनुरोध—दु.ख और किस बात का है ? है तो यह भगवानके समान सहज अनन्त आनन्द स्वरूप। आत्माका स्वरूप तो देखो, जैसा सिद्धका स्वरूप है मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान किन्तु आशबश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान। है तो हम आप अनन्त शक्ति रखने वाले परन्तु पर पदाथोकी आश लगा लगाकर अपने ज्ञानको खो दिया है और निपट अज्ञानी बना फिर रहा हूँ। तो यह आश्रवद्वार खुल गयो, कर्म दनादन आ गए और इस ससारमे रूलते रहे रुलाते रहे। इतनी तो विपत्ति मे पडे है। देखो अगर किसीके चारो ओर जंगल मे आग लगी हो, आग उसकी ओर बढ़ती ही आ रही हो, उसके बचने की कोई आशा न हो, फिरभी वह चाहे कि मूझे रसगुल्ले खानेको मिलें तो यह कितने अचम्भेकी बात है। तो यो ही हम आप चारो ओरसे राग आगमे जल रहे है, प्रदेश एकदम क्षुब्ध है। इच्छाओ नेमेरे इस आत्मा भगवानको हिला डाला उससे हम क्षुब्ध हो रहे है, ऐसी तो यहा बिपत्ति है और यह जीव कहता हैं कि मुझे तो स्पर्शन तो इन्द्रि-यका विषय चाहिए, विवाह चाहिए, भोजन मीण चाहिए, हमें सनीमा चाहिए। यो पन्चेन्द्रियके विपयोकी आशा बनी हुई है और यह राग आग मे जलता हुआ दुःख भोगता है। ऐसी स्थिति बन रही है कि बना भिखारी निपट अजान। तो भाई अच्छा वनना है। सुखी बनना है, पवित्र बनना है, उत्कृष्ट बनना है, महान बनना है, तो किसी बाहरी पदार्थ की कृपासे न बन सकेंगे। ये बाहरी अन्य जीव या अन्य जड वभव, इनका जब तक लगाव है तब इस जीवकी दुर्गति है। अपने आपका सहारा लेना होगा। तो भूतार्थनयसे वह मै अपने आप क्या हूँ, इसकी समझ करानेके लिए ही जीवादिक ७ तत्त्वोका वर्णन चल रहा है।

वास्तविक आरामका स्थान निज वस्तुत्व—आखिर हम कहां जाये कि आरामसे ठहरे ? देखो मानो एक अहमदाबादका बडा आदमी इंगलैण्ड गया। वह इगलेण्डसे वापिस आना चाह रहा है। उसकी इच्छा हुई कि मैं घर जाकर थोडा विश्राम लेलू। तो इग्लेण्ड से जब वह चलता है तो वह तो है योरोप मे, तो वहां लोग पूछते हैं कि बाबूजी कहाँ जा रहे हो ? तो वह कहता है कि एशिया में जा रहे है। अब एशियाके किनारे आया तो वहां के लोग पुछते हैं कि बाबूजी आप कहां जा रहे हैं ? इंडिया। इन्डिया आने पर लोग पूछते

जीव–जीव हैं। अब सब जीवो से हटकर खुदके जीवपर आता है और केन्द्रित हो गया अब खुदके जीवपर आया तो यहाँ अभी यहां अटक गए कि मैं मनुष्य हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मै घर वाला हूँ, इस तरह अपने जीवपर आये, लेकिन यहा भी आराम का स्थान नही मिलनेका। अभी इसे और अन्दर जाना है। तो वह उपयोग जो ज्ञानोपयोग है समझदार वह वहां से चल उठा, तो मानो कोई पूछता है कि बाबू जी कहां जाना है ? उपयोग महाराज कहां जावोगे ? तो इसका जबाब मिलेगा कि मैं अपने गुणके श्रृंगारके स्थानमें जाऊंगा। हा हमे अपने गुणश्रृंगार मे जाना है। ये जो बाहरी द्रव्यव्यन्जन पर्यायें हैं मनुष्य का आकार, इन सब मे आ आकर तो हमें विश्राम का स्थान नही मिल रहा। हमे तो इस आकार वाले शरीर प्रदेशोंसे हटकर अपने गुणपर्यायके क्षेत्रमे जाना है। वहाँ पहुंचे गुणोकी नाना पर्यायें है। तो यहा पर भी इसकी दृष्टि नही मिली। यहां से भी चल रहा। — कहा जा रहे बाबू जी ? हम अपने गुण वैभवके क्षेत्रमे पहुचे तो वहां, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आनन्द वीर्य आदिक अनेक गुण हैं उन गुणो को गिन रहे, उनको देख रहे, उनमे लगरहे, इसमे भी चैन नही मिल रही। वहां से हटकर अब जाता है। उपयोग महाराज कहा जा रहे है ? हम जा रहे है अभेदस्वभाव मे। उन समस्त गुणों का जो एक अभेदतत्त्व है वही यह चित्स्वभाव मे है उसमे जा रहे, यह उपयोग यों चित्स्वभावमे पहुचता है तो वहा उसे परम विश्राम मिलता है। तो कितना बाहर से हट-हट कर हमे किधर जाकर विश्राम लेना है ?एक अपने धाम में।

निजधामका परिचय—जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्माराम, विष्णु, बुद्ध हरि जिसके नाम। राग त्यागि पहुचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ? देखिये इस छन्दमे बडा मर्म भरा हुआ है। साधारणतया लोग इसे सुनकर यो खुश हो जाते है कि इसमे हमारे देवकी पूजा की गई, पर इतना फैलाव नही कर रहा यह देव। अन्य देवताओ का फैलाव करते समय भी इसे अनुभूति नही जगती। जो भगवान का स्वरूप जानता है वह पूछे कि जरा आप सच्चाई के साथ तो बताओ कि क्या ऋषभदेव भगवान नही हैं ? अरे तब क्या भगवान है ? वह तो नाभिराजाका पुत्र है, मरूदेवी का पुत्र है, इक्ष्वाकुवशका है, वह भगवान नही, तो फिर क्या भगवान है ? अरे भाई ये ऋषभदेव जिनका नाम ऋषभ रखा गया वह एक व्यक्ति है, उसके अन्दर रहने वाला जो एक जीव है वह पारिणामिक भाव, वह चैतन्यस्वरूप वह जोवत्वभाव, यह जहां कलक रहित हो गया, जो एक चित्स्वरूप है वह है भगवान। ऋषभदेव भगवान नही है, ऋषभदेवके शरीरके अन्दर विद्यमान आत्माने अपने स्वरूपका दर्शन करके जो एक प्रभुता प्राप्त की ऐसा विश्लेषण करके

जो एक शुद्ध परमार्थ प्रभुताको निरखता है वह कहता है कि ऋषभदेव भगवान नही किन्तु ऋषभदेव के अन्दर रहने वाला जो शुद्ध चितस्वरूप है वह भगवान है। भगवान के नाना नाम नही होते। तुम तो शिव, ईश्वर, ब्रह्मा आदिक के नाम कहते। किन्तु भगवानके तो २४ नाम हैं जो २४ तीर्थंकर हुए है हम नाम लेते है महावीर तो झट ध्यानमें आता है कि जो त्रिलानन्देन है सिद्धार्थ का सुत है वह भगवान। अरे भगवान वह नही है। भगवान तो एक आत्मा है। वह तो एक महापुरुष हुए, तीर्थंकर हुए है उनका जो आत्मा है, जिसका चित्सामान्यस्वभाव प्रकट हो गया वह चित्स्वरुप भगवान है तो इस शरीरके अन्दर आपका एक चित्स्वरूप नजर आयगा वह भगवान है। और अगर यह दृष्टि डाला कि यह ७०० धनुषके यह ५०- धनुषके यह २५० धनुषके, अमुक रंगके ये जो है सो भगवान है, अगर ऐसी दृष्टि रही तो यह दृष्टि गलत हो गई। ऐसी दृष्टि देकर जिसे आप देख रहे वह भगवान नहीं वह एक आकार है, वह एक मुद्रा है। उसके अन्दर रहने वाला जो एक सामान्य चित्प्रकाश है वह भगवान है। आप भगवान की बात समझना चाहै तो कहां से समझेगे ? समवशरण के अन्दर साक्षात् विराजमान जो अरहंत भगवान है, जिनकामुख चारो ओर से दिख रहा है जिसकी दिव्यध्वनि खिर रही है जो आंखोंसे दिख रहा है वह भगवान नहीं किन्तु वहाँ ज्ञानके बलसे अपने आपके अन्त' विराजमान अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दमय जो एक चित्प्रकाश है वह भगवान है। तो लो, ज्ञानके द्वारा आप भगवान के दर्शन कर सकते। तो उस समवशरणमें भी किसे निरखा एक अपने चित्स्वरुप को। यो दखो जिनशिव ईश्वर ब्रह्माराम, विष्णु बुद्धहरि जिसके नाम ये जिसके नाम है। उस धाममें पहूँचनेपर फिर आकुलता नही रहती

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम विष्णु बुद्ध के भावमें परमधाम दर्शन—एक इस आत्माकी बात चल रही है। जिस आत्माके ये नाम हैं-जिन जो रागद्वेषको जीते उसे जिन कहते है। रागद्वेषको जीतने वाला कौन ? यह मेरा ही चित्प्रकाश शिव—जो कल्याणस्वरूप हो सो शिव। कौन है कल्याणस्वरूप ? कौन है मंगलमय ! यह भगवान आत्मा ईश्वर जो सृष्टि करनेमें स्वतन्त्र हो उसको ईश्वर बोलते है। हम आपकी जो सृष्टि बन रही है उसको कौन बना रहा है ? तो उसके करने वाला कोई दूसरा नही, कोई नया ईश्वर नही। आपकी सृष्टि करने वाले आप ही हैं। यह आत्मा ही अपने आपकी सृष्टि कर रहा है। लोकमे जो यह बात फैली है कि कोई एक ईश्वर जगतको रचता है, सो बात कसे फैली ? उसका कारण समझो जगतमे जितने जीव है वे सब अपनी सृष्टि को निरन्तर बनाते चले जा रहे हैं। तथ्य तो यह है। अब चूँकि जीवके भाव बिना कुछ भी नही बनता

जीवके सम्पर्क बिना तो ये घास कपडा आदिक भी नही बनते । पेड था, जीवका सम्पर्क था बन गया । तो यह सब जीवके द्वारा की गई सृष्टि है । तो इस तरह के कितने जीव है ? अनन्त जीव है, उन सब अनन्त जीवोके द्वारा अपनी अपनी मर्यादित सृष्टि चल रही है । लेकिन जब उन सब जीवोको एक स्वरूपकी दृष्टिसे देखातो बोलनेमे आया कि सब एक स्वरूप है, सृष्टिके करने वाले अनन्त जीव या अनन्त जीवोका स्वरुप है एक । जैसे पृथ्वी का पिण्ड बन रहा तो इसतरहमे कुछ पुरुषोने डोरको यहा से सीधी लगा दी, यह ईश्वरने सृष्टि की सृष्टि की उन अनन्त जीवोने और अनन्त जीवोका स्वरुप है एक समान । तो यो कहते, जैसे अभी कहा कि ईश्वरने सृष्टि की है । तो की है अनन्त जीवोने अपने आपकी सृष्टि तो यह ही मैं आतमा ईश्वर हु । क्योकि मै अपनी सृष्टि को करनेमे स्वतत्र हु । उस ही को ईश्वर बोलते है । ब्रह्मा वह है जो सृष्टि करे । अब सृष्टि कौन कर रहा है ? यही आतमा अन यह आत्मा ही ब्रह्म है । यह आत्मा ही राम है । कैसे राम है कि देखिये—रमन्ते योगिन अस्मिन इति राम अर्थात् योगीजन जहा रमण करते हैं उसे राम कहते है । योगी-जन कहा रमण करते है ? इस चैतन्यस्वरुपमे अपने आपके अन्तस्वरुपमे । उस अतस्तत्त्वके प्रसादसे उनकी समाधि बनती है तो राम कौन है ? यह भगवान आतमा विष्णु मायने जो व्यापक हो, सर्वत्र फैला हो, ऐसा कौन है ? यह ज्ञान वह ही आतमा । ज्ञानद्वारा यह सारे लोकमे फैला हुआ है । बुद्ध—जो ज्ञानमय हो सो बुद्ध । ऐसा ज्ञानमय कौन है ? यही आतमा भगवान ।

आत्माकी पापहरण स्वभावता—हरि जो पापोको हरे । पापोको कोन हरता है ? यही भगवान आतमा । जब भाव बिगडता है तो पाप बँधता है और जब भाव सुधरते है तो पाप दूर हो जाते है । बगालमे एक धनिक की लडकी द्रोपदी थी उसका विवाह हो गया दूसरे धनिक के लडके के साथ । वह दुर्भाग्यमे विधवा हो गई तो उसे स्वसुराल वालोनें अपने घर न रखा, और; वह पिताके घर रहने लगी । रहने लगी । कोई ऐसा कुयोग हुआ कि उसका आचरण बिगड गया । और ऐसा आचरण बिगाडा कि गाव भरमे सब जगह उसकी चर्चा फैल गई । अब विवाह हुए तो कई वर्ष गुजर गए उसके आचरण बिगड जान का प्रभाव यह हुआ कि उस द्रोपदीके पिताने उसे बगीचा दे रखा था उसके सारेफल कडवे हो गए उसके अन्दर बनी बावडीका जल कडवा हो गया । कुछ समय बाद उसके चित्तमे ग्लानि आयी ओह मैंने बडा दुष्कर्म किया, मेने अपने आपको ही बरबाद किया । प्रभुके ध्यानमे उसका चित्त लगा, प्रभुकी उपासनामे उसकी धुन बनने लगी और कुछ वर्ष तक साधना करनेके बाद उसे ख्याल आया कि मे अमुक तीर्थमे जाऊगी औरमै अमुक देवतापर

जल ढोलूंगी और वहां मेरे प्राण विसर्जित हो जायेगे। तो उसने अपने पिता से कहा— पिता जी हमारा तो ऐसा भाव हुआ है कि मै वैजनाथतीर्थ धाम जाऊ और वहां जाकर मूर्तिमे जलधारा ढुलाऊं और वहा ही मेरे प्राण विसर्जित हो। तो उसके पिता ने सब प्रोग्राम बना दिया सब साधन बना दिया और गांव वालोको बुला दिया कि मेरी बेटी आज तीर्थधामको जा रही है और वहा अपने प्राण विसर्जन करेगी वहा बहुत से लोग जुडे। वहा बहुत से लोग कह रहे थे देखो १०० चूहो को मारकर बिल्ली हज्ज करने जा रही है। सब जानते थे कि इतना दुराचार करने वाली लड़की तीर्थधाम करने क्या जायगी मगर चलते समय उस द्रोपदीने यही कहा कि अब मैं वह द्रोपदी नही हूँ जो पहिले थी, जिसपर आप लोग मजाक कर रहे हैं। अब तो मेरा प्रभुके चरणोमे ध्यान है मै वहा जाऊंगी जल धारा ढुलाऊंगी, वहा मेरे प्राण विसर्जित होगे। यदि आप लोगो को विश्वास न हो तो जाइये, हमारे बगीचेके फल खाइये, बावडीका पानी पीजिए, वे सब अब मीठे हो गए हैं। लोग बगीचेमे गए तो देखा कि सचमुच आम वगैरह फल मीठे हो गए है और बावडीका पानी भी मीठा हो गया है। यह था उस द्रोपदीके परिणाम बदलनेका प्रभाव आखिर द्रोपदीके साथ बहुत से लोग उस तीर्थधाममे भी गए। उन्होने देखा कि सचमुच ही द्रोपदीने वहा जल ढुलाया और वही उसके प्राण विसर्जित हो गए। तो बात यहां यह कह रहे है कि जो अपन द्वारा किए गए पापोको हरे सो हरि।

आत्मदेवकी हरिरूपता—मेरे किए हुए पापोंको कोई दूसरा हरने आयगा क्या ! अरे मैने ही पाप किया और मै ही अपने परिणाम सुधारू तो पापोको दूर कर सकता हूँ। प्रथम तो भाई यह बात चाहिए कि मै पापोंसे दूर रहूँ। थोड़े समयको पापके भाव आते है उस समय अगर न सम्हले तो उसकी शृंखला बन जाती है और उस समय अपनेको सम्हाल लिया तो बडी शान्तिपूर्वक अपने आपमे बडा आराम पावोगे। तो पहिली बात है कि पापके काम हमसे बनें नही और कदाचित कर्मविपाकवश बन जायें तो भी धैर्यपूर्वक उन्हे छोड़ दे। उन पापोको भी कौन दूर कर सकता ? जैसे कोई लोग कहने लगते कि हमने तो जिन्दगी भर पाप किया, अब हमारा उद्धार नही हो सकता ऐसा न सोचे। अरे कठिन से भो कठिन पाप हो गए हो तो भी इस आत्मस्वरूप के लक्ष्य मे इस प्रभुताके ज्ञानमें वह सामर्थ्य है कि जैसे बहुत बडेई धनके ढेरको अग्नि की एक कणिका जला कर भस्म कर देती है इसीप्रकार जब भी भाव सुधरे तो आपके भव—भवके बंधे हुए कर्म भी झड़ सकते है। हिम्मत बनाना चाहिए तो परिणामोकी निर्मलता ही हम आपका धन है इसके अतिरिक्त हम आप के लिए सब कुछ भी शरण नही है। ऐसा

समझकर "जिन शिव ईश्वर ब्रह्माराम, विष्णु बुद्धहरी जिसके नाम, जिसके ये नाम हैं उस निजधाममे राग त्याग कर पहुच जाऊ तो वहा फिर आकुलता का क्या काम रहे। देखो इस छन्दका कितना गम्भीर और कितना आंतरिकमे पहुँचाने वाला अर्थ है। यहा पहुंचे तो बेडा पार । जब तक अपने आपके अन्तस्तत्त्वमे पहुचते नही है तब तक उपयोगकी भटकना है।

बन्धतत्त्वका परिचय—७ तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहा जाने पर ७ तत्त्वोका नाम बताने वाले इस चौथे सूत्रमें जीव अजीव और आश्रवके सम्बन्ध मे काफी प्रकाश आ गया है। अब बध तत्व की बात निरखोबध यह एक तत्त्व है क्योकि यह जीव का धर्म है पुद्गलका भी धर्म है। धर्म मायने शाश्वत स्वभाव की बात नही। धर्म मायने धर्ममे एक बात पायी जाती। जेसे कहने लगते ना कि बिच्छूका धर्म क्या है ? काटना, तो काटना कोई धर्म कहलाया क्या ? वह तो बिच्छूकी बात है, इसीप्रकार धर्म जो बध है वह पुरुषकी बात है। यह बात क्यो कहनी पडी कि कोई दार्शनिक मानता है कि बध जीवमे नही है किन्तु प्रकृतिमे है। अब बतलाओ प्रकृतिमे अकेलेमे बध कैसे ? बध तो दो मे होता है। दो के बिना बन्धन क्या ? एक मे बध नही होता। तो अकेले जो प्रकृतिमे बंध मानते याने बध अजीवमे मानते, जीवमे नही होता, यह बात एक तो यो ठीक नही कि बध अगर अजीव मे हुआ तो बध का फल भी अजीव भोगे, और बन्ध का विकार भी अजीव मे रहे। जीवके फिर क्यो मोक्षका उपदेश देते हो ? फिर तो प्रकृति को मोक्षका उपदेश दो। यद्यपि ऐसी बात जैन सिद्धान्त मे भी आयी है कि बध जो होता है तो वह कर्मका कर्मके साथ होता है, इसे कहते हैं द्रव्यबन्ध याने पहिले सत्ता मे जो कर्म पडे हे उनके साथ नवीन कर्मोका बध होता है तो हुआ गठ जोडाका बध, मगर निमित्त नैमित्तिक भाव तो जीव के साथ कर्मका है ना ? ऐसा भी बध वे साख्यजन नही मानते। तो कहते है कि बन्ध भी जीवका धर्म है तब ही तो तत्व की बात कही गई। यहा धर्मके मायने कोई गुण हो, कोई पर्याय हो, कोई बात आती हो उसको धर्म कहते है और इस हिसाब से राग भी जीवका तत्त्व है, पर अर्थ भली प्रकार समझ लेना। जीवमे कुछ बात गुजरती हो उसीके मायने है, तत्त्व या धर्म। यहां धर्मका इतना अर्थ है धर्मका यहाँ अर्थ यह नही है कि जो निरपेक्ष हो, स्वभाव हो, शाश्वत हो। वहा तो द्रव्यकी सिद्धिकी जा रहीं है। उस प्रसगसे घटनाकी बात कही जा रही है। बन्ध जो है वह पुरुष धर्म है, प्रकृति धर्म नही हे अथवा प्रकृतिधर्म है, दोनों का धर्म है। केवल एक मे बन्धकी बात असम्भव है। एक का क्या बधन ? प्रधानके ही बन्धन रहे, यह बात यो सम्भव नही कि बन्धन होता है दो चीजोमें अब जीवका भी धर्म है ऐसा मानना चाहिए क्योकि जीवका बंध अगर न मानोगे, पुरुषका बन्ध बिल्कुल ही

न मानोगे तो बन्धका अनुभव भी जीवमे न बन सकेगा। और, जब जीवमे बन्धका अनुभव न बना तो मोक्षकी जरूरत ही क्या रही ? इसलिए बन्ध जीवमे है, केवल प्रधानमें नही है।

सत्य असत्यके परिचयसे सत्य की महिमाका अङ्कन—यह ७ तत्त्वोकी बात कही जा रही। देखो अपने—अपने घर घरकी कुछ बात बनाले उससे उसकी बात कुछ ज्यादह स्पष्ट नही होती और न उसका कुछ महत्व जाना जाता है। अपना लडका बहुत अच्छा उदार है, ठीक है इतना ही भर देखो और शेष बच्चोको न देखो जो अधिक ऊद्यमी है या उद्दण्ड है, दुराचारी है उनको न देखो तो अपने बालककी महिमा अधिक चित्तमे न समायगी। यह बच्चा बहुत बढिया है, यह बात तब समझमे आयगी जब दूसरेके गंदे बच्चे देखे। ये ७ तत्त्व कैसे रखे गए है मोक्षतत्त्वके प्रयोजनभूत जो कम नही, अधिक नही, यह ही है इसका रहस्य तो जब सब दार्शनिको के तत्त्वोंका कुछ परिचय हो तब यह महिमा आयगी कि धन्य है इन आचार्योकी सूझ। ओर, जैन आचार्योने भी वैद्यक ग्रन्थ बनाया है और अजैन तो अनेक वैद्यक ग्रन्थ है, किन्तु जब जैनाचार्योंके लिखे हुए वैद्यकी ग्र-थोको देखेगे तो उसका क्रम, उसकी बात एक बहुत ही विलक्षण समझमे आयगी। उस वैद्यक घन्थके शुरू शुरूमें जीवके परिचयसे उठाया है। इस जीवका परिचय पहिले कराया। जीव क्या है, कैसे आया है, उसमे जाति स्मरण भी कैसे होते हैं जाति स्मरणके भी अनेक प्रसग बताये है ऐसे ढंग से प्रस्तावना उठायी है कि जीवका मूलरूप यहाँ से चला और ऐसा यह जीव ऐसे बना, ऐसे सम्बन्ध हुआ, ऐसे कर्मका बन्ध हुआ। रोग क्यो होता है, कर्मका उदय कैसे आता है, यहां से बात उठायी गई है जैन वैद्यक ग्रन्थोमे। फिर उसके बाद जो दवाइयोका सिलसिला बताया है वह किस ढगसे आता है। रोगका निदान बताया है तो कैसे बताया है कि कोई आदमी वैद्यक ग्रन्थको पढकर भी जैन धर्मपर श्रद्धाकर जायगा। ऐसा एक विलक्षण अपूर्व उसमे कथन है तो मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्व हैं। यह बात समझने के लिए कुछ अन्य दार्शनिकोंके तत्त्वकी बात कही जा रही है।

जीवमे बन्धनपरिणति—बध प्रकृतिका धर्म नही किन्तु जीवनिष्ठ है ऐसा यहा कहा जा रहा है। अच्छा इससे सिद्ध हुआ कि बन्धन जीवमें तो स्वभाव विभावका है और कर्म कर्ममे पुद्गलका बन्धन है और जीवके साथ पुद्गलका जो बन्धन है वह निमित्त नैमित्तिक स्वभावका है और निमित्त नैमित्तिक भावका बन्घन यह बडा दु खकारी बन्धन है। अभी गायका एक दिनका बछडा हुआ हो, उस गायको किसी दूसरे गांवके किसी व्यक्तिने खरीद लिया तो बतावो उस गायको वह कैसे ले जायगा ? रस्सी बाधकर ले जायगा, मगर रस्सी

बांधने की भी जरूरत नही, वह बछडेको आगे आगे अपने कधे पर रखकर ले जाता है और गाय पीछे भागती हुई चली आती है बताओ वहाँ गाय किससे बँधी है ? कही गाय का गला बछडा या उस पुरूष के गले से नही बाँध दी गई किन्तु ऐसा ही निमित्त, नैमित्तिक भावका बन्धन है, मोहका बन्धन है तो यो ही जीवका पुद्गल कर्मके साथ जो बन्धन है यह निमित्त नैमित्तिक भावका बन्धन है, गठजोडे का जो बन्धन है वह पुद्गलके साथ है। इसीपर तो लोग कहते है कि बतलावो आकाशमे किसी चीजका बन्धन हो सकता क्या ? आकाशमे कोई कर्म बध सकते क्या ? अरे आकाश तो निर्लेप है, अमूर्त है, उसमे दूसरी चीजका बन्धन क्या ? तो आकाशकी तरह आत्मा भी अमूर्त है तो अमूर्त आत्माके साथ पुद्गल कर्मका बन्धन कैसा ! बात तो ठीक है मगर यह जीव है चेतन, जाननहार। विकल्प करता है कुछ विशेषता तो है आकाशकी अपेक्षा तो विकल्प करने वाले जीवका उस कर्मके साथ निमित्त नैमित्तिक बन्धन हो जायगा। तो निमित्त नैमित्तिक बन्धन तो यह कठिन बन्धन है। अभी कही कोई पचायत हो रही हो तो वहा देखो रिस्तेदारके साथ कितना पक्षपात किया जाता। रिस्तेदारके साथ वन्धन लगा है। काहेका बन्धन है ! हाथमे हाथ नही फसा, सिरमे सिर नही फसा, पैरमे पैर नही फसे काहेका बन्धन है ? अरे वह भावका बन्धन लगा है, जिससे राग किया जाता। तो निमित्त नैमित्तिक का बन्धन बडा निकट बधन होता है तो यह बध जो है वह जीवका धर्म है, केवल प्रकृतिका धर्म है, प्रधानका धर्म है सो बात नही कहो यह जीवमे बध होता है ?

संवरतत्त्व निर्जरा तत्व व मोक्षतत्वका परिचय—अब बधके बाद कहा है सम्बर। सम्बर कहते हैं द्रव्यकर्मके आनेका। भावकर्मका न आना सो भाव सम्बर रागद्वेष विकल्प विषय इनका न आना सो इसको कहते है सम्बर, मायने गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, चारित्र आदिक जो परिणाम है वह है भाव सम्बर। तो यह सम्बर जीवका धर्म है और निर्जरा भी जीवका धर्म है।-विभावका झडना सो निर्जरा है। तो जीवमे भी झडना होता है और अजीवमे भी झडना होता है, इसीतरह मोक्ष भी जीवमे भी मोक्ष है और कर्ममे भी मोक्ष है। जब जीव कर्म बधे हुए हैं छुटकारा हो तो दोनोका ही हो देखो जब विद्यालय लगा हुआ हैं, चार बजे छूट्टी की घटी बजी तो बच्चे लोग कितना खुश होकर उछलते कूदते भागते है। उनको मानो अब कोई परवाह ही नही है, छूटकर एकदम जा रहे हैं। तो उस छुट्टीमे जैसी प्रसन्नता उन बच्चोको है वैसी ही मास्टरको नही है क्या ? मास्टर तो बडे आरामसे जाते हे, वे बच्चो की भाति हाथ पर उछालते हुए नही जाते हैं, पैर प्रसन्नता उनको भी है। तो यह बच्चोकी उनकी उस अवस्थाकी बात है। अभी किसी बच्चे से कहे

कि जरा यह चिट्ठी लेटर बाक्स मे डाल आना तो वह सीधे न जायगा, वह तो उछलता कूदता ही जायगा, यह उसकी अवस्था की बात है, और अगर किसी पुरुषसे कहा जाय तो सीधे सादे ढंगसे जायगा। तो अवस्था भेदसे प्रसन्नताके बाहरी चिन्हमें भेद आ गया मगर छुट्टी होनेसे दोनों ही खुश है। तो ऐसे ही जब छुट्टी होती है तो कर्म भी स्वतन्त्र हो गए और जीव भी स्वतँत्र हो गया। दोनोमे प्रसाद आ गया। तो मोक्ष दोनोंका धर्म है। इसी तरह धर्मी और धर्म स्वरूप ये तत्त्व है। धर्मी तो २ है जीव और अजीव और धर्म ५ है आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष यहा धर्मके मायने वह धर्म न समझना कि जिसका पालन करने से मुक्ति मिलती। वह तो धर्म हैं ही और छोड़ा जाय वह भी धर्म है। यहा पालन शब्दका अर्थ इसतरह लिया गया है कि जैसे द्रव्यमे अनेक शक्तिया है, अनेक पर्यायें है और शक्ति और पर्यायका समूह द्रव्य कहलाता है तो द्रव्य तो कहलाया धर्मी और शक्ति और पर्याय जितने है वे सब कहलाये धर्म। यह न्याय दर्शनकी दृष्टिका धर्म है। तो इस प्रकार ये ७ तत्त्व हुए जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, दिर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व है।

सात तत्वसे भिन्न अन्य तत्त्वके अभावरूप तत्त्वकी सातमें गर्भितता—अब एक बात और विलक्षण आपके सामने आती है एक कोई दार्शनिक कहता है कि आपने जो ७ तत्त्व कहा उनमे एक बात और छूट गई। कहना चाहिए। कोन सी छूटी ? वह यह छूटी कि तुम कह रहे कि तत्त्व ७ ही है, अन्य नहीं है, तो अन्य नही है यह बात तुमने इसमें नही जोडा। ८ है तत्त्व। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष और ८ वां है इसके अतिरिक्त ओर कुछ नही है। तुमने जो ८ तत्व कहे वह सख्या तुम्हारी ठीक नही है, क्योकि अन्य तत्त्वोका अभावरूप तत्त्व और है, यह एक शंका रखी। सुननेमें तो बात ऐसी लगती होगी कि हा बात तो ठीक है, ८ वी बात छोड दी गई है, मगर ८ वी बात छूटी नही है और उसके कहनेकी जरूरत भी नही है। कैसे नही छूटी ? अन्य तत्त्व नही है ऐसा जो अभाव है वह ७ तत्त्वोमे सामिल है, इतना ही कहना पर्याप्त है। जैसे इस चौकीको देखो यह पलग नही, पत्थर नही, भडय नही, दरी नही, ये सब बातें है ना ? तो ये सब नही है, ये सब इसकी सत्ता रूप है। इसकी सत्ताके मायवे है कि अन्य पदार्थ नही है। तो अन्य पदार्थका अभाव उस पदार्थकी सत्तारूप पड़ता है इसलिए अभावको कहनेकी अलग से जरूरत नही है। कोई अभाव सर्वथा तुच्छ नही होता, मायने किसी के सद्भावरूप होता है इसलिए ७ तत्त्वोंसे छोड़कर अन्य का अभाव ७ तत्त्वरूप ही पड़ता है, उसमे तत्त्वकी सख्याका कोई विघटन नही होता है।

सात तत्त्वोके परिचयसे प्रयोजनकी सिद्धि होनेसे अधिक संख्या माननेकी व्यर्थता—अब एक नई बात और भी देखिये—नैयायिक लोग १६ तत्त्व मानते है। ७ से दूने मानते है, तो वे तो जैनियो से दूने हो गए कि नही दुगुना ज्यादह मान लिया। अरे तो ज्यादह मानने से क्या होता है उसका प्रयोजन तो देखिये- तत्त्वोंका प्रयोजन क्या है ? इस तरह से उसकी श्रद्धाके क्षेत्रका श्रद्धान करनेसे मोक्ष मार्गकी प्राप्ति होती है, इसीलिए पदार्थका स्वरूप कहा जाता है। जैसे बच्चोको पढ़ाते है कि द्रव्य ६ है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। वे बच्चे नही समझते कि यह किसलिए पढाया जा रहा है, उन्हे भाग सा लगता है, ६ द्रव्य रटानेका क्या मतलब है ? किन्तु मतलब तो बहुत ऊचा है। यह जानना है कि ये ६ दव्य आपसमे एक दूसरेका आपसमे सदुभाव नही है अत्यन्त भिन्न है परस्परमे, इसलिए ममता त्यागो। ममत एक महान पाप है। ममता ही क्लेश है। ममता को छोडकर दूसरा कोई क्लेश नही, वह ममता पाप मिटे तो धर्म बने तो ममता का पाप कैसे मिटे ? भेदविज्ञान करे तो ममताका पाप मिटे। भेदविज्ञान कब बने कि जिनका भेदविज्ञान करना है उनका सही—सही स्वरूप समझे, तो जानने मे आयगा सब पदार्थ स्वतन्त्र है, अपनी अपनी सत्ताको लिए हुए है, एक मे दूसरे का प्रवेश नही है, आप ऐसी बात माने जब मै मोह करता हु किसी पर पदार्थ मे तो वह पूरी बेवकूफी है। पूरी मूढता है। पूरा मोह है। अब यहा किसीसे कहे कि तुम बडे मूर्ख हो तो वह झट नाराज हो जाता। अरे काहे को गरम होते ! सच बात है। सब मूर्ख है क्योकि अपने आत्माके सिवाय बाकी जितने पदार्थ है उनका लगाव लगा रहे है कि ये मेरे कुछ है। लगाव लगानेकी गुजा इस कुछ नही है, और लगा रहे तो मूर्ख है।

शब्दोकी सही अर्थबोध होनेपर अनेक आकुलतावोकी समाप्ति—अरे भाई कोई कैसी ही गाली दे, उसका सही अर्थ लगा लें तो गुस्सा न आयगा। अव्वल तो जितनी गाली है वे सब प्रशसा के शब्द है। प्रथम तो गाली का भी अर्थ आप समझे। गाली भी बुरा शब्द नही, वह तो ऊची चीज है। गाली मे दो शब्द है गाली, अर्थात् मेरी कीर्ति गाली, यह कहा जा रहा है। अब गाली भी बुरी बात नही है। अव्वल तो गाली शब्द ही एक स्तुतिकारक शब्द है, कोई बुरी बात नही। अब गालीके जितने नाम देंगे उन सबमे स्तुतिकी बात भरी हुई है। लोग ध्यान नही देते उसपर और बुरा मान जाते है। बुरा माननेकी प्रथा कबसे चली ! ये गाली के शब्द जैसे लोग बोलते है ना, उचक्का, लफंगा, बेवकूफ, नगा, लुच्चा आदि तो इनको सुनकर लोग बुरा न मानते थे, क्योकि ये तो प्रशसा के शब्द है मगर जब प्रशसाकी ऊची बात छोटे आदमीसे कही तो उसने यह महसूस किया

कि हम इस लायक तो है नही, यह हमसे बडी ऊँची बात कह रहे तो ये मजाक कर रहे, उस दिनसे गाली बन गई। जैसे उचक्का। उच्चै. शब्दमे स्वार्थे, कः इस सूत्रसे क प्रत्यय लगा उचक्का का अर्थ है ऊँचा पुरूप, याने उचक्का कहकर तो उसकी प्रशंसा की जा रही आप तो पूरे उचक्का है याने आप बडे ऊचे पुरूप है, मगर वह बुरा मान जाता। क्यो बुरा मानता है कि वह इतना ऊंचा है नही इसलिए वह महसूस करता है कि यह तो हमारी मजाक उड़ा रहा है। लफंगाका अर्थ क्या है ? मार्दवधर्म का पालन करने वाला। नम्रता विनयशील, उसे कहते हैं लफगा। लफ गए है अंग जिसके, अर्थात् नम्र हो गया है सिर जिसका जो बडा नम्र हो गया है, जिसके अन्दर मान वषाय नही रह गई है ऐसे नम्र पुरूपको ऐसे विनयशील पुरूप को लफगा कहते हैं। अब इतना नम्र तो कोई हो नही और उसे लफंगा कह दियो जाय तो वह तो अपनी मजाक ही समझेगा। बुरा ही मानेगा, पर गाली का एक भी शव्द ऐसा नही है जिसका अर्थ बुरा हो । हा जो लोग उस गालीके शव्दके साथ मा बहिन आदिकी बात जोड देते है वह तो कोई शव्द की बात नही है। वह तो शव्दसे अलग बात है शब्द तो इकहरा होता है। वह तो जितने भी शव्द मिलेंगे उन सबमें प्रशसा भरी हुई है। जैसे कहा बेवकूफ तो इस बेवकूफ शव्दमे भी दो शव्द हैं वे और बकूफ वकूफ उर्दू मे वाकिफको भी कहते है। वाफिकका अर्थ है वुद्धि और वे का अर्थ डबल से है। याने जिसकी बुद्धि डवल हो, जिसका डवल ज्ञान हो जो डवल समझदार हो उसे कहते है वेवकूफ। तो गालीका कौनसा शव्द ऐसा है कि जिसमें निन्दा भरी हो ? लेकिन जो छोटा आदमी है उसे बडी वात कही जाय तो वह बुरा मान जाता है और वह गाली बन जाती है अब कोई बड़ा निर्धन हो और उसे देखकर कोई कहे कि आइये कुवेर साहव तो वह तो गाली समझेगा। कुवेर शव्द बडा है, किया तो उसने प्रशसा मगर हल्के आदमी को कहा इसलिए वह बुरा वन गया। इस तरह गाली वन जाती है।

यौगाभिमतः १६ तत्वोंमे मुक्ति प्रयोजकता का अभाव—यहा वात यह बतलायी जा रही है कि तत्वो मे सब बात गर्भित हो जाती है। अन्य तत्व माननेकी आवश्यकता नही है। तत्वके सद्भावमे ही तत्वान्तरका अभाव गर्भित हो जाता है। नैयायिक नैयायिक जो १६ पदार्थ मानते उनके नाम सुनोगे तो पहिले नाम सुनते ही आपको ऐसा लगेगा कि क्या नाम तत्त्वमे रखा गया ? देखो कुछ तो अच्छा है, कुछ बुरा है। जो लोग नकली कोई चीज वंचते है तो एकदम नकली तो नही वेच सकते। सरसोका तैल वेच रहे, मान लो मूंगफलीका तैल सस्ता है तो खालिस मूगफली का तैल रखले और कहे कि लो सरसोका तैल तो क्या इसे कोई मान लेगा ? न मानेगा और सरसोंके तैलमे मूंगफली का तेल मिला-

कर वेचे तो चल जायगा। कुछ असल भी हो, कुछ नकल भी हो तो वह कुछ चल जायगा पूरा विपरीत न चलेगा। तो १६ पदार्थ माने है, उनमे कुछ तो ठीक है, और कुछ अप्रयोजक देखेगे। इनके क्या नाम है ? प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, बात, जल्प, बितडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह ये १६ पदार्थ माने गए हैं। किसी से वादविवाद हो रहा है और छल करके अर्थका अनर्थ लगा करके या उसे झेपा करके डाटकी बात कहकर हरा दे तो इसको भी तत्त्व माना गया है। अब समझ लो कहा तो क्या तत्त्वकी परिभाषा की है। इन १६ तत्त्वोमे बात तो यह है कि तत्त्वकी परिभाषामे ज्यादह नही चला जा रहा है। तत्त्व की सख्या ऐसी नही रखी गई जिसमे सारी बात आ जाय। सशय रखे तो विपर्यय अनध्यवसाय न आ सका याने खूब अच्छा सारी बातोका सग्रह तो आ जाना चाहिए था, वह नही हो सकता तो ये १६ बाते कहना भी व्यवस्थित नही बनता। एक बात और देखिये नैयायिक और वैशेषिक कुछ ऐसे पास पासके दार्शनिक है जैसे दिगम्बर और श्वेताम्बर एक ही जगह मे हैं, कोई अधिक भेदकी बात तो नही है। इस तरह तो नही है जैसे श्वेताम्बर और मुसलमान, दिगम्बर और मुसलमान। दिगम्बर और श्वेताम्बर इनका कुछ सम्बन्ध तो है। जैसे णमोकार मंत्र है, चोबीसो भगवान के नाम है, कुछ कुछ बात तो व्यवस्थाकी चल रही है। इसी तरह नैयायिक और वैशेषिक ये बहुत निकट के जीव है, लेकिन देखो तो सही कि वैशेषिक ने जो एक अभाव नाम का तत्त्व माना है कि अभाव भी एक पदार्थ है उस अभावका तो जिकर इन १६ पदार्थोमे आया ही नही। जो मित्र हैं उनका एक तत्त्व तो एकदम छोड दिया। और कुछ तत्त्व डबल डबल आ गए तो १६ तत्त्व वाली जो सख्या है वह कोई व्यवस्थित सख्या नही है।

अन्य प्रकारसे वैशेषिका भित सात तत्वका विचार—वैशेषिका ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये ६ तो भावात्मक तत्व माने और एक अभावात्मक तत्व माना। ७ पदार्थ माना है, उनकी भी बहुत कुछ बात कही थी और सामान्यतया यह समझें कि ये कोई ६ अलग-अलग नही हैं। पदार्थ एक है। उसीकी शक्ति, उसी की परिणतियों को भी दृष्टि मे लेकर जोडा है तो ये द्रव्य, कर्म आदिक चीजे बन गई है। नही तो क्या है ? पदार्थ है यह, उसमे रहने वाली शक्तियो का नाम गुण है। उसमे होने वाली क्रिया का नाम कर्म है, उसमे होने वाले चूकि पदार्थ बहुत हैं तो सब पदार्थोंमे पाया जाने वाला जो एक सामान्य धर्म है, जो समझमे आ रहा है वह सामान्य है, एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ मे अन्तर है, विशेषता है, इसको समझाने वाला जो धर्म है वह विशेष हैं और चूकि

बुद्धिमे हमने द्रव्य से गुणको न्यारा समझा तो अब बिल्कुल न्यारा तो कैसे हुआ ? उसीमे है तादात्म्यरूप से उस सम्बन्धको बतानेका नाम समवाय है। तो किसी भी तरह से समझ लो, यह कोई अलग तत्त्व नही है। इस तरह भिन्न भिन्न रूप से अनेक तत्त्वोका प्रतिपादन किया है। वह तत्व नही, किन्तु मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तो ये जीवादिक ७ तत्व हैं, इनमे से कम किया जाय तो मोक्षमार्गकी बात स्पष्ट समझ मे न आयगी और इससे अगर ज्यादह किया जाय तो वह भी समझमे न आयगा। अब यहाँ कोई जिज्ञासु यह बात रख रहा है कि आपने जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्व कहे हैं तो इसमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनका तो सग्रह हो न पाया इस कारण यद्यपि यह सर्वज्ञ के आमनायसे चला आया हुआ कथन है। जीवादिक ७ तत्व है, मगर हमे तो युक्ति सगत नही जचते। इसमे अभी तीन और धरो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। कम से कम १० तो मान लो। देखो भैया! जिज्ञासु ने अभी मर्म की बात नही समझी। अरे सम्यग्दर्शन के विषयभूत तत्त्व ही तो बताये जा रहे है, तो सम्यग्दर्शनका ग्रहण कैसे नही होता ? सम्यग्दर्शनका विषयभूत तो ये ७ तत्व है। ग्रहण कैसे नही होता ? जो जाना गया जीव तत्व उसमे ही तो उपयोगको स्थिर करना है। सम्यक्चारित्रका ग्रहण कैसे नही हुआ ? तो यहां यह समझना चाहिए कि रत्नत्रयक आधार-भूत जो जीव तत्व है, जीवतत्व है जीवत्तव सम्बर तत्व निर्जरा तत्तव, तो इसमे तो रत्नत्रय शामिल हो गया। रत्नत्रय इसके अलावा क्या ? जीव सम्वर और निर्जरा ये ही तो हो गए सम्यक्चारित्र जीव द्रव्यके अनन्त गुण है, अनन्त पर्यायें है उनमे अनेक धर्म है पर इन सबका जो पिण्ड है उसीके मायने जीवतत्व है। सम्बर और निजरा तत्तव भी रत्नत्रय से भिन्न चीज नही है। और, देखो आश्रव मे तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक मनोवर्गणा ये जो पुण्य प्रकृतियां है ये सम्यग्दर्शनके बिना हो सकती है क्या ? सम्यग्दृष्ठिके ही तो तीर्थंकर प्रकृतिका बध होता है। तो आश्रवतत्त्व मे भी रत्नत्रयकी कोई न कोई प्रकाशकी बात आयी। छूट कैसे गया रत्नत्रय ? जो यह शका कर रहे हो कि जीव आदिक ७ पदार्थ तो तुमने कहा मगर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र छूट गए, छूट कहा से गए ? इसमे बराबर रत्नत्रय भी आ गया है। तो यह जो चौथा सूत्र कहा गया है, इसमे जीवतत्त्से जीव द्रव्य ही या जीवकी पर्यायका ही ग्रहण नही है। जीव की विशेष पर्याय जो भी हो, रत्नत्रय भी हो वह भी आ गया यो भी वह रत्नत्रय आ गया, मगर जीव कह दिया तो जीव की सारी बात तो जीवमे ली जायगी, रत्नत्रय भी जीबमे लिया जायगा। यो देख लीजिए। तत्त्वकी ७ संख्या पूर्ण व्यवस्थित है अब मोक्षमार्गके

प्रयोजनभूत सप्त तत्वोको जानकर जिज्ञासा होती है कि तत्वका वर्णन व्यवहार किस तरहसे होता है ? तो इसके समाधानमे चौथे सूत्रका अवतार है। नाम स्थापना द्रव्यभाव तस्तन्यास

अप्रस्तुतार्थनयसे विज्ञान मोक्षमार्गके प्रयोजनभुत सप्त तत्त्व आदिक निक्षेपद्वारा व्यवहार—नामस्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोसे जीवादिक ७ तत्वोका सम्यग्दर्शन आदिक का सभीका व्यवहार होता है, नामनिक्षेपका अर्थ हैं कि गुण क्रिया आदिककी अपेक्षा न रखकर जो एक सज्ञाके अर्थ नाम का व्यवहार किया जाता है वह नामनिक्षेप है। जिसका नाम रखा उसमे वाच्यकी स्थापना करनेका नाम स्थापना निक्षेप है जिस वस्तुका लक्ष्य किया उसकी भूत भावी पर्यायोका आरोप करनेका नाम द्रव्य निक्षेप है और वर्तमानमे वस्तु जिस पर्यायमे रहती है उस पर्यायिका व्यपदेश करना सो भाव निक्षेप है। इन चार निक्षेपोसे ही सब पदार्थोका व्यवहार होता है। अब इसे आत्मामे भी देखो तो आत्मा एक नाम है और इसकी स्थापना हुई है चेतने वाले पदार्थ मे। और इसका नाम व्यवहार किया जाता है ससारी मुक्त आदिक जीवो मे तो उसमे भी जिस पदार्थ से युक्त हो उस पर्याय रूप मे ही इस आत्म तत्व को निहारने को भाव निक्षेप कहते हैं। आत्मा का व्यवहार करने के बाद हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम आत्मा को पदार्थ समझे और इसकी धुन मे रहे। मेरी धुन आत्मा मे ही रहने की हो, उसमे ही रमण करने की हो। दूसरा कोई उपाय नही है कि जिससे आत्मा का हित हो सके। तो इस आत्मा का श्रद्धान कैसे हो इसके लिए प्रयोजन भूत ७ तत्वो की बात कही गई है। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। तो बात तो समझा दी गई। इन ७ यत्वो का स्वरूप क्या है ? यह बता दिय गया लेकिन एक विधिपूर्वक यह बात समझना है कि इन ७ तत्वो का या सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र को या दुनिया के किसी भी पदार्थ का जो बोध होता है, जो वर्णन होता है, वह वर्णन किस दृष्टि से चलता है ?

निक्षेपोके स्वरूपदर्शनमे वस्तुत्वका दिग्दर्शन—जैन दर्शन यह कहता है कि नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप इनमे जीवादिक ६ तत्वो का निक्षेप होता है। निर्णय मे जुडाव दिया हुआ है। प्रतिपादन की पद्धति होती है। नाम निक्षेप के मायने हैं किसी का नाम रख दिया। अब व्यवहार चल रहा है फलाने चन्द है, फलाने लाल है। स्थापना निक्षेप के मायने है कि किसी भी पदार्थ मे किसी दूसरे पदार्थ की स्थापना कर दो, जैसे मूर्ति मे भगवान की स्थापना कर दी, ताश के पत्तो मे वजीर, बादशाह आदि की स्थापना कर दी। द्रव्य निक्षेप वह कहलाता है कि जो बात पहले हुई जो बात आगे होगी, उसका वर्तमान मे भी निक्षेप

करना, कह डालना यह द्रव्य निक्षेप है। और वर्तमान में वर्तमान की ही बात कहना भाव निक्षेप है। यह चार निक्षेपो का स्वरूप है।

निक्षेपोंकी संख्याके विषयमें दार्शनिकोंका विवाद—निक्षेपोके सम्बन्धमें शब्दब्रहम वादी का यह कहना है कि दुनियां मे कोई पदार्थ है ही नही, केवल एक शब्द ही सब कुछ है। शब्द के ही द्वारा सारा निर्णय होता है। केवल एक ही निक्षेप माना, जिसके द्वारा जगत के समस्त पदार्थों का परिचय होता है। तो शब्द ब्रहमवादी यहा यह कह रहे कि दुनियां मे जो कुछ है सो शब्द ही शब्द है। शब्द के सिवाय और कुछ नही। तो जैसे आप सोचते होगे कि यह धूल दिख रही है। ये आदमी दिख रहे, ये चौकी पत्थर आदिक दिख रही, क्या ये चीजें नही है। तो शब्द ब्रह्म ब्रहवादियो का कहना है कि इन चीजों मे शब्द घुसे हुए है और जब ज्ञान करते है तो भीतर मे उसके नाम के शब्द उठ आते है—जैसे भीट कहा तो भी और ट ये जो शब्द है ये वास्तविक हैं, ये शब्द उस भीट मे बिधे हुए है इसलिए सही जान रहे। उनका कहना है कि दुनियां मे शब्द ही है, और कुछ नही है, इसे कहते हैं नाम निक्षेप। शब्द ब्रहम अनादि से है तो शब्द ब्रहम का जिससे तादात्म्य है उसी का ज्ञान होता है, याने जिसका ज्ञान किया उसका शब्द जरूर नियत होता है। उन शब्दो से इसका तादात्म्य है तब ज्ञान होता है, यह कह रहे है शब्द ब्रहमवादी। बात सब पदार्थ नाम रूप है, इसलिए नाम रूप से ही व्यवहार होता है। जीव की प्रवृति का प्रधान कारण शब्द है दूसरा नही है इसलिए शब्द ही एक निक्षेप है मात्र नाम निक्षेप ही सही है। चार निक्षेप मत बताओ। तो कोई कहता है नही। सब कुछ एक स्थापना ही स्थापना है हम कल्पना मे कूछ बात सोचते है तो हमे चीज मालूम होती है। एक कल्पना की भीट है यही है वास्तविक बात, भीट वास्तविक चीज नही है। स्थापना ही वास्तविक है, और देखो—भविष्य मे राजपुत्र राजा बनेगा, हम अभी से कुछ समझ रहे है तो सब हमारी कल्पना की बात है नाम भी कल्पना मे आ गया। किसी का कोई नाम धरे तो कल्पना ही तो करेगा कि यह फलाने चन्द है, तो यह स्थापना की बात क्या रही है? स्थापना मे नाम भी आया, द्रव्य भी आया, और भाव भी आया। स्थापना के सिवाय और कुछ तत्व नही है ऐसा एक स्थापनावादियो का कल्पनावादियो का मंतव्य है। तो कोई कहता है कि नही, एक-एक द्रव्य ही द्रव्य तत्व। देखते है कि कोई बात होगी यह बात चित्त मे समायी रहती है तो कोई कहता है कि यह भाव ही जीव है। वर्तमान पर्याय का कथन करना यह ही तत्व है। तो इन चार मे से एक-एक मानते हैं लोग, तो उनकी समस्या का समाधान करने के लिए इस पंचमसूत्रका

अवतार हुआ है नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तत्र्यासः

नामनिक्षेपकी प्रथमावश्यकताका दिग्दर्शन—देखो नामनिक्षेप माना गया है नाम धरनेकी किसीका नाम रख दिया जैसे देवदत्त, जिनदत्त तो उसे जिनेन्द्र भगवान ने दिया क्या ? या किसी देव ने दिया क्या ? जो उस लडके का नाम इस तरहसे रखा गया। नाम जो धरा जाता है उसमे गुणकी अपेक्षा नही होती है, और नाम कोई अपना हल्का नही पसद करता है। पहिले जमानेमे तो लोगो का नाम घसीटे मल, करोडेमल आदि रखा जाता था, पर आज कल इस तरहके नाम रखना कोई नही पसद करता। ऊचा से ऊचा नाम रखते है जैसे पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ वगैरह तो ऊचा नाम धर देनेसे कही उसमे वे गुण तो न आ जायेंगे। यह नाम अपेक्षा से बात कही गई है। अगर गुण हो जाय वैसे जैसाकि किसीका नाम धर दिया मानो राजसिंह तब तो फिर यहा एक भी आदमी न बच सकेगा। तो गुणकी कोई अपेक्षा नही होती नाम मे नाम निक्षेय तो केवल इस परिचयके लिए है कि कोई चीज धरणा उठाना है, कोई व्यवहार करना है तो उसमे यह काम देता है एक कल्पना करो कि नाम किसीका न हो और काम कोई करे तो कैसे करेगा ? अब आपको मडप बाधना है तो कह दिया फलाने चद तुम यह कर आवो, फलाने लाल तुम यह चीज ले आवो, इस तरहसे व्यवहारकी सारी व्यवस्था बन जाती है, और अगर कोई नाम किसीका न रखा जाय तो कौन किससे क्या कह सकेगा ? सब गुगे जैसे बैठे रहेगे। तो नाम निक्षेयमे केवल नामकी प्रधानता है, गुणकी प्रधानता नही है। नाम धरे बिना कोई बात आगे नही चलती जब कोई सस्था बनाते है तो उसमे भी सबसे पहिले सस्थाका नाम रखा जाता है, बादमे बाकी सारे काम किए जाते है, तभी उस सस्थाकी व्यवस्था बन पाती है।

नामनिक्षेपमे नाम पद्धतिका विवरण—जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, इन ७ तत्वोका यथावत श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है, तो इन ७ तत्वोका ज्ञान कैसे हो ? इसके सम्बधमे कुछ सूत्र कह रहे है। सबसे पहले तो लोकव्यवहार की बात कही जा रही है कि इन ७ तत्वोका प्रतिपादन का व्यवहार कैसे हो। नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप द्रव्यनिक्षेप और भाव निक्षेप इन चार निक्षेपोके द्वारा सारा व्यवहार चलता है, इस लोकमे देख लो, नाम निक्षेपसे तो नाम धर दिया, कोई एक निमित्त रहा नाम धरनेका अथवा न रहा ? कुछ तो अभिप्राय रहा नाम धरनेका, बाकी और कोई अभिप्राय नही, ऐसो दृष्टिमे नाम धरा जाता। और, नाम तो केवल एक यह पहिचाननेके लिए रखा जाता कि इसकी बात कही जा रही है, चाहे गडबड नाम धरो चाहे

अच्छा नाम धरो, सभी नाम रखनेका प्रयोजन इतना है कि लोगोको ज्ञात हो जाय कि इस नामके कहनेसे इस चीजकी बात कही जा रही है एक दूसरेसे विशिष्टता करनेके लिए नाम की बात होती है, जैसे मान लो सभीका एक नाम अगर होवे तो फिर लोकव्यवहार चल सकता है क्या ? किसको पुकार रहे ? मानलो सब भाइयौका नाम घसीटेमल रख लिया, अब घसीटेमल वोला तौ कौन हूका बनाये ? और फिर जो दान व्यवहार चलता है कि इसने फर्स बनवाया तो एक नाम जब सबका है तो दान के लिए भी उमंग न चलेगी तो नाम जो रखे जाते हैं वे अन्यसे निराले करके किसी एक के पहिचानने के लिए रखे जाते हैं। जब एक नाम से काम नही चलता तो उसके पिताका भी नाम साथमे जोडा जाता और सायद पिताका भी दो व्यक्तियोका एक ही नाम हों तो कोई तीसरी बात भी जोडी जाती है। तब तक नाम जोडा जाता है जब तक कि सबसे निराले किसीका ज्ञान न किया जा सके। तो यो नाम निक्षेप से सर्वप्रथम व्यवहार चलता है अब नाम धरने का कोई कारण भी होता है कोई जातिवाचक नाम है कोई गुणवाचक नाम है कोई व्यक्ति-वाचक नाम है तो व्यक्तिवाचक नाममे तो कोई निमित्तभव नाम नही आता अथवा आता भी है। जैसे कोई क्रोध करता हो तो नाम धर दिया जाता ज्वालाप्रशाद, अग्निप्रसाद, पर यह नियम तो नही है। शान्त आदमी का भी नाम ज्वाला प्रसाद रख दिया जाता है। तो गुण की अपेक्षा न रखकर जो एक व्यवहार चलानेके लिए नाम रखा जाता है उसे नाम निक्षेप कहते है। जब नाम धरा जाय वस्तुका तब आगे और निक्षेपकी वात चलती है।

व्यवहारमे स्थापनानिक्षेपकी अनिवार्यता—स्थापना निक्षेय तदाकार या अतदा-कार वस्तु की स्थापना करना स्थापना निक्षेप है। पहिले तो किसी शरीरमे यह स्थापना किया कि यह इस नाम वाला है तो वह स्थापना हो गई फिर कोई तासके पत्तों मे या फोटोमे स्थापना कर देते कि यह गुलाम है यह वजीर है, यह बादशाह है, यह स्थापना हो गई। भगवानकी प्रतिमा मे भी स्थापना करते कि यह पार्श्वनाथ है यह नेमिनाथ है आदि यह तो हो गई उनकी स्थापना। तो हम आप लोग स्थापना के द्वारा बड़े-बड़े काम निकाल लेते है देखो कितने ही लोग मूर्तिका निषेध करते है कि मूर्तिको क्यो पूजा जाता है, उससे कौन सी वात मिलती तो वात सही है। मूर्ति या पत्थर के पूजनेसे कोई वात नही मिलती लेकिन मूर्ति या पत्थरको वे कहां पूजते ? वे तो मूर्तिमे भगवानकी स्थापना करके भगवानको पूजते है। मूर्तिको कोई नही पूजता। कोई भी ऐसी बिनती या स्तुति नही गाते कि हे मूर्ति तुम जयपुर की वनी

हो, फला कारीगर की बनी हो, धातुकी बनी हो, वह तो यही कहेगा कि हे पार्श्वनाथ, हे वीतराग जिनेन्द्र देव, हे सर्वज्ञदेव . . यो वह भगवानकी ही कोई बात कहेगा तो पहिले तो यह समझना चाहिए कि मूर्तिमे भगवानको निरखकर भगवान की पूजाका भाव होता है। मूर्तिकी कोई पूजा नही करता। दूसरी बात यह देखें कि व्यवहारसे मूर्ति बिना कोई काम चलता है क्या ! ये अक्षर लिखे है तो ये मूर्ति नही है तो और क्या है ? इन अक्षरो को देखकर ही तो भगवानसे व्यवहार किया जाता है। तो वह एक मूर्ति ही तो है, म कैसे लिखा गया, ग कैसे लिखा गया, इस तरह से सभी अक्षरोको देखकर उनका ज्ञान करके ही तो सारा व्यवहार चलता है। मूर्तिके बिना किसीका काम न चलेगा। जो मूर्ति का निषेध करते वे भी तो अपने गुरूवोकी फोटो उतरवाते, उन्हे पूजते, तो वह फोटो एक मूर्ति ही तो है। मूर्ति बिना कहा काम चलता ! जब कोई मुद्रा बनती है तो उसमे भी कोई न कोई फोटो बनती है, तो वह फोटो एक मूर्ति ही तो है, बिना उस मूर्तिके उस मुद्राकी कोई कीमत नही होती। और विशेषतया देखें तो किसी का नाम धरा और फिर यह ज्ञान किया कि इसका बनाने वाला यह है तो यह भी स्थापना हुई। तो नाम और स्थापना ये दोनो सम्बन्धित है। नाम बिना स्थापना किसकी ? तथा स्थापना बिना व्यवहार कैसे चले

मूर्तिमें ही प्रभुस्थापना करनेका रहस्य—एक बात और नई समझिये कि भगवानकी स्थापना जैन शासनके अनुसार अजीवमे तो कर दी जायगी, जैसे पाषाणकी मूर्ति बनाकर पीतल आदिक धातु की मूर्ति बनाकर उसमे तो भगवानकी स्थापना कर दी जायगी मगर किसी बालक मे या किसी रागी पुरूष मे भगवानकी स्थापना न की जायगी। क्योंकि स्थापना करनेका लक्ष्य तो यह कि स्थापनाके अनुसार कुछ शिक्षा तो हमे मिले। रागी बालक को यो किसी पुरुष को कह दिया जाय कि यह बने नेमिनाथ, यह बने महावीर तो कोई भी नाटक रचा जाय या कुछ भी हो तो भगवान की स्थापना किसी रागी मे नही की जाती। किसीकी फोटो वहा रख ली जाय तो वहा भगवानकी स्थापना मान ली जायगी मगर किसी रागी मोही पुरुषमे भगवान की स्थापना नही होती, क्योकि भगवानमे सर्वप्रथम बात है वीतरागता रागद्वेष न होना चाहिए। तो यद्यपि अजीव ज्ञानवान् नही है मगर कमसे कम इतनी बात तो देखनेमे आती कि वह रागद्वेष नही करता। ज्ञान नही है तो रागद्वेष भी नही है। तो उसमे स्थापना और ज्ञानवान और वीतरागकी की गई है मगर कुछ बात तो आदर्श के लिए होना चाहिए। लडके बच्चोमें प्रभुकी स्थापना कैसे की जा सकती है। वे तो रागद्वेष किए हुए है, ज्ञानमे भी नही है,

उसमे कैसे भगवानकी स्थापना हो ? तो स्थापना भी की जाती है तो किसी पात्रमे की जाती, अपात्रमें नही होती। तो यह लोक व्यवहारकी बात कह रहे है कि नाम निक्षेपसे व्यवहार होता है और स्थापना निक्षेपसे व्यवहार होता है

व्यवहारमें द्रव्यनिक्षेपकी उपयोगिता और कुबुद्धिमें दुरुपयोग—तीसरा है व्यवहारसाधक द्रव्यनिक्षेप। लोकव्यवहार की बात देख लीजिए जैसे सिद्ध भगवान को लोग जीव कह देते। अब जीवका अर्थ है—जो १० प्राणोसे जीवे सो जीव लेकिन अब उनमे प्राण तो नही रहे। वे तो प्राण से अतीत भगवान हो गए, लेकिन स्थापना निक्षेपसे उन्हे हम जीव कह सकते है। जैसे कोई कोतवाल तो अब नही रहा पर उसे भी लोग कोतवाल कहते हैं: तो एक लोकव्यवहारकी एक दिशा बता रहे है जिससे कि आगे पहिचान बने कि जीव क्या, अजीव क्या ? आश्रव बन्ध क्या ? अपनेको जरा पहिचाने और अपना व्यवहार बनावे। मैं क्या ? कोई नाम तो रखना पडेगा। मै ज्ञायक हूँ, ज्ञाता हूँ, चेतन हूँ, बस यह ही मेरा परिचय है। जैसे कोई कहता है कि भाई इनका परिचय देना तो लोग ऐसा परिचय देते हैं कि जिससे उसकी बदनामी जाहिर होती है। जैसे कोई सेठ है। उसका परिचय देना है तो लोग क्या परिचय देते है कि साहब यह तो बडा सेठ है, इसकी बडी हवेली है, हवेली का बहुत बडा द्वार है, उसने ऐसी नक्काशी खुदी है कि जिसे देख कर लोग अचरज करते है। क्या कर रहे है। सेठका परिचय दे रहे है कि सेठका अपमान कर रहे हैं। अरे इस परिचय देनेका तो अर्थ यह होता है कि उन ईट पत्थरो मे तो बडो कला है पर उस सेठमें कोई कला नही। कहा तो यह जा रहा है मगर सेठ भी सुनकर खुश हो रहा है और भी परिचय दिया जाता है कि साहब इस सेठको क्या कहना है ? इनके ४ लड़के है। एक लड़का तो मिनिष्टर है, एक ऊंचा डाक्टर है, एक लडका कालेजका बड़ा प्रोफेसर है, और एक लडका कलेक्टर है। इन सेठजी का क्या कहना है। तो बतलाओ इसमें सेठ जी की प्रशसाकी गई या अपमान किया गया। अरे उसका सीधा अर्थ यह है कि सेठजीके लड़कोमें तो इतना गुण है कि वे ऐसे ऐसे ओहदो पर पहुंच गए मगर सेठ जी में कोई कला नही है। अगर सेठजी मे कोई कला होती तो सेठ के गुणकी कोई बात बताई जाती। तो लोग खुश होते हैं अपने आपकी कोई प्रशंसाकी बात सुनकर, मगर वास्तविक प्रशंसा तो आत्मा के गुणोकी प्रशसा है। शरीरकी प्रशसासे आत्माकी कोई प्रशंसा नही होती एक गुण अगर आत्मदर्शनका आ जाय कि मैं क्या हुं, में एक चैतन्य ज्योति सामान्यरूप आत्मा, और कुछ मै नही हूँ। तो उसकी सारी विकल्प बाधायें दूर हो जायेंगी मैं ज्ञानी हुँ, ज्ञानमात्र हूँ। जानन देखनहार हु जानन देखन मेरा कार्य है, इसके अतिरिक्त मेरे लिए कोई कार्य नही

है तो ज्ञाता का व्यवहार चलेगा उससे अगर अपने आपको मानें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ तो ज्ञातोरूप व्यवहार चलेगा। और अपनेको माने कोई कि मैं अमुक रोजिगार वाला हूँ तो उस प्रकारका विकल्प करेगा। जैसी अपने आपमे श्रद्धा करता है उसके अनुसार अपने विकल्प चलाता है जीवमे यह खासियत पायी जाती है। देखो भैया अपने को अगर शान्त बनाना है, संसारके सकटोंसे छूटना है तो अपने आपके सही स्वरूपकी श्रद्धा लावो। आत्म-श्रद्धा बिना धर्मका कोई कदम नही चल सकता। आत्मश्रद्धा करो। मैं वह हु जैसे कि सब जीव हूँ। मैं सब जीवोंसे विलक्षण अधिक कुछ नहीं हूँ। मैं हूँ चेतन्यस्वरूप जैसे कि सब हैं। तो देखो उसे क्रोध न आयगा मान न होगा, छल कपट न होगा। लोभ न आयगा। जिसको आत्मदर्शन हुआ, जिसने अपने आपके सच्चे स्वरूप की पहिचान की वह क्यो क्रोध करेगा दूसरेपर ? जानता है कि क्रोध करने से खुदका विगाड़ है और क्रोध क्यो किया जाता ? वह भी एक परमात्मस्वरुप है। उसने क्या विगाड किया है ? उसका कोई सनर्थ नही किया दूसरे ने। तो ज्ञान एक ऐसा अद्भुत तत्त्व है कि इस ज्ञानकलाके बलसे यह जीव सुखी शान्त हो जाता है। देखो जीवन मे शान्त रहनेकी कला हो नम्रता से रहनेकी बोलनेकी प्रकृति हो, छल कपट लोभसे दूर रहे, एक भगवानसे लौ हो, अपने स्वरूपमे मग्न हो और उसकी आराधनामे रहे तो उसे सर्व वैभवोकी प्राप्ति होगी, ऋद्धि सिद्धि उसके ही होती है जिसने अपने आपके स्वरुपका सही निर्णय किया है। यह हूँ मैं ज्ञानमात्र

कषायोंका भार दूर करनेकी आवश्यकता—देखिये धर्मप्राप्तिके लिए कितनी ही कुर्बानी करनी होगी। कोई विषय कषाय करतो रहे और मोक्षके जानेकी बात सोचता रहे तो वह त्रिकाल असम्भव है। वलिदान कर दो अपने कषाय परिणामोका यही महत्व है, वडप्पन है। इसमे क्या कि किसी समय कोई घटना पाकर क्रोध आता हो और क्रोध न आने दो, अपने मनको समझा लें तो यह एक बहुत बडा भारी पौरुष है। क्रोध करना कायरेका काम है और क्रोध तजना शूरोका काम है। भोग भोगना कायरोका काम है और भोग तजना शूरोका काम है। तो यह सब कषायोका त्याग विषयोका त्याग मूलतत्व ही बन सकता है जब अपने आपका ऐसा विश्वास हो कि विषय कषाय रहित मेरा स्वरुप है। उस स्वरुपका आदर हो तो कषायें न जगेंगी। अपने आपकी बात अपने आपके समझमे न आये यह तो एक अन्धेरा है और यह अन्धेर मच रहा है अपने भ्रमसे, अज्ञान से। भ्रम मिटा कि सब स्पष्ट ज्ञान होने लगता है। भैया, एक घुडसवार था, तो वह

घोडेपर चला जा रहा था, उसे रास्तेमें एक बुढ़िया मिली, जो अपने सिर पर ठाठरी लादे हुए थी। तो बुढिया बोली भाई मेरी गर्दन दुःख ने लगी है तुम मेरी गठरी रख लो घोडे पर। तो वह घुडसवार बोला जा तेरी गठरी रखने के लिए मेरा घोडा नही है। आगे गया तो एक फर्लांग की दूरी पर वह घुडसवार सोचने लगा कि मैंने बड़ी गल्ती की। उस बुढिया की गठरी मे कोई वजनदार वस्तु है तभी तो वह रखनेको कह रही थी। यदि मै रख लेता और घोडेको भगा ले जाता तब तो वह वस्तु मेरी हो जाती। यह सोच कर वह घुडसवार बुढ़ियाके पास लौट आया और कहा ऐ बुढिया मां लावो मैं तुम्हारी गठरी रख लूंगा। तो वहां वह बुढिया बोली अब मैं तुम्हे अपनी गठरी न दूंगी। तुमने मेरे मनकी बात जान ली और मैने तुम्हारे मनकी बात जान ली। अगर भ्रममे रहे और अपने आपको सत्य बोध हो तो समझ लो कि सबकी यथार्थ बात हम जान सकते है। मायाचार छल कपट, बस इस व्यवहार ने ही तो हम आपको बहका रखा है। बोझ है हम आप पर तो कषायोका है। देखो जब कोई शल्य हो जाती है, मानो कोई बात मे फस गए, हजार पाच सौ का नुकशान होनेको है तो वह जो बोझ लद जाता वह किस चीजका बोझ है? जीवमे किसी परवस्तुका बोझ लद सकता है क्या? जैसे लोग कहते कि हमपर बच्चोंका स्त्री का घरका दूकानका बोझ है। बनलाओ आपपर दूकानका बोझ है क्या? आत्मा तो आकाशकी तरह अमूर्त है। उस पर किसी भी पुद्गलका बोझ नही लद सकता। किसी भी बाह्य वस्तुका बोझ नही लद सकता। बोझ लगता है तो इसपर अपने कषाय विकल्प का ही लद सकता है। जैसे लोग कहते है कि आस्तीनका सांप जैसे बाह मे आस्तीनमे साप है तो बडे आरामसे वहां पडा है और इस ले, ऐसे ही हमारे जो ये विषय कषायके परिणाम है तो मेरा धात करनेके लिए यों है जैसे कि आस्तीनका सांप

भावनानुसार प्रवृत्ति—सब जीवोपर क्षमा करे। कोई जीव हमारा बिगाड नही कर सकता। जो मनमे रहता है कि हमको इसने ऐसा दुःखी किया, मेरे साथ इसने यों बर्ताव किया, अरे मुझे दुःखी करने वाला नही, मेरे अन्दर जो ये विषय कषाय रूपी सर्प है ये ही हमे दुःखी करते, दूसरा कोई नही दुःखी करता। अपनेको शान्त बनानेकी भावना हो तो भीतरमे ही कोई सही निर्णय बनालो कि निग्रह अनुग्रहसे शान्ति नही मिलने की। अपने ही अन्दर दर्शन करो अपने आपके अन्तस्तत्त्वका। यह ही हूँ मैं, और कुछ नही हूँ। श्रद्धाका ही फल मिलता है, गप्प करनेसे कुछ लाभ नही मिलता। अगर संकल्प कर लिया श्रद्धा हो गई, एक दृढ निर्णय कर लिया कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, और कुछ नही हुं तो उसे शल्य, न सतायगी, मेरा काम जानने का है। जाननेके सिवाय और कुछ मेरा काम

नही। क्रोध, मान, माया, लोभ ये मेरे कुलसे बाहर की चीजें है, मेरे कुल की रीति नही है कि कषाय करू। जरा ऐसा भाव तो भरो, कपायमे फर्क आ जायगा। जैसा सोचेंगे वैसी ही बात बनती है। जैसी अपने मनमे भावना बनायोगे वैसी ही बात बन जाती है। बरुवा सागर की एक कथा है कि कोई एक सेठ और एक बाबू जी मे झासी मे मुकदमा चलता था। तो बाबू जी के पास कोई अच्छा साधन न था, वह वकील कहां से करें। और भी मुकदमे का सारा खर्च न कर सकता था। सेठ तो वकील भी कर सकता था, मुकदमे के पीछे बडा धन भी खर्च कर सकता था। जब बाबू जी ने जाना कि जीत का पक्ष तो मेरा है पर मे किसी तरहसे सेठ पर काबू नही पा सकता। तो उसके मनमे क्या बात आयी कि मुकदमे की जो पहली तारीख थी उस दिन झांसी जाना था सेठ को, बाबू जी ने तागे वाले को एक दो रूपये दिया और कहा कि देखो अमुक सेठ इस रास्तेमे आयगा, उसे अपने तागेपर बिठा लेना, वह जो कुछ भी दे उससे ले लेना, मागना कुछ नही, रास्तेमे उससे यह कहना कि क्या बात है सेठ जी, आज आपके कुछ हरारत है क्या? आपका चेहरा बडा उदास है, आपकी तबियत खराब है क्या? यही बात बाबू जीने कुलियो से कह दी, यही बात टिकट देने वाले से भी कह दी। यह सब इन्तजाम बाबूजी ने पहिले ही कर दिया। जब सेठ उस रास्तेसे आया तो वह तागावाला झट उसके पास आया। जब सेठ ने कहा भाई स्टेशन तक ले चलनेका क्या लोगे? ४ आने · दो आने लोगे? . · अच्छा चलो। तो जब सेठ उस तागे पर बैठा हुआ जा रहा था तो वहा कुलीनें कहा—सेठजी क्या बात है? आपका चेहरा आज कुछ गिरा सा मालूम होता है, आपके चेहरेमे कुछ हरारत मालूम होती है। आप की तबियत खराब चल रही है क्या? सेठ तांगे वालेकी यह बात सुनकर बडा हैरान हो गया। आगे गया तो कुलियो ने भी वही बात कही, टिकट बांटने वाले ने भी वही बात कही। अब तो सभी के द्वारा वही सुनकर सेठका चित्त बिगड गया, सचमुच बीमार हो गया उस दिन वह स्टेशन से ही घर वापस लौट गया। मुकदमे मे न गया। वह तारीख ऐसी थी कि यदि कोई न जाय तो उसके विरूद्ध फैसला होगा। आखिर सेठ मुकदमा हार गया। तो जो जैसी भावना बनाता है उसको वैसी बात बन जाती है।

सर्व प्राणियोको आत्मवत देखतेमें पाण्डित्य—बहुत से लोग किसी बीमारके पास जाते है तो उसके सामने ऐसी बात कहते हैं कि जिससे उसके अन्दर और घबड़ाहट बढे। वे तो समझते हैं कि हम सहानुभूति दिखा रहे मगर होता है उसका उल्टा। अरे उस बीमार व्यक्तिको तो धैर्य दिलाना चाहिए—जैसे अरे तुम ठीक हो जाओगे, किसी तरहकी

चिन्ता न करो : .: । मित्र वास्तवमे वही है जो अपने मन, वचन, कायकी ऐसी चेष्टा करे कि जिससे दूसरोको पाप कार्योसे दूर होनेकी प्रेरणा मिले और जिसे देखकर सुनकर दूसरे जीव प्रसन्न हो । सब जीवोको एक समान माने । नीतिहै, आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित । जो सर्वप्राणियोको अपनी तरह देखता है उसे कहते है पंडित । शान्त रहे, क्रोधन जगे । देखो जो ज्ञानी पुरुष होता है उसके क्रोध भी जगे तो भी उससे दूसरोंके अहितका कार्यनहीं हो सकता और जो अज्ञानी पुरुष है वह मित्र भी बन जाय तो भी उससे हानिकी सम्भावना रहती है एक कथानक आया है कि एक राजाने अपने सोते समयके लिए पहरेदार एक बन्दरको बनाया । बन्दर बडे समझदार होते है, भैया वह बन्दर बड़ा अच्छा पहरा करता था । एक तो वैसे ही बन्दरकी सकल देखकर लोग डर जाये और दूसरे उसके हाथमे थी तलवार । एक दिन राजाकी नाकपर एक मक्खी बार बार उसी जगहपर आ आकर बैठे । बदर उसे बार बार उडा देता था । यो जब कई बार उडाया और बार बार उसी जगहपर बैठे तो उस बदरको मक्खीपर क्रोध आया। उसने सोचा कि यदि मैं इस राजा की नाक ही उडा दूँ तो फिर यह कहा बैठेगी । यह सोचकर उसने तलवार उठाया और राजाकी नाक उडा दिया । तो भाई मित्र मूर्ख हो वह भी अधिक खतरनाक होता है । और, देखो एक अपभ्रंशमे बोलते है पंडित. शत्रुर्भलो न मूर्खों हितकारक । अच्छा अब पंडितकी बात सुनो एक चिरोंजाबाई जी थी जिन्होने हमारे गुरू श्री गणेशप्रसाद जी वर्णीको पढाया था । तो चिरोजाबाई की नन्दका नाम ललिता था । वह ललिता पढी लिखी न थी सो बाईजी ने कहा ललितासे कि तुम झाडा बुहारीका काम करते हो तो अगर कोई कागज नीचे पडा मिल जाया करे तो उसे उठाकर आलेमे रख दिया करो, न जाने उसमे क्या लिखा हो । अब एक दिन गल्तीसे एक कागज दरवाजेमे नीचे चला आया और बाई जी जैसे ही मन्दिरसे आयी और कागज पडा देखा तो उसमे भक्तामरका एक श्लोक लिखा था । अब उन्हे ललितापर बडा गुस्सा आया । वह बडी धर्मात्मा थी उन जैसा होना बड़ा कठिन है आज के समयमे । वह बडी सरल थी और बडी प्रतिभा वाली थी मगर उन्हे उस समय ललितापर गुस्सा आ गया, तो ऊपर अटारीपर चढ़ो और ललिताके झोटा पकड कर गुस्सामे

है वह जानता है कि किसीका क्या बिगाड करना ? कोई परिस्थिति बन गई तो तुरन्त मनमोटाव हो गया, इतनी बात है मगर भीतरमे भलाईकी बात नही भूल सकता ज्ञानी, क्योकि सब प्राणियोमे अपने आत्माका स्वरूप देखता है। देखो बात बातमे स्थापना मिलती है। स्थापना ही तो की जा रही है, जैसामैं वैसा यह। स्थापनाकी ही तो बात है। जो दूसरे जीवको अपने स्वरूपकी तरह देखेगा उसे विषय कषायोकी आपत्ति न सतायेगी।

अपने प्रशस्तभावसे अपना उत्थान---देखो लोग कहते है कि यह बहुत सुन्दर है, बहुत अच्छी सकलका है। मगर सुन्दर कौन है बतलाओ ? किसी पुरुषका या स्त्रीके कोई सकल रूपकी बात कहे तो क्या उसके भीतर हड्डी चाम आदि नही है ? जरा उस ऊपर चमडीके अन्दरकी चीज ध्यानमे तो लावो तो सारा पता पड जायगा। लेकिन जब ऊपरसे राग भाव है तब यह सुन्दर लगता है और जब रागभाव नही उठता तब सुन्दर नही लगता तो बाहरमें कोई न सुन्दर है न असुन्दर। आ का रागभाव सुन्दर बना देता और द्वेषभाव असुन्दर बना देता। जो चक्की चल रही है वह अपनेमे चल रही है। जो कुछ बीत रही है वह अपने आपमे बीत रही है। अपना भला करना हो, इस जीवनमे भी अपनेको सुखी रखना हो, परलोकमे भी अपनेको सुखी बनाना हो तो कषायो का परिहार करो अभी कषाय मूलसे नष्ट तो न होगी। मगर इन कषायोपर विजय प्राप्त करो। मुझे नही करना है क्रोध क्रोधके कारण मैं तुरन्त दुखी होऊगा और जिससे बोलेगे वह भी दुखी हो जायगा। शान्त रहनेमे कितना आनन्द आप पायोगे और क्रोध करनेमे तुरन्त अशान्त। दूसरेकी प्रशसा करनेमे आप तुरन्त आनन्द पायोगे और दूसरेकी निन्दा करनेमे आप आनन्द न पायोगे। मोहसे भले ही कोई आनन्द मानता हो। गप्पाष्ठकमे बैठनेमे तो राजमे १२ सजा देते है। भले ही ऐसा करे, लेकिन उस गप्पमे होता क्या हाँ बस दूसरोकी निन्दा करना। जहा किसी न किसीकी निन्दा भरी बात हो वही गप्पवाद कहलाता है। अब देखो किसीकी निन्दा करते हैं, किसीको गाली देते है तो भीतरमे कई घटे पहिलेसे सोचना पडेगा, विकल्प करना पडेगा, एक हिम्मत बनानी पडती है, क्योकि वह अन्यायकी बात है। तो पहले अपनेको दुखी कर डालेगा तब कही वह दूसरेकी निन्दा कर सकेगा और अगर किसीकी प्रशसा करे तो बडी प्रशसासे बोल सकते। और, जो सुनेगा वह भी खुश हो जायगा आपको हाथो उठा लिया जायगा। तो देखलो जो द्वेषकी बात है, उसके करनेमे कितना विकल्प मचाना पडता है बहुत पहलेसे। तो बताओ उस कामसे क्या फायदा, जिससे खुदको भी दुख हो और दूसरेको भी दुखी होना पडे ? अपना सद्व्यवहार बनाये। क्या है। अरे भाई बडे से तो हर एक कोई दब जाता है। बडे को तो

जो चाहे क्षमा कर देता, क्षमा भी क्या करता ? वश नही चलता मगर अपनेसे छोटोको क्षमा करे, अपनेसे छोटोको आदर दे, अपनेसे छोटोको साथ लेकर चले तो उसे कितनी प्रसन्नता होती है ? कितना आपका प्रशस्त भाव भरा रहता है । आपकी सही करतूत बिना दूसरा आपको कोई बडप्पन देने वाला नही । क्षमाशील बनो । यह बात तब बन सकती है जब अपने आपके स्वरूपका दर्शन हो ।

स्वरूपदर्शन बिना परमार्थविश्रामकी असंभवता—जब तक अपने स्वरूपका ठीक परिचय नही है तब तक बाहरमे करने करनेके विकल्प लगाये रहते कि मुझे यह करना है । यह काम करनेको पड़ा है, मगर यह तो सोचो कि काम करनेसे शान्ति मिलती है या काम न करनेसे शन्ति मिलती ? इसी बातपर विचार कर लो । मेरेको यह काम करनेको पडा है, यह करनेको पडा है, जब तक यह विकल्प रहेगा तब तक शान्ति न मिलेगी । देखो हम आत्माकी बात कह रहे कि बाहरी पदार्थ हमसे अत्यन्त जुदा है । उसमे हम कोई परिणति नही कर सकते । हम केवल अपने परिणाम कर सकते, दूसरेका परिणाम नही कर सकते । तो जब यह ध्यानमे आता है कि बाहरी पदार्थ अपना उत्पाद अपना व्यय कर रहा है उस प्रवृत्ति को मैं करने वाला नही हूँ तो उसको स्वतन्त्रताका वोध होता है, मेरे करने को कुछ काम नही रहा कृतकृत्य है ऐसा भीतरमे बोध होता है तो उससे शान्ति मिलती है । एक आप मकान बनवा रहे हैं तो जब तक वह मकान नही बन जाता तब तक आपको कितनी आकुलता रहती है । परमिट मगाना है, इटे लाना है, लोहा लाना है, इंजीनियर बुलाना है कामके समय भी सोचते आरामके समय भी सोचते । और जब मकान बन जाता है तो उस समय आपको आराम मिलता है या नही ? मिलता है । क्यो ? यह ध्यानमे आया कि मेरे को अब मकान बनानेका काम नही पडा इस रयालका आनन्द आया । खूब भली भाति विचारपूर्वक सोचो, उस पुरुषको मकान बनानेका आनन्द नही आया किन्तु मेरेको अब मकान बनानेका काम नही रहा इस कारण आनन्द आया । अब जो भाव मकान बननेके बाद किया वही भाव अगर मकान बननेसे पहिले करले तो क्या वह खुश न होगा साधुजन ज्ञानीजन पहलेसे ही यह भाव करते है कि मेरेको दुनियामे कुछ करनेको नही पडा है अपने भाव सुधारना अपनी दृष्टि बनाना, यह ही काम मेरे करनेको है बाकी कोई काम मेरे करनेको नही पडा । तो देखो अपने आप मे सुखी शान्त हो गया कि नही ? तो भाई विरागतामे आनन्द आता । है, रागमे आनन्द नही आता राग । त्यागि पहूँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम राग त्यागकर मै अपने धाममे पहुच जाऊ, मै अपने ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वमे पहुच जाऊ तो फिर वहा आकुलताका कोई काम नही रहता आकुलता वहा होती है जहा यह बात बैठी है कि यह मै हूँ, यह मेरे करनेका काम

है, मेरेको काम करना पडेगा ऐसी बात कर्तृत्वकी भोक्तृत्वकी अहकारकी ममकारकी बात चित्तमे समायी हो तो वहा अवश्य ही कष्ट होगा। तो कष्ट दूर होनेकी बहुत सरल विधि है, करते बने तो करलें, केवल ज्ञानसाध्य बात है। आत्मानुशासनमे लिखा है कि हे सुकुमार पुरुष यदि तुमसे तपश्चरणका कष्ट नही किया जा सकता है तो मत करो, किन्तु कषाय वैरियोको तो जीतना ज्ञानसाध्य है सो ज्ञानसाध्य यह कार्य यदि नही कर सकते तो यह तुम्हारी मूढता है।

स्थापना निक्षेपके प्रकारोंपर विहगमदृष्टि—७ तत्त्वोका व और भी अन्य पदार्थोका लोकमे व्यवहार किस तरह होता है, कैसे लोग उसके बारेमे समझते है, उसका उपाय क्या है ? इस बातकी चर्चा चल रही है। नामस्थापना द्रव्य और भाव, इन चार निक्षेपो से पदार्थके प्रतिपादनका व्यवहार होता है जैसे जानते है नाम न रखे तो व्यवहार कैसे चलेगा, किसको बोलना किसको क्या समझाना ? तो नाम निक्षेप तो पहले ही आवश्यक हो गया। फिर स्थापना न हो तो कैसे परिचय हो कि यह वही है। देखिये स्थापना दो तरह से समझना है एक तो समझना है साकार ढग से और एक समझना है जो नित्यप्रति हमारे प्रयोगमे आता है उस ढग से अथवा एक तभेद्भावस्थापना और एक अतद्भाव स्थापना भगवानके आकारकी तरह मूर्ति बनाकर उसमे यह मानना कि यह भगवान हैं यह है तद्भाव स्थापना और तास, ककड वगैरह अतदाकारमे बादशाह वजीर आदि की स्थापना करना अतद्भाव स्थापना है। अब जरा मुख्य करके निरन्तर प्रयोगमे आने वाली स्थापना देखो जैसे किसी पुरुषको देखकर यह निर्णय होता है कि यह फलाने चन्द है यह तो स्थापना हो गई। जान गए कि यह इसका नाम है। किसी पदार्थमे थाप देनेका नाम स्थापना है। तो जब पहिले नामनिक्षेप धर लिया गया सज्ञा जिसकी रख ली गई तब उसमे कोई स्थापना बनती हैं, और वह स्थापना दो प्रकार से है, देखिये प्रयोगके रूपसे तो सबमे स्थापना चलती है अन्यथा बात भी नही कर सकते। नाम जान लिया फलाने चन्द, यह तो नाम हुआ, अगर यह है फलाने चन्द, इस तरहका बोध न हो तो कोई काम चलेगा क्या ? जब स्थापना हो गई तो अब स्थापनानिक्षेपकी बात चल रही है। यह स्थायी स्वरूप ऐसा यो जो आरोपित है उसे स्थापित कहते है। जैसे वास्तवमे इन्द्र तो वह है जिसके देव आयुका उदय है जैसे स्वर्गके देवोका इन्द्र है यह भी इन्द्र है तो वास्तवमे इन्द्र वह है लेकिन किसी काठकी पत्थरकी मूर्तिमे इन्द्र की स्थापना करना यह कहलाती है स्थापना यह वह है, यह इन्द्र है, इस तरहकी प्रतिष्ठा हुई तो वह है तद्भाव स्थापना तो अब यहा देखिये कि जो मनमे कल्पना की है वह तो है भावइन्द्र और जो द्रव्य है जो साक्षात् देव

आयु वाले की जाति वाला है और एक मूर्तिमे उस इन्द्रको स्थापना की तो यह हुई उसकी प्रतिष्ठा। तद्भावप्रतिष्ठा, अतद्भाव प्रतिष्ठा।

नामनिक्षप व स्थापनानिक्षेपमे अन्तर.—देखो नामनिक्षेप और स्थापना निक्षेपमे अन्तर क्या है? किसी का नाम भी धर लिया—यह महावीर और प्रतिमामे स्थापित करे यह महावीर, तो इन दोनो महावीरोमे अन्तर है। नामके महावीरमे तो आदर नही है। वह तो मात्र एक नाम रख लिया गया। नाम तो रख लेवे कोई महावीर और इसके कर्म हो बहुत खोटे तो वह नामनिक्षेपकी ही तो बात रही। पर मूर्तिमे महावीर स्वामीकी स्थापना की तो उस मूर्तिका आदर करते कि नही? तो स्थापनामे आदर होता है, नाममे आदर नही होता। जैसे लोकमे भी देखलो जैसे मानो कोई राजा है, राष्ट्रपति है, जिसका कि कुछ नाम है ना—जैसे कि कुछ नाम है ना—जैसे आजकल गिरि नाम हैं तो उस गिरिकी कोई फोटो हो और उसपर कोई कालिमा पोत दे या नीचे गिरा दे या जूता चप्पल मार दे तब तो यहा झगडा खडा हो जाता है ना, और मान लो यहा इसी मुहल्लेमे किसी लडकेका नाम गिरि रख दिया जाय तो उसे तो चाहे कोई लाठी मारे, चाहे नालीमे ढकेल दे फिर भी किसीको बुरा तो नही लगता। उसपर तो कोई देशद्रोहका अपराध नही है। और जो राष्ट्रपति है उसके फोटोपर कोई अविनय करे तो उसपर देशद्रोहका अपराध गाया जाता है। तो नाम और स्थापनाका अन्तर तो यही दिख रहा है। किसीका नामाधर दिया बर्द्धमान, तो भले ही नाम धर दिया, बच्चा है, उसे जो चाहे थप्पड मारे, कुछ भी करे, तो उसपर कोई बुरा मानता है क्या? बुरा तो नही मानता, और यदि कोई वीतराग जिनेन्द्र देव २४ वे तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रतिबिम्ब है उसपर कोई कुछ उपद्रव करे तो उसपर कितना विवाद खडा हो जाता है। तो स्थापना मे तो आदर है, नाममे आदर नही होता। नाम तो एक बात के लिए होता है।

वस्तुके परिच्छेदनकी व्यवस्थापक षड्खंड चक्र:—देखो एक थोडी सैद्धान्तिक विधिसे इतराभिमत बात कह रहे है जो लोग मानते है कि सारा जगत एक है, सत्स्वरूप है, अब उनकी ओरसे देखो चलो तो मानो एक सत्स्वरूप जगत कोई भी पदार्थ हो वह ६ बातोमे परखा जायगा—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, क्षेत्र और काल। ६ तरहसे परखा जायगा। जैसे यह घडी है तो 'घडी' नाम हो गया और केवल इस वस्तुमे घडीका नाम धरा यह स्थापना हो गई अब घडीमे आगे पीछेकी जो पर्याय समझमे आती उस प्रकार आरोप किया तो द्रव्य हो गया। घडीकी वर्तमान बात समझमे आती वह भाव हो गया

और घडी कितनी जगहको रोके है, घडीके जो निजी प्रदेश हैं वह क्षेत्र हो गया और घडी की वर्तमान स्थिति क्या है वह काल हो गया। तो एक कल्पनासे अवगत सत् जगत एक ही रूप है मानलो सद्रूप है तो उसकी परख जब हम ६ प्रकारसे करेंगे तो देखो उसमे ६ द्रव्योकी झाकी आ जायगी। नामसत्, स्थापना सत्। द्रव्यसत्, भावसत्, क्षेत्रसत् कालसत्। नामसत्—नामका काम है चलाना, नाम बिना कुछ चलता तो नही। जैसे लोगो ने देखा होगा कि जब बहुत सी महिलायें बैठ जाती हैं गान करनेके लिए, मगर कोई नही गाती तो वे कहती है—अरी जीजी, अरी बुआ, तुम नाम तो धरो मायने गीत उठाओ तो सही, हम फिर सम्हाल लेंगी। तो देखो नामका काम चलाना है। नाम न धरे तो क्या चलेगा? इतने सब भाई है, अगर किसी का कुछ नाम न हो तो बतलाओ व्यवहारका काम चल सकेगा क्या? कोई व्यवस्था बन सकेगी क्या? कुछ भी व्यवस्था नहीं चल सकती। तो नामका काम चलाना है। जो चलनेमे सहायक है उसे कहते हैं धर्मद्रव्य तो जब हमने नामकी विधिसे पदार्थको देखा तो हमे वहा धर्मद्रव्यकी झाकी हुई। स्थापना सत्–स्थाप देवे, फिट कर देवे तो ऐसा फिट करने वाला है अधर्म द्रव्य। चलते हुए कोई ठहर जाय। स्थापनासत् बोला तो उसमे अधर्म द्रव्यकी झाकी हुई। द्रव्यसत् बोला तो उसमे पुद्गल की झाकी हुई, द्रव्य, वस्तु, पिण्ड, गुण पर्यायका पिण्ड, पिण्डरूप देखा, द्रव्य, दृष्टि से। भावसे देखा तो जीवद्रव्य आया। क्षेत्रसत् मे आकाशद्रव्य आ गया और कालसत मे समस्त समय अर्थात् काल द्रव्य आ गया। तो ऐसे अतर्क्य और कल्पना की विधियो से परखा जाता है तो छह द्रव्य आगये। उस एकको परखनेको कला की बात कह रहे है। एक सत है, एक सत उसके इस तरह ६ रूप वर्तमान है, यह कहनेका प्रयोजन नही, किन्तु समझनेका प्रयोजन और सभी बातो का निर्णय इन ६ दृष्टियोसे होता है। उनमे से ४ ये निक्षेप है—नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भावनिक्षेप। तो नाम कुछ भी धर दो, आखिर एक परिचय ही तो कराना है और कभी कभी कोई कोई नाम जाति, गुण, कर्म आदिक की वजह से भी रखे जाते है। तो भी उसमें अन्य निमित्त नही होत और कोई निमित्त की बात ही नही मालूम होती। कोई नाम रखा जाता है। जैसे बहुत से नाम धर देते-टिक्कू, छिद्दू तो बताओ उनमे कौन सी खासियत थी? और, पशुओका नाम भी है कि जिनकी जाति है गाय, भैंस वगैरह, अब जिनके ये नाम धर दिया, उनमे स्थापनाकी बात चलती है। नाम धरे बिन स्थापना की बात नही चलती, तो नाम और स्थापना मे यह अन्तर है कि नाम मे तो आईन्दा आदत नही और स्थापना मे आदर अपमान की वृत्ति उठा करती है। एक बात, दूसरी बात यह है कि नाम धरा और परखा कि

इसका यह नाम है, यह तो एक दूसरा ज्ञान हुआ ना तो वहां स्थापना हो गई। तो जहा यह बुद्धि हुई कि वह यह है इसीको स्थापना कहते हैं।

निक्षेपविधिसे लोकव्यहार करनेकी सकलजवनप्रवृत्ति:—देखो पदार्थ के ज्ञान करनेकी तरकीबचल रही है। इस विधिसे हम जानते है और यह प्रयोग जीवनमें आता रहता है देखो जैसे कोई लोग अनेकान्तका खण्डन करते हैं तो अनेकान्तका (स्याद्वादका) खण्डन करने वाले स्वय अनेकान्तका आश्रय रखते हं, रात दिन रखते हैं, उससे वे अलग नही हो सकते, भले ही खण्डन करे, जैसे कौन नही प्रयोग करता लेन देन का ? किसीने किसीको कुछ रुपया उधार दिया और एक साल बाद उससे व्याजसहित लेता है तो बुद्धि मे दोनो बातें सम्भव है कि नही, यह वही आदमी है जिसको यह उधार दिया था, इस तरह समझमे आया ना। और, यह अब १२ वमाहका आदमी है। जिस दिन दिया था उसी दिन से जिस ढगमे थो उसीमे रहे और ये १२ महीने न आयें तो उससे कुछ लेन देन किया जायगा क्या ? अपरिणामी तत्त्वसे कुछ कभी लेन देन होता क्या ? रात दिनके व्यवहारमे लोग अनेकान्तका आश्रय ले रहे। बच्चे है, जवान हुए, बूढे हुए, अब माता बच्चे से बच्चे, जैसा प्रेम करती हैं। उस बच्चे के जवान हो जानेपर वह मां–बच्चे जैसा प्रेंम उससे नही करती। कुछ प्रेमतो रहता ही है। प्रेम क्यो रहता कि उसे यह बोध है कि यह तो मेरा वही बेटा है, और बच्चे जैसा ख्याल क्यो नही आता कि वहां अवस्था भेद हो गया। तो नित्य और अनित्य दोनो बाते सामने आयी कि नही। किसी मनुष्य का परिचय कोई करता है तो अनेक दृष्टियों से करता है। यह इसका मामा है, यह इसका चाचा है———यों सभी बातें समझमे आती हैं कि नही ? और कर रहे है अनेकान्तका उपयोग और वे अनेकान्तका खण्डन करे मगर अनेकान्तका विनाश तो नही होता। स्याद्वाद को मना कैसे कर सकते, नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चार निक्षेपोका बराबर प्रयोग करते हैं निक्षेपप्रयोग व्यवहारमे आता है, पर नही जानते तो मत जानो, प्रयोगमे तो आ रहा है। तो यह वह है, यह वही है, इस प्रकार स्थापना करनेका नाम है स्थापना द्रव्यनिक्षेप। निक्षेपका अर्थ है किसी निर्णयमे रख देवे। तो स्थापना निक्षेपसे यह सब समझा, फोटोमें कोई स्थापना होती है यह हमारा पिता है, यह हमारा गुरु है और कोई उस फोटोको पटक दे, नालीमे डाल दे तो बड़ा तेज झगड़ा हो जाता है। और उस नाम वाले आदमीको मानो कोई नीचे डाल दे तब तो कोई झगड़ा खड़ा नहीं होगा। तो स्थापनामें आदर अपमान, आशका, भावना ये सब रहते हैं। अनिवार्य स्थापना देखो जब नाम रखा जाता है तब किसी का दर्शन होने पर वहां स्थापना की जाती है, अन्यथा कोई

यह कहे कि किसीका नाम न भी रखा जाय, जिसका नाम नहीं जाना है, ऐसे पदार्थ को देखने पर भी तो तस्वीर या पुष्प आदिकमे यह वही है ऐसा ज्ञान हो जायो ना। तो बिना नामके तो स्थापना नही होती। वहा पर भी किसी न किसी तरह का नाम पहिले आया तब स्थापना हुई। नाम शब्द पहले आता है, इसी बातपर एक दर्शन स्वतन्त्र बना शब्दाद्वैत। एक भीटका ज्ञान हुआ तो उसमे भी और ट ये दो शब्द जरूर आ जाते है। कोई भी ज्ञान करे, कुछ भी परिचय बनाये तो नाम पहले आता है। तो जब नाम रखा तब जाकर प्रतिमा बनती है और स्थापना होती है।

आनिवारित प्रायोगिक स्थापना:—आनिवारित स्थापनाकी बातको प्रायोगिक स्थापनाके बारेमे ध्यानसे सुनना है कि हम जो अपने आपमे स्थापना किया करते है, मै बडा पुरूष हूँ, मनुष्य हूँ, साधु हूँ, त्यागी हू, अमुक हू, आदिक जो अपने आपमे जब किसी पर्याय की स्थापना बनाते है कल्पनामे उस थापनेमे इस जीवको सन्मार्ग नही मिल पाता और ऐसी स्थापना करो, ऐसा थापो, थापना के मायने बैठालना भी है। आव्हान करना भी है, स्थापना करना भी है। तो स्थापनाके मायने है बैठालना। तो अपने आपका जो निज निरपेक्ष परमपारिणामिक भाव चैतन्यस्वरूप ज्ञानमात्र शुद्ध ज्योति है उसमे अपने आपकी प्रतिष्ठा बनावे, यह हू मैं, और कुछ नही। देखो यदि अपने चैतन्य सामान्यमे आत्मप्रतिष्ठा हो जाय तो उसी समय दुःख दूर हो जाता है। कितनी बडी अचम्भेकी बात हो रही है ससार मे कि जो बात है, निरपेक्ष जो अपना स्वरूपमे अपनी प्रतिष्ठा नही कर पाता और पर्यायमे आत्मप्रतिष्ठा कर रहा है, यह मै हू, इस मेरे की शान घट न जाय और उसकी यद्वा तद्वा सभा भी होती है। एक राजा की सभा बैठी थी, राजा भी विद्वान था और उस सभामे आने वाले भी विद्वान आते थे। एक आन्तरिक सभा होती थी उसमे कवि लोग अपनी कविता बोलकर प्रसन्न रहते थे, दूसरोको प्रसन्न करते थे। तो एक बार राजा ने कहाकि ऐ कवियो आज कोई ऐसी कविता दिखाओ जिसने कभी देखी सुनी न हो, ऐसी विलक्षण कविता हो, तो एक कवि ने अपनी जेब से कोरा कागज लिया और कहा महाराज देखिये आप जैसी कविता देखना चाहते है वैसी तो यह कविता है, मगर यह कविता उसीको दिख सकेगी जो असल बापका हो। जब राजाने वह कागज लिया तो मन मे बडा गुस्सा आया क्योकि उसमे कुछ लिखा तो था नही, मगर उसने सोचा कि यदि मै यह कहुगा कि इसमे तो कुछ लिखा ही नही तो लोग समझ जायेगे कि यह राजा अपने असल बापका नही है। इसलिए कह उठा हा सचमुच यह बडी विलक्षण कविता है। अब राजाने पासमे बैठे किसी विद्वान कविसे कहा-जरा देखना कविता अच्छी है ना!? तो उसने

अपने हाथमे वह कागज लिया और देखा कि उसमे तो कुछ भी न लिखा था। उसे भी गुस्सा आया मगर सोचा कि यदि मै कहुँगा कि इनमे कुछ लिखा ही नही, तो इसमे मेरी हसी होगी, यह सोचकर उसने भी कहा—वाह—वाह बडी सुन्दर कविता है। इसी तरहसे वहा बैठे सभी विद्वान कवियोंने देखा कि सचमुच आज तो इस कविने सबको धोखा दिया, लिखा कुछ नही है, मगर यह सोचकर कि यदि कह दे कि इसमें तो कुछ लिखा ही नही है तो लोग समझेगे कि यह तो नकली बापका है असल बापका नही है, सबने कहा—वाह वाह यह तो बहुत ही सुन्दर विलक्षण कविता है। अब देखिये अपनी प्रतिष्ठामे आकर ही तो उस कोरे कागजमे कविताकी प्रशसा की। तो इस पर्यायमे आत्मरूपकी स्थापना करने की बडी—बडी विडम्बनाये है। इसीको कहते है मिथ्यात्व, मोह।

सम्यक् ज्ञान सहित आत्मप्रतिष्ठामें कल्याणलाभ—अरे भाई जो मै हूँ, मेरी जो सहज प्रकृति है उसमे स्थापना कर ली, यह है परमात्मा, यह है भगवान, जीवमे रहने वाला चैतन्यस्वरूप है, अपने आपमे शाश्वत प्रकाशमान स्वभाव है। परतु अपने सहजस्वरूप की प्रतिष्ठा न करके जो पर्याय है, विनश्वर है जो मेरी बन नही सकती उसको मान लिया कि यह मैं हूं तो ऐसी आपाकी स्थापना करनेका फल बहुत बुरा होता है, हम क्या कर रहे, सिवाय इसके कि कोई प्रतीति बनाये रहते है, बाह्य पदार्थोका हम क्या परिणमन कर सकें ? बाह्य पदार्थ तो बाह्य है, भिन्न है, मुझसे अत्यन्त जुदे हैं, उनका हम कुछ कर नही पाते। बस एक प्रतीति बनाये रहते है, कल्पना बनाये रहते, बस यही काम कर पाते हैं,। तो ऐसी प्रतीति करे जिससे कि शान्ति मिले। देखो नुकशानकी बात कुछ भी नही कही जा रही जैसे लाभ मिले वही बात कही जा रही है, जो सच है उसके जाननेमे कभी भी कोई हानि नही है , लाभ ही लाभ है। जो मिथ्या है, उसको अन्य रूप समझनेमे हानि है, धोखा ही धोखा है । और देखो—जीवकी प्रकृति भी ऐसी है कि वह सच समझनेकी आकाक्षा रखता है, बालक हो तो, जवान हो तो, वृद्ध हो तो, कोई घटना हो, कुछ बात हो तो उसमे सच—सच समझनेकी भावना रखते है। सच सच समझनेमे कही आपत्ति नही है। आत्माका सत्य है आत्माका निरपेक्ष चैतन्यस्वरूप अब उसमे आत्माकी प्रतीति करे कि यह हूँ मै, इसमे लाभ ही लाभ है, पापका क्षय होता है पुण्यरस बढता है, मोक्षमार्ग मिलता है, तत्काल शान्ति होती है और समाजमे भी बहुत व्यवस्था रहती है, आदर होता है शान्तिकी स्थापना होती है, धर्मके लिए यही कहा जा रहा है कि भाई अपने आपका जो यथार्थ स्वरूप है उस स्वरूपको मानले कि यह हूँ मै परमात्मास्वरूप, सिद्ध हो जायगा, सब ऋद्धि सिद्धि हो जायगी। एक सत्य समझ ले कि यह हूँ मै एक चैतन्यस्वरूप मात्र। कितना

बडा झगडा है मोहमे कि दूसरेसे लेन देन नही, सम्बन्ध नही, कुछ उससे आधार नही, सभी जीव चाहे लडका हो, लडकी हो, स्त्री हो, कोई हो, कुछ भी आधार नही, कुछ भी सम्पर्क नही, अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं, लेकिन चित्तमे जब यह बैठ रहा है कि मेरे सर्वस्व तो ये ही हैं तो वहा वह बडे अन्धकारमे रहता है, उसमे यह जीव अशान्त रहता है, व्याकुल रहता है, मार्ग ही नही मिल रहा, और एक सत्य बात समझ लीजिए कि सर्व जीव स्वतन्त्र है, सबके अपने अपने कर्म जुदे–जुदे है, सबका पालन पोषण उनका उनके कर्मानुसार होता है। कोई जीव किसी जीवका कुछ करने हरने वाला नही है, ऐसा पार्थक्य देखे, ऐसी स्वतन्त्रता देखें तो घरमे जब तक रहेगे तब तक कैसा शानसे रहेगे और कैसा शान्तिसे रहैगे, वहा भी आनन्द आनन्द आयगा। और, किसीने घर त्याग दिया हो और यह सत्य स्वरूप समझमे आया हो तो उसे वहाँ सत्य शान्तिका उन्नयन है ही। शान्तिका कारण एक सम्यग्ज्ञान है। सच्चा बोध करे, मोह हटावें।

मोहमें और रागमें अन्तर—देखो मोह और राग ये अलग अलग चीजे हैं। आप लोगोका हमारे प्रति लगाव है तो इसको मोह कहेंगे कि राग ? मोह न कहा जायगा, मोहमे अन्धेरा छाया रहता है, कुछ विवेक नही रहता, उसे तो राग कह सकते और किसी मोही को अपने पुत्रमे जो आशक्ति है प्रेम रहता है उसमे मोह है। तो मोह और रागमे अन्तर है कि नही ? मोहमे विवेक नही जग सकता यहा विवेक जग सकता, है। तो मोह छोडकर भी घरमे रहा जा सकता है, विवेकपूर्वक जब तक राग विद्यमान है रहा जा सकता है और उसकी व्यवस्था बहुत उत्तम बन सकती है। एक बात निर्णयमे रखे कि हमे तो मोह को त्यागना ही है। अभी त्यागना है, तुरन्त त्यागना है, और उसमे जरा भी गुंजाइस नही रखना कि थोडा मोह किसीसे रखे तो रहे स्त्रीसे या धनसे या बच्चोसे। यह आपको हानि की बात नही कह रहे। मोह त्याग देंगे तो उससे कही आपका घर नही बिगडता। आपके परिवारका जो सचालन है वह भी बिगडता बिल्कुल नही, बल्कि उत्तमता आती है, घरमे रहे निर्मोह होकर। तो अपने आपका जो निरपेक्ष सत्य सहज स्वरूप है उसमे अपने आपकी स्थापना करना वह है इस जीवके भलेका उपाय। और बाह्य पदार्थोंमे अपने आपकी इस स्थाप्य पर्यायमे आपाकी बुद्धि करे तो यह ही इस जीवके लिए है महान कष्ट और विडम्बना की बात, ज्ञानी ज्ञानसुधारस पीजो, प्रियतम ज्ञानसुधारज पीजो आप लोगोंने क्या कभी प्रियतम देखा है ? प्रियतम का ही बिगड करके बना है प्रीतमा-प्रीतम शब्दसे किसे कहा गया, लोक मे प्रिय वस्तुत. कौन है सो परखिये और स्वामीका सैंया रूप बिगड गया। सैंया कहो, स्वामी कहो, ये तो स्त्रियोके होते होगे स्वामी सैंया वगैरह ? अरे पुरुषोंके भी होते हैं, प्रत्येक

जीवके होते है। सैया भी प्रत्येक जीवके है, प्रीतम भी प्रत्येक जीवके है, मगर परवा नही कि मेरा सैया कौन ? मेरा प्रीतम कौन है ? पीतम जो जगतमे सर्व पदार्थोंसे प्यारा हो उसका नाम है प्रियतन प्रिय प्रियतर प्रियतम तो जो सवाधिक प्रिय हो उसे प्रियतम कहते है। तो आपको सर्वाधिक प्रिय चीज क्या है ? अपना आत्मा। और उसमे भी जो मिटने वाला है ऐसा पर्यायरूप नही किन्तु जो शाश्वत विशुद्ध आनन्दमय निज स्वभावरूप है, ऐसा अपने आपका जो स्वरूप है वह प्रियतम है। वह प्रियतम आपका आपमे है, स्त्री पर्यायमे रहने वाले जीवोका उनका उनमे है। और कीडा मकोडा आदिक पर्यायोके जो जीव है उनका उनमे है, और वह ही उनका सैंया है वह ही उनका प्रियतम है, वह ही उनका मालिक है। जो जिसका निज स्व है, स्वरूप है, वही उसका स्वामी है। मेरा स्व है ज्ञान-स्वरूप, मैं हूँ इस ज्ञानस्वरूपका स्वामी। जिसका जो स्वरूप है वही उसका स्वामी है दूसरा और कोई स्वामी नही हो सकता। तो ऐसे अपने स्वामीमे अपनी स्थापना करना कि यह हुँ मैं, अन्य कोई मैं नही हूँ, स्वामी बल्लभ पियतम यह सब अपने आपका जो अपनेमे विराजमान एक ब्रह्मस्वरुप है, शुद्ध चैतन्यमात्र वह है मेरा सब कुछ शरण, मेरा रक्षक मेरा हितकारी, मेरा सर्वस्व यही मात्र एक है। इसको भूल करके इस जीवने अनादिसे लेकर अब तक यहां कष्ट भोगा। जिसको भूलकर बड़ी दुर्गतिया पायी उसको भूलकर यह जीवन बितानेमें कोई लाभ है क्या ? महा अनर्थ होगा। आये तो हरि भजन को ओटन लगे कपास ऐसी एक कहावत है ना। भाई इस नर जीवनमे आये तो थे हरि भजनको हरि मायने जो पापोको हरे पापोको कौन हरने वाला हे ? अपना आत्मा अपना सद्भूत शुद्ध ब्रह्मा तो आये तो थे ब्रह्मस्वरुपकी उपासनाके लिए मगर करने क्या लगे ! कपास ओटने लगे। देखो कपास ओटनेकी ही बात क्यो कही गई ? और बात क्यो नही कही गई ? तो देखिये कपास ओटना एक ऐसा बहूदा काम है कि कही दिनभर कपास ओटा जाय तो मुश्किल से ? किलो ओट पाता है। कपासके फलोसे पहिले कपासको बहुत धीरे धीरे अलग किया जाता है फिर उस कपासको रहटामे ओटा जाता है तो यह काम एक ऐसा है कि जिसके करने मे समय तो अधिक लगता है पर फल कम मिलता है। जैसे ओटा तो दिन भर मगर मुश्किलसे १ किलो ओट पाया। इसीलिए कहते है ओटन लगे कपास आये तो थे निज आत्मारामकी उपासनाके लिए और करने लगे विषय कषायोकी सेवा तो आप यह बतलावो कि इस नर जीवनका लाभ क्या लिया ! जों मिटने वाला है जो मेरेसे भिन्न है जो मेरे लिए शरण नही है, जो मेरी बरबादीका साधन बनता है। उसका मोह करना, उसका लगाव करना इससे बढकर और मूढता क्या कही जा सकती है ? अन्दरमे बिल्कुल स्पष्ट होना

चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूँ ज्ञानस्वरूपके सिवाय कुछ और नही उसीसे निरन्तर ज्ञान होता रहता है, ज्ञान प्रज्वलित रहता है, ज्ञान निरन्तर प्रकाशित रहता है यह ही मेरा व्यापार है, और कोई मेरा व्यापार नही और ऐसे इस विशुद्ध ज्ञानका अनुभव होता रहता है, मेरेमे बस यह ही मेरा कुटुम्ब है, यही भोग है, उपभोग है अन्य और कोई मेरा भार नही, ऐसी एक निजिकी निधिमे आइये।

आत्मदर्शन होनेपर विषयविषका परिहार व सत्यका आग्रह—पर खलो, इस समयसारके जाने बिना आज तक बडी बडी विडम्बनाये सही इस भवमे पूर्वभवमे जो आपके पिता हो गया माँ हो गई, स्त्री हुई, कोई हुआ उनका कुछ उठना है क्या ! आपको कोई आराम मिल रहा है क्या ? तो पूर्वभवके कुटुम्बसे मेरेको इस समय कुछ फायदा नही और देखो फायदा ही नही, मगर उनका जो पूर्वभवमे मोह बस आया था उसके कारण यह वासना संस्कार ऐसा लगा कि निरन्तर बेचैन रहना पडता तो उल्टा नुकसान ही हुआ, तो ऐसे ही समझिये कि इस भवमे भी जो समागम है धन वैभव स्त्री पुत्रादिक इनके मोहमे इनके लगावमे आत्मा पायगा क्या ? अगले भवमे जाकर यह आत्मा पाप्त क्या कर लेगा ? कुछ भी नही कर सकता और उलटा नुकशान ही होगा। तो भाई नुकशान वाली बात अब न करें आत्मप्रकाश ले अपने आपमे अपने आपकी स्थापना करें यह हु मे अन्य कुछ मैं नही हूँ ऐसी आत्मामे आत्मबुद्धि हो तो इसका सारा नक्शा पलट जायगा। ज्ञान होते ही सर्व बोध हो जायगा। जब तक नही है ज्ञान भले ही विषय विषमें प्रीति जग रही थी। आत्मदर्शन होनेपर अन्तस्तत्त्वका अनुराग उमड जाता है। जैसे कि किसी सेठका लडका नाबालिग था। सेठ तो अपनी कई लाखोकी सम्पत्ति छोडकर मर गया सरकारने क्या किया कि उस सेठकी सारी जायदाद कोर्ट कर ली और सेठके उस नाबालिग बेटेको सरकार ५००) माहवार भेजने लगी। उसकी सेवाके लिए एक नौकरानी भी रख दी। जब वह बालक कुछ बडा हुआ तो सरकारके बडा गुण गा रहा था अहो सरकार बडी दयालु है वह घर बैठे मुझे ५००) माहवार भेज रही है। उसे अभी तक अपनी लाखोकी निधिका पता न था। और जब वह १८-२० वर्ष का हुआ उसे अपनी कई लाखोकी सम्पत्तिका पता पड गया तो उसने सरकारको सूचित कर दिया कि मैं मुझे अब ये ५००) माह नही चाहिए अब बालिग हो गया हूँ। मेरी सारी सम्पति मुझे दी जाय। तो भाई बात यह कही जा रही थी कि जब सही ज्ञान हो जाता है आत्मामें आत्मबुद्धि जागृत हो जाती है तो इस जीवको सर्वबोध हो जाता है और द्रव्यकर्मके उपहारोको यह ठुकरा देता है एव अपनी निज निधिको पानेका सत्य आग्रह करता है।

नामनिक्षेपव स्थापना निक्षेपका उपसंहार—मोक्षशास्त्र का सूत्र चल रहा है" नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप इन चार निक्षेपोसे जीवादिक तत्त्वोका सम्यग्दर्शनका प्रतिपादन व्यवहार होता है। कोई किसीको समझाने चले तो कुछ नाम ही न हो तो क्या समझे। कौन समझाये किसे समझाये क्या समझायें ? तो सबसे पहिले आवश्यक है सम्यग्दर्शनकी बात कहना, जीवकी बात कहना तत्त्वकी बात कहना, तो नाम तो लेना ही पड़ेगा, तो नामके बिना कुछ नही चल सकता, इसलिए नामनिक्षेप तो अत्यन्त आवश्यक है। नामके बिना व्यवहार नही, नामके बिना परिचय नही, नामके बिना एक शब्द भी नही उठ सकता। तो नामनिक्षेपकी बड़ी आवश्यकता है और नामनिक्षेपसे लोकव्यवहार चलता है। स्थापनानिक्षेप, स्थापना किए बिना भी काम नही चलता। पुरुष मे इसका यह नाम है यो इसका यह नाम है यो इस नाम को स्थापना दिया यह भी स्थापना है, क्योकि कुछ भी बात कही जा रही हो बात बातमे स्थापना चलती रहती है वह यही है। जिसका ऐसा बोध हो कि वह यही है वह स्थापना है। जैसे मूर्तिको यह पार्श्वनाथ ही है यह वर्द्धमान ही है, इसतरह प्रतिमामे जो स्थाप किया यह स्थापना हो गई। ऐसी स्थापना होवे तो वह स्थापना कहलाती है।

द्रव्यनिक्षेपमें अनिवारित प्रक्रियाकी उद्बोधकता—अब द्रव्यनिक्षेपकी बात कह रहे है। द्रव्य किसे कहते है ? जो स्वतः नवीन पर्यायके अभिमुख हो उसे द्रव्य कहते है और फिर उसका लोकव्यवहार करना द्रव्यनिक्षेप है। देखो दुनियामे जितने भी पदार्थ है ? वे पदार्थ अपने आपमे ऐसे दौडे जा रहे है अपनी परिणति पानेके लिए कि बिजली क्या दौड़ेगी। जिससे यह द्रव्य पहले समयकी पर्यायके बाद अगले समयकी पर्यायको पानेके लिये एकदम दौडता है। द्रव्यका यह फर्ज है कि वह अगली पर्यायके सन्मुख रहे। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि थोडे समयसे आराम कर लिया मैंने अब कुछ समय तक परिणमन न करूंगा, तो ऐसा विश्राम द्रव्यमें नही मिलता। द्रव्यका स्वभाव है कि वह अगले समयमे पर्याय पाने के लिए प्रतिसमय तैयार रहता है अगली पर्यायमे अभिमुख होनेके लिए तो जो अगली पर्यायके लिए अभिमुख हो सो द्रव्य है और उसका लोकव्यवहार करना: बताना सो द्रव्य निक्षेप है जैसे कि आप जीव हैं, इस समय जो कुछ भी है अगली समयकी पर्याय पानेके लिए आप निरन्तर तैयार रहते हैं। बस आपमे अगली अगली बाते होती जाती है। । तो जो स्वत. भविष्यकी पर्यायके अभिमुख हो उसको द्रव्य कहते है। द्रव्यका लक्षण यद्यपि यह भी कहा—जैसे पहले पर्याय पाया वर्तमानमे पर्याय पा रहे, आगे पर्याय पायेगे, उसे द्रव्य कहते है लेकिन भविष्यकी पर्यायके अभिमुख जो है उसे हम कहते है, ऐसा

कहनेमे सबका अन्तर्भाव है। जो अगली पर्याय पानेके अभिमुख है वह द्रव्य है। देखो किसी भी पहली पर्यायसे पहले भी तो द्रव्यथा उसकी अभिमुखता तो पहिले थी ही। उसके पहिले भी तो भूत पर्याय थी, तो वहा भी यह स्वभाव था कि पर्याय पानेके अभिमुख है तो इसमे सब लक्षण गर्भित हो जाते है। दूसरी बात यह लोग कहते हैं कि गई सो गई अब आगे की सम्हालो। द्रव्यमे गुजर गया सो गुजर गया, अब जरा आगेकी देखो। प्रत्येक पदार्थ आगेकी पर्याय के अभिमुख रहता है। अब यह बात दूसरी कि हम आप बरबादीके अभिमुख रहे या उन्नतिके, यह तो अपने परिणामोकी बात है, मगर परिणमे बिना कोई नही रह सकता। नियमसे अगली पर्यायके तुरन्त अभिमुख है। यह अपनी एक विवेककी बात है कि हम अच्छे विचार करते है तो अच्छी पर्याय पायेगे, खोटा विचार करते हैं तो खोटी पर्याय पायेगे। सब भीतरी बातसे बात है। ऊपरमे कोई कुछ कर रहा हो मगर जैसा ऊपर कर रहा हो वैसा ही भीतरमे भी सद्भाव है तो उसका भला है। ऊपरमे मानो कोई व्रततप तो बहुत बहुत कर रहा पर भीतर मे कोई मोक्ष मार्गकी बात नही है और बात यह है कि हमारे बच्चे प्रसन्न रहें, घरके सभी लोग प्रसन्न रहे, इसलिए व्रत करना चाहिए, इस भाव से करे तो उसे सही लाभ नही है और कोई मुक्तिकी अभिलाषासे करे कि मेरा स्वभाव तो निराहार है, तो मैं अपने उस स्वरूपसे देखू ऐसी बात करे तो उसको व्रत तय सार्थक है।

सर्वपरिस्थितियोमें भावकी महिमा—सर्वत्र भावकी महिमा है वहो भगवानकी पूजा कर रहे और भाव खोटा हो, कहो दूकानपर बैठे हो और भाव प्रभुमे लग रहे हो। एक कथानक है कि कोई दो भाई थे एक बडा और एक छोटा। उस दिन थी पूजाकी बारी और उसी दिन रसोई के लिये लडकियोकी जरूरत थी। तब बडे भाईने कहा कि आज हम जगल से रसोई घरके लिए लडकिया तोडे लायेगे और तुम आज मदिरमे पूजा करके बारीका काम निपटा देना। सो बडा भाई तो गया जंगलमे लकडियां तोडने और छोटा भाई मदिरमे पूजन करने चला गया। अब लकडिया तोडने वाला तो सोचता है कि अरे हम कहा आज फस गये ? हमारा छोटा भाई तो प्रभुकी स्तुति कर रहा होगा, प्रभु का गुणगान करके आनन्द विभोर हो रहा होगा । और इधर वह पूजन करने वाला क्या सोच रहा था कि कहाँ हम आज फंस गये ? हमारा बड़ा भाई तो जगलमें घूम रहा होगा, जामुन आम आदिके वृक्षो पर चढ—चढकर फल खा रहा होगा, फिल्मी गाना गा रहा होगा । अब देखिये भावोकी ही तो बात है। जंगलमे लकडिया तोड़ने वाले ने तो पुण्यबध किया और पुजन करने वालेने पापबध किया। तो भावोके अनुसार होता है सब कुछ अगर अपना उद्धार करना हो तो अपने भाव सुधारो चाहे लेकिन धन जन वगैरहकी क्षति भी हो जाय, किन्तु

अपने भाव मत बिगडने दें। हमारे भाव अच्छे रहेगे तो पुण्य रहेगा, सम्पदा मिलेगी और अगर हमारे भाव बिगड गए तो पापबध होगा वर्तमानके ये समागम कितने दिन तक साथ दे सकेगे ? अपने भाव सुधारे रहे यह बात चाहिए। तो यह मैं आत्मद्रव्य सदा नाना पर्यायें होनेके अभिमुख रहता हूँ इसलिए द्रव्यनिक्षेपसे मैं कैसा हूँ ? अगले पर्यायमें पहुचूंगा ऐसा हूँ। जैसी अगली पर्याय होगी उस रूप अभेदको निरखते रहना सो यह द्रव्य निक्षेपका लोक व्यवहार है। यह बात कही जा रही है सैद्धान्ति दृष्टिसे। दृष्टान्तमे यह कहो जैसे पहले कोई कोतवाल था और अब वह रिटायर हो गया, कोतवाल अब नही रहा फिर भी उसे कहते है आइये कोतवाल साहब। तो यह बात आयी द्रव्यनिक्षेपसे। देखो द्रव्यनिक्षेप बिना भी किसीका गुजारा नही चलता। भविष्य का पर्याय कुछ तो चितमें रहता ही है।

भविष्य पर्यायोत्सुक्यत की मानव प्रकृति—भविष्यकी बात चित्तमे कुछ भी कहो तो यहां वह रह सकता है क्या ? सबके मनमे आगेकी बात है। बल्कि इतनी इतनी आगे की बात है कि जो करना भी न चाहिए उसकी भी बात चित्तमे रहती है। एक कथा सुनी जाती है स्मश्रु नवनीत की मूछ मक्खन की कोई एक मूछ मक्खन नामका व्यक्ति था। वह प्रति दिन श्रावकोंके यहां मट्ठा पीने जाया करता था। एक दिन मट्ठा पीनेके बाद उसने ज्योंही अपने मूछोंमे हाथ फेरा त्योंही उसके हाथमे काफी मक्खन लग गया। उसने विचार किया कि यदि इस तरहसे काफी घरोंमे मट्ठा पीकर मक्खन इकट्ठा कर लिया करूं तो कुछ ही दिनोमे तो मालोमाल हो सकता हूँ। यह सोचकर वह प्रतिदिन बहुत से घरोंमे जाकर मट्ठा पी आता था और अपने मूछोंमें हाथ फेर कर एक कटोरीमे मक्खन इकट्ठा कर लिया करता था। साल दो साल इस तरह करते करते उसके पास करीब १ किलो घी जुड गया। एक दिन जाडेके दिनोमे अपनी झोपडीमे बैठा हुआ आग ताप रहा था, ऊपर छीकेपर छीका डबला रखा हुआ था। आग तापते हुएं में वह कुछ इस ढंगका विचार करने लगा कि कलके दिन अमुक बाजारमे मैं इस घी को बेच दूंगा। जितने मे बिकेगा उससे फिर बकरी खरी-दूंगा। उस बकरी से बच्चे होगें, फिर दूध बेंच कर, बकरीको भी बेचकर गाय खरीदूंगा इस ही विचार धारा मे पडकर उसे कुछ निद्रा सी आने लगो। उसी जगह लेट गया। विचारधारा लगातार चलती रही हां तो गाय से फिर भैस खरीदूंगा, बेल लूंगा, फिर कुछ जमीन खरीद लूंगा, विवाह करूंगा बच्चे होगे। उन बच्चोमे से कोई बच्चा मानो कहने लगा कि चलो पिताजी मां नें खाने के लिए बुलाया है: :अरे अभी नही जाता दूसरी बार भी चर्चा हुई तीसरी बार फिर वही बात लडकेने कहा तो गुस्सा आया व लातफटकार कर कहा—अरे हट अभी नही जाता। उसकी लात लगी ऊपर टगे घी

के डबलेपर डबला नीचे गिरा, फूट गया घी आगमे गिर गया, आग जल उठी, वह चिल्ला उठा, लोग जुडे, वह झोपडीसे निकलकर चिल्ला रहा था अरे दौड़ो मेरे बच्चे मरे, मेरी स्त्री मरी, मेरे गाय बैल भैंस आदि मरे। लोग सुनकर हैरान हुए-पूछा-कल तक तो तुम मांगते थे-आज यह क्या कह रहे ? तो उसने प्रारम्भसे अन्त तक सारी बात कह सुनायी। वहा एक सेठ जी खडे थे, वह बोले अरे तू क्यो दु खी हो रहा ? तेरे वे कुछ थे तो नही ? तू कल्पनासे ही तो उन्हें अपना मान रहा था, वह सब तेरा ख्याल ही ख्याल तो था। तो वही खडे हुए एक पंडित जी बोले सेठजी यही हाल तो तुम्हारा भी हे। तुम भी तो व्यर्थ ही अपनी मूर्खता से दु खी हो रहे। तुम ख्याल ख्याल ही तो बनाते हो कि ये स्त्री पुत्रादिक परिजन, ये धन वैभव मेरे है, तो तुम्हारे कुछ नही, पर उनके पीछे तुम व्यर्थ ही ख्याल बना कर दु खी रहते तो यह तुम्हारी भी तो मूर्खता है। तो यह मन ऐसी दौड लगाता है कि जो असम्भव बात है उसे भी सम्भव करना चाहता है। तो भावी सिद्धिके लिए भी मन कुछ न कुछ जानना चाहता है कि क्या होगा ? जैसे मानो जिसे कही बाहर जाना है तो उसे ख्याल आयगा कि मैं मोटर से जाऊंगा, वहा से यो जाऊगा। मान लो हम प्रवचन कर रहे तो हमे यह ख्याल रहता कि इसके बाद यह कहना चाहिए, इसके बाद यह। तो यो सभी पदार्थ अपनी अपली पर्यायके लिए तैयार रहते है। एक समयका भी अन्तर नही रहता इसलिए इसे कहते हैं द्रव्य। लोक व्यवहारकी बात कही जाती है उसे कहते है द्रव्यनिक्षेप। तो द्रव्य-निक्षेपसे लोक व्यवहार होता है

द्रव्यनिक्षेपके भेद—यह बात मोक्षशास्त्रकी कही जा रही है। आप लोग रोज-रोज सूत्र जी का पाठ कर लेते है, अष्टमी चौदस को पढते हैं, व्रतके दिनोमे पढते हैं, पाठ तो पढ जाते है पर यह नही जान पाते कि उसमे क्या चीज बसी है। उसमे कुछ तत्त्व ग्रहण करनेकी बात तो तब बनेगी जब कि उसका अर्थ समझें, उसका भाव समझें। थोडा समय लगाये, थोडी हिम्मत बनाये तब समझ सकेंगे। यो ही बिना अर्थ समझे पढते जा रहे हैं तो उसका मर्म तो न मिलेगा। लोग तो ऐसा मानते कि जो इन दसो अध्यायोको पढले उसको तो एक उपवास का फल मिलेगा लेकिन ऐसा पढ़नेसे फल नही मिलता। और यो समझो कि यदि इस तरहसे पाठ करनेसे एक उपवासका फल मिलता है तो अर्थ समझकर भाव समझकर पढ़े तो उसे हजार उपवासका फल मिलेगा। जैसे बताते हैं कि जब राम रावणका युद्ध हुआ था तो बदरोने समुद्रको लांघ लिया था। तो लाघ लिया समुद्र इतने पर भी उन्हे इसका पता तो न पड सका कि उस समुद्रमे कैसे कैसे रत्न भरे पडे है। तो ऐसे ही पढ गया कोई सूत्र मगर उसमे क्या तत्व बसा है, यह बात तो न ध्यानमे आयी। तो

यहा बतला रहे द्रव्यनिक्षेपकी बात। वह द्रव्य होता है दो तरहका (१) आगमद्रव्य और (२) नो आगमद्रव्य। आगमद्रव्य की बात, तत्वकी बात, शास्त्रकी बात कोई जानता तो हो, मगर उपयोगमे न लेता हो तो वह कहलाता है आगमद्रव्य जैसे कोई १० भाषाये जानता है, वह एक भाषा पढ रहा, ९ भाषाओको उपयोगमे नही ले रहा तो वह ९ भाषाओका आगमद्रव्य भाषामे जाना कहलाता। ऐसे ही जो जीव आगमके तत्वको जानता है, पर उपयोगमें नही ले रहा तो वह कहलायगा आगमद्रव्य अब देखो इसमे पर्यायकी बात कैसे आयी ? जो आगामी पर्यायके अभिमुख हो उसे द्रव्य कहते है। वह अभी लगा तो नही, पर आगे लगेगा। जिसने शास्त्रको जाना वह इस समय नही लग रहा उसके उपयोगमे मगर जानकारी तो है, लग जायगा, आगे का पर्याय उसे ज्ञात है इसलिए उसे आगम कहते है, और नो आगम क्या है ? ये नो आगम तीन तरहके है-(१) ज्ञायक शरीर (२) भावी और (३) तदव्यतिरिक्त याने जानने वालेका शरीर, जो जानता है आगमको उसका शरीर शरीरमे रहने वाला जीव तो आगे जानेगा तो वह हो गया आगमद्रव्य वे ज्ञायक शरीर (३) तरहके होते हैं भूत, वर्तमान और भविष्य। भूत होते है तीन तरहके। च्युत, च्यावित व त्यक्त, एक तो वह जो समतासे शरीर छोडी जाय और एक वह जो सक्लेश से छोड जाय और एक यो ही छोडे। तो ऐसा यह ज्ञायक शरीर। और जो कुछ आगे जानेगा वह है भावी नो आगम। तदव्यतिरिक्त नो आगम कौन ? तदव्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यनिक्षेप कर्म और नोकर्म इन दो मे विभक्त करना यह सब नोआगमद्रव्य निक्षेप है। तो ये जितने पदार्थ बताये जा रहे है वे आगामी पर्यायके प्रति अभिमुख रहते है। यह बात सबके अन्दर पायी जाती है, जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब पूर्वपर्यायको नष्ट करके अगली पर्यायको पैदा करते और वे द्रव्यरूपसे स्वभावरूपसे सदा रहते हैं। जैसे जीव है तो उसने पहली तो नष्ट की। वर्तमान बन गया, यह पर्याय उत्पन्न की और अब आगे मनुष्य पर्यायको नष्ट करेगा, अगली पर्याय उत्पन्न करेगा और मैं वही का वही हूँ। जो पहिले था तो अब हुआ, सो ही आगे रहेगा। जिसे यह ज्ञान हुआ सो ही कल्याण की इच्छा करेगा। मे ऐसा भाव बनाऊ कि मेरा कल्याण हो जाय। अगर ऐसा भाव न बनाऊं तो आगे पर्याय बुरी मिलेगी। फिर पछतायेगे। अरे आगेकी पर्याय इससे तो अच्छी मिले। जैसी आज पर्याय मिली है उससे बुरी पर्याय यदि मिल गई तो हम बरबाद हो गए। देखिये जो द्रव्यनिक्षेपकी भावना रखता है उसके कल्याण की बात मनमे आयगी। अच्छा काम करे जिससे कि ठीक पर्याय हो। तो इनि प्रत्येक पदार्थमे उत्पाद व्यय-ध्रौव्य है,

सदा अनन्त भावी पर्यायोसे संयुक्तता—अब कोई दार्शनिक कहता है कि भावी

पर्याय को कोई पाता नही, क्योकि सब वस्तुवें क्षणिक है, सत् होने से क्षणिकवादी लोग मानते है कि आत्मा एक नही है शरीरमे सुवह तो और कोई आत्मा था, अब और हो गया, यो एक दिनमे करोडो आत्मा एक शरीरमे आ गए। ऐसा वोद्धोका कहना है। तो अब उनका यह कहना है कि जब द्रव्य आगे रहता ही नही तो द्रव्यका यह लक्षण कैसे घटिता होगा ? समाधान जो सत् है वह नियमसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। जो है उसमे कुछ परिणामन जरुर होना है और अर्थ क्रिया उनकी उनमे है। प्रत्येक पदार्थ मे क्रम और युगपत् दोनो विधिसे विशेपतायें पायी जाती है अर्थात् जितने भी पदार्थ है उन सवमे अर्थ क्रिया तव पायी जा सकती है जवकि वाह सदा रहे और पूर्व पर्ययिको विलीन करे व उत्तर्पायको प्राप्त करे देखो उत्पादव्यय ध्रौव्य विना कुछ भी चीज नही है, कोई मनुष्य है तो उसमे पहले वचपन है, वचपन मिटा तो जवानी आयी, जवानी मिटी तो बुढापा आया और बुढाप मिटातो नई पर्यायिमे आ गए। तो यह जीव पुरानी पर्यय मिटाता है और नवीन पर्याय पैदा करता जाता है, तो ऐसा यह सत् है तो यह द्रव्य हुआ ना। मै सदा रहने वाला हूँ। वही हुं, अन्यथा सतान न वन सकेंगे। जिस चाहे को एकदम मान लिया तो मै एक हूँ, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यय वाला हूँ, जब मेरा उत्पाद यय ध्रौव्य होता है तो हमे ऐसा करना चाहिए कि जिससे हमारी आगे अच्छी पर्यायि बने। यह सव एक अपनी-अपनी प्रतिभा की वात होती है। प्रतिभा है तो वह सम्यग्दर्शन पा सकता है। जव पशु पक्षियो को भी सम्यक्त्व मिल जाता है तो इसे न मिले ऐसी कौनसी वात है। आखिर मनुष्य है, इसकी कषाय मद हो, कल्याण की भावना हो, समागमोसे वैराग्य जगा हो, मुक्तिकी इच्छा हो, आत्म कल्याणकी भावना हो उसे सम्यक्त्व जगेगा, तत्त्वाम्यास करेगा, तत्त्वजानेगा, और इस पर्यायको ऐसे ही खो दिया विषय कषायो मे तो उसे क्या मिलेगा ? कुछ न मिलेगा। किसी सेठके चार वहुवे थी तो सेठने सोचा कि घर की व्यवस्था तो स्त्रियोसे बनती है तो किस बहूको भार सौपे घरका ? घरमे हुकुमत किस बहूकी चले और बाकी तीन बहुवे जिसकी हुकूमत से चले अगर चारो वहुओ की हुकूमत चलेगी तो घर चल नही सकता। उससे तो घर बिगड़ता है। जिस घरमे एक होगा हुकूमत करने वाला वह घर सुखी रहेगा। तो सेठने सोचा कि किस बहूको घरकी हुकूमत दी जाय ? तो उसने एक उपाय सोच निकाला। धानके८० दाने (छिलका सहित चावल) लिए और २०-२० दानो की चार पुडिया बना लिया। सबसे पहिले सबसे बडी बहूको बुलाया और कहा देखो बहू जी तुम हमारी यह पुडिया अपनी पास रखो, इसे हम जब मागे तब दे देना। बहू ने लेलिया और बाहर जाकर देखा क्या कि वे धानके २० दाने थे सोचा कि पिताजी तो अमानत के लिए कह रहे और यह भी कहा कि

जब मांगेंगे तब दे देना, तो इन्हे सम्हालकर धरने की क्या जरूरत ? जब मांगेगे तब इतने दाने उन्हे दे देगी, यह सोचकर उसने वह पुडियायो ही बाहर फेक दिया। सेठने उससे छोटी बहू को बुलाया और कहा बहूजी तुम यह पुडिया अपने पास अमानत के रूपमें रखो, जब हम मागे तब दे देना। उसने भी पुडिया खोलकर देखा तो उसमे धानके २० दाने थे। सोचा कि इन्हे मैं सम्हालकर कहां रक्खू। इन्हे चोखकर देखलू जब पिताजी मागेगे तोऐसी ही स्वाद वाले बीस दाने उठाकर दे दूगी। यह सोचकर उसने उनको दांतो से कुचल कर चबाकर देखा, देखिये इनने तो कुछ बुद्धि भी लगाया, सोचा कि जब पिताजी मागेगे तब मै इसी तरह के स्वाद वाले दाने दे दूगी। सेठ ने अपनी तीसरी बहूको बुलाया और कहा बहूजी हमारी यह धरोहर अपने पास रखो, जब हम मांगेंगे तब देदेना। उस बहू ने खोल कर देखा तो उसमे धान के बीस दाने थे। सोचा कि सेठजी कोई मूर्ख तो है नही, उन्होने कुछ सोचा जरूर होगा, इसलिए उस पुडिया को तिजोड़ीमे रखकर सुरक्षित करदेना चाहिए यह सोचकर उसने उस पुड़िया को ज्यो का त्यो तिजोड़ीमे धर दिया। अब सेठने सबसे छोटी बहूको बुलाया, उसे भी वह पुडिया देकर कहा देखो बहूजी तुम यह पुडिया अपने पास अमानत रूपमे रखो, जब हम मागे तब देदेना। जब उस बहूने वह पुडिया खोलकर देखा तो उसमे धानके बीस दाने थे। उसने अपनी बुद्धिसे सोचा कि इसमे कुछ खास बात अवश्य होगी। अब उसकी प्रतिभा देखिये कि उसने उन बीस दानो को जमीन मे एक जगह बो दिया, उनसे मानो बीस पौधे बन गए। उन बीस पौधो मे कोई ४–५ पौधे, और उसके हर पौधे के साथ निकली हर पौधे में एक-एक बाली आयी। हर बालीमे करीब ४०——५० दाने आये। इस तरह से करीब दो हजार दाने एक वर्ष मे ही पैदा हो गए। दूसरे वर्ष उन सब दानो को बोदिया फिर तो दो तीन गाडी भर धान पैदा हो गए, उन सब दानो को भी बो दिया तो अब बीसो गाडी धान पैदा हो गये। अब तीन वर्ष के बाद सेठने अपनी सभी बहुओ से अपनी धरोहर वापिस करने को कहा। सबसे पहलेबडी बहूको बुलाया और अपनी धरोहर मागा। तो उस बहूने धान के बीस दाने कही से उठाकर पुड़िया बनाकर सेठ को दे दी। और यह भी बता दिया कि हमने तो उन्हे फेक दिया था। तो वहा सेठने कहा देख बहू तू किसी चीजको इधर से उधर फेकना अच्छा जानती है अत तू घरमे झाड़ू बौहारी का काम सम्हालना। दूसरी बहू को बुलाया तो उसने भी उसी स्वाद वाले बीस धानके दाने कही से उठाकर दे दिए। वहा सेठने यही कहा कि ऐ बहू तू किसी भी चीजका स्वाद लेना अच्छा जानती है इसलिए तू आज से रसोई घरमे भोजन बनाने का इन्तजाम रखना सेठने तीसरी बहूको बुलाया तो उसने अपनी तिजोरी से वही के वही धान सेठको दे दिया।

तो सेठने उस बहूसे कहा कि देख बहू तू चीजको सम्हालकर रखना अच्छा जानती है अत तू आज़से तिजोडी सम्हालनेका (कोषाध्यक्षका) काम करना, जब सेठने सबसे छोटी बहू को बुलाया तो वहां बहू ने यही कहाकि पिताजी आपकी धरोहर तो बीस गाडियो बिना न आ पावेगी। आप अपनी धरोहर को बीसो गाडियो मे लदाकर मगा लीजिये। तो वहा सेठने कहा कि ऐ बहू तेरी अन्दर बडी बुद्धि है, प्रतिभा है अत. आज से तुझे घरका प्रेसीडेन्ट (प्रधान), हुकूमत करने वाला बनाया जाता है। तो देखिये एक प्रतिभाकी ही तो बात है। ऐसे ही यहा समझे कि हमको अगर ऐसी प्रतिभा हो गई कि हम अपने स्वरूपको देखे अपने भावी परिणामनोको देखे भविष्यमे मै क्या होऊगा ? मुझे क्या करना चाहिए, क्योकि हमे निरन्तर अगली पर्याय अभिमुख रहती है। मायने उसके बिना यह रह नही सकता। ऐसे देखें तो उसे द्रव्य निक्षेप कहते है, ऐसा द्रव्यदृष्टिसे जो लोक व्यवहार करे, निक्षेप करे उसे द्रव्यनिक्षेय कहते हे।

द्रव्यकी भाविपर्यायाभिमुखताके वर्णनसे:—द्रव्यनिक्षेपसे लोकव्यवहार होता है। और यह द्रव्य कैसे समझा ? उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे। मैं हूँ तो आगे कोई पर्याय पाऊगा ही ऐसी उसकी श्रद्धा रहे। अब इस सम्बन्धमे मोटे रूपसे यह बात समझना कि द्रव्यनिक्षेपसे भावी पयायकी ब त मुख्यतया ली जाती है द्रव्यकी भाविपर्यायाभिमुखतका स्वभाव भूतकाल मे भी था क्योकि गुजरी पयायमे भी यह रीति रही थी किआगे निक्षेपपर्याय होगी वहा भी भावीपर्यायकी पद्धति इस तरह का भावी पर्यायका सम्बन्ध द्रव्यमे निक्षेपको कहता है। नही तो क्या है ? यह सोचे कोई कि जीव तोजीव हो रहेगा। उसमे द्रव्य निक्षेप कैसे होगा। अरे उस पारिणामिक भावका इस चैतन्यस्वरूपमे निक्षेप नही दिखाया जा है रहा। वहा तो नभ, निक्षेपका अवकाश ही नही है, किन्तु जो जीवमे पर्याय हो रही उनकी बात चल रही है कि यह कहलाता है द्रव्यनिक्षेय जैसे कोई अपने बच्चेको जब खिलाता है तो वह कहता है कि मेरा बेटा तो राजा बनेगा, वह बडा होगा तो मुझे कमा कर खिलायगा, मेरी सेवा करेगा— —, अरे क्या पता कि वह सेवा करेगा कि डडा मारेगा ? देखो–किसी भी पदार्थ के प्रति, भावी पर्यायके प्रति अभिमुखताका भाव प्रत्येक के रहता है तो यो पर्याय अपेक्षा से यह निक्षेपकीबात चल रही है। तो यह द्रव्य निक्षेपसे जीवकी बाततो भली भाति समझमे आ गई, पर ऐसी ही अजीबकी बात है। अजीवका भी जीवसे सम्बन्ध है। कर्मसे भी और शरीर से भी—। कर्म और शरीरकी भावी पर्याय होती है। एक शरीर और कर्मसहित जो है उसकी पर्याय होती है, इस तरह द्रव्य निक्षेप मे भावी पर्यायाभिमुखेन की बात देखी जाती है और उससे लोकव्यवहार होता है। किसी को रुपये उधार दिया हो

तो उसके चित्त मे यह बात बसी रहती है कि एक सालमे हमको इससे इतना मिलेगा। अथवा कोई बैंकमे रुपये जमा करता है तो उसके चित्तमे यह बात बसी रहती है कि ६ परसेन्ट के हिसाबसे एक सालमे इतना रुपया हमे मिलेगा। तो भावी बात कुछ न कुछ जरूर रहती है इसीलिए द्रव्यनिक्षेप की उपयोगिता कहलाता है। इसदृष्टि से व्यवहार किया जाय उसे कहते है द्रव्यनिक्षेप। द्रव्यमे यह बात भली भाति समझमे आयगी कि अन्वय है। अब है, आगे होगी, यह बात समझमे आती है उन सबके प्रति। तो इस तरह द्रव्यनिक्षेप मे यह बात कही गई है कि हममे भावी पर्याय तो अवश्य होगी। पर्याय हमारी होती रहेगी पर ऐसा काम करे जिसमे हमारा अनन्त हित हो।

पञ्चमसूत्रके सम्बन्धमे पूर्व के समस्त सूत्रोंकी भूमिका रूपता:—मोक्षशास्त्रमे सबसे पहले बताया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकता मोक्षका मार्ग है, याने आत्माका सही सहज निरपेक्षस्वरूप मे विश्वास होना और अपने उपयोग को इस ही सहज स्वरूपमे लगाना और यहा ही रमण करना, लीन होना सो मोक्षका मार्ग है फिर द्वितीय सूत्रमें कहा कि सम्यग्दर्शन कहते किसे है? सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका अर्थ है सही मानना और भली प्रकार आचरण करना, किन्तु सम्यग्दर्शन शब्दका सीधा अर्थ नही निकलता सम्यक्त्वरूप, क्योकि दर्शन मायने आखो से देखना है, तब इस कारण से सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतानेको अलगसे सूत्र बनाया है, नही तो आशका हो सकती थी कि सम्यग्ज्ञान का स्वरूप क्यो नही कहा इस मोक्षशास्त्र के प्रथम अध्यायमे सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्रका स्वरूप क्यो नही कहा? उनका स्वरूप तो कहा नही लेकिन सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया है, उसका कारण है कि सम्यग्दर्शन मे जो दर्शनशब्द है उसका अर्थ साधारणतया प्रसिद्धतया आंखो से देखना है अतएवं सूत्रमे कहना पडा कि वस्तुस्वरूप सहित तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। फिर तृतीय सूत्र मे बताया कि वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से भी होता है और उपदेशसे भी होता है। अर्थात् उस पर्यायमे उपदेश पाये बिना भी होता है और उपदेश पाकर भी होता है फिर चतुर्थसूत्र मे कहा कि इस सबका प्रयोजनभूत जो जीवादिक ७ तत्त्व हैवे कौन-कौन है—जीव, अजीव, आश्रव, बध सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। तो फिर इस पचम सूत्रमे यह कह रहे है कि इन सब तत्त्वोका लोक व्यवहार किस तरह होता है? अर्थात् जीवादिक पदार्थोकी जानकारी और दूसरो की समझाना यह किस प्रकार हो सकता है? उसका खुलासा किया है पचम सूत्रमे नामस्थापना द्रव्यभावतस्तन्न्यास. नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रभ्यनिक्षेप, और भावनिक्षेप,। इन चारनिक्षेपोसे तत्त्वका, सम्यग्दर्शन आदिकका लोकव्यवहार होता है। खुद समझलेना और दूसरे को समझादेना इसके लिए जो व्यवहार

चाहिए उसका नाम है न्यास ।

नाम स्थापना व द्रव्य निक्षेपके विषयका पुनः दिग्दर्शन.—नामनिक्षेप का अर्थ है नाम रख देना । गुण उस मे हो अथवा नही, जो नाम रखा जा रहा है उस नाम द्वारा वाच्य गुण वहा हो अथवा न हो, किन्तु किसी अभिप्रायको लेकर नाम रख देनेकानाम है नामनि-क्षेप । जीव अजीव पदार्थके भी नाम रखे जाते हैं और मनुष्य आदिकके भी नाम रखे जाते है । यह है नामनिक्षेप । स्थापनानिक्षेप किसी पदार्थमे किसी अन्य पदार्थ की स्थापना करना स्थापनानिक्षेप है । स्थापनानिक्षेपका इतना ही अर्थ नही है कि जैसे मूर्ति मे या तदाकार उस भगवान की या अन्य पदार्थ की स्थापना करना यह या अतदाकार मे स्थापना करना इतना ही अर्थ नही, किन्तु जिसका नाम धरा गया उसके बारेमे यह ख्याल आये कि इस नामका यह वही व्यक्ति है ऐसा जहाज्ञान किया जाय उस सबको स्थापना निक्षेप कहते है । जैसे मूर्ति को देखकर ज्ञान होता है कि यह पार्श्वनाथ हैं, यह शान्तिनाथ है, इसीतरह अन्यमे अन्यकी स्थापना किए बिना भी एक ही पदार्थके बारेमे कुछ भावकी स्थापना करना वह भी स्थापनानिक्षेप है। तो देखो नामसे व्यवहार चलता कि नही। किसीका नाम न रखा जाय तो व्यवहार कैसे चले ? स्थापना बिना भी व्यवहार कैसे चले ? तो एक है तीसरा द्रव्यनिक्षेप याने जो पर्याय अभी हुई नही, अभी होने वाली है उस द्रव्यका व्यवहार करना सो द्रव्यनिक्षेप है । जैसे कुन्दकुन्दचार्य को कुन्दकुन्द भगवान कह देते है । होगे कभी भगवान अथवा श्रेणीमे रहने वाले मुनियोको भगवान भी कह देते हैं । भक्ति मे आकर यहा भी तो किसी ज्ञानी पुरुषको देखकर लोग कह देते है कि यह तो भग-वान है । जैसे अभी कोई राजपुत्र है, अभी वह राजा नही हुआ मगर उसे लोग राजा कह देते हैं, यह तो एक मोटी व्यवहारकी बात कही, पर यहा यह समझना है कि जो भी वस्तु है वह भावी पर्यायकी ओर अभिमुख होती है जैसे कोई चचल घोडा लगाम लगी होने से दौड तो नही सकता पर वह दौडने के अभिमुख ही होता है, इसी प्रकार कुछ भी द्रव्य हो, अगर वह है तो वह भविष्य पर्यायके अभिमुख होता है, यह कहलाता है द्रव्य का स्वरूप देखो दनादन सारे पदार्थ नवीनपर्यायकी ओर लगे हैं, ऐसा कभी अन्तर न आयगा कि कोई पदार्थ कोई द्रव्य भावी पर्याय की ओर अभिमुख न हो और कोई अन्तर पड जाय कि पर्याप न हो एक समय को ऐसा कोई स्वरूप नही । द्रव्यनिक्षेपकास्वरूप कहा ।

भावनिक्षेपका विवरण—अब भावनिक्षेपका स्वरूप कह रहे है । वर्तमान मे जो पर्यायको लेकर प्रतिपादन करना, व्यवहार करना सो भावनिक्षेप है । जैसे जब राजा हो तब ही उसे राजा कहना यह राजाका व्यवहार भावनिक्षेपका व्यवहार है तो ऐसा भाव-

निक्षेप दो प्रकार का है—(१) आगम भाव और—(२] नो आगमभाव अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शन पर्याय मे है पर सम्यग्दर्शन के बिषयमे उपयुक्त हो गया वह तो हुआ आगम भावनिक्षेप से सम्यग्दर्शन। और जो सम्यग्दर्शन पर्याय करके सहित हैवह है नोआगमभाव सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दशन बताने वाले शास्त्र का उपयोग कर रहे हो तो वह है आगम-भाव और जो सम्यग्दर्शन पर्याययुक्त है वह है नोआगमभाव। देखिये यह सब महाशास्त्र की बाते समझने के लिए उपाय कहे जा रहे है, यह सब इस महाशास्त्र की भूमिका चल रही है, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्पक् चारित्रका वर्णन आगे बहुत विस्तारमे चलेगा, पर अभी बताया जा रहा कि उन सबको समझने का उपाय क्या है? यह कहलाता है भावनिक्षेप, जो वर्तमान समयकी बात को उस समग्र पदार्थ मे बताये सो है भावनिक्षेप। देखिये भावी वस्तु है लेकिन जो बात अभी नही हुई है, आगे होगी, वह आगे के लिए भाव है, जो बात पहले हो चुकी उस समयमे वह बात होवे वह वर्तमानका भाव है, भावको छोडकर वस्तु ठहर नही सकता। इस प्रकार भाव असत्य नही। ये चार प्रकारके निक्षेप-नाम स्थापना, द्रव्य, और भाव, इनसे पदार्थका व्यवहार किया जाता है।

न्यासकी निक्षेपोंसे कथंचित् भिन्नता व कथचित् अभिन्नता—देखिये सूत्र के अर्थ की ही बात कही जा रही है। न्यास किया जाता व्यवहार किया जाता, परिचय किया जाता परिचय कराया जाता तो परिचय करना कराना इन चारो से अलग है या अभिन्न है? एक ऐसी मनमे जिज्ञासा बन सकती है। अगर अभिन्न है तो फिर न्यास शब्द अलग कहना न चाहिए। अगर भिन्न है तो कभी न्यास बन सकता। न्यासका अर्थ है लोकव्यवहार तो अन्तर आयगा अनेकान्तसे कथचित् भिन्न है, कथचित् अभिन्न है, क्योकि व्यवहारमे प्रयुक्त यह ही बनता है इसलिए अभेद है पर इसका न्यास किया जा रहा है। पहिले न्यास न था, अब न्यास हो गया, ऐसा भेद पड जाने से यह भेदरूप है इस तरह यहा बताया गया है कि नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोसे तत्त्व आदिका न्यास होता है। किसी भी पदार्थ को आप जानना चाहे तो उसमे चार चीजो की आवश्यकता पडनी है। जैसे समझा कि यह घडी है, तो घडी है, तो घडी यह नाम रखे विना घड़ी के बारे मे कोई व्यवहार चलेगा क्या? नाम रखना प्रथम आवश्यक है, और जिसका नाम रखा वह यह है इस तरह की स्थापना भी जरूरी है, और जिस समय जो बात कह रहे है उस समयको बाद वह बात आपके कानोमे पहुचो और जब कानोमे पहुची उसके बाद उसके बारेमे विचार आगे करे तो आप कहेगे कि जब समझा तब चीज नही, जब चीज चित्तमे आयी तब वह शब्द नही तो काम कैसे चले? उस समस्याको निपटाता है यह द्रव्यनिक्षेप और भाव–

मे वर्तमान की बात वर्तमान मे ही कही गई, इस तरह से समझने की बात होती है तो चार निक्षेपोसे समस्त लोकव्यवहार होता है।

तन्न्यास पदमे तत् शब्दके ग्रहणकी सार्थकता.—अब एक बात और थोडी व्याकरण सम्बन्धी कही जा रही है। 'नामस्थापनाद्रव्य भावतः तत्न्यास, उसका न्यास होता है। तो यहा एक शका होती है कि अगर यहा तत शब्द न कहते, यहा केवल इतना कहते—नामस्थापना द्रव्यभावतः न्यास, इन चार निक्षेपो से लोक व्यवहार होता है ? तो पहले कहा गया है जिसे सूत्रमे उसका हो जायगा। तत् शब्द डालने की क्या जरूरत है ? अर्थात् जो पास मे बात आयी है पहले जीवादिक ७ तत्व, उसका व्यवहार हो जायगा और देखिये प्रधान और अप्रधान दो बाते आयी अब तक, प्रधान तो है सम्यग्दर्शन, और सम्यग सम्यग्ज्ञान चारित्र, जिसको कि मोक्षमार्ग समझना इस शास्त्रमे चल रहा है और अप्रधान है जीवादिक ७ तत्व, क्योकि वे सम्यक्त्वके विषयभूत है तो प्रधानका भी ज्ञान हो जायगा। कभी प्रत्यासत्तिका, समीपका भी ज्ञान हो जायगा, फिर तत शब्द बोलना क्यो जरूरी हो गया ? वह तुम्हारी शका ठीक है ओर तत शब्द व्यर्थ है, लेकिन यहा दो झगडे आते है। कोई कहेगा कि हम तो जीवादिक ७ तत्वो का न्यास होना यही अर्थ लगायेगे क्योकि जो पासमे आयी हो बात उसे ही लेना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तो पहिले सूत्रमे आया है, बहुत पहिलेके शब्द हम न ग्रहण करेगे पासमे जो बात कही गई हो उसका ही होगा। जैसे कल जिन जिनका नाम लिया है और आज हम बात कहे कि बैठें तो क्या उनका ग्रहण हो गया ? अरे जो सामने है उनका गहण हो गया। तो तत्त्व ही ग्रहणमे आते तो कोई यह झगडा करता कि प्रधान तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं, उनका ग्रहण होना चाहिए। जब यह झगडा खडा हो जाता है तो यह तत शब्द निपटारा करता है कि देखो हम जब व्यर्थ ही इस सूत्रमे पडे है तो हमे तत शब्दको व्यर्थ मत समझें। तुम दोनो झगडो मत। दोनो को ही यहा ग्रहण होगा। अर्थात जो कुछ भी पदार्थ हो, वस्तु हो, सम्यक्त्व हो, तत्व हो सबका लोकव्यवहार इन चार निक्षेपोसे होता है। देखिये यह सब एक बडा परिचय करानेको बात कही गई है। वास्तवमे परिचय कराना किसका है ? अपने आपमे विराजमान अनादि अनन्त शाश्वत प्रकाशमान जो एक चैतन्यस्वरूप है उसका परिचय कराना है। एक इस अपने आत्म भगवानका परिचय नही है सो दर दर ठोकरें खाते रहते हैं। जो क्लेश आता है, जो विपत्ति है, जो विडम्बना बनती है, यह चोट है। जहा ही यह चित्त गया जहा ही आशा बनी, बस उसीके उपासक बन जाते है। इससे अशान्ति उत्पन्न होती है। इस अशान्तिको दूर करनेका सदाके लिए सकटोंको दूर कर देनेका उपाय है तो एक अपने आपमें विराजमान अद्वैत

अंत प्रकाशमान भगवान आत्मस्वरूपके दर्शन करना है। यही एक सार है, यह बात बहुत दृढता से समझ लेनेकी है। यह बाहरी चेतन अचेतनका सारा समागम मेरे लिए शरण नही है, सारभूत नही है। मेरे काम न आयगा, बल्कि इसके सम्बधसे जो मेरेमे रागद्वेष मोह उठता है वह मेरी बरबादीका ही कारण बनेगा। देखो कितनी स्पष्ट बात है कि जो भी समागम है वे मेरे हित के कारण तो हो नही सकते और होगे तो अहितके कारण बनेगे, फिर भी इन सब बातो मे पडला ही रहा है, कैसी हमारी कमजोरी है हम वर्तमान पर्यायमे उसका त्याग करनेमे समर्थ नही हैं। भूख प्यास ठंढी गर्मी आदिक नाना बात की आपत्तिया आती है, इस लिए घरमें रहना आवश्यक बन गया है, इस लिए घरमे रहना आवश्यक बन गया है, निर्बल जीवोको, और जब घरमे रहना जरूरी हो गया। ये सब बाते आवश्यक बन गई हैं, फिर भी कमाई करना परिस्थितिके लिए आवश्यक है, मेरे आत्माके लिए आवश्यक नही है, ऐसा विश्वास रखना जरूरी है। भाई जैसे लोग कहते हैं ना—भाई दूकान चलाना आवश्यक है, अरे दूकान चलाना आवश्यक है परिस्थितिवश किन्तु मेरे आत्माके लिए आवश्यक तो है अपने आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण। एक यह ही आत्मा भगवान मेरे उपयोग मे रहे, इतना मात्र मेरेको आवश्यक है, मगर परिस्थितिया, ये आवश्यकताये बना देती है। तो परिस्थिति से आवश्यकताये बनी है, मेरेको आवश्यकता नही है ऐसा एक श्रद्धान रखना चाहिए। यह श्रद्धान रहेगा तो ममता न रहेगी, क्योकि परिस्थिति के लिए आवश्यक नही है, इस कारण से मेरा उनमे कोई ममत्त्वभाव नही है। यह मेरे कुछ नही है, मेरा तो मात्र मै ज्ञान प्रकाश हूँ। तो अपने आत्माके स्वरूप का निर्णय किए बिना आत्मामे धर्मका अकुर नही आ सकता। तो यही बात समझना है यह ही विषय है सम्यग्दर्शनका। और इसी विषयका परिचय कराना है तो सम्यग्दर्शनकी भी हमे समझ आवेगी और सम्यग्दर्शनके विषयभूत ७ तत्त्वोकी भी दृढश्रद्धा प्रायोगिक होगी। तब तक हम अपने आत्मा मे गुप्त पडे हुए, मूर्छित पडे हुए इस चैतन्यदेव को पा सकेंगे।

शरणभूत परमब्रह्मकी सुध करनेका अनुरोध:—देखो जैसे जिसकी शरण गहे बिना जिन्दगी न चलेगी, गुजारा नही होता उसको ढूढनेके लिए आप कितनी कोशिश करते है, कहा गया भैया मेरा, कहां गया दादा मेरा, मिल नही रहा, कहा चला गया। उनसे कोई काम पडे तो झट उसकी शरणमे पहुचते कि नही, उसे ढूढेगे, जहां मिलजाय वहा ही दर्शन करके, मिलकर अपनेको सन्तुष्ट मान लेता तो भाई यहा यह समझिये कि अपने आपमे बिराजमान जो एक शुद्ध ज्योति है, ज्ञानप्रकाश है, जो मेरा सहजस्वरूप है अपने आप स्वत:, बिना दूसरे की दया के बिना दूसरे के सम्पर्क के जो मेरा स्वरूप है उसस्वरूपको दर्शन ही शरण है,

सार है, कर्मोंको नाश करने वाला है, उस स्वरूपकी खोजमे चले तो खोजते खोजते कहा मिलेगा ? बाहर खोजे तो कही नही मिलता। बाहर खोजने चले तो परिश्रम रहेगा मेरा शरणभूत सारतत्व मेरेको बाहरमे कही न मिलेगा। अच्छा,घरमे खोजा तो यहा भी विश्राम न मिला, अपने भगवान आत्माका मिलन हो तो वहा परम विश्राम अवश्य होना है, उसकी क्या निशानी है ? वह परम विश्राम कहा मिलता ? कुछ न कुछ चिन्ताशल्य ये सब बाते बनी ही तो रहती है। विकल्प बने ही तो रहते है। जैसे पानी मे र न वाली मछली को कोई पानीसे उठाकर बाहर फेक दे तो उस मछली की क्या हालत होती है ? वह तो छट-पटाती है. बरबाद सी होती रहती है, दुःखी होती रहती है, इसी प्रकार ज्ञानसमुद्रमे रहने वाला यह अतस्तत्व है। इस अतस्तत्व को अगर ज्ञानसमुद्रसे बाहर फेंक दिया गया, जीव अनादिकाल से फिरा हुआ है। इस उपयोग को इस ज्ञानसमुद्रसे बाहर फेंक दिया गया तो यह उपयोग, यह अतस्तत्व कितना छटपटाता है। जिस भवमे गया वहा ही कोई नवीन पदार्थों का समागम होता है और कैसा मेलकर बैठता। न इस भवसे पहिले इसका परिचय पाया और न इस भवके मरणके बाद इसका परिचय रहेगा। थोडे वर्षोंके लिए, सामने न कुछ सी चीज, पर उसमे इतना लीन हो जाता है कि बस उसे अपनी फिकर नहीं। उसे आत्माकी सुध नही रहती है। तो यह विपत्ति कम है क्या ? अज्ञानकी विपत्ति सबसे भारी विपत्ति है। ज्ञान प्रकाश आ जाय तो वह इतना बडा वैभव है कि तीन लोककी सम्पदा भी सामने पडी हो तो भी उस वैभवका कोई मूल्य है क्या ? तो पहिले यह समझना होगा कि जो हमे वैभव मिला, घर मिला, सम्पदा मिली, इनका कोई मूल्य मेरे लिए नही है ये सब तो परिस्थिति के लिए आवश्यक चीजे है। इनकी मेरे लिए कोई कीमत नही। यह बात ध्यान मे लाने की है। फिर अपने आपके चिन्तनकी ओर चले, वहा शान्ति मिलेगी। जहा अपना स्वरूप अपने ज्ञानमे आया कि नियमतः शान्ति मिलेगी।

परानायत्त पुरुषके कर्तव्यकी आवश्यकसंज्ञा—लोग कहते है कि मुझको बहुत से आवश्यक काम पडे है, ठीक बात है, जरा आवश्यकका अर्थ तो समझो। बोलते तो सभी है आवश्यक है, आवश्यकता है, पर आवश्यकका अर्थ क्या है सो तो बतलाओ। तो वह कहेगा कि जरूरी अर्थ है कोई कहेगा आवश्यक, आवश्यकता, नेसेसरी, यह कोई अर्थ नही है आवश्यकता। आवश्यकका अर्थ वास्तव मे क्या कियो है सो। ध्यान दो। मूलमे यह दो शब्दो से बनता है अ और वश, अ मायने नही, वश मायने आधीन, पहिले लगाओ अवश, अवश मायने जो वश नही, आधीन नही, जो बाह्य पदार्थ विषयकषायोंके आधीन नही ऐसे पुरूषका नाम है अवश। अवश पुरूष कौन ? ज्ञानी। सम्यग्दृष्टि, मुनिराज ये कहलाते हैं अवश। जो

इन्द्रिय विषयोके वशमे नही है उन पुरुषोंका नाम है अवश । और अवशास्मभावः अवश्यं, और अवश का जो स्वरूप है उसे कहते है आवश्यक और क प्रत्यय लगा है उसका अर्थ वही रहता है तो आवश्यक मायने अवश पुरुषका नाम है आवश्यक । अब बतलाओ इस अवश पुरुषको कोई तकलीफ है क्या ? जो विषय कषायोके आधीन नही है ऐसे अवशपुरुषका काम क्या सो तो बतलाओ । अवश पुरुषका काम है आत्मभगवानकी सुध रखना । आत्मभगवानके विकाशके लिए ही क्रिया करना यह आवश्यक है, तब ही आवश्यक के केवल ६ भेद किए हैं समता, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, स्तुति और कायोत्सर्ग ये ही ६ आवश्यक है । दूकान आवश्यक नही बताया । ६ आवश्यकोमे घर आवश्यक नही बताया, कुटुम्ब आवश्यक नही बताया । वे आवश्यक है ही नही आवश्यक तो आत्माकी सुध रखना, दर्शन, ज्ञान, चारित्र धर्म हैं आवश्यक । जो शब्दमे है केवल वह बात बतला रहे हैं । अगर कोई पुरुष शब्दमे रहने वाले भावको देखे तो बहुत सी समस्याये बडी जल्दी सुलझ सकती है । शब्दशास्त्र एक बहुत अनोखा है । यह यो ही नही बनता, यह भावको लेकर बना है । हिन्दीमे भी बहुत से ऐसे शब्द हैं जो स्वरूप परिचयके लिये रखे गए है । जैसे चौकी । चौकीका अर्थ है जिसमे ४ कोने हैं । तिपाई-जिसके तीन पाये हो सो तिपाई । चटाई-चट आई, जिसे उठालो और झट धर दो उसे चटाई कहते हैं । दरी, इसका पहले देराई नाम था । जो देर से आये सो देराई उसकी घटी करे फिर उठाकर लावे, ऐसी देर करके जो आवे सो दरी । तो जितने भी नाम लिखे गए है उन सब मे उनका अर्थ पडा हुआ है, पर वे रूढिमे बन गए है । आत्मा सतत अतति जानाति इति आत्मा जो निरन्तर जानता है सो आत्मा । कोई समय ऐसा नही आयगा जो जाने बिना रहे उसे कहते है आत्मा । सो जो निरन्तर जानता रहे वह मै जीव पदार्थ हूँ । तो नाम रखा गया है आत्मा अत् धातु से निस्पन्न शब्द है और उनमे उनकी जाननक्रिया निरतर पायी जाती है तो इसी तरह यह हम आवश्यक शब्दका अर्थ लगा रहे है । आवश्यकका अर्थ क्या है ? स्वतत्र, ज्ञानी, मुनिराज महत महर्षि देवके जो कर्तव्य है वे आवश्यक है । वे कितने आवश्यक है ? अब लगाओ जरूरीका अर्थ । वह कितना जरूरी है ? बस वह जरूरी है और कुछ जरूरी नही है । तो समझो, आवश्यक तो है वह मगर जिसने अपने लिए जिसको जरुरी समझा उस कामके लिए आवश्यक शब्दका प्रयोग करने लगा, यह है आवश्यक । आवश्यक वह नही ।

बाह्यमे उपयोग जुटानेपर भी अन्त परिचयमें ज्ञानीके अन्तराय का अभाव—यहां परिचय कराया जा रहा है अपने आत्मामे विराजमान स्वरुपका । जिस स्वरुपको जिस निरपेक्ष सहज स्वरुप को यह मैं हूँ ऐसा कोई मानले तो ससार सागर से पार हो जायगा । अब तक यह

जीव जिस चाहेको मान रहा कि यह मै हूँ। व्यापारी मै हूँ, जो इसका पिता है सो ही यह मैं हूँ जो इसका पुत्र है सो यह मै हूँ, जो यह मनुष्याकार है सो यह मै हूँ और जिसने इतना ज्ञान पाया, सगीत पढा और कुछ जाना इतनी विद्यायें जिसने सीखली वह मै हूँ, इस तरह किस किसमे मै लगा रहा हूँ लेकिन मै तो बहुत अन्दर छूपा हुआ हूँ, वास्तवमे मै क्या हूँ कि जो अनादिसे अनन्त काल तक रहने वाला है, सदा जिसकी सत्ता रहा करती है, ऐसा एक जो चैतन्यस्वरुप है सो मै हूँ, और ये बाहरी दंद फद कुछ भी मै नही हु। मै हूँ एक शुद्ध चैतन्यस्वरुप। ऐसा जो मान लेगा उसके ममता न रहेगी। और जिसके ममतान रही उसका भला हो जायगा। उसे फिर कही दु ख न आ सकेगा। कही विपत्ति नही आ सकती निर्मोह पुरुषपर कदाचित् घर जल गया, परिवार का कोई सदस्य गुजर गया, या कोई भी बडी से बडी घटना घट गई तो वहा ज्ञानी पुरुष सावधान रहता है। उन स्थितियो मे वह घवडाता नही है। वह जानता है कि यह तो पुद्गल की पर्याय है। जब जैसा होना है हो रहा है। उन सभी स्थितियोका वह केवल जाननहार रहता है। उसे अंतरगमे दु ख नही होता जिसके मोह नही रहा। ऐसा निर्मोह होने पर भी जब तक पर्यायमे इतना बल प्रकट न हो कि वह स्वतंत्र रह सके तब तक वह घर बसा कर रहता है। तो उसे परिस्थितियोका दास बना रहना पडता है और उन परिस्थितियो के कारण बहुत से काम उसे करने पड रहे है मगर यथार्थ समझ ज्ञानी पुरुषके बनी रहती है। यह मै मात्र चौतन्यस्वरुप हूं। चैतन्य ही मेरा काम है, अन्य कुछ मेरा कर्तव्य नही है। यह बात समझने के लिए यह सब तत्वो का परिचय कराया जा रहा है। तो इस तरह इन निक्षेपो के द्वारा इन सबका वर्णन आगे बताया जायगा। किस किस प्रकारसे पदार्थ जाननेमे आता है।

निक्षेंपोद्वारा आत्माका संक्षिप्त परिचय—अब अपने आपके स्वरुप मे इन निक्षेपो को कुछ समझने की बात देखे। नाम रखा अपना। मै क्या हूँ ? मै जीव हुँ, कैसाजीव हुँ ? जिसमे परिणमन होते रहते है ऐसा मै जीव हूँ। कोई कहता-नही, ऐसे जीवको व्यवहार नही बताया गया, क्योकि अनादि अनन्त शाश्वत अहेतुक अपरिणामी है ऐसा ही यह जीव है, उसका ही यह व्यवहार है। अच्छा, तो क्षणिकवादीयो कहते हैं कि अन्य जीवकी यहा चर्चा नही की गई है किन्तु जो आत्मा क्षण-क्षणमे नया-नया बनता है उस जीवकी बात कही जा रही है, समाधान अगर जीवको ऐसा माना जाय कि यह सदा अपरिणामी है इसमे कोई बात बनती ही नही है, सदा ध्रुव नित्य है तो वहा अर्थ क्रिया नही बन सकती, अपना इसमे कोई काम नही बन सकता। अज्ञानसे हटकर ज्ञानमे आयें, अनित्यसे हटकर नित्यमे आये। यह बात निरखिये कि जो अनित्य चीज है उसमे नित्यता बना करती और जो नित्य

है उसमे अनित्यताबना करती। क्योंकि जो बध था वह मिट गया। अब मोक्ष किसको दिलाना ? तो ऐसा मैं जीव हूँ जो सदा रहता हूँ और प्रति समय अपनी नवीन-नवीन दशायें बनाया करता हूँ उसे मोक्ष दिलाना है। मेरेमे सामर्थ है कि मै अपने सहज स्वरुपका दर्शन करुं तो अज्ञान दशासे हटकर मै ज्ञानदशामे पहुच जाऊंगा। ऐसे इस जीवकी यहा चर्चा की है।

सत्य शरण गहनेकी उत्सुकता:—हम आप सब जीवो की एक प्रकृति रहा करती है कि किसीको अपना रक्षक माने, शरण समझे और उसकी छायामे रहे। कितना भी बड़ा कोई हो, यह आदत सबमे पायी जाती है। तब यहा यह परख करें कि जगत में कौन ऐसा है जो मेरा शरण है, सहारा करता हो, सारभूत हो ? भली प्रकार सोचकर यह निर्णय पा लेगे कि कोई भी जीव ऐसा नहीं है। कुछ भी पदार्थ ऐसा नही है बाहर जो मेरा शरण है, सहारा करना हो, रक्षक हो, सारभूत हो ? भली प्रकार सोचकर यह निर्णय पा लेगे कि कोई भी जीव ऐसा नही है। कुछ भी पदार्थ ऐसा नही है बाहर जो मेरा शरण हो। बल्कि जिस जिसका शरण गहने को यह जीव जाता है वही से इसे चोट मिलती है। अगर समागम भला है तो वियोग की चोट मिलती है और अगर दुष्ट है तो उसके सयोगमे समय समय पर चोट रहा करती है। तो कोई भी बाहरी पदर्थ ऐसा नही जो मेरा शरण हो। बाहरी पदार्थों की शरण गह–गह कर ही अब तक जीवन बिताया है, अशान्त रहे है, आकुलित रहे है. मिलेगा क्या ? लाखो करोडो का वैभव भी मिल जाय तो क्या ? तीनो लोक की सारी सम्पदा भी मिल जाय तो क्या ? इस आत्मस्वरूप से अतिरिक्त यह समस्त वाहरी वैभव कुछ भी हित नही कर सकता। बल्कि देखो जिसके पास जितना अधिक परिगृह है वह उतना ही अधिक अशान्त है। इन बाहरी बातो से अपने सुख शान्ति के निर्णयकी आदत छोड देना चाहिये। परिस्थितिवश करना सब पड रहा है, करे, मगर निर्णय यह रखे कि बाहर मे कोई भी पदार्थ ऐसा नही है जो मेरे आत्माको शान्तिपहुचा सकता है। तब कौन है मेरा शरण ? कौन है मेरा रक्षक ?

वास्तविक व्यावहारमंगल और परमार्थमंगल:—देखिये आचार्योंने एकदम सारभूत बात अपने उपदेशमे बता दिया। बल्कि आप जब प्रभुस्तुति करते हैं और णमोकारमत्र पढनेके बाद जब चतारिदण्डकका पाठ पढते है तो इसमे सब आगया। चत्तारिमंगल,अरहता मंगल, सिद्धामगल, साहू मंगल, केवलियण्णात्तोधम्मो मगल। चार चीजे लोक मे मंगल है आहत, सिद्ध, साधु और धर्म। अब विचार करो अरहत, सिद्ध और साधु ये तो आत्मासे भिन्न जीव है। हमसे निराले हैं अरहन मे अरहत हैं, सिद्धमे सिद्ध है, साधुमे साधु है।

उनका द्रव्य निराला है। वे अपने ज्ञानानन्द के स्वामी है वे मेरा कुछ नही करते। लेकिन हम जब उनका ध्यान करते है, उनके स्वरुप की उपासना कहते है तो हमे अपने स्वरुप की सुध होती है और मार्गदर्शन होता है। जब जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन करते तो यह अन्त आवाज हो उठती है कि शान्त है तो यह और शान्ति का मार्ग है तो यह बाकी सब बेकार हमारी अन्त आवाज हो उठती है। तो अरहत भगवान मगल है, क्योकि वीतराग है, सर्वज्ञ है, अनन्त आनन्द के धनी है। और देखो यदि ऐसा मै नही हो सकता तो फिर ऐसे भगवान को मानने की जरूरत कुछ न रहेगी। यदि मे परमात्मास्वरुप नही बन सकता तो परमात्मा को भजने की जरुरत क्या है? बोलो क्या जरुरत है? परमात्मा हमारा कर्ता धर्ता है नही। सभी पदार्थ अपना स्वरुप लिए हुए है और इसी कारण उनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता रहता है। तो बाहर मे तो मेरी कुछ बात परिणति होती नही और परमात्मस्वरुप मे हो सकता नही फिर कारण बतलावो-क्यो भगवान को पूजा जाय? भगवान को पूजने का एक यही प्रयोजन है कि जैसा प्रभु का स्वरुप है वैसा ही मेरा स्वरुप है, और जिस मार्ग से प्रभु बने है उस मार्ग से मै भी प्रभु हो सकता हू और शरण सार उत्कृष्ट धाम यही है। तो मगल क्या? जो पापो को गलाये, सुख को पैदा करे उसे मगल कहते है तो अरहत भगवान का स्मरण पाप को गलाता है और सुख को उत्पन्न करता है, इसलिए अरहत भगवान मगल है। घर मे बच्चो का पालन करें, उनसे रागकी बात भी कहे, पर निर्णय यह रखे कि ये मेरे लिए मगल नही है। इनसे मेरा उत्थान नही होने का बल्कि इनके पीछे विकल्प बना बनाकर इस संसार मे परिभ्रमण करते रहने का उपाय रच रहे है। मगल बाहर मे कोई नही है। मगल है तो अरहत भगवान मगल है। दूसरा बताया सिद्ध मगल है। सिद्ध भगवान के मायने क्या? शरीर रहित भगवान। देखिये तीन बातें माने बिना तो काम चलेगा नही, बाहर की बात कह रहे है। साधु और शरीर सहित भगवान और शरीर रहित भगवान। तीन बातें होती है, किसी भी सम्प्रदाय मे साधु न माना जाय तो किसी को धर्म के मार्ग की बात नही मिल सकती, नही निभ सकती। साधुवो को सब मानते है। जो अपनी प्रभुता पाने के मार्ग मे लगे हो सो साधु और साधु तपश्चरण करता है, अपने ज्ञान की साधना करता है, इसका परिणाम क्या है कि उनमे सर्वज्ञता प्रकट होगी, वीतरागता, निर्दोषता प्रकट होगी। हा हो गई, मगर शरीर तो अभी साथ लगा है। इसी को कहते है शरीर सहित भगवान और शरीर सहित भगवान कब तक शरीर सहित रहेंगे? क्या शरीर सहित वे सदा रह सकेंगे? यह शरीर कोई आत्मा के लिए भली चीज है क्या जिसमे कि शरीर सदा के लिए चाहते हो? अरे वे तो शरीर मे

रहकर भी शरीर से अलग है, निर्लेप है। शरीर की स्थिति जब तक है। यह बात प्रभु मे पायी जाती है कि यह औदारिक शरीर जब छूटता है प्रभु का तो कपूरवत उड जाता है। देखिये वैक्रियक शरीर भी यो ही उड जाता है। नही तो वैक्रियक शरीरो का बहुत बडा ढेर लग जाय। प्रभु का शरीर भी कपूरवत उड जाता है। केवल नख और केश रहते है, क्यो रहते कि इनमे जीव प्रदेश नही है, इसीलिए रहते है। और बाहर जो नख बढे हुए हैं इनमे जीव प्रदेश नही है तब ही तो नाखून नाई से बडे शोक से कटा लेते है और बाहर मे जो बाल निकल आये है उन्हे भी आप नाई से बडे शोक से कटा लेते है। तो जहा जीव नही है, सम्पर्क नही है वे स्कध पडे रहेगे मगर जहा-जहा पर प्रदेश का सबध है वे सारे अणु कपूरवत उड जाते है। तो शरीर सहित भगवान माने बिना गुजारा न होगा। स्थिति है सचमुच ऐसी इसलिए कहा जा रहा है। शरीर न रहा तब शरीर रहित भगवान हो गये। इसके अतिरिक्त दूसरी कुछ स्थिति न रहेगी इसी को कहेगे सिद्ध। तो कल्याण के मार्ग मे ये तीन बाते है–अरहत सिद्ध और साधु तथा परमार्थ है धर्म। ये चारो मगल है।

धर्म की मंगल रूपता की मूर्ति सशरीर परमात्म — आत्म स्वरूप जो शाश्वत शुद्ध अविकार ज्योतिर्मय अपने आपके सत्व के कारण जो स्वय मे है उसका जो साधन करता है, उसकी जो दृष्टि बनाता है, निरन्तर उसकी धुन मे जो रहता हो वह कहलाया है साधु। तो साधु मगल है वे पाप को हरेगे और सुख को उत्पन्न करेगे। यो ३ तो भिन्न चीजे है–अरहत, सिद्ध, साधु और धर्म अपना अभिन्न स्वरूप है। धर्म आत्मा का चितस्वरूप शाश्वत टकोत्कीर्णवत् निश्चल उसकी उपासना करना धर्म है। तो साक्षात मगल रूप वह आत्मा है। आत्मा की पवित्रता किस बात मे है कषाय न हो, अन्याय की बात न आये हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह की भावना न बने, ऐसा जो पवित्र बना है यह पुरुष साक्षात-धर्मरूप है, मगलमय है। देखिये-जगत का कुछ मिलना तो है ही नही। मिट सब जायगा, वियोग सबका होगा। जब ऐसी अनिवार्य स्थिति है तो क्यो न ऐसा कार्य किया जाय कि जिससे मेरे आत्माका निश्चित उद्धार हो और देखो यह धर्मका कार्य ऐसा प्रभावक है कि जब तक ससारमे रहना पडेगा तब तक धन धान्य वैभव ऋद्धि सिद्धि से सम्पन्न होते हुए रहेगे। भला जैसे किसीको विदेश भेजना है मानो अमेरिका भेजना है तो आप उसका बडा स्वागत करते है। उसको बडे आनन्दमे पहुचाने जाते है, टीका करते है, कुछ भेट देते है, मगल रूप बात करते है, तो भला बतलाओ जो पवित्र आत्मा, इस शरीरको छोड कर जाय, शरीरका सदा के लिए सम्बन्ध छोडकर जो मुक्त अवस्थामे जाय, जो सिद्धालयमे जाने वाला हो उसका अगर देव इन्द्रआदिक आदर करे, बडे बडे लोग

उसका उत्सव मनाये तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात है ? वह आत्मा ऐसा प्रभावक है, समवशरण मे रहने वाले जिनेन्द देव जिनकी सेवामे १६ वे स्वर्गोसे देवदेविया आकर नमस्कार करते है, स्वर्ग खाली हो जाता है, मूल वैक्रियक शरीर ,मात्रा स्वर्ग मे हाजिर रहता है, तो भला बतलाओ उसमे किसका आकर्षण है ? जो यहा एक मनुष्यकी सेवामे आये, अरहत पुरुष ही तो है, परमात्मा हो गए, पर कहलाते अभी मनुप्य है जब तक कि वे शरीर सहित हैं। शरीररहित हो जाने पर मनुप्य नही कहलता, तो उन बडे बडे देवेन्द्रो को क्या आकर्षण हुआ, कौन सी विवशता हुई कि वे सब अपने अपने धाम छोडकर बडे उमगके साथ गान तान करते हुए समवशरण मे पहुचते है। क्या उनसे कोई धनकी आशा लगी ? क्या उनके ये रिस्तेदार लगते है ? वस वीतरागता का प्रभाव है। परमात्मा-स्वरूप जो निर्मल सर्वज्ञ हुए है उसका प्रभाव है कि देखो सभी इन्द्र वहा आ आकर प्रभुके चरणोमे नमस्कार करते है। प्रभुके चरणोमे पशुपक्षी भी पहुचे, मनुष्ये का समूह भी पहुचे तो वह क्या है ? प्रभुका स्वरूप ऐसा प्रभावक है कि उसकी सुधसबको रहती है।

स्वरूपदर्शनमे सहानुभूतिः—जैसे किसी भूखे भिखारी को देखकर आपको दया आती है आप उसे बैठालते है, उसे भर पेट खाना खिलाते है, तो बतलाओ क्यो दया आती ? किसी भूखे मनुष्यको देख कर जो उसकी सेवामे आप लग जाते तो क्यो लग जाते. क्या कारण है ? असली कारण है ? असली करण तो यह है कि उस भूखेको देकर एक सहानुभूति हृदयमे आती है कि मेरे ही स्वरूपके समान इसका स्वरूप है। हमारा और इसका आत्मा एक समान है, ऐसा वह बेतारका तार लगा है कि एक दम सहानुभूति आती है और वहा खुदमे वेदना पैदा होती है। खुदमे दुख उत्पन्न होता है, तो अपना दुख शान्त करनेके लिए आप उस भूखेकी सेवा करते हैं, तो ऐसे ही प्रभुकी सेवा करने को बडे बडे पुरुष देव इन्द्र क्यो जाते है कि उनके स्वरूपके समान खुदका स्वरूप है सो अपनेमे खुद समझ बनती है और आना पडता है। तो अपने स्वरुपकी आराधना करना यही धर्मपालन है, तो ऐसे धर्म का जिसने पालम किया वह पवित्र मूर्ति है। अपने जीवन को ऐसा स्वच्छ बनाना चाहिए कि धुन तो रहे अपने आत्मस्वरुप की। मैं एक ज्ञान ज्योति स्वरुप हू 'अन्य रुप मैं नही हू' ज्ञानज्योति ही मेरा वैभव है अन्य कुछ मेरा वैभव नही, ऐसा तो अन्तरग मे निर्णय रहे और वाहय प्रवृति हो ऐसी कि किसी का दिल न दुखाये, किसी पर अन्याय न करे, किसी की निन्दा न करे, कि कोई खोटी व्यसन की बात चित मे न लायें, अगर कही कुछ अन्याय किया जाने पर धन की प्राप्ति होती नजर आती हो तो उस धन का मौज छोड दें, उसे लेकर क्या करेगे ? पर भीतर मे अगर खोटे भाव आते हैं तो फिर

भव भवमे उसे वैभव न मिलेगा। जो खोटे विकारभाव लायगा उसे ऋद्धि सिद्धि न मिलेगी हालाकि वर्तमानमे मानते है कि हमको इतना लाभ हो रहा, अरे पुण्यका उदय है तो हो गया, मगर खोटे भाव करनेसे वह वैभव कम हो गया। खोटा रोजिगार करने से पैसा बहुत आता है यह बात तो सामने देखते है, न करे तो क्या करे। तो ऐसा विश्वास गलत है, सिद्धान्तसे वाह्य है। शुद्ध भाव रखेगे तो भला हो जायगा मगर ऋद्धि सिद्धि उसके पास अतुल आयगी। देखो बात तो यह है कि क्या करना है वैभव? बहुत से लोग तो कह देते है कि इससे बहुत बडा यश मिलता है। अरे उस यशका करना क्या है? यहां कोई किसीका मदद कर सकने वाला है क्या? क्या वे मेरे कोई परमेश्वर है, प्रभु हैं कि वे प्रसन्न हो जाये मुझपर, उनके अच्छा कहलवाने मे कही मेरा उद्धार हो जायगा क्या? नही हो सकता, तो फिर भावना अपनी पवित्र रखे, शुद्ध प्रवृत्तिसे चलना चाहिए, यह है अलौकिक आनन्द पानेका मार्ग तो मंगल चीज चार हैं।

अरहंत सिद्ध साधू व धर्मको लोकोत्तमत — लोकमे उत्तम चीजे भी चार हैं— चत्तारिलोगत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहूलोत्तागुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। याने लोकमे उत्तम चार है अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म जो धर्मके मार्ग मे चलना चाहे, उमे वाहर मे इस ३ का ज्ञान करना आवश्यक है कि साधु ऐसे होते है और उसके बाद शरीर सहित भगवान बनते है। फिर शरीर रहित भगवान कहलाते है। और इतनी बात अगर ज्ञान मे नही है तो वह क्या करेगा आनेका प्रोग्राम करही नही सकता। कोई ऐसा डर कर कि मै ऐसी क्रिया करु तो भगवान दुःख देगा, ऐसा डर कर अगर कोई धार्मिक क्रिया काण्ड करे तो वह धार्मिक न होगा। यह तो उस तरह है कि जैसे लोग सरकार के कानूनको तोड तो नही सकते इसलिए उनके पीछे लगे रहते है, वे विवश है जानते है कि इसीमे मेरा भला है। ऐसे ही अगर कोई धर्मके मार्गमे भी लगे तो वह वास्तविक धर्मात्मा न कहलायगा। तो जिसको अरहत सिद्ध साधुका विश्वास है वह धर्म के मार्गमे लगा है। लोकमे चार उत्तम हे, अरहत, सिद्ध, साधु और अपने आपमे अनादि अनन्त शाश्वत प्रकाशमान चैतन्यमात्र आत्मस्वरूप उसकी दृष्टि लोकमे उत्तम है। अपना प्रियतम कौन है। यह ज्ञानदर्शनस्वभावी, ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा, यह ही अपना प्रियतम है। इससे बढकर और कोई प्रिय नहीं होता। अगर और कुछ प्रियतम होता तो वह तो मोहका प्रताप है। वाहरमे माने कोई प्रियतम तो यह तो उसके मोहका प्रभाव है। एक सेठ के यहां एक नौकरानी थी। वह अभी दो चार दिन पहले ही उनके घर आयी थी। सेठानी का कोई ८-६ सालका एक वालक था जो किसी विद्यालयमे पढ़ने जाता था। एक दिन वह दोपहरका नाश्ता न ले गया तो सेठानी ने नौकरानी से कहा-अरी नौकरानी-मेरा

बालक अमुक विद्यालयमे पढता है उसे नास्ता दे आ। तो नौकरानी बोली मै तो अभी आपके बच्चेको अच्छीतरह पहचानती भी नही। :': अरे मेरे बच्चेको क्या पहचानना। विद्यालयमे जो सबसे सुन्दर बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है, उसे दे आना। इसप्रकारके गर्वभरे शब्दोमे सेठानी बोली नौकरानी नास्ता लेकर विद्यालय गई। उसी विद्यालयमे उस नौकरानी का भी बच्चा पढता था। तो सेठानीने विद्यालयके सभी बच्चोको देखा मगर सब मे से सुन्दर उसे उसका ही बच्चा दिखा सो वह उसीको नास्ता देकर चली आयी। जब सेठानीका बालक शामको घर आया तो सेठानीसे बोला-माजी आज आपने मेरे वास्ते नास्ता न भेजा था। अरे भेजा तो था बेटा (नौकरानी को बुलाकर) अरे तू ने मेरे बेटेको आज नास्ता नही दिया। नौकरानी---अरे दिया था। तुमने यही तो कहा था न कि उस विद्यालयमे जो सबसे सुन्दर बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है, उसे दे आना, तो मैंने विद्यालयके सारे बच्चे देखा, पर मुझे तो मेरा ही बच्चा सबसे सुन्दर दिखा, सो उसीको नास्ता देकर मे चली आयी। देखिये—कैसा ही हो अपना बच्चा भले ही काला हो, फटे पुराने वस्त्र पहने हो मगर उसे तो अपना ही बच्चा सबसे सुन्दर जचेगा। वस्तुत देखो तो अपने को कुछ भी बाहरमे प्रिय नही है, क्योकि किसी भी बाह्यय पदार्थकी दृष्टि रखनेसे इस आत्मामे शान्तिकी प्राप्ति नही होती।

आत्मस्वरूपके चिन्तनका महत्त्व—बस, सोऽहं, जो प्रभु है सो मे हूँ। ऐसा जब चिन्तन चलता है और प्रभुके स्वरुपकी स्थापना अपनेमे होती है और उस रहस्यका भान करके अपने अन्तस्तत्त्वमे लीन हो जाता है अह रह जाता है, व उस अरुकी अनुभूति मे जो आनन्द झरता है वह अकथनीय है, कर्म कटते है आनन्दसे, कष्टसे नही, मगर सासारिक सुखको आनन्द न बोले अरे निर्विकल्य समाधि से उत्पन्न होने वाला जो आत्मीय सत्य आनन्द है वही भव-भवके कर्मोको नष्ट करता है। कष्ट करनेसे कर्म नही नष्ट हुआ करते बडे--बडे तपस्वी साधु पुरुप तपस्या करते हुए बडे-बडे कष्टोका अनुभव करते हैं किन्तु अपने अन्त स्वरुपको निरख निरखकर बडे तृप्त होते है। लोगोको ऐसा दिखता है कि गर्मीमे पहाडपर बैठे है बेचारे, कितना कष्ट सह रहे है, पर वहा तो वे भीतरमे आनन्द ले रहे हैं। वहा उन्हे कोई कष्ट नही होता। कष्ट सहने से कर्म नही कटते किन्तु आत्मीय आनन्द प्राप्त करनेसे कर्म कटते है। अपने आपके भीतर यह बात बसी हो कि विशुद्ध आनन्द स्वभावका आनन्द कैसे मिले। उसका उपाय बनाये। सभी गृहस्थ लोग अपने घरके सभी लोगोको धर्मके रगमे रगदे एक ऐसा धार्मिक वातावरण घरमे बनाये कि सब धर्ममे लगे रहे। आपको सहयोग मिलेगा शुद्ध वातावरण बनानेसे। अपना उपयोग शुद्ध धर्ममय हो।

जो ज्ञानानन्द स्वभाव है वही मेरा वेभव है । ज्ञानानन्द के परिणमन के सिवाय मै और कुछ करता नही हूँ । और अनुभवन भी ज्ञानानन्द का किया करता हूँ । जब ऐसी मेरेमे अपने आपपर बीत रही तो किसी दूसरेसे मेरा सम्बध क्या ! यह बात सोचना चाहिए । और इसीके परिचयके लिए बडे—बडे शास्त्र रचे गए है तब ही तो मोक्षशास्त्र मे जब जीवादिक ७ तत्वोका वर्णन किया जायगा उससे पहले के सारे उपाय बताये जा रहे है कैसे तुम लोक-व्यवहार करो, कैसे तुम तत्त्वका परिचय करो, कैसे तुम उन तत्वोके काममे लगे वह परि-चय करना, अपने आपके स्वरूपका अनुभव पाना बहुत आवश्यक है । तो ऐसा अपने आपको देखे अपनेमे प्रसन्न होने की एक आदत बनावे और बाहरमे ममताको ढीला करे । कुछ बिगड गया तो बिगड गया कुछ आ गया तो आ गया उससे मेरा कुछ विकास नही और कुछ चला गया तो मेरी कोई हानि नही । मै तो उपयोग मात्र हूँ मेरा उपयोग निर्मल रहे तो मेरेको सब कुछ प्राप्त है और मेरा ही उपयोग बिगढ गया तो मेरे को कुछ भी प्राप्त नही है । ऐसा अपने आपका विचार रखे और अपना जीवन सफल करे ।

वास्तविक व्यवहार शरण व परमार्थ शरण—मेरेको शरण क्या है चत्तारिशरणं पव्वज्जामि । अरहतशरण पव्वज्जामि सिद्ध शरण पव्वज्जामि साहूशरण पव्वज्जामि केवलि पण्णत्तोधम्मो शरण पव्वज्जामि । मे ४ मे अरहतकी शरण को प्राप्त होता हूँ । मे सिद्धकी शरणको प्राप्त होता हूँ साधुकी शरणको प्राप्त होता हु और धर्मकी शरणको प्राप्त होता हु । अरहंतकी शरण क्या अरहत भगवान के स्वरुपका जो स्मरण है वह ही अपने लिए शरण है । निदोष वीतराग परमात्मा सर्व दद फदोसे रहित है । वह भी मेरे ही समान पुरुष थे अथवा और पुरुष भी थे चारो गतियोमे भटकने वाले भी थे लेकिन मनुष्य भव पाकर कैसा आत्मश्रद्धान आत्मज्ञान और आत्मरमण की रपतारकी कि वे पर-मात्मा हो गए । सदाके लिए सकटोसे छूट गए । तो ऐसा क्या मै नही हो सकता । जब हो सकता ! तब ही सही मगर मार्गमे लगना चाहिए । भगवानके स्वरुपका स्मरण मेरे लिए शरण है अरहत शरण हे सिद्ध शरण है अरहत पदवी किसी जीवके सदा नही रहती जब शरीर सहिस है तब अरहत है और जब शरीर रहित हो गए तब सिद्ध है । अर हत सिद्ध तो यहा उपलब्ध नही है । उनका दर्शन कहा है ! वर्तमान मे समागम मिलेगा तो साधुजनोका मिलेग । तो साधुकी शरणको मे प्राप्त होता हूँ । साधुकी शरण गहनेसे बहुत उमग और उत्साह जगता है । जैसे पुराणमे बहुत सी कथाये लिखी है इनमे उतना आदर नही बनता जितना कि यहा कोई महापुरुष दिख जाय उसमे बनाया जाता है । साधु तो यहा पाये जाते है ज्ञान ध्यानके तपश्चरणमे लीन रहते है विषय कषायोसे दूर रहते है

आरम्भ परिग्रह को त्यागे रहते है तो ऐसे साधुग्रो की उपासना, साधुके भीतरी रत्नत्रय का ग्राराधन यह हम ग्रापके लिए शरण है। मै साधुकी शरण को प्राप्त होता हूँ। ये है सब भिन्न जीव। मेरा स्वरूप मेरे ज्ञानमे बसा रहे तो मै शरणको प्राप्त होता हूँ, मेरे ज्ञानमे बाहर की कोई चीज ग्रायी तो मै ग्रशरण हो गया। मै मेरी दृष्टिमे रहूँ, ज्ञानानन्दस्वभाव यह ग्रन्तः स्वरूप परमात्मा मेरेज्ञानमे रहे तो मेरेको शरण मिल रहा है। तो मगल उत्तम शरण सब कुछ ग्रपने ग्राप मे है। किसी भी समय ग्रधीर होने की घबडाने की कोई जरूरत नही, क्यो कि जो मेरा है वह मेरे से कभी ग्रलग नही हो सकता। जो मेरा नही वह मेरे मे कभी ग्रायगा नही यह वस्तुका स्वरूप है, भ्रमको छोडो ग्रौर प्रसन्न रहो।

लोकव्यवहारके मूलभूत चार निक्षेपो के वर्णनका उपसंहार—पदार्थका लोकव्यवहार चार निक्षेपो से होता है नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भावनिक्षेप। नाम रख देना नाम निक्षेप है। किसीमे वस्तुकी स्थापना करना द्रव्य निक्षेप है ग्रौर ग्रागामी पर्यायके ग्रभिमुख है यह द्रव्य, यह द्रव्य ग्रागामी पर्याय उत्पन्न करेगा। इस प्रकार की बुद्धि व्यवहारको द्रव्यनिक्षे कहते है, ग्रौर जो पदार्थ वर्तमानमे जिस पर्यायरूपमे है उसही रूपमे परिचय व्यवहार करना भावनिक्षेप है। इन चार निक्षेपोमे परस्पर कोई विरोध नही कि जब नामनिक्षेप है तो तीन निक्षेप न रह सकेगें। सबकी ग्रलग–ग्रलग दृष्टिया है, ग्रलग–ग्रलग प्रयोजन है। उन दृष्टियोके कारण चारो का एक साथ वर्तन हो सकता है। ग्रब जरा प्रयोजन देखो ग्रगर नाम निक्षेप न माना जाय तो जब किसीका नाम ही नही तो फिर कौन किसे बुलायगा? कौन किसे समझायगा? किसका क्या परिचय है, न फिर कमाई रहेगी, न खानापीना बनेगा, न घर गृहस्थीमे रहेगे,। तो नाम होने पर ही तो व्यवहार होता है, नाम न रहे तो व्यवहार करना नही चल सकता। सब एक तरह के पत्थर जैसे हो गये। फिर कोई व्यवहार ही नही हो सकता। तो नामनिक्षेप लोक व्यवहारमे ग्रावश्यक है। स्थापना निक्षेप, देखते ही है फोटो बनवाते हैं तो उसमे पिताकी यादगारी रहती है। ग्रथवा प्रतिमामे भगवान की स्थापना करते है ग्रौर कितना ग्रधिक लाभ लूट लेते हैं ग्रथवा नाम भी रख दियो पर इस नाम वाला यह व्यक्ति इस प्रकार की बुद्धि हुए बिना वह व्यवहार नही चल सकता। यह सब तो द्रव्यनिक्षेप है। जिसमे ग्रागमपर्यायकी बात चित्तमे ग्राती हो वह है द्रव्यनिक्षेप द्रव्यनिक्षेप न हो तो कोई कुछ काम ही नही कर सकता। ग्राप रोटी बनाने बैठे तो ग्राप ग्राटा सानकर रोटी बनाते है। ग्राप समझते है कि इस तरह रोटी बनेगी। तो नई पर्याय के ग्रभिमुख है द्रव्य यह बात ध्यानमे है तब तो कोई कार्य करता है। तो द्रव्यनिक्षेप न हो तो कोई कुछ कर ही न सकेगा ग्रौर

और भावनिक्षेप तो स्पष्ट बात है। वस्तुस्वरुप है, जो जिस समय मे, जिस पर्याय मे है उस पर्यायिरुप मे उस सम्बन्ध मे निरखना भावनिक्षेप है। इस तरह चार निक्षेपो के द्वारा जीवादिनक ७ तत्वो का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का और सभी का लोक व्यवहार होता है। इस तरह एक प्रतिपादन चलता है। समझने समझाने का एक व्यवहार चले उसके उपाय को बताकर अब यह जिज्ञासा की जा रही है कि इन चार निक्षेपो के द्वारा जिनका लोक व्यहार कराया जाता है उनका परिचय अधिगम विज्ञान किस प्रकार होता है जिससे कि यह लोक प्रसिद्ध व्यवहार की बात चली, लेकिन अधिगम न हो तो लोकव्यवहार भी कैसे चल सकता ? तो वस्तु का पहिले अधिगम तो बनाये, जानकारी तो बनाये। कैसा पदार्थ है ? क्या ढग है ? तो उस पदार्थ के बारे मे व्यवहार भी यह ठीक बन सकेगा। तो जितने व्यवहार किए गए उनके अधिगम की बात कही जा रही कि उन सबके जानने का उपाय क्या है।

प्रमाणनयैरधिगम ॥६॥ वस्तु व वस्तुत्व के अधिगम का उपाय प्रमाण और नय— तत्व का सम्यग्दर्शन आदिका अधिगम होता है, प्रमाण और नयो के द्वारा। जानकारी बनती है इन दो उपायो से नयो के द्वारा। जानकारी बनती है इन दो उपायो से वस्तु के सर्व देशो की जानकारी होना प्रमाण है और वस्तु के एक देश की जानकारी होना सो नय है। प्रमाण के द्वारा वस्तु का परिचय होता है नय के द्वारा भी परिचय होता है अब एक आशका की जा सकती है— क्या कहा गया इस सूत्र मे कि प्रमाण और नयो के द्वारा वस्तु की जानकारी होती है। तो यह बतलाओ कि उस जानकारी की जानकारी कैसे होगी। प्रमाण और नय के द्वारा तो वस्तु की जानकारी होती और उस जानकारी की जानकारी कैसे होती ? तो जानकारी की जानकारी नही बनती याने ज्ञान से ज्ञान नही बनता। तो लो जिस ज्ञान के द्वारा हम वस्तुको जानेंगे। जब वह ज्ञान ही हमारे ज्ञानमे नही है तो वस्तुको हम ज्ञान क्या सकेंगे ? जिसके द्वारा द्रव्यका ज्ञान होता है इसका ही ज्ञान नही है तो हम अन्य पदार्थको कैसे समझावे ? तो अब बताओ कि उस जानकारी की जानकारी कैसे होती है ? कहेंगे कि अन्य प्रमाण नयोसे होती है तो उसकी जानकारी अन्य प्रमाणोसे होगी यो तो अनवस्था दोष आयगा। यदि कहो कि प्रमाण और नयोसे वस्तुस्वरूप की जानकारी हुई और यह जानकारी स्वयमेव हुई ऐसे ही पदार्थ स्वयमेव क्यो नही जाननेमे आ गया ? एक ऐसी आशंका रखी गई है। आशका रखने वाला कुछभी कह सकता। यह एक आपत्ति दी, लेकिन यह आपत्ति यहा नही आ सकती। देखो प्रमाण और नयसे जीवादिक ७ तत्त्वोकी जानकारी हुई, अब इस जानकारी की जानकारी कैसे होती है ? तो

देखिये कि अगर जानकारी अभ्यस्त विषयक है तो स्वत हो जाती है और जानकारी अभ्यस्त विपयक नही है तो दूसरी जानकारीसे होता है मगर अनवस्था दोष न आयगा। दो चार के जाननेके बाद ऐसा अवसर आयगा कि हमे खूब परिचय है और इसी को कहते है अभ्यास दशा और थोडा यह दार्शनिक विपय है, समझनेकी चीज है। हम झट कह तो देते हैं कि प्रमाण और नयोके द्वारा तत्त्वका अधिगम होता है, पर इस अधिगमका अधिगम कैसे होता है ? जब तक हम इस अधिगमका परिचय न पाये तो उस अधिगमके द्वारा हम वस्तुको भी कैसे जान सकते ?

अभ्यास दशामे स्वत. व अभ्यास दशामे परत. प्रामण्योत्पत्ति—तो देखिये जानने की दो स्थितिया होती है- (१) अभ्यास की स्थिति और एक अनभ्यास की स्थिति। जैसे आप किसी दूसरे गावको जा रहे है जहा आप कभी गए नही, चल दिया। रास्तेमे प्यास लगी। आप पानी की तलाश करते है, वहा आप कुवा बावडी अथवा तालाब आदिकी तलाश करते है। चलते-चलते कही मेढको की टर्र टर्रकी आवाज सुनाई दी, तो आपने अन्दाज लगाया कि यहा कही पानी होना चाहिए। अब देखो ज्ञान तो हो गया, मगर वह अनभ्यास स्थिति है। यहा तालाब है, इस तरह का परिचय हुआ मगर उस परिचयमे भी एक जिज्ञासा होती है कि मेरा ज्ञान सही है कि नही। उस ज्ञानके सहीपने को जाननेकी भी उसको इच्छा होती है ना अनभ्यास स्थितिमे। तो कुछ समय बाद और चले तो फूटे घडे कही मिले उससे कुछ और दृढता हुई कि हा यहा कही पानी तो जरूर होना चाहिए। थोडी दूरी जाने पर उसे पानी दिखने लगा तो वहा उसे पूरी दृढता हुई। अब उसकी जानकारीमे कुछ कमजोरी तो नही रहती। कुछ समय तक तो कमजोरी रही जब तक पानी न दिखा अब कमजोरी नही रही क्योकि पानीका परिचय तो हमारा अभ्यास है जब अभ्यास वाला अवसर आता है तब जानकारीका तात्ता नही लगता कि किसके द्वारा जानकारी हुई, जहा अभ्यास होने जैसी स्थिति आती है तो जानकारी परिपूर्ण हो जाती है। तो प्रमाण नयोके द्वारा जीवादिक तत्वोका अधिगम हुआ। अब यह अधिगम सही है कि नही। इस अधिगम मे भी अधिगम करनेके लिए कुछ और युक्तिया आने लगती कि अभ्यास जैसी स्थिति बन जाती है पर वहा अनवस्था नही होती। तो देखिये कुछभी वस्तुको हमने जाना तो जाननेमे जो प्रामाण्य आया उसकी उत्पत्ति तो परसे हुई मगर प्रमाणमे प्रमाणताकी जानकारी (ज्ञप्ति) अभ्यास दशामे स्वय हो जाती है और अनभ्यास दशामे परसे हुआ करती है। यो अधिगमका भी अधिगम हो जाता है प्रकृणमे यह बात कही जा रही कि जीवादिक तत्वोका और सम्यग्दर्शन आदिकका अधिगम प्रमाण और नयोके द्वारा होता है। प्रमाणका

अर्थ क्या है ? वस्तुके सर्व देशोसे जानना प्रमाण है और वस्तुके अन्शको जानना नय हैं यह मूल लक्षण है प्रमाण और नयका सर्वदेश वस्तुका जानना प्रमाण है और एक देश वस्तुको जानना नय है । प्रमाणके द्वारा भी वस्तुका परिचय होता और नयके द्वारा भी वस्तुका परि-चय होता है ।

नयको अल्पस्वरपना होनेसे प्रसग बोलनेका प्रसग होनेपय पूज्यताके कारण प्रमाण का प्रथम निर्देशन—अब इस सूत्रमे कुछ व्याकरण सम्बधी बात कह रहे है कि प्रमाण और नय ये दो चीजें बतलाया न, तो अब यह बतलाओ कि कठिन शब्द किसमे है ? केवल वर्ण की वात कह रहे है । प्रमाण यह कठिन लग रहा कि नय सुननेमे बोलनेमे नय तो कठिन नही है, प्रमाण शब्द जरा कठिन है, क्योकि प्रमाण मे तीन स्वर है प्र मे अ म मे अ और ण मे अ और नयमे २ स्वर है । तो जिसमे कम स्वर है उसका नाम पहिले रखना चाहिए, और जिसमे ज्यादह स्वर हैं उसको बादमे रखना चाहिए । यो बनाना था नय प्रमाणैरधि-गम एक शका रखी गई है कि प्रमाणको पहले क्यो रखा ? देखो जब बोलचाल भी अपना करते है कई लडकोके कई नाम है और उन लडकोको जब हम बुलाते है, नाम पुकारते हैं एक साथ क्रमशः निरन्तर तो छोटे अक्षर वाले नामको पहले बोल देते है और वडे अक्षर वाले नामको वाद मे बोला करते है कुछ ऐसी प्रकृति भी है लोक व्यवहार की । वैसे भी देखो अगर किसी लोहारके यहा दो आदमी जाये एक को बनवानी है कडाही और एकको वनवानी है सूई तो अब आप ही वताओ वह पहले क्या वनायेगा ? सूई, क्योकि वह छोटा काम है, उसे वना देगा । कडाही वनानेमे तो कोई चार दिन लगेंगे और सूई बनानेमे कोई चार मिनट लगेंगे । तो वह सोचता है कि पहले इस सूई वालेका काम निपटा दू, इसे अधिक बैठाने से फायदा क्या ? बादमे कड़ाही बनानेका काम करता रहूँगा । तो पहले छोटा काम निपटा दिया जाना है, वादमे वडे कामको मौका दिया जाता है । तो प्रमाण और नय इनमे छोटा है नय और बड़ा है प्रमाण तो नयका नाम पहले रखना चाहिए और प्रमाणको वादमे रखना चाहिए "नयप्रमाणैरधिगमः" आशंका ही तो है शका जो चाहे रख सकता है, पर समाधान यह है कि भले ही कोई शंकाकार की वात ठीक लग रही है लेकिन प्रमाण और नयमे पूज्य तो प्रमाण है, वडा तो प्रमाण है । जो सर्वदेश वस्तुको जाने उसकी महत्ता है या जो एक देश वस्तुको जाने उसकी महत्ता है ? देखो एक देश वस्तुको जानने वाला नय सच्चा भी होता है, खोटा भी होता है । अगर प्रमाणका सहारा छोड़े दे प्रमाणका आलम्बन छोड़ दें तो नय मिथ्या कहलाता है और प्रमाणकी वुद्धि वनी हो और तव नय कहा जाय तो वह समीचीन होता है तो देखो नयको सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण आधार है इसलिए

भी पूज्य है और प्रमाण सर्वदेश जानता है इसलिए भी पूज्य है। तो पूज्यका नाम पहले लेना या साधारणका नाम पहले रखना ? पूज्यका नाम पहले रखना योग्य है इसीकारण प्रमाणको पहले कहा है और नय को बादमे। प्रमाणनैयरधिगम अब प्रमाण और नयके द्वारा पदार्थका अधिगम होता है जो वस्तुके सर्वदेश को जाने ऐसे ज्ञानको कहते हैं प्रमाण और जो वस्तुके एक देशको ज़ाने ऐसे ज्ञानको कहते है नय। देखो नय भी ज्ञान है और प्रमाण भी ज्ञान है, मगर सकल ग्राही ज्ञानको तो कहते है प्रमाण और एक देश ग्राही ज्ञान को कहते है नय। तो यहां यह शका हो सकती है कि एक देश जाना तो भी ज्ञान ही तो है और सर्वदेश जाने तो भी ज्ञान ही तो है एक देश जाना तो वहा एक देशका निश्चय हुआ जितना जाना वही प्रमाणभूत होना चाहिये। समाधान एक देश जाना उतना ही तो। सत नही है वह सद्श है। सद्श ग्राही ज्ञान प्रमाण नही होता। प्रमाण से ग्रहण किये गये सत्मे सदशको जानने पर वह प्रमाणाश कहा जा सकता। प्रमाणसे ग्रहण न किये गये हो फिर सदश जाने तो वह मिथ्याज्ञान है।

प्रमाणवत नयमे स्व.पूर्वार्थका निश्चय होनेसे नयमें प्रमाणता न होनेके कारणकी जिज्ञासा—प्रमाणके लक्षणमे यह बात कही जाती है कि जो अपना निश्चय करे और अपूर्व अर्थका निश्चय करे उसे प्रमाण कहते है। तो सकलता ग्राही ज्ञान स्व और परका निश्चय करता है उसीप्रकार विकलग्राही ज्ञान भी नयके स्वका और अपूर्व अर्थका निश्चय करता है। स्वके निश्चयके मायने क्या है कि जिस ज्ञानके द्वारा कोई पदार्थ जाना गया है वह ज्ञान एक सच है यह पदार्थ भी ऐसा ही है ऐसा दोनो तरफ निर्णय होनेका नाम है स्व और पर का निश्चय यहा स्वके मायने आत्मा न लेना किन्तु जिस ज्ञानके द्वारा हम जान रहे है वह ज्ञान तो है स्व और जो वस्तु जाननेमे आती है वह वस्तु है पर अर्थ। तो जैसे हमने समझा कि यह प्रमाण है तो सही जान लिया हमने अब सही को सही जाननेमे प्रमाणमे दो बाते आयी कि यह घडी ही है और इसका जानने वाला जो ज्ञान है वह सच ही है। दोनो तरफ दृढता होती है कि नही। पदार्थके अधिगम मे भी दृढता है और जिसके द्वारा जाना गया है उस ज्ञानमे भी दृढता है। और इसको जानने वाला जो ज्ञान है वह सच ही है दोनो तरफ दृढता है कि नही। पदार्थके अधिगम मे भी दृढता है और जिस ज्ञानके द्वारा हमने पदार्थ जाना उसमे भी दृढता है। क्या ऐसा होता है कि कोई पदार्थको दृढतासे जाने यह घडी ही है और कुछ नही है। यह तो दृढता से जाना है और यह शका करें कि यह मेरा ज्ञान सही हे कि नही ? ऐसा तो नही होता दृढतासे होता हैं तो दोनो तरफ होता है और सशय होता है तो दोनो तरफ होता हैं। तो स्वके मायने ज्ञान हैं जिस ज्ञानके द्वारा

हमने पदार्थको जाना वह ज्ञान है स्व और जो पदार्थ जाना गया है वह है अपूर्वार्थ तो जो स्व और अपूर्वार्थका अधिगम करे सो प्रमाण है। तो देखो जैसे सकल ग्राही ज्ञानमे स्व और अर्थकी निश्चयता है इसीप्रकार नयसे जाने हुए प्रसंगमे भी स्व और अर्थको जाननेकी निश्चयता है। तो पमाण नय को भी कह देना चाहिए। यह शका तो ठीक लग रही ना ?

नयमें प्रमाणत्व और अप्रमाणत्व न होकर प्रमाणांशत्वकी उपपत्ति—उक्त शंकाका समाधान यह है कि हम नयको प्रमाण नही कह सकते। एक तो यह प्रमाण एक देश नही है एक देश प्रमाणका कोई मूल्य नही है। एक देश प्रमाणका अर्थ है कुछ प्रमाण बाकी अप्रमाण कुछ प्रमाण और कुछ अप्रमाण हो ऐसा कुछ पमाण नही होता है। प्रमाण जो होता है। वह तो पूरा ही होता है अब यहा बात यह देखना है कि नयका लक्षण तो यह है कि अपना और पदार्थका एक देश रूप से निर्णय करना और प्रमाणका लक्षण है पूर्ण रूपसे अपने को और पदार्थको जानना तो अपनेको और पदार्थको एक देशरूपसे जानना यह ज्ञानमें तो आ जायगा मगर यह प्रमाणमे न आयगा। कह सकेंगे तो प्रमाणका अ श कहेगे। एक देश ज्ञान प्रमाण नही, किन्तु प्रमाणका अंश है। जैसे कोई पूछे कि बतलाओ समुद्रकी जो एक बूंद है वह समुद्र है या असमुद्र ? समुद्रकी एक बू द या मानो थोडा पानी लिया और पूछते है बतलाओ यह जल समुद्र है या असमुद्र है ? अगर कोई कहे कि यह जल समुद्र है तो यह बात सम्पूर्ण गलत सी लग रही कि बू द है। यदि इतना पानी समुद्र है यानि समद्र की एक बू द भी अगर समुद्र है तो एक जो बड़ा भारी समुद्र दिख रहा उसे एक समुद्र नही कहेगे। ये तो अनगिनते समुद्र है, यह बोलना चाहिए। तो यह नही कह सकते कि जो एक बू द है वह समुद्र है। और, यह भी नही कह सकते कि जो यह चुल्ल भर जल है या एक बू द पानी है वह असमुद्र है। अगर यह जल की बू द असमुद्र है तो दूसरा बू द भी, फिर तीसरा बू द भी यो सारे बू द असमुद्र है। तो असमुद्र का जो समुद्र है वह तो असमुद्र रह गया, वह समुद्र नही वन सकता। तब क्या कहा जायगा ? भाई सुनो-यह जो बूंद है सो यह समुद्र नही असमुद्र नही, किन्तु समुद्र का अ-श है। अब समुद्र का अ श एक बू द भी है। समुद्र का अ श यह अन्य बू द भी है। ऐसे नाना अ शो का जो समुदाय हो गया वह समुद्र है। इसी प्रकार नय प्रमाण का अ श है—निश्चयनय भी प्रमाण का अ श है, व्यवहारनय भी प्रमाण का अ श है, और दोनो नयो से जो पूर्ण है सो प्रमाण है। यहा एक बात और समझना चाहिये कि निश्चयनय का जो विषय है वह पूर्ण वस्तु नही, व्यवहारनय का जो विषय है वह पूर्ण वस्तु नही, किसी भी नय का विषय पूर्ण वस्तु नही कहलाता, क्योकि नयका विषय ही वस्तु का एक अंश है।

प्रमाण से संतुलित होने पर नयकी उपयोगिता— यद्यपि यह बात बताई गई है कि निश्चयनयका विषय जो एक स्वरुप है, स्वभाव है, पारिणामिक भाव है उसका आश्रय करे तो हमको मुक्ति का मार्ग सुगम होता है यह बात जरूर है मगर यह हमको कब है जब कि प्रमाण से सब तरह की बात का निर्णय करने वाला पुरुष निश्चयनयका आलम्बन ले तो उसके मोक्ष का मार्ग बनेगा। जहा प्रमाण ही ठीक नही है और निश्चयनय के विषय को ही समग्र वस्तु मान लिया वह अंधेरे मे है, ऐसे ही तो एकांत अद्वैतवाद है। एक ब्रह्म है अपरिणामी है हिलता डुलता भी नही, परिणमन भी नही होता, अवस्था भी उसकी नही, ऐसा एक ब्रह्म है। यह है निश्चयन के एकान्त का सिद्धान्त याने निश्चयनय के विषय को ही पूर्ण वस्तु मानने का यह परिणाम है। वस्तु पूर्ण न तो निश्चयनयका विषयभूत है और न व्यवहारनयका विषयभूत है। वह तो प्रमाण का विपयाभूत है। अब रही एक कल्याण मार्ग के पाने की बात। तो देखिये-निश्चयनय का विषय जानकर जैसे कल्याण मार्ग पाने मे सहयोग है वैसे ही व्यवहार का विषय जानकर भी कल्याण का मार्ग दृष्ट होता है? स्वभाव दृष्टि स्वभावालम्बन स्वभाव रुप अपने आपका निश्चय करना सो निश्चयनय। निश्चयनय से चलेंगे तो स्वभावदृष्टि मे सहयोग मिलता है यह तो स्पष्ट है, परन्तु व्यवहारनय से चलते हैं तो भी स्वभावदृष्टि के लिये परमशुद्धनायका विषय पाने के लिये सहयोग मिलता है। जहा यह जाना कि ये रागादिक भाव औपाधिक हैं, मेरे स्वरुप नही हैं। तो इतना निश्चय हो गया कि मेरे स्वरुप मे रागादिक नही है। तब क्या हैं? बस एक चैतन्यस्वभाव है, औपाधिकभाव है, मेरा नही है। ऐसा निषेध करने मे व्यवहारनयका प्रमुख हाथ है, क्योंकि विभाव औपाधिक है, अतएव मेरा नही है इस विधि से चैतन्य स्वरूप पर पहुच हुई यो नय से भी हमको स्वभावदर्शन मे सहायता मिलती है। इतनी बात अवश्य है कि व्यवहारनय से हम निश्चयनय का उपाय पाते हैं और निश्चयनय के उपाय के बाद हम अनुभव का उपाय पाते हे, फिर अनुभूति आती है, अनुभव मे न निश्चयनय है, न व्यवहारनय है। अनुभव ही एक सर्वोपरि तत्व है।

नय के प्रमाणत्व व अप्रेमाणत्व का निर्णय—यहा यह बात बतलायी जा रही है कि नय प्रमाण है या अप्रमाण। नय को न प्रमाण कह सकते न अप्रमाण कह सकते। अगर नय अप्रमाण है तो सब नयो का जो विषय है वह सब जानने के बाद भी प्रमाण नही रह सकता। अगर कहो कि नय प्रमाण है तो एक वस्तु मे कितनी वस्तु घुस जायगी? एक वस्तु मे मान लो ७ नयो के द्वारा इसमे ७ विषय देखा तो वे ७ वस्तु बन बैठेगे। क्योकि प्रमाण मानलिया और प्रमाण का जो विषय है वह वस्तु कहलाता है। तब नय क्या है? प्रमाण नही, अप्रमाण नही, किन्तु प्रमाण का अंश है। देखो इस प्रसग

मे अपने लाभ की एक बात मिलती है। नयका हठवाद करके जो एक विवाद उठा रखा है वह विवाद समाप्त हो जाता है। अरे नय की मुख्यता मत दो प्रमाण को मुख्यता दो। हाँ प्रमाण से जानने के बाद फिर नय के विषयभूत तत्व का आलम्बन लेकर आप कल्याणमार्ग मे बढ़ेंगे। बढ जायेंगे, ठीक है मगर उसमे भी आधार प्रमाण है। तो सकलग्राही जो ज्ञान है वह प्रमोण है विकलग्राही ज्ञान नय है। प्रमाण मे विशुद्धि अधिक है नयको जो मूल कारण विशुद्धि है ना वह प्रमाणसस्कार केवल पर है विशुद्धि से ही तो हमारा परिचय बनता है तो नय में उतनी अधिक विशुद्धि नही, प्रमाण मे अधिक विशुद्धि है। नयका तो ज्ञान प्रायः सभी लोग करते है पर प्रमाण के ज्ञान बिना वे सब नय कुनय कहलाते है। जो निरपेक्ष नय है वह मिथ्या है, सापेक्ष नय सम्यक है। तो सापेक्षता के मायने क्या कि प्रमाण का संस्कार जिस जीव मे पडा हुआ है, प्रमाण से जिस पुरुष ने पदार्थ का निर्णय कर रखा है उस पुरुष को जो एक नयका ज्ञान होता है वह तो है सम्यक। और प्रमाण से पदार्थ को ग्रहण ही नही किया गया और एक नय से ज्ञान किया वह है मिथ्या।

निरपेक्षनय के प्रयोग का एक उदाहरण— जैसे पर्याय दृष्टि से यह जाना जाता है कि जीव क्षणिक है। क्षण-क्षण में नया-नया जीव है कहिये ऋजु सूत्रनय। जैसे कोई मनुष्य पहले देव हो, अब हो गया मनुष्य, तो कहते है कि अब यह मनुष्य है, देव नही रहा अब पहिले वाला जीव न रही, यह दूसरा जीव है। अच्छा जैसे कोई बालक हो, अब हो गया जबान तो कहते है कि अब वह बेटा न रहा अब वह दूसरा बेटा है। क्योंजी अगर पहिला बेटा माने उस जवान बेटे को तो एक व्यवहारमे मा और बेटा एक साथ तो नही सोते, जबान बेटा हो और मां हो तो वे एक साथ सोते है क्या ? नही। जो छोटा बच्चा है मां के साथ सोता है, अगर जवानको भी मान लिया जाय कि यह तो वही बेटा है, एकान्त कर लिया जाय तो अन्यायकी बात आती कि नही ? इससे जाना जाता कि अब वह नही रहा, नया हो गया, प्रतिक्षण नया नया होता है, यह है पर्यायार्थिकनयका विषय, यह उसके तीन पनकी बात कही अब एक पनमे ही बात देखो—जो सुबह है वह साम नहीं। सुबह दूसरा था क्योकि जो परिणमन नया नया वनता रहता है सो नया नया जीव है, यह पर्यायि दृष्टिसे कह रहे है। जिह दृष्टिसे जो बात कही जाय वह सामने रखी जाना चाहिए, जैसे जब गुण-स्थान और मार्गणाओके अनुसार परिचय कराया जाता। अच्छा बताओ—तिर्यञ्च गतिमे गुणस्थान कितने है ? जीवस्थान कितने है, पर्याप्ति कितनी है ? तो जितनी भी उत्तर पूछे जायेगे उनका उत्तर देनेके लिए तिर्यञ्च गति सामने रखी रहना चाहिए। अगर तिर्यञ्च गतिकी दृष्टि हटा दे उत्तर देने लगे तो कोई देवगतिका उत्तर देगा कोई परिहार विशुद्धि

वाला उत्तर देगा, तो वे सब उत्तर गलत हो जायेगे जिसकी बात पूछी जा रही हो, जो दृष्टि परखी जा रही हो वह दृष्टि सामने रखना चाहिए, फिर कोई विरोधकी विवादकी बात नही रहती। पर विवाद करने वाले लोग करते क्या है कि किसी दृष्टिसे प्रारम्भ किया बोलना वे फिर दूसरी दृष्टिसे बात निरखने लगते है इसलिए वह विरूद्ध हो जाता है।

सर्वनयोका आशय रखकर विवक्षित नयको विवक्षितनयकी दृष्टिमे सुननेपर विवाद का अनवसर—निश्चय दृष्टिसे देखना तो कहिये द्रव्यसे पर्याय होती है, अपने आप होती है, अपनेसे होती है, अपने द्वारा होती रहती है, बराबर चलती रहती है, तोता बना रहता है, निश्चय दृष्टिसे यह बात बोल रहे है और उसीमे छेड दे कि दूसरा कोई निमित्त नही है। अरे यह बोलनेकी क्या आवश्यकता थी ? तुम निश्चय दृष्टि की बात कह रहे तो एक दृष्टिसे देखते जावो। निमित्तकी बात मत छेडो। अगर निमित्तसे छेडें तो यह दूसरी बात आ गई। अब उससे बात करे फिर प्रमाण से बात करें जिस दृष्टिसे जो बात कही जा रही है उसको सामने रखकर जवाब दे तो वह सही है और अगर दूसरी दृष्टि करके जवाब दिया जायगा तो वह बात गलत हो जायगी। यह बात तो स्पष्ट है, कोई कठिन बात तो नही है। हाँ जैसे जब पर्यायदृष्टिमे चलते है तो क्षण—क्षण ही देखिये उस समय द्रव्य-दृष्टिको गौण कर दीजिए हा ठीक है, बौद्ध हमारे मित्र हैं क्षणिकवादी हमारे साथी हैं। जिस समय हम पर्यायदृष्टिमे बने रहते है तुम बहुत ठीक कह रहे, क्षण-क्षण मे जीव नया-नया उत्पन्न होता है, अगले क्षण वह रहता ही नही है, यह कहा कहा जा रहा है ? पर्यायदृष्टिमे लेकिन पर्यायदृष्टि नय है। इस नय का विषयभूत जो पदार्थ है, तत्व है वह पूर्ण वस्तु नही, इसीतरह द्रव्यदृष्टिसे जीव एक स्वभाव मात्र है, वह अपरिणामी स्वभावमात्र है। तो ठीक है, इस दृष्टिमे ये वेदान्ती ब्रह्मा द्वैतवादी हमारे मित्र बन गए जो तुम कहते सो मै कहता हूँ पर ऐसा कहते—कहते इतनी ही तो पूरी वस्तु न हो जायगी। वह तो एक निश्चयनय का विषयभूत तत्त्व है। वह समग्र वस्तु नही है, अब उसीको ही समग्रवस्तु मान लिया तो वह एकान्तवाद हो गया। आत्मा है, स्वभाव मे ऐसा है मगर बीत क्या रही है ? बन्धन है ना, रागद्वेष है ना, परिणमन चल रहे है, आकुलता हो रही है, कहेगे कि नही ? हो रही तो फिर छुटने का प्रयास क्यो करते ? धर्म किसलिए बताया गया ? ज्ञानाभ्यास क्यो करते ? कुछ भी तो तथ्य होगा। कहेगे कि भ्रम हो गया था, उसको दूर करनेके लिए हम ज्ञानाभ्यास करते है। भ्रम मिटा कि हम मुक्त हो गए। तो भ्रम भी तो एक इसमे लद गया, जिसे मिटानेके लिए ज्ञानाभ्यास करना पडता। तो भ्रम तो है रागद्वेषका बाप। रागद्वेष को उत्पन्न करने वाला भ्रम है, इतनी बड़ी गडबडी लगी है, ऐसा तो मान रहे ताकि उस

भ्रमको दूर करनेके लिए हम ज्ञानाभ्यास करें उसके नाती पोते रागद्वेषादिक का निषेध करते। आत्मामे रागद्वेप है ना ? आत्मामे रागद्वेषका बोझ धरा है और कहते कि रागद्वेष नही है, तो केवल स्वभाव माननेसे बात न चलेगी। स्वभाब है, द्रव्य है, पर्याय है और द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है, तो प्रमाणका विषयभूत पदार्थ है वस्तुमें वस्तुको जानें, वह है प्रमाणका विपय तो देखो प्रमाणके द्वारा भी तत्वका अधिगम हुआ और नयोके द्वारा भी तत्वका अधिगम हुआ। पर नयोके द्वारा जो अधिगम है यह है प्रमाणका अश और सकल ग्राही ज्ञान के द्वारा जो वस्तुका अधिगम हो वह है प्रमाण। यो प्रमाण और नयोके द्वारा जीवादिक ७ तत्योका और रत्नत्रयका और भी वस्तुओका जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि समग्र वस्तुओंका प्रमाण और नयोंसे अधिगम होता है।

पुष्ट कार्य के लिय बिवेकियोंको विलम्बका प्रसन्नता से सहन— देखिये वस्तु को एकदम जानकारी मे लिया जाना तो अच्छा था ना, मगर वह बात एक सही ढग से बने, सही बने फिर इसमे कोई कमी नही रहे, सत्य अनुभव हो, बाधा न आये, इसे लौटकर न आना पडे, इसके लिए पहिले तो जानकारी के उपाय की बात कही जा रही है। जो एक मूलतः चलता है नीव बनाकर मकान खड़ा करता है उसको फिर लौटकर नही आना पडता। और, मान लो, नीव तो रखी नही और एकदम जमीन पर ही भीट चिनने लगे तो कुछ दिन चिनने के बाद अगर सद्बुद्धि हो गई और कोई इ जीनियर समझायेगा कि भाई क्या कर रहे ? नीव पहले रखो तब मकान बनाओ। यदि नीव डाले बिना भीट खडी कर दिया तो उसे भीट हटा देना पडेगा, पहली स्थिति मे आना पड़ेगा। नीव खोदनी होगी फिर उस पर भीट बनेगी, और कोई न माने और एकदम भीट करदे, जब १०-१२ फिट हो गई, केवल छत डालने का काम है, मानो छत भी पड़ गई, तो उसमे कुछ समय बाद वह मकान जमीन मे धसने लगेगा, क्रेक हो जायगा और जल्दी ही ढह जायगा, इसलिए ऐसा करो कि चाहे थोड़ी देर लग जाय लेकिन पहले उसकी नीव मजबूत भरो, जब नीव मजबूत हो जायगी तो फिर उस पर बनी भीट बढिया और मजबूत बनेगी, इसी तरह जीवादिक ७ तत्वों की जानकारी करना है तो जानकारी तो करायी जायगी दूसरे अध्याय से पहिले अध्याय से तत्व की जानकारी के उपाय की जानकारी शुरू की गई। यद्यपि कहा जाता है कि पहिले चार अध्यायो में जीव तत्व का वर्णन है, लेकिन जो जीव तत्व की या अन्य सभी तत्त्वो के वर्णन के जो उपाय तो जीव स्वरूप ही है ना इसलिए कह दिया है कि चार तत्वो मे जीव का वर्णन है, पर असल में जो जीव तत्वो की जानकारी करायी। तो दूसरे तीसरे चोथे अध्याय मे, ५ वे मे है

अजीवका वर्णन, और छटे ७ वें मे है आश्रव का वर्णन, ८ वे मे है वध का वर्णन, ९ वें मे है सम्बर निर्जरा का वर्णन और १० वे मे है मोक्ष का वर्णन और जनाव पहले मे किसका ? हम सबको जानने का जो ढग है उसका वर्णन है पहले अध्याय मे

अधिगमके उपायोके अधिगमसे वस्तुका पुष्ट अधिगम— अच्छा तो इतना ज्यादह समय क्यो लगा रहे है पहले अध्याय मे देखा ही होगा। नीव वनाने मे कितनी देर लगती है ? जिस पर भीट तो वनेगी, जिस पर छत आ जायगी वह भीट तो चार कारीगर लग जायेगे एक भीट उठाने के लिए तो वे कोई दो दिन मे उठा ले जायेंगे । अधिक समय न लगेगा, पर नीव भरने के लिए, नीव खोदने के लिए पहले दो चार दिन लगेंगे, फिर उसको भरने मे, नाप तौल मे, सकरी जगह है, वहा सूत डालना भी कठिन है, उसमे देर लगेगी । इतनी देर पसद करते हैं विवेकी लोग । देर लगती है तो लगने दो, निर्माणकर्त्ता वडे सन्तोष से चलता है, इसी तरह जीवादिक ७ तत्वो का वर्णन चलेगा दूसरे अध्याय से मगर उन सब वर्णनो को हम ठीक समझे, युक्ति से समझे, सही ढंग से जाने, इसके लिए जो उपाय बताया जा रहा है पहले अध्याय मे, इसमे वहुत विलम्व लगेगा उसकी जानकारी करो, समझ जावोगे । अव जिसे मात्र झोपडी वनाकर ही रहना है वह नीव का विलम्व नही सह सकता । जिसको एक थोडी छाया करना है, मडप जैसा थोडा बनाना है वह नीव का विलम्व न सह सकेगा । उसमे खर्च भी अधिक है समय भी वहुत लगेगा । उसको बासो मे खडा कर दिया । उसके ऊपर वरसाती लगा दिया, काम बन गया । काम तो बन गया । उसका मगर सही आनन्द, सही ढ ग, सदा के लिए वेफिक्री उसे न मिलेगी । वह तो झोपडी है, इसी तरह कोई कहे कि हमे क्या करया नय और नयका स्वरुप जान करके ? उसके समझने मे हमे क्यो उलझने मे फसाते हो ? हमे तो जल्दी समझा दो जो दूसरे अध्याय मे वर्णन है । कोई मर जाता है विग्रह गति कहलाती है । जोवयो जाता है, यो कहलाता है । बडी जल्दी बात समझ मे आ जाती है । हमे तो जल्दी बात बता दो, हमे तो झोपड़ी पसद है, अगर ऐसी भोपडी पाकर न आनन्द रहेगा । न आगे के लिए निर्विघनता आयगी, इस लिए देर लगती है तो लगने दो । यह बताया जा रहा हैं कि प्रमाण और नयके द्वारा वस्तु तत्व का अधिगम होता है । देखिये इस विलम्ब मे भी चू कि सारा नीरस न बन जाय और प्रयोजन की सारी बात झलक जाय, यह प्रकरण यदि १५ दिन तक चले तो १५ दिन तक हम कैसे धीर रह सकेगे ? कैसे हम वहा हितकी बात जान सकेंगे ? तो वह भी सब बात बीच-बीच मे बताते जायेंगे, उसे भी सुनना, मगर एक बात तो यह जान लीजिए कि पदार्थ के जानने का जो उपाय है, प्रमाण और नय है वह एक कितनी ठोस चीज है, आप स्वयं

कह उठेंगें। जिनेन्द्र देवकी वाणी, स्याद्वाद का दर्शन जयवन्त हो, जिसते इतनी बड़ी ठोस उपाय की भूमिका से लेकर हमे तत्व ज्ञान मे पहुंचाया है बतलावो यह उपाय अन्यत्र कहां मिलता है ? बडे-बडे दार्शनिक शास्त्र भी है मगर हमारा ठोस उपाय कहां मिलता है ? थोडा कह देते है। पदार्थ की जानकरो का उपाय क्या है ? इन्द्रिय और पदार्थ, इन दो का मिलान हो गया कि जानकारी हो गई। जीव, शब्द और कान मिल गए, बस जानकारी हो गई। रूप और आंख दोनों आमने सामने हो गए, जानकारी हो गयी। नाक और गंध के परमाणु इनका स्पर्श हो गया, जानकारी हो गई, यो सीधें सादे ढंग से कहने वाले लोग तो बहुत है मगर क्या ढग है ? कैसे प्रमाण बनता है ? प्रमाण करने वाला कौन है ! प्रमाण का विषय क्या है ? प्रमाण भी किसका स्वरूप है ? जरा इसका विशेष वर्णन चले तो एक बडी स्पष्ट जानकारी होती है कि पदार्थ का अधिगम इस ढग से हुआ करता है।

आर्षवचनों की श्रद्धाका प्रभाव— आत्मानुशासन मे सम्यग्दर्शन के जो १० भेद किए गए है वे आज्ञा सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व आदिक १० भेद आये हैं ना, उसका क्या प्रयोजन है ? कितने ही पुरुष तो भगवान ने कहा है, उनकी आज्ञा मान करके वे जब चलते है तो जिनकी आज्ञा मानकर चलते उसके जानने मे ही एक चैतन्य प्रकाश होता है, अनुभव होता है, तो ऐसे सम्यग्दर्शन का नाम है आज्ञा सम्यक्त्व तो अब देखिये करणानुयोग के ग्रन्थो में धवल महाधवल षट्खन्डागम, इनमे कोई थोडा प्रवेश पाले, थोडा जीवस्थान को समझले तो प्रवेश पा सकता है। तो जब गुण स्थानो मे वर्णन आता है कि किस समय काम हुआ, जहा एक-एक समय मे एक-एक बात बतायी जाती है, ८ वे ९ वे गुणस्थान मे एक एक समय के निषेक बताये जाते है, पहिले समय मे कितने निषेक आये, दूसरे समय में कितने आये, तीसरे किस समय मे आये। किस समय मे कहां क्या बात आती है ? जहां यह बात चलती है और एक सामने उतरती है तो वही एक सम्यक्त्वका आधार बन जाता है। भक्ति भी सम्यक्त्वका आधार बन जाती है जब कभी बहुत तीव्र अतुल भक्ति होती है, प्रभु के स्वरूपमे गदगद हो जाते हैं और गद्गद होनेका चिन्ह है उसकी आंखोंमे प्रसन्नताके भक्तिके अश्रु आ जाते है और उन गदगद भावोके समय अगर कोई स्तवन बोले तो उसके अक्षर स्पष्ट न बनेंगे। गदगद वाणीमे अस्पष्ट वाणी मे जहां आनन्द के अश्रु ऐसा झलक रहे है जहां मानो मोह को धो डाला है ऐसे अश्रुवोंसे स्नान किया है मुख जिसने, ऐसा जो गदगद होकर भगवानकी अस्पष्ट वाणीमे जो स्तुति कर रहा है ऐसा पुरुष उस भगवानक स्वरूपमे प्रवेश होने के प्रतापसे वहां सम्यक्त्व पानेका अवसर पा लेता है। तो यह समझ लीजिए–जैन शासन की कुछभी बात कही जाय, सुना जाय ढग से तो

वही इसके सम्यक्त्वका कारण होता है। पर कोई ऐसा ही नियम करके बैठ जाय कि हमे तो मन्दिर जाना ही नही, हमे तो व्यारकान सुनना ही नही, हमे तो कुछ करना ही नही, ऐसा निर्णय करके बैठ जाये तो उसे इसका अवसर कहा से मिलेगा ?

स्याद्वादगर्भित जिनवाणीकी उपासनामे आत्मबोधाभ्युद्ध— एक सडक के किनारे एक मन्दिर था, उस मन्दिर के सामने एक चबूतरे पर रोज जैनशास्त्रो का व्याख्यान होता था। एक धर्मविमुख जिसे जैनधर्म से विद्रोह था वह प्रतिदिन उसी समय उस सड़क से निकलता था उसे जैन धर्म से इतना द्वेष था कि जब वह उस शास्त्र सभा के पास से निकलता था तो अपने कानोमे अंगुलिया लगा लिया करता था। इस तरह करते करते बहुत दिन हो गए। एक दिन चलते हुए मे उसके पैरो मे कांटा लग गया, उसे उसी जगह बैठकर निकालने लगा। उस समय शास्त्र के कुछ शब्द उसके कान मे पड गए। चर्चा यह चल रही थी कि देवो के, भूत प्रेतो के शरीर मे छाया नही होती, ये शब्द उसके कान मे आ गए और सुनकर आगे चल दिया था। वह बड़ा आदमी। जब वह अपने घर पहुँचा तो रात को अचानक ही उसके घर मे एक ऐसी घटना घट गई कि उसके घर मे ४ डाकू भूत प्रेतादिक जैसा भयानक रूप बनाकर उसे भयभीत करके धन हड़पने आ गए। पहले तो भूतप्रेत समझकर भयभीत होकर उससे भागना चाहा पर उसे कानो मे पडे वे शब्द याद आये, भूत प्रेतो के शरीर मे छाया नही होती, सोचा कि देखे तो सही कि इनकी छाया जमीन में पड़ती है या नही ? देखा तो उनकी छाया जमीन मे पड रही थी। सोचा-अरे ये भूत प्रेत नही, ये तो मनुष्य है। बदमाश लोग है, फिर क्या था ? उसके पास शक्ति थी, साधन था। उन्हे भगा दिया। उसने सोचा कि देखो—एक ही वाक्य के शब्द सुनने मात्रसे हमारा धन बच गया, हमारा कितना उपकार हो गया, यदि जिन वाणी के वे शब्द अधिकाधिक सुने जांय तो उसके लाभका तो कहना ही क्या है ? उसे जैनधर्म मे श्रद्धा हो गई, वह जैन तत्व ज्ञान का अभ्यासी हो गया। तो शास्त्र का वचन, जिनेन्द्रवाणी का वचन चाहे वह कठिन हो न्यायका हो, सिद्धान्त का हो, चरणानुयोग का हो, भक्तिका हो। कुछभी शब्द सुनकर वही आधार बन जाता है कि इसको सम्यग्दर्शन बन जाता है, पर ऐसा सम्यदर्शन बनेगा अपने ही ढ ग से। ज्ञान बढेगा, विकल्प छूटेगा और अपने स्वरूपका अपने आपमे दर्शन होगा। अनुभव होगा और वह करने लगेगा। सहजआनन्दका अनुभव देखो कोई बहुत देर से भोजन बनाता है और बहुत देरसे तीन चार घटे बनानेके बाद वह भोजन खाने मे आता है और कोई कुशल व्यक्ति थोडी देर मे भोजन बनाकर खा लेता है, खाना तो सब का हुआ मगर खाना जिस विधिसे होना चाहिए वह विधि तो सबकी हुई, लेना,

मुखमें डालना, चबाना, गुटकना, पचाना वह सबको करना पडा, मगर किसीको उपाय तीन घन्टे करना पड़ा, किसीको १५ मिनट करना पडा, किसीको तत्क्षण करना पडा । यह तो अपने अपने अलग अलग भवितव्यकी बात है, मगर बिधि वही थी, ऐसे ही जो भक्ति मार्ग से, बड़े कठिन तत्वके जानकारीके मार्गसे अनेक तरहसे जो चलता है तो जिसका जैसा भवितव्य है वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, तो सम्यग्दर्शन जिसको भी होता है सब को एक ही प्रकार से होता है, उसमे नाना विधियां नही है, पर उस एक प्रकार की विधिसे पहले नाना प्रकारकी विधियां हैं ।

यथार्थ प्रतिभास का महत्त्व—पशुपक्षीको भी सम्यक्त्व हो जाता है । वे कहां ७ तत्वोंके नाम जान पाते हैं ? कहां इतना अध्ययन कर पाते है, बोलचाल भी नहीं है, गुरू शिष्य भी नही है, कल्पना करो कि कोई बैल बैठा है, खा पीकर बैठा है छायामे, जुगा लिया कर रहा है, मुख चला रहा है और उसके चिन्तनमे आ गया, उसके भी विशिष्ट मन है । कुछ चिन्तनमें आ गया अपने आपके भीतरकी बात सोचनेमे आ गई । देखो जाननेके लिए शब्द ज्ञानकी जरूरत नही है, जैसे एक बालक तुरन्त पैदा हुआ और वह जान रहा है कि भीट है उसे जान गया तो जाननेमे उस बालकको कुछ सिखानेकी जरूरत नहीं पड़ती मगर यह भीट है, उसका भीट नाम है, यह इसतरह से बनायी जाती है, इन बातोंको सीखने के लिए नाम की जरूरत है, मगर पदार्थ प्रतिभास के लिए नामकी क्या जरूरत है ? सीधे यो ही हो गया, इसीतरह पशुओ को एक सीधा परिचय हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया, जीव, अजीव, आश्रव बन्ध इनके नामके परिचयकी क्या जरूरत है ? तो इस नामके द्वारा जो भी जाना जाता है वह बिना नाम और शब्दके जाना जाता है । सम्यग्दर्शन होगा तो वह एक ही विधिसे होगा । उनका निमित्त है ७ प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम । तो तिर्यञ्चके क्षय का तो काम है नही ७ प्रकृतियोका चिन्तन करते नही, भले ही तिर्यञ्चमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं मगर क्षय नहीं करते । मनुष्यभवमे उनका क्षय किया और सम्यक्त्व प्रकृतिके क्षय करनेमें कुछ थोडीसी कमी रह गई, मृत्यु हो गई, तिर्यञ्चमे पैदा होना है वहां हो गयी पूर्णता, और क्षायिक सम्यक्त्व हो गया तो मरकर वह भोगभूमि तिर्यञ्चमे जायगा और क्षायक सम्यग्दृष्टि कहलायगा पहिले तिर्यचायु बाधी हो पश्चात क्षायिक सम्यक्त्व हो तो मरकर भोग भूमिज तिर्यञ्च होगा । मगर कोई भी देव, कोई भी नारकी कोई तिर्यञ्च ७ प्रकृतियोका क्षय नही करता, ७ प्रकृतियों का क्षय करनेका अवसर एक मनुष्यको ही है, आप सोचे तो सही कि यह मनुष्यभव कितना अमूल्य है कितने महत्त्वका पद है और इसको जैसे कहते है गाजर मूलोकी तरह काट दिया, इसीतरह इस मनुष्यभवको विषय कषायोमे यों गवा दिया तो ये

इतने अमूल्य क्षण कैसे व्यर्थ जा रहे है ? क्या इसके लिए मनुष्य जीवन है ? मनुष्य जीवन इसके लिए नही है। आत्माका ऐसा परिचय पावो, ऐसा ज्ञान करो कि आत्माका सदाके लिये उद्धार हो जाय। तो उस आत्मतत्वके परिचयके लिए ७ तत्वोंकी बात कही जायगी। उन ७ तत्वोका परिचय होता है प्रमाण और नयोके द्वारा। प्रमाण कहते हैं वस्तुके सर्वांश ग्रहण करने वाले ज्ञानको, नय कहते हैं वस्तुके एक अंशको ग्रहण करने वाले ज्ञानको। इन दोनो मे प्रमाणमे विशुद्धि अधिक है, प्रमाणमे पूज्यता है, इसी कारण प्रमाण नयेरधिगमः मे प्रमाण शब्द पहले दिया है। अर्थ हुआ प्रमाण और नयोंके द्वारा ७ तत्वोका सम्यग्दर्शन आदिकका सर्व पदार्थोंका अधिगम होता है।

जिननाथके उपदेशमें प्रमाण और नयकी अनर्घ्य देन—मोक्ष शास्त्रके ६७ वे सूत्रमे यह प्रकरण चल रहा है कि समस्त तत्वोका भावोका, पदार्थोंका अधिगम परिचय प्रमाण और नयोंसे होता है, इस सम्बन्धमे प्रमाण और नयके स्वरूपकी बात थोडी कुछ कही गई है। अब जरा कुछ प्रमाणके विषय पर विचार कीजिए। नयको तो कोई दार्शनिक मानता नही। अन्य दार्शनिको के यहा नय नही है प्रमाण ही प्रमाण है। प्रमाणरूप मे प्रमाण नही, किन्तु जो उन्होंने समझा एक देश, जो कुछभी समझा उनके लिए वही पूरा प्रमाण है, नय की बात वहां नही चलती है। स्याद्वाद मे ही नय है, अन्यत्र नय नही है। अगर नय न हो तो स्याद्वाद न आयगा किसीने कोई एक देश जाना किसीने और कुछ जाना, फिर जो कुछ जाना उसकी दृष्टि बनी, उनका समुदाय तो न रहा तो यह सब झगडा बन जाता। स्याद्वादके विरोधी दार्शनिक नयोको मान ही नही सकते। और नय मान लिया तो सब विवाद दूर हो जाता है। उसमे यह खुलासा होता है कि इन्होने इस दृष्टिसे यह कहा इस दृष्टिसे यह कहा, दृष्टिकी गुंजाइस ही नही अन्य दार्शनिकोंके यहां। जो कहा कि पूरा प्रमाण समग्र वस्तु है तो इसमे प्रमाणका विषय क्या आया है ? प्रमाणका विषय बताया जा रहा था न कि सर्व देश का परिचय प्रमाण कहलाता है, याने समस्त अंशोका समग्र अंशोका जो परिज्ञान हुआ वह प्रमाण है। वस्तुके अंक्ष अंशका ज्ञान होना नय है और सर्वदेश वस्तुका परिचय करना प्रमाण है

क्षणिकवादियों द्वारा प्रमाण विषयभूत अन्शीके अभावका कथन—प्रमाणकी बात सुनकर क्षणिकवादी दार्शनिक यह कहते हैं कि तुम क्या उन्मत्तवत बात करते हो ? अंशी तो कोई होता ही नही है जो एक एक अन्श है वही एक पदार्थ है। न अन्श होता न अन्शी होता। जैसे एक एक प्रमाणु पूरा पदार्थ है और परमाणु नही परमाणुमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का समुदाय नही, किन्तु रूप परमाणु स्वतन्त्र पदार्थ है, रस परमाणु स्वतन्त्र, गन्ध

परमाणु स्वतन्त्र, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श जिसमे पाये जाये ऐसा कोई एक परमाणु हो सो भी नही, किन्तु सुलक्षण मात्र क्षण क्षण वर्ती ऐसा अभेद कोई जो अंश है, जिसे जैन लोग अलग अन्श कहते हो वही वस्तु है पूरी और उसका परिचय करना ही प्रमाण कहलाता है, अंशी कोई चीज नही। अंशी तो इसमें आरोपित है। जैसे गेहूँ का ढेर लगा है तो उसमे गेहूँ का ढेर आरोपित है, ढेर कोई वस्तु नही है। एक एक दाना है और बहुत से दानोका एक पिण्ड बना तो वह आरोपित है, वास्तवमे वस्तु नही है, यह क्षणिकवादी कह रहे है। तो इसीतरह दुनियामे ये जो कुछभी भीट पत्थर वगैरह दिखते हैं ये सब आरोपित पदार्थ है, वास्तवमे तो रूप परमाणु, रस परमाणु ऐसे ऐसे द्रव्य है वे द्रव्य जरा पास पास आ गए तो उनको मान लिया गया, जैसे गेहूँ के दाने आपसमे आगए तो ढेर कोई चीज तो न रहेगी ढर तो एक काल्पनिक चीज हो गई, इसीतरह से ये रूप परमाणु पास पास आ गये तो लोग मान लेंगे कि यह स्कध है, पिण्ड है, पदार्थ है स्कंध कोई चीज नही, अवयव कोई वस्तु नही, जो एक अणु है, अवयव है, अन्श सो ही पदार्थ है, और ये कोई पदार्थ नही।

क्षणिकवादीओ द्वारा अन्शोका आकार ज्ञानमें न सोंपा जानेके कारण अन्शीके अभाव का समर्थन—यहाँ एक बात और भी समझियेगा। क्षणिकवादी दार्शनिक कह रहे है कि ज्ञानमे जो चीज आती है तो किस तरह आती है, किस तरह ज्ञान बनता है कि ये बाहरी पदार्थ अपना आकार ज्ञानको सौपते है तब यह ज्ञान उनको प्रत्यक्ष करता है, कैसा परस्परका लेन देन है कि ये बाहरी पदार्थ अगर स्मरण करते हैं-किसका ? ज्ञान साहबका तब यह ज्ञान साहब उन पदार्थोको जाननेका आशीर्वाद देते है। इस तरह ज्ञान बनता है। देखिये क्षणिकवादकी बात चल रही है। सुननेमे तुरन्त भला लगेगा कि ठीक ही तो कह रहे है क्या बात है, जैसे दर्पणमे बाहरी पदार्थोका आकार आता है तो उन पदार्थोने अपना आकार सौंप दिया और दर्पणने उसको फिर व्यवस्थित कर दिया, झलका दिया, जना दिया ऐसे ही ये बाहरी पदार्थ इस ज्ञानको अपना आकार सौंपते हैं और यह ज्ञान फिर उन बाहरी पदार्थोको स्पष्ट प्रत्यक्ष जानते है सो इसमें अन्शी अपना आकार नही सोंपते किन्तु ये अलग अलग अन्श ये ही अपना आकार सौंपते है इस तरह अन्श ही वस्तु है अन्शी कोई पदार्थ नही है। 'और देखो क्षणिकवादी दार्शनिक ही कहे जा रहे कि जब अन्शी अपना आकार नही सौप सकता याने यह अणु ही अपना आकार सोंप रहे फिर उनसे इतना बडा है, लम्बा है, चौड़ा है ऐसा आरोप किया जाता है' तब समझ मे आता है तो आकार सौपते अन्श अन्शी आकार नही सौपते तो जब अन्शीने अपना आकार सौंपा तब ही अन्शोंका परिचय हुआ, लेकिन जैन लोग ... अन्य अन्य दार्शनिक तुम तो बिना मूल्यमे ही वस्तुको खरीदना चाहते।

अन्शी जब अपना आकार ज्ञानको नही सौंपते और फिर उस सम्बन्धमे अन्शीको जानना कैसे बता सकते हो। अन्श अपना आकार सौंपते तब यह ज्ञान अन्शको जानता है। इसके अन्श ये कोई भी अपना आकार नही सौंपते और फिर भी उन अन्शीको जाननेकी बात सोचैं तो तुमने तो यह मुफ्तमें खरीद लिया अन्शीका जानना इसलिए अन्श ही वास्तविक पदार्थ है। अन्शी पिण्ड यह कोई चीज नही। तव प्रमाणको यह कहना कि जो सर्वांशको जाने सो प्रमाण है। सर्वांशका तो ज्ञान होता ही नहीं अन्शोंके पिण्डका तो ज्ञान होता नही, ज्ञान होता है तो अंश अंशका होता है। यह ही पूर्ण पदार्थ है। जो सौगत सिद्धान्त है

प्रमाणविषयभूत अंशीकी सिद्धि—अब जरा क्षणिक वाद की उक्त दों आशंकाओं पर विचार करो। जब यहा हम कुछ नजर डालते हैं इन्द्रिय द्वारा जो हम इसे देखते हैं, जो परिचय वनता है तो बतलावो अणुका वनता है या पिण्ड का अशीका ज्ञान होता है। परमाणु तक का भो हमें परिचय नही होता हैं। तो इतना स्पष्ट हो रहा है इन स्कंधोका, अंशियोका और कह रहे अश ही वास्तविक पदार्थ है" अशी तो आरोपित चीज है। अच्छा एक बात और देखो-अगर अंशी वास्तविक चीज नही है घडा वास्तविक चीज नही है बौद्धोके सिद्धान्तमे किन्तु उसमे रहने वाला एक एक रूप, रस, अणु, अण्ड गन्ध अणु ये है वास्तविक पदार्थ। अगर ऐसी बात है ती फिर यह बतलावो कि वह रूप अणु से कोई पानी भर सकता ? अरे घडे से ही पानी भरकर वह दे सकेगा। अगर घड़ा कोई वास्तविक वस्तु नहीं है तो फिर उससे अर्थ क्रिया कैसे बनेगी ? इस पर उन दार्शनिकोका यह कहना है कि अर्थ क्रिया तो प्रत्येक अणुमें होती रहती है और सब अणुकी अर्थ क्रिया सब बराबर है। जैसे सेनामे सेना क्या चीज है ? आरोपित है, सेना कोई वस्तु है क्या ? प्रत्येक सिपाही प्रत्येक घोड़ा, प्रत्येक हाथी यह ही तो चीज है, सेना कोई वस्तु है क्या ? अरे घोडा सिपाही रथवाले इन सबका जो समूह है इसका नाम सेना है, तो यह बतलावो कि सेना मार पीट करती है या एक एक सिपाही ? अर्थ क्रिया वह सब सिपाहियो मे हो रही है। तो देखिये सबमे काम एक सा बन रहा इसलिए कहते कि सेना अर्थ क्रिया करती है सेना ने इसका प्रध्वस कर दिया। जैसे कहते है बाग फल देता है। अच्छा बताओ बाग कोई चीज है क्या ? एक एक वृक्षका जो समुदाय है, अपनी कल्पनामे मान लिया कि हजार वृक्ष का जो समुदाय है वह बाग है ऐसी बात कल्पना मे लाकर कहते है कि बाग फल देता है। यह आरोपित बात है। फल तो एक एक वृक्ष देता है तो इसी प्रकार घडेमे पानी भरा तो भ्रम है लोगोको कि घडे ने पानी भरनेका काम किया। प्रत्येक अणु पानी भरनेका काम किया और वह काम चूं कि एक समान है इसलिए वह समस्त

अणुओंका काम एक है यो भ्रम हो गया। इसलिए घट कोई चीज नही है किन्तु अणु अणु ही वास्तविक पदार्थ है।

स्कंधोंकी अणुबन्धरूपता—अभी जब अन्य दार्शनिकों की बात भी सुनेंगे समझेंगे कि आखिर वे किस दृष्टिसे कहते है वहां भी तो बड़े बड़े संत ऋषीजन हुए है दिमागसे ही तो उन्होने कोई बात समझी है तो जब वहा प्रवेश करेंगे तो ऐसा जाहिर होगा कि यह ठीक ही तो कह रहे है इसमे गडबड की क्या बात है ! जैन भी तो कहते हैं कि वास्तवमें एक एक परमाणु ही पदार्थ हैं और उन परमाणुओंका बन्ध हो गया स्कंध हो गया लदे हुए ये सब मायारूप ही हे लेकिन कुछ जरा गम्भीरतासे विचारनेपर आपको जैनाचार्योंकी प्रतिभा का पता चलेगा। सुननेमे तो यह बडा अच्छा लगता है। यो तो सुननेमे जो सस्ता धर्म होता है वह कितना बढ़िया होता है, जिसमे त्यागकी गंध भी नही है। तो इसका अर्थ यह नही हुआ कि जो सुननेमे सुहाये वह बढिया चीज है। सुननेमे तो पाप सुहा जाता। अब यहां पर विचार करें। उनका कहना है कि एक एक परमाणु अर्थ क्रिया करता है और वह समान है तो ये परमाणु क्या जुदे जुदे रहकर ऐसी विज्ञान अर्थ क्रिया करते है या पास पास रहकर अर्थ क्रिया कर सकते। न जुदे रहकर कर सकते हैं, न पास रहकर कर सकते है। किन्तु बद्ध होकर ही कर सकते हैं। जब उन अणु अणु का भी परस्पर बन्ध हो जाय कि आप जैसे चौकीसे सरकायेगे तो चौकी पूरी सरकेगी। कोई पास पास परमाणु नहीं हैं, पास पास रहे तो एक खूट सरकानेसे उतना ही सरकता, और न सरकता। आप सब लोग पास पास बैठे हैं तो इसके मायने यह तो नहीं कि अगर एक भाई को यहां बुलाले तो सारे भाई यहां खिच आयेंगे। पास पास बैठे है। भिन्न भिन्न है, मगर वे बधे हो यह बात नही है। इन स्कधोमे तो सब अणुओंकी गुणसंकृति हो गई। अणुओका जो एक स्वतन्त्र निर-पेक्ष कार्य है वह अब नही बच रहा। यह तो कोई प्राकृतिक बात चल रही है। दूसरी बात जो क्षणिकवादी जन कहते है कि अंश ही अंश सर्व कुछ पदार्थ है अंशी नही और उसका वे प्रमाण क्या कहते हैं कि दूसरी कल्पना करने पर पहली कल्पना मिट जाय तो समझ लो कि वह कल्पना की ही चीज थी। उस कल्पनामे वास्तविक वस्तु न थी। एक उनकी इसमे दलील भी है, क्या ? जैसे बादल रहते है तो कभी बादलमें ऐसी कल्पना हो जाती है कि यह तो शिखर है, बादलका ही एक आकार ऐसा बनता है कि लगाता कि यह शिखर है, और थोड़ी देरमे देखते है तो यो लगता है कि यह बादल अब मैदानसा बन गया, प्लेटफार्मसा बन गया। एक नई कल्पना बनी कि यह तो प्लेटफार्म है, पहली कल्पना नष्ट हो गई। पहली कल्पना भी है क्या ? तो नवीन कल्पना होने पर पहली कल्पना न रहे तो

समझना चाहिए कि पहली कल्पना पर विषयभूत जो कुछ है सो भ्रम है, यह ही तो भ्रम होनेका एक समझनेका उपाय है ना। तो इसीतरह ये जो स्कध है, अवयवी है, ये कल्पना मात्र है लेकिन जैन शासन समाधान देता है कि यहां तो वादलोकी तरह वात नही दिखती नई कल्पना होनेपर पुरानी कल्पना मिट जाती है, जो तुमने समझा वह ज्ञान भी तुममें बना रहता है और कल्पना नई नई उठती है और तुम वही हो इसलिए अंशी आप अवस्तु नही है किन्तु अंशी भी एक प्रमाण का विषयभूत है। एक एक परमाणु मे भी यह अंश है, यह समग्र अणु अंशी है यो वे परमाणु व्यक्त हो रहे और फिर उसमे और तरहका स्कधका भी वन्धन हो गया है, तवऐसीवात वहा वन गई है।

भेदा भेदात्मकताकी प्रतिमूर्ति—यहां एक वात समझने की और है कि जैसे लोग गणेशकी मूर्ति वताते है ना एक पुरूष है जिसके गलेमे हाथी की सूंढ फिट है और चूहा उसकी सवारी है तो भला वतलाओ ऐसा कोई आदमी हुआ था क्या ? और बताते हैं कि वह पार्वतीका लडका था और उस पर भी वताते ऐसा है कि पार्वती एक तालावके पास वैठी वैठी अपने शरीरका मैल निकाल रही थी तो वह मैल इकट्ठा हो गया और उस मैल से फिर वह पुत्र पैदा हो गया। तो कोई ऐसा पुत्र था क्या ? अरे यह सब एक अलकारिक चीज थी। कोई जमाना था कि वुद्धिमान लोग वहुत रहते थे। वे किसी वातको सीधी न कहकर अलकार की भाषामे कहा करते थे। जैसे कि अव भी कुछ चतुर लोग ऐसे पाये जाते है कि सीधी वात नही कहते है किन्तु टेढी टाढी वात कहकर रागसे धडका कर बोला करते है तो वहा एक अलंकार रूपमे वोलनेकी पृथा थी। वह गणेश भी क्या है ? वह एक स्याद्वादकी अनेकान्तकी मूर्ति है। स्याद्वादमे दो दृष्टिया होती है। (१) द्रव्यदृष्टि, (२) पर्याय पर्यायदृष्टि। अभेददृष्टिका प्रतीक तो वह गला है, सूंढ है कि देखो पुरूपका तो सूढमे एक पना बना रहा है। जैसे खिलौना मे अलग से लगा देते हैं वहा तो द्वैत है लेकिन यहा द्वैत न रहा एक ही पुरूप वन रहा ऐसा अभेद फिर होता है और चूहेकी जो सवारी है वह ऐसा भेद करती है कि जैसे चूहा किसी कागज या वस्त्र को कुतर कुतरकर इतने सूक्ष्म टुकडे कर देता है कि जितने सूक्ष्म टुकडे आप कतरनी वगैरह से भी नही कर सकते। तो ऐसा भेद करनेको प्रकृति है चूहेकी वह भेद तो हुआ चूहा और अभेद हुयी हाथीकी सूंढ। यो भेद और अभेद दोनोकी एकता से सम्वन्धित है ऐसा एक अनेकान्त मूर्तिका चित्रण है। तो वह मूर्ति भेद और अभेदका एक प्रतीक है। भेद कैसे करते ? जैसे आत्मा एक है लेकिन एक घटेमे जितने क्षण होते हैं उतने क्षणमे प्रतिक्षण नया नया आत्मा बनता रहता है वह कोई एक आत्मा नही है, ऐसे इस पर्याय मे भी भेद कर दिया गया। यही एक पूर्ण

स्तु है

वस्तुसीमा—भला अपने स्व सम्वेदन ज्ञानसे सोचो तो सही कि मे आत्मा क्या मेट जाने वाला हूँ। वही मे एक हूँ। जो पहले था वही मैं बाद मे यद्यपि समझानेके लिए बहुत सी दलीले अनेक वैज्ञानिको द्वारा दी जाती है और सम्भव है कि दलीलोसे सत्यकी ओट भी हो जाय लेकिन जो विवेकी पुरूष है वह इस सब सत्य की ओट मिटा देता है। जैसे आजकल यह सिद्धान्त बन गया कि पथ्वी गोल है गेंद की तरह और वह चलती है। और चन्द्र कुछ थोडा थोडा चलता है उस आधार पर सब कुछ साबित कर दिया, अब देखो क चीज स्थिर होना और एक चीज अस्थिर होना उसमे जो सिद्धान्त लगता है वही सिद्धान्त इसमे लगता है। जैसे एक दिन होता है १२ घटेका और फिर एक रात होती है १२ घटे को, यो २४ घटेमे रात दिन पूरे हो गए। प्रातः सूर्य निकला और सामको डूब गया तो एक दिन हो गया। और सूर्य सामको डूबा और प्रात. काल उदय हुआ तो एक रात हो गई। एक सिद्धान्त यो अगर मान ले कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी चलती है तो चलते चलते पथ्वीका जब एक चक्कर पूरा हो गया तो वह एक दिन पूरा हो गया। देखिये माननेको तो कुछ भी माना जा सकता है पर वास्तविकता क्या है, इसके समझनेके लिए बहुत बुद्धि लगानी पडेगी बडी युक्तियोसे समझना होगा तब समझमें बात आयगी कि वास्तविकता क्या है। यों समझने के लिए तो यह भी कहा जाता कि तेलकी एक एक बूंद जलती है, दीपक बनता है तो एक एक बूंदका एक एक दीपक बन जाता है, और नये नये सेकड़ो बूंद आ आकर वह एक एक दीपक बना है इसलिए मानना ऐसा पड़ता है कि वह एक दीप है इसीतरह इस शरीरमे समय-समयपर आत्मा पैदा होते रहते है तो वहां भ्रम ऐसा हुआ कि यो माना कि मे आत्मा वही का वही एक हु यह है एक आत्मा पर अनुभव सिद्ध तो यही है कि जितने अनुभव वाले है बे सब सत आत्मा है सत्ताका स्वरूप अनुभव से ही बनता उस स्वरुप ज्ञानाद्वारा सिद्ध बात सर्वत्र विदित हो जाती जब जितने अखंड परिणमन है उतने पदार्थ है। ठहर गया ना यह सिद्धान्त

अंशीकी सद्रूपता—इन अणुओकी स्कन्धरूप बात देखकर क्षणिकवादी कहते है कि स्कन्ध कोई चीज नही, परमाणू ही परमाणु है और उस परमाणु ज्ञानका विषय है एक एक अणु स्कन्ध नही अणुमे भी परमाणु भी नही परमाणु तो एक पिण्ड है किसका पिन्ड है ? रुप, रस, गन्ध, स्पर्श इन चारका पिन्ड है। वास्तविक तो रुप अणू रस अणु ज्ञानाणु ज्ञानको भी अणु कहते है। एक एक कोई आत्मा ऐसा पूरा लम्बा चोडा नही है। किन्तु जो एक क्षणका एक ज्ञान हो वहां पूरा एक पदार्थ है इस तरह भेद दृष्टिका आधार बना

कर चलने वाले क्षणिकवादी कह रहे है कि इन्द्रिय द्वारा अ शका ज्ञान होता है और अ शी की वात तो एक कल्पना मे उठाई जाती है। भला वतलाओ इन्द्रियके द्वारा अ श का किसी में ज्ञान किया एक एक परमाणु कोई इन्द्रिय द्वारा जान सकता क्या ? यह भी जाना जा रहा वह भी जाना जा रहा यह अव वद्ध परमाणुओकी एक विकृत दशा है। विकृत दशामें रहने वाले अनेक परमाणु है वह भी एक दशा है। अच्छा थोडी देर को मान लो वह स्कधकी वात है तो अव एक आत्म वस्तुमें परख कीजिए ना। एक आत्मा भेदकान्त वादी कहते कि आत्मा एक नही है सुख परमाणु अलग है ज्ञानपरमाणु अलग है। ये सव अलग अलग पदार्थ है और वे पदार्थ एक जगह आ गए तो लोगोको भ्रम हो गया कि आत्मा कोई वस्तु है। अव देखिये कितने काम उल्टे चल रहे हैं। जव कि यहा यह समझा जाता है कि आत्मा एक अखण्ड वस्तु है, उसे समझानेके लिए आत्मामे अंश किए गए हैं। आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, आनन्द है, यह तो समझानेके लिए भेद किया गया है। वास्तवमे वस्तु तो अखण्ड है। तव इसके विरूद्ध क्षणिकवादी क्या कहते है। ज्ञानाणू वह है वास्तविक वस्तु सुख अणु वह है वास्तविक वस्तु, यह है वास्तविक पदार्थ और एक आत्मा मान लेना यह आरोपित पदार्थ है। देखिये-क्षणिक वादियो ने भी आखिर अखण्ड को ही माना है वस्तु और ब्रह्माद्वैत वादियोंने भी अखण्डको माना है वस्तु, स्याद्वादियो ने भी अखण्ड को माना है वस्तु, मगर किसीने टुकड़े कर करके ऐसा आखिरी टुकडा हो जाय कि जिसका दूसरा टुकडा न हो उसे कह डाला अखन्ड, और किसीने अनेकका अभेद करके माना डाला अखंड किन्तु एक अखण्ड वह एक वस्तु है जिसका कोई दूसरा टुकडा नही किया जा सकता। बात यह चल रही है कि अंशका परिचय होना वह है नय लेकिन समग्र अशीका परिज्ञान होवे वह है प्रमाणका काम देखिये जितने भी सम्प्रदाय हैं वे सब वस्तु स्वरूपके दर्शनके आधारपर विषादपन्न हैं। जैन दर्शन के सम्प्रदाय तो केवल चरणनुयोग, और बाहरी भेषभूषा के भेदके आधारपर है। जैनियोके सिद्धान्त पर या बस्तुस्वरूपके आधारपर सम्प्रदायभेद नही, स्याद्वाद, अनेकान्त इन सबका दर्शन है। श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो ये भेद वस्तुके कथनमे भेद डालने पर नही बने, मगर बौद्धोके वस्तु स्वरूपके कथनमे भेद डालनेमे चार सम्प्रदाय सम्प्रदाय बना। उनमे से एक सम्प्रदायकी यह बात कही जा रही थी कि वस्तु तो बाहरमें भी है, भीतरमें भी है, बाह्य पदार्थ भी है, ज्ञानवान जीव भी है मगर वह क्षणिक है और एक अशमात्र है। अभी तो इस सम्प्रदायकी बात कही,

क्षणिकज्ञाना द्वैतवाद—अब दूसरे सम्प्रदायकी बात देखिये उसने यह कहाकि नही नही, बाहरमे कुछ नही है, जो कुछ है वह ज्ञान ही ज्ञान पदार्थ है, वह सब लग रहा है और

उनकी दलील क्या है कि जैसे आप सोते हुए में कोई स्वप्न देखते है तो बहुत पहाड देखते है, समुद्र भी देखते, बन्दर देखते, हाथी देखते, मगर देखते । दिख गये मगर वहा वास्तवमे क्या है ? ज्ञान ही ज्ञान है कि वह हाथी पहाड आदिक भी है ? तो जैसे स्वप्नमे ज्ञान ही ज्ञान वहा पदार्थ है, बाहर का कुछ पदार्थ नही है इसीतरह इस समयमे भी ज्ञान ही ज्ञान पदार्थ है, बाहरका यह कुछ पदार्थ नही, अच्छे लोग भी तो स्वप्नका दृष्टान्त दे करके अनेक बातोंसे समझाते है ना, देखो भाई जैसे स्वप्नमे देखी बात सारहीन है ऐसे ही वहां भी देखी बात सारहीन है । समझाते है ना स्वप्नको बात बता बताकर जैसे स्वप्नमें समझा कि यह राज्य मेरा है, पर है नही कुछ इसीतरह यहाँ भी यह ही बात है कि लोग समझते है कि घर मेरा है, फर्म मेरी है, पर है कुछ नही । स्वप्नका दृष्टान्त देकर यहाकी बात समझते है कि नही, तो एक यह भी समझ लो स्वप्नका दृष्टान्त देकर यह भी समझलो, जो जैसे स्वप्नमे देखते है कि पहाड है, पेड है, तालाब है, आदमी है, और है कुछ नही, ज्ञान ही ज्ञान है, इसीतरह यह समझले कि यह बाहरमे जो कुछ दिखता है यह है कुछ नही । यह सब भी ज्ञान ही ज्ञान है । अच्छा कोई कहेगा कि हम तो हाथमे पकड़कर दिखाते है कि यह चश्मा धरा है, हम छूकर दिखाते है कि यह भीट है । हम कैसे कहे कि स्वप्नकी तरह असार है, स्वप्नमे भी भीटको छूते कि नही । स्वप्नमे भी पर्वतपर पैर धर धर कर चढते कि नही । वहा भी कोई चीज है क्या ? कहते है कि नही, छूनेपर भी, पकड़ने पर भी खाने पर भी, स्वप्नमे खीर भी तो खा लेते है, तो जैसे स्वप्नमे सब कुछ काम कर लेने पर भी वहा पदार्थ नही है इसीतरह यहा भी सब कुछ काम कर लेने पर भी ये पदार्थ कुछ नही है । यहा ज्ञान ही ज्ञान वस्तु है । यह विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धो ने कहा उनका सिद्धान्त है कि स्वसम्वेदन ही अर्थ है साथ ही साण अपनी क्षणिकता से, अपनी भेद दृष्टि को वे नही छोड रहे है । वहा भी यह कह रहे है कि ज्ञान ही तो सब कुछ है मगर ज्ञान इकट्ठा हो जाय, कोई एक ऐसा जीव बन जाय और वह ज्ञान बहुत काल तक रहने वाला हो सो बात नही है, किन्तु एक समय मे जो ज्ञान हुआ, जो ज्योति हुई जो प्रकाश हुआ बस वही पदार्थ है । क्षणिक ज्ञान ही प्रकाश है, ज्ञान का प्रचय नही होता क्योकि ज्ञान का प्रचय हो तो जैसे घट यह भ्रान्ति है, घट कोई चीज नही है उसमे परमाणु–परमाणु ही वास्तविक चीज है और उनसे बनकर घट बना है तब ही तो वह सदा नही रहता, इसी तरह से हमारा जो ज्ञान प्रचय है जीवन मे शुरू से लेकर अब तक जितना जाना है वह ज्ञान प्रचय भी भ्रान्त है वह वास्तविक पदार्थ नही है । अगर वास्तविक होते तो वे सदा रहते कि नही, इसलिए वे भी भ्रान्त है । केवल एक क्षण मे होने वाला जो ज्ञानप्रकाश है वही वस्तु है

और बाकी कल्याण के उपाय मे सब दर्शनिको को प्रवृत्ति करना चाहिए। ऐसा सोचकर क्या कोई सन्तोष नही मिलता ? सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है, वह भी क्षणवर्ती ज्ञान है और कुछ है ही नही, ऐसा सोचकर भला बोझ कुछ कम होता कि नही ? जो घर का बोझ लदा है, विकल्पो का बोझ लदा है, बहुत से पदार्थों का विकल्प चढा है ममता लगाये हुए है, ये सब बोझ दूर होते कि नही भेदकान्त वाद के अनुसार कुछ चिन्तन करने मे ?

मूल वस्तु मानने पर ही क्षण-क्षणवर्ती परिणामो की चर्चा की समीचीनता— भेदैकान्त बाद मे अन्तर यह है कि वह मूल द्रव्य नही है तो ऐसा क्षणिक स्पष्ट झलक गया। इतनी भर बात है। थोडी देर को तो सन्तोष हो जाता है। जैसे किसी का कोई इष्ट गुजर जाय और उसको समझाने वाले रिश्तेदार आते है और वे रिस्तेदार थोडा समझाते है—भाई वह तो तुम्हारा कोई दुश्मन था, वह तो तुम्हे तकलीफ देने आया था, अपना बदला चुकाने आया था। वह तुमको तकलीफ देकर चला गया। वह तुम्हारा कुछ न था। इस तरह समझाते कि नही ? और इस तरह की समझावट मे कुछ सन्तोष भी होता है। वह बडा दगाबाज, धोखेबाज था, दु खी करने आया था यह सुनकर उसने थोडी देर को कुछ सन्तोष भी कर लिया मगर थोडी देर मे वह रिस्तेदार तो चला गया। वह घर वाला वही आसु बहाने लगता, किन्तु उसे मूल से सन्तोष नही होता। वह तो थोडी देर को ब्रेक लगा हुआ था, जैसे एलार्म की घटी बजती है तो उसमे दो तरह की ब्रेक होती है। एक ब्रेक तो ऐसी कि बिल्कुल ही बन्द हो जाय और एक ब्रेक ऐसी कि थोडी बोले फिर बन्द हो जाय, फिर थोडा बोले फिर बन्द हो जाय तो ऐसी ब्रेक से यहा काम नही चलने का। मूल मे ब्रेक लगे तब काम चलता है। तो वास्तविक तत्त्वज्ञान से काम चलेगा देखो यह स्पष्ट बोध है, पदार्थ जितने है वे अनादि से है, अन्नत काल तक हैं। जो सत् नही हैं वे कैसे सत् हो जायेगे ? जो सत् है वह कैसे मिट जायगा मूल से ? जो कहते हैं कि आत्मा एक नही है, प्रति क्षण नया नया पैदा होता रहता है तो वे यह बतावे कि जो चीज है ही नही, जो असत् है वह कहा से पैदा हो जायगी ? आप कहेगे कि जो दीपक तो था नही वह बन गया ? अरे कौन कहता ? वह तैल ही दीपक रूप परिणाम गया। तैल की जो बूंद पहुँचती है वही बूद तो दीपक रूप बन जाती है। तो पदार्थ तो है ही है। अभी वह पदार्थ तैल रूपमे था अब वह उजेला रूप हो गया, अब वह पदार्थ तितर बितर होकर एक धुवां रूप हो गए, जरा और बिखर गए, तो जो अणु प्रचय था तेलमें वे अणु बिखर गए, चीज नही मिटी। तो जो वस्तु है वह अनादि से है, अनत काल तक है, गुणपर्यायवान है, गुण और पर्याय तो अश कहे जाते और गुणपर्यायका जो पिण्ड है वह द्रव्य कहा

जाता है। उस द्रव्यको सर्वदेशसे जाना तो प्रमाण है और गुण और पर्याय रूपसे जाना तो वह नय कहलाता है। यह प्रमाण और नयकी बात चल रही है।

ज्ञान और ज्ञेयकी वास्तविकता—यहा विज्ञानाद्वैतवादी यह कहते है कि बस स्वसम्वेदन वही ज्ञान वही स्व और वही ज्ञानका जो वेदन है वह स्व इसके अतिरिक्त जगतमे कोई पदार्थ नही है। स्वसम्वेदन ही पदार्थ है बाकी तो सारे भ्रान्त है, लेकिन कहने सुनने मे भले ही कुछ अच्छा लग रहा जब तक कि उसपर विचार नही किया जाता। विचार करेगे तो ऐसा तितर बितर होकर इस एकान्तवाद का मतव्य उड जायगा जैसे हवा चलने पर मामूली बादल उड जाया करते है स्व सम्वेदक ही मान ले, जैसे कि विज्ञानाद्वैतवादी कथन करेगे तो स्व सम्वेदनको भी जब सिद्ध करने चलेगे तब अश और अशी तो सिद्ध हो ही जायेगे। स्व सम्वेदन हो, स्वतन्त्र हो, अशी तो आ ही जायगा। वहा पर भी आत्मा की सिद्धि हो गई और जो कहता है कि यह क्षणिक ज्ञान हुआ उसका कोई स्व सम्वेदन नही, मगर ज्ञान है तो वह इसीतरह होगा कि कोई ज्ञानमे आ रहा है ज्ञानातिरिक्त अन्य ज्ञेय है तब ज्ञान बनेगा, शका कारने ज्ञेय माना ही नही, तो अकेला ज्ञानका स्वरूप कैसे सिद्ध हो जायगा। यद्यपि यह बात है ज्ञानका स्वरूप स्वत· सिद्ध है। कोई ज्ञेयाकारके कारण से नही ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वत. सिद्ध वस्तु है मगर ज्ञानकी जो अर्थ क्रिया होती है वह इसी ढगसे होगी, उसमे ज्ञेय कोई झलकेगा। इसमे यह बात बताया है कि बाह्य अर्थ भी कोई चीज है, तत्त्वज्ञान भी वस्तु बन सकेगी मगर बाह्य अर्थका अभाव कैसे कर देगे। है ही नही कुछ तो इस ज्ञानको भी सिद्ध नही कर सकते। तो ये बाह्य पदार्थ भी है और ज्ञानभी है और बाह्य पदार्थ वास्तविक है और ज्ञानस्वरूप आत्मा भी वास्तविक है। यह हठ मत करे कि जो भेद करके अश समझमे आया सो ही है वस्तु। कल्पना की बात और है।

कल्पनाभेद होनेपर वस्तुकी अभेद्यता—देखो यह बताया गया है कि जब कोई अरहत भगवान सिद्ध बनता है तो वह एक समयमे ७ राजू गमन करके सिद्धालयमे विराजमान होता है एक समयमे और एक परमाणू एक समयमे १४ राजू गमन करता है। लोकके नीचे हो परमाणु और लोक के अन्तमे पहुच जाय तो एक समयमे १४ राजू गमन करता है। अब जरा विचार करो समयसे छोटी तो कोई चीज है नही। जैसे घडी घटा मिनट सेकेण्ड है और सेकेण्ड से छोटी है आवली और आवली से भी बहुत छोटा समय होता है। तो जिससे छोटा कोई काल न हो उसका नाम समय है। अब एक समयमे ७ राजू चलकर सिद्धालयमे विराजमान है, अच्छा एक परमाणु चलकर १४ राजू गमन करके ऊपर पहुच जाता है। एक भाई यह कहते है कि जब एक परमाणु यहा से चला और १४ राजू तक

तक चलता गया, तो यहाँ भी चला, यहा भी चला तो क्रमसे तो चला होगा, और जब क्रम है तो उस समयके भी कई हिस्से हो जाने चाहिए । एक समयमे कैसे इतना पार कर गया ? उस समयके भी हिस्से हो जाना चाहिए । मगर समयके भी हिस्से नही पर कल्पना समय के भी हिस्से बना देती है हमारी आपकी जो कल्पना है वह समयके हिस्से बनाती है । वह तो एक मतिकी बात है । जैसे ७ राजू जो गमन किया परमाणुने तो ७ राजू बहुत बडा होता है । एक राजू प्रतरप राजू मे अनगिनते द्वीप समुद्र समा जाते है फिर भी पूरा राजू नही बनता । अनगिनते समुद्र जो बीचमे हे जम्बूद्वीप एक लाख योजनाका एक योजन २००० कोशका होता और एक कोश पौने तीन मीलका होता, एक लाख योजनका जम्बूद्वीप है, उससे घेरकर एक तरफ २ लाख योजनका लवण समुद्र है, उसको घेरकर एक तरफ ४ लाख योजनका दूसरा द्वीप है, इस तरह दुगने दुगने विस्तारमे द्वीप समुद्र होते जाते है और वे अनगिनते हैं । तो अब समझिये कि इन सबका जितना विस्तार है वह एक राजू भी पूरा नही कर सका है । एक कागज जैसे फैला है प्रसार रूपमे है, अभी वह वन नहीं है ऐसा ७ राजू है वह गमन कर गया एक ही समयमे तो जैसे एक समयमे भी कल्पना से खड किये जाते है किन्तु वास्तवमे एकसमय के खड किये जा सकते क्या ? कल्पना होनेपर भी एक समयका मूलका खंड नही होता, ऐसे ही एक वस्तुमें शक्ति भेद परिणति भेद माने जाने पर भी वस्तु अभेद्य ही है । इसप्रकार सिद्ध हुआ कि हम सब प्रत्येक आत्म हैं और ज्ञान उनका स्वभाव है । द्रव्य तो आत्म ही है ।

सम्यग्ज्ञानमे प्रमेयतत्त्वकी विविधता—जीवका कल्याण रत्नत्रय भावमे है । सम्यग्दर्शन से ही कल्याणका प्रारम्भ है । सम्यग्दर्शनका अर्थ क्या ? प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोका यथार्थ स्वरूप सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शनकी कुछ और बात कहकर अब यह बताया जा रहा है इस सूत्रमे कि उन चार तत्त्वोका सम्यग्दर्शन आदिकका अधिगम प्रमाण और नयसे होता है । प्रमाण कहते है जो सकलाशग्राही हो, ऐसे ज्ञानको नय कहते है जो वस्तुके एक अशका ग्रहण करने वाला हो इस बातको सुनकर भिन्न-भिन्न दार्शनिको ने अपना मतव्य रखा था जिसका समाधान भी किया गया क्षणिक एकान्तवादी दार्शनिक कहते है कि अश मात्र ही वस्तु है, अशी कुछ नही हुआ करता इसलिए प्रमाणका विषय अ श है । अ शी नही । समग्र वस्तु नही अ श ही पूर्ण वस्तु है । तो उन्ही अंशवादियोंमे से एक भेद वाले बोले कि बाह्य पदार्थ प्रमाण के विषय नही है, किन्तु केवल यह ज्ञान ही ज्ञान प्रमाणका विषय है और वह ज्ञान क्षणिक है । अपने ही समयमे रहने वाला है तो भेदवादियोमे ही दूसरे सम्प्रदाय वाले एक और बोले प्रमाणको विषय अ शमात्र वस्तु

है सो भी मात्र विज्ञान ही है। इस अद्वैत विज्ञान मे ग्राह्य ग्राहकपना नही है। इतनी भी बात नही है कि ज्ञानमे बाह्य पदार्थ झलके। बाह्य कुछ है ही नही। बस जो स्वज्ञान है उसी का सम्वेदन होता है, यही मात्र तत्त्व है। वह किसी बाह्य पदार्थको ग्रहण नही करता, किसी भी बाह्य वस्तु को नही जानता। इसे कहते है शुद्ध सम्वेदना—द्वैतवादी याने बुद्धि बुद्धिको ही जानती है, बाह्य पदार्थ को नही जानती।

दृष्टिवाद अंगमें सब दृष्टियोंका आलोचन—देखिये जैन आगममे श्रुतज्ञानके १२ अग कहे है। उनमे १२ वा दृष्टिवाद अ ग है अदृष्टि वाद अ ग सम्बन्धी दृष्टियोका वर्णन है और दृष्टि वाद अ गका जितना विस्तार है, प्रमाण है उतना प्रमाण तो सब अ गोका नही हो पाता है, दृष्टि वाद का भारी प्रमाण है। ग्यारह अंगका जितना प्रमाण है वह दृष्टि-वाद अंगके प्रमाणसे बहुत कम है। जितने भी दार्शनिक है वे सब दृष्टिवाद अंगके एकान्त से निकले हुए हैं। ऐसा कोई ज्ञान नही, ऐसा कोई बोध नही जो जैन शासन से न निकला हो और कही अन्यसे निकाल लिया गया हो। समग्र ज्ञानकी पूर्णता का विषय क्या है कि केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो पूर्णज्ञान है, फर्क प्रत्यक्ष और परोक्ष का है। केवल ज्ञान तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंको स्पष्ट प्रत्यक्ष जान लेता है। तो श्रुत ज्ञानने तीन लोक तीन काल के सारे पदार्थो को अस्पष्ट जाना है। देखिये आत्मा कहने से ही तीन लोक तीन कालके सब पदार्थों का अस्तित्व है यह ज्ञानमे आ जाता है। आत्मा कहा तो उसका प्रतिपक्ष हुआ अनात्मा, आत्मा और अनात्मा, अनात्मा मे देहादिक सब अचेतन आ गये और इसके सिवाय जितने भी जीव है, वे सब एकके लिये अनात्मा है, लो समग्र पदार्थ आ गए, और वस्तुतः असाधारण लक्षण के आधार पर द्रव्य ६ प्रकार के हैं, जीव, पुगोल धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तो ज्ञान ज्ञान को भी कहे तो भी वैसा बोलकर भी समग्र वस्तुका ज्ञान करते है। श्रुत ज्ञानका बहुत बडा विषय है। दृष्ट वादका विषय तो बहुत ही अधिक है। जो ये शुद्ध सम्वेदनाद्वैत वादी यह कहते है, यहा ग्राह्यग्राहक भाव नही है कि बुद्धिमे कुछ जाना, ग्रहण किया और किसी दूसरे को जाना। किन्तु यह स्वय अपने आपको जानता रहता है। देखो वह भी जैन शासन के सिवाय कहा से निकला ? जैन शासन कहता है कि निश्चयसे ज्ञान अपने ही स्वरूप को जानता है, किसी पर पदार्थको नही जानता। ज्ञान पर पदार्थको जानता है, यह व्यवहार से कहा गया है, निश्चय से तो ज्ञान स्वय अपने आपके परिणमनको जानता है। किन्तु यह एकान्त यथार्थ नही है। लेकिन इसका एकान्त कर लिया शुद्ध सम्वेदनाद्वैत वादियोने कि बस ज्ञानमात्र ही पदार्थ है। ज्ञान ज्ञान को ही जानता है। बाह्य कोई वस्तु ही नही है, बाह्य को यह जानता ही नही है।

शुद्ध संवेदनाद्वैतवाद के एकान्त को मानने की अप्रयोजनता—शुद्ध सम्वेदनाद्वैत-वादियोकी दलील यह है कि अगर यह ज्ञान बाहरी पदार्थों को जाने तो बाहरी पदार्थ एक समयमे तो उत्पन्न हुए। तो जिस समयमे उत्पन्न हुए उसी समय मे हम यह (ज्ञान) जान नही सकते, क्योकि जो उत्पन्न हो रहा अभी वह वस्तु बनी ही कहा पूरी। और जब वह वस्तु पूरी बन गई। एक समय मे वस्तु पूरी बन जाती है तब दूसरा ज्ञान आया। यह क्षणिक वादियोका सिद्धान्त है। जब दूसरे समय को यह ज्ञान जानेगा तो जब ज्ञान जानने को तैयार हुआ तब वह वस्तु ही न रही, जानेगा कैसे ? तो यो ज्ञान किसी बाहरी पदार्थ को नही जानता। अगर कहो कि समस्त कालमे रहने वाले पदार्थ को जान लेंगे तो समस्त काल वर्ती पदार्थ तो सब स्वतत्र हैं, उनमे ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध हो ही नही सकता। इस तरह ज्ञान बुद्धि सम्वेदन किसी बाहरी पदार्थ को नही जानता। बाहरी पदार्थ है ही नही। केवल एक शुद्ध यह ज्ञानमात्र है। यह एकान्त करके शुद्ध सम्वेदनाद्वैतवादी कहते है कि प्रमाणका विषय यह है, तुम कहा लगा रहे हो कि ६ प्रकारके द्रव्य है, ७ तत्त्व है, सम्यग्ज्ञान आदिक है, सम्यक्चारित्र आदिक है, कहा भूल रहे हो ? ऐसा शुद्ध सम्वेदना द्वैतवादी कहते हैं। सुनने मे बडी भली लगती है ऐसी बात, जिसमे कि विषयो के प्रति प्रेरणा मिलती हो। परन्तु विचार करने पर वह सब खण्डित हो जाता है। भला वे कहते है कि बुद्धि के द्वारा बुद्धि ही अनुभवमे आती है सो ग्राह्य ग्राहकपना नही है, लेकिन ग्राह्य ग्राहकपना न हो तो इसमे ज्ञानका स्वरूप क्या रहा ? ज्ञानका काम जानना। जाननेमे आया क्या ? मात्र स्व ज्ञेय हो गया। चलो स्व की ही कल्पना करे तो वहा भी ज्ञेय ज्ञायकपना तो बन गया, और फिर जो प्रत्यक्ष से ज्ञात हो रहा इसका खण्डन कहा किया जा सकेगा ?

प्रत्येक पदार्थोंमें अद्वैतता—प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे शुद्ध है अपना यह ज्ञान अपने आपके स्वरूप मे ज्ञानमय ही है, इसमे किसी अन्य पदार्थका प्रवेश नही है। अद्वैत तो यो है कि प्रत्येक पदार्थ केवल अपना ही स्वरूप लिए हुए है, किसी परके स्वरूप को लिए हुए नही है, इसलिए प्रत्येक पदार्थ अद्वैत हैं। सारे पदार्थ मिलकर कोई एक सत हो, ऐसा नही, किन्तु प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे अद्वैत है, यो मानकर चलें तो अद्वैतवाद सही हो गया। तो अगर ग्राह्य पदार्थ कुछ न रहे, बुद्धिमे कोई अन्य वस्तु अगर नही आती है तो उसका प्रकाश ही असम्भव है। तुमने कैसा जाना कि यह प्रमाण है ? वचन से, गुठसे, कैसे कैसे उपायोसे। तो क्या वे है नही। है ये सब तब तो जान पाया। देखते है कि दर्पण में बाह्य पदार्थ का प्रतिबिम्ब आता है, यद्यपि वह प्रतिबिम्ब दर्पण का ही परिणमन है, बाह्य पदार्थका परिणमन नही है, बाह्य पदार्थ दर्पणमे कुछ करता नही है लेकिन बाह्य पदार्थका

सन्निधान पाकर निमित्त पाकर दर्पण स्वयं अपने स्वच्छ परिणमनको त्यागकर उतने प्रदेश मे उसके अनुरूप छाया परिणति की उत्पन्न कर लेता है। तो कैसे जाने कि यह दर्पण है ? बहुत सा प्रतिबिम्ब आया, यह है, देखते है तब समझमे आता है कि यह दर्पण है, मगर बाहरी पदार्थका दर्पणमे प्रतिबिम्ब होता ही नही बाहरी पदार्थका अस्तितत्व ही नही है, तो कैसे पता पडे कि दर्पण है ? और फिर दर्पण और भीटमे अन्तर कैसे ज्ञात हो ? तो भाई विषयमे आकर बाह्य पदार्थ यदि ज्ञेय नही होता, तो उनका यह आत्मा ज्ञाता नही होता और फिर उस ज्ञानका प्रकाश ही असम्भव है—और भी देखिये जैसे आपके इस शरीर मे शुद्ध सम्वेदनका ज्ञानका ताता लग रहा है, प्रतिक्षण नया-नया ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। ऐसे ही इन दूसरे शरीरोमे भी हो रहा है सो अब आप यहां का ही अनुभव क्यो करते है ? दूसरे देही के ज्ञानका अनुभव क्यो नही कर लेते ? तो है ना दूसरा कोई पदार्थ ? अगर न हो तो अनुभव सांकर्य हो जायेगा। एक सन्तान का ज्ञान दूसरे सतानका भी अनुभव बन जायेगा। इस तरह समझना कि शुद्ध सम्वेदनमात्र ज्ञान भी है, ज्ञेय भी है। देखो ज्ञान तो अपने लिए केवल आप है। और, ज्ञेय अपना आत्मा भी है दूसरा जीव भी है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी है। तो ज्ञान तत्त्व तो एक है, और ज्ञेय पदार्थं अनेक है। अन्य तत्त्व का खण्डन करके, विरोध करके ज्ञान तत्त्वका आश्रय लेने मे पुरुषार्थ नही, किन्तु सबको कबूल करके, सब है, सबकी सत्ता है। कोई अन्य ज्ञेय पदार्थका आलम्बन लेकर कल्याणका मार्ग नही मिलता, अत उनको छोडकर उपयोग इस निज ज्ञानतत्त्वका आलम्बन लेता हो ऐसी बात बनाओ, हितकर बात है यह, किनउ अन्य का अभाव नही। तो प्रमाणका विपय क्या है ? सर्व अंश समग्र वस्तुका परिचय पाना प्रमाण का काम है।

भेदाभेदात्मक वस्तुकी प्रमाणविषयता—प्रमाणविषयकबातकोसुनकर अभी क्षणिकवादियो ने यह बात रखी थी कि अ श अ श ही पूर्ण वस्तु है, अ शी कोई चीज नही कहलाती। कुछ इस पर विचार करने के बाद ब्रह्माद्वैतवादी कहते है कि केवल एक ही पदार्थ सर्वव्यापक है, अ शी ही अ शी है, अ श कोई वस्तु नही है। बाहरी पदार्थ कोई चीज नही। भिन्न-भिन्न पदार्थ कोई चीज नही, एक निज चित् व्यापक ब्रह्म ही सब कुछ है। लो विशेष को भी कबूल नही किया—क्षणिक वादियोने, विशेष वादियों ने। ब्रह्माद्वैतवादी कहते है कि विशेष कोई तत्त्व नही, सामान्य ही समग्र अर्थ है, लेकिन उनकी यह बात फिट नही बैठती। बाह्य पदार्थ तो सामने दिखते। कैसे उनका निराकरण किया जायगा। दयालु कहते है ना कि जियो और जीने दो। कोई कहे कि जियो, जियो, जीने दो की बात ही न सोचे

तो कैसा लगेगा ? अटपटा लगेगा। अरे जीने दो, जीने दो, यही बात सोचे जीने की बात न सोचे तो वहा भी कैसा लगेगा ? इसे भी तो कह देंगे अटपटा। ऐसे ही चेतन मे देखिये— यह एक निज ज्ञान ही सर्वस्व है। वाह्य कुछ नही। यह भी खोटी बात। बाह्य बाह्य ही सब कुछ, मैं कुछ नही, यह भी मिथ्या बात है। ज्ञानतत्त्व भी ज्ञेयतत्त्व भी है। अब उनमे से मात्र ज्ञेय तत्त्वका आलम्बन लेने चले तो उसमे हमको कोई सारकी बात नही मिलती। सर्वत्र धोखा है। अपने आपका जो स्वरूप है, स्वय है, उस ओर उपयोग आये, उसमे ज्ञान जगे, वहा जो शान्ति मिलती है बस वही शान्ति है। बाकी तो सब बातें बेकार चीज हैं। एक गाठका धनका व्यापारी हो और एक सट्टा का व्यापारी हो जैसे तो लोग इनमे किसका आदर करते है ? किसका महत्त्व देते हैं ? गांठका धनका व्यापारी का अधिक महत्त्व देते है। लोग उसका विश्वास करते है। भले हो वह लखपती नही है, कुछ ही हजार का व्यापारी है फिर भी उस पर लोगोका विश्वास रहता है, पर जो सट्टे का व्यापारी है, उसके पास चाहे काफी धन हो फिर भी लोग उसका विश्वास नही करते। वे जानते है कि यह तो सट्टे मे कहो एक ही दिनमे सब कुछ सफाया करदे। तो इसी तरह ज्ञान गाठका जो धन है ज्ञानानन्द वैभव, विश्वास तो उसका है सच्चा और जो बाहरी पदार्थ है, जिनका समागम हुआ है वे तो सट्टे के व्यापार की तरह है। उसका कोई विश्वास नही। कौन देख आया कि क्या होने को है।

निःस्वार्थतामें आत्ममहत्त्व—श्री रामचन्द्र जी का जब राज्याभिषेक होनेको हुआ तो उस समय कितनी खुशिया मनायी जा रही थी। अयोध्यानगरी मे सब जगह आनन्द छाया हुआ था। लेकिन देखिये क्षण भरमे ही क्या से क्या हो गया। जगल जानेकी तैयारिया होने लगी। केकैई और दशरथ की गुप्त बात हो गई। कैकई ने राजा दशरथ से कहा—महाराज आपने जो मुझे वचन देने का वायदा लिया था उसे पूरा करो, क्या, कि मेरे पुत्र भरत को राज्यगद्दी दी जाय। भैया! घटना वह हुई थी कि जब कैकेई का विवाह राजा दशरथ के साथ हुआ तो वहा राजा लोग आपस मे झगड गए कि कैकेई का विवाह हमारे साथ क्यो न हुआ। वह झगडा इतना बढा कि राजा दशरथको अन्य राजाओ से युद्ध करना पडा। उस युद्ध में कैकेई ने रथ हाका था, रथको ऐसी कलासे वीरतापूर्वक हाका था कि जिसमे राजा दशरथ पूर्ण रक्षित निकल गए थे और उस युद्धमे उनकी विजय हुई थी। वहा राजा दशरथ अपनी रानी केकई पर अति प्रसन्न हुए और कहा था कि तुम्हे जो वचन मागना हो मांग लो। तो वहा केकई ने यही कहा था कि अभी आप अपने वचन अपने पास धरोहर रूप मे रखें, हमे जब आवश्यकता होगी तब माग लेंगे। तो रामके राज्याभिषेक के समय

केकई ने अपना वर मांगा था—मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाय। केकई ने यह वचन क्यों मांगा था ? केकई खोटे विचार वाली न थी। उसका यह भाव न था कि रामचन्द्र बन चले जाये। १२-१४ वर्षोंका बनवास केकई ने नही कहा। न दशरथ ने हुक्म दिया कि बंन (जगल) जावो। केकई ने अपने पुत्र भरतको राज्य यो मागा कि उस समय राजा दशरथ भी विरक्त हो रहे थे और पुत्र भरत भी। उसने सोचा कि अब तो मै पति विहीन भी हो जाऊगी और पुत्रविहीन भी। तब फिर मेरा कुछ भी न रहेगा, जगत शून्य हो जायगा। जब देखा कि पति और पुत्र दोनो ही विरक्त हो रहे, ये तो अपनी हठ मे है, यो तो मानेगे नही, इसीलिए केकई ने उस समय अपने पुत्र भरतको राजगद्दी मांग ली। सोचा कि कम से कम पुत्र तो हमारे पास रहेगा। अब बताओ किसी स्त्रीका ऐसा भाव हो जाय गृहस्थावस्थामे तो यह कोई बडे अन्यायकी बात तो नही है। लेकिन केकई का पूर्णतया उदारभाव तो न था। फिर भी गृहस्थावस्था मे किसी स्त्रीमे इतना परिणाम आये तो आता ही है। बस भरतको राजगद्दीका हुक्म सुना दिया गया। उस समय श्री रामने कही गुस्सा होकर जगल जाना नही विचारा, किन्तु यह विचारकर जंगल जाना उचित समझा कि मेरे रहते हुए मेरे भाई भरत का प्रभाव न रहेगा। राजा होने के नातेसे तो प्रजामे कुछ प्रभाव होना ही चाहिए। तब ही तो राज्य अच्छी तरह चलेगा। तो ऐसा ख्याल करके वे स्वयं बन चले गए। अब भरतने भी क्या किया कि अपने बडे भाई की भक्तिमे आकर ऐसा किया कि राज्य को बात तो सम्हाली मगर सिंहासन पर रामचन्द्र जी पादुका रख दी। देखो बात सब जगह भली रही। केकई ने भी बहुत बिगाडकी बात नही की अपनी बुद्धि के माफिक। रामचन्द्र जी ने भी कोई बिगाड नही किया, भरत ने भी कोई बिगाड नही किया। देखिये—बडे पुरुषोकी बडी बात होती है तब वे बडे बनते हैं। कोई भी महापुरुष कभी भी सकट से घबड़ाये नही। सकट आते है तो आने दो।

आत्माके नि.संकट स्वरूपका स्मरण—भैया ! जितने भी सकट आते है ये तो कोई चीज नही है। हम अपना ज्ञान बिगाड़ते है, बुद्धि बिगाड़ते है, ज्ञानमे जो कई प्रकार की कल्पनाये करते है उससे हम अधीर होते हैं, दुःखी होते है, व्याकुल होते है। सकट कोई चीज नही। सकट क्या बाहरमे ? धन बिगड गया तो धन, धनमे है, न रहा न सही, मकान मकानकी बात है, न रहा न सही, घरमे किसी का वियोग हो गया। पति गुजर गया, माँ गुजर गई, स्त्री गुजर जाय, तो क्या है, ये सब भिन्न-भिन्न जीव है, अपने अपने कर्म लिए हुए है, अपने कर्मानुसार चलेंगे, क्या सकट आया ? ज्ञानमार्गसे चले तो संकटका कोई काम नही। और अगर कुबुद्धि से चले तो पद-पद पर सकट है। जैसे बेवकूफ फजीहतकी कथा

सुनायी थी कि कोई दो मिया बीबी थे। मियां का तो नाम था बेवकूफ और बीबी का नाम फजीहत। उन दोनो मे अक्सर करके लडाई हो जाया करती थी, पर शामको सुलह हो जाती है। एक दिन ऐसी लडाई हुई कि स्त्री कही भग गई। वह पुरुष अपने पडोसियो से पूछता फिरता था-भाई तुमने कही मेरी फजीहत देखी ? तो वे झट समझ गए, बोले—मैंने तो नही देखी। यो उसने अनेक लोगोसे पूछा, पर सभी ने यही कहा कि हमने तो नही देखा। एक बार वह किसी ऐसे आदमी से पूछ बैठा जो किसी दूसरे गाव का था। भाई तुमने हमारी फजीहत देखी ? वह कुछ समझ ही न सका। पूछा—आपका नाम क्या है ? …बेवकूफ। …अरे बेवकूफ होकर तुम फजीहत कहा पूछते फिरते ? बेवकूफ़ के लिए सब जगह फजीहत है। जहा ही कुछ गलत बोल दिया, अटपट बोल दिया वहा ही लात घूसे हाजिर हैं। तो जो अटपट काम करेगा वह खुद हो विपत्तियोमे फसता जायगा। सुलझनेकी बात, धीरता की बात, क्षमाकी बात उसकी बुद्धिमे नही आ सकती। तो उसे फजीहत ही रहेगी। जहा दो गाली दी वहा जूता लाठी सब तैयार हैं। तो ऐसे ही हम आपमे जब किसी को कुबुद्धि आ जाय। बाह्य पदार्थोंको ये मेरे है, यह मैं हूँ इसके बिना मैं कुछ नही, ऐसी अगर कुबुद्धि आ जाय तो जगह-जगह सकट है। अगर आपको सकट न चाहिए, आप को शान्ति चाहिए तो भीतरमे ज्ञानप्रकाश स्वच्छ बनाये, मै ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। ज्ञानवैभवके सिवाय मेरा और कुछ नही है। यह ही मेरा सर्वस्व है। यह ही मेरा दुनिया है, यह ही मेरी जय है, यह ही मेरा रक्षक यह ही मेरा स्वरूप, यह ही मेरी विधि। अपने आपमे अपने स्वरूप को अपना लीजिए। यह मै हूँ। फिर आपको दुनियामे सकटका नाम भी नही है, लेकिन मोहका अगर विष ऐसा चढा हो कि सुननेको तो सब सुन लीजिए और भीतरमे यह बोलें कि बात तो तुम्हारी सच है मगर चलेंगे हम ऐसा। तो उससे तो सकट नही मिटता। अरे जो सच है उस मार्ग पर थोडा बहुत तो चले। ज्यादह नही चल सकते तो कभी तो सोचो। कभी अपने आपमे दृष्टि तो दो। कभी भीतर विराजमान भगवान स्वरूप परमात्माके दर्शन करके बाहर ही बाहर आखे फाड फाडकर आखोका तक-लीफ देना, मनको तकलीफ देना, यह ही बात मत करो। कुछ तो चिन्तन करो अपने आपमे कि मै केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। अन्य मै कुछ नही।

आत्माके नि संकट होनेकी विधिका विचार— देखो जिस विधिसे जो काम होता है वह काम उसी बिधिसे हो सकता है। शान्तिका काम तो ज्ञानको अपनानेकी विधिसे ही होता है, दूसरी और कोई विधि नही। अन्य विधि करके आप समझने की आशा करे तो वह व्यर्थकी चीज है। एक ऐसा कही चुटकुला-लिखा है कि एक राजा साधुके पास गया,

उसके कोई सन्तान न थी। राजा हाथ जोडकर पासमे बैठ गया। साधुने आशीर्वाद दिया और कहा बेटा क्या चाहते हो ? —राजा बोला, महाराज मेरे कोई सन्तान नही है, कृपा करके आप मुझे सन्तान होनेका आशीर्वाद दे दीजिए। ···अच्छा, हो जायगा। राजा अति प्रसन्न हुआ और अपने महलमे आकर सारी रानियोसे सारा समाचार कह सुनाया। राज घरानेमे प्रसन्नता छा गई। राजाने कहा—देखो अब तो सतान होनेका आशीर्वाद मिल ही गया, अब तो कुछ चिन्ता की बात नही, सन्तान अवश्य होगी, अब तो अपन लोगोको खूब धर्मध्यानमे लगना चाहिए, सयमसे रहना चाहिए, ब्रह्मचर्यका निर्दोष पालन करना चाहिए। रहने लगे ब्रह्मचर्यादिकसे। दो तीन वर्ष बीत गए। पर कोई सन्तान न हुआ। राजा पुनः साधुके पास पहुचा और बोला—महाराज जबसे आपने मुझे सन्तान होनेका आशीर्वाद दिया था तब से हम लोग खूब नियम सयमसे, ब्रह्मचर्यसे, बडे धर्म ध्यानसे रहे, पर सन्तान तो नही हुआ ? ···अरे भाई सन्तान इस तरह से न होगा। जो काम जिस विधि से होता है वह उसी विधिसे होगा। सन्तान होनेकी विधि है उपद्रव। उपद्रव करो तो सन्तान होगी। संयमसे रहो तो शान्ति मिलेगी। ऐसे ही मोक्ष पाने की विधि है—ज्ञानको अपनाये, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानातिरिक्त मै और कुछ नही हूँ। मेरे मे राग मत बसो। परिस्थिति है, घर मे रहते है, भूख लगेगी, सारी बात करेंगे, पर श्रद्धामे रागका अश भी न आये, मेरा कही कुछ नही। मेरा तो केवल मै ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। किसीका लगाव मत हो, किसी पर राग मत हो, श्रद्धामे तो परमाणुमात्र राग न हो तथा पौरष इसके अनुरूप हो। अरे सब जीव स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, सब अपने अपने कर्म लिए है, जैसे आपके घरमे रहने वाले जीव वैसे ही दुनियामे रहने वाले जीव। कोई अन्तर नही है। मै सबसे निराला हूँ। अपने ज्ञान-स्वरूप को देखे, उस ज्ञानभावको अपनाये, उससे एक ऐसी हिम्मत आयगी कि कठिन से कठिन सकट आने पर भी आप घबडायेगे नही। जो बात बहुत-बहुत सिखाये जाने पर भी न आयगी वह बात इस ज्ञानस्वरूपमात्रको अपनानेसे अपने आप आ जायगी। ज्ञानमात्र यह मै हूँ, अन्य कुछ नही हूँ। इसका अभ्यास बन जाय तो दूसरे को सताने की वृत्ति बनेगी ही नही। जो बात बहुत बहुत सिखाने से भी नही बनती वह बात एक ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वको निरख लिया जाय तो अपने आप बन जायगी।

कषाय न करनेमें महत्त्व—भाई किसी दूसरे की कोई बात सुनकर क्रोध न करें। अपने आप सोचले, बोले कम, धीरे बोले। अपने मन को तो दु.खी चाहे करदे, मगर दूसरे को दुःखकारी मर्मभेदी वचन न बोले—तुम अपने मनको दु खी कर दोगे तो दूसरे ही मिनट मे उसे मिटा भी तो सकते हो। तुम्हारा मन तुम्हारे पास है। तुम्हारे हाथ की बात है।

ज्ञानप्रकाश लावो और अपना दु:ख दूर करलो। और, तुमने कोई कुवचन बोलकर दूसरे के मर्मको भेदने वाले वचन बोल दिये तो बताओ आप उसके दु:खको कैसे टाल सकेंगे? उसके दु:खको टालना आपके वशकी बात नही है। अगर आप ने किसीको दु:खकारी वचन बोला तो क्या वह चुप रहेगा? उसके भी कषाय है। वह आपको जवाब देगा। जैसे कहते हैं सेर को सवासेर मिल जाना। तो कुबुद्धि की तरह हठ मत करो। और ऐसा अपना जीवन बनाओ कि मुझे कुछ भी कष्ट हो, मैंने कोई भी कार्य प्रारम्भ किया हो मगर कोई मुझे समझा देता है कि इस बातमे भला नही है, उसको तुरन्त मेटनेमे तुम्हारा उपकार है। अब ऐसी हठ न करो कि हम तो दुनियामे ऐसा होकर ही रहेंगे। किसी भी बातका हठ न करो। धरमे, दुकानमे, समाजमे, देशमे कही भी हठ न करो। समझमे ज्ञान की बात आये तो उसे तुरन्त अपना ले, शरम छोड दे, लाज छोड दे। किसका कि इसने मुझे ऐसा कहा था, मुझे ऐसी बात बोल दिया। अगर मैं इसे मेट दूँ तो लोग मेरेको क्या कहेगे? बड़ा पुरुप कोई यो नही बनता बडा बनना है तो कष्ट सहो और समता रखो। और दूसरो का भला सोचो। सकट सहो और दूसरोका भला सोचो। यह वृत्ति रहेगी तो महत्ता बढेगी, अन्य प्रकारकी वृत्तिमे महत्ता नही बढती।

बडा होनेका उपाय कष्टसहिष्णुता—आज भी एक भोजन की चीज बनाते व बनवाते है ना—क्या? बडा। आपको मालूम होगा कि वह 'बडा' कैसे बना? यह यो बना कि पहले जब खेतमे खडा था, सुखाया, फिर बैलोंके पैरसे रुधवाया, फिर चक्कीमे दला, फिर सामको वह उडद पानीमे भिगोया, रातभर पानी मे पडे रहे। वहा कष्ट सहा। देखिये वह अजीव है, कष्ट नही है मगर एक अलकारमे कह रहे हैं। तो रात भर पानीमे रहने के बाद सुबह पहिले उसे धोया गया, उसका छिलका उतारा गया, यह उस पर पाचवी आपत्ति है। उसके बाद सिलबट्टेमे पीसा गया, यह उसपर छठी आपत्ति हुई, फिर उसे फेंट फेंटकर उसकी सकल बिगाडा, यह उस पर सातवी आपत्ति हुई, फिर उसे गोल मटोल बनाकर तपती हुई कडाही मे पटक दिया, यह आठवी आपत्ति हुई। जब वह बडा खूब पककर फूल गया तो उसमे एक लोहे की सीक घुसेड दिया यह देखने के लिए कि कही वह कच्चा तो नही है। यह उस पर नवमी आपत्ति आयी। इतनी-इतनी आपत्तिया पाने के बाद उसका नाम 'बडा' हुआ। यहा कोई पुरुप चाहे कि मेरे को अच्छा आराम रहे, पद-पद पर रोज-रोज प्रशसाये मिलें कष्ट न आये मेरे पर और मैं बडा कहलाऊ तो ऐसा हो नही सकता। दसो गालिया सुननी पडेगी, अनेक विपत्तिया सहनी पडेगी, और तुम धीर रह सके और दूसरो की भलाई की बात सोच सके तो तुम महान हो सकते हो। यह तो बत-

लाया है बाहर के लिए महान, मगर खुद के लिए भी महान कब बन सकते ? कष्ट सहिष्णुता एक बहुत बडा गुण है। कितने ही सकट आये मगर उनको समता से सहनेकी प्रकृति बन जाय तो वह बडा बन जायगा। भगवान सुकौशल इसी तरह तो मोक्ष गए। उनकी साधना तो देखो कि कितना-कितना कष्ट सहने पर भी वे अधीर न हुए, तब उन्हे निर्वाण हुआ। शेरनी खा रही है तो भी उसे कुछ सोच ही नही रहे। अथवा मानो पहले सोचा भी हो तो भले ही सोचा हो, मगर उसका उपयोग बदल दिया, उपयोग निज ज्ञानानन्द स्वरूप पर जगा दिया और ज्ञानप्रकाश ही ज्ञानमे समा गया। प्रथम तो कुछ सोचा ही नही, अपने आत्माके स्वरूपमे मग्न रहे। ऐसे—ऐसे कष्टोके सहने पर कहान होता है। देखो कष्ट सहने पर भी आनन्द रहता है। आप अगर शुद्ध भावसे कष्ट सहेगे तो आप प्रसन्न रहेगे। कष्ट तो तब कहलायगा जब सक्लेश करे। जब कष्ट सहते हुए मे सक्लेश नही किया जा रहा है, भीतर प्रसन्न रहे तो फिर सकट क्या है ? तो अपने आपके उद्धार के लिए भी करना क्या ? कष्ट सहते रहे, कष्टसहिष्णु बने रहे। इसकी कमी गृहस्थमें है तो वह सफल नही हो सकता, त्यागी मे है कमी तो वह भी सफल नही हो सकता। साधुमे है कमी तो वह भी सफल नही हो सकता। तो इस कष्ट सहिष्णुताका आदर करो। हमारी एक पुस्तक है "मनोहरपद्यावलि" वह गृहस्थावस्थाकी बनी हुई है। उसमे एक भजन है—"प्यारी विपदाओ आवो।" अर्थात ऐ विपदाओ, तुम मेरा वैभव हो, आवो खूब आवो। "सम्पत्तिको छल जान न पायो, याने बहुत रुलायो, प्यारी विपदाओ आवो।" मैने सम्पदाका छल नही जान पाया, और इस सम्पदा ने मेरेको बहुत रुलाया, बहुत दुखी किया है, इसलिए हे प्यारी विपदाओ आवो। विपत्ति पाकर पाण्डवोका उद्धार हुआ, विपत्ति पाकर सुकुमाल सुकौशल का उद्धार हुआ। विपत्ति पाकर अनेक जीवो ने अपना कल्याण पाया। सम्पदा सम्पदामे रहकर मरकर तो लोग नरक ही गए। कोई चक्रवर्ती सम्पदा सम्पदा मे रहा, ज्ञानमे वैराग्य की बात नही लाया, तो जिसमे बडा सामर्थ्य है, बडा पुण्य है, बडा पराक्रम है और वह त्याग की बात न लाये तो वह चक्रवर्ती नरक गया, यह बात बतायी गई। यहां तो सम्पदा ही क्या है। जरा जरा सी बातमे लोग मान बैठते हैं कि मेरे पास बहुत कुछ है, परन्तु है कुछ भी नही। तो सर्वप्रथम बात यह सीखे कि हमे तो अपने जीवन मे कष्ट सहिष्णु बनना है और दूसरोका भला सोचना है। कितने ही कष्ट आये मगर हमे दूसरों का बुरा नही सोचना है। एक प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी। और खुद भी प्रसन्न रहेगा। दूसरो का भला सोचे। कष्ट जो आये तो उन्हे कष्ट मत जाने ऐसी स्थिति बने तो वहा जो जिसका आलम्बन लेकर आना होगा वह अपने आप आयगा। तो ज्ञानमात्र जो निज स्वरूप है उस

को अपना ले, यह मै हूँ, अगर यह बात बन गई जो बात बहुत बहुत सिखाये जाने पर भी नही आती कि कष्ट सहिष्णु बनें, जिसने ज्ञान मात्रको अपना लिया उसे कष्ट सहिष्णु बनने मे देर न लगेगी। जो बात सीख सीखकर नही आती वह बात बिना सिखाये आ जायगी। अगर एक भीतर का मन्त्र आ गया कि जो ज्ञानस्वभाव है, जो निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप है वह मै हूँ, इतनी अगर दृढता आ गई तो आकुलतामे अन्तर आ जायगा, अनाकुल अनुभवकी वृद्धि होने लगेगी।

प्रमाण व नयो से प्रभुसम स्वभाव की परख द्वारा आत्मशुद्धि करने का अनुरोध– यह आत्मा जो अपने आप सुखी होता है, दुखी होता है, ससारमे जगह-जगह जन्म लेकर मरण करके अपने अमूल्य क्षण व्यतीत करता, उस आत्माका कल्याण है तो आत्म-श्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणमे है। यह बात चाहे आज करली जाय तो अबसे छुट्टी मिल जायगी सकटो से, या जब करने मे आये तब से कर लीजिए। तब तक दुख ही भोगना होगा। तो क्यो न बडे उपयोग से बडे पुरुषार्थ से अपने आपके कल्याण की बात अभी से करली जाय? देखिये—आत्महित और परिस्थितिवश गृहस्थीमे रहते हुए दोनोमे विशेष विरोध न आयगा। मुक्ति के लिये साधक तो निर्ग्रन्थ अवस्था ही है सिद्धान्त की बात। घर मे रहना, कामकाजमे रहना, सब कुछ करते रहना पर जरा साथमे आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणका उपाय बनाते रहना यह वर्तन शान्तिका साधक है। वह आत्मश्रद्धान कैसे हो, उसके लिए हो यह सब प्रकरण चल रहा है कि वस्तुस्वरूपकी बहुत सच्ची समझ बनावे। वास्तव मे तत्त्व कैसा है, जीव क्या है? अजीव क्या है? पदार्थका क्या स्वरूप है? सत्य ज्ञान बनावे। उसका उपाय चल रहा है—"प्रमाणनयैरधिगम" तत्त्वका ज्ञान, पदार्थ का ज्ञान प्रमाण और नयोके द्वारा होता है। नय तो जानता है अग अशको और प्रमाण जानता है सर्वांश अशीको, अर्थात् जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द पर्याय भिन्न भिन्न एक एक बात को समझे वह तो नयका विषय और समग्र आत्मा जैसा, वह है प्रमाणका विषय। तो इसमे भी अश और अशी देखिये—शक्ति और पर्यायका जो पिण्ड है वह द्रव्य कहलाता है। यहा तीन बाते समझना है—द्रव्य, गुण और पर्याय। जैसे देखिये—यह जो आत्मा पूरा पदार्थ है वह द्रव्य है और आत्मामे जो शक्तिया है—ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चारित्र-शक्ति, आनन्दशक्ति आदिक ये सब गुण कहलाते हैं। और इस शक्ति का जो विकास है, परिणमन है वह पर्याय कहलाती है। द्रव्य गुण पर्याय की यथार्थ समझ होना जरूरी है, भगवान मे और अपने मे कुछ, तब ही समझ पायेंगे जब हम द्रव्य, गुण, पर्यायका यथार्थ निर्णय करते हो। देखो प्रभु अरहत और हम द्रव्यसे एक समान हैं, चेतन द्रव्य मैं हूँ।

चैतन्यप्रकाश, गुणपर्यायका पिण्ड मैं हूँ। गुणपर्यायका पिण्ड प्रभु है और गुणके भी समान है। मेरे आत्मामे जो शक्तिया है वे शक्तिया प्रभुमे है ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, शक्तिसे भी हम और प्रभु समान है, द्रव्यसे भी हम व प्रभु समान है, अन्तर पडा है तो पर्यायमे अन्तर पडा है। "अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान।" हममे और प्रभुमे जो अन्तर है वह एक ऊपरी अन्तर है। ऊपरी अन्तर क्यो कहते ? है तो भीतरी अन्तर याने मुझमे रागद्वेष चल रहे है और प्रभुमे रागद्वेष नही हैं, तो ऐसा अन्तर है, पर ऊपरी अन्तर यो कहा कि स्वभावमे अन्तर नही है, स्वभाव है अन्दरकी चीज और पर्याय है ऊपरकी चीज। ऐसी बात दृष्टिमे रखकर समझना है कि भगवानमे और हममें पर्यायका अन्तर है।

अशुद्धपर्यायका व्यय करके शुद्धपर्यायका आविर्भाव करनेका सामर्थ्य—पर्याय तो हमारी वर्तमानमे खराब है। वह टाली जा सकती है और शुद्ध पर्याय आ सकती है। जैसेकोई पानी ठडा रखाहै एककलशमे और एकमे गर्म पानी रखाहो तो पानी पानीकी अपेक्षातो दोनो बराबरहै—यहभी पानी वहभी पानी,और पानीका जोस्वभाव है उसे देखे तो वहबराबर है। जो गर्मपानी है उसेभी यह कहेगे कि इसका स्वभाव ठडा है और जो ठडा रखा है उसको भी यही कहेगे तो स्वभाव से भी बराबर दिख रहा, द्रव्यसे भी बराबर दिख रहा, पर लक्षणका अन्तर है। उसकी दशा ठडी बन रही है और इसकी गरम। तो हममे और प्रभुमे जो अन्तर है वह पर्यायका अन्तर है। प्रभुकी दशा वीतराग की हो रही है और हमारी दशा रागद्वेप भरी हो रही है। यह अन्तर है, तो यह अन्तर टाला जा सकता है। यही कर्म हो गया। तो उसका कर्म ईन्धन टाला जा सकता है। उसको फैला दीजिए अथवा कोई ठडी मशीन में रख दीजिए या हवा कर दीजिए, ठडा हो जायगा। तो जो पर्यायमे बिगाड़ है वह बिगाड़ दूर किया जा सकता है। तो यहां यह विश्वासमे लेना है कि मेरे स्वभावमें बिगाड नही है, पर्यायमे बिगाड है, स्वभाव मेरा वह है जो प्रभुका है। द्रव्य मेरा वह है जो प्रभुका है, इसलिए उत्साह बने कि मै प्रभुता पा सकता हूँ, जरा यहा के संसारके इन टुकडोमे चित्त लगाकर अपने को बरबाद करना योग्य नही है। ये ससार के समागम ये सब क्या है ? धन वैभव क्या है ? ये टुकडे ही है। बाह्य चीज है, मेरे से भिन्न है, मेरे काम मे नही आते है। मेरे काम तो मेरा ज्ञान आयगा ज्ञान सही बनेगा तो शान्ति मिलेगी, ज्ञान विपरीत बन गया तो अशाति हो जायगी। तो मेरी शान्ति अशान्तिका जिम्मा तो ज्ञान पर निर्भर है, धन पर निर्भर नही। धन अधिक हो तो शान्ति मिलेगी यह कोई नियम नही बल्कि धन अधिक होनेसे और अशान्ति बढ़ेगी। धन कम हो तो क्या अशान्ति हो जायगी ? नही।

अज्ञानीको अशान्ति है, अज्ञानीको तो हर स्थितिमे अशान्ति है और ज्ञानीको हर स्थिति। शान्ति है। शान्तिका कारण है तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान। तो जो असली उपाय है शान्तिका उसमे हमे कितना समय लगाना चाहिए ? कितना उद्यम करना चाहिए। जरा यह अपने आपको सोचने लगो, उस काममे कितना हम समय देते हैं और कितना उपयोग लगाते है। आवश्यक काम समझ रहे है दुकान जाना, घर बैठे रहना। अभी चाय पीना, नास्ता करना, भोजन करना आदिक बडे आवश्यक मान रखा है और धर्मका काम, मन्दिर वगैरह जानेका काम प्रवचन सुनना, तत्त्व चिन्तन करना आदि इनको आवश्यक नही समझा। जब समय मिलेगा तब कर लेगे, यह सोचते है, पर ज्ञानी को तो यह बात आनी चाहिए कि हमे तो अधिकाधिक इसके लिये जितना समय मिले उतना उपयोउ दें, बाकी समय अपने दुकान आदि धन्धोमे लगावे। इतना समय तो ज्ञानार्जन के लिए धर्मसाधना के लिए, सत्सग के लिए है। बाकी जितना समय मिलेगा यह काम धन्धेमे लगायेंगे।

धर्मकी मुख्यतामे हितमार्गका लाभ—भैया ! मुख्यता देनी चाहिये धर्मके काम की। जो आनन्द निर्मोह रहनेमे और मन्द कषाय रहनेमे है वह आनन्द कही मोहमे पाया जा सकता ? क्या क्रोध, मान, माया, लोभमे पाया जा सकता ? बडा एक ठडे दिलसे, बडी गम्भीरतासे विचार करना चाहिये, और यह निर्णय करना चाहिए कि बस मेरा कर्तव्य तो यह है कि मोह तो रंच भी न करे, याने किसी पर पदार्थ को मैं अपना स्वरूप या अपना सर्वस्व न समझें। भिन्न जानते रहे। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, भिन्न है, किसी भी पदार्थसे मेरा सम्बन्ध नही है, लेकिन मोह मिटे, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें घटाये, पर हिम्मत ऐसी बनावे कि क्रोध न जग सके। क्रोधमे बुद्धि जल जायगी, आपका खुदका कुछ बिगड जायगा। जिस विषयमे आपको क्रोध आ गया उस काममे आपका ही काम बिगड जायगा। और, की बात जाने दो, अदालतोमे जो चतुर वकील होता है वह कोई ऐसी बात छोड़ देता है कि जिससे दूसरे वकीलको क्रोध आ जाय। दूसरे वकीलको क्रोध आया, बस उसका काम बन गया। क्योकि क्रोधमे बुद्धि हर जाती क्रोधमें दिमाग नही चल सकता। क्रोधमे वह जो कुछ सोचता होगा वह भी न सोच पायगा। बस उसकाकाम बिगड जायगा। जिस कामको लक्ष्यमे लेकर क्रोध किया जा रहा वह काम बिगड जायगा। क्रोध से कोई सिद्धि नही मिलती। अब अपनी गई बातो को भी विचार लो, जब कभी भी क्रोध किया तब कौन सा लाभ पाया ? तो इतनी हिम्मत रखना है ज्ञानबल के द्वारा कि क्रोध उत्पन्न करनेकी घटना सी कितनी ही आये तो भी मेरेमे क्रोध मत जगे। क्रोधमे मेरे गुण फुक जायेगे, क्रोधमे मेरा काम बिगड जायगा। अब दूसरे—क्रोधसे अयस फैल जायगा। बडा

क्रोधी है, जरा जरा सी बातमे गुस्सा आ जाता है। लोगोको विश्वास नही रहता है। प्रेम से हृदय खोलकर बोलनेकी हिम्मत नही होती क्रोधी पुरुषको। उसे कौन सा लाभ मिला क्रोधसे ? इसी तरह मान घमड बिल्कुल व्यर्थकी चीज है। मानसे मान नही मिलता, घमंड करनेसे सम्मान नहीं मिलता। घमंड न हो, नम्रता हो, सब जीवोके प्रति प्यार हो। नम्रता से चला जाय, दूसरोको आदर दिया जाय, अपना आदर घटाया जाय, अपनेको एक नम्र बनाया जाय। मै कुछ नही हूँ, इस तरह का नम्र पुरुष हो, ऐसी चेष्टा हो, उसका सम्मान भी है, यश भी है, खुद भी प्रसन्न है, दूसरे भी प्रसन्न है। भला बतलाओ, लोग बड़ा धन खर्च करके भी दूसरेको खुश रखना चाहते है। इसने माना कि धनका त्याग करे, दान दे ताकि दूसरे लोग खुश रहें और यदि आपके प्रिय वचन बोलनेसे, आपके नम्र रहनेसे, आपके शान्त रहनेसे कोई जीव सुखी हो जाता है तो यह तो भली बात हुई। इसमे तो आपको कुछ धन भी खर्च न करना पडा और देखो कितने ही लोग सुखी भी हो गए। तो फिर खुद भी शान्त हो जाये और दूसरे भी शान्त हो सके, ऐसा उपाय क्यो नही किया जाता ? यह उपाय अभी तक नही कर पाये इसका कारण क्या है कि अज्ञानी जीवो का सग अधिक समय रहता है। ज्ञानी सतोका सग थोड़े समयको मिलता है। तो जब अज्ञानी मोही जीवोका, दुष्ट जीवो का, छली कपटी जीवोका संग अधिक समय रहता है, दुकानमे, घरमे सर्वत्र जब प्रसंग रहता है तो उसीमे दिलचस्पी भी बनती है, वैसे ही परिणाम बनते है, तो फिर कहांसे शान्तिका उपाय बनाया जा सके ?

तत्त्वज्ञानके साधनभूत शास्त्राभ्यासका महत्व—पूजा करनेके बाद जो ७ बाते मागी गई हैं भगवानसे ७ भावनाये जो बतायी है पूजकने वे कितनी कल्याणमयी भावनाये हैः— शास्त्राभ्यासो जिनयतिनूतिः सगतिः सर्वदार्यैः। सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवदि च मौनयु। सर्वेस्यापिप्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे। संपद्यता मम भवभवे भावदेतेउप बर्गः। अर्थात् हे प्रभो, जब तक मेरेको मोक्ष प्राप्त नही होता तब तक मुझे ७ बाते भव-भवमे मिले। (१) शास्त्राभ्यास—आचार्य समंतभद्रमहाराजने शीतलनाथ भगवान की स्तुतिमे कहा है—न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो नगाङ्गमम्भोनच हारयष्टय। यथा मुनेस्तेऽनघ-शान्त रश्मयो शम्राम्बुगर्भा. शिशिराः विपश्चिततामु—शीतलनाथकी स्तुतिमे बताया है कि शीतल न तो चन्द्र है, न चन्द्ररश्मि है, न गंगाका जल है, किन्तु क्या है ? हे प्रभो ! जैसे तुम्हारे वचन किरण पापरहित, निष्पाप, हितकारी जो आपकी वाणी है वही वास्तवमे शीतल है, अन्य कुछ शीतल नही। कोई मनुष्य इष्ट वियोग से दु.खी हो या किसी भी कारण दु.खी हो, उसे मधुर वचन, हितकारी वचन, तत्त्वज्ञान भरे वचन, सच्चे वचन—उसे सुनने को

मिले तो उसके भीतर का आलाप, भीतर का क्लेश दूर हो जाता है। वह बाहरी विचारसे दूर नहीं हो सकता। बहुत बडे धनिक ऊंची फर्म वाले करोड़पती लोगोके प्रायः करके हार्ट फेल हो जाता है, अथवा वे बीमार बने रहा करते हैं तो उसका कारण क्या है ? उसका कारण यही है कि पर पदार्थो मे जो आत्मबुद्धि लगी है, जिन कारणोसे बहुत व्यग्रता हो जाती है, शल्य हो जाती है, बीमारी हो जाती है। ऐसे पुरुषका रोग क्या कोई डाक्टर मेट सकेगा ? वह डाक्टर दवा तो देता है पर औषधि नही दे पाता। देखिये—एक तो होती है औषधि और एक होती है दवा। दवाका काम तो है बीमारीको, रोगको दबा देना। वह मूल से रोगको खतम नहीं करती, वह अच्छी चीज नही, और औषधि अच्छी चीज है। क्योकि औषधि से समय तो कुछ अधिक लग जाता है पर रोग मूलसे खतम हो जाता है। अगर जो दवायें डाक्टर ने जो दवा दी उससे तुरन्त तो रोग दब जायगा मगर बाद में फिर उभड जायेगा, मगर आयुर्वेदिक औषधि से रोग मूलसे निकल जायगा। तो ऐसे ही समझिये कि हम अगर किसी कारण से दुःखी है, दिल घबडा गया है तो ऊपरी उपचार दवाका काम करेगा, मगर औषधि का काम तो तत्त्वज्ञान ही करेगा। कोई वीर पुरुष होता है तो वीर पुरुषकी युद्धमे तलवार चलाते चलाते कोई गर्दन भी काट ले तो भी उसके बेगके कारण हाथ चलते हैं, गर्दन कट जानेके बादभी हाथ के वेगसे चलनेसे दो चार सिपाही मार डालता है। हालांकि उसमें कुछ बात नहीं रही, मगर उसका जो बेग है, उसका जो असर है सिर कटेके बादभी उससे दो चार सिपाहियोके गर्दन कट जाते हैं। ऐसे ही समझिये—तत्त्वज्ञान का जिसके बल है वह तत्त्वज्ञानमे उपयुक्त न रह तो भी संस्कार अनेक रोगो को तो यो ही मिटा देता है। किसीको कोई रोग हो और वह मनमे रखे कि मेरेको रोग हो गया है, क्या किया जाय ? कही बढ न जाये, कुछ खराबी न हो जाय, तो वह रोग और बढेगा, और जो तत्त्वज्ञान जगे कि मेरेको तो कोई रोग ही नही, मैं तो रोगरहित हूँ। इस प्रकारकी बात अगर चित्तमे बनी रहे तो कितने ही रोग जो ऊपर-ऊपर तैरते है वे असर नही कर पाते। तत्त्वज्ञान ऐसी चीज है। अच्छा, और भी देखो-अगर मानो किसीको रोगरहित शरीर मिला, या कुछ मौजकी चीज मिल जाय तो उसमे भी उसके मिलनेका कारण है धर्म। जीवको शरण है तो धर्म है। धर्मके सिवाय मेरा कोई दूसरा शरण नही। कितने भी शरण ले लो। शरण मिलेगा आपको तो धर्म मिलेगा। यहां ऊपरसे करने वाले धर्मकी बात नही कह रहे है किन्तु आप का जो भावमे स्वभाव है शुद्ध विशुद्ध ज्ञातादृष्ठा रहना, सहज ज्ञानमात्र ऐसा जो ज्ञानज्योति रूप स्वभाव है उसमें यह दृढता आ जाय कि मैं तो यह हूँ, और कुछ नही। यह तत्त्वज्ञान शरण हो जायगा।

तत्त्वज्ञान जगनेपर आत्मशौर्यका उत्साह—एक कुम्हारको जंगलमे एक शेरका बच्चा मिल गया। अब शेरका छोटा बच्चा हमला तो नहीं कर सकता। किसी पर वह क्या हमला करे? मान लो, शेरनी कहीं बाहर चली गई, उसका बच्चा कुम्हारने पा लिया और उसे ले जाकर अपने गधोके बीच बाध दिया। वह बड़ा भी हो गया। अब गधो पर तो बोझ लादा जाता, कभी कभी उसे शेरके बच्चे पर भी कोई चीज लादी जाती। अब उस बच्चेको उन गधोके बीच रहते हुए काफी समय हो गया। उसे अब यह ध्यान न रहा कि मै शेर हूँ, वह तो यही समझ रहा कि मैं तो ऐसा ही हू जैसे ये (गधे) है। वह उन गधो के बीच उनकी ही भाँति दु खी रहा करता था। एक बार उसे वही कोई सिह दिख गया। उसकी गर्जना सुना। सोचा कि अरे यह तो मेरा ही जैसा है। ओह मै गधा नही हू। मै तो सिह हू, लो, यह सोचकर छलाग लगाया और स्वतत्र हो गया। तो मेरा स्वरूप तो प्रभुस्वरूप की तरह है। अगर अपने को क्रोध नही है तो जैसे सिह अपने को गधा अनुभव करता था, ऐसे ही यह मै अपनेको मनुष्य हू, स्त्री हू, व्यापारी हू, फलानी जातिका हू, फलाने बिरादरी का हू। मैं रूपवान हू, कुरूप हू, सन्तान वाला हू, यो कोई जब अपनेको मान लेगा तो उसकी वजहसे यह दुःखी होता रहता है। जिस समय यह ध्यान देगा कि यह मै शुद्ध ज्ञानज्योतिमात्र हू, मैं कुछ नहीं हू और लक्ष्य हो जायगा, दृष्टिमे आ जायगा भीतर मे, मैं तो यह ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व हू, सारे सकट विदा हो जायेगे। यहा कोई समझता है कि मै बच्चोको पालने वाला हू, घारको मे चलाने वाला हू, स्त्री, बहिन, बुआ आदिककी मे रक्षा करता हू, तो यह बात उसकी झूठ है। वे जीव नही है क्या? उनके साथ कर्म नही लगे है क्या? और उनके जो कर्म बसे हुए है उनका उदय आता है तो वहा वह बात नही चल रही क्या? जैसी मेरे आत्मामे बात चल रही वैसे ही बच्चे बच्चेकी आत्मामे बात चलती है। उनका उदय है, हो रहा है, सारी बात चल रही है, कर्म चल रहा है तो घरमे जिन–जिनके भोगनेमे वह धन आ रहा है उन सबके पुण्यके कारण वह सब काम चल रहा है, न कि आपकी एक अपनी अकलके ऊपर चल रहा है। फिर चिन्ता क्या करना? जो होना है, सबका कैसा भाग्य है वैसा होता ही रहता है। काम बिगड़ गया तो मे क्या करू, सबका भाग्य ऐसा है। वह क्यो, वैसा क्यो। अपने ऊपर ही बात लादते कि मेरा भाग्य खराब हो गया। मेरे तो पापका उदय है? अरे आपके पापका उदय नही, आपके पापका उदय तो यह है कि जो आपका दिल इस बातमे लग रहा कि मेरे पापका उदय है। यह तो ससारका काम है। हो रहा है, यह पापका उदय नही है। पापका उदय यह है कि जो पर-द्रव्यमे कुछ राग करता है, मोह करता है, लगाव रखता है, अज्ञानका अन्धेरा बना है भीतर

मे, वह है पापका उदय।

लोकोत्तम पदका मार्ग—जो पापरहित निर्विकल्प शिवनायक परमब्रह्म जो मेरा अपने आपका स्वरूप है सहज निरपेक्ष सत्त्व है उस रूप मानूं कि यह हूं मैं तो सारे संकट दूर हो जाते हैं। सारी बाधायें दूर हो जाती हैं। इतनी बात मानले और भीतरमे श्रद्धान करें और उस कुटेबको छोडें, और बाहरमें पुत्र मित्रादिकके प्रति जो लगाव की गन्ध लगा रखा है, यही है सब मेरा सर्वस्व। इसके बिना मेरे प्राण नही, इससे ही मेरी शोभा है। ऐसा जो एक कुटेब बांध रखा है परद्रव्यके साथ उसको तो छोड दीजिए और अपने आप के भीतर अपना जो सहज ज्ञानप्रकाश है उस प्रकाशरूप अपनेको अनुभव करे। एक सेकेण्ड भी तो अनुभव करे, मुक्ति नियमसे मिलेगी, प्रभुता नियमसे प्राप्त होगी। भला लोग यह भी तो सोचते हैं कि मे वैभव सम्पन्न हो जाऊं, मैं बडा कहलाऊ, मै महान कहलाऊं तो बडे महान की भी बात बतलाओ। जगतमे महान कौन है? आप तो यहां बतावेंगे किसी धनिकको कि फलाने साहूजी महान हैं। अरे उनकी चिन्ता। उनका शल्य वे जानते हैं। और वे दूसरेको महान सोचते हैं। देखिये अमरीका का जो सबसे बडा धनिक है फोर्ड, जिस जिसने फोर्ड नामकी कार निकाली है तो वह फोर्ड अपने यहाँ काम करने वाले मजदूरो को देखकर अपने मनमे यह ईर्ष्या करता था कि देखो ये मजदूर कितना सुखी हैं। ये काम करते हुए मे भी गाते है, रास्तेमे चलते हुए मे फालतू समयमे भी गाते हैं, रात भर खूब आराम से सोते हूं। कोई कहेगा कि राष्ट्रका जो प्रधानमत्री हो गया वह है बडा। अरे उसमे भी क्या बड़प्पन की बात है। जब कभी कोई प्रधानमत्री किसी कामके बिगड जानेसे गद्दीसे उतार दिया जाता है, जैसे कि अनेक लोग गिरफ्तार भी कर लिए जाते हैं, देखो क्या बडप्पन रहा? कौन है महान ससारमे, देखो तो सही? कोई महान नही है संसार के अन्दर। अगर कोई महान है तो प्रभु है महान। अगर महान बनने की उत्सुकता हुई हो तो ऐसे वास्तविक महान बनो, झूठे महान बनने की बात तो कोई अच्छी बात नही है। तो वह माद्दा कैसे प्रकट होती? वह होता आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणके प्रसादसे। इस निश्चयरत्नत्रय को बनाने के लिए क्या करना पडा? तत्वज्ञानका अभ्यास, चिन्तन, संयम, परसे हटने की बात, अभीष्ट ज्ञानोपयोग, यह काम उन्होंने करना पडा। तब प्रभुता पायी। यह ही काम करें उसी कामका यह प्रसग चल रहा है। हम पदार्थका बोध कैसे करें? तत्त्वका बोध होता है प्रमाण और नयोंसे। प्रमाण है सर्वांश को जानने वाला। नय है एक अशको जानने वाला।

जैनशासनकी तत्त्वज्ञान पद्धति—अब जरा फिर से सोचें—बताया था न, द्रव्य, गुण,

पर्याय। गुण तो शक्तिका नाम है, पर्याय वर्तमान दशाका नाम है, जो भी दशा होती हो। और द्रव्य गुण व पर्यायके समूहका नाम है वह पिण्डका नाम है, तो द्रव्य हुआ अंशी और गुण और पर्याय हुआ अंश, मगर जब इसका भी ज्ञान करने के लिए चलते हैं तो अंशी भी अकेला पडके रह जाता है और अंश भी अकेला पड़कर रह जाता है। तब अंशी हुआ द्रव्यार्थिकनयका विषय और अंश हुआ पर्यायार्थिकनयका विषय। देखो ना, वह अंशी भी अखण्ड-स्वभाव, वह द्रव्यार्थिकनयका विषय है और गुणभेद और पर्यायकी बात, यह पर्यायार्थिकनय का विषय है। तो आखिर देखो-अशी भी तो एक नयका विषय बन गया। प्रमाण कहां रहा ? एक यह शंका सामने आती है। अशीका परिचय भी प्रमाण नही है, किन्तु नय और अशीका परिचय भी नय है। फिर प्रमाणका विषय क्या होगा सो बतलाओ। प्रमाणका विषय अंशी और अंश दोनो ही प्रधान रूप से जब परिचयमें आते है तो वह होता है प्रमाण का विषय। केवल अंशी प्रमाण का विषय नही, केवल अंश प्रमाणके विषय नही, किन्तु जहां अंशी और अंश दोनो प्रधान रहते है, परिचय मे आते है वह है प्रमाणका विषय। अंशको गौण करके अंशीको जानता, द्रव्यार्थिकनयका विषय है। अंशीको गौण करके अंशको जानना वह पर्यायार्थिकनय का विषय है और अंश और अंशी इन दोनोका सामान्यतया परिचय पाना प्रमाणका विषय है। अब उसका परि-चय करे। देखिये एक अंशको जानना खराव नही, मगर श्रद्धा सही बनाकर जाने तो खराब नही। प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थमे अंशको जानने वालेको नय कहा गया है। बस यही भूल खाई अनेक दार्शनिकोने। वे दाशनिक जुदे-जुदे पड़ गए। कोई आदमी अगर ऐसा लडे किसी को देखकर कि मानलो एक हरप्रसाद नाम है। अब कोई हरप्रसादका परि-चय दे कि यह तो चुन्नीलालका लड़का है, कोई दूसरा बोला कि तुम गलत कहते हो, यह तो जीवनलाल का पिता है, तो देखिये यह एक बेवकूफी भरी लडाई बन जाती है न, अरे भाई सत्य तो देखो, किस दृष्टिसे कहा जा रहा है। वह भी सत्य है, यह भी सत्य है। झूठ कहां रहा ? बस यह लडाई चली दार्शनिको की। वेदान्ती कहते है कि वस्तु नित्य एक सर्वव्यापक है। अपरिणामी है। तो बौद्ध कहते है कि प्रत्येक वस्तु केवल सुलक्षण मात्र है। एक समयको ठहरती है, दूसरे समय नही ठहरती, उनमे हो गया जंग. तो स्याद्वादी उनका समाधान करते है।

जैन शासन की सर्वहितकारिता— जैन शासन कितना एक सर्वप्रिय शासन है कि जिसके माननेमे किसी को भी हिचक न करना चाहिए, लेकिन आज उल्टा काम चल रहा है। अन्य अन्य जो शासन है, धर्म हैं वे तो अपनी बड़ी प्रगतिको पा रहे है और जैन शासन

जो है वह गिरता सा जा रहा है। तो इसके जिम्मेदार कौन है ? इसके जिम्मेदार हैं जैन शासन के मानने वाले जैनी लोग। उनके ही कारण जैन शासनका पतन हो रहा है। कोई समय था कि जैन को देखकर अदालत के लोग जज लोग बहुत प्रभावित होते थे। मानो कोई मुकदमा हुआ, उसमे अगर कोई जैन गवाही देने आ गया तो उस पर विश्वास करके जज उस जैन के माफिक फैसला कर देता था। खजान्ची भी प्रायः करके जैन होते थे। कभी इतना विश्वास जैनो पर किया जाता था, पर आज हम अपने कर्तव्यो को भूल गए। जैनो के ये चिन्ह थे—रात्रि को न खाना, जल छानकर पीना, देव दर्शन करना, मिथ्यात्व त्यागना, अन्याय त्यागना, अभक्ष्य न खाना आदि, उनको तो छोड़ दिया। कुछ समय पहले किसी की बारातमे कुछ जैन पहुच जाते थे तो बारातमे खलभली मच जाती थी—अरे दिन से खाना बनाओ, बहुत शोध कर बनाओ। बारात के बाकी लोगो के लिए तो जो चाहे बन रहा। बैरा लोग परोस रहे। अब तो घरके लोगोको परोसना न पड़े इसलिए कुछ बैरा लोग भोजन परोसने के लिए नियुक्त कर दिए जाते है। अगर घर के लोग परोसने लगे, बैरा लोग न परोसने वाले हो तो कहने लगते कि काहे की बरात। यो हम अपने आपके आचार विचार से गिरते चले जा रहे है। तत्त्वज्ञान न होने से, सकुचित विचार वाले होने से आज हम आप अपने आचार विचार से पतित होते जा रहे है। हमारे शास्त्र हमारे घर मे रहे, हमारे मन्दिरोमे रहे, दूसरो के यहा न जाये, हमारे मन्दिरोमें दूसरे लोग दर्शन करने न जा सके, यो कितने सकुचित विचार है हम आपके। अब आप यह समझे कि कभी समय था ऐसा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योमे परस्पर विवाह होता था और यहा जो इतनी लगन मिलाते है ना, उसमे वर्ण मिलाते हैं कि ये वैश्य ब्राह्मण मिले कि नही। था कोई समय, अब सकुचित हो गए। होते होते इतना बटवारा हो गया कि भाई तुम्हारा अमुक जातिका गोत्र हे, अमुक जातिका है—जैसे मानलो अग्रवाल, खण्डेलवाल····· , तो ये अपनी, अपनी जातिमे ही विवाह सम्बन्ध करेंगे, इस तरह के अपने सकुचित विचार बना लिया। तो यह हमारी एक संकुचित दृष्टि है, इससे हम अपने आप को गिराते चले जा रहे हैं। तो यह सब हम आपका दोष है जो हम सारे जीवोके फायदे पर लात मार रहे हैं। नही तो जैन शासनका प्रचार होता।

ज्ञान और विरागतामे स्वात्मदया—तत्त्वज्ञान एक सर्वोपरि चीज है। सत्य समझें कि मैं क्या हूँ, मेरे मे क्या है ? मैं हूँ एक शुद्ध ज्ञानज्योति मात्र। जो अपने आप हो सो ही तो मैं हूँ। दर्पण क्या है ? एक स्वच्छ प्रकाशमात्र। जैसे दर्पण है और उस पर कोई परका सम्बन्ध मिल गया, जो कोई चीज आ गई और उसमे छाया आ गई तो क्या वह छाया

दर्पणका स्वरूप है ? नही है। मगर शरीर संगमें जुटा हुआ है। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध होनेके कारण जो बात गुजर रही है क्या वह मैं हूँ ? नहीं। जो मै अपने आप हो सकता हूँ सो तो मै हूँ और जो किसी पर पदार्थ के सम्बन्ध से बात होती हो वह मै नही हूँ। सही बात है। मै तो वह हूँ जो स्वतंत्र हूँ, स्वयं अपने आप शुद्ध हूँ। अपने आपके शुद्ध हूँ। अपने आपके शुद्ध से जो मै हो सकता हूँ सो मै हूँ। पर और कुछ नही हूं कभी-कभी शानमे आकर लोग कहने लगते कि दूसरो की दया से अगर हमे आराम मिलता है तो वह आराम मुझे न चाहिए। मेरे मे अपने आप जो कुछ हो वह मुझे चाहिए। अजी जैसे कोई खुद भी कह बैठता कि अजी मैं न होता तो आपका काम न बनता। जब ऐसी एहसान की बात कोई सुनता है तो वह सोचता है कि अच्छा, चाहे काम बिगड जाता मगर इससे काम न करवाता तो मै अच्छा था। अभी किसी ने किसी को खूब भरपेट भोजन करा दिया और भोजन कराने के बाद वह कहे कि कहो जी अच्छा भोजन कराया ना, ऐसा भोजन तो तुमने कभी जिन्दगी में न खाया होगा। तो वह तो यही सोचेगा कि इससे तो मै भूखा रहता तो अच्छा था। अब मै इसे कैसे कय करदूँ ? मुझे ऐसा भोजन न चाहिए। तो ऐसा अपने आपमें क्यो नही सोचा जाता कि शरीर के सम्बन्ध से, कर्म के सम्बन्ध से, किसी की प्रतीक्षा से, अहसान से अगर मेरे को कोई सुख मिल रहा है, इज्जत मिल रही है, कुछ मिल रहा है तो यह मुझे न चाहिए। मै तो अपने आप अकेला ही अपने आपमे जैसा हो सकता हूँ। जैसा रह सकता हू, जो मेरा स्वरूप है। बस वह स्वरूप मुझे चाहिए, वह स्वभाव मुझे चाहिए, मुझे परके सम्बन्ध से होने वाली बात न चाहिए।

ज्ञाता द्रष्टा रहनेका सन्देश—भैया ! जब भी आप अपने स्वरूपकी ओर आयेंगे, अपने आपमें खुद सन्तोष पायेंगे, तृप्त रहेगे, यहां दृष्टि चलेगी। आपका मार्ग स्वच्छ हो जायगा। आपको अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा, कल्याण होगा, मुक्ति प्राप्त होगी। सारे ही लाभ हैं और बाहरी पदार्थो पर लगाव करनेसे, मोह करनेसे राग करनेसे अपने चित्त से वहां नुकसान ही नुकसान है। बरबादी ही बरबादी है। उसमे लाभका कोई काम नही। फिर भी इतना विवेक रखना है कि जितना हमे करना पडता है बाहरीराग, बाहरीद्वेष, बाहरी विरोध, बाहरमे रहना, घरमे रहना, अच्छी प्रकार बोलना, काम करना, ये सब परिस्थिति के धर्म है, मेरे आत्माके धर्म नहीं है। रह रहे घरमें तो करना यह सब पडेगा, मगर मेरे आत्माका, ज्ञाता दृष्टा रहनेका, जाननहार रहनेका धर्म नही है। जानलो, समझने के लिए देखलो, बस जान लिया, देख लिया, इससे आगे न बढ़े, रागमें न पडे तो कल्याण मिल सकेगा। एक छोटी सी कथा है कि एक सेठसे मुनि महाराजने कहा कि तुम देवदर्शन करनेका

नियम ले लो, तो उसने असमर्थता बतायी। मुनि महाराज ने पूछा कि तुम्हारे घरके सामने क्या है? ...कुम्हार का घर। ...वहां पहले क्या दिखता है? ... भैंसाका चाद। ... अच्छा तो चांदके दर्शनको ही नियम ले लो। सेठने यह नियम ले लिया। एक दिन बहुत ही सुबह कुम्हार भैंसा को खानपर ले गया, सेठ पूछता पूछता चांद देखने खानपर गया। जिस समय सेठने चाद देखा उसी समय खानमे असर्फियों का हडा मिलनेसे सकित होकर कुम्हार ने ऊपर देखा। तब कुम्हार कहता है—सेठ जी सेठ जी। सेठ कहता है बस देख लिया, देख लिया। ...अरे जरा सुनो तो। ... बस बस सब देख लिया। सेठ घर पहुंच गया। कुम्हार सारी असर्फिया लेकर सेठके घर पहुचा और कहा—तुमने देख तो लिया इन असर्फियो मे से आधी तुम ले लो। तब सेठ सोचता है कि मैंने चाद ही तो देखा। उसका ही तो नियम लिया, उससे तो यह लाभ। फिर देव दर्शन मे न जाने कितना लाभ मिलेगा। उस का भी नियम ले लिया। तो देखो मात्र-ज्ञाता द्रष्टा रहने मे कितना लाभ है?

ससारके समस्त दु.खोकी मुक्ति यदि अभीष्ट है तो मुक्तिके मार्गमे लगना चाहिए। मुक्तिका मार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। सम्यग्दर्शनका अर्थ है प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और, निश्चयत. सम्यग्दर्शनका अर्थ है निज टकोत्कीर्णवत् निश्चल शाश्वत प्रकाशमान जो एक ज्ञानमात्र स्वरूप है उस रूप ही अपने आपको अनुभव करना, श्रद्धान करना, प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है, सम्यक्त्व की प्राप्तिके लिए बुद्धिपूर्वक पुरुपार्थ क्या करना चाहिए? वह पुरुषार्थ है ७ तत्त्वोका यथार्थ श्रद्धान। श्रद्धान कब हो? जब उसके बारेमे कुछ ज्ञान हो। यद्यपि सम्यक्त्व के होने पर ही ज्ञान सम्यक् कहलाता है फिर भी सम्यक्त्वका जो एक आधार बनता है ऐसा ज्ञान वह भी अनुरूप होता है, सही होता है, किन्तु अनुभव बिना ज्ञान है इसलिए उसे सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक् होते हुए भी सम्यक नही कहा जाता, क्योकि वह अनुभव शून्य ज्ञान है, पर सम्यक्त्व उत्पन्न होने से पहले जो ज्ञानभाव चलता है वह मिथ्या नही है। है मन रूप यथार्थ समझने वाला, पर अनुभवरहित है, इतनी ही तो बात है। सम्यक्त्व हुआ कि वही सम्यक कहलाने लगता है। तो तत्त्वका अधिगम कैसे हो? उसके लिए प्रमाणनयैरधिगम इस सूत्रका वर्णन चल रहा है। प्रमाण और नयके द्वारा तत्त्वका, सम्यग्दर्शन आदिकका परिचय होता है। सकलग्राही जो अर्थ ज्ञान है सो प्रमाण है, याने सम्पूर्ण वस्तुको, सर्व अशोको, समग्र वस्तुको जानने वाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है। और, प्रमाण से जाने हुए पदार्थमे प्रयोजनके वशसे किसी भी अंशका परिचय करना नय कहलाता है।

मतिज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानमे नयत्वकी असंभवता—यह नयश्रुत ज्ञानका

अश है। मतिज्ञानसे ज्ञातवस्तुमे नय नही बनता। अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञानसे जानी हुई वस्तुमे नय नही बनता। अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये चार ज्ञान निर्विकल्प है। इसमे तर्क नही उठता, कोई विकल्प नही उत्पन्न होता, श्रुत ज्ञान ही विकल्पात्मक है, उसमे तर्कवादी ज्ञान है, ऊहापोह है, विचार है, चिन्तन है, जैसे इन्द्रिय द्वारा देखा और देखनेपर क्या ज्ञात हुआ ? रूप। जो है सो ज्ञात हुआ। अब यह कहना कि यह हरा रूप है यह विकल्प मतिज्ञानका काम नही है, वह तो दिख गया, हरा ही दिख गया, पर यह हरा है, इस तरहका विकल्प नही लेता मतिज्ञान। हरा है, हरा ही दिख गया, बात तो मतिज्ञान मे वही आयी मगर विकल्परूपसे नही आया। जब यह जाना कि यह हरा रग है, और-और भी जाना गया, किससे यह बना है, किस तरह यह पोता गया है, गहरा है, हल्का है, उचित है, कुछ भी विचार करे वह सब श्रुतज्ञानकी बात है। मतिज्ञानने तो ज्ञान करा दिया उस वस्तुको साक्षात् इन्द्रिय और मन द्वारा, जैसेकि अवधिज्ञान भी ज्ञान करा देता है, इन्द्रिय मनकी सहायता बिना जहाँ जो कुछ है ज्ञात हो गया, किन्तु तत्सबधी विकल्प नही होता। जैसे पुराणोमे कथाये आती है कि किसीने मुनि महाराजसे पूछा कि मैं पहले भवमे क्या था ! तो उन्होने अवधिज्ञान चलाया, जो था सो जान लिया, मगर जब बतानेका प्रकरण आयगा तो श्रुतज्ञानके सहारे बता सकेगे कि यह अमुक था, ऐसा था। और उससे ही जाने हुए पदार्थ मे अशज्ञान होता है।

सकलज्ञ होनेपर भी केवलज्ञानमें नयत्वकी असंभवता—एक बात और समझनेकी है। मतिज्ञानसे जाना, जो है सो जाना, अवधिज्ञान मन. पर्यय ज्ञानसे जाना, ठीक है, न हो वहाँ श्रुत ज्ञानका अंशभूत नय, किन्तु एक बात जरा जाननेके लिए कही जा रही है कि केवल ज्ञानने तो अंशको जाना, अंशीको भी जाना, प्रत्येक पर्याय को जाना, गुण जाना, स्व-भाव जाना, सब कुछ ज्ञात होता है, इतनी ही तो बात है कि वहा सापेक्षताका परिचय नही किया जाता किन्तु जो भी सत् है सबका परिचय होता है। तो वहा जब अशका भी ज्ञान होता है तो क्यो नही यह कहा जा सकता कि केवल ज्ञानसे ही जाने हुए पदार्थमे नयकी प्रवृत्ति होती है। उत्तर कहते है कि सब कुछ जानकर भी केवलज्ञान निर्विकल्प है। उसमे नयकी प्रवृत्ति नही होती। श्रुतज्ञानका ही अश नय है। श्रुतज्ञानसे ही नयकी प्रवृत्ति चलती है। यहा तक कुछ सक्षेपमे प्रमाण और नयकी बात कही।

प्रमाणके फलका विवरण—अब प्रमाणके फलकी बात सोचिये याने कुछ जानकर फल तो मिलनाही चाहिए। बिना फलके कैसे जानते रहे, बिना फलके कोई मनुष्य कुछ काम करता है क्या ? यह आत्मा बिना फलके जानता रहे ऐसी बात है क्या ? क्या उसे कोई

फल नही मिलता ? कोई सच्चा ज्ञान किया ,सम्यग्ज्ञान हुआ, प्रमाण हुआ तो उस प्रमाणसे कुछ जानता नही क्या ? फल न मिलेगा क्या ? फल तो मिलता है। क्या फल मिलता है, देखिये ज्ञानके ४ फल होते हैं। ज्ञान कहो, प्रमाण कहो एक ही बात है। प्रमाणके फल ४ होते है हान, उपादान, उपेक्षा और अज्ञाननिवृत्ति। देखो कोई भी बात हमने जाना तो जानकर या तो उसे छोडेगे या उसे ग्रहण करेंगे या उसकी उपेक्षा करेंगे। तीन बाते तो ये करेंगे, और चौथी बात है अज्ञान दूर हो गया, यह भी ज्ञानको फल है। ज्ञानका फल अज्ञान दूर होना है। उसमे भी बडा आनन्द आता है। जैसे किसी बालकसे पूछा बताओ ८×७=कितने होते है ? तो अब वह सोच रहा है, जब तक उसको जवाब नही आता तब तक उसका चेहरा कितना शोकमग्न रहता है, फिकर कर रहा है, पढ रहा है, और जिस समयमे उत्तर आ गया—८×७=५६ तो उसकी सकल देखिये-कितनी आनन्दपूर्ण सकल रहती है, कितनी अच्छी मुद्रा रहती है कि जितनी मिठाई खानेपर भी नही रहती। तो यह अज्ञाननिवृत्ति भी तो एक फल है। तो प्रमाणके ४ फल होते हैं—अज्ञान दूर होना, छोड़ने योग्य चीजको छोड देना, ग्रहण करने योग्य चीजको ग्रहण कर लेना और उपेक्षा करने योग्य चीजकी उपेक्षा कर देना ये ४ फल है। अब इन फलोके बारेमे यह सोचिये कि यह फल ज्ञानोसे अभिन्न है या भिन्न है ? भिन्न अभिन्न तो आप समझते ही है। जैसे इस चौकीसे पुस्तक भिन्न है और चौकीसे रूप भिन्न है कि अभिन्न ?। अभिन्न, अभिन्न माने वही एक रहता है। तो इसी तरह यहा पूछा जा रहा है कि प्रमाणके जो चार फल है—हान, उपादान, उपेक्षा और अज्ञाननिवृत्ति। ये ज्ञानसे अलग चीज है या ज्ञानरूप ही है ? थोडा दार्शनिक विषय चलकर फिर आत्माकी बात कहेंगे। यहभी सुनना चाहिए। आखिर पदार्थो मे जैन शासनने क्या क्या खोज निकाला है, क्या क्या बताया। प्रभुकी वाणीमे क्या क्या दर्शाया गयाहै, कुछ तो इसका परिचय होना चाहिए, और यहा कोई दूसरी चीजका परिचय नही चल रहा है कि जैसे घडा या मकानकी कोई बात नही कही जा रही है। खुद ही यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है और यह निरन्तर ज्ञानवृत्तिका काम करता है, जाननका काम करता है, उस ही जाननकी बात कही जा रही है कि जो यह सच्चा जानना हो रहा है उसका फल क्या है ? जो भी फल है वह फल इस जाननसे अलग है या इसी जाननेमे सम्मिलित है ? यह बात कही जा रही है, उत्तरमे क्या होगा। सो देखिये एक सीधीसी कुन्जी आपको दे दिया कि जहा हैरान न होना पडे। कोई पुरुष दो विकल्प रखे तो बहुत कुछ अशोमे यह उत्तर दे दिया जावे कि कथञ्चित् ऐसा भी है, कथचित ऐसा भी है। आपकी कुछ समझमे न बैठे तो तुरन्त इतना तो ध्यान दें कि कथचित् भिन्न है, कथचित् अभिन्न। जब यह पूछा कि प्रमाणका फल

प्रमाणसे भिन्न है कि अभिन्न ? तो किसी दृष्टिसे भिन्न व किसी दृष्टिसे अभिन्न । अच्छा जो अभिन्न हो उसमे भी कोई पूछे कि बोलो—ज्ञान आत्मासे भिन्न है कि अभिन्न ? तो जल्दी का उत्तर तो दे ही दो । किसी दृष्टिसे भिन्न है, किसी दृष्टिसे अभिन्न है। अभिन्न है यह तो बिल्कुल स्पष्ट है । ज्ञान आत्मासे अभिन्न है, यह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है । इसलिए ज्ञान और आत्मा एक ही बात है । अच्छा जरा यह बतलावो कि भिन्न कैसे है ? अगर किसी तरह भिन्न न होता तो हम दो शब्द भी न बोल सकते थे । आत्मा और ज्ञान और आत्मा का ज्ञान । देखो, अपनी बुद्धिमे प्रयोजन आया कि नही, अपनी बुद्धिमे ऐसा आया कि नही कि ज्ञान तो स्वरूप है और आत्माका स्वरूप है । तो लक्षणके भेदसे, सख्याके भेदसे प्रयोजनके भेदसे, समझनेके भेदसे उसमे भेद भी है, हो गया ना व्यवहारदृष्टिसे भेद । तो अब प्रमाण की बात कह रहे कि प्रमाणसे प्रमाणके फल भिन्न है या अभिन्न ? तो देखो—एक दृष्टिसे तो अभिन्न है क्योकि ज्ञान हुआ, उसी समय अज्ञान दूर हुआ तो अज्ञानका दूर होना कोई अलग बैठा रहता हो और ज्ञानका होना आत्मामे रहता हो, क्या ऐसा है ? अरे आत्मामे ज्ञान पर्याय हुआ तो उसीके मायने है अज्ञान दूर हो गया । तो अज्ञाननिवृत्ति आत्मासे, या प्रमाणसे या ज्ञानसे भिन्न चीज न रही । अब चलो त्याग, ग्रहण और उपेक्षा । तो निश्चयत देखा जाय तो कोई भी मनुष्य परवस्तुका न त्याग करता है, न ग्रहण करता है, न उपेक्षा करता है । जैसे किसीको अपने पुत्रसे प्रीति है तो वह अपने पुत्रसे प्रीति नही करता, किन्तु पुत्रको ज्ञानका विषय बनाकर, विकल्प बनाकर यही विकल्पोमे मौज ले रहा है । प्रीति बाहर नही कर रहा है । आपमे प्रीतिका परिणाम कर रहा है । इसी तरह यह समझें कि ज्ञानीने बाह्यवस्तुका त्याग किया तो बाह्यवस्तुका कुछ नही किया, वह तो भिन्न है,आत्म पदार्थसे जुदा पडा है, इसका मेरेमे सम्बन्ध ही नही है । त्याग करना किसका नाम है ? बाह्य वस्तुके बारेमे अज्ञानसे लगाव लगाये हुए थे । यह अच्छा है, मेरा है, बढिया है, इस प्रकारका जो लगाव लगा हुआ था, ज्ञान प्रकाश होते ही वह लगाव मिट गया, इसीके मायने है बाह्य वस्तुका त्याग कर दिया । तो निश्चयत वह त्याग इस ज्ञानसे भिन्न रहा क्या ? नही रहा । अभिन्न रहा । अच्छा तो ग्रहण भी बतलावो । बाह्य वस्तुका ग्रहण करना यह व्यवहारसे कहा जा रहा है । व्यवहारसे तो बाह्य वस्तुके ग्रहणकी बात लगे या त्यागकी, उसमें तो समयभेद है और वह भिन्न है, मगर निश्चयत ग्रहण भी क्या है ? बाह्य वस्तु कोई ग्रहण करता है क्या ? कोई बाह्य वस्तु मेरे आत्मामे आ सकता है क्या ? अरे जो एक क्षेत्रावगाह कर्मवर्गणाये है, जो मेरे साथ बन्धनको प्राप्त है, जो मरनेपर जायेगी तो वे बाधे हुए कर्म साथ जायेंगे । इतना निकट जिसके साथ सम्पर्क लगा है उस कर्मवर्गणाका भी स्व-

रूप मेरेमे ग्रहण नही आया, वह भी जुदा पदार्थ है। मैं इस तरह भिन्न पदार्थ हूँ, फिर बाहरी पदार्थकी तो चर्चा ही क्या है ? कि बाहरी पदार्थ मेरे ग्रहणमें आ जाय। बाहरी पदार्थ क मैंने ग्रहण नही किया, किन्तु बाह्य पदार्थको ज्ञानका विषय बताकर उसके प्रति उसके सम्बन्धमे जो लगाव रखा जाता है उस विकल्पसे पकडा जाता है, यह ही कुछ चिन्तन किया जाता है वही तो ग्रहण कहलाया। तो वह ग्रहण ज्ञानसे अलग कहा रहा ? ज्ञानमे ज्ञानकी वृत्ति चलती है। ज्ञानमे ज्ञानका परिणमन चलता है। सो बाह्यवस्तुविषयक विकल्प उठा, उसीके मायने गहण है। तो निश्चयतः ग्रहण भी भिन्न न रहा, उपेक्षा भी भिन्न न रही। उपेक्षा तो त्याग और ग्रहणसे बढकर चीज है। बाह्य वस्तुको हितकारी अहितकारी नही समझ रहा है इसलिए वह समता परिणाममे है। उपेक्षा कर दी गई है, ऐसा उपेक्षा-भाव ज्ञानसे भिन्न कैसे कहा जाता है। अभिन्न है फिर भी एक दृष्टिसे भिन्न है। कैसे कि जब हमने जाना सूक्ष्म दृष्टिसे देखा उस समय जीव त्याग नही करता, त्यागका समय अगला होता है। अभी तो जाना कि इसका यह नही है, चाहे कितना ही जल्दी उसका त्याग हो जाय, इसी तरह ग्रहण भी, इसी तरह उपेक्षा भी, तो इस दृष्टिसे भिन्न समयकी चीज होने के कारण भिन्न होनेसे अभिन्न होते हुए भी उसका प्रत्यभिज्ञान बराबर लग रहा है। इस को जिस मुझने जाना था उसने ही त्याग किया। इस वस्तुको जिस मुझने जाना था उसने ही बस्तुको ग्रहण किया। यहा प्रत्यभिज्ञान लग रहा है। इससे एकत्वका भी भान हो रहा है लेकिन समयभेद होनेसे और लक्षणभेद होनेसे यह कथचित् भिन्न है। तो प्रमाणका फल प्रमाणसे कथञ्चित् भिन्न है और कथचित् अभिन्न है। दृष्टियोसेप्रमाणका फल प्रमाणसे कथचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। नयमे भी फल होता है, नयका भी फल, नयसे वह कथचित् भिन्न है कथचित् अभिन्न है। सीधी इतनी बात तो जाहिर हो ही रही है कि फलके जनक तो है प्रमाण और नय और प्रमाण और नयसे उत्पन्न हुआ है फल यो जन्यजनक-भेदसे भी भिन्न है। तब ही तो इस क्रियासे भी देख लो—"प्रमाणनयैः मे तृतीया विभक्ति लिया और अधिगम. मे प्रथमा विभक्ति लिया। यह भिन्नताको जाहिर कर रहा है। तो यो प्रमाणका फल प्रमाणसे भिन्न भी है, अभिन्न भी है। क्यो जाना जा रहा है, परिचय भी किसलिए किया जा रहा ? तो बस बात एक है कि जो मैं सहज निरपेक्ष अन्तस्तत्त्व स्वत सिद्ध जिस भावरूप होऊं उस भाव रूपमे मैं अपनेको मानता रहूँ। देखो सारे सकट एकदम नष्ट हो जायेंगे। अज्ञानसे विकल्प करके, चिन्ता बनाकर बाह्य वस्तुको सामने लाकर हम व्यर्थ ही दुःखी होते है। इनसे तो हमारी उपेक्षा होनी चाहिए। ये तो सब नैमित्तिक भाव है ये तो हमे बरबाद करनेके लिए आये है। भला बतलाओ इस जीवनमे ही थोडा शानसे जी लिया,

अच्छे ढंगसे खूब मौजसे रह लिया, समाजमे जरा अपना ढग वना लिया, इस तरहसे अपना जीवन बिता दिया इससे भी लाभ क्या मिला ? जिसे आत्मज्ञान नही, आत्मरुचि नही और जो सत्यस्वरूप है आत्माका शुद्ध सहज निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप, उस रूप अपने आपको बनाये नही, परिणमाये नही, या उस रूप अनुभव नही करे, प्रतीतिमे न ले तो बाहरी उपाय अगर करते रहे मकान बनाया, दुकान बनाया'''तो इसका फल क्या होगा ? कुछ भी फल न मिलेगा। यह तो सब मायाजाल है ! कुछ भी करे सब बेकार है। उन्हे तो समझे कि परिस्थितिवश करना पड रहा। एक कैदी भी तो यह सोच रहा कि परिस्थितिवश मुझे चक्की चलानी पड रही है, खेत खोदना पड रहा है, पर यह मेरा काम नही। इसे मैं नही करना चाहता। लेकिन यह तो उस कैदीसे भी जबरदस्त कैदी हो रहा है कि कर रहा है और उस करते हुए मे मौज मान रहा है, लगाव रख रहा है कि यह तो मेरा ही काम है, मेरे ही करनेका काम है। यह मेरा नही तो और किसका है ? यह तो इन लौकिक कैदियो से भी भयकर कैदी वन रहा है तो इसका फल क्या मिलेगा ? फल स्पष्ट है। ससार कारा-गारमे ही रहेगा। कोई ऐसे भी कैदी होते कि जब जेलसे छूटनेकी बात आती है तो वे दुःख मानते हैं कि मुझे यहा कितना बढिया आराम था, मगर अब जाना पडेगा। कोई कैदी ऐसे भी होते हैं कि यदि उन्हे कैदसे मुक्त कर दिया जाय तो वे फिर कोशिश करते हैं कि मै फिर उसी जेलखानेमे पहुँच जाऊं। तो यह तो उससे भी भयंकर है कैदी, जो कि इस ससारके जेलखानेसे छूटनेकी बात ही मनमे नही लाता। यह ही सर्वस्व है, यह ही मेरा प्राण है, ये घरके दो चार प्राणी लडके बच्चे, यह मिट्टीका घर, यही मेरा धाम है, यही मेरा सर्वस्व है, एक भयकर कैदी बनकर इस जेलखानेमे यह रम रहा है। यह नही सोचता कि "राग त्यागि पहुचूं निज धाम। आकुलताका फिर क्या काम ?" अगर मैं रागको छोड़-कर अपने धाममे पहुंच लूं तो फिर आकुलताका काम नही रह सकता। इस ससारमे किसी का कोई सहाय नही, किसीका कोई शरण नही। किसीका कोई कुछ नही है। आपका ज्ञान सही है तो आपको मदद मिल जायगी। आपका ज्ञान विगड गया, कुबुद्धि हो गई, विवेक खो दिया तो फिर चारा न रहा कि आप खुश रह सके, या किसी ढगसे रह सके। तो आप का वैभव क्या हुआ ? ज्ञानका सही वनाये रहना। अपनी गलतीको गलती मानना, यह ही ज्ञानको सही बनानेका रूप है। मोही जन गलतियोपर गल्ती कर रहे हैं, पर कब मान पाता कि मैं गल्ती कर रहा हूँ। इसीको तो कहते है मिथ्यादृष्टि। गल्ती करके भी गल्तीको गल्ती न मान सकना, बस यही है मिथ्यात्वका रूप। अब राग ज्ञानी भी करता, अज्ञानी भी, सम्यग्दृष्टि भी घरमे रहता और राग करता, मगर सम्यग्दृष्टि तो समझता कि मैं गल्ती कर

रहा हूँ, पर मिथ्यादृष्टि समझ सकता है क्या कि मैं गल्ती कर रहा हूँ। वह मिथ्यादृष्टि तो अपना एकदम सारा उपयोग लगाकर बच्चोको प्राणकी तरह मान खिलाता है, उसे छातीसे लगाता है, उस बच्चेकी मुस्कराहट देखनेके लिए उत्सुक रहता है, उसे उस समय क्या यह बात दृष्टिमे रहती है कि जो मै इतना लगाव रख रहा हूँ यह मेरी चीज नही। इसका फल भयकर है। आप देखो सब घर मरता है। ऐसायहा कोई नही जो मरता नही औरसब दु खी भी होते, क्योंकि मोह लगा है।

ज्ञानपुत्रके जीवनसे चैतन्यकुलकी वृद्धि व श्रृङ्गार—एक बुढियाका बच्चा मर गया, एक ही बच्चा था इकलौता। वह बच्चा मर गया तो बुढिया बहुत दु.खी हुई। वह बुढिया रोती-रोती एक साधु महाराजके पास गई और बोली महाराज मै क्या करू ? मेरा इकलौता बेटा गुजर गया, अब तो मेरे प्राण नही बच सकते। तो साधुने कहा--देख बुढिया, तू दु खी मत हो, मै तेरे बच्चेको जिन्दा कर दू गा। बुढिया बहुत प्रसन्न हुई। ···देखो जो हम कहे सो करना होगा हाँ हा महाराज, आप जो कुछ कहेगे वह सब करनेको हम तैयार है। —अच्छा जावो किसी घरसे एक पाव सरसोके दाने ले आवो। हा महाराज अभी लाती हूँ। --अरे सुन तो सही, ऐसे घरसे लाना जिस घरमे कभी कोई मरा न हो। वह बुढिया तो बहुत खुश होकर चली। एक घर घर पहुँची बोली—मेरा बेटा गुजर गया, उसे जीवित करनेके लिए एक पाव सरसोके दाने चाहिए। ···अरे एक पाब क्या, किलो दो किलो १० किलो २० किलो ले जावो। मगर यह तो बताओ कि तुम्हारे घरमे कभी कोई मरा तो नही। अरे हमारे घरमे तो न जाने कितने लोग मरे। बाबा मरे, दादा मरे, भाई मरा आदि। तो फिर आपके घरसे न चाहिए। दूसरे घर गई तो वहा भी ऐसा ही जवाब मिला। यो बुढिया अनेको घर गई, पर उसे कोई ऐसा घर न मिला जिस घरमे कभी कोई मरा न हो। बुढियाको ज्ञान जगा कि सचमुच ससारकी यही स्थिति है। एक दिन सभीका मरण होता है। इतनी बात चित्तमे घर कर जानेसे बुढियाका उस पुत्रके प्रति मोह गल गया, प्रसन्न हो गई,और साधु महाराजके पास जाकर बोली-महाराज मेरा पुत्र जिन्दा हो गया। यहा किसका कोन?उससमय बुढियाको जो प्रसन्नता थी वह बच्चेके जीवित रहते हुएमे न थी। तो साधु महाराज बोले—क्या सचमुच तेरा बेटा जिन्दा हो गया ? हा महाराज—जिन्दा हो गया और मै सदाके लिए कृतार्थ हो गई। अब मेरा बच्चा कभी मर नही सकता। जो मेरा ज्ञानपुत्र पहले मरा हुआ पडा था। अब यह ज्ञान जागृत हो गया तो अब सो अमर हो गया। तो भाई हर तरह प्रयत्न करके इस ज्ञानकी सम्हाल करें। इस ज्ञानमे दोष न आये, ज्ञानमे कलुषता न आये, ऐसा प्रयत्न करे तो जीवन सफल हो जायगा, और धन कितना हो

कमा लें तो भी उससे कुछ लाभ न होगा। अव्वल तो कमानेका भरोसा भी नही कि कल क्या होगा। आजके जमानेमे तो बिल्कुल ही भरोसा नही। कमाकर धर लिया और अगर कोई कानून बन गया कि इतने धनसे अधिक कोई नही रख सकता तो फिर उस अधिक धन से आपका फायदा क्या रहा? यहा तो लोग समझते है कि जिनके पास कई मकान है, खूब किराया आता है, मजेमे रहते है, पर उनकी हालत तो देखो, ६५ परसेन्ट तो दे दिया टैक्स मे, और और भी अनेक टैक्स दिया, जब उसने हिसाब लगाया तो बचा क्या? चार आने सैकडा ब्याज भी नही मिल रहा। तो भाई इस धन वैभवमे दम क्या है? इसे तो घास फूस की तरह समझो। वह आता है तो आये, जाता है तो जाये, बस मेरा ज्ञान जिन्दा हो गया।

ज्ञानभावमें ज्ञानमय परिणतियोंकी सृष्टि—एक सन्यासी ऐसा था जो ज्ञानमे बहुत तृप्त रहता था, ज्ञान उसे बहुत प्यारा था। ज्ञानमे इतनी धुन थी कि वह सध्या सामायिक भी भूल जाता था। तो उससे किसीने पूछा कि गुरुजी यह तो बतलाओ कि आप सध्या भी कभी कभी छोड देते हैं, क्या कारण है? तो उसका उत्तर था कि सुनो भाई मेरे को दो सूतक लगे है। देखो किसीको सूतक लगा हो तो लोग कहते है कि भाई अब तुम जाप न करो, पूजा पाठ आदि न करो। तो भाई हमारे भी दो सूतक लगे है इसलिए हम कभी कभी सध्या भी छोड देते है।...अरे आपको सूतक कैसे लगे? आप तो घर गृहस्थीसे दूर है। ...सुनो वे दो सूतक कौन है? एक तो मेरी मोह रूपी माता मर गई है इसका सूतक है, और दूसरे ज्ञानरूपी बेटा पैदा हो गया है इसका सूतक है। सूतक तो मरनेमे भी लोग मानते और पैदा होनेमे भी लोग मानते। यह बात एक अलकाररूपमे कही गई है। भाव उसका यह है कि जिसे किसी प्रकारकी ममता नही और जिसको एक ज्ञानतत्त्व जागृत हो गया है ऐसा पुरुष तो ज्ञानस्वभावमे हीरत रहा करता है। वहां ही तल्लीन रहा करता है। जिनकी समाधि निरन्तर चलती रहती है, जिनका आत्मबोध बिल्कुल स्पष्ट सामने रहता है उनको बाह्य क्रियाये कभी हो पाती कभी नही, उनका दोष क्या है? यह एक अलकार की बात है। बाते दो होनी चाहिए—एक तो ममता मरे और दूसरे—ज्ञान पैदा हो। ये दो बाते जिसे मिल गईं उसे सदा प्रसन्नता है। ममता मरनेके मायने मिथ्यात्व मर गया। मिथ्यात्व कब होता है, जब अज्ञान रहता है और किसी पर वस्तुको अपना स्वरूप माना जाता है। ममता जिसकी मरी उसके स्वच्छ ज्ञानप्रकाश होगया। जिसे ज्ञान प्रकाश हुआ उसे स्पष्ट बोध है। प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक जीव अन्य समस्त जीवोंसे और समस्त पुद्गल आदिक द्रव्योसे अत्यन्त भिन्न है। किसीका स्वरूप किसी दूसरी वस्तुमे नही जाता। किसीका द्रव्य क्षेत्र, काल भाव किसी दूसरे द्रव्यमे नही जाता। प्रत्येक पदार्थ अपना ही स्वरूप लिए हुए है, अपना ही

एकत्व लिए हुए है और अपने आपमे अपनी पर्याय करता जाता है। किसी दूसरेको प्रवेश कराके पर्याय उत्पन्न नही करता। ऐसा वस्तुका स्वरूप है। ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रताका उसके प्रकट भान है, ऐसा ज्ञानी पुरुष अगर बाहरी क्रियाओमे कभी कुछ भूल जाय तो बतलाओ उसका क्या दोष है ? यह संन्यासीका उत्तर था कि मेरे दो सूतक लग गए। तो ये दो बातें अपनेमे आनी चाहिए ममतासे दूर हो और ज्ञानप्रकाश प्रगट हो। ममता कई प्रकारकी होती है, घरकी, धनकी, कुटुम्बकी, शरीरको, अपनी इज्जतकी, अपने वचनकी, अपनी शानकी यो अनेक प्रकारकी ममता होती हैं। जिसे मुक्ति चाहिए हो उसे सारी ममताओको, छोडकर यह अनुभव करना होगा कि मैं सबसे निराला एक ज्ञानमात्र अन्त प्रभु हूँ। ऐसा अनुभव करे और यह विकल्प छोड़ दे, यह श्रद्धा छोड दे कि मैं अमुकका बाप हूँ, अमुकका बेटा हु, अमुक जगहका रहने वाला हूँ, सारी बातोका परित्याग करें, और एक चित्प्रकाशमात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप याने जिसमे किसी परवस्तुका प्रवेश नही, ऐसा सर्वसे निराला रहने वाला मैं चैतन्य-प्रभु हूँ, ऐसी श्रद्धा होगी तो उसके अनुरूप अपनी पर्याय बनेगी।

अज्ञानभावमे अज्ञानमय परिणतियोकी सृष्टि—देखो लोहा है और लोहासे कोई चीज बनेगी तो लोहामय ही बनेगी और सोनासे जो चीज बनेगी वह सोनामय ही बनेगी। तो जब भीतरमे अज्ञान–भाव लगा लिया है तो जो भी चेष्टा होगी वह अज्ञानभरी चेष्टा होगी। बताते है ना अपभ्रशमे कि पडित शत्रुर्भलो, न मूर्खो। हितकारकः, याने पडित अगर शत्रु है तो उससे मेरेको खतरा नही और अगर मित्र मूर्ख है तो उससे मेरेको खतरा है, तो इसी तरह अगर अज्ञान भाव है तो जो भी चेष्टा करेगा, अगर धर्मके नाम पर भी कोई काम करेगा तो वहा भी अज्ञानचेष्टा है धर्मचेष्टा नही हो रही, और अगर भीतरमे ज्ञान प्रकाश है, अपने इस ज्ञान स्वरूपको मान लिया कि मैं यह हु, ऐसी अगर ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी प्रतीति बन गई तो आपका चिन्तन, पूजन बन्दन आदिक सारी क्रियायें ज्ञान-मय होगी, अज्ञानमय न होगी। तो मेरा विवेक, विशुद्ध ज्ञानप्रकाश यही मेरा शरण है। यही मेरी मदद कर सकने वाला है। ज्ञानको छोडकर मेरा कोई मददगार नही। चाहे आजसे शरण गह ले ज्ञानकी तो अभीसे सुखी हो गए। और अगर भवितव्य अच्छा है तो जबसे चाहो शरण गहो, दुख मिटालो, पर दुख मिटेगा एक अपने ज्ञानस्वरूपकी शरण गहनेसे, अन्य उपायसे दुख न मिटेगा।

व्यवसायी ज्ञानमें प्रमाणत्व—जानकारीका परिचय कर लीजिए। जानकारीमे निर्णय हुआ करता है। जहा निर्णय नही, निश्चय नही उसे जानना तो नही कहते, लेकिन आप आश्चर्य करेंगे कि एक दार्शनिक ऐसा है कि जो जाननेको अनिश्चयात्मक कहता है याने

जहा निश्चय न हो, निर्णय न हो वह तो कहलाता है सही जानना याने प्रमाण और जहा निश्चय बना उसे कहते है विकल्पज्ञान, अप्रमाण। आप सोच रहे होगे कि यह बात कुछ आफत सी लग रही है कि जहा निश्चय हो, निर्णय हो उसे तो कहते है मिथ्याज्ञान, विकल्पज्ञान और जहा निश्चय नही हो पाता, निर्णय नही हो पाता ऐसे ज्ञानको कहते है प्रमाण ज्ञान। ऐसे कुछ दार्शनिक है, वे दार्शनिक हैं, क्षणिकवादी, क्षणिकवादके सिद्धान्तमे बताया है कि जिस समय ज्ञान किया जा रहा है उसी समय जो पदार्थ है सो पदार्थ भी उत्पन्न हो रहा है, उत्पन्न होते ही दूसरे क्षण रहता नही, क्योकि क्षणिकवादियोके यहा पदार्थ एक क्षण भरके लिए रहता है, दूसरे क्षणमे मिट जाता है। तो जिस क्षणमे पदार्थ उत्पन्न हो रहा, ज्ञान भी उसी क्षण बन रहा। तो उत्पन्न हो रहे पदार्थका निर्णय उत्पन्न हो रहा ज्ञान न कर सकेगा, इसलिए जो अध्यवसायी ज्ञान है, जहा निश्चय नही बस रहा है, ऐसी जो झलक है, ऐसी जो जानकारी है उसे कहते है प्रमाण और उसके बाद दूसरे समयमे एक निर्णय आता है, निश्चय आता है कि यह पदार्थ यह ही है। उस समय पदार्थ है नही सो असत्का विकल्पक विकल्पज्ञान एक मिथ्याज्ञान है। निर्विकल्प ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। किन्तु आचार्यदेव यहा यह बतला रहे है कि अधिगम व्यवसायात्मक होता है। जानना उसे कहते है और भले ही निर्णय मति श्रुत ज्ञानवाले जीवोंको अन्तर्मुहूर्तमे होता है, किन्तु जहा निश्चय पडा हुआ है वह तो है सम्यग्ज्ञान, प्रमाण और जहा निश्चय नही है वह है अप्रमाण।

आत्महितके लिये ज्ञानपौरुषकी भावना—देखो भैया! हमे अपने आपके लिए क्या सोचना है। हम अपने आपका सही ज्ञान करे और प्रमाणमे आ जाय, अनुभवमे उतर जाय, इस तरह ज्ञान करे। देखिये जैसे कहते है—शैलविहारी या स्वच्छन्द। हम जानने का तो काम करते रहते है मगर जिम्मेदारी के साथ एक आत्महितकी भावना के साथ हम जानकारी को काम नही करते, किन्तु जैसे मन स्वच्छन्द हुआ है, मन जिस विषयकी ओर लगनेको होता है बस उस ओर ही हम जानकारी की रुचि लगाते है, लेकिन आत्मा के परिचय बिना कभी भी शान्ति नही हो सकती। अगर इस जीवनमे भी, इस लोकमे भी हम शान्ति चाहते है तो हमे आत्मज्ञान करना आवश्यक है। देखिये धन, यौवन सम्पदा, जीवन सब कुछ विनश्वर है। कुछ भी नही सदा टिकनेका, जीवन भी नही रहनेका, वैभव भी नही रहनेका। यह सग कुटुम्ब यह भी नही रहनेका, लेकिन मै आत्मा. आप आत्मा सोच लीजिए, यह कभी मिट न सकेगा। यो तो जगतमे जो भी पदार्थ है वे मिटते नही। यह तो एक कहने की बात है कि धन विनश्वर है, मिट जायगा। धन कैसे

मिट जायगा ? यह पुद्गल परमाणुओसे कागज ब ा, रूपया बना, सोना चाँदी बना वे परमाणु क्या मूलत नष्ट हो जायेगे ? अरे आपके पास न रहे तो आप उसे मिटा कहते है। जगतका कोई पदार्थ नही मिटता। सब बराबर बने हुए है। अनन्त काल तक रहेगे। एक परमाणु न मिटेगा, एक भी जीव न मिटेगा। सब रहेगे, पर यहाँ मोहमे यह कहते हैं कि लडका उत्पन्न हो गया और वियोग हो गया तो कहते कि मर गया। तो वियोग की ही बात देखलो—जिन जिनका समागम हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। जिसका वियोग हो गया उसका सयोग हो अथवा न हो, दोनो ही बात है, लेकिन जिसका सयोग है उसका वियोग नियमसे है। इसमे जरा भी असत्य बात नही। ध्रुव सत्य है। जिस पर द्रव्यका सयोग है उसका वियोग अवश्य है। फिर बतलाओ धनके खातिर तो मायामय जीवोका प्रसन्नताके ही खातिर या अपने आपकी कल्पना से बडा समझ लिया जिस वैभवके प्रसगसे उसके खातिर या कुटुम्बके खातिर व्यर्थका मोह लगाकर यह ही मेरा सर्वस्व है, उनको तो खूब ऊंचा करना चाहिए, इनको खूब पढा ले, आप उन कुटुम्बियोके लिए खूब धन कमाकर रख देना चाहते, देखो, कैसा आप उन कुटुम्बियोके नाकर बने हुए हैं। उनके पुण्यका उदय है जिससे आपको उनकी नौकरी तो करनी ही पडेगी। तो कुछ भी चीज सदा रहनेकी नही है, यह बात तो निश्चित है, तब फिर देखो सब ज्ञान ही ज्ञानकी बात है। तपश्चरण करनेकी बात नही कह रहे। व्रत, सयम नियम की बात नही कह रहे, देखो चीज छोडो, यह कुछ नही बतला रहे। यही बैठे बैठे आपके भीतरमे जो आपका ज्ञान है उस ज्ञानका प्रयोग करनेके लिए कह रहे है। जरा उस ज्ञानके द्वारा भीतरमे यह तो जानो कि जो जानने वाला है वह ज्ञानस्वरूप है। और, वह अपने ज्ञानके द्वारा अपने आपको जानता है ऐसा मै ज्ञानमय पदार्थ हूँ, सदा रहूँगा।

विषय कषायके परिहारमे ही ज्ञानकी वास्तविकता—ज्ञानमय निज पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रच भी सम्बन्ध नही किसी भी जीवके साथ। पर मोह और रागकी बलिहारी तो देखो, जितना परिचय हुआ है, जिसे अपना मान रखा है, ऐसा लगता है कि यह ही मेरा सर्वस्व है और है कुछ नही। अचानक वियोग हो जाता है, और देखो जहा दु ख है, जहा वियोग है, जहा कष्ट है वहा भलाई नही हो सकती। जहा कष्ट नही, जहा दु ख नही वहा भलाई नही हो सकती। सिद्धान्तके अनुसार देखो कर्मभूमिमे ये कष्ट हैं, वियोग है तो मोक्षमार्ग यहाँ से चलता है। योगभूमिमे कष्ट नही, वियोग नही। देवगतिमे कष्ट नही, वियोग नही, वहासे मुक्ति नही होती। कष्टसे घबडाना क्या ? कष्ट आता है तो जरा भेद विज्ञान करलो—मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, मेरे मे तो कुछ भी नही आया, यह बाहर

की बात है। बाहर ही रह गई है, इससे मेरा क्या ताल्लुक। जरा ज्ञान तो बनाओ, कष्ट रहता ? ज्ञान ही साथी है। चाहे आज आदर करलो ज्ञानका और जब मनमे आ जाय तब करना, मगर ज्ञानका आदर किए बिना शान्तिका रास्ता कभी नही पा सकते। कितनी सरल बात है, कितनी सुगम बात है, कितनी महान बात है। मेरा यह ज्ञानस्वरूप, यह भगवान आत्मा मेरे ज्ञानके द्वारा जाननेमे आना। यह भी तो मै हूँ। सबसे निराला हूँ, अपने आपकी निधि वाला हूँ। ज्ञान करनेमे कोई कठिनाई तो नही आती। अगर मोह मिथ्यात्व विषका दमन करना चाहते, झट समझमे आ गयो कि यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा यही भगवान है, यही मै सर्वस्व हूँ। देखिये ये भवरे कई नरहके होते है। कुछ तो ऐसे होते है जो अच्छी सुगन्ध पर ही रहते है और जो अच्छा पराग हो उस पर ही मडराया करते हैं। और कुछ ऐसे देखा होगा कि गोबर की गोलियां बनाकर उसीको ही गोल-गोल करते रहते है, उसीमे खुश रहते है, और वे भी भंवरे है, उडने वाले है, मगर उन्हे गोबर की गोलियाँ ही पसन्द है। और कुछ भवरे ऐसे होते है कि जिनको वडे अच्छे अच्छे पुष्पोका सुगन्ध ही पसन्द है। आप देखिये—ऐसे ही मोही जीव है, उनको पर पदार्थका राग वाला ज्ञान ही पसद है। ज्ञानी पुरुष कोई ऐसे विलक्षण नही होते कि उनके हाथ पैर और तरह के होते हो, सिर और तरहका होता हो। जैसे बारातमे दुल्हा अलगसे पहिचान लिया जाता है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष कोई सकल सूरतसे अलग पहचान लिया जाता हो ऐसी बात नही। मनुष्य ही क्या, प्रत्येक मन वाले जीव जैसे पशु, पक्षी, ये भी ज्ञानी हो सकते है। जिसके मन है वह ज्ञानी हो सकता है। जिसको अपना ज्ञानस्वभाव रूच गया–मैं तो यह हूँ, उस ज्ञानस्वभावकी आराधना मे ही मेरा कल्याण है। अब तक जितने जीव सिद्ध भगवान बने है वे ज्ञानस्वभावकी आराधनाके फलमे ही बने हैं। देखो भाई जैसे कोई पुरुष बूढे पिताकी वचनोसे भक्ति करे, खानेसे भक्ति करे, कोई चीजसे भक्ति करे, सब कुछ करे पर एक उसकी आज्ञा न माने, उल्टा गालिया दे तो वह पिताका भक्त कहलायगा क्या ? एक रीति रिवाज है, कोई भाई बुरा न कह दे, कोई पडौसी यह न कहदे कि यह अपने आपको खिलाता भी नही इसलिए उसे खिलाता है, पर इसका कहना नही मानता, बल्कि उल्टा–उल्टा चलता है, उसके हृदयमे अपने आपके प्रति अनुराग भी नही है तो वह पिताकी भक्ति कहलाती है क्या ? ऐसे ही हम मन्दिर भी आते है, चावल भी चढाते हैं, दो चार काम भी कर आते हैं पर भगवानका जो मार्ग है, मार्ग तो वही सच्चा है। ज्ञानस्वभाव की आराधनाके मार्गसे ही प्रभु सिद्ध हुए हैं। धन्य है उनकी वर्तमान निर्मल दशा और मेरेको यह ही कर्तव्य है तब ही मैं भगवानका सच्चा दास हूँ। इस प्रकार भगवानके स्वरुप

मे और भगवानने जो काम किया, जिस मार्गसे चले उस मार्गमे अनुराग नही और उस मार्ग पर चलनेकी अपनी भावना नही तो समझो कि सारी भक्ति उसकी उस प्रकार है जैसे कोई अपने बूढे बापको खाना तो दे मगर उसकी आज्ञा नही मानता, उसके प्रति हृदयमे अनुराग नही है। उस तरहकी बात है।

आत्मदयाके अर्थ ज्ञानोपासनाकी आवश्यकता—आत्मानुशासनमे लिखा है कि चित्त-साध्यान् कषायारीन्न जयेद्यत्तदज्ञता। अर्थात् हे नवाव साहब, हे वडे आरामकी धुन रखने वाले पुरुष, कुछ अगर तपस्या न बने तो न करो, कोई कष्ट न सहो, लेकिन कषाय वैरियो का जीतना केवल एक चित्तसाध्य है, ज्ञानसाध्य है और यह ज्ञान द्वारा जो बात बन सकती है, विचार द्वारा ही जो बात बन सकती है, महान कषाय अरिको जीतनेकी। सो यदि ऐसा ज्ञान न आये, अरिको न जीता ज्ञानबलसे तो तुम्हे मूढ कहेगे। हम नही कहते कि तपस्या करो किन्तु शुद्ध ज्ञानकी कृपासे कषायपर विजय होती है उस शुद्ध ज्ञानके बलसे कषायपर विजय न प्राप्त करें ता वह मूढता है। मोह वडा प्रवल है। कुछ तो सोचो अपने आप मे। देखो दिन भर भी गल्ती करो मगर कभी एक मिनट भी एक इस भगवान आत्माकी दृष्टि बन जाय कि मैं तो यह हूँ। रात दिनके २४ घन्टेमे जो मैंने विकल्प किया, बाहरी पदार्थो मे दृष्टि दी, उस ओर ही आकर्षण रहा, तो वह मेरा काम नही है। वह मेरे कुलके अनुरूप बात नही है। मेरा कुल तो चैतन्य है, मेरे अनुरूप तो बात यह है कि ज्ञाताद्रष्टा रहूँ, राग-द्वेषके विकल्पोसे दूर रहूँ। यही मेरे कुलकी रीति है। बाकी जो कुछ किया है वह कर्मका विपाक है। यह मेरा काम नही। एक मिनट भी अगर अपने आपकी ओर दृष्टि जाय तो समझो कि वह जीवन धन्य है। एक कथानक आया है कि एक राजा पर किसी शत्रुने चढाई कर दी तो राजा तो सेना सजाकर शत्रुपर विजय प्राप्त करने चला गया, इधर रानीको राज सिहासन दे दिया कि रानी राज्य करे। इसी बीचमे मौका पाकर किसी दूसरे शत्रुने उस राज्यपर आक्रमण कर दिया तो रानीने सेनापतिको बुलाया, वह सेनापति जैन था। रानी बोली हे सेनापति देखो अमुक शत्रुने आक्रमण कर दिया है, तुम सेना सजाकर उसपर विजय करो। वह जैन सेनापति सेना सजाकर चल दिया, दूर स्थान था तो रास्तेमे साम हो गई! रातके ७ बज गए। तो उस समय उसे इतना मौका न मिला कि वह हाथीसे उतरकर नीचे सामयिक करे। सामयिक करनेका उसके नियम था। देखिये कुछ समय पहले युद्ध करनेका समय नियत रहा करता था कि इतने समय तक युद्ध चालू रहेगा, इसके बाद बन्द हो जायगा, तो वह सेनापति हाथीपर बैठा हुआ सामयिक करने लगा। सामयिक करते समय प्रतिक्रमण पाठमे वह एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदिक जीवोसे अर्थात् पेड पौधा,

कीडा मकोडा, मक्खी मच्छर आदि जीवोसे माफी माग रहा था—किसीभी जीवको मेरे द्वारा बाधा पहुँची हो तो माफ करो किसी चुगलखोरने यह बात रानीके पास जाकर कह दी कि आपने तो ऐसा सेनापति भेजा कि जो पेड पौधा, कीड़ा मकोडा आदिकसे भी माफी मागता है, वह क्या युद्धमे विजय प्राप्त करेगा। इधर हुआ क्या कि ७ ही दिनमे विजय प्राप्प करके वह सेनापति आ गया। तो रानी कहने लगी कि—हे सेनापति. मैंने सुना था कि तुम पेड पौधा, कीडा मकोडी, मक्खी मच्छर वगैरह छोटे छोटे जीवोंसे भी माफी माग रहे थे, पर तुमने कैसे युद्धमे विजय प्राप्त कर लिया ? तो सेनापति बोला—महारानी जी सुनो मै आपका २३ घन्टेका सेवक हूँ। उतने समय तक आपका जी जान लगाकर काम करनेको तैयार रहता हूँ। रातको काम पड जाय, हर समय मैं आपका नौकर बना रहता हूँ, पर एक घन्टा मैने अपने आपकी (आत्माकी) सेवा के लिए रखा है। मेरे आत्माकी सेवा इसी तरह होती है कि किसीभी आत्माको मेरे द्वारा कष्ट पहुचा हो तो क्षमा करना, ऐसी भावना बनाये। तो वह मेरी आत्मसेवाका समय था इसलिये मै सभी जीवोसे माफी माग रहा था, लेकिन जब आपके काममे कर्तव्यका समय आया तो मैने पूर्ण बलके साथ युद्धका काम किया और विजय प्राप्त हुई। तो ऐसा हम आपभी समझले कि हम २३ घन्टेतो औरोके नौकर, कुटुम्बके नौकर, नौकरके नौकर बने रहे, मालिक मायने क्या ? जो नोकरका नौकर हो। अरे उन नौकरोको खिलाना, वेतन देना, उनकी गृहस्थी चलाना, यो नौकरोकी भी नौकरी करनी पडती। उस मालिकको। तो २३ घन्टा तो हम सब कुछ करे मगर एक घन्टा तो अपने आपकी सेवामे लगाये, आत्माकी आराधनामे लगायें, ज्ञानस्वरूपकी उपासनामे लगाये। तब मेरा भला है, ऐसी धारणा बना लेवे और दुर्लभ इस मानव जीवनको सफल कर लेवे।

ज्ञान द्रष्टा रहनेका कर्तव्य—मेरा काम है ज्ञाताद्दष्टा रहना। रागद्वेष करना मेरा काम नही। जैसे कोई बुरा करता है ना तो भीतरसे उसका आत्मा गवाही दे देता है कि यह काम बुरा है और अगर करे तो वह उसके कर्मका तीव्र उदय है। काम कर भी बैठे तो भी भीतरमे एक आवाज आती है कि यह काम बुरा है जरा भी रागद्वेष करे। बाह्य पदार्थ से मोह करे, बाह्य पदार्थसे प्रीति करे, यह ही सब कुछ मेरा हितकारी है, ऐसी श्रद्धामे बात लावे तो झट गवाही देगा अपना आत्मा कि यह काम मेरा नही है। यह मेरा उचित काम नही है। मेरा उचित काम तो है ज्ञाता द्रष्टा रहना। ऐसी अपनी एक स्थिति बनानेकी सोचे। देखिये—बडा तो सब बनना चाहते। अच्छा—बडे तो बनें आप, मगर ऐसे बडे बने कि जिससे बडा और कुछ नही हो सकता। बड़े से बडा कौन ? प्रभु, भगवान। अरहत और सिद्ध। सशरीर परमात्मा और अशरीर परमात्मा। तो ऐसा ही बडा होने का मनमे

विचार आना चाहिए और वह विचार बनेगा। वह उपाय बनेगा धीरतासे, गम्भीरतासे, अपने आपमे गुप्त ही गुप्त। एक बडी सौम्यताके साथ, समताके साथ, जहा भावुकता न हो ऐसी वृत्तिके साथ जहां भावुकता न हो, क्षोभ न हो, ऐसी वृत्तिके साथ बनेगा अपने आत्माके कल्याणका उपाय। भाई बात बिल्कुल निश्चित है, कषायोसे बरबादी है। कषाय न हो तो आत्माको शान्ति है। और शान्त पुरुष सदा प्रसन्न रहता है, सुखसे रहता है। सुख मिलेगा कषाय न करनेसे। कषाय करनेसे आज तक किसीने भी शान्ती नही पायी। पा नही सकते। कषायका अर्थ ही यह है जो आत्माको कसे अर्थात् दु ख दे। कषायसे विजय न मिलेगी। विजय मिलेगी तो अपने आपके मनपर विजय प्राप्त करनेसे मिलेगी। उसका अभ्यास कुछ तो होना चाहिए, उसकी कभी चर्चा भी तो कर लेना चाहिए। जब परस्पर मित्र मिलते हैं, जो पहलेसे मित्र बने हुए है उस मित्रताका ढाचा बदल लीजिए। मित्र तो वही रहे, पर ढाचा बदल दीजिए। कभी बैठकर परस्परमे आत्महितकी बात भी तो कर लिया करें। आप सच्चे मित्र बन जायेंगे। और आत्महित की बात तो कभी रच करेंगे ही नही, और बस विषयोके परिग्रहकी यहा वहा भी निन्दाकी और बात कर अनेक गप्प करके मित्रताका नाता निभा ले तो उसमे वास्तविक मित्रता नही। वास्तविक मित्रता तो इसमे है कि वहां आत्महितकी बात रखे, अपना कल्याण हो, मित्रका कल्याण हो, तो बस भेद विज्ञान की बात उसमे आ जाती है। भेदविज्ञानकी चर्चा करे उनसे मैं आत्मा हूँ, स्वय हूँ स्वत. सिद्ध हूँ, परिपूर्ण है, ज्ञानानन्दका निधान हूँ। मै अपने आपमे अपने आप ही परिणमता रहता हूँ। मेरा किसी दूसरी वस्तुमे रच भी सम्बन्ध नही। समग्रपर वस्तुओंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनका उनमे ही है। कोई परिणातियोका लेन देन नही। मैं एक स्वतन्त्र जीव पदार्थ । ऐसी दृष्टि करो मित्र ऐसा मित्रको सम्बोधो, अपने आपको भी सम्बोधो और ऐसी मित्रता निभावो कि जहा ससारके सकट सदाके लिए दूर हो जायें, ऐसा उपाय बताओ। वह है मित्रता। आपको घरमे प्यार है, स्त्रीसे प्रीति है, पुत्रसे प्रीति है, तो वास्तविक प्रीति आपकी कब कहलायेगी कि जब मोक्षमार्गकी बातें सुनाये। समर्थन करें। उसमे उत्साह बनावे। जीवन क्षणभगुर है, इसलिए जल्दी धर्मकी बात करलो। "जब तक न रोग जरा गहे, तब लो··· निज हित करो।" इस तरहसे स्त्रीको समझावो, बच्चोको समझाओ, खुद भी वैसा जीवन बनाओ।

संयुक्ताको अविश्वास्य समझकर धर्मानुराग करनेका अनुरोध—जिन जिनका सयोग हुआ है। उनका वियोग अवश्य होगा। अगर आपको प्रीति उत्पन्न हुई है तो ऐसी प्रीति बनाओ कि जिससे भविष्यमे भी शान्ति मिले। प्रीति निभावो तो ऐसी कि जिससे सभी

चले उस मार्गपर और बहुत–बहुत दिलमें जो यह बात कोई रखता हो कि मेरे को तो बहुत काम पडा है। कमाईका काम पडा है, व्यापारका काम पडा है, फुरसत नही मिलती तो यह भ्रम भी जरा छोड दीजिए। आपके पूर्वपुण्यका उदय है इसलिए कमाईका फल मिल जाता आपको। थोड़ा बहुत कमायी करते है, प्राप्ति होती है वह पूर्वकृत पुण्यका फल है। धर्मका फल है कि जिस धर्मसे, जिस पुण्यसे वर्तमान मे एक माने हुए सुखके साधन मिल जाते है। वर्तमानमे भी अगर हम धर्म करे, पुण्य करे, समय निकालें और कुछ तत्त्वचर्चा हो, ज्ञान आराधनामे, सत्सगमें, गुरुसेवामे, अन्यअन्य कर्तव्योमे अगर हम अपना समय लगाये तो हमारेमे कमी नही आयो। बल्कि पुण्यरस बढेगा। और बडे बडे सेठ ऐसा ही करते है। जो बहुत ऊँचे धनिक है, प्रायः देखा होगा कि वे व्यापारके काममे २४ घन्टा समय नही लगाते, अगर वे २४ घन्टे उसकी धुनमे रहे तो उनका दिमाग फट जायेगा। तो उनको थोडा सत्संगमे भी समय लगाना पडता और अच्छे काममे भी समय लगाना पडता तब उनका दिमाग रह पाता, नही तो फट जायेगा। इतनो बडी उलझन रहती है बड़े पुरुषोको और उनको देखो तो बराबर लाभ होता रहता है। दशलक्षणके दिनोमें बहुत–बहुत धर्मसाधन करते है, फिर भी कमाईका काम चला करता है, हमे आप बतलाओ उन दश धर्मांके दिनो मे फर्ममे कोई घाटा पड़ा क्या ? बल्कि देखा होगा कि उनको उसमे कुछ हानि नही होती, किन्तु एक उत्कर्षका मार्ग और निकल आया। तो यह नौकरी कर रहे है। घरके जितने लोग है, परिवारके लोग उनकी नौकरी और फर्ममे जितने नौकर है उन सबकी नौकरी और खुदके लिए दो रोटी दो कपडे, सिवाय इसके और क्या करते है एक लोक नातेसे ? बाकी तो सबके लिए ही किया जा रहा है। किया क्या जा रहा है, हो रहा है, उनका उनके योगानुसार आपके बिना तकलीफके होता है, होने दो, मगर चित्तमे तो बिल्कुल फक्कड सा होना चाहिए। मेरा कुछ नही है। जिसका जैसा भाग्य है वैसा होता है, उसके अनुसार चलता है। मेरा कुछ नही है, ऐसा अपने चित्तमे उपेक्षाभाव वाले अन्त सन्यासी बना रहना चाहिए। उसमे एक शान्तिका मार्ग मिलेगा। जैसे कल्याण हो सकता है वे सब उपाय इससे प्राप्त होगे।

अकर्तृत्वस्वभावकी उपासना—उपयोग ही मेरा स्वरूप है। जानना, लगना, समझना, विचारना, भीतर देखे वह जानन, प्रतिभास करना, विचार करना, सोचना विकल्प होना बस यह ही मेरेमे वृत्ति चल रही है। एक चक्की चला करती है। इसके अतिरिक्त मै और कुछ नही करता। बतलाओ बाहरमे मैं क्या करता ? किसीने मानो कोई उत्पादन किया, मानलो कपड़ा सिया तो बताओ इसमे इस आत्माने क्या किया ? उसने तो कल्पना

किया, विचार किया, तर्क विकल्प किया, फिर इसके बाहर निमित्त नैमित्तिक भावसे वह सारी बात चलने लगी, कपडा सिल गया। ज्ञान किया, इच्छा किया, आत्मामे योग परिस्पद हुआ, उससे शरीरकी वायु चली, उसके अनुरूप अग चले और उसके अनुरूप बात चली। लो कपडा सिल गया। जो भी काम होता है वह निमित्त नैमित्तिक भावपूर्वक होता है, उस मे कोई कुछ नही करता। मै तो अपने आपका कर्ता हूँ। परम विश्राम ले, अपने आपके निज अन्त स्वरूपपर दृष्टि तो करे, यह है अपनी सच्ची दया। जैसे कभी होता है ना कि जो बुद्धिमान लोग है वे इसमे सन्तोष करते कि लो किसीका कुछ हो मैंने तो अपना काम बना लिया। मैने तो इतना अपना फायदा कर लिया। जो भी उसके चित्तमे फायदेकी बात है तो ऐसे ही यह समझें कि इस प्रकार उस जीवका जो कुछ होता है हो, मै तो अपना फायदा निकाल लूँ, अपनी अन्त दृष्टि बनाकर अपने स्वरूपकी उपासना करके अपने आपके कल्याणका मार्ग तो बना लूँ, इस ओर अपनी दृष्टि होनी चाहिए। आत्महितका उपाय बना लेना एक बहुत बडे महत्वकी बात है, इससे बढकर समस्या इस जीवनमे नही है। जो कोई समझता है कि घरमे तो बडी समस्या है धर्मके लिए हमे समय नही मिलता। अरे खास समस्या तो धर्म करनेकी है, क्योकि आगे भव-भव मे दु खी होना पडेगा। यहाँ की समस्या क्या है ? अगर कुछ काम ढीला पड गया तो पड गया, लोगोके बन्धनसे क्या मेरा बिगड गया। कुछ नही बिगड गया। अगर एक धर्मसे न रहे, तत्त्वज्ञानमे न आये, आत्माकी चर्चा मे न आ सके तो मेरा सब कुछ बिगड गया। बिगडा है अपने आपकी भूल करनेसे। बाहरी पदार्थोका कितना ही सग्रह किया जाय, शृगार किया जाय, बढाया जाय, प्रगतिकी जाय उससे मेरा लाभ नही है। मेरा लाभ तो आकिञ्चन्य रहनेमे है। मेरा मात्र यह मै ज्ञान-स्वरूप हूँ। बाहरमे मेरा कही कुछ नही है, ऐसा अपना परिणाम बने, ऐसी हमे जानकारी बने, उस जानकारीको पानेके लिए हमे जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष इन सबका स्वरूप समझना होता है, आशिक स्वरूप, सर्वाश स्वरूप, बस्तुस्वरूप निश्चित हो, मोह दूर हो तो कल्याण होगा। दृश्यमान समागमको क्या उपयोगमे लेना ?

स्नेहभावके हटते ही आनन्दविकासकी साहजिकता—एक खिलौना मेढकका आता है, जिसमे नीचे एक पट्टी लगाते है उसमे चिपकाओ तो वह चिपकी चीज कब तक रहेगी ? तो उसपर एक मेढक बना रहता है, आखिर वह चिपक जब छूटती है तो वह मेढक उछल जाता है। उछलने के लिए तो वह तत्पर ही रहता है, चिपका हुआ होनेके कारण नही उछल पाता, जहाँ वह चिपक छुटी कि झट उछल गया। कुछ किवाड भी इस तरहके स्प्रिगदार आते है कि जिन्हे खोलकर पकडे रहे तब तो खुले रहेगे नही तो वे बन्द होनेके

लिए सदा तत्पर रहते है । छोडा नही कि झट अपने आप बन्द हो जाते है । तो जैसे वह खिलौना तो मेढकको उछालनेके लिए ही तैयार है, अथबा वह किवाड स्वयमेवे बन्द होनेके लिए ही तैयार रहता है ऐसे ही समझिये कि हम अपने आपमे ऐसा उत्साह बनाये कि मै तो ज्ञान और आनन्दके विपाकका स्वभाव लिए हुए हूँ, उसे हम छल करके, अन्याय करके, परलक्ष्य करके दबाये है । फल उसका यह है कि विपरीत काम कर रहे है । जरा उस विपरीत कामको छोड दे, फिर कल्याण और स्वच्छता पायेगे । वह तो हमारे हाथमे है । वह ज्ञान बाहरी चीज नही है । जो लोग कुछ शास्त्र बाचते है, सुनते है, ध्यान करते है भक्ति करते है, धर्म करते है यह सब किसके लिए ? वह मामला तो सारा तैयार पड़ा है उसमे कमी कुछ नही है । बस इतना जबरदस्त व्यामोह बसाकर उसको पकड रखा है । इसकी पकड छोडे तो मामला हमारा अपने आप प्रकट हो जायगा । तो ऐसी हम अपने आपके विषयमे जानकारी की बात पहले बनाये और अबसे मित्रता का वातावरण ऐसा बनाये कि ऐसा सोचे कि मेरे मित्र विशेषकर धर्ममार्गमे लगे, तुमको पूजाकी रुचि हो, तुम को स्वाध्यायकी रुचि हो, तुमको सामायिक करनेकी रुचि हो, ये भगवानके नामपर जब कव चर्चाये करते रहे, एक दूसरेको धर्म कार्यमे लगावे तो यह हुई वास्तविक मित्रता । नही तो उसे शत्रुता कह लीजिए । अगर मानो विषयके साधनोमे ही मन बदल बदलकर हमने दोस्ती निभाया । तो हमने दूसरेका भला क्या किया ? बल्कि बुरा ही किया । उसका उदय आयगा । जैसा उदय आयगा वैसा फल भोगेगा । तो बस बात इतनी है कि अपने आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण बने और उसके लिए तत्त्वज्ञानका अभ्यास बनाये । बडी नम्रतासे निष्पक्षभावसे । मेरेको केवल यही चाह है कि मेरेको मुक्ति प्राप्त हो । मेरी बात कोई माने, मेरा प्रभाव होने लगे, कुछ समझे । ये कोई विकल्प मुझे नही है । इस प्रकार धर्मकी भावना रखकर धर्म कार्यमे लगे तो हमारा जीवन सफल है ।

मोक्षमार्ग पानेका प्रारम्भिक कदम अधिगम—ससारके समस्त सकटोसे छूटनेका उपाय आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमण है । ज्ञानोमे सर्वोपरि ज्ञान आत्मज्ञान है । शरण भी केवल एक यह आत्मतत्त्व ही है । जगतके लोग जो व्यर्थ दुखी हो रहे है—व्यर्थ के मायने न लेना, न देना, न कुछ मतलब । केवल कल्पनायें करके भ्रम बनाकर व्यर्थमे ही दुखी हो रहे है । कही परिवारको अपना माना, कही वैभव को अपना माना । कही अन्य जिस चाहे को अपना स्वरूप माना, इससे मुझे सुख होगा, यही मेरा प्राण है । अनेक प्रकार की भावनायें इस जीवने बनाया और यह दुखी हुआ और यह ही हो रहा । इसको दुख की चोट तो पहुँच रही है रागसे तो दुखी हो रहा और दु.खकी चोट नही सह सकते, सो

ऊपाय रागका ही कर रहे हैं। रागसे तो दुःखी हो रहे और उस दुःखको मेटनेका उपाय राग ही किया जा रहा है, तो ज्ञानसे उत्पन्न हुआ दुःख रागसे ही कैसे मेटा जा सकता है? जैसे खूनका दाग खूनके धोनेसे नही मिट सकता इसी प्रकार रागसे उत्पन्न हुआ दुःख राग करके न मेटा जा सकेगा। औंधा औंधा काम उल्टा उल्टा काम जगतके जीव करते आ रहे हैं। इसको जब भी सुबुद्धि जग, जब इसका भवितव्य हो, जब मोक्ष निकट आये तब सत्य प्रकाश होता है। ओह मै तो यह ज्ञानमात्र हूँ। मेरे मे आनन्द स्वरूप स्वत है। आनन्द कहीसे लाना नहीं होता। यह अपना ज्ञानानन्द निधान है, ऐसा प्रकाश आये तो उसको सम्यक्त्व कहेगे। तो मोक्षका मार्ग क्या है? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। देखो मोक्षशास्त्रके पहले अध्यायमे प्रथम सूत्रके बाद सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा। तो उसके बाद कही भी तो ज्ञानका लक्षण कहना चाहिए था। और, सम्यक्चारित्रका भी लक्षण कहना चाहिए था। जो लोग मोक्षशास्त्रका अर्थ जानते है ऊन्हे पता होगा कि पहले अध्यायमे सम्यग्दर्शनका तो लक्षण बताया तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन, पर सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका कोई लक्षण नही कहा। उसका कारण यह है कि सम्यग्ज्ञान शब्द तो बिल्कुल सीधा है, सच्चा ज्ञान करना, सम्यक्चारित्र भी सीधा है मगर सम्यग्दर्शनमे जो जो दर्शन शब्द है उसके अनेक अर्थ हैं देखते भी हैं, और जैसे कभी किसीको कहते है— अच्छा हम तुम्हे देख लेगे। तब क्या अर्थ है? कितने ही अर्थ हो जाते हैं। यो दर्शनका देखना भी अर्थ है, श्रद्धान भी अर्थ है। तो उसमे विवाद था, इसलिए उसका लक्षण कहा गया कि जो प्रयोजनभूत तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। तो प्रयोजन भूत तत्त्व क्या है? तो वे ७ तत्त्व बताये। फिर उनका व्यवहार कैसे होता तो निक्षेप बताया। अब यह बताया जा रहा है—"प्रमाणनयै–रधिगम" इस सूत्रमे कि तत्त्वका, सम्यग्दर्शनका, ज्ञानका सबका ज्ञान होता है प्रमाण और नयोके द्वारा।

प्रमाणकी महत्त्वशालिता—देखो एक–एक अंशकी बात जानना तो नय है और सारी बात पूरी जानले तो वह प्रमाण है। तो प्रमाणमे होता क्या है कि स्व और पर पदार्थका जो सामने आये उसका ज्ञान होता है। ज्ञानमे क्या होता है। स्व मायने पर पदार्थका देखो दोनोका ज्ञान होता कि नही? जैसे दीपक जले तो क्या होता है? दो बातें होती हैं एक साथ/क्या, कि जो पासकी चीज हो वह भी प्रकाशमे आ जाय और दीपक खुदमे प्रकाशमय रहता ही है तो इसी प्रकार ज्ञान जब जानता है तो वहा दो बातें होती हैं—परपदार्थकी जानकारी होती है और स्वज्ञानकी भी जानकारी होती है। तो ज्ञानका ही लक्षण हुआ। स्व और अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण होता है। ध्यानसे सुनोगे तो आयेगा समझमे,

वैसे ही कठिन है विषय, और उपयोग न लगाओगे तो कुछ भी न रहेगा। बात सीधी कही जा रही, दूसरे की चर्चा नही है। अपने आत्मा की चर्चा है। अपनी कहानी है कि हम क्या कर रहे है? और कितनी हमारा बल है? उस बातकी यहा भीतरमे कहानी चल रही है, हम क्या कर रहे है? निरन्तर स्वका भी निश्चय रखते है और परपदार्थका निश्चय रखते है। सभी जीव देखो यहा स्वके मायने ज्ञान है आत्मा नही। जिस ज्ञानके द्वारा हम पर-पदार्थको जानते है तो उस समय जो हमे पक्का बोध होता है कि ऐसा ही है तो उस समय मे दो बाते जगीह है—एक तो परपदार्थके बारेमें निर्णय और एक ज्ञानके बारेमे निर्णय। जैसे किसीने कहा कि यह पुस्तक ही है। तो यह बिल्कुल निश्चित बात है कि पुस्तक ही है तो पुस्तकका निर्णय हुआ तो उसके साथ यह भी निर्णय पडा है कि सन्देह हो जाय तो पुस्तकमे भी सन्देह हो जायेगा। दोनों जगह निर्णय होता है—स्वका भी निर्णय होता और परका भी निर्णय होता। तो पर क्या कहलाता है? भीतरकी बात देखो। यह भ्रम होता है कि मै घर बनाता हूँ, फर्म बनाता हूँ, अमुकको यो करता हूँ। आप कुछ कर सकने वाले नही। आप तो अपने भीतर ही जो कुछ कर सकते, वह कर पायेंगे। बाहर एक इन्च मात्र भी कुछ करनेमे समर्थ नही। यह जीव जो कुछ करता है वह अपनेमे करता है, तो यह सोचता है कि जब हम अपनेमे ही कुछ कर पाते है, बाहरमे हम कुछ कर सकते नही, बाहरमे कोई चीज मेरी है नही, तब उसमे मोह क्यो करना? अज्ञान क्यो बसाना? देखो बात सुनकर बात मान लीजिए तो आनन्द मिलेगा और ऐसा समझ जायें कि यह शास्त्र हो रहा है, सुनना पडता है, अच्छा प्रोग्राम रखा है, सुन लिया, उससे बात न बनेगी। भीतरमे विचारे कि हमारा कुछ बाहरमे है क्या? फिर ये कितनी ही वासनायें बनी हुई है कि वाह मेरा ही तो यह घर है, मेरा ही तो यह लडका है, मेरी ही तो यह स्त्री है, मेरा ही तो यह परिवार है, यह मित्र मेरा ही तो है, यह जो दृढ वासना बनी है, इसमे जब तक ढील न देगे तब तक धर्मकी बात न मिलेगी। करना क्या है भीतरमे जिससे कि आनन्द आ जाय और धर्मका मार्ग मिल जाय। यह करना है कि उस मोहको ढीला करना है और उस सगकी वजहसे चोट भी सहते जाते, धोखे भी सहते जाते, दुःख भी सहते जाते और फिर भी उसीको अपनाते जाते, तो इसको कितना बडा व्यामोह कहेगे? मूर्खता कहेगे, अज्ञान कहेगे कि जिसके कारण दुखी भी हो रहे फिर भी उन्हे अपनाते। समझते कि इसके बिना तो मेरा गुजारा ही न चलेगा। जगतमे कौनसा ऐसा पदार्थ है जिसके बिना जीवका कुछ चलेगा नही? मरने पर तो चलता कि नही, अकेला जाता है, सब कुछ छूट जाता है फिर भी यह रहता कि नही? क्या अस्तित्व मिट जाता? तो ऐसे ही समझ लीजिए कि

मेरा यहा कुछ नही है। और जो व्यामोह है उसमे सिथिलता जरुर करे। उसके बिना धर्म का रास्ता नही मिल सकता।

मोह और धर्म मे से विवेक करके धर्ममार्ग पर ही चलनेमे भलाई—दो बातें एक साथ न बनेंगी कि मोह भी करे और धर्म भी करे। ये दोनो एक दूसरेके प्रतिपक्षी हैं। जहा मोह है वहा धर्म नही और जहा धर्म है वहा मोह नही। अब अपनी परीक्षा करे कि हमने कुछ मोहपर विजय पाया कि नही। अगर नही पाया तो उतनी जिन्दगी हमारी व्यर्थ गई। सोचते है कि हमने धर्म किया मगर कुछ नही किया, क्योकि मोहमे तो फर्क ही नही पडा। आपने धर्म किया, आप बडे धर्मात्मा कहलाते आप बहुत बहुत पूजा भी करते, स्वाधाय भी करते, जाप भी देते, सस्था भी चलाते, पर एक बात यहा देखें कि मोहमे फर्क है कि नही। अगर धार्मिक नही है तो धर्म नही हुआ, जो हुआ वह ठीक है, थोडा अच्छा ही किया, मगर आपको अपने लिए मोक्षका मार्ग मिल जाय पहले कोई काम नही किया। तो अपने आपमे देखिये कि मेरे मोहमे अभी तक फर्क आया कि नही, अगर फर्क आया तो ठीक है, और अगर फर्क नही आया, जैसाका तैसा मोह है तो एक कहावत प्रसिद्ध है ना कि कहा गये थे ? ''' क्या किया ? भाड झोका ? अरे भाई यदि भाड ही झोकना था तो वहा जानेकी क्या जरुरत थी ? यही अपने गाावमे भी तो यह काम कर सकते थे। तो ऐसे हो कोई पूछे कि आप कहाँ गये थे ? मनुष्यभवमे। वहा कितने वर्ष रहे ?' ५० वर्ष। 'क्या किया ? विषय कषाओका भाड झोका ? अरे भाई यदि यही काम करनाथा तो यह काम तो कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा आदिक की योनियोमे भी तो किया जा सकता था। तो भाई ऐसे दुर्लभ मनुष्य जीवका सदुपयोग करना है तो भाई अपने विचार सम्हालो, अपनी भीतरी बातका निर्णय करके मेरेमे तो केवल एक ही काम है। अपनेको समझे, मोहको दूर करे, इसमे कोई घरकी लडाईकी बात ही नही वह रहे लेकिन मोह जरुर छोडना चाहिए मोह छोडने पर भी चाहे कुछ समय तक घर नही छूटता, किन्तु मोह जन्य दुःख छूट जायेगा और घर तो यह राग छूटनेसे छूटेगा। मोह छूटने पर भी जब तक राग है तब तक यह सब बना रहेगा। उसको अधिक चिन्ता न करें, जैसे कि कोई भक्ति कर रहा—भगवान हमे मोक्ष दो, हमे मोक्ष चाहिए और कुछ नही, मानो उस समय कोई देव आ जाय और कहे कि चलो हम आपको मोक्ष पहुँचा दे। आप तैयार है न ? 'हाँ तैयार हैं ? अच्छा चलो तुम्हे घर छोडना पडेगा, परिवार छोडना पडेगा, सब कुछ छोडना पडेगा।' 'अरे हमे ऐसा मोक्ष न चाहिए। हमे तो ऐसा मोक्ष दिला दे कि जिससे हम घरमे बने रहे और मोक्ष हो जाय ? तो भाई इस तरहसे मोक्ष न मिलेगा।

अच्छिष्ट भोगकी आकांक्षा न करनेमें महत्त्व—देखो अनादीकाल से अब तक मोह वासना ही बनाये रहे, केवल आप विषय बदलते रहे। जिन जीवोसे मोह किया वे पहले भी थे लेकिन कुछ विकल्प बदलते तो मानते कि हमे नई चीज मिली, पर नई चीज कुछ नही मिली, जोभी भोग साधन मिले हुए है वे सब झूठे है, जो एक बार भोजन कर लिया वह अगर मुखसे निकल आए तो उसे कोई खाता है क्या ? उसे कहते है कि यह तो वमन किया हुआ है, ये ५ इन्द्रिय और मनके विषय भोग ये सब वमन को हुई चीजे है, ये कई बार भोगे और भोगकर जब पचा नही तो वमन किया हुआ है। मनुष्य तो यह चाहते है कि मैं सारी चीज खा जाऊँ मगर इतना बडा पेट कहा है ? छोडना पडता है विवश होकर। अगर बढिया हलुआ, रसगुल्ले बने हो तो कोई उन्हे छोडता है क्या ? जितना पेटमे भरता है उतना खाते जाते है। जब पेट भर गया तो जबरदस्ती छोडना पडता है, ऐसे ही ये जगतके समागम भव भवमे अनेक बार भोग भोगकर छोडे हुए है, इन्हे छोडना नही चाहा पर विवश होकर छोडते आये है। इस जीवकी ऐसी प्रकृति बन गई है कि यह चाहता है कि मै सब जगतको भोग लू इतनी आशक्ति है उन भोग विषयोके प्रति, लेकिन सोचो तो सही कि इसमे कौनसी तत्त्वकी बात है ? तत्त्वकी बात इसमे कुछ नही, अपने आपको पहचाने, अपने अलोकिक आत्मामे आये तो आनन्द मिलेगा, शान्ति मिलेगी। बाहरमे सब जगह ढूढा तो कही शान्ति नही। शान्ति मिली तो भीतरमे जो छुपा हुआ है यह चिन्मात्र यह छिप गया यहा पडा है। इस कोनेमे है। ज्ञानी पुरुष हैरान होकर उसे देखता है। जैसे कोई लडका कही छुप गया और मा उसे बहुत बहुत बाहरमे सब जगह ढूढती है। अन्तमे वह मिला अपने ही घरमे रसोईके एक कोनेमे छिपा हुआ, तो वहा वहमा झुझलाकर कहती है—अरे मनुआ तू यहा छिपा है। यहा बैठा है। तो जैसे झुझलाकर वह मा कहती है ऐसे ही कल्याणार्थी पुरुष अपने सुखके भण्डार की विधिको सब जगह देख देखकर बडी हैरान हो गयी दृष्टि और अन्तमे मिला अपने आपके भीतर तो यह कुछ हैरानी भरी दृष्टिसे निहारता है—अरे यहा है ये तो चिन्नूमिया। यह चैतन्यस्वरूप यहा बैठा है। यो उसे देखकर आनन्दमग्न होता है। तो भाई दुनियामे कही जाओ। कही आनन्द नही। सब भ्रम है। आनन्द मिलेगा तो एक अपने आपके स्वरूपमे मिलेगा। उसे पहचानें उसको जानें, उसमे आचरण करे। यह ही मोक्षका मार्ग है। जो इस तत्त्वका ज्ञान कैसे होता ? तो बतलाया—प्रमाणसे। व्यवहारमे स्व और पर पदार्थका निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है। अब समझ लो, निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है।

स्वपरनिश्चयायक ज्ञानमें प्रमाणता—आप सोचते होंगे कि यह बात तो बिल्कुल

सही है, आत्मा जानतो है, जो निश्चय को वह ज्ञान प्रमाण है । अच्छा सुनिये क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि जो निश्चय करे वह मिथ्या ज्ञान है और जहा निश्चय नही हो पाता वह सम्यग्ज्ञान है । आप सोचते होंगे कि ऐसा कौन होगा जो माने कि जो निश्चय करे वह ज्ञान मिथ्या है और जो प्रमाणभूत ज्ञान है उसमे निश्चय हो ? तो ऐसा मानने वाले है क्षणिकवादी दार्शनिक उनका सिद्धान्त है कि प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षणमे नया—नया बनता है । अब जिस समय पदार्थ है उसी समयमे ज्ञान हुआ कि पदार्थ, तो पदार्थको जानना शुरू किया उसी समयमे और दूसरे समयमे उसका निश्चय हुआ तो जिस समय निश्चय हुआ उस समय पदार्थ न रहा और निश्चय कर रहा तो वह मिथ्या हो गया, क्योकि वह चीज ही नही है जिसका निश्चय कर रहे, ता उनका सिद्धान्त है कि जो निश्चय न करे वह प्रमाण है, इस-लिए उसका खण्डन करनेके लिए यह शब्द समर्थ है कि निश्चायकज्ञान प्रमाण है । किसका निश्चायक ? …पदार्थका ।…अरे पदार्थका तो निश्चय करता है सारा जगत । कौन ऐसा है जो यह कहता हो कि पदार्थ दुनियामे है ही नही । उसमे उनका निश्चय हुआ करता है । केवल स्वका ही निश्चय होना है, ब्रह्मका ही निश्चय होना है । ब्रह्मको छोड कर अन्य कुछ पदार्थ नही । तो पदार्थका निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है । केवल ब्रह्म ही हो, अन्य पदार्थ न हो, केवल जाव हो, अन्य पदार्थ न हो, यह बात नही बन सकती । उसका न्याय शास्त्रमे बहुत वर्णन है । तो आया ध्यानमे । जो निजका और पदार्थका निश्चय करे वह ज्ञान प्रमाण है । समझे न, ? उनके साथ खुदका भी निश्चय है । अच्छा कोई दार्शनिक ऐसा है क्या जो मानता है कि यह ज्ञान खुदका निश्चय नही कर पाता ? हा है ऐसा । जैसे अस्वसम्वेदीज्ञान मानने वाले नैयायिक मीमासक वगैरह है, उनका कथन है कि जिस ज्ञानसे हमने पदार्थ जाना उस ज्ञानको सही ज्ञान जाननेके लिए नया ज्ञान करना पडता है । तो देखो अपने आपका कैसा ज्ञान प्रकाश है कि ज्ञान हो तो खुदका भी प्रकाश हो और बाह्य पदार्थ का भी प्रकाश हो, भीतर की बात सोचें । आपके स्वरूप की बात कही जा रही है ।

कषायो द्वारा पीड़ित होनेकी दु सह वेदना—बाह्य पदार्थके लगावमे, मोहमे, ख्याल मे कुछ भी न रखे, इसमे बुद्धिमानी मत माने, किन्तु खेद होना चाहिए कि मुझे क्यो राग ? क्यो मुझे मोह होता ? क्यो मेरेमे इतने विकल्प उठते । क्यो मुझे इतना भ्रम होता, तरहका होना चाहिए । कहाँ तो भगवानकी तरह मेरा स्वरूप, ज्ञान और आनन्दका निधान, जहा सौख्य पडा हुआ है । जहा कोई अपूर्णता नही, सब कुछ स्वत. सिद्ध बात है स्वरूपमे, और जहा ऐसी दशा हो रही है इन क्षणिक पदार्थोंको अपनेसे अत्यन्त

भिन्न पदार्थोंको मान रहे है कि यह मै हूँ। यह मेरा है। यह बहुत बडा अपराध है। जब तक यह अपराध रहेगा तब तक शान्ति नही प्राप्त हो सकती। तो इस अपराधको दूर करनेके लिए यह जीवन है! पैसा बढानेके लिए नही, कुटुम्ब बढानेके लिए, इज्जत बढानेके लिए यह जीवन नही है। और, ये सारी बाते बेकार भी है। यह मानव जीवन मिला है कि मेरे सारे सकट दूर हो जाये और मैं एक शुद्ध जो कुछ ज्योका त्यो अपने आप हूँ अपनी सत्तासे, बस वही रह जाऊं। देखो भाई जैसे किसीके बडा दुख आया, गरीबीका दुःख आया तो वह कहता है कि हमे तो बस इतना धन चाहिए, इससे आगे न चाहिए, ऐसे ही अपने आपको देखो, अभी तक दुख ही दुख भोगते आये है तो भीतरसे एक आवाज निकलनी चाहिए कि मै तो इतना ही चाहता हूँ, और कुछ मैं नही चाहता। जब कभी किसीसे लडाई होती है तो कहते है कि भाई मेरी चीज मुझे मिल जाय, मुझे और कुछ न चाहिए, यही तो लोग कहते है। तो आप भी सोचे कि मै जो कुछ हूँ असलमे मै वह रह जाऊ, और कुछ न चाहिए। मुझे घर न चाहिए, लोग न चाहिए, समागम न चाहिए, परिवार न चाहिए, मौज न चाहिए। मुझे ये कुछ न चाहिए। और क्या चाहिए। जो मै हूँ असलमे अपने आप स्वत. सिद्ध बस वही मैं रह जाऊं, यही मुझे चाहिए. और कुछ न चाहिए। इतनी बात अगर चित्तमे आयी है तब समझिये कि आप धर्ममे शुरू हुए हैं। इतनी बात जब तक चित्तमे नही है तब तक समझले कि हमने अभी धर्म प्रारम्भ नही किया। अपना एक लक्ष्य होना चाहिए कि हमे तो यह चीज पानी चाहिए। नदीमे नावमे तो बैठ गए और लक्ष्य नही बनाया कि हमे तो इस घाटमे पहुचना है तो कभी वह पूर्व दिशाकी ओर नाव खेंगा, कभी पश्चिमको, कभी उत्तरकी ओर और कभी दक्षिणकी ओर। इस तरहसे वह किसी किनारे न लग पायगा, और यदि लक्ष्य बना लिया तो वह उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुच जायगा। तो ऐसे ही इस जीवनमे आप एक लक्ष्य बना लीजिए कि मेरेको तो मेरे आत्मस्वरूपका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण चाहिए, मेरेको तो मेरा मे चाहिए, और कुछ न चाहिए। यह लक्ष्य अगर बन जाय तो सब बात मिलती जायगी। धर्म होता जायगा और अगर यही बात न मिली तो धर्म न होगा। इसलिए भाई पौरुष करो। विषय कषायो की वासनाको छोड दो। ये क्रोध, मान, माया, लाभ आदिक कषायोमे यह जीव इस तरह पीडा जा रहा है कि जैसे मानो खललमे मूसरसे कूटी हुई कोई चीज। ये विषय आत्माको कूट रहे हैं। यह आत्मा दुखी हो रहा है। अपने आप पर दया करो और कषायोको छोड दो। ऐसी प्रकृति बनावे कि क्रोध न करें, शान्त रहे, नम्र रहे। जरा-जरा सी बातमे ऐठ न जावे। जरा कषायोको छोडे और

अपने आपके स्वरूपके अन्दरमे दर्शन करे, उसकी धुन बनायें, इससे तो मिलेगा। भाई मनुष्य भवका लाभ और अगर विषयकषायोमे ही जकडे रहे, मोहममतामे ही बने रहे तो इस जीवनका कोई लाभ नही है।

ज्ञानद्वारा ज्ञानमात्र स्वयंको जान लेनेकी सहजवृत्तिके विरुद्ध चलनेका पश्चात्ताप— हम आपये सब जीव क्या है? प्रत्येक ज्ञानमय पदार्थ। अर्थात् हम आप सबका यह स्वभाव है कि प्रति समय कुछ न कुछ जाननेमे आता ही रहे। अज्ञानी उसकाभी ज्ञान सदा रहता है और ज्ञानी है तो उसका भी ज्ञान सदा रहता है। कोई है तो उसका भी ज्ञान सदा रहता है। जानने बिना कोई जीव नही रहता। जो भी जीव है वह प्रति समय जानता ही रहता है, इसी कारण इसका नाम आत्मा है—अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा, अ धातुका अर्थ है सतत जाना और जानना। प्राय करके जानेके अर्थ वाली धातुओका अर्थ जानना भी होता है। आदित्यका अर्थ है सूर्य। वह आदित्य तो निरन्तर जाता रहता है, कभी ठहरता नही है। आदित्यके मायने है सूर्य। सूर्य निरन्तर चलता ही रहता है। ढाई द्वीपके अन्दर कोई भी सूर्य एक समय रुक जाये ऐसा कभी होता नही। तो जो निरन्तर जाता रहे उसका नाम आदित्य है और जो निरन्तर जानता रहे उसका नाम आत्मा है। आत्माका कार्य है वह निरन्तर जानता रहे। तो देखो जब हम आप सबका स्वभाव जानते रहनेका है तो इस जानने को जरा ठीक बनाले तो बेडा पार हो जायगा। बैठे बैठे कल्पनाये किया और दुखी हो गए। बैठे बैठे भावनाये बनाया, पर द्रव्यके बारेमे कुछ न कुछ सोच रहे है और दुखी हो रहे है। एक ज्ञानबल ऐसा मिले कि जिससे परवस्तुके बारेमे उपेक्षा जग जाय, कैसा ही परिणमन हो, जैसा परिणमे ठीक है, उसके प्रति ज्ञाता द्रष्टापनका भाव आ जाय और भीतरसे कषाय विष हट जाय तो आत्माको शान्ति मिल जायगी। आत्मा अशान्त है कषाय के कारण, पर मोहसे, मूढ रहते हुए यह जीव कषायका ही आदर करता है, कषायमे भुने रहते है। गुस्सा निरन्तर बनी रहती है। किस बातपर गुस्सा रहती है। बात कुछ नही है। क्रोध प्रकृतिका उदय है। यहाँ क्रोधकी ऐसी उद्दण्डता हो रही है और आत्माभी क्रोधी बन रहा है। बात कुछ नही है और इतनी बडी बात बन गई। मतलब कुछ नही है, पर इतना बडा भारी लगाव हो गया। यह सब मोहका प्रताप है। यहाँ बात चल रही है ज्ञान की, ज्ञान जानता रहता है। अरे जो निरन्तर जानता रहता है उसको जाननेका पौरुष करो, सर्वप्रकाश सामने आ जायगा। पर जानने वाला यह है, और बाहर—बाहर जानता रहता है। जैसे बैट्रीका उजेला करते है तो उजेला बाहर—बाहरमे पहुचता रहता है पर वह उजेला उस बैट्रीके अन्दर नही पहुँचता बैट्री भी नही दिखाई देती, ऐसेही ये मोही जीव बैट्रीकी तरह

काम कर रहे है। बाहर बाहर तो खूब जानते है पर स्वय क्या है यह नही समझते ? यही कारण है कि सारा जीवन मोहमे बीतता और दु.खी होता। मोहमे खुदका बुरापन विदित नही होता। ऐसा ज्ञान होता कि हम चाहते है वही जो परस्पर मोह बनाये है, व्यवस्था करते है तो उत्तरदायी तो हम ही है, और कदाचित कभी कोई त्यागी, साधु, ज्ञानी दिखे तो ऐसे मोह वालेको धर्मकी बातके नाम पर कुछ बात तो आती है मगर भीतरमे यह बात आती है कि बेचारे दुःखी है। हम ही तो इनकी सेवा करते है, इनकी रक्षा करना चाहिए, यो साधुको बेचारेके रूपमे देखते है और स्वयंको तो सर्व कुछ समझते है।

मोहमें अपनी करतूतके अहकारका दुर्दर्शन—कोई साड धूरेको अपनी सीगोसे बेझकर उसमे कुछ गड्ढा सा करदे और अपने चारो पैर पछाड़ कर पूछ उठाकर अपनी एक अहकार भरी मुद्रा बनाये, और एक ऐसा गौरव अनुभव करे कि मैने बहुत बडा काम किया, धूर उछाल दिया ऐसे ही मोही जीव किसी वैभवकी यहा वहाँ की कुछ व्यवस्था बनाते है तो वे ऐसा गौरव करते है कि मै इतनी इतनी चीजे सम्हालता हूँ। अरे अपने अन्दर देखो कि मै ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानके विकल्प ही करता हूँ, इसके अतिरिक्त मै और कुछ नही करता। घमंड किस बातका ? अपनेको पहचाने कि मै ज्ञानमात्र हूँ। तो जब मेरा जाननेका स्वभाव है तो मै सब कुछ न जान सकू, और अपनेको न जान सकू, ऐसी कौनसी अडचन आयी है ? अडचन यह है कि बाहरी पदार्थमे मेरा लगाव है। उसकी ही धुन बनी हुई है। बस यही कल्पना वह चीज है जो मेरे अधूरे पनका कारण है। तो जिसे अनादिसे करते आये जिसे जीवनमे बिना सिखाये किए चले जा रहे हैं उससे पूरा नही पडनेका उस आत्मकल्याणका उपाय सोचना है। सभी जीवोकी बात है। जो करेगा सो पायगा। सोचो — जो पदार्थ जिस तरहसे है। उसको उस तरहसे जानना। उसका उस प्रकारसे श्रद्धान करना बस यही ससार सकटोसे छूटनेका उपाय है। जैसे सोते हुएमे कोई स्वप्न आ जाय कि मै कही जा रहा हूँ। वहा बडा भयंकर जगल है। सामने शेर खडा है पीछे से साप दौड रहे है खानेके लिए, कोई ऐसा सोचले तो वह कितना दु खी होता है। उसका दु ख दूर होनेकाकोई उपाय है क्या ? अथवा और भी देखिये। एक बडा सेठथा। वह अपने आरामके कमरेमे सो रहा था। सोते हुए मे उसे एक ऐसा स्वप्न आया कि बडी तेज गर्मी हो रही है, विचार हुआ कि समुद्रकी सैर करने चले। स्त्री पुत्रादिक बोल उठे कि हमे भी गर्मी लगती है हमभी समुद्रकी सैर करने चलेगे। नौकर बोला—हमे भी बडी गर्मी लग रही। हम द्वारमे ताला लगा देते। हम भी समुद्रकी सैर करने चलेगे। सो सेठ सपरिवार समुद्रकी सैर करने चले (देखिये यह सब स्वप्नकी बात कही जा रही है) नावपर सभी लोग बैठ गए।

नाव कोई एक मील ही चली होगी कि समुद्रमे एक बडा तूफान आया, तो उस समय सेठ कहता है नाविकसे कि अरे हम तुम्हे १० हजार रुपये देगे पर नाव डूबनेसे बचालो। तो नाविक बोला—सेठजी यह नाव किसी तरहसे भी डूबनेसे बच नही सकती। अच्छा हम तुम्हे एक लाख रुपये इनाम देगे पर नाव डूबनेसे बचालो। अरे जब हमी नही रहेगे तो उन एक लाख रुपयोका क्या करेगे ? आप वडे दयालु हो, आप हमे इजाजत दो, हम तो किसी तरहसे नावसे कूद कर तैर कर निकल जायेगे। नाविक कूद गया, नाव डगमगा रही है। वह सेठ बडा दुःखी हो रहा है। (ये सब स्वप्नकी बातें हैं) अब देखिये सेठ पडा तो था अपने आरामके कमरेमे, नौकर लोग पासमे खडे थे। वे यह इन्तजार कर रहे थे कि सेठजी जगे तो इनकी सेवा करे। सब प्रकारके आरामके साधन मौजूद थे फिर भी वह सेठ कितना दुःखी हो रहा था। बताओ उसका दुःख दूर करनेका कोई उपाय भी था ? हा उपाय था। बस यही उपाय था कि सेठकी निद्रा भग हो जाय, जग जाय, लो कोहेका दुःख। दुःख तो सारा स्वप्नमे हो रहा था। जग जाय तो वह समझ जाय कि अरे वह तो सब स्वप्नका था, यहा तो कुछ भी नही है। हम तो बडे आरामसे पडे है। यह ही बात मोही जीवकी है। मोहियोको मोहका स्वप्न आ रहा है। यह मेरा है। यह मेरा है। यह मेरेको मिल जाय, यह इस तरह हो जाय, इसकी यह परिस्थिति बन जाय, यो नाना प्रकारके विकल्प कर रहा है और विकल्पोमे दुःखी हो रहा है। नही तो बतलाओ दुःख क्या है ? हम सब यहाँ बैठे है। कोई दुःखका कारण नही है। मजेमे बैठे है,अकेले है। आपकाआत्माआपमे है,आपके पास है। किसीका उसमे प्रवेश नही। उसमे क्या कष्ट है। लेकिन कष्ट सभी मान बैठे है। और, हर एक कोई अपने आप कष्ट की जुदी-जुदी परिणति समझ रहे है। मेरेको कष्ट है, इस प्रकार अपनेको कष्टमे मान रहे, यह बडी विडम्बनाकी बात है।

सम्यग्ज्ञान सूर्यके उदित होने पर भ्रमाधकारका विलय—जिस समय सम्यग्ज्ञानका उदय होता है उस समय सारे सकट दूर हो जाते है। तो कुछ भी हो। सकट दूर करनेमे समर्थ यह ज्ञान है, यह प्रमाण है। उस प्रमाणकी चर्चा इस सूत्रमें की जा रही है कि प्रमाण से सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक्चारित्र, जीवादिक तत्त्व और-और सभी पदार्थोका परिज्ञान प्रमाणके द्वारा होता है। देखिये—हम आप सब ज्ञानस्वरूप हैं, निरन्तर ज्ञानमय रहते हैं, किन्तु अब हालत आज क्या रही। कि हम कुछ नही जान पाते, थोडा जान पाते। कुछ जान पाते, ऐसा कर्मका आवरण है और वहभी हम जान पाते है इनइन्द्रियोके द्वारा। ये नेत्रबिगड जाय रूप नही जान सकते,कान बिगड जायतो शब्दनही जान सकते। लकवा मारजाय तो स्पर्श नहीजानसकते।देखो इसजाननेपर आवरण हैऔर जितनाथोडा आवरणनही हैउतनाभी हमज्ञान जो

करते है वह इन्द्रिय द्वारा करते है। इन्द्रिया ठीक हुई तो ज्ञान हो गया, न ठीक हुई तो न होगा ज्ञान। और, इतनेपर भी हम सब कुछ नही जान पाते हैं, थोड़ा जान पाते है, सामनेकी बात जान पाते है और इतनेपर भी स्मरणशक्ति नही है तो कुछ समझ नही पाते, याने कितनी दुर्दशा है। परमात्मस्वरूपके सदृश होनेपर भी हम आपकी यह दुर्दशा है। यह दुर्दशा स्वयके अपराधके कारण है। दुर्दशामे ही पड़े है और दुर्दशामे ही मौज मान रहे है तो फिर कैसे दुर्दशासे छूटना हो सकेगा ?

कष्टोका कारण अज्ञान व भ्रम—जितने भी कष्ट होते है उसका कारण है अज्ञान, भ्रम। अज्ञान और भ्रमका तात्पर्य है कि बात तो है कुछ और, और मान लिया जाय कुछ और, जैसे जगतके प्रत्येक पदार्थ अणु–अणु, प्रत्येक जीव स्वय अपने स्वतः सिद्ध स्वरूप रखते है। किसीका स्वरूप किसी भी अन्यकी दयासे नही बनता है। है, तो वह अपने आप है। है, तो वह अनादि अनन्त है। है, तो वह द्रव्य, गुण, पर्यायमय है, और इसी तरह वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। सभी पदार्थों की यही स्थिति है। कोई पदार्थ किसी दूसरेका न कर्ता न भोक्ता है, न उसका कुछ लगता है प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमता चला जाता है। यह है समस्त पदार्थो की बात। फिर एक बात सामने आती है कि फिर ये विकार राग द्वेष किस तरह होते है ? जीव अनादिकालसे बद्ध है। यह बात तो यो स्पष्ट है ऐसा न होता तो आज हमारी यह ससारमें स्थिति क्यो होती ? न होती। तो चूंकि आज हम फसे है, बधे है, संसारमे रुलते हैं, विकल्प उठाते हैं, तो ऐसा तो हो नही सकता कि हम शुद्ध हो पहले और पीछे ये विकार आये हो। विकार अनादिसे ही चले आ रहे हैं। परम्परा उनकी अनादि से ही चली आ रही, तो इसका कारण क्या है ? यदि कोई पदार्थ कोई विकारमे आता है तो उसमे कारण नियमसे परसंग होता है। जैसे स्फटिकमणि स्वच्छ है, वह अपने आपमे अनेक रग बनानेका निमित्त नही है, इसलिए वह अपने आपकी ओरसे अपने आप ही निमित्त बनकर रगरूप नही परिणमता। वह तो एक स्वच्छ पदार्थ है। अब जब उपाधिका सन्निधान लाल पीला कपडा सामने रख दिया तो कपडा लाल पीले रूप परिणम रहा है यह तो कपडे का रंग है और जो दर्पणमे लाल प्रतिबिम्ब आया है वह दर्पणकी छाया है। अब वहा रग दो जगह दीखा, कपडेमें भी और दर्पणमे भी। पर कपड़ेका रग कपडा जैसा है और दर्पणका रग केवल झलकमात्र है। तो दर्पणमे जो रग आया है वह दर्पणकी परिणतिसे तो आया है पर दर्पणके इस रूप परिणमनमे दर्पण ही निमित्त हो, जैसेकि दर्पण ही उपादान है, यह बात नही बनती, अन्यथा नित्य कर्ता हो जायगा। सदा जीवने विकार रहना चाहिये।

वस्तु स्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिकभावकी विधिसे तत्व विचारकी आवश्यकताका

कारण—देखिये—तत्त्वविचारकी बात सबको आवश्यक यो पडी है कि सर्व दु खोका मूल तो मोह है। यह मोह मिटे तो दु.ख दूर होनेका उपाय बनेगा। मोह दूर करना कैसे हो? तो मोह दूर करनेके लिए दो बाते कही जाती है—वस्तुस्वतन्त्रता और निमित्तनैमित्तिक भाव इनदोनोको यथार्थ समझना है और दोनोकी ही समझ मोहके विनाशमे सहयोग देती है। वस्तुस्वातन्त्र्यमे तो यह समझना चाहिए कि जीव और कर्म ये दो पदार्थ विलक्षण हैं जुदे जुदे है, जीवका परिणमन जीवमे ही चलता है, कर्मका परिणमन कर्ममे ही चलता है,एक का परिणमन दूसरेमे नही चलता है। कमजीवके परिणमनको न करेगा,जीव कर्मके परिमणन को न करेगा। जो परिणमता है वह कर्ता है, जो परिणाम है वह कर्म है। वस्तुस्वातन्त्र्य न यह बतलात है जैसे दर्पण और सामने रखो लाल कपडा तो वस्तु स्वातन्त्र्य वहा यह दिखाता है कि कपडा कपडेमे है, कपडके प्रदेशसे बाहर कपडकी कोई चीज नही रहती। दर्पण दर्पणमे है, दर्पणकी कोई चीज दर्पणसे बाहर नही होती। नो कपडा दर्पणको लाल नही करता। दर्पण भी कपडका कुछ नही करता। कपडको झलकाता नही, किन्तु दर्पणके रगका परिणमन दर्पणमे हो रहा। परमार्थसे बात कही जा रही है, और दर्पणमे जो प्रति-विम्ब आया है उसमे लाल रगी कपडका सन्निधान पाकर जो दर्पणमे लाल प्रतिबिम्ब आया है वह दर्पणका है, दर्पणकी परिणतिसे है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि स्वच्छता का स्वभाव रखने वाला दर्पण यदि लाल पीले पदार्थका सन्निधान पाये तो यह दर्पण अपनी परिणतिसे अपने आपमे लाल पीले रगको धारण कर लेता है इसी तरह यहा भी देखो। जीव और कर्म ये दो पदार्थ है। कर्ममे कर्मत्व आया। वह कर्मकी दशा है। कर्म उदयमे आये तो वह उनकी दशा है। कर्मका क्षयोपशम होना कर्मकी दशा है। ऐसे दो विलक्षण पदार्थ है। सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते है, पर उनका ऐसा सहज निमित्त नैमि-त्तिक योग है कि जीवमे जो विकार आता है वह पर उपाधिका निमित्त पाकर आता है, इसी कारण नैमित्तिक है, परभाव है, हमको इन दो बातोसे क्या शिक्षा लेना है? एक मोह दूर करनेकी शिक्षा लेना है।

अन्त उभयस्वातन्त्र्यकी निरख—कषाय दो प्रकार की है। एक कर्ममे होने वाली कषाय और एक जीवमे होने वाली कषाय। जिसका क्रोधप्रकृति नाम रखा है उसका जब उदय आता है अनुभाग होता है तो उस प्रकृतिमे क्रोधन दशा होती है। चूकि वह जड है इसलिए उसकी गुस्सा, उसका क्रोधन उसके अनुरूप है, अनुभवशून्य है, लेकिन ऐसी क्रोधन अवस्थाको प्राप्त हुआ पुद्गल कर्म जब उसके सन्निधानमे है तो जीवमे उस क्रोधन अवस्थारूप अधकारकी झलक होती है। और, वह झलक हुई कि यह जीव उस शुद्धस्वभाव

से च्युत होता है और उसका उपयोग झलककी ओर लग जाता है, और आगे बढकर कल्पनामेएक आत्मसात् कर लेता है याने उसे अपना स्वरूप मान लेता है। इसतरह यहजीव ससारमे रुलता है, कषाय करता है और कषायका निमित्त पाकर नवीन कर्म कर्मत्व अवस्थाको प्राप्त होता है। तो कर्म और विकार ये अनादिपरम्परासे चले आ रहे है, इनका अब हमको करना है भेदविज्ञान। भेदविज्ञानमे क्या समझना कि मै मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ तथा ज्ञानकी वृत्तिको ही मै करता हूँ, और जितने जो कुछ ये विकल्प है, विचार है, अधकार है, ये सब क्या है ? आत्माकी परिणतिको देखे तो वह एक झलक है और कर्मकी परिणतिको देखे तो कर्मकी उस प्रकारकी एक लीला चलती है। उस निमित्तनैमित्तिक भावकी वृत्तिमे हम यह जाने कि ये औपाधिक है नैमित्तिक है, मेरे स्वरूप नही है। इसीको समयसारमे स्पष्ट कह दिया कि ये कषाय विकल्प गुणस्थान मार्गणाये सब पौद्गलिक है, क्योकि ये पुद्गल कर्मसे निष्पन्न हुए है, तो नैमित्तिक परिचयमे एक बल मिलता है स्वभावदृष्टिका। यह मै हूँ, ये परभाव है, मै तो ज्ञानमात्र हूँ, स्वच्छतामात्र हूँ। और, वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे देख यह ज्ञान होता है कि मैं आत्मा हूँ, मै अपने आपसे परिणमता हूँ, कोई दूसरा पदार्थ मुझे नही परिणमता, अर्थात् कोई पदार्थ मेरे परिणमनरूप नही बनता। मैं सर्व पदार्थोसे निराला केवल अपने आपके स्वरूपमात्र हूँ और अपने इस स्वरूपमे अपने ही नाना विकल्प करता रहता हूँ, इस प्रकार परपदार्थपर दृष्टि नही तो उसे अवकाश मिलता है कि वह अपने स्वभावकी परख करले।

जीवविकाराद्भवके प्रसंगमें त्रिविध कारणोकी ज्ञातव्यता—इस प्रसगमे एक बात खूब जाननेकी है कि जीवके विकार बननेमे तीन बाते समझनी पडेगी—उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। उपादान तो है यह जीव। निमित्त है कर्मकी दशा और आश्रयभूत है ये समस्त पदार्थ, जो कि इन्द्रिय द्वारा, मनके द्वारा भोग और उपभोगमे आते हो, जिन्हे हम उपचरित कहते है—ये आश्रयभूत बनते है। जैसे जीवमे राग उत्पन्न हुआ तो रागप्रकृतिक उदय तो निमित्त है और जीवमे जो राग झलका है, राग परिणमन है, विकल्प बन गया है, यह है उपादानकी चीज और कोई भी राग किसी परपदार्थका विषय किए बिनाव्यक्तनही हो पाता। मित्र पुत्र ख्यालमे हुआ, मकान ख्यालमे हुआ, लोग ख्यालमे हुए, इज्जत ख्याल मे हुई, कोई भी बाह्य पदार्थ इसके विषयमे होता है, जिसके सम्बन्धमे राग चल रहा है वह सब आश्रयभूत कहलाता है। निमित्त केवल कर्मकी दशा है। बाहरी पदार्थ निमित्त नही होते और इसी कारण बाहरी पदार्थका आत्माके इस विकारके साथ नियत सम्बन्ध नही है कि यह पदार्थ हो तो नियमसे विकार हो। जैसे कोई एक वेश्या मरी और लोग उस

वेश्याके शरीरको जलानेके लिए जा रहे, रास्तेमे एक मुनि महाराजने देखा तो मुनि महाराजका यह विचार बना कि देखो इसने इस दुर्लभ मानव जीवनको व्यर्थ ही खो दिया, उसे देखकर एक कामी पुरुषका ऐसा विचार बना कि यदि यह वेश्या कुछ दिन और जीवित रहती तो मैं इससे और भी मिलता। वहा खडे हुए कुत्ता स्याल आदिकने उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर यह विचार बनाया कि ये लोग यदि इसे यो ही विना जलाये छोड जाते तो मेरा कुछ दिनोका भोजन बनता। अब देखिये उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर भिन्न-भिन्न प्रकारके भाव बने। यदि वेश्याका शरीर निमित्त होता तो यहा सबके लिए एक समान निमित्त होता। यहा यह फर्क आया, क्योकि मुनि महाराजके तो १२ कषायका आवरणका क्षयोपशम था इसलिए उनका उपादान इतना विशुद्ध है कि वह इस ही प्रकार से विचार करेगा। तो उसके इस प्रकार विचार करनेमे वेश्याका शरीर आश्रयभूत बना। निमित्त नही बना। निमित्त तो १२ कषाय प्रकृतियोका क्षयोपशम है, जहा कि ऐसा विचार बना। यह आश्रयभूत मात्र रहा। और कामी पुरुषके वेदका उदय, कषायका उदय, यह तो निमित्त है, और वहा आश्रयभूत बना वेश्याका शरीर। और, स्याल, कुत्ता आदि के भी यही बात रही। तो बात यह समझना है कि जगतके जितने भी पदार्थ हैं, समागममे जो कुछ भी आया है धन वैभव इन्द्रियके विषय ये सभी आश्रयभूत कहलाते है, निमित्त नही कहलाते। निमित्त तो जीवके विकार बननेमे कर्मकी दशा है, तो कर्मदशाका, निमित्तका जीवविभावके साथ अन्वयव्यतिरेक है, आश्रयभूत पदार्थका विकारके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही बनता।

जीवविकारके त्रिविध कारणोके परिचयसे एक शिक्षा—कर्मोदय आया तो जीवमे उस प्रकारकी झलक होना ही पडती है। मगर जिसे ज्ञान हुआ, जिसने जाना, भेदविज्ञानसे जिसने अपने आपके स्वरूपका अभ्यास किया तो वह झलक अपनायेगा नही। यद्यपि ज्ञान है तो भी वह झलक उस उपयोगको छोडेगी नही, झलक आये विना रहेगी नही। जैसे दर्पणके सामने कोई पदार्थ हो तो प्रतिविम्बित हुए विना रहता नही। तो भी यह तो मात्र हुई एक अनिवारित निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात। क्यो किन्तु यहा यह अन्वयव्यतिरेक है कि रागप्रकृतिका उदय होनेपर ही जीवमे राग आता है और रागप्रकृतिका उदय न हो तो जीवमे राग आ ही नही सकता। ऐसा कर्म निमित्तके साथ जीवविकारका अन्वय व्यतिरेक तो है, पर जगतके बाहरी पदार्थोके साथ जीवविकारका अन्वय व्यतिरेक नही है। जैसे वेश्यादेह सामने हो तो खोटा भाव होना पडे, ऐसा अन्वय व्यतिरेक नही बन गया। देखो मुनि महाराज मे तो खोटेभाव नही होते। अथवा 'वेश्यादेह न हो तो खोटा भाव नही बने—अरे अन्य

किसीको आश्रय बनाकर कोई खोटा पुरुष खोटा भाव कर सकता है तो उस पदार्थको आश्रयभूत समझिये। हम इन पदार्थोंको अपने उपयोगमे विषयभूत करते है तो ये रागादिक विकार पनपते है तो ऐसी कोशिश करे कि ये ये पदार्थ मेरे आश्रयभूत नहीं बने, बस इसी प्रयोजनके लिए चरणानुयोगकी प्रक्रिया है। तो इन बाहरी पदार्थों को त्याग दे तो एक ऐसा अवसर मिलेगा कि जब ये आश्रयभूत न बन सके तो वहा ज्ञानका अभ्युदय होगा आप अपने निरपेक्ष पारिणामिक स्वरूपकी सम्हाल कर सकेगे। देखिये—सिद्धान्तमे जितनी बातें कही गई है वे सब इस जीवके लिए उपायभूत है, निमित्तनैमित्तिक भावसे तो हमे यह शिक्षा लेना पडती है कि यह कषाय नैमित्तिक है, कषाय हुना मेरा स्वरूप नही है। मेरा स्वरूप तो ज्ञान है, और मेरा व्यापार, प्रदेश, क्रिया, ज्ञानकी वृत्ति है, अन्यसे मेरा सम्बन्ध नही,उस का ज्ञाता द्रष्टा रहना चाहिए उसमे हर्ष विषाद न करे। वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे यह शिक्षा ले कि क्योकि मैं स्वतः सिद्ध हूँ और चूकि मै हूँ अतएव निरन्तर अपने आपमे अपनी परिणतियां करता रहता हूँ। इसकी दूसरे पदार्थसे लेनदेन होकर परिणति नही हुआ करती, लो वहा पर भी आश्रयभूत छूटनेका शिक्षण मिला।

भेदविज्ञानकी पुष्टिमें कर्तृकर्मत्वकी यथार्थताके परिचयका सहयोग—यहा भेदविज्ञान को शीघ्र और सक्षेप समयमे समझनेके लिए कर्ता कर्मका प्रकरण लीजिए ? कर्ता कहलाता है वह जो खुद परिणमन कर रहा हो। परमार्थसे कर्ता नही है, जीव विकल्प रूप परिणमता है तो विकल्पका कर्ता जीव है, कर्म अपनेमे उस अनुभागको बना रहा है, उसका कर्ता यह कर्महै। हाँ वहापरस्पर परस्परका ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि कर्मउदयअवस्थाको प्राप्त कर रहा हो तो जीवमे उसके अनुरूप विचार विकार झलका, यह भेद है, इतनेपर भी निमित्त रहा यह कर्म। कर्मने अपना द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव नही दिया। कर्मने अपना कुछ नही दिया, इतने पर भी ऐसा नही हो सकता कि कर्म उदय न हो और वह विकार करले। जब कभी कोई यह चर्चा करता हो कि मै ऐसा कैसे हो सकूगा, वह तो जो कुछ होना होता है वह होता है, भगवान ने जाना है और उस समय यह होगा, बात यह भी ठीक है, अवधिज्ञानीने विशिष्ट ज्ञानीने प्रभुने जिस समय जो जाना उस समय वह होगा ही, इसमे सन्देहकी बात नही, लेकिन जाननाहोनेमे कारण नही होता,किन्तु उत्पत्तिविधिमे जिस प्रकारसे जो होना है, होता है, और वह विशिष्ट ज्ञानीको ज्ञात होता है। तब यहा दो दृष्टियाँ रखना चाहिए। ज्ञप्तिकी दृष्टिसे तो यह कह सकते है कि एक के बाद एक पर्याय जो कुछ होता है वह सब नियत है, यह ज्ञप्तिदृष्टिसे कही जाने वाली बात है, किन्तु जब उत्पत्तिविधिसे देखे तो यह कल्पनासी करते हुए आगे बढे कि कोई सर्वज्ञ नहीं है या नही

जानता, उसे दृष्टि मत दे, क्योकि नयको समझने की एक ऐसी ही पद्धति है कि जिस नयसे जो वात समझना हो उस नय की ही बात रखो और अन्य नय की वात मत रखो। जब हम उत्पत्ति विधान की दृष्टिसे निर्णय करना चाहते है तो यह वात चित्तमे न लाये कि सर्वज्ञ ने जाना सो होगा। मानलो सर्वज्ञ नही है, कोई जानने वाला नही है ऐसी एक कल्पना करके अब जरा उत्पत्ति विधिपर दृष्टि तो दीजिए। जीव अपने आप अपना निमित्त करके विकार करता हो तो जीव नित्य ही विकार का कर्ता बना रहेगा, उसकी कभी मुक्ति नही हो सकती। जीव तो प्रति समय एक सयुक्त है। प्रत्येक पदार्थ प्रति समय एक अखण्ड पर्यायसे संयुक्त रहता है। अब उसके बाद उसका क्या परिणमन होता तो वहजीव निरुपाधि है, उपाधिसे रहित है। तो उसका तो नियत परिणमन है कि बस शुद्ध ज्ञानवृत्तिका ही परिणमन होता रहेगा। अनादि काल तक, लेकिन जो जीव पर्यायमे अशुद्ध है उसकी वह विकृति इस विधानमे बनती कि जिस प्रकारका कर्मोदय हो उस प्रकारसे इस जीवकी बात चलती है। तो इसी तरह चिद्विलासमे एक-एक जगह मे देखिये—यह कर्म रोता है, कर्म हसता है, कर्म ही सब कुछ करता है, और यह जीव मानता है कि मैं रोता हूँ, मैं हसता हूँ, तो इस सम्बन्धमे दो दृष्टिया और बनायें। साख्य जैसी कि प्रकृति कर्म यह रोती हसती है, यह सब कुछ करती है, जीव कुछ नही करता। मगर सांख्यके इस सिद्धान्तमे यह अन्तर आयगा कि कर्ममे कर्मके अनुरूप कर्मका उदय तो हुआ वह कर्मके अनुरूप कर्ममे हुआ, लेकिन उस कालमे उसका निमित्त पाकर जीवमे भी उसका प्रतिबिम्ब हुआ, झलक हुई, उसे अपनाया, उसमे उपयोग जुडा, तो उस जीवमे भी परिणति हुई। सांख्य तो जीवकी परिणति मानते ही नही। वे मानते कि जीवमे परिणमन कभी होता ही नही है. ऐसा अपरिणामी तत्त्व साख्य स्वीकार करते है।

कर्मदशा और ज्ञानविकल्पसे अन्यता—यद्यपि कर्मदशा हुई, कर्मसे हुई किन्तु उसका निमित्त पाकर अशुद्ध उपादान वाले जीवमे उसका प्रतिबिम्ब हुआ। अब ज्ञानी पुरुष यह विवेक करता हैं कि मैं तो केवल ज्ञानवृत्ति को करता हूँ सहज और अशुद्ध अवस्थामे मैं अपने आपकी झलकको करता हूँ, विकल्प करता हूँ। विचार करता हूँ, पर कर्मका कुछ नही करता हूँ। मेरा कर्म मेरा परिणमन है। मेरा कर्म कर्मकी दशा नही है। तो यहा इस ज्ञानी ने यह तका कि मै अपने आपके परिणमनके सिवाय अन्य कुछ कर सकनेमे समर्थ नही हूँ। बात कुछ इससे भी और आगे बढकर सोचना है कि विकल्प, विचार भी जो होता है सो यह एक कर्मकी लीला है, कर्मका प्रतिबिम्ब है, इसका भी करने वाला मैं नही हूँ। मै तो केवल एक ज्ञान ज्योति स्वरूप हूँ, और ज्ञानकी वृत्ति को ही करता रहता हूँ। इस तरह

अपने को अकता माने, अपनेको समस्त परभावोसे निराला मानना यह हो गया निर्मोह बननेका उपाय। तो अपने को यह समझना पडेगा कि मै सबसे निराला हूँ। अपने आपके परिणमनको करने वाला हूं, विकार आते है वे पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर आते हैं। वह मेरा स्वरूप नही है मैं उनसे निराला ज्ञानस्वभावमात्र हूँ। इसतरह निमित्त नैमित्तिक भाव समझ कर उसका सदुपयोग करे और वस्तु स्वातत्र्य समझकर उसका सदुपयोग करे। अपने आपको निर्मोह बनाये बिना अपने आपको शान्ति प्राप्त नही हो सकता। आनन्द कही बाहर नही रखा है कि बाहरके पदार्थसे हमको आनन्द प्राप्त हो। हमारा आनन्द एक गुण है और अपने ही आनन्द गुणके विकाससे स्वय आनन्द प्राप्त करते हैं। किसी पर पदार्थ से आनन्द नही आता। किसी पर पदार्थ से ज्ञान नही होता। ज्ञान और आनन्दका निधान यही स्वय आत्मा है। जब यह अपने आपको सम्हालता है तो ज्ञानानन्द प्रकट हो जाता है और जब पर पदार्थमे दृष्टि गडाता है तो इसके विकार उत्पन्न होता है। उन विकारोसे हम अब तक परेशान हुए।

विकारविजयमें साधक दो करण—विकारो पर विजय प्राप्त करनेके लिए दो बातो की आवश्यकता है (१) एक तो तत्त्वज्ञान की और दूसरी—यथाशक्ति सयमकी। अब उन दोनोमे हम किसको पहले बनाये और किसको बादमे बनायें, यह कोई निर्णय नही है सही। दोनो कीजिए, यथा शक्ति कीजिए। तत्त्वज्ञान और बाहरी वृत्ति। जैसे देखा होगा कि कोई योद्धा अगर युद्धमे लडने जाता है तो उसके पास दो चीजे होती है (१) तलवार और (२) ढाल। पहले जमानेमे तो ये ढाल तलवार और तरह के होते थे आजकल और तरहके होते है, मगर वे दोनो चीजे अब भी चल रही हैं। ढालका उपयोग योद्धा करता है अपने ऊपर आने वाले वारको रोकनेके लिए और तलवारका उपयोग करता है योद्धा शत्रुका सहार करनेके लिए। जब तक ये दोनो चीजें योद्धाके पास न होगी तब तक न योद्धा की ही रक्षा है और न शत्रु पर बिजय ही प्राप्त कर सकेगा। यह बात तो बिल्कुल ही स्पष्ट है, इसी प्रकार हमारा यह बाह्य सदाचार, ब्रह्मचर्य, वृत रखना, भोजन भक्ष्य करना, रात्रिको नहीं खाना, बारबार न खाना इनका कुछ नियम रखना, देव दर्शन आदिक जितने भी हमारे बाह्य काम हैं ये बाहरी काम हमारे व्यसन भावको रोकते है। व्यसन न उत्पन्न हो। आशक्ति न उत्पन्न हो विषयोके भाव, खोटे भाव होते हो तो वे भी हट जाये, इसके लिए काल हम इस ढाल के उपयोग द्वारा काम बनाते है। पर अब दृष्टि द्वारा मेरे ज्ञानमे मेरा सहज ज्ञान स्वरूप समाया रहे, यह ज्ञानमे रहे, इस प्रकारकी जो एक अनुभूति है, तत्त्वज्ञान है यह ही एक वह शस्त्र है जिसके होने पर भव—भवके बाधे हुए कर्म झड जाते

है। तो तत्त्वज्ञान और हमारा बाह्य सदाचार ये दोनो हमारे विकासमे सहयोगी हैं, इसलिए हम आप सबको इस ओर ध्यान देना चाहिए। हम आत्माका स्वरूप जानें, चिन्तन करें, मनन करे और अपने ज्ञानस्वरूपको जान जानकर इसीमे ही कुछ तृप्त हो तो हमारी भलाई है।

आशयकी स्वच्छताका प्रभाव—एक चुटकुला हैं कि बादशाह अकबर और बीरबल एक बार कही घूमने जा रहे थे, रास्तेमे अकबरने बीरबलको छकानेके लिए नीचा दिखानेके लिए कहा—बीरबल आजरातको हमें एक ऐसास्वप्न आया कि हमतुमदोनो कही घूमने जा रहे थे, रास्तेमे दो गड्ढे मिले, एक मे भरा था गोबर विष्टा और एक मे भरी थी शक्कर। पानी बरस जानेसे वह शक्कर भी गीली हो गई थी और गोबर विष्टा भी, सो हम तो गिर गए शक्करके गड्ढेमे और तुम गिर गए गोबर विष्टाके गढ्ढेमे। तो वहा बीरबल ने जवाब दिया—महाराज आप ठीक कहते है। अवश्य ऐसा स्वप्न देखा होगा परन्तु मैंने भी हूबहू वही स्वप्न देखा जो आपने देखा, मगर थोडा उससे आगे यह भी देखा कि हम तो आपको चाट रहे थे और आप हमे चाट रहे थे। अब भला बतलाओ—खुद ने क्या चाटा ? शक्कर और बादशाहको क्या चटाया ? गोबर विष्टा। तो यहा एक बात अपने आपमे भी लगाये कि यद्यपि यह गृहस्थावस्था है, और गृहस्थी एक कीचड की तरह है। विकल्पोसे निवृत्त होनेमे एक बडी बाधक स्थिति है, ये विकल्प आते हैं रोजिगार करते हैं, कमाई करते हैं, बहुत सी बाते होती हैं तो वह एक पक की तरह है। जैसे कीचड मे रहने पर भी अगर भीतरकी दृष्टि लगी हो और अपने आपका जो सहज शुद्ध निरपेक्ष स्वरूप हो उसकी ओर दृष्टि जाय तो वह तत्त्वज्ञानका स्वाद लेता है। गृहस्थी मे रहकर भी मनुष्य कर्मका उदय पा रहा है उसका भी सामना करता है और मोक्षमार्गमे चल रहा हैं। तो दृष्टि–निर्मलता होनी एक बहुत आवश्यक चीज है उसमे। जिस किसीको शान्ति प्राप्त करना हो ? मोटे रूप से भी देख लो—यहाँ जिसे जिस कालमे धन वैभव प्राप्त है उस कालमे भी वह शान्त रह पाता है क्या ? इस वैभवका, विषयका, विकल्पका विचार बनाकर यह असार है, मेरेकामका नही है, मुझे क्यो इसकी तृष्णा करना फिर इसमे क्यो आशक्ति बनाना, इसकोत्यागे औरफिर अपने आपके इस ज्ञान प्रकाशमे आये तो आनन्द मिलेगा, संकट टलेंगे, और कभी जल्दी ही वह समय आयगा कि जन्म मरणकी बाधासे हम मुक्त हो जायेंगे।

जगवैभवकी तृष्णाकी अनर्थता—इस वैभवको जाने कि यह ऐसे ही मिल गया। यह ऐसे ही आया और ऐसे ही चला गया। एक कथानक है—एक बार किसी राजाके अश्व शालासे एक चोर एक घोडा चुरा ले गया, वह घोडा नैपाली, ठिगना, वडे सुन्दर डील डोल

का था। तो उसे चुराकर किसी पशुओंके बाजारमे खडा कर दिया। वह था तो कोई ३०) की कीमत का, पर यह सोचकर कि कोई यह न समझ पाये कि यह चोरी का है उसकी कीमत बताया ६००)। अब ६००) मे उसे कौन खरीदे ? अनेक ग्राहक आये और लौट गए। एक बार कोई ऐसा भी ग्राहक आया जो कि बडा पुराना एक्सपर्ट (पक्ष) चोर था। उसने पूछा भाई घोडा बेचोगे ? हा हा बेचेगे। बेचने के लिए तो लाये ही है। - कितने मे दोगे ? -- ६००) मे। उसकी आवाज हो सुनकर वह बूढा व्यक्ति समझ गया कि यह तो घोडा चोरीका मालूम होता है। सो पूछा–भाई इसमे क्या खास बात है जो इसके ६००) बताते ? ---अजी इसकी चाल बहुत ही सुन्दर है। अच्छा, (मिट्टीका हुक्का पकडाकर) भाई इस हुक्केको पकड लेना, मै इस पर बैठकर इसकी चाल देखूगा, यदि इसकी चाल पसन्द आ गई तो मै तुम्हे ६००) हो दूँगा। सो उसने वह मिट्टीका हुक्का पकडा, था कोई चवन्नीकी कीमतका, और बूढा उस घोडे पर बैठा ही था कि ऐड मारकर उसे उडा ले गया। अब फिर वही ग्राहक वहा लौटकर आये—पूछा, तुम्हारा घोडा बिक गया क्या ? हा बिक गया। - कितनेमे बिक गया ? - जितनेमे लाये थे उतनेमे बिक गया। मुनाफा कुछ नही मिला ? 'मुनाफा मिला यह चार आनेका मिट्टीका हुक्का।" तो देखिये चोरी की चीज चोरीमे गई। मुनाफा कुछ न मिला। यहा भी लोग अनेक प्रकारसे धनार्जन करते हैं, पर उसे भी समझो कि यह मुफ्त हो मिला है और मुफ्त हो जायगा। आत्माकी विचार-धाराका यह फल नही है। यह तो पूर्वबद्ध कर्मका विपाक है। तो आत्माकी ओरसे देखो तो चूकि ये समस्त पर पदार्थ है ये मुफ्त मिले समझो, और जब ये मरेंगे अर्थात् मनुष्य पर्याय बदलकर आगे जायेगे तो ये मुफ्त ही चले जायेगे। मुफ्त ही मिले और मुफ्त ही जायेंगे, पर कोई पूछे कि भाई हमने तो ५०-६० वर्ष तक बडो मेहनत की है, क्या सब कुछ मिट जायगा ? कुछ न रहेगा क्या ? हाँ कुछ न रहेगा आखिर फल मिलेगा पापका हुक्का। जिस को कि साथ ले जायगा, आगे उसका फल भोगेगा। इस संसारके समागमोसे जिनकी रुचि नही हटी, इनसे उपेक्षा नही जगी, वह अपने आपके धर्म मार्गमे आयगा ही क्या ? कैसे आयगा ? तो इतना तो मोटे रूपसे समझ ही लेना चाहिए। जगतमे जितना भी समागम मिला है वह सारा समागम मेरे लिए बेकार है। मेरे हित परिणतिको करनेमे कोई दूसरा समर्थ नही। मैं ही अपने आपमे अपनी परिणति बना पाता हूँ। अच्छा चले तो अच्छे बनेगे, खोटा चले तो खोटे बनेगे। मेरा मैं ही जिम्मेदार हूँ, दूसरा कोई भी जीव मेरा जिम्मेदार नही है। यहा जो लोग परस्परमे प्रेमकी बात करते है तो कोई किसीसे प्रेम नही करता, किन्तु खुदका ही स्वार्थ होता है, कुछ खुद की ही विषयसाधना होती है, उसके लिए वह

प्रेम करता है, न कि कोई किसीसे दूसरेसे प्रेम करता है।

अधिगमके उपायके मीमासाके प्रसंगमे—कभी यह ज्ञान अपने प्रदेशोको छोडकर बाहरके प्रदेशोमे घुसकर जाया नही करता, किन्तु अपने आपके प्रदेशोमे रहता हुआ ही बाह्य पदार्थोको विषय बनाकर अपने आपमे जानता है। देखो व्यवहारनयसे द्रव्यार्थिकनयसे ज्ञानी ७ तत्त्वोकी व्यवस्था बनाती है और प्रमाण द्वारा ७ तत्त्वोमे एकत्वको प्राप्त जो एक सहज-स्वरूप है उस स्वरूपका लक्ष्य बनाता है और प्रमाणनयके विकल्प छोड़कर शुद्ध अनुभव करता है। तो सम्यग्दर्शनके प्रकरणमे इस सूत्रमे यह बताया जा रहा है कि समस्त पदार्थो का निर्णय प्रमाण और नयोके द्वारा होता है। देखिये जैसे कोई पुरुष सीढियोपर चढकर अगर महलमे पहुँच गया तो अब महलमे पहुचा हुआ पुरुष नीचे खडे रहनेवालेको कहता कि देखो सीढियोको पकडकर ठहर गये तो वह योग्य नही है। सीढियोको छोडकर ही महलमे पहुचा करते है। जो नीचे रहनेवाला सीढ़ियोका आश्रय न ले तो महल तक नही पहुच सकता। और अगर कोई सीढियोको पकडे और फिर छोडे, फिर पकडे फिर छोडे इस पद्धति से वह महलमे पहुँच सकता है। ग्रहण किए बिना ही कोई छोडे रहे तो वह महलमे नही पहुच सकता। इसी तरह ९ तत्त्वोका जो भेद विवरण है उनको पाया तो इस जीवने और ज्ञान किया और उन्हे समझ गया कि इन ९ तत्त्वोमे रहने वाला तो अनादि अनन्त एक स्वरूप यह तत्त्व है। सब जाना और जानकर फिर भूतार्थका आश्रय किया तो उनको लाभ हुआ। तो जैसे सीढियोको ग्रहण करके छोड दिया तब महलमे पहुचते है इसी प्रकार अभूतार्थ नयसे ९ तत्त्वोके भेद विवरण दृष्टिसे हटकर एक अभेद निज ज्ञानस्वभावमे पहुचना यह पद्धति है अपने मोक्षमार्गमे चलने की। तो यह अभूतार्थनयसे कहा जानेके लिए पदार्थो का अधिगम किन बातोसे होता है। यह कहा जा रहा है कि प्रमाणनयैरधिगम प्रमाण और नयके द्वारा ९ तत्त्वोका अधिगम होता है। यह ज्ञान इसके प्रयोजनभूतको जानकारीमे पहुचाता है। और जब यह ज्ञान शब्दरूपमे आता है मायने शब्दोमे जब हम वर्णन करते है, समझाते है तो उसका प्रयोजन पर जीवोके लिए भी होता है। इसलिए जब तक ज्ञान शब्दरूपताको स्पर्श नही करते, शब्द व्यवहार जब तक इनसे नही लिया जाता तब सभी ज्ञान स्वार्थ कहलाते है, याने अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

स्वपुरुषार्थकी साधनामें भलाई—देखो लोकमे स्वार्थीका नाम लोग बुरा समझते हैं यह तो स्वार्थी है—देखो एक भजन है जिसमे चिद्रूप हमारा—इसका ही सहारा, इस भजन के अन्तर्गत बताया है कि 'वस्तु स्वरूप ही नही कि परसे कुछ मिले। खुदगर्ज भी किसको कहे, सब सत्त्वके भले ॥" याने वस्तुका स्वरूप नही है ऐसा कि पर पदार्थसे मेरेको कुछ

मिल जाय। मिलता है जो कुछ मुझे वह मेरेको मेरेसे मिलना है, पर जो बाह्य बाते है चाहे शुभ हों या अशुभ, उसमे हमारा आश्रयभूत पर पदार्थ विषय हुआ करता है तब यह विधि बनती है शुभ अशुभ भावकी कि पर पदार्थका आश्रय करते हुए हमारा शुभ अशुभ भाव बनता है, पर वस्तुत किसी परवस्तुसे मेरेमे कुछ नही मिलता। लोग सोचते है कि मेरेको आनन्द घरसे मिलता है। अरे घरमे जो ईट पत्थर है उनमे आनन्द भरा है क्या? जो वहासे मेरेको आनन्द मिल जाय? परिवारमे आनन्द मिलना है क्या? अरे परिवार पहिले अपने आनन्दसे ही तो सुख लेते। उनका सुख मेरेमे कैसे प्राप्त होगा? किसी भी पर पदार्थसे मेरेको आनन्द और ज्ञान प्राप्त नही होता। मैं ही खुद ज्ञानानन्द स्वरूपी हू। सो मैं अपने आपका आश्रय करके विशुद्ध ज्ञान और आनन्द प्राप्त कर सकता हू। देखो आनन्द चाहिए—धर्म चाहिए, मोक्षमार्ग चाहिए तो दिमाग बदल देना पडेगा। उस दिमाग से बात न बनेगी। तो जो विश्वास लिए हुए चले आये कि यह ही मेरे आत्माके लिए है, यह ही मेरा जीवन है, इससे ही मेरा बडप्पन है। ऐसा जो भीतरमे विश्वास है यह विष है। इस विषका वमन करे—तब धर्म और आनन्दकी बात मिलेगी। घर भी पकडे रहे, उनके लगाव और मोहमे परिवर्तन न लाये और चाहे कि मेरेको धर्म मिले, आनन्द मिले तो यो न मिलेगा। धर्म और आनन्द प्राप्त होगा तो मोह छोडकर ही प्राप्त होगा। मोहमें न प्राप्त होगा। और भी एक बात देखो—जैसे कहते है कि भाई तुम सीधे सादे बात मान लो नही तो टेढे तो मानना ही पडेगा। कभी कभी कहते है ना व्यवहारमे—अरे राजी खुशी से बात मानलो अन्यथा जबरदस्ती कोई मनवा लेगा। यो ही—भाई जिस परिवारसे, वैभव से, इज्जत प्रतिष्ठा आदिकसे इतना लगाव लगाया, मोह लगाया, उसे छोड दो, मरनेपर तो यह सब छूट ही जायगा न? भले ही अगले भवमे मिले मगर वहा तो नया विषय बनेगा, नई बात बनेगी। जिन पदार्थोंको विषय करके मोह बना रहे वे पदार्थ तो मिट ही जायेगे। वे तो नही मिलनेके। राजी खुशीसे मोह छोड दो, नही छोडते तो छोडना पडेगा, काम तो आयेगे नही? यह मोह आपकी मदद तो देगा नही। छोडना तो अवश्य ही पडेगा। अगर भले-भले ढगसे छोड दे तो उसका आनन्द अब भी पा लेगे, और आगे भी पायेंगे। और नही छोडते तो दुर्दशा होगी। उस भव सम्बन्धी बात मिलो तो कोई उसका अच्छा नतीजा न मिलेगा।

निज ज्ञानस्वरूपके संवेदनमें श्रेयोलाभ—देखो—तुम ज्ञानमय हो, आनन्द चाहिते हो तो अपने आपके स्वरूपका भी ज्ञान करो, तो यह ज्ञान कामका है और बाहरी—बाहरी पदार्थोंका ही राग मोह करते रहे तो उससे कुछ नफा न मिलेगा तो कुछ तो सोचो। यह

लोभ, यह तृष्णा, यह असन्तोष, यह मोह, यह ही विकट अँधकार है। इसमे सन्मार्ग नही सूझता। ये इस जीवको धोखा ही दिया करते है। तो भाई यह मानव पर्याय बडी दुर्लभ पर्याय है, इस पर्यायको पाकर हमको वास्तवमे कौन सा काम करना चाहिए। जिससे कि यहा भी वास्तविक प्रसन्न रहे और आगे भी प्रसन्न रहे और सदाके लिए ससार सकटोसे छूट जाये। जरा आप हिसाब भी तो देखलो। सदाके लिए जन्ममरणके सकट छूट जायें, सदाके लिए अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान प्राप्त हो जाय, यह बात महत्वकी है कि आज जो बालबच्चे मिले हैं, दुबले पतले हड्डिया निकली, नाक बह रही है, परेशान कर रहे है फिरभी उनमे इतना मोह बनाये हुए है, यह बात महत्वकी है या अनन्त आनन्द प्राप्त करनेकी बात महत्वकी है ? कुछ तो सोचो जरा। ससारमे मोहियोकी सख्या अत्यन्त अधिक है, और लोगोकी यह प्रकृति पडी हुई है कि बहुतसे लोगोको जिस कामको करते हुए देखा उस कामको करना, इससे यह जीव पराजित ही जाता है। बिरला ही पुरुष ऐसा है जिसका होनहार अच्छा है वह ही पुरुष ऐसा चिन्तन कर सकता कि अनन्त मोहियो की बातको देखकर हमे करनेका काम नही है, किन्तु जो बिरला ही ज्ञानी पुरुष हो या प्रभु भगवतने जो किया है उसको जानकर करना। देखो ज्ञानपुञ्ज है, हम आप ज्ञान स्वरूप पदार्थ है। अगर अपने आपमे ज्ञानका बल लगाया तो अपने आपकी कोई कठिन बात नही है। पर आचरण तो यह पडा हुआ है कि हम अपनेको जाननेकी रुचि नही करते, बाहर-बाहर ही तकते हैं, बाहर—बाहर ही देखते है, वहा ही निर्णय बना हुआ है। दुखी हो रहे है। ज्ञानस्वरूप होकर खुदके स्वरूपका ज्ञान न कर सके यह तो एक अचम्भेकी बात हो जायगी, और, है ही अचम्भा, नही कर पा रहा है यह मोही अपने आपका ज्ञान। कल्याण चाहिए तो यह ही निर्णय रखना होगा कि आत्मज्ञान और आत्मश्रद्धान व आत्मरमण हो तो कल्याण बनेगा। तभी हम आगे बढ सकेंगे और मुक्तिको प्राप्त कर सकेगे। जो ज्ञानी पुरुष है वह अपने आपको अपने आपमे यह स्पष्ट निहारता है कि जहा बराबर भेदविज्ञान स्पष्ट झलकता है। मैं तो यह हूँ जो ज्ञानस्वरूप है। जिसकी वृत्ति एक ज्ञानरूप है, चेतना को लिए हुए है, और यह कर्मका अनुभाग है, कर्मसे प्रकट हुआ है। जो कर्म अनुभाग मेरी झाकीमे आया है वह अन्धेरा मेरेमे छाया है। लो स्वभावसे च्युत हुएका कर्मराग अन्धेरेमे उपयोग जुडा और उसे अपना लिया, इसीसे जन्म मरण चल रहा है।

भ्रमविनाशमें अज्ञानवृत्तिकी अशक्यता—जिसके भ्रम मिट गया उसके भ्रम कैसे आ सकता है ? जैसे कोई कुछ अन्धेरे उजेरेमे सामने पडी है रस्सी और यह भ्रम बन गया कि यह तो सांप है, तो भय हुआ, आकुलता हुई, चिल्लाने लगा। हृदय भी काँपने लगा, शका

और भय भी व्याप गया। अब न जाने क्या हाल होगा, कहो यह सर्प काट ले और मेरा मरण हो जाय, यो नाना बाते होती है। और, थोडा सोचा कि जरा मै अच्छी तरहसे देखू तो सही कि यह कैसा सांप है, कौन साप है? क्या बात है? जब भली दृष्टिसे देखने लगा तो सोचा कि यह तो जरा भी हिलता नही है, यह कैसा साप है? कुछ हिम्मत बनाय? और पास जाकर देखा, यह तो बिल्कुल ही नही हिलता। और हिम्मत बनाया, जरा और पास जाकर देखा तो समझ लिया कि अरे यह तो रस्सी है, साप नही है। उसे हाथोसे उठाकर भली भाति निर्णय कर लिया कि यह तो रस्सी ही है। अब सही ज्ञान हो जानेसे भ्रम मिट गया ना? अब उससे कोई कहे कि हम तुम्हे इतने हजार रूपये इनाम देगे, तुम उसी तरहकी आकुलता, बेचैनी, भ्रम बनाकर दिखा दो, तो क्या वह दिखा सकेगा? नही दिखा सकता। भलेही बनावटी करे पर जब भ्रम ही मिट गया तो वह आकुलता आयगी कहा से? तो जेसे मोही पुरूषमे यह सामर्थ्य नही है कि वह ज्ञान प्रकाश की प्रसन्नता पाये इसीतरह ज्ञानी जीवमे, सम्यग्दृष्टि जीवमे भी वह पता नही है कि जो धन परिवार, घर इनमे मोह कर सके, तब तो कुछ सोचना होगा कि हम लोग ही।

संसारी जनोकी मिथ्या सुभटता—ससारी जन बडे सुभट है उनकी सारी धारणा है कि जो बल ज्ञानीमे नही वह बल हममे है। अरे देखो—भगवानसे बढकर मत चलो। कम स कम भगवानसे कुछ हल्के बनकर तो रहो, लेकिन यह मोही जीव तो भगवानसे बढकर चल रहा है। भगवान बेचारे तो जो पदार्थ जैसा है उसे उस प्रकार जान पाते है, लेकिन मोही जीव जैसा नही है वैसा भी जानकर दिखा देते है। देखिये—घर तो मिट्टीका है, वह अत्यन्त भिन्न पदार्थ है पर उसे ये मोही जीव मानते है कि यह मेरा है। जहाँ भगवानसे बढकर चलगें तो ऐसा गिरेगे कि जैसे मानो हड्डी पसली सब टूट जायेगी। याने, इस का फल यह होगा कि अनन्त ससारमे जन्म मरणके घोर सकट सहने पडेगे। तो जैसे भगवान अधिक नही जानते। जो पदार्थ जितना है उतना ही जानते। मगर यहा ये मोही जीव भगवानसे भी अधिक जाननेकी कोशिश कर रहे है। लड़के मेरे, घर मेरे, इज्जत मेरी, ये मेरे, यो नाना प्रकारसे ये मोही जानते है, पर भगवान तो ऐसा नही जानते। भले ही आप का जो मिथ्यात्व विकल्प है वह जाननेमे आय मगर भगवान ऐसा नही जानते कि यह घर इस अमुक चदका है, इस लालका है, इस प्रसादका है। मगर भगवान यह जान जायें तो आपकी पक्की रजिष्ट्री हो जायगी, फिर कभी आपका घर न मिटेगा। यहा म्यूनिसपिलटी की रजिष्ट्री तो फेल भी हो सकती मगर वह रजिष्ट्री फेल भी न हो सकती। अगर भगवान यह जानने लगें कि यह घर अमुकका है तो वह तो बडी बढ़िया रजिष्ट्री हो गई।

आप जानते है कि यह मकान मेरा है तो यह तो मोह भाव है, वह आपकी पर्याय है, जान जायेगे, मगर उपचारकी भाषामे जो बोला जाता है वह तो सत्य नही है। जो सत्य नही है वह भगवानके ज्ञानमे ज्ञेय नही होता, आपकी अमत्ता ज्ञेय हो जायगी। जो जरा बढकर न चलो। जो बात जैसी है वैसी मानकर चलो तो रास्ता मिलेगा। और अन्धाधुध चला जाय तो रास्ता न मिलेगा। देह तक भी अपना नही है। और तो जाने दो, जो रागादिक भाव उत्पन्न होते है वे भी मेरे बनकर नही रह पाते। नये-नये राग बनते। जो नया-नया राग बन रहा वह दूसरे क्षण नही ठहरता। उसे भी मिटना पडेगा। वह भी मेरा बनकर नही रहता। तो मेरे अन्दर रहने वाला रागादिक विकल्प भी जब मेरा साथ नही देते, होकर मिट जाते हैं, तो भला बाहरमे रहने वाले पदार्थो पर जो ऐसा मिथ्या विश्वास बना रखा है तो इनसे कुछ आपको शरण मिलेगा क्या ?

बाहरी पदार्थोके सम्पर्कमे आघातकी हो आशा—जैसे फुटबाल जहाँ जाय वहाँ ही उसे लात मिलेगी। जिस बच्चोके पास फुटबाल पहुचता है वह बच्चा उस फुटबालको लात मारकर वहासे लौटा देता है, कोई बच्चा उसे हाथोमे उठाकर हृदयसे तो नही लगाता। न उसे गोदमे लेता। आया और लात मारा। तो ऐसे ही फुटबालकी तरहसे मोही जीव जहां जाते है, जिसके पास जाते है वहीसे धोखा मिलता है, चोट मिलती हैं, वहीसे कष्ट मिलता है। शान्ति नही मिलती, खूब देखलो। जो अनिष्ट चीज है, जो अपनेका नही सुहाती है ऐसी चीजसे मेरेको चोट पहुचती है, कष्ट होता है। यह तो हर एक की समझमे खूब बैठा हुआ है, मगर जो इष्ट चीज है, प्रिय चीज है। सुहावनी चीज है उससे मेरेको चोट पहुचती है। इसका कोई परिचय नही किया जा रहा है। एक दफे यही तो कहा था कि वह ब्राह्मण भाई जब यहासे जाने लगे तो बोला था न ? देखिये—बात तो वहाँ कुछ न थी, पर उसका भाव देखना है—सज्जन और दुर्जन ये दोनो दुखदायी है। दुर्जन तो मिलते समय दुखदायी है। और सज्जन बिछुडते समय दुखदायी है। ऐसे ही इष्ट पदार्थ और अनिष्ट पदार्थ दोनो ही कष्टकारी है। अनिष्ट पदार्थ तो मिलते समय कष्टकारी है और इष्ट पदार्थ मिलते समय भी कष्टकारी है और बिछुडते समय भी कष्टकारी है। बिछुडते समय कष्टकारी है यह तो सबके अनुभवमे आ रहा होगा। घरमे जो बडा है, जो पालन हार है, जो किसी प्रकारका पोषण करने वाला है, वह अगर गुजर गया तो लोग कहते है कि बडी चोट पडी, बडी मार लगी, बडा क्लेश है। तो वियोगके समयमे इष्ट पदार्थ कष्टदायी होता है, यह तो सब मानते है, मगर स्वरूप बतला रहा है कि जिस समय सयोग है इष्ट पदार्थका, उस समयमे भी आकुलता रहती है, कष्ट रहता है, क्षोभ रहता है चित्तमे। तो बाह्य पदार्थ सब

हमारे अहितके कारण कारण बन रहे है, उस ओर तो दृष्टि नही देते, और हिसाब लगाते हते है बाहरी आय व्ययमे ।

अनन्तानुबन्धी कषायके लक्षण—कही धर्मका हिसाब लगायेगे, धर्ममे इतनाही देना, इतना कैसे दे ? वहां हिसाब लगायेंगे और घरमे तो हिसाब नही लगाते । अगर घरका कोई बीमार हो गया तो उसमे फिर हिसाब नही लगाते, चाहे कितना ही धन खर्च हो जाय उसमे फिर कमी नही करते । वहा तो सोचते हैं कि यह तो हमारा कर्तव्य है, करना ही चाहिए । और-कभी कोई धर्मकी बात आ जाय, वहा कुछ खर्च करनेकी जरूरत पड जाय तो वहा हिसाब लगाते हैं कि कितना खर्च करदे, कुछ थोडासा करदे । अनन्तानुबन्धी लोभ किसे कहते कि धर्मके प्रसगमे भी है जहां लोभ कषाय हो उसे कहते है अनन्तानुबन्धी लोभ । यो तो घरमे रहते है तो लोभ बिना किसीका गुजारा नही चलता । जो कुछ धन है क्या वह उसे सडकपर खडा होकर सबको बाट देगा ? अगर कोई ऐसा करने लगे तो उसे तो लोग पागल कहेग । तो घरमे रहते हुए लोभ बिना घर नही चलता मगर धर्मके प्रसगमे सामर्थ्य होते हुए भी लोभ कषाय बने उसे कहते है अनन्तानुबन्धी लोभ । यह उसका मुख्य बाहरी चिन्ह है । धर्मके प्रसगमे अगर क्रोध आ जाय तो उसे कहते है अनन्तानुबन्धी क्रोध । गृहस्थीमे रहते हुए क्रोध तो सभीको आताही रहता है, मगर धर्मका वातावरण हो, उसप्रसंग मे यदि क्रोध आ गया तो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध बन गया । तो यह अनन्तानुबन्धी क्रोध का चिन्ह है । इज्जत, सम्मान प्राय सभी चाहते है, मगर-धर्मके प्रसंगमे आकर अगर कोई मान चाहे तो वह अनन्तानुबन्धी मान है । तब ही तो देखो उल्टी रीति चल रही है कि मन्दिरसे बाहर हुए या धर्मका प्रसग न हो तो गलेसे गला मिलते है, एक दूसरेसे बड़ी मित्रता दिखाते है और जहा कोई धर्मका प्रसग आया तो बस वहा वह मित्रता खत्म हो जाती है । 'वाह मैं यही बैठा हूँ । ये लोग मेरेसे आगे बैठ गए, मैं क्यो इनसे पीछे रहूँ ? देखो ये सब बीती हुई बातें आप लोग समझ रहे होगे, पर ऐसा भ्रम न करना कि यह तो हमपर बात कही जा रही है । ऐसा तो सभी लोग भ्रम कर सकते है । यह तो एक सामान्य बात है, अनन्तानुबन्धीके स्वरूपकी बात है । धर्मके प्रसँगमे मायाचार हो तो वह अनन्तानुबन्धी माया है । वैसे माया गृहस्थीमे कुछ न कुछ हर समय आती रहती है । जैसे किसीने कहा सेठजी मुझे आपसे १०००) उधार चाहिए तो आप कह देते है कि मेरे पास रूपये तो नही है । अभी घरे होगे बीसो हजार मगर कहते है कि मेरेपास रूपये नही है, तो यह भी तो मायाचार है, मगर धर्मके प्रसगमे अगर कोई मायाचारी करे तो वह अनन्तानुबन्धी माया है ? जैसे मन्दिरमे जब आये तो उस समय कोई न था । अकेले आये

थे। वहा स्तुति पढ रहे हैं तो बडी जल्दी जल्दी पढ़ रहे हैं। मगर कोई अच्छे लोग दर्शन करने आ गए तो वहा वह पुरुष बडा सुरीला राग बनाकर स्तुति करने लगा। तो यह धर्म के प्रसगमे मायाचार, हैं ना, ऐसी अनेक बाते हैं। लेन देनके प्रसगमे, व्यवस्थाके प्रसगमे और बातोमे धर्मके प्रसगमे क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो यह बहुत बुरी चीज होती है। तो ये विषय कषाय आत्माका अहित करने वाली चीजें है। विषय कषायोसे छुटकारा मिले यह बात देखिये, यह प्रतीक्षा कीजिए। इससे ही भलाईका रास्ता मिलेगा।

आत्मज्ञान बिना विषयकषायके परिहारकी अशक्यता—विषयकषाय छोडनेके प्रसगमे एक बात और समझलो। विषय कषाय छोडनेका कितना ही उद्यम करो, जब तक आत्मज्ञान नही है आत्माके एक शुद्ध निरपेक्ष सहज स्वरूपका परिचय नही है, जो अनुमानसे जो एक युक्तिसे हो गया, जो एक विचारसे हो गया। जब तक अपने आपके बारे मे यह निर्णय न हो कि मैं सब पदार्थोंसे निराला, देहसे भी निराला, कर्मोंसे भी निराला, विकारसे भी निराला मैं एक ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ, जब तक इस स्वरूपमे अपने आत्माकी प्रतीति न करेंगे तब तक अनेक उद्यम करने पर भी कषाय छोडनेमे सफल न हो सकेंगे। और, अगर एक मूल मन्त्र मिल गया, अपने आत्म-प्रतीतिकी बात आ गई तो सब आसान हो जायगा। इसलिए विषय कषायोसे दिमाग बदलकर अब इस आत्मविज्ञानके प्रसगमे अपना उद्यम करना चाहिए। आत्मज्ञान होना और सर्व वस्तुओके बारेमे सम्यक्बोध होना एक साथ है। मिथ्या ज्ञानमे क्यो उलझन होती है? यो कि पदार्थ तो है और भाँति और यह जीव समझ बनाता है और भाँति, इस समझका और पदार्थका मेल नही बैठता, अतएव इसे धक्का पहुचता है और विकल्प होता है, जहा सत्य ज्ञान है वहा पदार्थकी कुछ भी स्थिति बने, पर वहाँ सत्य ज्ञान होनेपर इसको अब अनहोना पन सा नही लगता कि अनहोना हो गई। जैसे वस्तु तो नित्य है द्रव्य दृष्टिसे और अनित्य है पर्यायदृष्टिसे, पर यह पर्यायको ही सर्वस्व मानता हुआ वस्तुको नित्य समझ रहा है। यह चीज मेरे पास सदा रहेगी और रहता सो है नही, तब यह दुःख मानता है। यदि सत्य बोध हो जाता कि जितना समागम मिला है यह विनाशीक चीज है, मेरे पास न रहेगा, तो जब न रहेगा धन उस समय यह भी समझ लेंगे कि लो मैं जो जानता था सो हो गया ना? कष्ट न मानेगा। कुटुम्ब परिवार और और लोग मित्रजन, ये सब स्वतंत्र पदार्थ हैं, इनके साथ मेरा रच मात्र सम्बन्ध नही, ऐसा जब बोध होवे तो इसकी परिणति किसी रूप चले, उससे यह खेद नही मानता, और जहा भ्रम बन गया कि लडका मेरा ही तो है, परिवार मेरा ही तो है, इसपर मेरा ही तो अधिकार है, मैं जैसा कहूँ, वैसा इसे चलना चाहिए, यह ही एक कानून है। जब

ऐसा भ्रम बना लिया और चूंकि पदार्थ है स्वतंत्र, जैसा उनका परिणमन, जैसी उनकी कल्पना, जो उनकी चेष्ठा सो होग । तब यह दुःखी होता है। तो अनेक घटनाओसे आप यह निर्णय करले कि पदार्थका सच्चा बोध हुए बिना शान्तिका मार्ग मिल ही नही सकता ।

स्याद्वादसे वस्तुपरिचय करके परमविश्राममे एक स्वभिवक्त अन्तस्तत्त्वको अनुभवने का स्मरण—पदार्थका सच्चा बोध कैसे हो ? तो भाई आप लोगोका बहुत ऊंचा भाग्य है। बडा सौभाग्य है कि वस्तुस्वरूपकी पहिचानका सच्चा उपाय बताने वाला शासन आपने पाया है। वहउपाय है अनेकान्त, स्याद्वाद। वस्तुसदा रहतो है और बनती मिटती रहती है। द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे पदार्थका सही निर्णय बनता है। कोई भी जीव मेरा नही है, क्योकि उनका परिणमन उनके आधीन है, उनका उनमे है। और, सभी जीव स्वरूपदृष्टिसे एक समान है, एक है। अनेक दृष्टियोसे वस्तुके बारेमे यथार्थ बोध होता है और नय दृष्टि को कोई अपनाये तो जितना भी अन्य शासनोने बात कही है वह भी इसके चित्तमे सत्य उतर जायगी। कभी एक नयसे बात बन गई ? कभी दो तीन नय मिलकर बात बनती है, पर जिसने जो कुछ कहा है अन्य शासनोने तो आखिर कुछ बुद्धि तो उन्होने लगाया। कुछ समझसे ही तो उन्होने कहा। बिल्कुल असत्य तो नही कहा जा सकता। दृष्टि परखो, किस दृष्टिसे कौन क्या कहता है, पर एक दृष्टिसे ही कथन वस्तुका पूरा नही बनता तो और भी दृष्टि उनके साथ अपनाना चाहिये था, और उनका वर्णन करना चाहिए था। वह समग्र वर्णन आपको इस आर्हत शासनमे मिल रहा है। एक शब्द रखो उसका वाच्य खोजो। वाच्य कहते है क्या कि उस शब्दके द्वारा क्या कहा गया ? क्या चीज बतायी गई ? उसे कहते हैं वाच्य। बतलाओ शब्द द्वारा वाच्य क्या होगा ? जैसे गौ कहा—तो गौ मायने गाय, सब जानते है। गौ कहा तो बताओ गौ शब्दका वाच्य क्या होता है ? याने गौ शब्दसे क्या चीज कही गई ? इस समय आप सोच रहे होंगे कि बहुत मामूली सी बात बता रहे हो कि गौ शब्दसे यहा गाय ही तो कहा गया लेकिन इसमे भी दार्शनिकोके सिद्धान्तमे भेद है। क्षणिकवाद सिद्धान्त कहता है कि गौ शब्द गायको नही कहता किन्तु अगोनिवृत्ति याने जो गाय नही है उसकी निवृत्तिको कहता है गौ शब्द। तब वेदान्त कहता है कि शब्दका वाच्य विधि है, एक ब्रह्म है। दूसरा कुछ है नही, निषेधका कुछ काम ही नही। शब्दका विधि वाच्य होता है। तो देखो शब्दका वाच्य निषेध है, ऐसा कहनेवाला भी दार्शनिक है और शब्दका वाच्य विधि है ऐसा कहने वाला भी दार्शनिक है। क्या अर्थ निकला ? गौ शब्दसे कहा गया—अगोनिवृत्ति। मायने जो गाय नही है ऐसे बाकी सारे कुछ नही है,

इतनी बात भर गौ शब्दने बताया। गाय को नही बताया। गौ शब्द के विषयमे जब दूसरा दार्शनिक कहताहै कि निषेध करनेका कोई अवकाश ही नही, गौ शब्दसे ठीक यहहो बताया गया। स्याद्वाद कहता है कि तुम दानो सत्य कहते हो। गौ शब्दने दोनोको कहा है। गौके मायने क्या ? गाय के सिवाय अन्य कुछ नही। गौ के मायने क्या ? यह गाय। दोनो ही वाते आयी विधि भीऔर निषेध भी। तो जहा शब्द सेही प्रारम्भहै - दोधर्म, फिर बतलाओ अनेकान्त बिना किसीका गुजारा चला क्या ? खाना पीना व्यापार व्यवहार बोलचाल, सत्य प्रमाण सिद्ध करना, युक्ति, सही बात स्याद्वादके बिना नही बनती। सब लोग स्याद्वादका उपयोग कर रहे हैं, मगर उसकी कृतज्ञता चित्तमे नही है। किसोको हजार रूपया उधार दिया, व्याजपर, साल भरके बाद उससे हिसाब करना है, ब्याज भी लगाता है, रूपये भी लेता है, तो यह बात कब बन पाती है, जब चित्तमे यह बात है कि रूपये इसको ही दिए गए थे। और, चित्तमे यह बात बनी कि रूपये दिए हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, अब एक क्षणका यह हिसाब है, आर यह पुरुप भी वही एक वर्ष व्यतीत हो गया, अब एक वर्ष बाद भी यह पयाय वाला है, ऐसा कुछ उसके चित्तमे है, तब ही तो वह हिसाब बन सकता। अगर पुरुप नित्य हा हो तो हिसाब कैसा और अगर पुरूष अनित्य ही हो जाय तो हिसाब कैसा ?

व्यावहारिक घटनाओंकी भी स्याद्वादपोषवता—बताते है एक घटनामे कि एक कोई क्षणिकवादो सेठ था, एक ग्वाला उसकी गाय चराता था। तो जब एक महीना पूरा हो गया तो ग्वालाने सेठसे अपनी चराई मागा। जो भी २, ४ अथवा ५) महीना बाँधा ही वह मांगा। तो वह सेठ कहत है कि जिसको मैंने गाय चरानेको दी थी वह तो अब है ही नही। तुम तो दूसरे जीव हो, तुमको चराई कैसे मिलेगी ? उनका कुछ सिद्धान्त ही ऐसा है कि आत्मा क्षण–क्षणमे नया-नया उत्पन्न होता है। तो जिसे मैंने गाय चरानेको दिया था वह तो उसी क्षण मर गया था, तुम तो नये आत्मा आये हो, कैसे तुमको चराई दी जायगी ? तो वह ग्वाला बेचारा हृदय मसोसकर रह गया। सोचा कि हमने तो महीनाभर इसकी गाय चराया और यह कहता कि चराई न देगे तो दूसरे दिन उस ग्वालेने क्या किया कि उस गायको अपने घर बाध लिया। अब सेठको फिकर थी, ग्वालेके घर जाकर बोला तुमने आज हमारी गाय हमारे घर क्यो नही भेजा ? 'अरे सेठजी, किसकी गाय ? किसने दी ? जिसकी गाय थो वह तो अब रहा नही, जिसने गाय दी थी वह तो उसी क्षण मिट गया था, तुम तो दूसरे आत्मा हो, तुम्हे गाय कैसे दी जायगी। वहा सेठने ग्वालेसे माफी मांगा, अपनी गल्ती समझा, ग्वालेको चराई दिया तब गाय पाया। तो व्यापार रोजगार

खान पान आदिका कुछभी व्यवहार स्याद्वादके बिना नही चलता। तो जहा शब्दका अर्थ ही बधि और निषेध दोनो है वहां समझें कि अनेकान्त स्याद्वाद तो प्रत्येक वाक्यमे, मूल मूलमे पडा हुआ है। तब ही तो देखिये—जैसे किस चीजकी सिद्धिकी जाय, मानो एक घडीको हा लक्ष्यमे लेकर कहा जाय, यह है और भी सिद्ध हो जाय कि यह नही है। इस घडीके बारेमें सामने रखकर बोल रहे कि यह है, यह बात सही है कि नही ? है, यह है ही है, और यह नही है यह बात भी सही है कि नही ? यह भी सही है। क्योकि यह चौकी नही है, यह पुरुष नही है, यह चूल्हा चक्की नही है। यह सही है कि नही ? अगर यह घडी चूल्हा चक्की आदि हो जाय तो तुम समय कहासे देख सकोगे ? तो यह है, यह अपने स्वरूप से है, इसको छोडकर अन्य पदार्थके स्वरूपसे नही है। जीव है, जीव नही है, जीव अपने स्वरूपसे है और जीव पर पदार्थके स्वरूपसे नही है, जीव नित्य है, जीव नित्य नही है, ये दोनो बाते सही है ना ? द्रव्य दृष्टिसे जीव नित्य है, पर्याय दृष्टिसे जीव नित्य नही है। वस्तुमे परस्पर अनेक विरुद्ध धर्मो की सिद्धि स्याद्वादसे होती है। विरुद्ध धर्म क्यो कहलाते कि जिस धर्मको प्रतिपादित किया पहले वह, नही है दूसरा, इसलिए विरुद्ध धर्म है। जैसे एक आत्मामे ज्ञान दर्शन, चारित्र आदिक अनेक धर्म कहते। तो वे रहते है, उनका विरोध नही है। मगर ज्ञानका जो स्वरूप है सो दर्शनका नही, चारित्रका नही। तो एक गुणके सामने यह भी दूसरा धर्म विरुद्ध कहलाता है, ऐसे ही अस्तित्त्व नास्तित्त्व आदिक सभी की बात समझना है। तो स्याद्वादसे वस्तुस्वरूपका परिचय होता और इसीको प्रमाण कहते। प्रमाणके द्वारा हमे वस्तुका सही ज्ञान होता। जब तक सही ज्ञान नही होता, तब तक शाति उपाय न मिलेगा।

सत्य ज्ञानप्रकाश बिना आत्मरक्षाकी असंभवता—भ्रमसे ये जीव बरबाद हो रहे है। जन्म मरणके सकट सहे चले जा रहे है, अपने आपका घात किए जा रहे है। आत्मपंसन ! कहकर अमृतचन्द्र सूरि महाराजने इन मोहियोको कहा—ऐ आत्माको घात करने वाले पुरुष ऐ अपने आपकी हत्या करनेवाले पुरुष, इन हत्यारी इन्द्रियोके वश होकर तुम क्यो अपना विनाश कर रहे हो ? किसीसे अगर द्वेष हो जाय तो यह ही तो गाली देते हैं हत्यारी, पापिनी, या मरी आदि अनेक विशेषण सो यही इन इन्द्रियोंके लिए है। जैसे कहते ना लोग गालीमे है कि नासकी मिटी, हत्यारी। तो इन इन्द्रियोकी हत्यारी समझे, नास की मिटी समझे अपने आपका अनुभव करनेके लिए घातक समझे। सूरदासकी कथा सुनायी थी एक पुरुषने कि सूरदास सन्यासी हो गए थे, तो भिक्षा मागते मांगते एक घर पहुचे तो उसी मकान की स्त्री सामने आयी, तो सूरदास कहते है कि भिक्षा दो, तो स्त्री कहती है—

क्या चाहिए ? तो वह सूरदास कहता है कि हमको तो तुम चाहिए। याने खोटी भावना प्रदर्शित की। तो उस स्त्रीने कहा—कुछ हर्ज नही, मै अपने पतिसे पूछ आऊँ, पतिसे पूछने गई, कहा कि एक अतिथि आया है और वह हमे चाहता है तो पति कहता है कि जावो अगर अतिथि आया है, तुम्हे चाहता है तो तुम्हे सौंपा जावो, वह स्त्री आयी सूरदासके पास और कहा—हम सामने हाजिर है, लीजिए। तो सूरदास कहते है कि तुमने पहले ऐसी बात क्यो नही कहा ? तो स्त्रीने कहा—देखो हमारा पतिव्रत धर्म है, पतिकी आज्ञा लेना बहुत आवश्यक है। अब पतिने कह दिया। इतनी बात सुनकर सूरदासको वैराग्य हुआ। सूरदास ने पूछा—अच्छा जो हम मागेंगे सो दोगी ? हाँ देगे। 'अच्छा जावो कहीसे दो सुजा ले आवो। कहाँ तो क्या चाहता था और कहा क्या मागता है कि मुझे दो सूजा लावो। वह स्त्री दो सूजा लाई और दोनो सूजोसे सूरदासने अपनी दोनो आखे फोड़ ली। तबसे वह सूरदास कहलाये। तो इस आत्माके बडे विचित्र परिणाम होते है। यद्यपि हम यह प्रशसाकी बात न कहेगे कि आखे फोड ली, पर कुछ अशोमे प्रशँसा की भी बात तो हुई। तो वह ज्ञान जगना, ज्ञान प्रकाश होना, वैराग्य होना, वास्तविक मायनेमे परमार्थ ढग से उसीके सम्भव हो सकती है कि जिसको सत्य ज्ञानका प्रकाश हुआ है। और वह सत्य ज्ञानका प्रकाश होता है नय और प्रमाणके द्वारा। देखो ज्ञान प्रकाश करे।

निज ध्रुवभावमे आत्मत्व प्रतीतिमे आनन्दलाभ—भैया ! अपने आपकी ओर आवो और जानो, बतलावो जो मकान खडा है बाहर यह आपके आत्माका कुछ लगता है क्या ? आपका आत्मा आपके पास है, मकान मकानकी जगह खडा है, न आप साथ लाये न साथ ले जायेंगे। धन वैभव जो जमा कर रखा है वह कुछ आपका है क्या ? आत्मा पर दृष्टि देकर बोलो, नही है। जो कुटुम्ब परिवारके लोग हैं वे जीव आपके है" अरे आ गए, ये न आते, कोई दूसरे आते तो क्या ऐसा हो न सकता था ? मोहीको तो मोह करनेकी आदत है, जो जीव आपके घर आ गया उसीको अपना मान लेते। कोई जानकर थोडे ही मानता कि इस जीवको माने कि यह मेरा है। इसको मोहकी आदत पडी है। जो जीव घरमे आते है उसीको मान बैठते हैं कि यह मेरा है। है कुछ नही इसका। यह देह जिसमे इतनी प्रीति बनी हुई है यह क्या आपका है ? आत्मा ज्ञानमात्र है, यह देहको छोडकर चला जाने वाला है। इसका यह देह नही है। इसके साथ कर्म लगे रहते। क्या कर्म इसके हैं ? अरे कर्म जड है, अचेतन हैं, बाह्य वस्तु है, भले ही बन्धन है। स्वरूप निराला है, कर्म मेरे नही। और, ये कर्म जब बन्धे थे उसी समय इन कर्म वर्गणाओमे अनुभाग पड गया था, और स्थिति पूरी होते ही अनुभाग खिल जाय, ऐसा वहां निर्णय था। जो जब यह कर्मका उदय

होता है अथवा उदरीणा हो जाय तो अनुभाग खिला और उस कालमे चूंकि आत्माके एक क्षेत्रावगाह बन्धनमे है वह सब उस अन्धेरेका यह झलक हुआ और ऐसी चोट पहुँची उसी समय उस झलकके साथ हो यह अपने स्वभावसे च्युत हुआ और अपने आपके इस झलकमे उपयोग गया। और, फिर यह इसे अपना मानने लगा। माननेका मोह जीवमे है, पर कर्म का विपाक कर्ममे है, कर्मका काम कर्ममे होने दो, अपना निरपेक्ष काम अपनेमे होने दो। ऐसा साहस अज्ञानीके नही बन पाता। कर्म विपाक भी मेरा नही है और कर्मविपाककी जो झलक है या उसकी ओर उडान है, जुडान है, लगता है, इस प्रकारका जो परिणाम है क्या वह मेरा है ? मै तो एक अनादि अनन्त अचल ध्रुव ज्ञायकस्वरूप हूँ। स्वरूपकी दृष्टिकी जा रही है। जो मिट जायगा वह मैं नही। इतनी बात तो हर एकको ही समझना चाहिए। जो मिट जाय ऐसा मैंनही बनना चाहता। एकखोमचा फेरकर गुजारा करनेवाले पुरुषकोकोई कहे कि हमतुमको दोदिनके लिये लखपतिबनाये देतेहै और दो दिन बाद आपके खोमचाकी थाली वगैरह भी छूडा ली जायगीऔरआपको यहासेभगा दिया जायगा तो वहकहता है कि मै ऐसालख-पतीनहीबननाचाहता। मैंतो वहरहना चाहता हूँ जोसदारह सकता हो। वहअपनी बुद्धिकेमाफिक ऐसा सोचता है ना ? तो हर एक जीव ऐसा अपने आपमें समझना चाहता है कि मैं तो वह हूँ जो सदा रह सकता हूँ। जो मिट जाय ऐसा मैं नही बनना चाहता। तो इसी पद्धतिसे अपने आपमे अपना स्वरूप देखे। ये रागादिक विकार मेरे नही है। ये औपाधिक है, नैमि-त्तिक है, क्षणिक है, मैं स्वय हूँ और ध्रुव हूँ। अपने आपके निरपेक्ष स्वरूपकी ओर उन्मुख होगे।

अपनेमें अपनी गवेषणासे बाह्य उपद्रवका विनाश—अच्छा. जगतके ये सारे पदार्थ मेरे ज्ञानमे प्रतिविम्बित हो रहे हैं। इन सबकी जानकारी बन रही है, जानकारी बिना तो मै कही रह नही पाता। कुछ न कुछ तो जानकारी रहेगी ही मुझमे आपमे, सभीमे जिसकी जितनी योग्यता है, जिसका जितना उपादान है, जानकारी सबके चलती है। तो ऐसा जो प्रतिभास है पदार्थकी जो झलक है, जो जानकारी है यह भी हुई और मिटी। यह तो हम आप निरन्तर जानते ही रहते है—सुबह जो जान रहे थे वह अब नहीं है। तो ऐसी जो जानकारी है, ऐसी जो झलक है, ऐसा जो प्रतिभास है, जिसके बिना ज्ञान रह नही पाता। न रह पाये ज्ञान, कुछ न कुछ प्रतिभास कर रहा, फिर भी जो प्रतिभास है जो अक्स पड़ा है, जो प्रतिबिम्ब हुआ है, जो जानकारी हुई है वह मेरा स्वरूप है क्या ? मै तो उससे भी निराला केवल ज्ञानाकार मात्र हूँ, जैसे आप समझलो, दर्पणके आगे कोई चीज रखी, मान लो एक कबूतर खडा है तो कबूतरमें तो कबूतर है, कबूतरसे बाहर कबूतर नही गया, पर

उस कबूतरका सन्निधान पाकर दर्पणमे जो कबूतरका प्रतिबिम्ब है वह तो कबूतरको चीज नहीं। कबूतरका निमित्त पाकर हुआ मगर प्रतिबिम्ब तो दर्पणका है। प्रतिबिम्ब तो दर्पण की चीज है, कबूतरकी चीज नही। तो ऐसे ही प्रतिबिम्ब भी जो दर्पणका उस कालमे परिणमन है वही प्रतिबिम्ब क्या दर्पणका स्वरूप है ? नही। प्रतिबिम्बसे निराला है। दर्पणका स्वरूप क्या ? स्वच्छतामात्र। यह बात झट समझमे आ जाती है क्योकि थोडीदेरमे देखते है कि प्रतिबिम्ब न रहे, समझ गए कि वह दर्पणका स्वरूप न था। दर्पणका स्वरूप तो दर्पण की निजी स्वच्छता है। इसी प्रकार मुझ आत्माका स्वरूप स्वच्छ ज्ञानाकार। मुझ आत्मा की सहज स्वच्छतासे ज्ञान प्रकाश एक ऐसा उपादान है, एक ऐसा स्वरूप है कि जो ऐसी स्वच्छताको लिए हुए है कि जिस पर प्रतिबिम्ब पड सकता। प्रतिबिम्ब मैं नही, किन्तु जिस पर प्रतिबिम्ब पड सकता है, जिसमे प्रतिबिम्ब पडनेकी योग्यता है, ऐसा जो एक ज्ञानस्वभाव है वह मैं हूँ। देखिये कहा मैं मैं चिल्ला रहे हैं लोग ? यह मैं हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं अमुक हूँ, तमुक हूँ। मैं बलवान हूँ, सुखी हूँ, दुखी हूँ, राजा हूँ, रक हूँ। व्यापारी हूँ, सर्विस वाला हूँ, अमुकका पिता हू। अरे जब अपने आपको खोजा तो यहा कुछ न रहा। भला जो कुछ मेरेमे प्रतिभास हो रहा, जानकारी हो रही, ऐसा पुरुष पर्याय वह भी मैं न रहा, किन्तु मैं तो एक ध्रुव ज्ञान स्वभाव मात्र हू, यह समझमे आया। ऐसा भीतरमे प्रकाशमान जो यह आत्मतत्त्व है इसका ज्ञान किए विना यह जीव ससारमे परिभ्रमण कर रहा है।

देहाध्यासका फल संसरण—देहात्मबुद्धि वश यह जीव कैंसीकैंसी योनियोको भोगता, कैसे कैसे जीव दिख रहे है, कीडे मकोडे वगैरह सब ये क्या हैं ? और हमारी भी तो कभी ऐसी ही हालत थी। और न चेते तो फिर वही हाल होगा कि कीडा मकोडा जैसी पर्यायें धारण करनी पडेगी। तो तुम्हे ऐसा कीडा मकोडा बनते रहना मन्जूर हैं क्या ? या हमारा जन्म मरण छूट जाय और केवल मै ज्ञानमात्र रहूं, परमात्मस्वरूप होऊ, अनन्त आनन्दमय रहूँ, यह मजूर है ? इसका उत्तर देनेमे कुछ कठिनाई क्यो महसूस कर रहे ? जैसे कहते हैं कि ऐमा बोलने लायक मुख कहा है ? जब हमारी करनी विपरीत चल रही है, प्रतिकूल चल रही है तो एक ठसकके साथ मै कैसे कहूँ कि मुझे तो केवल ज्ञान स्वरूप रहना है और कीडा मकोडाकी जैसी पर्यायोमे जन्म मरण मुझे नही करना है। अगर जन्म मरण नही करना है तो उसका उपाय देखिये—जन्ममे होता क्ता ? देह मिलता। जन्म न चाहिए, अगर जन्म न चाहिए तो मुझे देह न चाहिए यह बात पहले सामने रखें। आपको देह चाहिए और यह सोचो कि जन्म मरण न चाहिए तो यह बात कैसे हो सकती ? आपको देहमे आसक्ति है, देहमे रुचि है, देहसे प्रीति है तो उसका फल है कि जन्म उसके होते

रहेंगे। जब कि आखिर हम ईश्वर है। अगर हम देह चाहे तो हमे हर भव मे मिलते रहेगे। जैसे कोई बडा बर्तन होता है और बडे बर्तन मे खिचडी पकाया, सबको खिला दिया और सब भी नही बची, इतने पर भी एक आदमी अगर आ जाय तो उसके लायक खूदेर खूदेर भर खिचडी तो निकल ही आयगी। जैसे कहते है ना कि बडे बर्तन का तो झरावन बहुत होता है। तो हम आप सब जो एक ईश्वर स्वरुप है, अनन्त निधि है, अनन्त शक्ति है तो उस शक्ति का अगर इतनीखुडवन मिलतो रहे कि देह चाहे तो देह मिलती रहे तो यह भी तो हमारा एश्वर्य है, लेकिन इस एश्वर्य से लाभ नही है। जन्म मरण सब संकटो की जड है अगर जन्म मरण न चाहिए तो इस देह मे प्रीति छोडे। यह देह मैं नही हूँ। ऐसा भाव बनाये तो जन्म मरण मिटेगा। यह देह मै हु भाव रहेगातो जन्म मरण बराबर चलेगा। ठीक समझ करके एक दृष्टि मे यह बात समा जाना चाहिए कि मैकेवल ज्ञानस्वच्छता मात्र हू अन्य कुछ मै नही। सारे सकट मोह से हो रहे है।

अन्तरमें उलझनको समझने वालेमें सुलझनेकी शक्यता—देखो भाई कोई मोह पर वस्तु मे नही कर सकता। यह अगुली अगर कुछ टेढा मेढी हो गई, कही अंगूठा तो नही टेढा हो गया। जो जैसा है उसका उसमे ही काम बनेगा, उससे बाहर न बनेगा। तो मैं आत्मा हू, तो मेरा जो कुछ भी काम बनेगा—मोह करे तो, ज्ञान करे तो शान्ति करें तो, दुखी हो तो, सुखी हो तो, जो कुछ भी मेरेमे बात होगी वह मेरे प्रदेशसे बाहर नही हो सकती। तो कोई भी पुरुष कोई भी जीव पुत्रमे, मित्रमे, स्त्रीमे, घरमे, धनमे किसीमे मोह करनेमे समर्थ है ही नही। हो ही नही सकता। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। तो लोग कहते क्यो है ऐसा ? कहते यो हैं कि पुत्र, मित्र, धन धान्य आदिकको विषय बनाकर, उसकी जानकारी बना करके यहा जो कुछ हमने समझा है उसमे हम मोहका परिणाम बनाते है। यहाँ बनाया मोहका परिणाम ? पुत्रमे कोई मोह नही कर सकता। यहा बनाता है यह जीव प्रेम। बाहरमे कोई प्रेम नही करता। तो बाहरमे हम कुछ कर सकते है नही और बात हुई समझमे कि हम बाहरमे कुछ नही कर पाते तभी एक मार्ग मिल गया। हम अपनेमे करते है हम अपने घरमे अपनी उलझन बनाते है तो इसी घरमे बैठे-बैठे हम उलझन भी बना सकते है। अगर हमने विकल्पकी उलझन बना रखी है तो हम सुलझनभी बना सकते हैं। यह काम करनेको पडा है, इस जीवनमे, बाकी सब बेकार काम है। परिस्थिति वश करना पडता है, ऐसा ज्ञानमे रखे। इन बाहरी पदार्थोको महत्व मत दीजिए कि मेरा जीवन ऐसे काम बना देनेके लिये है मेरा जीवन इसकी बात उठा देनेके लिए है। इन बाह्य वस्तुओके लिए महत्व मत दे, महत्त्व दे इसको कि मेरा जीवन इसलिए है कि मैं आत्माके स्वरूपको पहचानू और उस ही स्वरूपको देख देखकर उसमे ही मग्न रहूँ, इसी

मे तृप्त रहूँ, इसीमे सतुष्ट रहूँ इसके लिए यह मेरा मनुष्य जीवन है। अरे जहा अनन्त भव बिता डाला, विषयोमे, कषायोमे, मोहमे, एक भवको अगर इन विषय कषायोमे न बितायें तो क्या कोई टोटा पडता है ? एक यह भव ज्ञान ध्यानमे बिता डाले। एक इस ही भवमे मोह न कीजिए तो आनन्द मिल जायगा। मार्ग मिल जायगा। और, एक आत्मतत्त्वके निरखनेकी एक अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हो जायगी। इससे भाई अगर आनन्द चाहिते हो तो उसका उपाय है सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानका उपाय बताता है-यह स्याद्वाद शासन अनेकान्त-वाद इस स्याद्वादशासनको ठीक समझिये और वस्तुके स्वरूपका ठीक परिचय प्राप्त कीजिए और अपने आपके जीवन को सफल कीजिये।

स्याद्वादसे सकल पक्षोका निर्णय कर निष्पक्ष ज्ञानस्वरूप रहनेमें कल्याण—आत्मा की भलाई सम्यग्ज्ञानमे है। जब तक मिथ्याज्ञान होगा तब तक जीव अशान्त रहेगा, कर्म-बन्धन होगा और विपाक समयमे यह दुखी रहेगा। जन्म मरण होते रहेगे। जहा मिथ्या-ज्ञान दूर हुआ वहा जीवको सम्यकबोध होता है। तो सम्यग्ज्ञान क्या है ? सम्यग्ज्ञान है प्रमाण। सभी नयोमे सब कुछ परखिये-और यथावत् वस्तुका ज्ञान करना सो प्रमाण है। सम्यक बोध प्रमाणसे भी होता, नयसे भी होता, किन्तु प्रमाण आवश्यक है। प्रमाणसे जाने गए पदार्थमे फिर किसी भी नयसे ज्ञान करे, उसमे हानि नही, किन्तु कोई प्रमाणको तो मानते हो न हो, और किसी नयका एकान्त हो तो उसे मिथ्याज्ञान कहते है। प्रमाणसे परखो सब बातोका हल निकलेगा, फिर प्रयोजनवश किसी भी नयको मुख्य करके समझे, यह तो है एक सम्यक्बोधकी पद्धति, किन्तु प्रमाणसे स्वीकार किए बिना प्रमाणके विषयको माने बिना केवल नयका एकान्तवाद हो तो उसे मिथ्या कहते है। और, वह स्याद्वादसे दूर है। जैसे प्रत्येक पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है। केवल द्रव्यरूप नही, केवल पर्यायरूप नही, केवल द्रव्यरूप मानने वाले हैं वेदान्ती केवल पर्यायरूप मानने वाले है बौद्ध। जीवके बारेमे देखो-एक है कि अनेक? स्वरुप तो एकहै और व्यक्ति अनेक है। स्वरुपत एकहै। ऐसी बात सुनकर एकान्त मानने वाले हो गए अद्वैत एक वादी, सामान्याद्वैतवादी और अनेक हैंऐसा ही सुनकर अनेकता मे बह गए 'ऐसे है क्षणिक वादी। जो एक आत्मामे भी अनेकपन का परिचय करते है। किसी भी बात को लोग स्याद्वाद से मरम्मत करले। कोई सा भी प्रश्न रखे सामने नयसे उसकी परख बनावे, जैसे बतलाओ कि जब जो होना है तब वहाँ वही होता है, उसमे कोई फेर फार नही होता है और उस पदार्थ की योग्यता से वह होता चला जाता हैं। यह बात सही है यामिथ्या? सही है किस नयसे? ज्ञाप्तिनयसे ज्ञाप्ति नयका मतलब है प्रभु ने सर्वज्ञ ने जाना, विशिष्ट ज्ञानियोने जाना, जब जो होगा प्रर्याय वह ज्ञानमे आ गया। ज्ञान तो निरपराध

है जो होगा सत् वह ज्ञानमे झलक गया। इस दृष्टि से देखें तो जब जो होना है तब वही होता है। और उसमे फेर फार नही। माने जिस प्रकार जो होना है, जो भी हो वह ज्ञान मे आया है तो जो ज्ञान मे आया है सो अब इस ओर से हम परखे तो अब ज्ञप्तिनय से तो यह विधान है और उत्पत्ति नय से क्या विधान है उत्पत्तिनय का यह विधान है कि प्रत्येक पदार्थ जब भी देखा तब एक परिणमन युक्त है, उसमे है एक वर्तमान पर्याय। और, वह द्रव्य पूरा वर्तमान पर्याय मे है उस काल मे। अब वह पदार्थ यदि अशुद्ध उपादान वाला है तो वह जैसा सानिध्य पायगा, परसग पायगा उसके अनुरूप वह अपने आप मे विकार परिणमन करने लगेगा। है विकार परिणमन उसी का उसी मे परिणमन मगर यह विकार परिणमन यदि परसग बिना हो तो वह स्वभाव बन जायगा।

दृष्टान्तपूर्वक निमित्तनैमित्तकभाव होनेपर भी वस्तुस्वातन्त्र्यका दर्शन—एक मोटा दृष्टान्त लो, रेलगाडी जाती. इजन जाता, इजनका काम तो केवल जाना जाना है। उसका काम मुडना नही है। किस पटरी पर जाय, किस पर न जाय, और न ऐसा कोई इजनमे पुर्जा है कि इजन अपने आप उस पुर्जेको मोडकर पटरी बदल दे। इस तरफ नही जाना, इस तरफ जाना। इजनका काम तो केवल जाना ही जाना है। इजनकी ओरसे तो केवल जाना जाना ही काम है और वह अपने काममे स्वतत्र है। अब पैट मैन जिस दिशामे इंजन को ले जाना चाहता है वह पटरी बदलता है। इजन चल रहा है। उसका काम केवल जाना है। पटरी बदलना उसका काम नही, केवल पटरी बदलनेका निमित्त पाकर इजन अब इस ओर चला है, तो इजनकी ओरसे देखे तो गमनमे स्वतत्र है। पटरी गमन नही कराता। पटरीने उसका गमन नही कराया। यह एक दृष्टान्त है। जितने अंशमे दिया गया सो समझना, पर पटरीके बदलनेका सन्निधान पाकर जिस जिस तरह पटरो है उस तरहसे इँजन चल गया। इसमे इजनको परतन्त्रता नही आयी, पर इस प्रकारका जो जुडाव है वह प्रसग बिना नही होता। इसीप्रकार द्रव्यका अपना एक व्रत है परिणमन, परिणमन एक समय भी रुकता नही। प्रति समय परिणमन होता है। उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त सत् परिणमनका व्रत लिए हुए है पदार्थ। चलता रहता है। अब जो पदार्थ शुद्ध है, जैसे जिस इजनको सीधा ही जाना है, बदलनेका काम ही नही, उसको कहा बदलदा। जैसे जो सीधी पर्याय है, स्वभावभाव है, विकास है, शुद्ध पदार्थ है वह अपने स्वभावके अनुरूप परिणमता चला जायगा। वहा विषमताका काम नही, किन्तु जो अशुद्ध उपादान है जो अपनी विषमताये बनाता है। विभिन्न प्रकारके परिणमन विकार बनाता है तो वह विकार परिणमन अनुकूल निमित्तके सन्निधानमे होता है। प्रसग बिना, अनुकूल निमित्त सन्निधान बिना वह

विकार परिणाम नही होता । इतना होने पर भी कभी जीव पर रच नही हो गया परका परिणमन या जीवका परमे परिणमन, परिणमन, जीव तो अपनी परिणमन शक्तिसे परिणमता ही चला जा रहा । बस जैसा निमित्त योग हुआ उसमे उस अनुरूप अपना विकार परिणमन कर लिया ।

वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिकभावके परिचयसे स्वभाव दर्शनकी प्रेरणा—वस्तुस्वातत्र्य व निमित्तनैमित्तिकभावकी समर्थता निरखनेपर अपनेको क्या शिक्षा मिलती है कि अहो मेरा स्वरूप तो टकोत्कीर्ण वत् निश्चल ज्ञायकस्वभाव है । ज्ञानमात्र है । मेरे स्वरूपमे विकार नही । मेरे स्वरूपमे कष्ट नही । मेरे स्वरूपमे अधूरापन नही, जो है सो है, और यह अपने ही व्रतसे अपनेमे अपनी परिणति बनाये चला जा रहा है, किन्तु जो विरुद्ध परिणाम आया, विकार परिणाम आया सो वह उपाधि संग पाकर आया । जैसे सामने स्पष्ट है कि दर्पण है उस दर्पणमे जो लाल पीला प्रतिबिम्ब आया सो आया वह दर्पणमे, उस कालमे दर्पण उस रूप परिणमा है । किन्तु उसका वह परिणमन विलक्षण है । न परिणमा होकर भी परिणमा है । लाल पीले स्वरूपमे न बनकर भी लाल पीला दर्पण हो रहा है । तो जैसे बाहरी वस्तु प्रतिबिम्बित है दर्पणमे, दर्पण अचेतन है, वह उसको ग्रहण नही करता, अथवा जैसे दर्पणके पीछे लाल मसाला लगा है वह दर्पण प्रतिबिम्बको कैसे ग्रहण कर लेता है ? और, जिस काचमे लाल मसाल नही लगा है वह काच भी यद्यपि प्रतिबिम्ब तो करता है मगर उसका प्रतिबिम्ब इतना फीका होता है कि मानो उस पर प्रतिबिम्ब आया ही न हो । इसी प्रकार जीव भी विविध प्रकारके अशुद्ध होते हैं । कोई ऐसे अशुद्ध है कि ये कर्म विपाक को जो कि इसमे झलका है उसको दृढतासे पकडता है । कोई इतना ही अशुद्ध है कि कम विपाक झलका और उपयोगमात्र हुआ । उसे ग्रहण नही करता । कोई ऐसा अशुद्ध है कि जो उपयोग भी उस पर नही ले जाता, अबुद्धिपूर्वक उसका प्रतिबिम्ब है वह इसको उपयोग मे नही लेता । जैसे ऊची श्रेणीमे पहुचे हुए मुनिराज । तो इस तरह प्रमाण द्वारा हम पदार्थका स्वरूप ठीक निर्णीत करले । काम करना है क्या ? स्वभावदर्शनका । इतनी बात सदा चित्तमे रहना चाहिए, अगर मेरे आत्मानुभवमे बाधा आती है किसी प्रसगमे तो वह प्रसग हेय है । मेरे आतमहितमे बाधा, रागद्वेषका अवसर आता है तो वह धर्म चचा भी हमारे लिए त्याज्य है । क्या करना ? जिसमे अपना आत्महित होता हो । कषाय जगती हो उसमे हमको लाभ क्या ? आत्महित तो समता भावमे है । प्रभुके शासनका सही–सही निर्णय बनायें जिससे कि आत्मबोध हो और वहा हमको केवल अपने ज्ञानस्वभावको ग्रहण करनेकी धुन बने । यह मैं ज्ञानमात्र हूँ । अपनेको केवलज्ञान ज्ञानस्वभावरूपमे निरखते जावो,

अनु क्षण करते जावो तो कोई समय ऐसा एक अपूर्व आता है कि ज्ञानमे वह ज्ञानस्वरूप–मात्र ज्ञेय रहता है और उस समय इसको जो उसका सम्वेदन है वहा एक स्वाधीन आनन्द है। वह आनन्द एक समताका आनन्द है। ऐसे ही आनन्दमे सामर्थ्य है कि भव भवके बाधे हुए कर्म अपने आप खिर जाते है। कर्म विपाक तो महिमान है। इसको हम आदर दे तो वह हममे घर करने लगेगा, करता ही है, करते ही आये, हम उनका आदर न रखे तो वे महिमान कब तक घरमे टिक पायेगे ? वे तो अपने आप भागते चले जायेंगे।

ज्ञानस्वरूप आनन्दका पात्र होनेका अनुरोध—भावुक भाव्य की सरदताका परिहार करो। जो भाव्यकानिमत्त है उसे कहते हैभावक, औरभाव्यक्या होता है? आत्मामे जो उसप्रकारकी अनुवृत्ति हुई और एक झाँकी और उपयोग का उस ओर लगना शुद्ध स्वभाव से च्युत होना, ज्ञान का अज्ञान रूप से परिणमना यह सब है अन्य कोई ज्ञान करता है, केवल जानन हार मात्र रहता है तो वह कहलाता है ज्ञान का ज्ञान रूप से परिणमन। और, इसके विपरिन अगर कुछ भी यहाँ तरग विकल्प विचार कुछ भी चलता है तो यह कहलाता है ज्ञान का अज्ञान रूप से परिणमन। तो ज्ञान जब ज्ञान रूपसे परिणमे बस वही तो मोक्ष मार्ग है। अब ऐसा बनने के लिए हम अनादि दूषित आत्माओ को आचार्य संतो ने व्यवहार व्यवस्था बतायी है तुम त्याग करो, सयम करो कुछ अपने आपकी ओर ध्यान दो, चिन्तन करो, जाप सामायिक, स्वाध्याय, सब प्रकार के व्यवहार मार्ग बताये, किस लिए बताये, अरे उसमे उपयोग लगायेंगे वह तो अवसर मिलेगा कि इस आत्मा कीसुध बनेगी और ज्ञान ज्ञान रूप से परिणमन का काम कर सकेगा। इसके लिए व्यवहार मार्ग है, और साध्य तो वह निश्चय तत्व है भूतार्थ का आश्रय और प्रमाण से परखना प्रमाण से जो पदार्थ का अधिगम होता है उससे फिर हमको मार्ग मिलता है एकान्त वाद से इसका मार्ग नही मिलता, स्पष्ट ज्ञान भी नही होता। आत्मा के स्वभाव की बराबर धुन रहे, यह ज्ञान ससारार्थ बिना रहे, यह ज्ञान स्वय भी सुध लेता रहे। यह ज्ञान एक बहुत स्वाधीन सतोष पाया करे। इस प्रकार की पद्धति इसको अपनी कदम रखनी चाहिए। तो प्रमाण और नय दोनो के द्वारा वस्तु का अधिगम होता है' और ऐसा परिचय पाकर फिर करे क्या? धुन बने अपने आप मे रमने की। इसी को कहते है चारित्र। ऐसा पाने के लिए कोई विरूद्ध बर्ताव करे तो पा लेगा क्या? कोई हिंसा कर रहा, झूठ बोल रहा, चोरी कर रहा, कुशील सेवन कर रहा, लालच कर रहा तो क्या वह आत्मा मे मग्न हो सकेगा ? अरे जो आत्मा मेमग्न होने की वाञ्छा रखता है वह तो पाप को छोडकर आगे बढताहै पाप को छोडना इसीके मायनेहै व्रत। तो यह व्रत आत्मसाधक बना इसका सहयोगी बना। इसमे मेरे को अवसर दिया कि मैं अपने आत्मा की सुध करूँ।

आत्मतत्व मे मग्न होउ यह जब बीतती है खुद पर तब उसका परिचय सही होता है।

चरणानुयोगका विराधक होनेमे ज्ञानके जीवनकी शुष्कता—बाहर जितने हमको परमेष्ठीभक्ति, सत्सग, गुरू उपासना और जाप सामायिक, ध्यान सयम आदिक जो जो कुछ बात कही गई समय समय पर तपश्चरण, अनशन आदिक जो जो भी व्रत कहे गए इन सब से हम दूर रहे और केवल हम ज्ञान–ज्ञानकी बात करे तो वह ऐसा शुष्क हो जाता है कि इस ज्ञानको फिर कोई डर नही रहता है। चाहे कुछ भी भीतर गुजर रहा हो, उसकी इसे कुछ भी आशका ही नही रहती है। जैसेकि पीपलका बर्तन बनाने वाले की दुकानमे कोई कबूतर रहता हो उस कबूतरको अब उसे क्या शंका है ? एक आदत बन गई है, सुनता रहता है, ठन ठनकी आवाज। वह तो नही उड पाता। तो ऐसे ही इस अपने व्यवहार मार्गसे अगर पतित हो जाय। जो चरणानुयोगकी विधिमे बताया है उससे हम स्थिगित हो जाये तो हमारा यह ज्ञान कब तक काम देगा ? हमारी इस स्थितिमे केवल ज्ञानका आश्रय ले, अन्य व्यवहारका आश्रय मत ले, ऐसा तो बडे–बडे साधु जन ही कर पाते है। ऐसे गृहस्थजनोको तो जहाँ इतने रोजिगार करते है ना, जैसे तैसे धनोपार्जन करते है, कितने–कितने विकल्प बनाते है, ऐसे अनेक विकल्पोमे रहने वाले गृहस्थ केवल ऐक थोडे ज्ञानकी कथनी चर्चा मुखसे बोलने मात्रमे अपनी पवित्रता बना सके यह तो बडा कठिन मालूम होता है, उन्हे तो उपयोग लगाना चाहिए शुभकी ओर, और ज्ञानमे तो ऐसा ही है कि यह शुभभाव है यह भी हेय है मगर शुभ भावमे चलकर उसे हेय बनाकर आगे बढ तो उसमे तो सफलता है ? और पहलेसे ही अशुभभाव भी हेय है, शुभ भाव भी हेय है, दोनोको छोड दे। शुभको छोडनेमे तो कोई हिम्मत नही है। अशुभ छूट नही पाता, तो क्या स्थिति हो जाती है ? बडी विडम्बना। अपने ज्ञानको सम्हाले, अपना समाधान अपनेमे लावे, आगे–आगेकी दृष्टि बनावे, आगे आगे बढे चले जावे और अपने आपके उस सहज ज्ञान स्वभावका एक अनुभव बने, धुन बनावें वैसा ख्याल तो रहता है, प्रतीतिमे तो रहता है कि मेरेको अपने आत्मस्वरूपमे रमण करना और कुछ चेष्टाये ऐसी हो जाती, कुछ परिणतियां ऐसी हो जाती कि हम उसमे अमल नही कर पाते, तो इसका स्मरण भी एक बहुत बडा सहायक होता है हमको उस मार्गमे पहुचनेमे।

नयोमें आशयकी पहिचानसे समीचीनताकी निर्विवादता—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय इन नयोको विषय करने वाला जो नय है वह नय असत्य नही हो सकता, क्योकि द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुका स्वरूप है। वस्तुका द्रव्याश्य, उसका वर्णन किया निश्चयने, वस्तुका पर्यायांश उसका वर्णन किया व्यवहारने, यहा तक तो मिथ्याकी बात नही, किन्तु

जहा उपचार बोल दिया जाता है। उपचार कथनमे एक वस्तु दूसरेका स्वामी है। एक पदार्थ दूसरेका कर्ता है, एक पदार्थ दूसरेका भोक्ता है, एक पदार्थ दूसरे रूप परिणम जाता है आदिक रूपसे जो वर्णन चलता है, उसका अगर भाव ठीक सही ध्यानमे लावे कि बोलने मे आये नही, किन्तु जैसा उपचार कहता वैसा ही ठीक सीधा समझ ले तो यह मिथ्या है। जैसे कहा घीका डिब्बा उठा लावो तो वह पुरुष जाता है और शीघ्र ही घीका डिब्बा उठा लाता है। वहा कहने वाला भी समझता है और लाने वाला भी समझता है और वहाँ बैठा कोई अज्ञानी पुरुष यह समझे कि इसने घीका डिब्बा कहा तो जैसे टीनका डिब्बा कहते, चीनी मिट्टीका डिब्बा होता, इसी तरह घीका डिब्बाभी होता होगा, ऐसाकोई अज्ञानीसमझले तो उसकी समझ मिथ्या हैं। भावोमे जैसे स्तुतियोका वर्णन बहुत आता है, अजनसे चोरतर गये पापी महा अधम। हे भगवन! आपने अ जन जैसे कितने ही पतितोको तार दिया। ऐसा सुनकर अगर कोई पुरुष ऐसा ही समझे कि कोई अँजन नामका चोर था और भगवान आये औरु हाथ पकडकर ले गए मोक्षमे, यो तार दिया, यह कोई समझे तो वह मिथ्या है। और, इसे यो समझें कि अ जन चोरने भगवानकी भक्ति को, भगवानके गुणोका स्मरण किया और उस स्मरण करते हुए मे अपने आत्माकी सुध लिया, अपने आत्माकी ओर लगे और उसमे अपना उद्धार पा लिया तो विषय होनेके कारण, गुणस्मरणका विषय, भक्तिका विषय होनेके कारण इस प्रकार कहा गया है ऐसा कोई सही समझे तो उसको ऐसा बोलनेमे क्या दोष है? जितने प्रवर्तन होते है वे भावोसे होते है और भावोसे ही सारी चेष्टाये होती है। इसलिए चेष्टाओको निरखकर भावोका अनुमान किय जाता है, मगर चेष्टा या वाणी को देखकर कैसा ही भाव हो, ऐसा नियम नही बनाया जाता। अवसर करके ऐसा लगता है मगर नियम नही बनता, चेष्टा कुछ है आशय कुछ है।

संसारमें संसरणका साधन शरीराध्यास—हम लोग जो ससारमे जन्म मरण करते चले जा रहे है, अचानक कुछ समागम मिल गए है, कुछ लोग मिल गए है, कुछ वैभव मिल गया है, यह कितने दिन ठहरनेका? बाहरी पदार्थ है, ये हमारे प्रभु नही है। इनसे मेरा कोई भविष्य निर्भर नही है। यहांके लोगो को निरखकर कुछ से कुछ विकल बनाना, कषाय बनाना यह तो अपना घात करना है, यह सब माया जाल है' ये कोई मेरे प्रभु नही हैं, कोई मेरे ईश्वर नही है। मेरेको तो अपने आपमे आत्महित करना है। वह दृष्टि जगाना है, ऐसा चलकर जो अपने आपमे अपना हित करनेका प्रयोग करने लगे उसका तो भला है, नही तो एक अच्छा समागम पाया, उसको भी यो ही व्यर्थ खो दिया, यह स्थिति रहती है। जो कुछ हमारी दुर्गति हो रही वह किस प्रकार हो रही, क्या हो रही, किस ढगमे बात चल

रही। तो अब इस सम्बन्ध की बात नही बतलाते। एक-एक जीवकी बात ले। जीवने मूल मे गल्ती की, अध्यास किया अध्याससे हुआ अध्यवसान। अध्यास होनेसे इसने किया उसका ग्रहण, अटपट रूप माना और आत्मरूप, आत्मसात्कार करनेसे फिर यह अपनी बुरी चेष्टाये करने लगा और उपयोगको बहुत बाहर-बाहर घुमाने लगा और इस तरह यह परिपाटी चलती है। अध्यास किया। आत्मा और कर्ममे एकत्वका अभिप्राय होनेका नाम अध्यास है। यहा दो पदार्थ हैं—स्वतत्र दो चीजे है-कर्म और जीव। पूर्वबद्ध कर्म भी अपनी स्वतन्त्रतासे बस रहे हैं। निमित्त नैमित्तिक भाव हो सो साथ नही छूटता, मगर परिणमनकी दृष्टिसे कर्म अपने आपमे स्वतन्त्रतासे बस रहे है। जीव भी अपने आपके स्वरूपमे अपने आपकी कुछ भी परिणति करता हुआ स्वतन्त्रतासे चल रहा है, उसका अस्तित्व पृथक् है, इसका अस्तित्त्व पृथक है। पूर्वबद्ध कर्म जब विपाककलमे आता है तो यहाँ आत्मामे उनका प्रतिफलन हुआ, वेदन हुआ और झलक हुई, झाकी हुई, कुछ समझा गया तब क्या किया इस आत्माने, इस अशुद्ध जीवने अपने आपमे और कर्मने कर्ममे कर्म किया। एक प्रतिबिम्ब न हुआ, उसमे एकत्वका आशय कर दिया। यह एक ऐसा विवरण है कि किसी मोही अज्ञानीको यह विवरण न आयगा और न उसके ऐसे लक्ष्यमे आयगा कि कर्म यह है, मैं यह हूँ और मैंने इस कर्मके साथ एकत्व अपनाया है, इसकी सुध नही होती। वह तो ऐसा एकत्व निरत है कि जैसे घोडा और घोडेके रूपमे भेद नही किया जा सकता, घोडा और घोडेके आकारमे भेद नही किया जा सकता, इसीप्रकारसे अज्ञानी जीवमे आत्मा और कर्ममे भेद न कर पानेकी बात बनी हुई है। ऐसा आत्मा और कमके एकत्वका अभिप्राय है, लेकिन यह तो है अध्यास, इस अध्याससे क्या हुआ ? क्या इसका बना ? अध्यवसान। यह मैं हूँ, यह आशय और उसका व्यक्त रूप यह ही मैं हूँ, जो झलक है रागद्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ और प्रतिविम्बत है यह मैं हूँ, यह हुआ अध्यवसान। अध्यवसानके बाद क्या हुआ ? रागद्वेप विपाक। यह रागद्वेप विपाक हमे तब मालूम पडता है जब हम किसी आश्रयभूत पदार्थको विषयमे लेते है तब इसका व्यक्त रूप बनता है।

अन्तर्भेदावबोधसे भविष्यकी उज्ज्वलता—हमको मूल मे क्या करना ? ओह यह कर्मलीला है, यह कर्म-विपाक है, मैं तो ज्ञाता ही रहूँगा। मे इसको ग्रहण नही करता हूँ। मैं मैं तो अपने ज्ञान स्वरूप मात्र हूँ। इस प्रकार विकार से हटकर, कर्मविपाक से हटकर इस माया जाल से अपने उपयोग को हटाकर माया का तिरस्कार करके एक अपने ज्ञानस्वरुप का आदर करें तो यह भावक अपने आप निवृत्त हो जाता है। यो अपने आप मे एक अन्तज्ञान बनाना, अन्तदृष्टि करना, जिसके प्रताप से परमात्म-स्वरुप से मिलन होताहै। यह

है अत. विशुद्ध स्वाधीन आनन्दका प्रकरण। और, यह प्राप्त होता है कब ? जब हम प्रमाण से वस्तु स्वरूपका सही निर्णय कर नि.शक हो जाते है। कोई शका, कोई सन्देह, कोई शल्य कोई अन्धेरा वहा नही ठहर पाता, ऐसा यह एक प्रमाणका प्रताप है। हमको किसका छेदन करना है ? कर्म विपाकका। ये क्रोध मान, माया, लोभ एक अचेतन भाव और इनका निमित्त पाकर होने वाले जीवमे चेतन क्रोध, चेतन मान, चेतन माया, चेतन लोभ याने एक यह मैं हूँ, इस प्रकार मानना और फिर उसके अनुरूप अपनी वृत्ति बनना, विकल्प होना, ऐसा जो भाव है, इसमे भेद विज्ञान करे, सन्देह निवारण करे, पदार्थ अलग है, यह अलग है, चित् अचित् का भी सग्रह विग्रह करदे, यह कर्मविपाक कर्मका है और इसे जो हम अपनाते है यह अजीबकी वृत्ति है, क्यो अपनाया जाय ? वह तो पर पदार्थ है। पर घरमें तो कोई नही घुसता। जो कोई जायगा वह अपने घरमे जायगा। सो जब वहां व्यवहारमे भी व्यवहार ढंगसे लोग पर घरमे विश्वास नही करते, पर घरमे विश्वास नही पाते, पर घरमे गमन नही किया करते, पर घरमे निवास नही बनाते, तो मैं आत्मा क्यो इस पर घरमे, इस प्रेम लगावमे निवास करू ? मैं तो अपने ज्ञानरूप रहूँगा। प्रतिज्ञा कहो, सँकल्प कहो, निर्णय कहो, ऊचा रखना चाहिए। ऊंचा निर्णय हो जाय, ऊचा उद्देश्य हो जाय, ऊचा भाव हो जाय तो हम इसमे कुछ अब भी सफल होंगे और जल्दी उसे पा भी लेंगे। ऐसा ज्ञान जिसके प्रकट हुआ है, यह पुरुष परिस्थितिवश कर्मविपाकवश किसी बाध्य व्यवसाय, व्यापार बाह्यवृत्तिमे भी पहुच रहा हो, लग रहा हो तो भी वह प्रतीति नही छोडता, अपने आपके स्वरूपकी। मैं तो यह ही हूँ। करना पड रहा है। स्थिति है उसकी ऐसी, पर मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा काम तो ज्ञानरूपसे परिणमना है। मेरा परमपद अपने आपमे निस्तरंग होकरके सदाके लिए निराकुल शान्त पवित्र बनना, यह मेरा काम है। यह करना पड रहा। गुजारा नही चलता। शरीर ऐसा ही है। घरमे रहना पडता, भूख प्यास लगती है, उसके लिए सारे काम करने होते है, मगर ये सब काम मेरे करनेके लिए नही है। ये तो सब परिस्थितिवश करने पड रहे है। मेरा नर जन्म तो इसलिए है कि मै अपने आत्मामे अपने ज्ञानको बसा कर निस्तरंग होनेका उपाय पाऊ। एक मुनीम जैसी वृत्ति रखे। सेठके यहां मुनीम काम करता है, मगर मुनीमको ममता नही है कि यह मेरी चीज है। रक्षा पूरी करता और उसके लिए वह इतना बडा परिश्रम करता, योगदान देता है, लेकिन भीतरमे उसका आशय यह है कि यह मेरा नही है। इसी प्रकार जो ज्ञानी पुरुष है वह बाह्य परिवार समागम वैभव, कमाई अन्य अन्य बाते इनमे रहते हुए भी वह जानता है कि ये मेरे कुछ नही। मेरा तो मात्र एक यह ज्ञान भाव है। ज्ञानस्वरूप यह ही मेरा सर्वस्व है, ऐसा

उसकी प्रतीतिमे रहता है। यहा इतनी धुन हो, दृष्टि हो तो हम अपना भविष्य उत्तम पायेंगे।

आत्महित साधना करके दुर्लभ नरभवसे अलौकिक लाभ लेनेका अनुरोध—यह मानुष पर्याय समझो अनादि कालसे रुलते रुलते अब बडी दुर्लभतासे प्राप्त हुआ। उस भव मे एक यही विचार होना चाहिए कि मेरे आत्माका हित कैसे हो? दुनियामे जो लोग दिखते है, जिनका समागम हुआ, ये तो सब मायास्वरूप हैं, ये मेरे कोई सर्वस्व नही हैं। इन कुछ जीवोके पीछे मित्र बन्धु या जिसे अपना कुछ माना हो, उनके पीछे अपना यह दुर्लभ मानव जीवन खो देना यह कितनी बडी मूढता की बात है। आत्महितका अवसर अब न छोडें, आत्महित किसमे है? आत्महित स्वभावके आश्रयमे है। अपने आपका जो एक विशुद्ध जीवस्वभाव है, जो कि हम बुद्धि युक्ति अनुभूतिके द्वारा परखते हैं, भले ही पर्याय हमारी विकारमे चल रही है, विकारमे स्थिति चलते हुएमे भी हम जब विशिष्ट ज्ञानबल को जोडते है तो हम भीतरसे स्वभावकी परख भी कर लेते है। जैसे पानी गर्म हुआ, उस गर्म पानीमे अगर हम पूछे कि बताओ इस पानीका स्वभाव क्या है? तो गर्म कोई न कहेगा। गर्म होते हुए भी स्वभाव ठढाका ही कहा जायगा। अगर स्वभाव ठढा है इतनी ही बात सुनकर कोई पानीको पी डाले तो उसकी जीभ जलेगी। और तो पर्यायमे उस पर्यायकी बात है। स्वभाव अनादि अनन्त अहेतुक ध्रुव है, उसके परिज्ञानकी आवश्यकता है। जैसे जब ज्ञानकी उपासना करनेका आदेश दिया तो प्रश्न हुआ कि ज्ञानमय यह आत्म है हा, उसकी उपासनाका उपदेश क्यो दिया जाता? ऐसा है ज्ञानमय, लेकिन जब अपने ज्ञानमय स्वरूप पर दृष्टि तो नही दी गई है इसलिए उपासनाका उपदेश दिया जाता है। अब देखिये—हम आपपर विपदा है तो एक यह विपदा है कि हमारा उपयोग बाहरीपदार्थो मे जाता है और रमता है और उस समय हम अपने आत्माकी सुध भूलते है, ऐसी जो स्थिति हम पर गुजरती है तब उसे छोडकर आपत्ति हम कुछ नही कह सकते। जैसे किसी पुरुषको फासी लग रही हो तो वह जानता है कि अब फासी लगेगी, मरेंगे और उससे कोई कहे कि बोलो तुम्हे क्या खाना है? रसगुल्ले खाना है, या पेडे खाना है या क्या करना है? तो उसको कोई इच्छा नही होती। क्या क्या करे कुछ खाकर, आखिर अभी मरना ही है। तो जिसे मरणका भय हो उसे इन विषयोमे मौज नही लगती, इसी तरह ज्ञानी पुरुषको इस तरहका भान है कि मेरा उपयोग बाहरी पदार्थोंमे क्यो जाता है? मेरा वह समय व्यर्थ गया कि बाह्य पदार्थोमे उपयोग जाय, उसमे रमे। उसकी चिन्ता करें, उसकी धुनमे रहे और अपने आत्माकी सुध भूल जायें, ऐसा जो एक विचित्र अन्धकार हुआ, यह सबसे बडो भारी

विपत्ति है। चित्तमे यह भाव होना चाहिए कि मेरा बाह्य पदार्थोमे उपयोग मत रमे और अविकारी अपने आपके उस विशुद्ध ज्ञान स्वरूपकी दृष्टि बना सकू। मैं अन्दरमे यह धुन बना सकू कि ऐ प्रियतम ज्ञान, तू ज्ञानरूप ही परिणम। अज्ञानरूपसे मत परिणम।

चिदाभास व प्रकृतिविपाकका विश्लेषण—देखो एक बहुत स्पष्ट और सरल भेद विज्ञान पानेके लिए कुञ्जी रखी जा रही है। देखो जिसे कहते है हम विकार, वह विकार दो जगह है—कर्ममे है और जीवमे है। ऐसा नही है कि कर्ममे विकार न हो और जीवमे विकार आता हो, इसी कारण समयसारमे चेतन और अचेतन दो प्रकारके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग विकार ये सब दो दो प्रकारके कहे गए है। कर्मकी परिणति क्या है ? जिस कालमे कर्मबन्धन हुआ था उस ही कालमे कर्ममे अनुभाग प्रकृति, स्थिति, प्रदेश सब निश्चिन हो गये थे। उसमे कितना अनुभाग हुआ। कैसी कर्म प्रकृति हुई कितने दिन वह प्रकृति बैठी रहेगी। कितने स्पर्धकमे कितने परमाणु है, यह सब चीज उस ही समय निश्चित हो जाती है। तो अब देखो—जब उन प्रकृति प्रदेशमय कर्म पुद्गलोमे स्थिति और अनुभाग दोनो स्थित हो गए तो इसी कारण यह निश्चित है कि यह निषेक ऐसी प्रकृति रखती है जैसे क्रोध प्रकृतिकी कर्म वर्गणाये क्रोधनकी प्रकृति रखती है और अनुभाग मे तीव्र बन्ध भी। तब और जब स्थिति पूरी होती है, कर्मका बिपाक काल आता है तो कर्म मे कर्मकी परिणतिसे एक स्फोट होता है जो जीव स्वरूपसे बाहर होता है। स्थिति पूरी होनेके बाद ऐसा ही हुआ करता है। जैसे चूनेका डला रखा है, उसकी म्याद जैसे तीन माह की है तो तीन माहकी स्थितिके बाद वह अपने आप फूल जायगा। उसमे शक्ति हट जायगी और बाहर भी कुछ उसका स्पर्श होता, उस पर उसका आक्रमण होता है। और, कदाचित कोई उस चूना की डली पर पहले ही पानी डाल दे तो वह उदीरणा कहलाती है, वह पहले ही फूल जाता है, ऐसे ही कर्मविपाक जब अपनी स्थितिको पूरी करता है तो उन मे अनुभाग और प्रकृतिका अभ्युदय प्रकट होता है, तब ही तो बतलाया है कि क्रोध प्रकृति मे क्रोधन है, मान प्रकृतिमे मान है, माया और लोभमे लोभ है। कर्ममे उस अपने नामके अनुरूप विकार होता है, लेकिन वह अचेतन है, उस विकारका वह भी ज्ञान नही करता और विकार हो जाता है। अचेतनमे विकार अचेतन जैसा है अन्यथा बतलाओ कि सत्ता और असत्तामे फर्क क्या है ? जैसे कर्म सत्तामे रहे तब तक वह फलदान समर्थ नही है, ऐसे ही सत्ता हो जैसे धीरे-धीरे चुपचाप बिना अपनेमे विकार स्फोट किए निकले, उदयमे आये तो वहा भी फल क्यो मिले ? तो सत्तामे और बिपाकमे अन्तर है। विपाककालमे कर्ममे स्वयं विकार होता है। अब हुआ क्या कि अपने इस जीवके साथ बन्धे हुए कर्म जब विकृत

हुए तो वही तो हुआ कर्मविपाक। अब यह वेदन बिना तो न रहेगा। यह भी रका वेदन ऐसा बिलक्षण वेदन है कि जिसे कहा करते स्वानुभव प्रत्यक्ष स्वसम्वेदन, वह इन्द्रियसे होता क्या? मनसे होता क्या? इन्द्रिय और मनके बिना जहाँ आत्मामे स्वसम्वेदन स्वका अनुभवरूप प्रत्यक्ष होता है वहा मन और इन्द्रिय काम नही करते और फिर भी वेदन होता है। तो जहा शुद्ध स्वसम्वेदन नही वहा एक अज्ञानी जीवको या जो विकाररूप परिणम रहा है समागे जीवको विपाक कालमे वहां जैसा वर्त रहा वैसा स्वका वेदन होता है। उस वेदन मे वह कर्म पर लक्ष्य तो नही देता, मगर एक कर्माक्रमण कहलाता है तो वहा एक अधकार रूप वेदन हुआ और उस अधकार वेदनके समयमे यह जीव अपने शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ और इसने अपना उपयोग फिर कहाँ रमाया? उसके नोकर्ममे। याने कर्मका उदय कब फलवान होता है? जब नोकर्मका विषय किया जा रहा हो। नोकर्मका विषय न बन पाय तो वह अबुद्धि पूर्वक फल देकर भड जाता है और नोकर्म आश्रयभूत वस्तु जब विषयमे आता है तो वुद्धिपूर्वक वह फल कहलाता है।

कर्माक्रमणकालमे चरणानुयोगकी आत्मरक्षामे सहयोगिताका अङ्कन—कर्मफलके उक्त विधानमे चरणानुयोगकी उपादेयता की स्पष्ट झलक ह। जैसे—बतलाया वत्थु पडुच्चजं पुण अज्झवसाण सु होइ जीवाणं। बाह्य वस्तुका आश्रय किए बिना अध्यवसान, विकार अपने स्वरूपको प्राप्त नही कर पाता। इसीलिए बतलाया ह कि किमर्थं बाह्यवस्तुप्रतिषेध: अध्यवसान परिहारार्थम्। बाह्यवस्तुका त्याग किसलिए बतलाया? अध्यवसानभाव के परिहारके लिये बतलाया है। चरणानुयोगकी झलक है यहा। कहते है बाह्यवाद का त्याग अध्यवसानके निषेधके लिए बतलाया। यद्यपि यह नियम नही है कि बाह्यवस्तुका त्याग करने पर अध्यवसान हट जाय, लेकिन अध्यवसानका रग जमानेका साधन तो बाह्य वस्तुका आश्रय है। तो भले ही कभी वाह्यवस्तुका त्याग करने पर भी मन द्वारा कुछ ख्याल रह जाये, किन्तु कुछ समय बाद जब बराबर सामने नही है तो एक अवसर मिलता है कि वह अध्यवसान भी हट जायगा तो बात क्या चल रही कि कर्मविपाक हुआ उस समयमे जो कर्माक्रमण है वह एक विलक्षण अधकार है। जैसे कुम्हार घडा बनाता है तो वहा कुम्हार तो अपनी चेष्टा करता है, मिट्टीका परिणमन नही करता, पर देखने वाले जानते है कि उस चाक पर जो मिट्टी पडी है उस मिट्टीपर कुम्हारका कैसा व्यापार चल रहा, दबोच रहा है, पतली मिट्टी करता है तो अधिक दबोचा भीतर हाथ डाला तो वह एक तरहका आक्रमण है। यद्यपि कुम्हारका वह आक्रमण भी कुम्हारकी चेष्टामे है, मगर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसा आक्रमण करते हुए कुम्हारके व्यापारका निमित्त पाकर मिट्टी अपने आपमे

अपनी शक्तिमे घडा रूप परिणम जाती है। यहाँ भी देखिये कि जब कर्मका ऐसा आक्रमण हुआ, आक्रमण क्या हुआ, कर्मका विपाक हुआ और वह विपाक आत्मामे झलका। जैसे दर्पणमे अन्धेरा झलका तो झलका कैसे ? जैसे रात्रिके समयमे दर्पण खुला रखा जाय तो दर्पणमे कुछ दिखता नही, मगर अन्धेरा तो उसमे आया ही है, और अन्धेरा झलका तब ही दर्पण नही दिखता तो एक ऐसा विचित्र अन्धकार है, उस समय कर्मकी बात हुई कर्ममे, अब उसका निमित्त पाकर यह जीव शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ। अब उसकी परिणति चली, और इसका उपयोग नोकर्ममे हो गया और उस माध्यमसे उस कर्मके उदयके अनुरूप इसने अपने विकारको व्यक्त किया। दोनो जगह स्वतँत्रता है और निमित्त नैमित्तिक योग है।

आत्मस्वातंत्र्यके परिचयसे आत्मशुद्धता का अभ्युदय—स्वतन्त्रताके परिचयसे तो यह लाभ उठाना चाहिए कि मेरेको कोई दूसरा नही परिणमाता। अगर कोई दूसरा मेरेको परिणमाता होता तो मै विवश हो जाता। उसकी मर्जी, उसकी कृपा, वह छोडे न छोडे। हम कोई पौरुष कर सकने लायक नहीं रहते, अगर कोई दूसरा मेरेको परिणमाता। यहाँ एक पौरुष जगता है, मै अपनी ही परिणतिसे परिणमता हूँ। "वस्तु स्वभावही नही कि परसे कुछ मिले। तब-खुद गर्ज भी किसको कहे सब सत्त्व के भले।" तो यह तो हमने वस्तु स्वातत्र्यमे स्वभाव दृष्टिको एक प्रेरणा पायी। अब निमित्त नैमित्तिक भावके दर्शनसे प्रेरणा क्यापायी ? जैसे जीवाजीवाधिकारमे इसका विशेष वर्णन है कि यह वर्ण, रस, गध, स्पर्श विकार मेरा स्वरूप नही, मेरा स्वभाव नही, किन्तु वे पुद्गल कर्मसे निष्पन्न है। पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर कोई निर्माण होता है। मेरे स्वभाव से ये दूर है। मेरा स्वभाव तो शुद्ध स्वच्छ ज्ञानाकार रूप है। ऐसा यह अपनेको अपने शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाता है। यही है जीवत्व भावकी दृष्टि। तो अपने आपमे यह विचार करे कि मेरेको सर्व आनन्द है, कोई कष्ट नही है। कष्ट तो यही है मात्र कि हम पर द्रव्योको अपने ध्यानमे लेते है, उसमे रमते है, और उस समयमे हम अपनी विचारधारामे डूब जाते है। यह है हमपर विपत्ति। जिस विपत्तिके परिणाममे कर्म बन्ध होता, ससारमे परिभ्रमण होता और चतुर्गतियोमे चक्कर लगाते। न जाने कैसा कौन भव मिले ? देखते ही है-कीडा मकोडा वनस्पति इनमे क्या करनेकी बात है ? बोल भी क्या सकते हैं। ऐसीपर्याय मिलेगी तो मै क्याकर सकूगा। आप स्वय सत् है, मन मिला है। मनकी बात दूसरेसे कह सकते है, समझ सकते है। ऐसी इस सुविधामे हम विषयोकी प्रीति छोडकर, कषायोका हठ छोडकर केवल एक मेरे आत्माका हित कैसे हो, केवल इसी भावनासे हम धर्मध्यानमे आये, तत्त्वज्ञानमे आये, चिन्तनमे आये, विचारमे आयें ओर कषायोको मन्द करें, ऐसी एक अपनी स्थिति बनाकर चले और अन्-

दृष्टिका अधिकाधिक प्रयोग करे।

ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिमे विडम्बनाओंका विलय—जिसे थोडी सुध होनेकी पात्रता आये, झट अपने आपके भीतर प्रवेश करे कि मै ज्ञानस्वरूप हूँ। कैसे विकार हो गया यह ? मैं जब ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञान-ज्ञान ही मेरा कार्य है, ज्ञानवृत्ति ही मेरा कर्तव्य है। यहाँ जानना रहता, जानना जानना ही इसमे बना रहता फिर कैसे यह विकार हो गया ? जैसे दर्पण स्वच्छ है तो दर्पण जब स्वच्छ है तो वह स्वच्छता स्वच्छतारूप ही बनी रहे। जैसे दर्पणमे लाल पीला प्रतिबिम्ब आ गया दर्पणकी ओरसे तो दर्पणकी गाठकी चीज तो नही है। वह तो स्वच्छता रूप ही परिणमता है। उसका आश्चर्य करना चाहिए कि दर्पणके स्वभावके-विपरीत दर्पणकी आन बानके विरूद्ध यह प्रतिबिम्ब हुआ, यह विकार हुआ यह लाल पीला परिणमन कैसे हुआ ? समयप्राभृतमे कहा है— जह फलिहमणी सुद्धो ण सयँ परिणमइ राय-मादीहिं ? रगिज्जदि अण्णेहिंदु सो रत्तादीहि दोसेहिं। तह णाणीवि य सुद्धो ण सय परिणभइ रायमादीहिं। रगिज्जदि अण्णेहिं य सो रत्तादीहि दव्वेहिं। अर्थात् यह आत्मा स्वय अपने रागादिक भावका निमित्त नही बनता। खुद ही यह उपादान, खुद ही अपने विकारका अगर निमित्त बन जाय तो उपादान और निमित्त दोनो सदा हाजिर है फिर क्यो विकार मिटेगा ? वह तो विकार स्वभाव बन जायगा। नित्यकर्तापन आ जायगा। तो वहा आचार्य कहते हैं कि विकार भावमे निमित्त परप्रसग ही है, यह वस्तुका स्वभाव उदित होता है। हम हर बातसे शिक्षा ले स्वभावदर्शनकी। स्वभावदर्शनका वहा हमे किस तरह मौका मिल जायगा? शरण है कुछ तो अपनी स्वभावभावना, स्वभाव-आराधना, ज्ञानाकार केवल ज्ञानस्वरूप मात्र स्वच्छ ज्ञान, ऐसे अपने आपकी भावना करे तो जैसे बताया है कि कोई पुरुष यदि ऐसा विचार बनाता है कि मै हिंसा करू तो वह अपने विचारसे अपनेको हिसक बना डालता है। कोई विचार करता है शुभ भावका तो वह अपने विचारसे अपनेको पुण्य रुप बना लेता है। अशुभ भावका चिन्तन हो तो वह अपने ही विचारमे अपनेको पापरूप बना डालता है, इसी प्रकार विवच्यमान मे जो नारकादिक भव हैं इनमे अगर वह प्रतीति रखता है कि मैं नारकी हूँ तो वह अपने विचारसे नारकी बना। देखो यहा द्रव्य और भाव दो की वात चल रही है। द्रव्यसे बाहर द्रव्याकार या उसकी व्यञ्जन पर्याय वह नारक पर्याय है, लेकिन वह जीव अगर अपने उपयोगको विशुद्ध ज्ञानस्वभावमे ले जाय और वहा अनुभव करे इसे स्वानुभूति कहते है। अनुभव करनेमे ज्ञानमात्र हो तो इस अनुभूतिके माध्यममे देखें तो वह नारकी नही है। जैसेकि वह विचार कर रहा, उस विचारमे जो आया सो वह है इसी प्रकार जब जगतमे जो चीज आता है और उसका हम विकल्प बनाते है तो हमने अपने विकल्पसे अपने

को ज्ञेयरूप बना डाला किन्तु इस ज्ञेयरूप विकल्पमे न अटके और एक अपने इस ज्ञायक स्वभाव अन्तस्तत्त्व याने ज्ञानप्रकाशको ही ज्ञानका विषय बनाये तो उस समय हम ज्ञानस्वरूप ही है, उपयोगमे जो आया, स्वाद उसका आता है इसलिए अपना उपयोग निर्मल रखना, मंद कषायरूप रखना और वीतराग जिनशासन परम्परामे जो हमे आचार्योने देन दी है, हम उस परम्पराकी पंक्तिमे ही रहकर अपनेको मिटा दे, जिसे कहते है कि निहत्ताको पचा दे।

गर्वतरंग तोड़कर शान्त सुधासागरमें स्नात होनेकी भावना—अगर हम बुद्धिमान है तो अपनी बुद्धिमत्ताको पचा डाले, अपनेको उस भारसे पृथक दुनियामे देखनेका इस मनमे भावन लावे; किन्तु क्या करना ? जब यह सब जगत मायाजाल है तो किसको क्यो अपना कुछ दिखाना ? जब अनन्तानन्त जीव है तो उनमे से दो, चार, पाच सौ, हजार, दस हजार को अपना क्या गुण दिखाना ? याने अपने आपमे क्यो यशकी भावना रखना ? काल अनादि अनन्त है। अनादि अनन्त काल तक किसका यश रह सकती है ? अतीत चौबीसीका तो प्राय. कोई नाम भी नही जानता। कहा अनन्त काल तक यश रहता है ? फिर १०—५ वर्ष के लिए अपनेमे विकल्प बनाकर क्यों अपनेको वरबाद करना ? इसी प्रकार अन्य भी कुछ क्या चाहिए ? कौनसा यश, कौन सी बात ऐसी है जो चाही जाय ? बल्कि कुछ न चाहा जाय, केवल एक यह भावना रहे कि मेरे ज्ञानमे मेरा ज्ञानस्वरूप ही विषय रहे और ऐसे धीरे प्रयोग बलसे, अन्त प्रयोगसे मेरे ज्ञानमे वह ज्ञानस्वरूप समाये और एकमेक हो जावे याने वही हम कुछ चिन्तन ही न करे, ज्ञानमे ज्ञेय इस प्रकार आये याने यह ज्ञानस्वरूप ज्ञानमे ऐसी सौम्य पद्धतिसे आये तो हमारा ख्याल सब भूल जायगा। कुछ भी चिन्तन न चले ऐसी स्थिति पानेकी धुन रहना चाहिए। यह बात इस समय बडी कठिन लग रही, मगर एक बात जब सोचते है तो अचरज कुछ नही होता है। जब हम आगे अनन्त काल तक ज्ञानस्वरूपमे बसे रह सकते है, भगवान हो गए इसके मायने क्या है कि ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप ज्ञान ज्ञेय सब मानो अभेद बन गया है, निज ज्ञेय, निज ज्ञान अभेद हो गया है, ज्ञानमें ज्ञान प्रकाशका ही अनुभव चल रहा है, ऐसी बात अनन्त काल तक होती कि नही, कुछ वर्ष भी नही, भगवान हो गए, अरहन्त हो गए, सिद्ध हो गए, अनन्त काल तक उनका ऐसा शुद्ध परिणमन चलता ही रहेगा। यह हमारी ही तो कथा है, हम आज नही ऐसा बन पा रहे, मगर ऐसा हो तो सकता हूँ। ऐसा जब मै होऊगा तो अनन्त काल तक मै अपने ज्ञानस्वरूप मे निस्तरंग बसता रहूँगा। कहा तो अनन्त काल तक मै बसता रहूँगा और कहा आज एक क्षण भी बस पाते। नही बस पाते है और विविध चेष्टाये होती है तो हो जाये चेष्टाये, किन्तु इसपर तो खेद करना चाहिए, मगर साहस बनाना चाहिये कि हम अपने ज्ञानस्वरूपमे

बस सकते हैं, कोई अत्युक्ति नही, कोई अजब गजब की बात नही, क्योकि हम अनन्त काल तक रहेंगे । कुछ दिन है यहा ऐसे जहा हम स्थिर नही रह पाते हैं, प्रयत्न करते है, मुश्किल पडती है, बाहर-बाहरकी बात ही समायी रहती है ध्यान वहाँ जाता है जहा खुदकी सुध नही होती । कठिन पड रहा है । पड रहा है तो पडे कठिन, मगर सही प्रतीति तो नहीं छोडे हुए हैं । धुन तो हमारी उस ही तरफ है । जैसे किसीका कोई इष्ट आ जाय और वह अनेक कार्यो मे लग रहा हो तो वह कामोमे लगा हुआ भी अपने इष्टको तो नही भूलता । अथवा कोई अनिष्ट प्रसग लग गया हो, कोई इष्ट गुजर गया तो बहुतसे लोग आते है, काम भी करते है, मन्दिर भी आते है, बैठ भी गए । सब कुछ काम करते हुए भी उसकी सुध तो नही भूलती । इसी तरहसे ज्ञानी पुरुष न रम पाये अपने आत्मस्वरूपमे और बाहर पदार्थो मे विकल्प भी मचाये तो भी वह अपनी सुधको क्षण भर भी नही भूलता । उसकी धुन रहती है, लगन रहती है, मेरेको तो वह होना चाहिए और हो पाता नही, आत्मानुभव अथवा ज्ञान प्रकाशमे ज्ञानका समा जाना यह बात हो पा नही रही, मगर धुन इसीकी ही है । हो चुकी है एक बात एक बार, तब तो धुन बनती ही है । जैसे जिसने कोई मिठाई चखी है और अब नही मिल रही तो उसका स्मरण तब ही तो आयगा जब उसका एक बार स्वाद लिया हो । इसी प्रकार मैं अपने ज्ञान प्रकाशमे ही ज्ञानको समाये रहूँ, इसमे कोई अन्य द्रव्य विषय न हो, किसी अन्य बातमे उसका उपयोग न रमे, ऐसी भीतरमे प्रेरणा तब ही तो हो सकती है जब हमने उसकी अनुभूति की हो । लिया है स्वाद तब ही तो ख्याल बन रहा, तब ही तो प्रतीति बन रही । अनुभूतिके बिना प्रतीति नही रह सकती । प्रतीति के समय अनुभूति हो या न हो, मगर अनुभूतिके बिना प्रतीति नही हो सकती ।

बाहरसे हटकर निजधाममें विश्राम पानेका उद्यम—भैया अब तो अपनी ओर आवो । बाहरसे हटकर अपनी ओर प्रवेश करो । पहले बाहरसे हटो । जैसे कोई इस गाँवका मनुष्य विलायतमे गया । विलायतसे घर आना चाहता है तो वहाँ कोई पूछता कि भाई आप कहाँ जायेंगे ? तो वह कहता कि हम इण्डिया जायेंगे, भारत जायेंगे । आया भारतके किसी बन्दरगाह पर । ...कहा जावोगे ? अमुक प्रान्तमे जायेंगे । जब प्रातके किनारे आया तो किसीने पूछा कहा जावोगे ? ...अमुक जिले जायेंगे । जब जिलेके किनारे आया, पूछा कहा जावोगे ? ...अमुक गाव जायेंगे । जब गावमे आया तो पूछा कहा जावोगे ? ...अमुक नम्बरके घरमे जायेंगे । अब घर आ गए तो अपने किसी कमरेमे आकर विश्राम करने लगा। इसी तरह यह उपयोग बहुत दूर तक पहुच गया, पर द्रव्यमे, चेतनमे अचेतनमे पहुँच गया, अब वहामे लोटकर अपनेमे विश्राम लेना है तो अचेतनसे हटा, चेतन तक आया, अन्य

चेतनसे हटा, निज चेतन तक आया। अपने विकारसे हटे, अपने विकल्पके किनारे तक आये, विचार और चिन्तन से भी हटे तो कहाँ पहुंचेगे ? अपने धाममे। जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि जिसके नाम दिये जाये, ऐसा निज धाम है। ये आत्माके ही नाम है। जो रागादिकको जीते सो जिन, वह कौन है ? ऐसी शक्ति कहां है ? यह मै आत्मा निज धाम हूँ। जो कल्याणमय हो सो शिव। ऐसा कौन है ? यह मैं आत्मा। जो अपने आपके ऐश्वर्यका स्वामी हो सो ईश्वर है। वह कौन है ? मेरा जो ऐश्वर्य है, स्वरूप है, स्वभाव है, अनादि अनन्त है, मेरा तो मै प्रभु हूँ। उसे कोई छीन सकता है क्या ? फिर तो मै स्वतंत्र हूँ। मेरा ही तो निज स्वरूप है, मेरा ही तो मैं रचनहार हु, ऐसा वह कौन है ? यह मै अन्तस्तत्त्व। ब्रह्मा जो सृष्टियोको रचा करे सो ब्रह्मा। कौन रचता है इन सृष्टियोको ? उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त सत्। मै किसी दूसरे पदार्थकी स्थितिको कैसे रची सकता हूँ ? कदाचित कोई ईश्वर इस जगतको रचता होता तो बहुत बहुत गडबडिया होती। कभी किसीको भूल जाता। यह परिणमे बिना रह जाता, कहा कहां जाकर सम्हालता ? तो वह ब्रह्मा कौन ? अपनी सृष्टियोको रचने वाला कौन ? यह अन्तस्तत्त्व। निज धाम। राम जहाँ योगीजन रमण करे वह राम। वह कौन ? सर्व साधुवोका, सर्व योगियोका सर्व सन्यासियोका एक व्रत है, एक लक्ष्य है—एक इस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वमे रमना। विकारसे हटे, परद्रव्यसे हटे, पर और प्रभाव इनसे हटकर जो आत्माका स्वभाव मात्र है उसे कहते है भुतार्थ। भूतार्थका अर्थ है जो स्वय सहज हो उसे भूतार्थ कहते है। वह जीवत्व भाव, वह परिणामिक भाव, यह है भूतार्थ। और अभूतार्थके मायने क्या ? जो स्वय सहज न हो तो अभूतार्थ। अभूतार्थके मायने असत्य नही। जैसे ७ तत्त्व ९ पदार्थकी जो कथन है क्या यह असत्य है। ७ तत्त्व ९ पदार्थ अभूतार्थनयका विषय है। भूतार्थका विषय तो केवल एक अखण्ड रूप है। वचनागोचर एक शुद्ध ज्ञानस्वभाव वह है भूतार्थ, अर्थात् जिसमे ९ तत्त्वोका भेद न बने, भेद बनानेमे अशुद्ध कर डाला, क्या यह भेद नही है क्या इस तरह की परिणति नही है ? क्या जीवमे शक्ति नही है, लेकिन उनका जब वर्णन करने बैठते है तो वह कहलाता है अभूतार्थ। अभूतार्थका अर्थ असत्य नही किन्तु सहज स्वत. सिद्ध जो अनादिसे हो उसे कहते है अभूतार्थ। शाश्वत अखण्डका नाम है भूतार्थ और अशाश्वत अखण्डका नाम है अभूतार्थ। अभूतार्थकी तो बहुत साखा प्रसाखाये है। भूतार्थकी साखा प्रसाखाये नही है। वह तो एक परमार्थ सत् है। तो उसका आश्रय लेते है योगीजन। उसमे योगीजन रमण करते है वह कहलाता है राम। विष्णु—जो व्यापक हो सो विष्णु। ऐसा कौन है ? यह ज्ञानस्वरूप आत्मा। यह ज्ञानस्वरूप आत्मा इस सारे लोकालोकको भी व्याप

लेता है कि सारे लोकालोकको जान लिया, तिस पर भी यह ज्ञान ऐसा है कि ऐसे ही असंख्यात लोक और होते तो वह भी ज्ञानसे बाहर न रहता, अवश्य ज्ञानमे आता। ऐसा ही विष्णु है। बुद्ध कौन ? जो ज्ञानस्वरूप हो सो बुद्ध। ऐसा कौन है ? यह मैं आत्मा। हरि यह जो पापोंको हरे। देखो जो अपने ज्ञानस्वरूपको पहिचानता, वह जानता है कि यह समस्त विकारोंसे हटे रहनेका स्वभाव ही रख रहा है। होता है विकार, वह नैमित्तिकभाव, औपाधिक भाव, प्रसंगकी बात, लेकिन ज्ञानस्वभावका जो स्वभाव है, जो विकारसे हटता हुआ अपना स्वभाव रखे तो वही है स्वभावत। तो यह चीज कौन है ? यही आत्मा। ऐसे निज धाम मे मै राग त्यागकर पहुँचू तो फिर वहां आकुलताका कोई काम नही रहता।

अन्तस्तत्त्वकी आराधनामे जीवनक्षणोंका सदुपयोग करनेकी भावना—यह अन्तस्तत्त्व यह परमात्मस्वरूप इसकी शरण गहना यह हमारा कर्तव्य है, उसकी दृष्टि होती है इस समस्त आगमसे, इस समस्त धर्मोपदेशमे। उससे हमको एक ही शिक्षा मिलती है कि हम अपने स्वभावका आश्रय करे, बाह्य वस्तुओंका आलम्बन छोडे और अपने विकारमे लिपटें मत, विकार की भी उपेक्षा करे। ये मेरे नही, ये मेरी बरबादीके लिए है। यह कर्म की लीला है। ये कर्मसे होते है, होने दो, झलक आती है, मै उसे क्यो अपनाऊं, ऐसा अपना भाव बना करके उससे हटकर रहे और अपना स्वभाव दृष्टि पौरुष अपना बनाये, यह काम करनेका है न कि और कुछ कषायभाव करना, या कुछ बात मनमे रखना, या कोई विकल्प चित्तमे रखना, या कोई शल्य चित्तमे रखना, ये कर्तव्य नही है। बडी कठिनाई से मनुष्य जन्म मिला तो इसमे केवल एक आत्महितका ही ध्यान रखे। अपनी भलाई का काम मुझे करना है। मेरा आवागमन मिटे, जन्म, जरा मरण मिटे। परद्रव्योंके विषयमे जो आकुलता होती है, क्षोभ होता है, ये मिटे इनसे मेरा हित नही है, ऐसा भाव रखकर अपने आपको धर्म-साधनामे आगे बढाना चाहिए।

तत्त्वार्थाधिगमकी उपयोगिता—इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थमे संसारसंकटोंसे छुटकारा पानेका उपाय बताया है। संसारमे जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रके वश होकर जन्म मरण का संकट सहते है। सुयोगत. मिथ्यात्वका विजय हो, सम्यक्त्वका उत्पाद हो तो तभी अनन्तसंसारका विच्छेद हो जाता है। अब यह सम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् सम्यक्त्वसे च्युत हो जाये और मिथ्यात्वमे आ जाये तो भी यह अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकालसे अधिक संसारमे नही रहता है। इतना अधिक काल तो किसी विरले जीव के ही होता। सम्यक्त्व पानेके बाद प्राय संख्यात भवोंमे ही मुक्ति पा लेता है। सम्यक्त्व उत्पन्न होता है भूतार्थ नयसे जीवादि तत्त्वोंके ज्ञाताको। ये तत्त्व सात है उन सबका परिचय व सम्यग्-

दर्शनादिका न्यास अर्थात् व्यवहार नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोसे होता है। इन सबका अधिगम प्रमाण व नयोसे होता है। प्रमाणसे तो सर्व अपेक्षाओंसे जो धर्म होते है उन सबका परिचय होता है। किन्तु नयों से एक एक धर्मका परिचय होता है। फिर भी प्रमाणसे जाने हुए तत्त्व के बारेमे एक एक नयसे परिचय हो तो वह सम्यक्नय है। इन सब उपायोके विषयमे वर्णन किया जा चुका है। आत्महित चाहने वालोका कर्तव्य है कि उन सब उपायोसे तत्त्वोका परिचय करे और शुद्धनयके बलसे उनके स्रोतभूत एकत्वका परिचय पाकर ज्ञानानुभूतिका पौरुष करें।

॥ समाप्त ॥

★ आत्मरमण ★

मै दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मै सहजानन्द स्वरूपी हूँ ॥ टेक ॥

हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ॥
हूँ सत्य सहज आनन्दधाम, मै सहजानन्द । मै दर्शन. ॥१॥

हूँ खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नही ॥
परका न प्रवेश न कार्य यहा, मै सहजानन्द । मै दर्शन ॥२॥

आऊ उतरू रमलू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या ॥
निज अनुभवरससे सहजतृप्त, मै सहजानन्द. । मै दर्शन ॥३॥

★ आत्मभक्ति ★

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्ति मे क्षण जाय सारे ॥ टेक ॥

ज्ञानसे ज्ञानमे ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रान्तिका नाश हो, शान्तिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥१॥

सर्व गतियोमे रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोमे रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥२॥

सिद्धि जिनने भी अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमे सहाई ।
मेरे सकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥३॥

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोमे पारे ।
नित्य अन्त अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोमे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥५॥

आत्म कीर्तन ॥

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥ टेक ॥
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मै हूँ वह है भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ॥१॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥
सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ॥
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहि लेश निदान ॥३॥
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥ ४ ॥
होता स्वय जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥ ५ ॥

॥ परमात्म आरती ॥

ॐ जय जय अविकारी

जय जय अविकारी, स्वामी–जय जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी । ॐ ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी । स्वामी सम
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी । ॐ जय ॥ १ ॥
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सतति टारी । स्वामी भव
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी । ॐ जय ॥२॥
परसम्बन्ध बन्ध दुख कारण, करत अहित भारी । स्वामी करत
परम ब्रह्मका दर्शन, चहुँगति दुखहारी । ॐ जय ॥ ३ ॥
ज्ञानमूर्ति है सत्य सनातन, मुनिमन सचारी । स्वामी मुनि
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भडारी । ॐ जय ॥ ४ ॥
बसो बसो हे सहज ज्ञायकप्रभु सहज ज्ञानशाली । स्वामी सहज
टले टले सब पातक, परबल बलधारी । ॐ जय ॥ ५ ॥